श्रीमद्रामदीनदैवज्ञकृतम्

बृहद्दैवज्ञरञ्जनम्

'श्रीधरी' हिन्दी व्याख्या सहितम्

प्रथमो भागः

डॉ॰ मुरलीधर चतुर्वेदी

श्रीमद्रामदीनदैवज्ञकृतम्

बृहद्दैवज्ञरञ्जनम्

'श्रीधरी' हिन्दी व्याख्या सहितम्

(प्रथमो भागः)

व्याख्याकारः

डॉ० मुरलीधर चतुर्वेदी

ज्योतिषाचार्य (सि०, फ०)

अध्यापक—सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी

मो ती ला ल ब ना र सी दा स

दिल्ली ☐ वाराणसी ☐ पटना ☐ मद्रास

कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७

शाखाएँ : □ चौक, वाराणसी–२२१ ००१ (उ० प्र०)

□ अशोक राजपथ, पटना–८६४ ००४ (बिहार)

□ ६ अपरस्वामी कोइल स्ट्रीट, मद्रास–६०० ००४

प्रथम संस्करण : १९८४

मूल्य : रु० १३० (सजिल्द)
१०० (अजिल्द)

श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित
तथा केशव मुद्रणालय, खजुरी, वाराणसी द्वारा मुद्रित

॥ श्री हनुमते नमः ॥

दो शब्द

मुझे आज परम हर्ष का अनुभव हो रहा है कि जिस ग्रन्थ को देखने की इच्छा अधिक काल से बड़े-बड़े दैवज्ञ कर रहे थे, वह प्रथम बार हिन्दी व्याख्या से विभूषित फलित विद्यानुरागी पाठकों के कर कमलों में प्रस्तुत है। इसके संग्रहकर्ता मनीषी ने अनेक ग्रन्थों से उपयोगी व प्रतिदिन कार्य में आने वाले विषयों का समावेश करके वास्तव में ग्रन्थ नाम के ही उपयुक्त बड़े-बड़े ज्योतिषियों को रञ्जित करके नामकरण की सार्थकता सिद्ध की है। यह ग्रन्थ ज्योतिष के विभाग त्रय में से संहिता के अन्तर्गत है। इसमें ८८ प्रकरण हैं। प्रथम भाग में १–५१ प्रकरणों का समावेश करके महान् प्राच्य विद्यानुरागी, विद्वत्समाज को प्रसन्न करने वाले, महत्वपूर्ण ग्रन्थों के प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास के उत्तराधिकारी परिवार के सदस्यों ने प्रकाशित करके ज्योतिष जगत् का महान् उपकार किया है।

अन्त में संग्रहकर्ता ने अपने वंश का वर्णन करके पूर्ण परिचय में अपने को आजमगढ़ जिले के वेला उत्साद परगना में हरदास नामपुर का निवासी बताया है, अन्य विशेषताएँ व्याख्या में स्पष्ट हैं।

इनके परिचय से विदित होता है कि इस ग्रन्थ का संग्रह १९५४ शक में पं० रामदीनजी ने तत्कालीन काशीनरेश के आश्रित रहकर किया है।

मेरी दृष्टि में मुहूर्त विचार की दृष्टि से यह सर्वोत्तम ग्रन्थ है क्योंकि मुहूर्त विषय सम्बन्धी समस्त ज्ञान, परिहारों के साथ इसमें सन्निहित है। मुहूर्त नाम काल विशेष का होता है वह इसमें परिभाषा व भेदों के साथ वर्णित है।

मैंने इसमें आये हुए वाक्यों को यथा प्राप्त टिप्पणी में बताने की कुछ चेष्टा भी की है तथा तत्तुल्य भिन्न ग्रन्थों के वचनों से जहाँ तहाँ सुसज्जित किया है। कहीं-कहीं ग्रन्थोद्धृत प्रमाण अन्यथा सिद्ध होते हैं अर्थात् प्राप्त ग्रन्थ में भिन्नता एवं ग्रन्थों के नामों में भी भेद उपलब्ध होने से तत्तस्थलों में स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

मुझे इस ओर प्रवृत्त करने वाले तथा समय-समय पर समस्याओं को सुलझाने वाले पर्वतीय पं० प्रवर अनुज सदृश स्नेहदानी जनार्दन शास्त्रीजी ने इस में महान् सहायता की है वह अविस्मरणीय है। अन्त में मैं सविनय, विद्वसमाज से निवेदन करता हूँ कि मेरे अज्ञान से या भ्रमवश कुछ त्रुटियाँ रह गई हों तो उन्हें सुधार कर मुझे सूचित करने की कृपा करेंगे।

विदुषामनुचरः
मुरलीधरचतुर्वेदः

विषय सूची

॥ श्री हनुमते नमः ॥

बृहद्दैवज्ञरञ्जनम्

अथ ज्योतिश्शास्त्रप्रशंसा नाम प्रथमं प्रकरणम्

व्याख्याकार का मङ्गलाचरण

रजश्छुरितकुन्तलं दधिविलिप्तवक्त्राम्वुजं
क्वणन्नवलकिङ्किणीरवमनोहरं गोकुले ।
नमामि नवसुन्दरीसदसि नृत्यलीलाऽऽकुलं
श्रिया जिततमालकं कमपि वालगोपालकम् ॥ १ ॥

गवामपि न गोचरो भवति यो हि कालोऽप्यसौ
यदीयगतिमानतः स्फुटतयैव सम्मीयते ।
जडं जगदिदं तथा चिदिव यस्य भासा पुन-
र्विभाति सततं हृदा तमहमाश्रये भास्करम् ॥ २ ॥

दिगम्बरधरश्चिताज्वलनभस्मधारी महा-
भुजङ्गभुजकङ्कणो गरलभक्षणोऽलक्षणः ।
जगत्पतिपदङ्गतोऽयमपि पाणिमस्याः स्पृशन्
भजे भुवनसुन्दरीं सततमन्नपूर्णामिमाम् ॥ ३ ॥

प्रदह्य मदनं क्रुधाऽपि च पुनर्जगच्छ्रेयसे
रणेऽसमवली षडाननसुतः समुत्पादितः ।
निपीय विषमुल्वणं वितरितञ्च येनाऽमृतं
स एव मम सन्ततं भवतु शङ्करः शङ्करः ॥ ४ ॥

गते हृदि निराशतां कपिकुलेऽखिलेऽन्विष्य यो
विदेहतनयां हितं रघुपतेः प्रतीर्योदधिम् ।
प्ररक्ष्य प्रियलक्ष्मणं सगिरिमौषधिं चाऽप्यहो
समर्प्य कृतवानयं जयति केशरीनन्दनः ॥ ५ ॥

श्रीमद्वैष्णवपीठदेशिकवरान् वेदादिपारङ्गतान्
श्रीगोपालपदारविन्दमधुपान् शास्त्रापगावारिधीन् ।
भक्ताभीष्टविधानदाननिरतान् कारुण्यपूर्णान्तरान्
नौमि स्वीयगुरून् सदैव शिरसा श्रीविष्णुदत्ताभिधान् ॥ ६ ॥

श्रीमद्भागवतामृताब्धिलहरीलीलास्थलीमानसान्
न्यायव्याकृतिशास्त्रघोरविपिनस्वच्छन्दकण्ठीरवान् ।
शिष्याशापरिपूर्त्तिकल्पविटपान् पाण्डेयवंशोद्भवान्
श्रीमत्केशवदेवनामजनकान् वन्दे वचःशुद्धये ॥ ७ ॥
ममाज्ञानान्धकारस्य कृपयैवान्तकारिणम् ।
दैवज्ञभूषणं विज्ञं वन्देऽवधबिहारिणम् ॥ ८ ॥
यस्य प्रेरणया मेऽपि जडस्यातिजडाप्यहो ।
नैपुण्यं लेखनी लेभे मीठालालं स्मरामि तम् ॥ ९ ॥
मनोज्ञं मधुरं धीरं बालकाह्लादकारकम् ।
नमामीड्यमहं श्रीमत्सङ्कटायाः प्रसादकम् ॥ १० ॥
केशवदेवपादाब्जे केशवदेवनन्दनः ।
अर्पये श्रीधरीं नाम्नीं व्याख्यां पुष्पस्रजं मुदा ॥ ११ ॥

मङ्गलाचरणम्

वर्णैश्चतुर्भिर्विलसन्ति यत्र क्रमेण शक्तीनविनायकाच्युताः ।
अङ्गी शिवश्च प्रणवेन यत्समं ददातु तन्मे शिवनाम मङ्गलम् ॥ १ ॥

जिस शिव के नाम (श् + इ + व् + अ) में शक्ति, इन (सूर्य), विनायक (गणेश) तथा अच्युत (विष्णु) विराजमान हैं उन अङ्गों के अङ्गी शिव हैं। उनका वह नाम प्रणव के सदृश है। वह शिव नाम मुझे मङ्गल प्रदान करे ॥ १ ॥

वन्दे शैलसुतापतिं शशिधरं विघ्नौघविध्वंसनं
विद्यादानविधानदायकपरं सेव्यं सदा सूरिभिः ।
श्रीकाशीशसभानिवासनिपुणः श्रीरामदीनः सुधीः
कुर्याद्रञ्जनसङ्ग्रहं वृहतरं दैवज्ञपूर्वान्वितम् ॥ २ ॥

सब समय विद्वानों द्वारा सेवनीय, विद्यादान विधान के परमदानी, विघ्न समुदाय के नाशक, चन्द्रमा को धारण करने वाले तथा मां गिरिजा के स्वामी विश्वनाथजी को प्रणाम करके एवं श्रीकाशीनरेश की सभा में रहने से चतुर बनकर मैं रामदीन नाम का पंडित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक सङ्ग्रह ग्रन्थ का निर्माण कर रहा हूँ ।। २ ॥

ग्रन्थ निर्माण का कारण

विविधमुनिजनोक्तं ग्रन्थपद्यातिगद्यैः
श्रुतिसदृशसुवाक्यैः सारवद्भिः सुधीनाम् ।
सकलजनहितार्थं सर्वशास्त्रार्थवेत्ता
रचयति स तु शास्त्रं दैवविद्रञ्जनाख्यम् ॥ ३ ॥

अनेक ऋषियों द्वारा कथित, वेद के समान सुन्दर, सारयुक्त पद्य गद्यों में वर्णित ज्योतिष शास्त्र की महत्त्वपूर्ण बातों का संकलन, पंडितों के लिये व समस्त मनुष्यों

की शुभ कामना के लिये समस्त शास्त्रों के अर्थ का जानकार मैं ज्योतिषियों को आनन्द देने वाले ग्रन्थ की रचना करता हूँ ॥ ३ ॥

अब आगे प्रथम इस महान् ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक कौन-कौन आचार्य हुए हैं, इसे नारद ऋषि के वाक्य से समझाया जा रहा है ।

ज्योतिषाचार्याः

नारदः[1]—

ज्योतिष के प्रवर्त्तक नारद के आधार पर

ब्रह्माचार्यो वसिष्ठोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यरोमशौ ।
मरीचिरङ्गिरा व्यासो नारदः शौनको भृगुः ॥ ४ ॥

च्यवनो यवनो गर्गः कश्यपश्च पराशरः ।
अष्टादशैते गम्भीरा ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्त्तकाः ॥ ५ ॥

नारद मुनि का कहना है कि इस शास्त्र के प्रवर्तक अठारह आचार्य हुए हैं । उनमें एक नारद का भी नाम है ।

१. ब्रह्मा, २. आचार्य, ३. वसिष्ठ, ४. अत्रि, ५. मनु, ६. पौलस्त्य, ७. रोमश, ८. मरीचि ९. अङ्गिरा, १०. व्यास, ११. नारद, १२. शौनक, १३. भृगु, १४. च्यवन, १५. यवन, १६. गर्ग, १७. कश्यप, १८. पराशर ।

नोट—मेरी दृष्टि में भी इस शास्त्र के अठारह आचार्य ही तथा पराशर के मत से १९ प्रवर्तक हुए हैं । १८ का उल्लेख कश्यप ने अपनी संहिता में किया है । यथा १. सूर्यः, २. पितामहो, ३. व्यासः, ४. वसिष्ठो, ५. ऽत्रिः, ६. पराशरः, ७. कश्यपो, ८. नारदो, ९. गर्गो, १०. मरीचि, ११. मनु, १२. रङ्गिराः ॥ १ ॥ १३. लोमशः, १४. पौलिशश्चैव, १५. च्यवनो, १६. यवनो, १७. भृगुः । १८. शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्त्तकाः ॥ २ ॥

इस कश्यप के वचन में आचार्य के स्थान पर सूर्य का नाम होने से ये अठारह प्रवर्तक सिद्ध होते हैं । यहाँ पर कश्यप व नारद के वाक्यों में दो आचार्यों के नाम में कुछ अन्तर भी प्रतीत होता है । जैसे—रोमश व लोमश, पौलिश व पौलस्त्य ।

आचार्य पराशर के मत से उन्नीस प्रणेता हैं । यथा—'विश्वसृड्नारदो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः । लोमशो यवनः सूर्यश्च्यवनः कश्यपो भृगुः ॥ पुलस्त्यो मनुराचार्यः पौलिशः शौनकोऽङ्गिराः । गर्गो मरीचिरित्येते ज्ञेयाः ज्योतिःप्रवर्तकाः ॥

यहाँ पर पुलस्त्य व पौलिश दोनों ही का कथन होने से १९ आचार्य ज्योतिष शास्त्र प्रवर्तक मालूम होते हैं ॥ ४–५ ॥

---

[1] ज्यो० नि० १ पृ० ४-६ श्लो० ।

वराहमिहिराचार्यः श्रीपतिः सत्यभास्करौ।
लल्लसूरिर्ब्रह्मगुप्तौ वैद्यनाथश्च रेणुकः ॥ ६ ॥

एषां शास्त्राणि संवीक्ष्य सारमादाय यत्नतः।
तदुक्तितोप्यहं[1] कुर्वे बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् ॥ ७ ॥

मैं वराहमिहिर, श्रीपति, सत्याचार्य, भास्कराचार्य, लल्लाचार्य, वैद्यनाथ और ज्योतिषशास्त्रप्रवर्तक आचार्यों के ग्रन्थों का अवलोकन करके तथा उनसे सार वस्तु ग्रहण कर उनकी उक्तियों से भी बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक ग्रन्थ का निर्माण कर रहा हूँ ॥ ६–७ ॥

अब आगे ज्योतिष शास्त्र की प्रवृत्ति अर्थात् प्रचार प्रसार इस भूमण्डल में कब से और किन-किन परम्पराओं में हुआ या यों समझिये कि सर्व प्रथम किस आचार्य ने किसको उपदेश किया। इस विषय को ग्रन्थकार प्रथम सिद्धान्त तत्त्वविवेक के कर्ता आचार्य कमलाकर के वाक्य से बता रहे हैं।

ज्योतिश्शास्त्रप्रवृत्तिः

[2]तत्त्वविवेके—

कमलाकर के आधार पर

ब्रह्मा प्राह च नारदाय हिमगुर्यच्छौनकायामलं
माण्डव्याय वसिष्ठसंज्ञकमुनिः सूर्यो मयायाह यत्।
प्रत्यक्षागमयुक्तिशालि तदिदं शास्त्रं विहायान्यथा
यत् कुर्वन्ति नराधमास्तु सदसद्वेदोक्तिशून्या भृशम् ॥ ८ ॥

आचार्य कमलाकर का कहना है कि सबसे पहले सूर्य भगवान् ने मयासुर को जो बतलाया था वही कुछ समय व्यतीत होने पर ब्रह्मा ने नारद ऋषि को ब्रह्मसिद्धान्त या ब्रह्मपुराण के रूप में बताया। तथा चन्द्रमा ने शौनक मुनि को शौनक संहिता के रूप में और वसिष्ठ मुनि ने वसिष्ठ संहिता के रूप में माण्डव्य के लिए कहा। सारांश यह है कि जो सूर्य सिद्धान्त में मय की उक्ति या विषय वस्तु है, उसी का शब्दमात्र में भेद है। प्रत्यक्ष आगम की युक्तियों से सुशोभित जो यह ज्योतिषशास्त्र सूर्य सिद्धान्त के रूप में है उसका त्याग करके अर्थात् इसके विपरीत जो वेदोक्त से रहित अधम मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार ग्रन्थ रचना करते हैं वे निश्चित असत् वस्तु का प्रतिपादन करते हैं ॥ ८ ॥

---

१. ज्यो० नि० १ पृ० ७ श्लो० तदुक्तवचनैः कुर्वे फलग्रन्थं मनोरममिति पाठान्तरमुपलभ्यते।

२. म० ६५ श्लो०।

टिप्पणी—इस कमलाकर की उक्ति से ज्ञात होता है कि ये सूर्यसिद्धान्त के परम भक्त हैं।

पराशर के मत से ज्योतिषशास्त्र की गुरु शिष्य परम्परा का वर्णन इस प्रकार है—'नारदाय यथा ब्रह्मा शौनकाय सुधाकरः। माण्डव्यवामदेवाभ्यां वसिष्ठो यत्पुरातनम् ॥ नारायणो वसिष्ठाय रोमशायाऽपि चोक्तवान्। व्यासः शिष्याय सूर्योऽपि मयारुणकृते स्फुटम् ॥ पुलस्त्याचार्यगर्गोत्त्रिरोमकादिभिरीरितम्। विवस्वता महर्षीणां स्वयमेव युगे युगे ॥ मैत्रेयाय मयाप्युक्तं गुह्यमध्यात्मसंज्ञकम्। शास्त्रमाद्यं तदेवेदं लोके यच्चातिदुर्लभम् ॥८॥

रोमकः—

अब आगे इस सम्बन्ध में रोमकाचार्य ने जो बताया है उसे कहते हैं।

ब्रह्मणा गदितं भानोर्भानुना यवनाय यत्।
यवनेन च यत्प्रोक्तं ताजिकं तत्प्रकाशितम् ॥ ९ ॥

आचार्य रोमक का कहना है कि जिस शास्त्र को ब्रह्मा जी ने सूर्य के लिए उपदेश किया वही सूर्य ने यवनाचार्यजी को बतलाया तथा यवनाचार्य ने जिसका प्रतिपादन किया वह ताजिक नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥९॥

सूर्यसिद्धान्ते—

सूर्य सिद्धान्त के आधार पर

दिव्यं ज्योतिर्मयं ज्ञानं साधु मां परिपृच्छसि।
कथितं ब्रह्मणा पूर्वमवशेषं ब्रवीमि ते ॥ १० ॥

सूर्यसिद्धान्त में सूर्य की उक्ति मय के प्रति इस प्रकार से है कि तुमने दिव्य ज्योतिर्मय जिस ज्योतिष शास्त्र को जानने की इच्छा प्रकट की है उसे मैं निःशेषता से जैसा कि ब्रह्माजी ने प्रथम कहा है बताता हूँ ॥१०॥

और भी नारद ऋषि ने इसकी प्रशंसा में कहा है कि ब्रह्माजी ने इस शास्त्र की रचना पहले क्यों की है।

नारदोपि—

नारदजी के आधार पर

[1]विनैतदखिलं श्रौतस्मार्तं कर्म न सिद्ध्यति।
तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा रचितं पुरा ॥ ११ ॥

नारद ऋषि का कथन है कि बिना ज्योतिष शास्त्र के समग्र श्रौत स्मार्त क्रियाओं का सम्पादन असंभव होने के कारण ब्रह्माजी ने संसार के कल्याण की कामना से प्रथम इस शास्त्र का निर्माण किया है ॥११॥

---

१. ज्यो० नि० १ पृ०। मु० चिं० १ प्र० २ श्लो० पी० टी०।

ज्योतिष विभाग

[1]सिद्धान्तसंहिताहोरारूपस्कन्धत्रयात्मकम् ।
ज्योतिश्शास्त्रं विनैतन्न श्रौतस्मार्तं च सिद्धयति ॥ १२ ॥

यह ज्योतिष शास्त्र सिद्धान्त १, संहिता २, होरा ३, इन तीन स्कन्धों में विभक्त है। इन तीनों के बिना श्रौत स्मार्त क्रियाओं का सिद्ध होना असंभव है ॥१२॥

ज्योतिश्शास्त्रं स्वर्णगर्भा ज्ज्ञात्वा ब्रह्मा ततो मुनीन् ।
अध्यापयामास पुनस्तैः पृथिव्यां प्रकाशितम् ॥ १३ ॥

इस ज्योतिष शास्त्र को सुवर्णगर्भ से जान कर अर्थात् सृष्टि क्रम में जल में जब शक्ति विशेष बीज का वपन हुआ तो अन्धकार से आवृत गोलाकार सोने का पिण्ड बना। उस पिण्ड में पहले अनिरुद्ध भगवान् की आकृति हुई। यही आकृति वेद में सूर्य नाम से प्रसिद्ध हुई और प्रथम उत्पन्न होने के नाते आदित्य यह संज्ञा हुई। इससे सिद्ध होता है कि प्रथम सूर्य भगवान् की उत्पत्ति हुई तथा इनसे ब्रह्माजी ने समझ कर मुनियों को बताया और ऋषियों ने इस भूमण्डल पर प्रकाशित किया ॥१३॥

वसिष्ठ संहिता में भी कहा है 'ज्योतिश्शास्त्रं समग्रं प्रथमपुरुषतः स्वर्णगर्भाद् विदित्वा, पूर्वं ब्रह्मा.....' १ अ० २ श्लो० ॥१३॥

अब इस ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गता को या यों जानिये कि यह वेदों के अङ्गों में कौन सा अङ्ग है और इसकी वेदाङ्गता में क्या कारण है, तथा वेदाङ्ग नाम से कौन २ से अङ्ग हैं, एवं इस शास्त्र को वेदाङ्गों में उत्तम बनने का कारण क्या है। इसे भास्कराचार्य के सिद्धान्त-शिरोमणि ग्रन्थ से बता रहे हैं।

वेदाङ्गत्वनिरूपणम्। इदानीं ज्योतिषशास्त्रस्य वेदाङ्गत्वं निरूप्यते भास्करीयसिद्धान्ते—

भास्कर के आधार पर वेदाङ्गत्व कारण

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु [2]कालाश्रयेण ।
शास्त्रादस्मात्कालबोधो यतः स्याद्वेदाङ्गत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात् ॥१४॥

वेदों में या वेद में प्रायः यज्ञ कर्मों का ही वर्णन है, और यज्ञादि कर्म काल के आधीन होते हैं। इस शास्त्र से काल या समय का ज्ञान होता है। इस ज्योतिष शास्त्र में शुभाशुभ काल विवेचन है। शुभ समय में किया हुआ कार्य फलीभूत होता है व अशुभ काल में विहित कर्म फल से रहित होता है। इसलिये इसकी गणना वेदाङ्गों में की गई है ॥१४॥

---

१. मु० चिं० १ प्र० २ श्लोक० पी० टी०।
२. सि० शि० म० का० ९ श्लो०।

विशेष—ज्योतिष वेदाङ्ग में श्लोक का द्वितीय चरण 'कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञा:' इस रीति से उपलब्ध है। तथा वृद्धवसिष्ठ सिद्धान्त में केवल चतुर्थ चरण में भेद ऐसा प्राप्त है 'वेदाङ्गमुख्यत्वमित: प्रसिद्धम्' ॥१४॥

अन्य भी वसिष्ठ संहिता में—'क्रतुक्रियार्थं श्रुतय: प्रवृत्ता: कालाश्रयास्ते क्रतवो निरुक्ता:। शास्त्रादमुष्मात् किल कालबोधो वेदाङ्गताऽमुष्य तत: प्रसिद्धा:' १ अ० ४ श्लो०। इसी प्रकार से सिद्धान्तशेखर में भी वाक्य है ॥१४॥

षड् वेदाङ्गों के नाम तथा संज्ञा

[1]शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्प: करौ।
या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधै: ॥१५॥

व्याकरण = मुख। आँख = ज्योतिष। कान = निरुक्त। हाथ = कल्प। नाक = शिक्षा। पैर = छन्द ये ६ अङ्ग हैं ॥१५॥

वृद्धवसिष्ठसिद्धान्त में भी कहा है 'छन्द: पादौ शब्दशास्त्रं च वक्त्रं कल्प: पाणी ज्योतिषं लोचने च। शिक्षा घ्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षड्धा' १ अ० ७ श्लो० ॥१५॥

वसिष्ठ संहिता में भी इन्हीं अङ्गों का वर्णन है 'छन्द: पादौ शब्दशास्त्रं च वक्त्रं कल्प: पाणी ज्योतिषं चक्षुषी च। शिक्षा घ्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षट् च' ॥ १५ ॥

सिद्धान्तशेखर में वसिष्ठ संहिता के अनुरूप ही है। १ अ० ५ श्लो० ॥ १५ ॥

अब आगे इस ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गों में उत्तमता क्यों हैं, इसे बताते हैं।

वेदाङ्गों में श्रेष्ठता

[2]वेदचक्षु: किलेदं स्मृतं ज्योतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरै: कर्णनासादिभिश्चक्षुषाङ्गेन हीनो न किञ्चित्कर: ॥१६॥

यह ज्योतिष शास्त्र वेदाङ्गों में नेत्र स्वरूप है। कोई भी जन कान नाक व मुख से युत होकर यदि आँखों से रहित होता है तो कुछ भी कार्य करने में असमर्थता का अनुभव करता है। अत: ज्योतिष शास्त्र के विना संसार का शुभाशुभ ज्ञान न होने से इसकी प्रथमता मानी गई है ॥ १६ ॥

वृद्धवसिष्ठसिद्धान्त में भी कहा है 'वेदस्य चक्षु: किल शास्त्रमेतत् प्रधानताऽङ्गेषु ततोऽर्थजाता। अङ्गैर्युतोऽन्यै: परिपूर्णमूर्त्तिश्चक्षुर्विहीन: पुरुषो न किञ्चित्' ॥१६॥

तथा वसिष्ठ संहिता में व सिद्धान्त शेखर में इसी प्रकार से पाठ है ॥ १६ ॥

---

१. सि० शि० म० का० १० श्लो०।
२. सि० शि० म० का० ११ श्लो०।

अब आगे इस ज्योतिषशास्त्र की वेदाङ्गों में उत्तमता सिद्ध होने के नाते इसको ब्राह्मण ही जानने का अधिकारी होता है, इसे बताते हैं।

अतः वेदाङ्गत्वादवश्यमध्येतव्यं द्विजैरेव उक्तम्।

ब्राह्मणपाठेऽधिकारः—

ब्राह्मणों को ही पढ़ने का अधिकार

[1]तस्माद् द्विजैरध्ययनीयमेतत्पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम्।
यो ज्योतिषं वेत्ति नरः स सम्यक् धर्मार्थकामान् लभते यशश्च ॥ १७ ॥

इस पुण्य जनक वेदाङ्ग रूप परम तत्त्वात्मक व रहस्यात्मक ज्योतिषशास्त्र पढ़ने का अधिकारी ब्राह्मण है। जो ब्राह्मण इस शास्त्र को जानने वाला है; वह अच्छी तरह से धर्म, अर्थ, काम और यश को प्राप्त करता है ॥ १७ ॥

वशिष्ठ जी के आधार पर भी

[2]वसिष्ठोपि—

अध्येतव्यं ब्राह्मणैरेव तस्मात् ज्योतिश्शास्त्रं पुण्यमेतद्रहस्यम्।
एतद्बुध्वा सम्यगाप्नोति यस्मादर्थं धर्मं मोक्षमग्र्यं यशश्च ॥ १८ ॥

वसिष्ठ मुनि ने भी कहा है कि इस श्रेष्ठ वेदाङ्गरूपी ज्योतिषशास्त्र को अच्छी तरह से ब्राह्मणों को पढ़ना चाहिये। क्योंकि इसके अध्ययन से विप्र धर्म, यश और मोक्ष को प्राप्त करने में समर्थ होता है ॥१८॥

आगे अब इस ज्योतिषशास्त्र की वेदाङ्ग में गणना होने के नाते शूद्रादि को पढ़ाना नहीं चाहिये इसे बताते हैं।

अथ वेदाङ्गत्वाच्छूद्राद्यध्ययने निषेधः

शूद्रादि को पढ़ाने में निषेध

उक्तं च—

स्नेहाद्वा लोभतो वापि शूद्रं पाठयति द्विजः।
स याति नरकं घोरं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ १९ ॥

जो ब्राह्मण प्रेम में बँधकर या लोभ में आकर किसी शूद्र के लिये इसे बताता है वह ब्राह्मण घनघोर नरक में तब तक निवास करता है जब तक सृष्टि रहती है ॥१९॥

[3]लग्नं ददाति यः शूद्रो सकृत्षोडशकर्मणाम्।
अधो युगसहस्राणि जायते श्वानयोनिषु ॥ २० ॥

जो शूद्र इस ज्योतिष शास्त्र को जानकर यदि सोलह संस्कारों में एक बार भी लग्न देता है अर्थात् शुभ मुहूर्त का उपदेश करता है वह एक हजार युग पर्यन्त कुत्ता योनि में निवास करता है ॥ २० ॥

---

१. सि० शि० म० का १२ श्लो०।
२. व० सं० १ प्र० ७ श्लो०।
३. मु० चिं० १ प्र० २ श्लो० पी० टी०।

[1]सम्यगाचारयुक्तोऽपि यः शूद्रः सर्वशास्त्रवित् ।
वर्जयेद्वचनं तस्य कपालस्थोदकं यथा ॥ २१ ॥

जो कि समस्त शास्त्रों का जानकार तथा सदाचरण से युक्त भी शूद्र वचन देता है उसकी वाणी का त्याग करना चाहिये । जैसे कपाल या यों समझिये कि खोपड़ो में रखे हुए जल का उपयोग नहीं होता है ॥ २१ ॥

विशेष—मुहूर्तचिन्तामणि १ प्र० २ श्लो० की पीयूषधारा टीका में 'स्नेहाल् लोभाच्च मोहाच्च यो विप्रोऽज्ञानतोऽपि वा । शूद्राणामुपदेशं तु दद्यात् स नरकं व्रजेत्' है ॥ १९-२१ ॥

अब आगे ज्योतिष शास्त्र का आदेश देने वाले ब्राह्मण की प्रशंसा की है । या यों समझिये कि ब्राह्मण ही इसका उपदेश करने का अधिकारी है ।

विप्रवाक्यप्रशंसा—

ब्राह्मण वचन की प्रशंसा

दुष्टो वापि विशिष्टो वा मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा ।
साक्षाद्विप्रः परं दैवं विप्रवाक्यं सदा शुचिः ॥ २२ ॥

यदि विप्रबालक दुष्ट, अशिष्ट, मूर्ख या पण्डित भी हो तो परम देवता होने के नाते उसके वचन पवित्र होते हैं । इससे ज्ञात होता है कि एक मात्र ब्राह्मण ही उपदेश का अधिकारी है ॥ २२ ॥

अब आगे याज्ञवल्क्य ऋषि के वचन से विद्या व धर्म के जो चौदह स्थान होते हैं उन्हें और मनु के मत से ६ स्थान होते हैं, उनका विवरण आगे स्पष्ट है ।

याज्ञवल्क्यः—

याज्ञवल्क्य के आधार पर

[2]पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ २३ ॥

याज्ञवल्क्य के कथन से पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र ६ वेदाङ्ग और चार वेद ये विद्या और धर्म के स्थान हैं ॥२३॥

[3]वृद्धमनुः—

वृद्ध मनु के आधार पर

वेदोपवेदवेदाङ्गमीमांसा वेदसंहिताः ।
पुराणानि च धर्मस्य स्थानान्याहुः षडेव हि ॥ २४ ॥

मनु ऋषि का कहना है कि १ वेद, २ उपवेद, ३ वेदाङ्ग, ४ मीमांसा, ५ वेद-संहिता और छठा पुराण ये षडङ्ग विद्या व धर्म के स्थान हैं ॥ २४ ॥

---

१. मु० चिं० १ प्र० २ श्लो० पी० टी० ।
२. ज्यो० नि० २ पृ० ४ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० २ पृ० ५ श्लो० ।

अब आगे इस ज्योतिष शास्त्र का किस हेतु से जन्म हुआ । या यों समझिये इसकी जगत में क्या आवश्यकता है, इसे बताते हैं ।

मनुः—

मनु के आधार पर ज्योतिष का प्रयोजन

[१]यज्ञाध्ययनसङ्क्रान्तिग्रहषोडशकर्मणाम् ।
प्रयोजनं च विज्ञेयं तत्तत्कालविनिर्णयम् ॥ २५ ॥

यज्ञ, पढ़ना, ग्रहों का संक्रमण और सोलह संस्कारों के समय का निर्णय इस शास्त्र से होता है । यही इसके निर्माण का मुख्य प्रयोजन ज्ञात होता है । क्योंकि काल का शुभाशुभ ही इस में वर्णित है ॥२५॥

अब आगे इस शास्त्र की प्रत्यक्षता को बताते हैं ।

[२]अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम् ।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ ॥ २६ ॥

ज्योतिष शास्त्र को छोड़कर समस्त शास्त्र अप्रत्यक्ष हैं और उनमें केवल विवाद मात्र है । इसमें सूर्य व चन्द्रमादि ग्रहण की प्रत्यक्ष होने से इसे प्रत्यक्ष शास्त्र कहा जाता है । ॥ २६ ॥

अनुभूतिप्रदं नाम ज्योतिषं शास्त्रमुत्तमम् ।
निगमान्निर्गतं लोके वन्द्यं विजयतेतराम् ॥ २७ ॥

विश्वास को देने से इस शास्त्र की अन्य शास्त्रों से उत्तमता वर्णित है । क्योंकि संसार में इसका निर्गमन वेद से हुआ है इसलिए यह सर्वोपरि शास्त्र माना जाता है ॥ २७ ॥

मूलसूत्रे—

मूलसूत्र के आधार पर

[३]यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्ध्न्यवस्थितम् ॥ २८ ॥

मूलसूत्र में कहा है कि जैसे मोरों की चुटिया और सर्पों की मणि मस्तक पर होती है उसी प्रकार षडङ्गों में ज्योतिष शास्त्र ऊपर है अर्थात् श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥

[४]ज्योतिषे ग्रहणं सारं गारुडे विषभक्षणम् ।
शैवे घटवती दीक्षा कौलवे ग्रहनिग्रहौ ॥ २९ ॥

---

१. ज्यो० नि० २ पृ० १३ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० २ पृ० २१ श्लो० ।
३. मु० चि० १ प्र० २ श्लो० पी० टी० ।
४. ज्यो० नि० २ पृ० २३ श्लो० ।

इस शास्त्र में प्रत्यक्ष विश्वास दिलाने वाला ग्रहण, गारुड शास्त्र में विष (जहर) भक्षण, शैव सम्प्रदाय में घटवती दीक्षा और कौल शास्त्र में ग्रह निग्रह प्रत्यक्ष प्रतीति दायक हैं ॥ २६ ॥

आगे मन्वर्थमुक्तावली नामक ग्रन्थ के पक्ष से चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रमादि समस्त पदार्थों का ज्ञान वेद से होता है, इसे बताते हैं।

मन्वर्थमुक्तावल्याम्—

[1]चातुर्वर्ण्यास्त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति ॥ ३० ॥

[2]पितृदेवमनुष्याणां वेदचक्षुः सनातनम्।
तच्चक्षुर्ज्योतिषं शास्त्रं दिव्यं ज्ञानमतीन्द्रियम् ॥ ३१ ॥

दिव्यं ज्ञानमिदं विप्रैः श्रौतस्मार्तक्रियापरैः।
वेदवत्पठनीयं हि कर्मपाकप्रकाशकैः ॥ ३२ ॥

आगे अब इस शास्त्र का कौन अनधिकारी है या यों समझिये इसे किसको नहीं बताना चाहिए इसे बतलाते हैं।

[3]धूर्तदुर्जनदुर्द्वेषिकृतघ्नानां कदाचन।
न प्रकाश्यमिदं शास्त्रं रहस्यं केवलं यतः ॥ ३३ ॥

[4]गारुडे भूतवादे च ज्योतिषे वैद्यके तथा।
कारणं प्रत्ययस्तत्र न तु शब्दविचारणा ॥ ३४ ॥

मन्वर्थमुक्तावली में वर्णित है कि चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, अतीत, वर्तमान और भविष्य ये सब वेद से सिद्ध होते हैं। पितर, देवता और मनुष्यों का सनातन वेद आँख हैं और वेद का नेत्र स्वरूप, अतीन्द्रिय, दिव्यज्ञान ज्योतिष शास्त्र है। इस शास्त्र का वेद की तरह श्रुति, स्मृति, प्रतिपादित कार्यों में तल्लीन कर्मदशा कहने वाले ब्राह्मणों को अध्ययन करना चाहिए ॥ ३०-३२" ॥

ठग, दुष्ट, बुरा, द्वेष करनेवाला और कृतघ्न को इस शास्त्र का उपदेश इसलिए नहीं करना चाहिए कि यह रहस्यमय शास्त्र है ॥ ३३" ॥

समरसार में कहा है—'नैतद्देयं दुर्विनीताय जातु ज्ञानं गुप्तं तद्धि सम्यक्फलाय। अस्थाने हि स्थाप्यमानैव वाचां देवी कोपान्निर्दहेन्नो चिराय' (४ श्लो०)

---

१. ज्यो० नि० ३ पृ० २७ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ३ पृ० २८-२६ श्लो०।
३. ज्यो० नि० १ पृ० ६ श्लो०।
४. ज्यो० नि० २ पृ० २२ श्लो०।

तथा सिद्धान्तशिरोमणि में भी—'नैतद्द्वेषिकृतघ्नदुर्जनदुराचाराचिरावासिनां, स्यादायुः सुकृतक्षयो मुनिकृतां सीमामिमामुज्झतः' (गो० छे० ६ श्लो०)

गारुड, भूतवाद, ज्योतिष और वैद्यक में विश्वास ही कारण है। इनमें शब्द का विचार नहीं है ॥ ३४ ॥

पितामहः—

पितामह के आधार पर

[1]पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदचिकित्सितम्।
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ॥ ३५ ॥

पितामह जी ने बताया है कि पुराण, मनु, धर्म, साङ्गवेद और आयुर्वेद ये चारों आज्ञासिद्ध हैं। इसलिए किसी कारण वश इनका हनन नहीं करना चाहिए ॥ ३५ ॥

विशेष—यहाँ पर ग्रन्थ में—'पुराणं नवमो धर्मः' यह पाठ दिया है जो उचित नहीं है। क्योंकि इसका अर्थ ठीक नहीं होता है और ग्रन्थान्तर में भी यह पाठ नहीं मिलता है ॥ ३५ ॥

वराहः—

वराहमिहिर के आधार पर दैवज्ञ का लक्षण

[2](मुनि) विरचितमिदमेतद्यच्चिरन्तनेनाधुनिककृत्यम्।
[3]तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः ॥ ३६ ॥

जो कि प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रतिपादित है वही यथार्थ है, और मनुष्यों के द्वारा वर्णित यथार्थ नहीं है, ऐसा भी कहना उचित नहीं है। क्योंकि मन्त्रात्मक से भिन्न शास्त्र में अर्थ की तुल्यता रहने से केवल अक्षर मात्र का भेद रहने पर क्या विशेषता हो सकती है अर्थात् कुछ भी नहीं ॥ ३६ ॥

विशेष—ग्रन्थ में यह पद्य इस प्रकार से है 'विरचितमिदमेतद्यच्चिरन्तनेनाधुनाधुनिककृत्यम्। तुल्येर्थेक्षरभेदो दमात्रके का विशेषोक्तिः' (१अ० ३ श्लो०) ॥ ३६ ॥

[4]धरणिसुतदिवसवारो न शुभकृदिति यत्पितामहेनोक्तम्।
कुजदिनमनिष्टमिति वा कोऽत्र विशेषो नृदिव्यकृतेः ॥ ३७ ॥

जैसे ब्रह्माजी के रचित ग्रन्थ में 'धरणिसुतदिवसवारो न शुभः' और मनुष्यकृत ग्रन्थ में 'कुजदिनमनिष्टम्' ऐसा लिखा है। इन दोनों का अर्थ तो एक ही है, केवल अक्षरों का ही भेद है। मनुष्य कृत से मुनिकृत में क्या विशेषता है, अर्थात् कुछ भी नहीं है ॥ ३७ ॥

---

१. ज्यो० नि० ३ पृ० २४ श्लो०।
२. बृ० सं० १ अ० ३ श्लो०।
३. तुल्येर्थेक्षरभेदोदमात्रके ग्र० पा०।
४. बृ० सं० १ अ० ४ श्लो०।

आर्ष्टिषेणिः—

आर्ष्टिषेणि के आधार पर

[1]यथा क्षारादिसन्तापैर्हेम्नोऽधिकतरद्युतिः ।
तथैव नूतनोपायैः शास्त्रं निर्मलतां व्रजेत् ॥ ३८ ॥

आर्ष्टिषेणि मुनि का वचन है कि जैसे सुहागादि से सोने को तपाने पर अधिकतर चमक आ जाती है। वैसे ही नवीन उपायों से शास्त्र निर्मल होता है ॥ ३८ ॥

[2]भो वुधाधुनिकविप्रनिर्मितं शास्त्रमेतदिति मावजीगणः ।
केवलं तु कृत एव सूरिभिर्भाषितस्य मथितार्थसंग्रहः ॥ ३९ ॥

अजी पंडितजी महाराज यह आधुनिक विद्वान् का निर्मित है ऐसा मन में विश्वास मत करो। यह तो केवल मुनियों द्वारा प्रसिद्ध कथित का ही सङ्ग्रह है ॥ ३९ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे वृहद्दैवज्ञरञ्जने ज्योतिषशास्त्र-प्रशंसा नाम प्रथमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक सङ्ग्रह ग्रन्थ का प्रथम प्रकरण समाप्त हुआ ॥१॥

इति श्री मथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधरचतुर्वेदकृता वृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्यादिमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥१॥

---

१. ज्यो० नि० २ पृ० १७ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ३ पृ० २६ श्लो० ।

अथ दैवज्ञलक्षणं नाम द्वितीयं प्रकरणम्

अब आगे इस दूसरे प्रकरण में दैवज्ञ के लक्षण अर्थात् दैवज्ञ नाम किसका होता है या यों समझिए कि दैवज्ञ नाम से कौन पुकारा जाता है या इस नाम का अधिकारी कौन होता है या किन-किन पदार्थों का जानकार — दैवज्ञ होता है। तथा दैवज्ञ का क्या लक्षण है और इसमें क्या-क्या दोष होता है, एवं यह प्रशंसनीय क्यों होता है अर्थात् जनसमुदाय में इसकी प्रतिष्ठा किस लिए होती है। इन समस्त बातों का विवेचन पाठक आगे चलकर स्वयं ही पढ़ेंगे।

नारदः—

दैवज्ञ का लक्षण नारदमुनि के वाक्य से

स्कन्धत्रयात्मकं शास्त्रमाद्यं सिद्धान्तसंज्ञकम्।
द्वितीयं जातकं स्कन्धं तृतीयं संहिताह्वयम् ॥ १ ॥
[1]त्रिस्कन्धज्ञो दर्शनीयः श्रौतस्मार्तक्रियापरः।
निर्दाम्भिकः सत्यवादी दैवज्ञो दैववित्स्थिरः ॥ २ ॥

नारद ऋषि का कहना है कि यह ज्योतिष विद्या तीनों भागों में विभक्त है। इसके प्रथम भाग को सिद्धान्त, दूसरे स्कन्ध को जातक, तीसरे स्कन्ध को संहिता नाम से पुकारा जाता है। इन उक्त तीनों स्कन्धों को जो अच्छी तरह जानता है तथा देखने में स्वरूप से (सुन्दर), श्रुति (वेद स्मृति) (धर्मशास्त्र) प्रतिपादित कार्यों का करने वाला, अहङ्कार से रहित, सच बोलनेवाला, स्थिरात्मा और नियमों का ज्ञाता दैवज्ञ होता है ॥ १-२ ॥

अत्रिः—

अब आगे अत्रि ऋषि के वचन से दैवज्ञ के लक्षणों को बताते हैं।

शान्तो विनीतः शुद्धात्मा देवब्राह्मणपूजकः।
विमुखः परनिन्दासु वेदपाठी जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥
देवताराधनासक्तः स्वरशास्त्रविशारदः।
सिद्धान्तसंहितावेत्ता जातके च कृतश्रमः ॥ ४ ॥
प्रश्नज्ञः शकुनज्ञश्च प्रशस्तो गणकः स्मृतः।
प्रमाणं वचनं तस्य भवत्येव न संशयः ॥ ५ ॥

अत्रि मुनि का कहना है कि शान्त चित्त, नम्रता से युक्त, विशुद्ध अन्तःकरण वाला, देवता व ब्राह्मणों की पूजा करने वाला, पराई निन्दा से पृथक्, वेद पढ़ने

---

1. ज्यो० नि० ३ पृ० १ श्लो०।

वाला, इन्द्रियों को वश में करनेवाला, देव पूजा में लीन, स्वरशास्त्र में निपुण, सिद्धान्त व संहिता का जानकार, जातकशास्त्र में परिपूर्ण, प्रश्न एवं शकुन शास्त्र का ज्ञाता, प्रसिद्ध गणक या ज्योतिषी वा दैवज्ञ होता है ।।३–५।।

विशेष—यहाँ पर यह जानने की इच्छा होती है कि दैवज्ञ शब्द किस रीति से निष्पन्न होता है । इसका उत्तर यह है कि 'दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः' इस वाक्य से देव से प्राप्त को या भाग्य से प्राप्त होने वाले को या पूर्वार्जित शुभाशुभ को जो जानता है या यों समझिये संवत् का जानने वाला या ज्योतिष शास्त्र का अच्छी रीति से जानने वाला दैवज्ञ या गणक होता है ।।३–५।।

[1]कौमुद्याम्—

आगे अब कौमुदी नामक ग्रन्थ में वर्णित दैवज्ञ के लक्षण को बताते हैं ।

व्यक्ताङ्गः फलकालवित्सुकृतवान् पूर्वापरस्मारकः
पाटीकुट्टकबीजशास्त्रकुशलः सिद्धान्तवित्प्राञ्जलिः ।
भिन्नाभिन्नसवर्णनानुगुणने भूयो महानुद्यमी
धीकोटयादिरहस्यवित्स गणकः श्लाघ्यो विदां संसदि ॥ ६ ॥

कौमुदी में कहा है कि व्यक्त शरीरावयव वाला, फल समय का वेत्ता, पुण्यवान्, आगे पीछे का ख्याल करने वाला, पाटी, कुट्टक व बीज गणित शास्त्र में निपुण, सिद्धान्त ज्योतिष का सुन्दर जानने वाला, भिन्न, अभिन्न, सवर्णन, गुणन में बार २ बड़ा उद्योगी, धीकोटयादि ग्रन्थों के रहस्य को जानने वाला विद्वत्समाज में प्रशंसा करने के योग्य होता है ।।६।।

विशेष—दैवज्ञ कौन होता है इसके विषय में वृहत्संहिता में जो बताया है अर्थात् दैवज्ञ का क्या लक्षण होता है । इसे पाठकों की जानकारी के लिये यहाँ बताया जा रहा है ।

वृहत्संहिता में कहा है कि सौर, सावन, नाक्षत्र, चान्द्र इन चारों मास मानों को और अधिक मास, क्षयमास इनकी उत्पत्ति कारणों को जानने वाला सौर सूर्य के एक अंश भोग्यकाल को एक सौर दिन, सूर्योदय से अग्रिम सूर्योदय तक एक सावन दिन, नक्षत्रोदय से नक्षत्रोदय काल तक एक नाक्षत्र दिन और एक तिथि भोग काल को चान्द्रदिन कहते हैं ।

प्रभव आदि साठ संवत्, तदन्तर्गत, युग, वर्ष, मास, दिन, होरा इनके स्वामियों का प्रवर्तन और निवृत्ति का जानने वाला, अनेक शास्त्रों में वर्णित सौर आदि मानों में यथार्थ व अयथार्थ का विचार करने में चतुर, सिद्धान्तों में सौर आदि मानों के भेद, अप निवृत्ति भेद, सम मण्डल प्रवेश कालिक अंशों के भेद और छाया जल यन्त्र से दृग्गणितैक्य इनको जानने में चतुर, सूर्यादि ग्रहों के शीघ्र, मन्द, दक्षिण, उत्तर,

---

१. ज्यो० नि० ३ पृ० २ श्लो० ।

नीच और उच्च गतियों के कारणों को जानने में निपुण, सूर्य चन्द्र के ग्रहण में स्पर्श, मोक्ष, इनके दिग्ज्ञान, स्थिति, विभेद, वर्ण, देश, भावी ग्रह समागम व ग्रह संग्राम का कहने वाला, प्रत्येक ग्रहों के योजनात्मक कक्षा प्रमाण व प्रत्येक देशों का योजनात्मक देशान्तर जानने में कुशल, भूमि, नक्षत्रों के भ्रमण तथा संस्थान, अक्षांश, लम्बांश, द्युज्या चापांश, चरखण्ड, राश्युदय, छाया, नाडी, करण आदि के क्षेत्र, काल और करण को जानने वाला, कसौटी, आग और शाण से परीक्षित शुद्ध सुवर्ण की भांति अतिशय स्वच्छ शास्त्र का वक्ता, अनेक प्रकार के सयुक्तिक प्रश्न भेदों को जानने से निश्चयात्मक ज्ञान वाला दैवज्ञ होता है। (बृ० सं० २ अ० ४–१२ श्लोक) ॥ ६ ॥

अभी-अभी आप ज्ञात कर चुके हैं कि उक्त लक्षणों से युक्त ही दैवज्ञ या ज्योतिषी होता है। आगे अब यह बताया जाता है कि उसमें ये ये बातें नहीं होनी चाहिये। या यों समझिये कि दैवज्ञ के ये दोष हैं अर्थात् इनके रहने पर दैवज्ञ नहीं हो सकता है।

अथ दैवज्ञदोषाः—

दैवज्ञ दोष का ज्ञान

विश्रुतो विधनो लुब्धः कुचैलः कर्कशः शठः।
कुष्ठी च बधिरश्चान्धः पङ्गुर्निष्ठुरभाषकः ॥ ७ ॥
बन्धुद्विट् वकवृत्तिश्च सदाचारविवर्जितः।
कृतादेशो न सर्वत्र प्रष्टव्यो नैव दैववित् ॥ ८ ॥

शास्त्रहीन, दरिद्री, लोभी, दूषित (मैले कुचैले) वस्त्रधारी, कठोर, धूर्त, कोढ़ी, बहिरा, अन्धा, लँगड़ा, बुरा बोलने वाला, कुटुम्बियों का विरोधी, बगला की वृत्ति वाला, अच्छे आचरणों से हीन यदि दैवज्ञत्व का अभिमान करता हो तो उससे कहीं भी कुछ भी नहीं पूछना चाहिये। क्योंकि इन दोषों से युक्त होने के नाते वह दैवज्ञ नहीं होता है ॥ ७–८ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है, हिंसादम्भानृतस्तेयद्विष्टानिष्टविवर्जितम्। नरेन्द्रहितमक्रोधं श्रेष्ठं कालविदं विदुः ॥ ७–८ ॥

आगे अब दैवज्ञ प्रशंसनीय होता है तथा इसके न रहने पर क्या-क्या कठिनाई होती है व इस शास्त्र का ज्ञाता स्वर्ग प्राप्ति करके नरकों से छुटकारा पाता है एवं साथ-साथ जनता का भला उनके शुभाशुभ को बताकर करता है।

[1]वराहः—

वराह के आधार पर

अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः।
तथा सांवत्सरो लोके भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि ॥ ९ ॥

आचार्य वाराह ने कहा है कि जैसे रात्रि दीपक के बिना तथा आकाश सूर्य रहित होने पर सुशोभित नहीं होता, उसी प्रकार राजा भी बिना ज्योतिषी के भवाटवी में अन्धे की भाँति घूमता ही रहता है ॥ ९ ॥

---

१. बृ० सं० २ अ० २४ श्लो०।

गुरुः—

गुरु के आधार पर

दैवज्ञो दैववत्पूज्यो सर्वकार्येषु वृत्रहन् ।
यो दैवज्ञमनुज्ञाय किमु कुर्यात्स नश्यति ॥ १० ॥

वृहस्पति का कहना है कि देवता की तरह समस्त कार्यों में दैवज्ञ की पूँजा करनी चाहिये । जो दैवज्ञ का तिरस्कार करके कार्य करता है वह मनुष्य नाश को प्राप्त होता है ॥१०॥

दैवं पुरस्कृतं कर्म भवेदुत्सवमैहिकम् ।
दैवज्ञस्थितिमन्याय पृष्टं नाशनमिच्छति ।
तस्मात्संपूज्य दैवज्ञं श्रुत्वा कुर्यात्सदा क्रियाम् ॥ ११ ॥

दैवज्ञ के द्वारा उपदिष्ट कार्य यहाँ पर उत्सव के रूप में होता है । अर्थात् सकुशल कार्य की समाप्ति अनायास से ही हो जाती है । एवं जो ज्योतिषी का अपमान करके या अन्याय से पूँछ कर कार्यारम्भ करता है वह नष्ट होता है । इसलिये दैवज्ञ की पूँजा करके उसके आदेश को जान कर सर्वदा कार्य करना चाहिये ॥११॥

वराहः—

वराह के आधार पर

[1]नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता ।
चक्षुर्भूतो हि यत्रैषां पापं तत्र न विद्यते ॥ १२ ॥

आचार्य वराह ने कहा है कि यदि ऐश्वर्य की निरन्तर वृद्धि करनी हो तो जिस स्थान पर दैवज्ञ हो वहीं निवास करना चाहिये । अर्थात् जिस नगर ग्रामादि में ज्योतिषी न हो वहाँ पर निवास नहीं करना चाहिये । क्योंकि ज्योतिषी जिस स्थान पर रहता है वहाँ पर पाप की सत्ता का अभाव होता है ॥१२॥

अन्य भी जो दैवज्ञ की प्रशंसा में बताया है अब उसे बतलाते हैं ।

[2]ग्रन्थतश्चार्थतश्चैव कृत्स्नं जानाति यो द्विजः ।
अग्रभुक्स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पंक्तिपावनः ॥ १३ ॥

जो द्विज ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी सम्पूर्ण शब्दार्थ को जानता है वह श्राद्ध में सर्वप्रथम भोजन कराने के लायक, पंक्ति को पवित्र करने वाला समादरणीय होता है ॥१३॥

---

१. बृ० सं० २ अ० २७ श्लो० ।
२. बृ० सं० २ अ० २६ श्लो० ।

राजा के पास रहने योग्य दैवज्ञ

[१]यस्तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः।
अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा ॥ १४ ॥

जय की इच्छा करने वाले राजा को होरा, गणित, संहिता इन तीनों स्कन्धों को अच्छी तरह जानने वाले दैवज्ञों की पूँजा करनी चाहिये और उनकी आज्ञा का पालन भी करना चाहिये ॥१४॥

दैवज्ञ की अन्य प्रशंसा

[२]न सांवत्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते।
ब्रह्मलोकप्रतिष्ठां च लभते दैवचिन्तकः ॥ १५ ॥
[३]न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां च चतुर्गुणम्।
करोति देशकालज्ञो यथैको दैवचिन्तकः ॥ १६ ।

ज्योतिषशास्त्र को पढ़ने और पढ़ाने वाला मनुष्य नरक में नहीं जाता तथा ज्योतिष शास्त्र का चिन्तन करने वाला पुरुष ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ॥१५॥

देश काल को जानने वाला एक दैवज्ञ जो काम करता है, वह हजार हाथी और चार हजार घोड़े नहीं कर सकते हैं ॥१६॥

आप्त ज्योतिषी की प्रशंसा

[४]न तथेच्छति भूपतेः पिता जननी वा स्वजनोऽथ वा सुहृत्।
स्वयशोऽभिविवृद्धये यथा हितमाप्तः सबलस्य दैववित् ॥ १७ ॥

अपना यश बढ़ाने के लिये ज्योतिषी जिस तरह राजा का शुभ सोचता है उस तरह उसके माता, पिता, स्वजन और मित्र भी अच्छाई की ओर अग्रसर नहीं होते हैं ॥१७॥

अन्य प्रशंसा

[५]मुहूर्ततिथिनक्षत्रमृतवश्चायनं तथा।
[६]अरण्ये व्याकुलानि स्युर्न स्यात्सांवत्सरो यदि ॥ १८ ॥
[७]तस्माद्राज्ञाधिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरोऽग्रणीः।
जयं यशः श्रियं भोगान् श्रेयश्च समभीप्सता ॥ १९ ॥

---

१. बृ० सं० २ अ० ३६ श्लो०।
२. बृ० सं० २ अ० २८ श्लो०।
३. बृ० सं० २ अ० ३७ श्लो०।
४. बृ० सं० २ अ० ३९ श्लो०।
५. बृ० सं० २ अ० २५ श्लो०।
६. सर्वाण्येवाकुलानि।
७. बृ० सं० २ अ० २६ श्लो०।

यदि ज्योतिषी न हो तो मुहूर्त, तिथि, नक्षत्र, ऋतु, अयन आदि सब विषय उलट-पलट हो जाते हैं ॥१८॥

इसलिए जय, यश, श्री, भोग और मङ्गल की इच्छा करने वाले राजा को चाहिये कि विद्वान्, श्रेष्ठ ज्योतिषी के पास जाकर अपना भविष्य पूछे ॥१९॥

गर्गः—

गर्ग के आधार पर

[1]कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं होरागणितनैष्ठिकम् ।
यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति ॥ २० ॥
[2]वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहाः ।
अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम् ॥ २१ ॥
[3]म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम् ।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः ॥ २२ ॥

आचार्य गर्ग ने कहा है कि जो राजा समस्त प्रकार से कुशल, होरा शास्त्र और गणित में प्रवीण ज्योतिषी की पूँजा नहीं करता वह विनाश को प्राप्त करता है ॥२०॥

विशेष—उपाङ्ग किसे कहते हैं 'अधिकृत्य ग्रहर्क्ष्यादि जगतो येन निश्चयः । तदङ्गमुत्तमं विन्द्यादुपाङ्ग शेषमुच्यते' (बृ० सं० २ अ० २२ श्लो० भट्टो०)।२०॥

वन में रहने वाले, ममता से हीन और किसी से कुछ भी न लेने की इच्छा वाले पुरुष भी ग्रह, नक्षत्र आदि को जानने वाले दैवज्ञ से पूँछते हैं ॥२१॥

जिन म्लेच्छ यवनों के पास यह ज्योतिष शास्त्र रहता है वे भी जब मुनियों की तरह पूजित होते हैं, तो दैवज्ञ ब्राह्मण की क्या बात अर्थात् उनकी पूँजा तो निश्चित होती है ॥२२॥

ज्योतिषे ताजिकाचार्या उक्ताः ।

अब आगे इस शास्त्र में कुछ ताजिक आचार्य हुए हैं । उनके नाम बताते हैं । यहाँ यह प्रश्न सामने आता है कि ताजिक क्या । उत्तर में प्रथम प्रकरण में बतला चुके हैं कि ब्रह्माजी ने जिसका उपदेश सूर्य के लिए किया और सूर्य ने यवन से कहा एवं यवनों ने जिसका प्रतिपादन किया वह ताजिक है ।

हायनरत्न नामक ग्रन्थ में वर्णित है कि यवनाचार्यजी द्वारा पारसीक भाषा में निर्मित ज्योतिषशास्त्र के एक अङ्ग स्वरूप १ वर्ष में आने वाले सुख दुःखों का अनेक

---

१. बृ० सं० २ अ० २२ श्लो० ।
२. बृ० सं० २ अ० २३ श्लो० ।
३. बृ० सं० २ अ० ३० श्लो०

प्रकार से विवेचन जिसमें हो वही ताजिक नाम से कहा जाता है। यवनाचार्यों के अनन्तर अन्य लोगों ने संस्कृत में रचना पारसीक शब्दों के साथ जो की वह भी ताजिक शब्द में लोक में प्रसिद्ध है। प्रायः ये समस्त ग्रन्थ वर्ष पद्धति के ही प्राप्त होते हैं।

टोडरानन्दे—

खतः खुतो रोमकश्च हिल्लाजो धिषणाह्वयः।
दुर्मुखाचार्य इत्येते ताजिकस्य प्रवर्तकाः ॥ २३ ॥

टोडरानन्द में कहा है कि खत, खुत, रोमक, हिल्लाज, धिषण, दुर्मुखाचार्य ये ताजिक शास्त्र के प्रवर्तक हुए हैं ॥२३॥

अथ नक्षत्रसूचिलक्षणम्—

अब आगे नक्षत्रसूची संज्ञक ज्योतिषी का लक्षण एवं उसके कहे हुए को अमान्य करना यह बताते हैं।

[1]तिथ्युत्पत्तिं न जानन्ति ग्रहाणां नैव साधनम्।
परवाक्येन वर्तन्ते ते वै नक्षत्रसूचकाः ॥ २४ ॥

जो ज्योतिषी तिथि की उत्पत्ति अर्थात् आनयनविधि नहीं जानता है तथा ग्रहों के स्पष्टीकरण को भी नहीं जानता है किन्तु पञ्चाङ्ग के बल पर फलादेश करता है। या यों समझिये विना गणित की क्षेत्रभङ्गी समझकर गणित क्रिया करके फलादेश करता है, वह नक्षत्रसूची होता है।

अथवा बिना आहूत ही घर में जाकर जो नक्षत्रों के बल पर सूचना देता है वह नक्षत्रसूची होता है ॥२४॥

अन्य नक्षत्रसूची का लक्षण

[2]अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते।
स पङ्क्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ॥ २५ ॥

जो मनुष्य ज्योतिष शास्त्र को बिना समझे अपने आपको दैवज्ञ कह कर व्रत उपवास आदि को बताता है उस पंक्तिदूषक पापी को नक्षत्रसूची जानना चाहिये ॥२५॥

अब आगे स्कन्धों के ज्ञान से पाप निवृत्ति होती है। या यों समझिये सिद्धान्त को जानने वाला कितने दिन के पापों को दर्शन से नष्ट करता है तथा अन्य अङ्गों का भी कितने दिन के पाप को विनाश करता है।

---

१. मु० चिं० १ प्र० २ श्लोक पी० टी०।
२. बृ० सं० २ अ० ३२ श्लो०।

[1]दशदिनकृतपापं हन्ति सिद्धान्तवेत्ता त्रिदिनजनितदोषं तन्त्रविद्दृष्ट एव।
करणभगणवेत्ता हन्त्यहोरात्रदोषं जनयति घनमंहस्तत्र नक्षत्रसूचो॥ २६॥

दश दिन के पाप को सिद्धान्तवेत्ता, तन्त्र का ज्ञाता तीन दिन के और करण-भगण का जानकार एक दिन के पाप को समुच्छेद करता है। किन्तु नक्षत्रसूची के दर्शन से पाप की वृद्धि होती है॥२६॥

विशेष—'त्रविज्ञः स एव' यह प्र० बृ० सं० में है॥ २६॥

[2]वसिष्ठः—

वसिष्ठजी के आधार पर

त्रिस्कन्धपारङ्गम एव पूज्यः श्राद्धे सदा भूसुरवृन्दमध्ये।
नक्षत्रसूची खलु पापरूपो हेयः सदा सर्वसुधर्मकृत्ये॥ २७॥

ऋषि वसिष्ठ ने भी कहा है कि ज्योतिष के तीनों स्कन्धों को अच्छी तरह जानने वाला ब्राह्मणों के समुदाय में सदा पूजनीय होता है। तथा समस्त धर्म के कामों में पापस्वरूप नक्षत्रसूचक ज्योतिषी का त्याग करना चाहिये॥२७॥

नक्षत्रसूचकों की निन्दा

[3]नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति यः।
स व्रजत्यन्धतामिस्रं सार्द्धमृक्षं विडंविना॥ २८॥

नक्षत्रसूचक द्वारा बताये गये व्रत उपवास आदि को जो मनुष्य करता है वह उस नक्षत्रसूची के साथ अन्धतामिस्र नामक नरक में जाता है॥२८॥

ब्रह्मघाती का लक्षण

ज्योतिषं गारुडं चैव धर्मशास्त्रं चिकित्सितम्।
विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥ २९॥

ज्योतिष-गारुड़-धर्मशास्त्र और आयुर्वेद शास्त्र को अच्छी तरह न समझ कर जो आदेश करता है वह ब्रह्मघाती नाम से प्रसिद्ध होता है॥२९॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने
दैवज्ञादिलक्षणं नाम द्वितीयं प्रकरणं समाप्तम्॥ २॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-कृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्थद्वितीयप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा।

---

१. मु० चि० १ प्र० २ श्लोक पी० टी०।
२. वसि० सं० १ अ० १० श्लो०।
३. बृ० सं० २ अ० ३३ श्लो०।

अथ कालादिमानं नाम तृतीयं प्रकरणम् ।

अब आगे तीसरे प्रकरण में काल के मान की या यों समझिये काल या समय किसे कहते हैं । यह कितने प्रकार का होता है इत्यादि बातें आप इसमें जान सकेंगे कि काल की अनन्तता कैसे है तथा इस संसार में व्यवहार किन किन मानों से होता है ।

तच्च कालादिमानज्ञानं सूर्यसिद्धान्ते—

[१]शृणुष्वैकमनाः पूर्वं यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम् ।
युगे युगे महर्षीणां स्वयमेव विवस्वता ॥ १ ॥

उस कालादि मान को सूर्यसिद्धान्त में कहा है कि जब मयासुर की तपस्या से सूर्य भगवान् प्रसन्न हुए तो स्वाभीप्सित वर प्रदान करने को आये और कहा कि मेरा तेज तो कोई सहन नहीं कर सकता है और मुझे समय भी नहीं है अर्थात् मैं यहाँ अधिक समय स्थित भी नहीं हो सकता क्योंकि संसार का प्रकाशक भी मैं ही हूँ । इसलिए यह मेरे अंश से उत्पन्न पुरुष तुम्हें समस्त ज्योतिष ज्ञान का उपदेश देगा । इतना कह कर भगवान् भास्कर चले गये, तब उस पुरुष ने अर्थात् सूर्यांश पुरुष ने उस मयासुर से कहा कि हे मयासुर तुम समस्त विषयान्तरों से मन को हटाकर केवल मेरे कथन में ही मन को लगाओ क्योंकि यह शास्त्र उत्तम है । इसका श्रवण दत्तचित्त से करो । यह मैं अपनी बुद्धि से नहीं कह रहा हूँ । इसको प्रति युग में स्वयं सूर्य भगवान् ने कहा है । वही मैं तुम्हें सुना रहा हूँ ॥१॥

[२]शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः ।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलः ॥ २ ॥

मैं जो तुम्हें यह बता रहा हूं वही आद्य शास्त्र पहले ऋषियों से सूर्य भगवान् ने कहा है । युगों के परिवर्तन से केवल समय का भेद है । अन्य नहीं ॥२॥

अब आगे काल के भेदों का विवेचन सूर्य सिद्धान्त के वचनों से बताते हैं । या यों समझिये कि हम काल का विभाजन कैसे करते हैं इसे बताते है ।

काल (समय) भेद

[३]भूतानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः ।
स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते ॥ ३ ॥

---

१. सू० सि० १ अ० ८ श्लो० ।
२. सू० सि० १ अ० ९२ श्लो० ।
३. सू० सि० १ अ० १० श्लो० ।

सूर्यसिद्धान्त में कहा है कि समय दो प्रकार का होता है। एक तो वह जो संसार का अन्त करने वाला अर्थात् प्रलयकालीन और दूसरा काल व्यवहार में गणना के उपयोग में जो आता है। यह दूसरा भी समय स्थूल व सूक्ष्म नाम से दो प्रकार का है। एक मूर्त तथा दूसरा अमूर्त या सूक्ष्म, मूर्त अर्थात् स्थूल काल व्यवहार में गिनने के उपयुक्त है और सूक्ष्म गणना में अनुपयुक्त है ॥ ३ ॥

प्राणादिकथितो मूर्तस्त्र्युटचाद्योऽमूर्तसंज्ञकः ।
सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिरित्यभिधीयते ॥ ४ ॥

तत्षष्ट्या च भवेद्रेणुः रेणुषष्ट्या लवं स्मृतम् ।
तत्षष्ट्या लेशकं प्रोक्तं तत्षष्ट्या प्राणमुच्यते ॥ ५ ॥

षष्टिप्राणैर्विनाडी स्यात्तत्षष्ट्या नाडिका स्मृता ।
नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम्[1] ॥ ६ ॥

प्राणादि मूर्त काल है अर्थात् सुख से वैठे हुए स्वस्थ पुरुष की एक श्वासोच्छास में जो समय लगता है उसे प्राण या असु शब्द से लोक मे व्यवहार करते हैं। और त्रुट्यादि अमूर्त संज्ञक काल होता है। सुई से कमल के पत्ते में छेद करने पर जितना समय लगता है, उसे त्रुटि नाम से संसार में पुकारते हैं। तथा ६० त्रुटि का एक रेणु, ६० रेणु का एक लव, ६० लव का १ लेशक, ६० लेशक का एक प्राण होता है और ६० प्राण का एक पल, ६० पल=एक घटी तथा ६० घटी का नाक्षत्र दिन होता है ॥४-६॥

ज्योतिर्विदाभरणे—

अब आगे ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ के वाक्य से समय विभाजन को बताते हैं।

गुर्वक्षराणामुदितं च षष्ट्या पलं पलानां घटिका किलैका ।
षष्ट्या घटीनां भदिनं तथार्यैस्तिथ्यैकया चन्द्रमसो दिनं स्यात् ॥ ७ ॥

खरमरीच्युदयद्वयजान्तरं यदिह सावनसंज्ञदिनं भवेत् ।
प्रतिदिनं स्फुटभुक्तिमितिः सदा खरगभस्तिदिनं विबुधैः स्मृतम् ॥ ८ ॥

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है कि दस गुरू अक्षरों के बोलने में जितना काल लगता है वह एक असु (प्राण) के बराबर होता है। ६ प्राण बराबर एक पल होता है। अर्थात् ६० गुरु अक्षरों का एक पल और ६० पल=एक नाडी या घटी होती है तथा ६० घटी का एक नाक्षत्र अहोरात्र होता है। एक तिथि का भोगकाल=चान्द्रदिन, दो सूर्योदय के मध्य का काल सावन दिन नाम से व्यवहार में आता है। दो दिन के स्पष्ट सूर्यों का अन्तर स्पष्टगति प्रतिदिन की होती है ॥७–८॥

---

१. सू० सि० १ अ० ११-१२ श्लो०।

भगवान् गार्ग्य ने कहा है 'अक्षिक्षेपरिक्षेपो निमेषः परिकीर्तितः। द्वौ निमेषौ त्रुटिर्नाम द्वे त्रुटिस्तु लवः स्मृतः। द्वौ लवौ क्षण इत्युक्तः काष्ठा प्रोक्ता दशक्षणः। त्रिंशत्काष्ठा कला प्रोक्ता कलात्रिंशन्मुहूर्तकः। ते त्रिंशदहोरात्र इत्याह भगवान् हरः' (सि० शि० का० १६ श्लो० वासनावा०) ॥७–८॥

तथा वृद्धवसिष्ठसिद्धान्त में 'दशगुर्वक्षरोच्चारकालः प्राणोऽभिधीयते। तत्षट्कैश्च पलं षष्ट्या नाडीषष्ट्यार्क्षजं दिनम्' (१ अ० ४ श्लोक) ॥७-८॥

एवं सोमसिद्धान्त में 'दशगुर्वक्षरः प्राणः षड्भिः प्राणैर्विनाडिका। तत्षष्ट्या नाडिका प्रोक्ता नाडीषष्ट्या दिवानिशम्' ॥७–८॥

और भी वटेश्वर सिद्धान्त में 'कमलदलनतुल्यः काल उक्तस्त्रुटिस्तच्छतमिह लव संज्ञस्तच्छतं स्यान्निमेषः। सदलजलधिभिस्तैर्गुर्विहैवाक्षरं तत्कृतपरिमितकाष्ठा तच्छरार्घेन वासुः' (मध्यमा० ७ श्लोक) ॥७–८॥

सिद्धान्तशेखर में काल का विभाजन ऐसा है—प्राणस्याद्दशभिरिहाक्षरैः द्विमात्रैः षट्प्राणैर्भवति विनाडिका हि सार्क्षी। षष्ट्यासां भवति घटी तदीयषष्ट्याऽहोरात्रं निगदितमेतदार्क्षमेव ॥ काष्ठा स्मृताऽष्टादशभिर्निमेषैः कला च काष्ठा दशकत्रयेण। त्रिंशत् कला स्याद्घटिका घटीभ्यां क्षणः क्षणास्त्रिंशदहर्निशं वा। अक्ष्णोर्निमेषः कथितो निमेषस्त्रिंशद् विभागोऽस्य च तत्परा स्यात् (शतांशकस्तस्य त्रुटिर्निरुक्ता सर्वज्ञगम्या यदि हन्त सा स्यात्' (१ अ० १२–१४) ॥७–८॥

और भी 'सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिरित्यभिधीयते। तत्षष्ट्या रेणुरित्युक्तो रेणुषष्ट्या लवः स्मृतः। तत्षष्ट्या लीक्षक प्रोक्तं तत्षष्ट्या प्राण उच्यते' ॥७–८॥

तथा श्रीमद्भागवत में 'त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः सत्रुटिः स्मृतः' (३ स्क० ११ अ० ६ श्लोक) ॥७-८॥

सिद्धान्तशिरोमणि में भी कहा है—योऽक्ष्णोर्निमेषस्य खराभभागः स तत्परस्तच्छतभाग उक्तः। त्रुटिर्निमेषैर्धृतिभिश्च काष्ठा तत् त्रिंशता सद्गणकैः कलोक्ता। त्रिंशत् कलार्क्षी घटिका क्षणः स्यान्नाडीद्वयं तैःखगुणैर्दिनञ्च। गुर्वक्षरैः खेन्दुमितैरसुस्तैः षड्भिः पलं तैर्घटिका खषड्भिः। स्याद्वा घटीषष्टिरहः : (मध्य० का० १६–१८) ॥ ७–८ ॥

स्थूल काल विभाग सारणी

१ प्राण (असु) = १० दीर्घ, अक्षर उच्चारण समय = १० विपल

१ पल (विघटी)= ६ प्राण = ६० विपल

६० पल = १ घटी = १ दण्ड

६० नाडी (घटी)= १ नाक्षत्र अहोरात्र

३० अहोरात्र = १ मास। १२ मास = वर्ष।

सूक्ष्म काल विभाग सारणी

१ त्रुटि = सुई से कमल के पत्ते को छेदनतुल्यकाल

६० त्रुटि = १ रेणु = १ लव ।

६० लव = १ लीक्षक । ६० लीक्षक = १ प्राण या असु ।

सूर्यसिद्धान्ते

सूर्य सिद्धान्तवश नाक्षत्र, सौर व चान्द्रमास परिभाषा

[1]तत्त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैस्तथा ।
[2]ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत्सङ्क्रान्त्या सौर उच्यते ॥ ९ ॥
[3]तैर्द्विकुभिश्च वर्षमिति भास्करीये ।

सूर्य सिद्धान्त में कहा है कि उक्त तीस नाक्षत्र अहोरात्र का एक नाक्षत्र मास और दो सूर्योदय के मध्यवर्ती काल को सावन दिन कहते हैं। इस प्रकार ३० सावन दिन का १ सावन मास होता है ।

शुल्क पक्ष की प्रतिपदा से तीस तिथि तक अर्थात् ३० तिथियों का १ चान्द्रमास होता है। तथा सूर्य की संक्रान्ति से संक्रान्ति तक काल सौर मास से पुकारा जाता है एवं बारह मासों का एक वर्ष होता है । वर्ष परिभाषा यह सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है ॥ ९ ॥

अथ वर्षैकमध्ये दिनसङ्ख्या ज्योतिर्विदाभरणे—

अब आगे इन वर्षों में कितने दिन होते हैं, इसे ज्योतिर्विदाभरण के वाक्य से बताते हैं ।

[4]वर्षैकमध्ये शशिनो दिनानि
हिमांशुसप्ताग्निमितानि तज्ज्ञाः ।
सार्द्धद्विबाणाम्बुपलैर्युतेन घटीत्रयेणैव
युतान्यथाहुः (३७१।३।५२।३०) ॥ १० ॥

[5]भवासरास्तत्र शराङ्गरामाः सार्द्धद्विघस्रान्वितखाग्नितुल्यैः ।
पलैर्युताभिस्तिथिनाडिकाभिर्युक्ता (३६५।१५।३०।२२।३०)
विधूना रविसावनाः (३५९) स्युः ॥ ११ ॥
सौरा नभोऽङ्गाग्निमितानि वासराः (३६०) ।
स्मृता बुधैः सर्वसु कर्मसु ध्रुवम् ॥ १२ ॥

---

१. सू० सि० १ अ० १२ श्लो० ।
२. सू० सि० म० १३ श्लो० ।
३. सि० शि० म० १८ श्लो० ।
४. १ प्रक० २४ श्लो० ।
५. १ प्रक० २५ श्लो० ।
६. १ प्रक० २६ श्लो० ।

स्पष्टार्थ सारिणी

३७१	३६६	३६५	३६०	दिन
३	१५	१५	०	घटी
५२	३०	३०	०	पल
३०	२२	२२	०	अ० वि०
०	३०	३०	०	प्र० प०

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है कि चान्द्रवर्ष में ३७१ दि० ३ घ० ५२ प० ३० व नाक्षत्र दिनादि ३६६।१५।३०।२२।३० एवं इसमें १ घटाने पर सौर सावन दिनादि ३६५।१५।३०।२२।३० और एक सौर वर्ष में ३६० दिन होते हैं। ये वर्ष समस्त कर्मों में गृहीत होते हैं ॥ १०–१२ ॥

अथ पितृदिनस्योदयास्तकालानाह [1]भास्करीये—

अब आगे पितरों के दिन व रात्रि को सिद्धान्त शिरोमणि के वाक्य से बताते हैं।

पितृ दिन का उदय एवं अस्त काल

विधूर्ध्वभागे पितरो वसन्ति स्वाधः सुधादीधितिमामनन्ति।
पश्यन्ति तेऽर्कं निजमस्तकोर्ध्वे दर्शे यतोऽस्मात् द्युदलं तदेषाम् ॥ १३ ॥
भार्द्धान्तरत्वान्न विधोरधस्थं तस्मिन्निशीथः खलु पौर्णमास्याम्।
कृष्णे रविः पक्षदलेऽभ्युदेति शुक्लेऽस्तमेत्यर्थत एव सिद्धम् ॥ १४ ॥

सिद्धान्त शिरोमणि में कहा है कि पितर लोग चन्द्र के ऊपरी भाग में रहते हुए चन्द्र को अपने नीचे मानते हैं। वे अमावस्या के दिन सूर्य को अपने खमध्य में देखते हैं। इसलिये उनका दर्श के दिन मध्यान्ह होता है। ६ राशि के अन्तर पर चन्द्र के नीचे सूर्य के अवस्थान से पूर्णिमा को उनकी आधी रात होती है। पितरलोक में कृष्ण पक्षाधं में सूर्य का उदय और शुक्ल पक्षार्ध अस्त होना स्वभाव से ही सिद्ध होता है ॥ १३–१४ ॥

अब आगे सूर्य सिद्धान्त के मत से देवताओं के अहोरात्र या यों समझिये कि दिन रात उनका क्या होता है अर्थात् मनुष्य के दिन से बड़ा या छोटा होता है। यह बात तो प्रायः सभी जानते हैं कि सूर्योदय से सूर्यास्त तक दिन और सूर्यास्त के बाद से सूर्योदय के पूर्व तक रात्रि होती है। कहा है कि 'दिनं दिनेशस्य यतोऽत्र दर्शने तमी तमोहन्तुरदर्शने सति'। यह दिन रात्रि की परिभाषा है।

खगोल वेत्ता तो यह भी जानते हैं कि उत्तरी ध्रुव पर देवताओं का और दक्षिणी ध्रुव पर असुरों का निवास है। एव सूर्य का उदय अस्त क्षितिज से ऊपर व नीचे होता है। देवता असुरों का क्षितिज वृत्त नाडीवृत्त है। इन नाडीवृत्त से उत्तर की तरफ मेषादि ६ राशियों में सूर्य भ्रमण होने के नाते ये ६ राशियाँ क्षितिज से ऊपर ही

---

1. सि० शि० गो० त्रि० १३-१४ श्लो०।

अर्थात् इन ६ राशियों में सूर्य का भ्रमण निरन्तर होने से अस्त न होने के नाते देवताओं का दिन ६ मास का और ६ मास रात्रि होने से १ सौर वर्ष का देवताओं का दिन रात होता है इसे बताते हैं।

सूर्यसिद्धान्ते देवमानमाह—

सूर्यसिद्धान्त के आधार पर देवराक्षसमान

[1]मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदहमुच्यते।
[2]सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ॥ १५ ॥
तत्षष्टिः षड्गुणा दिव्यवर्षमासुरमेषु च।

सूर्यसिद्धान्त में कहा है कि १२ सौर मासों का १ सौर वर्ष और १ सौर वर्ष का १ दिव्य अर्थात् देव सम्बन्धी दिन होता है। देवता व असुरों का दिन विपर्यय से होता है। या यों समझिये जब देवताओं का दिन होता है तो राक्षसों की रात्रि और जब देवताओं को रात्रि होती है तब राक्षसों का दिन होता है। उक्त ६० दिनों को ६ से गुणा करने पर ६०×६=३६० होता है अर्थात् उक्त दिनों का एक देवता व राक्षसों का वर्ष होता है। अर्थात् ३६० मानुष सौर वर्ष का एक दिव्य वर्ष होता है ॥ १५ ॥

अब आगे एक महायुग कितने समय का होता है इसे बताते हैं।

महायुग परिमाण

[3]तद्द्वादशसहस्राणि (४३२००००) चतुर्युगमुदाहृतम् ॥ १६ ॥

सूर्यसिद्धान्त में कहा है कि बारह हजार दिव्य वर्षों का एक महायुग होता है। या यों समझिये कि महायुग का तात्पर्य चारों (सत, त्रेता, द्वापर, कलि) युगों के मान से है। अर्थात् चारों युगों में उक्त समय होता है ॥ १६ ॥

अब आगे भास्कराचार्यजी के वचन से महायुग में जो कि चार युग होते हैं, उनके अलग-अलग मानों को या यों समझिये कि कितने समय का सतयुग और कितने-कितने के त्रेतादियुग होते हैं, उसे बताते हैं।

भास्करोये—

भास्कर के आधार पर चतुर्युग मानज्ञान

[4]खखाभ्रदन्तसागरै—(४३२०००)
युंगा (४) ग्नि (३) युग्म (२) भू (१) गुणैः
क्रमेण सूर्यवत्सराः कृतादयो युगाङ्घ्रयः ॥ १७ ॥

---

१. सू० सि० म० १३ श्लो०।
२. सू० सि० म० १४ श्लो०।
३. सू० सि० म० १५ श्लो०।
४. सि० शि० म० का २१ श्लोक।

कृतमानम् १७२८००० त्रेतामानम् १२९६०००
द्वापरमानम् ८६४००० कलिः ४३२०००।

[1]स(स्व ?)सन्ध्यकास्तदंशकैर्निजार्कभागसंमितैः
युताश्च तद्युतौ युगं रदाब्धयोऽयुताहताः ॥ १८ ॥

सिद्धान्त शिरोमणि में कहा है कि ४३२००० चार लाख बत्तीस हजार को क्रम से ४, ३, २, १ से गुणने पर सौर वर्ष के हिसाब से एक-एक युग का मान होगा। अर्थात् ४३२०००×४=१७२८००० सतयुग, ४३२०००×३=१२९६००० त्रेता युग, ४३२०००×२=८६४००० द्वापर युग और ४३२०००×१=४३२००० कलियुग का मान होता है।

सतयुग का समय १७२८०००, त्रेतायुग १२९६०००, द्वापर ८६४०००, कलियुग ४३२००० हाता है।

पूर्वोक्त चारों युगों का जो समय बताया गया है वह सन्धि व सन्ध्यांश के साथ है। एक युगचरण का बारहवाँ भाग सन्धि व उतना ही सन्ध्यांश होता है। इन दोनों के साथ उक्त युगचरण काल है। इनका योग करने पर जो ४३२ को १०००० से गुनने पर होता है वही एक महायुग का काल होता है ॥ १७-१८ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है--'द्वात्रिंशद्भिः सहस्रैश्च युक्तं लक्षचतुष्टयम्। प्रमाणं कलिवर्षाणां प्रोक्तं पूर्वैर्महर्षिभिः। युगानां कृतमुख्यानां क्रमान्मानं प्रजायते। कलेर्मानं क्रमान्निघ्नं चतुस्त्रिद्विमितैस्तथा' (२१ प्र० १६४ १६५ श्लोक) ॥ १७-१८ ॥

तथा च [2]सूर्यसिद्धान्ते—

सूर्यसिद्धान्त के आधार पर

सूर्याब्दसङ्ख्यया
द्वित्रिसागरैरयुताहतैः (४३२००००)।
[3]सन्ध्यासन्ध्यांशसहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम् ॥ १९ ॥

सूर्यसिद्धान्त में चारों युगों का मान अर्थात् एक महायुग का समय इस प्रकार से वर्णित है।

२३४ अर्थात् 'अङ्कानां वामतो गतिः' इस नियम से ४३२ को दश हजार से गुनने पर जो हो वह एक महायुग का मान होता है। यथा ४३२×१००००=४३२००००। यह चतुर्युग मान सन्धि व सन्ध्यांश के साथ है ॥ १९ ॥

---

१. सि० शि० म० का २२ श्लोक।

२. म० १२ श्लोक।

३. सू० सि० म० १६ श्लोक।

मन्वन्तर परिभाषा

[1]युगानां सप्ततिः सैका (७१) मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसङ्ख्या (१७२८०००) स्तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः ॥ २० ॥

पूर्वोक्त ७१ महायुगों का १ मन्वन्तर (मनु) होता है और एक कल्प अर्थात् ब्रह्मा के एक दिन में १४ मनु के समान समय होता है। एक मनु के बाद कृतयुग के समय १७२८००० के बराबर सान्घ होता है। इसमे संसार में जल मात्र शेष रहता है ॥ २० ॥

कल्प समय ज्ञान

[2]ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश।
कृतप्रमाणं कल्पादौ सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः ॥ २१ ॥

इस वर्तमान कल्प में या ब्रह्मा के दिन में उक्त परिभाषा से संवलित अपनी सन्धि के साथ १४ चौदह मनु होते हैं। अर्थात् चौदह मनु का ब्रह्मा का दिन होता है। सतयुग के समय के तुल्य कल्प की आदि में सन्धि समय होता है। इसमें भी पृथ्वी जल से परिपूर्ण हो जाती है ॥ २१ ॥

ब्रह्मा का अहोरात्र

[3]इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः।
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती ॥ २२ ॥

उक्त एक हजार महायुग का ब्रह्मा का कल्प संज्ञक दिन और एक कल्प के समान रात्रि होती है। या यों समझिये दो कल्प का ब्रह्मा का अहोरात्र होता है ॥ २२ ॥

ब्रह्मणः पलम् २४००००० घटीमानम् १४४००००००
दिनमानम् ४३२०००००००० रात्रिः ४३२००००००००
अहोरात्रम् ८६४०००००००० मासः २५९२००००००००
वर्षमानम् ३११०४०००००००० शताब्दाः ३११०४०००००००००० ।

ब्रह्मा का पल २४००००० । घटी का मान = १४४०००००० । दिनमान = ४३२०००००००० । रात्रि = ४३२०००००००० । अहोरात्र = ८६४०००००००० । मास = २५९२०००००००० । वर्षमान = ३११०४०००००००० । शत से गुणित = ३११०४०००००००००० ।

---

१. सू० सि० म० १८ श्लोक।
२. सू० सि० म० १९ श्लोक।
३. सू० सि० म० २० श्लोक।

ब्रह्मा की आयु

[१]परमायुःशतं तेषां (तस्य) तयाहोरात्रसङ्ख्यया।
आयुषोऽर्द्धंगतं तस्य शेषात्कल्पोऽयमादितः॥ २३॥

पूर्व कथित ब्रह्मा के दिन के मान से उनकी परम १०० वर्ष की आयु होती है। वर्तमान ब्रह्मा की आयु का आधा भाग व्यतीत हो गया है। अर्थात् ५० वर्ष की आयु समाप्त हो गयी है और ५१ वाँ वर्ष वर्तमान है या यों समझिये चल रहा है। उसका यह प्रथम कल्प है॥ २३॥

[२]भास्करीये—

भास्कर के आधार पर ब्रह्मा की गत आयु

तथा वर्तमानस्य कस्यायुषोऽर्द्धं गतं सार्द्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः।
भवत्वागमः कोऽपि नाऽस्योपयोगो ग्रहा वर्तमानद्युयातात् प्रसाध्याः॥ २४॥

भास्कराचार्यजी ने सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है कि वर्तमान में ब्रह्माजी की आधी आयु अतीत हो गयी है और आचार्य वटेश्वर का कहना है कि साड़े आठ वर्ष ही व्यतीत हुए हैं। हमें इस विवाद से प्रयोजन नहीं है जिसकी दृष्टि में जो उचित हो, किन्तु ग्रहों का आनयन तो ग्रन्थ निर्माण के समय से ही होता है॥ २४॥

[३]स्वायम्भुवो मनुरभूत्प्रथमस्ततोऽमी स्वारोचिषोत्तमजतामसरैवताख्याः।
षष्ठस्तु चाक्षुष इति प्रथितः पृथिव्यां वैवस्वतस्तदनु सम्प्रति सप्तमोऽयम्॥ २५॥

इस वर्तमान कल्प में ब्रह्मा के दिन में या यों समझिये प्रथम कल्प में पहला स्वायंभुव, दूसरा स्वारोचिष, तीसरा उत्तमज, चौथा तामस, पाँचवाँ रैवत और छटा चाक्षुष नाम का मनु व्यतीत हो गया है और सातवाँ वैवस्वत नाम का मनु चल रहा है॥ २५॥

ग्रन्थारम्भ में गत समय ज्ञान

[४]याता षण्मनवो युगानि भमितान्यन्यद्युगाङ्घ्रित्रयं
नन्दाद्रीन्दुगुणा (३१७९) स्तथा नृपशकस्यान्ते कलेर्वत्सराः।
गोद्रीन्द्वद्रिकृताङ्कदस्रनगगोच्चन्द्राः (१९७२९४७१७९)
शकाब्दान्विताः, सर्वे सङ्कलिताः पितामहदिने स्युर्वर्तमाने गताः॥२६॥

---

१. सू० सि० म० २१ श्लोक।
२. सि० शि० म० का० २६ श्लोक।
३. सि० शि० म० का० २९ श्लोक।
४. सि० शि० म० का० २८ श्लोक।

श्रीभास्कराचार्यजी का कथन है कि इस ब्रह्मा के दूसरे परार्ध में ६ मनु व्यतीत हो गये और सातवें मनु में २७ युग भी समाप्त हो गये तथा २८ वें युग में अर्थात् महायुग में भी सतयुग; त्रेता. द्वापर अतीत हो गये एवं शक वर्षारम्भ से पूर्व कलियुग के ३१७९ भी सौर वर्ष व्यतीत हो गये हैं। पूर्वोक्त समस्त कल्पादि से १९७२९४७१७९ शकादि तक वर्ष होते हैं ॥ २६ ॥

एक दृष्टि में कल्प से शकादि तक वर्षज्ञान—

६ मनु = ७१ × ६ महायु = ४२६ महायु० ।

महायुग = ४३२००००

इसलिये

६ मनु	=	४२६ × ४३२००००
	=	१८४०३२००००
६ ,, सन्ध्या	=	१२०९६०००
२७ महायुग	=	११६६४०००००
सतयुग	=	१७२८०००
त्रेतायुग	=	१२९६०००
द्वापर	=	८६४०००
गतकलयुग	=	३१७९
		१९७२९४७१७९ = शकादि पूर्व ।

खत्रयाब्धिरसाभ्राद्रिरूप (१७०६४३०) संवत्सरोनिता ।
कल्पाब्दा स भवत्येव सृष्ट्याब्दा सूर्यमानतः ॥ २७ ॥

सूर्य सिद्धान्त के मत से कल्पादि से सृष्ट्यादि समय लाने के लिये सौर वर्ष १७०६४३० घटाने पर सृष्टि के आदि से समय होता है। अर्थात् सौर वर्ष सृष्टि से शकादि तक होते हैं ॥ २७ ॥

सृष्टि से गत वर्ष ज्ञान

नन्दान्द्रोन्दुगुणाष्टाष्टबाणपञ्चनवेन्दवः (१९५५८८३१७९) ।
संयुक्ताः शककालेन सृष्टिसंवत्सरा गताः ॥ २८ ॥

कल्पोक्तगत वर्ष में १९७२९४७१७९–१७०६४३० घटाने पर १९५५८८३१७९ ये सृष्टि से शकादि तक सौर वर्ष हुए। इनमें इष्ट शक जोड़ने पर अभीष्ट शक के प्रारम्भ में सृष्टी से वर्ष संख्या होती है ॥ २८ ॥

अब आगे विभिन्न प्रकार के संवतों को हम बतलायेंगे। किस देश में या किस समय से संवत्सर की प्रवृत्ति हुई है। तथा विक्रम संवत् से विभिन्न वत्सरों का आनयन किस रीति से होता है। इसे बताते हैं—

संवज्ज्ञपनम् —

विक्रम संवत् का प्रारम्भ

यदा गतकलेरब्धिवेदाभ्रपावकै (३०४४) र्गताः ।
श्रीविक्रमार्कराज्यस्य संवत्प्रारम्भकः स्मृतः ॥ २९ ॥

जिस समय वर्तमान कलियुग का ३०४४ वर्ष व्यतीत हो गया उस समय विक्रमार्क संवत् का प्रारम्भ हुआ था ॥ २६ ॥

ज्यो० नि० में कहा है 'तथा च विक्रमः शाको वेदवेदाभ्रपावकैः । बाणराममहीतुल्यमन्तरं शकयोर्मतम्' (२५१ पृ०) ॥ २९ ॥

शकानयनम्—

शक वर्ष का आनयन

विक्रमादित्यराज्येषु पञ्चत्र्यंशोत्तरं शतम् (१३५) ।
पातयित्वा भवेच्छाकः स शाकः शालिवाहनः ॥ ३० ॥

पूर्वोक्त विक्रप संवत् संख्या में १३५ घटाने पर शक संवत् होता है । या यों समझिये कि शक संवत् में १३५ जोड़ने पर विक्रम संवत् होता है । निष्कर्ष विक्रम संवत् के १३५ वर्ष बाद शक वर्ष का प्रारम्भ हुआ था ऐसा जान पड़ता है ॥ ३० ॥

ईसवीशकानयनम्—

ईसवी वर्ष का ज्ञान

शालिवाहनशाकेषु गजसप्तान्विते कृते ।
वादशाहगुरण्डानामीशाख्यस्य शको भवेत् ॥ ३१ ॥

शालिवाहन शक संज्ञक वर्ष में ७८ जोड़ने पर ईसवीय वर्ष संख्या होती है । अर्थात् बादशाह गुरण्डा नामक का होता है । अर्थात् शक वर्ष से पूर्व इसका आरम्भ हुआ था । इससे यह भी सिद्ध होता है कि यदि ईसवी वर्ष मालूम है और शक अभीष्ट है तो ईसवी वर्ष में ७८ घटाने से शक हो जायगा ॥ ३१ ॥

हिजरीशकानयनम्—

हिजरी सन् का ज्ञान

ईशाख्यशाकेषु त्रिनागबाणमूनं भवेद्धिजरिनाम्नि शाकः ।

ईसवी वर्ष में ५८३ को घटाने पर हिजरी सन् होता है । अर्थात् इसका प्रारम्भ ईसवी के ५८३ वर्ष बाद हुआ है । या यों समझिये हिजरी सन् में ५८३ जोड़ने पर ईसवी वर्ष होता है ।

फसलीशकानयनम्—

फसली शक का आनयन

तच्छाककेष्वूनितमत्र दिङ्मितं शाको भवेत्सः फसलीभिधाख्यः ॥ ३२ ॥

हिजरी सन् में १० घटाने पर फसली सन् होता है। अर्थात् इसका आरम्भ हिजरी सन् के १० वर्ष बाद हुआ। या यों समझिये फसली सन् में १० जोड़ने पर हिजरी सन् होता है ॥३२॥

बंगलाशकानयनम्—

बंगला सन् का आनयन

एकोनितं फासिलिनाम्नि शाके शाको भवेत्स बंगलाभिधाख्यः ॥ ३३ ॥

फसली सन् में एक घटाने पर बँगला सन् होता है। अर्थात् बँगला सन् में एक जोड़ने पर फ़सली सन् होता है ॥३३॥

रघुनाथः—

रघुनाथ के आधार पर

शून्येन गुणितं शून्यं भक्तेनाद्यं यथा स्थितम्।
भागावशेषितं तष्टमङ्कानां वामतो गतिः ॥ ३४ ॥

आचार्य रघुनाथ का कहना है कि शून्य से गुणा करने पर शून्य और भाग देने पर यथा स्थित ही तथा भाग देने पर जो शेष बचता है उसे तष्ट कहते हैं। अंकों की गणना वाम गति से करना चाहिये ॥३४॥

कृतयुगादिसंवत्—

अथ तिथ्यादिनिर्माणविषये शकज्ञानमावश्यकम् अतस्तत्कारकाण्याह।

अब आगे तिथि आदि निर्माण के लिये शक का ज्ञान आवश्यक होता है अतः किस युग में किन किन नामों से ये प्रचलित थे, इसे बताते हैं।

युगीय शक कर्ताओं का ज्ञान

सत्ये ब्रह्मशको मुनेर्विरचितस्त्रेतायुगे वामनं
तत्पश्चाज्जमदग्निपुत्रनिहते रामः सहस्रार्जुने।
रामो रावणहन्तृशाक उदितो यौधिष्ठिरो द्वापरे
पश्चाद्विक्रमशालिवाहनशकौ जातौ युगेऽस्मिन् कलौ ॥ ३५ ॥

सतयुग में ब्रह्मशक, त्रेता में वामन उसके बाद सहस्रार्जुन को परशुराम को मारने पर राम, तब रावणहन्तृशक, द्वापर में युधिष्ठिर और कलियुग में विक्रम व शालिवाहन शक प्रचलित हैं ॥३५॥

षट् शककारकाः—

अब आगे कलियुग में ६ शक कारक कौन हैं। उनके नाम बताते हैं।

युधिष्ठिरो विक्रमशालिवाहनौ तथैव राजा विजयाभिनन्दनः।
नागार्जुनश्चेति तथा च कल्किरेते कलौ षट्शककारका नृपाः ॥ ३६ ॥

कलि के प्रारम्भ में प्रथम युधिष्ठिर तत्पश्चात् विक्रम फिर शालिवाहन तब राजा विजय शक इसके बाद नागार्जुन और अन्त में कल्कि नामक शक होगा, ये ६ कलिमें शककर्त्ता माने गये हैं ॥३६॥

अब इनके क्रम से वर्षों को बताते हैं।

क्रमेण वेदाब्धिखवह्नय (३०४४) स्तत:
शराग्निचन्द्रा (१३५) खखखाहिभूमय: (१८०००)।
ततोऽयुतं (१०००°) लक्षचतुष्टयं च (४०००००)
चन्द्रद्विनागा: (८२१) शकसंमित: कलौ ॥ ३७ ॥

युधिष्ठिर शक कलि के प्रारम्भ में ३०४४ इसके बाद क्रम से १३५+१८००० +१००००+४००००० + ८२१ = ४३२००० = कलियुग मान के विक्रम, शालिवाहनादि कर्ता माने गये हैं ॥३७॥

अब आगे ज्योतिर्विदाभरण नामक ग्रन्थ के वाक्यों से ६ शक कर्त्ताओं की जन्म-भूमि के विषय में बताते हैं। या यों समझिये किसकी कहाँ उत्पत्ति थी इसे बताते हैं।

ज्योतिर्विदाभरण के आधार पर

ज्योतिर्विदाभरणे[1]—

युधिष्ठिरोऽभूद्भुवि हस्तिनापुरे ततोज्जयिन्यां पुरि विक्रमाह्वय:।
शालेयधाराभृतशालिवाहन: सुचित्रकूटे विजयाभिनन्दन: ॥ ३८ ॥
[2]नागार्जुनो रोहितके क्षितौ कलिर्भविष्यतीन्द्रो भृगुकच्छपत्तने।
कृतप्रवृत्तिस्तदनन्तरं भवेत्तदा भविष्यत्यवनीभृतोऽर्कत: ॥ ३९ ॥
[3]निहन्ति यो भूतलमण्डले शकान् स
पञ्चकोटयब्जदलप्रमान् कलौ (५५००००००००)।
सराजपुत्र: शककारको भवेन्नृपाधिराजोद्भुतशाककर्तृहा ॥ ४० ॥

श्री युधिष्ठिर का जन्म हस्तिनापुर में और उज्जैन में विक्रम का, शालेरमोलेर पर्वत पर शालिवाहन और चित्रकूट में विजय का, रोहितास में नागार्जुन का, भृगु-कच्छ में कलि का जन्म होगा और इसके अनन्तर सतयुग की प्रवृत्ति होगी तथा राजा सूर्य के वशीभूत होंगे। और अपने तेज बल से ही राजा होगा। जो कि भूमण्डल में साड़े पाँच करोड़ शकों को मारने में समर्थ होगा वही राजपुत्र शक कारक राजाधिराज शकों को मारने वाला अद्भुत राजा होगा ॥३८–४०॥

---

१. १० प्र० ११२ श्लोक।
२. ज्यो० वि० १० य० ११३ श्लोक।
३. ज्यो० वि० १० प्र० १०६ श्लोक।

अथ मेदिनीमानम्—

अब आगे इस भूमण्डल के मान को यवादि से आरम्भ करके बताते हैं।

त्रियवैरङ्गुलं प्रोक्तं मुष्टिश्च चतुरङ्गुलम्।
मुष्टिषट्कैर्भवेद्दण्डः षट्दण्डेन धनुर्भवेत् ॥ ४१ ॥
सहस्रधनुषैःक्रोशश्चतुःक्रोशैस्तु योजनम्।
शतयोजनमाण्डल्यं द्वीपं च शतमण्डलैः ॥ ४२ ॥
शतद्वीपैर्भवेत्खण्डं नवखण्डा च मेदिनी ॥ ४३ ॥

ग्रन्थों में कहा है कि तीन जौ के तुल्य १ अंगुल, ४ अंगुल=१ मुष्टि। ६ मुष्टि=दण्ड। ६ दण्ड=१ धनु। १००० धनु=कोश। ४ कोश=योजन। १०० योजन=१ मण्डल।१०० मण्डल=द्वीप और १०० द्वीप=१ खण्ड तथा ६ खण्ड=भूमि ॥४१–४३॥

अथार्यावर्तमानम्। मनुः—

अब आगे आर्यावर्त व मध्य देश की सत्ता या यों समझिये ये देश इस धरातल पर कहाँ से कहाँ तक हैं, इसे बताते हैं।

आर्यावर्त मान

आसमुद्रात्तु वै पूर्वमासमुद्रात्तु पश्चिमम्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः[1] ॥ ४४ ॥

आर्यावर्त का मान तथा पूर्वीय व पश्चिमीय पर्वतों के मध्य की भूमि को आर्यावर्त कहते हैं ॥४४॥

मध्यदेशमानं च तत्रैव—

मध्यदेश ज्ञान

[2]हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राक्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशं विदुर्बुधाः ॥ ४५ ॥

हिमालय और विन्ध्य पर्वत के मध्य की व विनशन पर्वत से पूर्व तथा प्रयाग से पश्चिम की भूमि को मध्य देश कहते हैं ॥४५॥

अब आगे श्री भास्कराचार्य जी के वाक्यों से भूमि की परिधि क्या होती है, इसे बताते हैं।

[3]भास्करः—

भास्कर के आधार पर भूपरिधि व व्यासयोजन

प्रोक्तो योजनसङ्ख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धय

---

१. मनुस्मृ० २ अ० २२ श्लोक।
२. मनुस्मृ० २ अ० २१ श्लोक।
३. सि० शि० म० भूप० १ श्लोक।

(४९६७) स्तद्व्यासः कुभुजङ्गसायकभुवोऽ
(१५८१) थ प्रोच्यते योजनम् ॥ ४६ ॥

सिद्धान्त शिरोमणि में कहा है कि चार हजार नौ सौ सड़सठ योजन भू परिधि और भू व्यास एक हजार पाँच सौ इक्यासी योजन है ॥४६॥

अथ ब्रह्माण्डमानम् । [1]भास्करीये—

अब आगे आकाश की परिधि कितने योजन है । इसे श्री भास्कराचार्य जी के वचन से बताते हैं अर्थात् जहाँ तक सूर्य किरणें अन्धकार को नष्ट कर सकें वहाँ तक आकाश कक्षा होती है । वैसे आकाश की सीमा मापन दुष्कर है ।

आकाश कक्षा का ज्ञान

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभूभृद्भुजङ्गेन्दुभि (१८७१२०६९२००००००००
ज्योतिःशास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः ।
तद्ब्रब्रह्माण्डकटाहसंपुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं केचित्प्रोचु-
रदृश्यदृश्यकगिरिं पौराणिकाः सूरयः ॥ ४७ ॥

श्री भास्कराचार्य जी का कहना है कि आकाश की कक्षा १८७१२०६९२००००००००० योजन है ऐसा ज्योतिषशास्त्र जानने वाले कहते हैं । किसी का मत है कि इस इस ब्रह्माण्ड के कढावों का जो मिलन स्थान है वही यह परिधि है । तथा अन्यों का कहना है कि जहाँ तक लोकालोक की स्थिति है वहाँ की परिधि है ॥४७॥

[2]करतलकलितामलकवदमलं सकलं विदन्ति ये गोलम् ।
दिनकरकरनिकरनिहतश्च तमसो नभसः परिधिरुदितस्तैः ॥ ४८ ॥

जो कि हाथ में रखे हुए स्वच्छ शुभ्र आमरे की तरह इस विमल गोल को जानते हैं उन्होंने सूर्य की किरणें जहाँ तक अन्धकार को नाश करती है वहाँ तक इस आकाश की परिधि को बताया है ॥४८॥

विशेष—सूर्यसिद्धान्त में इससे भिन्न प्राप्त होती है यथा 'खव्योमखत्रय खसागरषट्कनागव्योमाष्टशून्ययमरूपनगाष्टचन्द्राः । ब्रह्माण्डसंपुटपरिभ्रमणं समन्ताद-भ्यन्तरे दिनकरस्य करप्रसारः' (सू० सि० १२ अ० ९० श्लोक) ॥४८॥

अथ पृथ्वीमध्यतो चन्द्रसूर्योच्चमानम्—

अब आगे भूमध्य भाग से चन्द्र व सूर्य की उच्चता को योजन के हिसाब से बताते हैं । या यों समझिये चन्द्र तथा सूर्य का कर्ण कितने योजन होता है ।

---

१. सि० शि० म० क० १ श्लोक ।

२. सि० शि० म० क० २२ श्लोक ।

सूर्य चन्द्र कर्ण योजन

[1]नगनगाग्निनवाष्टरसारवे (६८९३७७) रसरसेषु
महीषु मिताः विधोः (५१५६६) ।
निगदितावनिमध्यत उच्छ्रितिः श्रुतिरियं किल योजनसङ्ख्यया ॥४९॥

सिद्धान्त शिरोमणि में कहा है कि सूर्य का ६८६३७७ योजन और चन्द्रमा का ५१५६६ योजन कर्ण होता है ॥४९॥

अथ ग्रहाणां बिम्बमानम्--

सूर्य चन्द्र बिम्ब व्यास योजन

[2]बिम्बं रवेर्द्विद्विशरर्तुसङ्ख्या (६५२२)
नीन्दोः खनागाम्बुधि (४८०) योजनानि ॥ ५० ॥

सिद्धान्त शिरोमणि में कहा है सूर्य बिम्ब ६५२२ योजन और चन्द्रमा बिम्बयोजन ४८० व्यास होता है ॥५०॥

अथ ग्रहाणां मानम्--

ग्रहों के बिम्ब मान

[3]व्यङ्घ्रीषवः (४।४५) सचरणा ऋतवः (६।१५) त्रिभाग-
युक्ताद्रयो (७।२०) नव (९) स च त्रिलवेषवश्च (५।२०) ।
स्युर्मध्यमास्तनुकलाः क्षितिजादिकानां
त्रिज्याशुकर्णविवरेण पृथग्विनिघ्नः ॥ ५१ ॥

भौम का ४ कला ४५ वि०, बुध का ६ क० १५ वि०, गुरु का ७ क० २० वि०, शुक्र का ९ और शनि का बिम्बमान ५ क० २० विकला होता है ॥५१॥

अथानेककालज्ञानम्—

अब आगे दिन के विविध विभाजन को बताते हैं ।

द्विधा त्रिधा चतुर्धा वा पञ्चधा दिवसः स्मृतः ।
तत्र मध्याह्नतः पूर्वं पूर्वाह्णः परतः परः ॥ ५२ ॥
द्युमानस्य त्रिभागेन भास्करोदयतः क्रमात् ।
पूर्वाह्णश्चैव मध्याह्नो ह्यपराह्णः स्मृतो बुधैः ॥ ५३ ॥

दिन को दो, तीन; चार व पांच हिस्सों में बाँटने से अर्थात् प्रथम दो विभाग करने से मध्याह्न से पहले पूर्वाह्न और मध्याह्न के अनन्तर अपराह्ण होता है । सूर्योदय

---

१. सि० शि० ग० चन्द्रग्र० ३२ श्लोक ।

२. सि० शि० ग० चं० ग्र० ५ श्लोक ।

३. सि० शि० ग० ग्र० यु० १२ श्लोक ।

से दिन के तीन पूर्वाह्ण, मध्याह्न व अपराह्ण अर्थात् दिनमान में ३ का भाग देने से जो त्रिभाग उपलब्ध हो उतने समय का पूर्वाह्ण व उतना ही मध्याह्न व अपराह्ण होता है ॥५२-५३॥

मनुस्मृतौ--

मनुस्मृति के आधार पर

पूर्वाह्णप्रहरं सार्द्धं मध्याह्नप्रहरं तथा ।
आतृतीयोऽपराह्णः स्यात्सायाह्नश्च ततः परम् ॥ ५४ ॥
मुहूर्तत्रितयं प्रातस्तावानेव तु सङ्गवः ।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्णोऽपि तादृशः ॥ ५५ ॥
सायाह्नस्त्रिमुहूर्तोऽथ क्षणोऽह्नः पञ्चशूलवः ।
आवर्तनो च मध्याह्नः पूर्वाह्णः सङ्गवोत्तमः ॥ ५६ ॥

चार हिस्सों में दिन का विभाजन करने से प्रथम चतुर्थांश पूर्वाह्न, द्वितीय प्रहर मध्याह्न, तीसरा अपराह्न और चौथा भाग सायाह्न होता है। तथा दिन के पांच भागों की अर्थात्, प्रथम ६ घटी तक प्रातः, १२ तक संगव, १८ तक मध्याह्न, २४ तक अपराह्न और २५ से ३० घटी तक अर्थात् दिन मान के अन्तिम पञ्चमांश की सायाह्न संज्ञा होती है। इन संज्ञाओं में पांचवे की शूलव, मध्याह्न की आवर्तन और पूर्वाह्न की संगव संज्ञा होती है ॥ ५४-५६॥

स्कन्दपुराणे—

अब आगे सन्ध्या कब व कितने समय की होती है इसे स्कन्द पुराण के वचन से बताते है।

सन्ध्या ज्ञान

उदयात्प्राक्तनी सन्ध्या घटिकात्रयमुच्यते ।
सायं सन्ध्या त्रिघटिका अस्तादुपरि भानुतः ॥५७॥
त्रिमुहूर्तः प्रदोषः स्याद्रवावस्तङ्गते ततः ।
महानिशा निशीथस्य मध्यस्थघटिकाद्वयम् ॥ ५८ ॥

स्कन्द पुराण में कहा है कि सूर्योदय से तीन घटी पहिले प्रातः सन्ध्या और सूर्यास्त के ३ घटी बाद सन्ध्या होती है तथा सूर्योदय के अनन्तर ६ घटी तक प्रदोष काल होता है। मध्यरात्रि में २ घटी महानिशा होती है अर्थात् उक्त घटियों की महानिशा संज्ञा है। ५७-५८॥

पराशरस्मृतौ--

पराशर स्मृति के आधार पर

महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् ॥ ५९ ॥
नाडिका षट् च पञ्चाशत्प्रातस्त्वेकोऽधिकोऽरुणः ।
उषःकालोष्टपञ्चाशत् शेषः सूर्योदयः स्मृतः ॥ ६० ॥

पराशर स्मृति में कहा है कि अर्ध रात्रि के पूर्व व बाद एक-एक प्रहर काल की महानिशा संज्ञा वर्णित है तथा ५७ घटी की अरुण और ५८ वीं की उषःकाल व शेष की सूर्योदय संज्ञा होती है ॥ ५९–६०॥

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है 'प्रातश्च सङ्गवश्चैव मध्यान्हः शारदस्तथा । सायान्ह-मर्धोदयतः पञ्चांशो द्युमितेः क्रमात् । पञ्चधा भागकालोऽसौ त्रिधा पूर्वाह्णकं ततः । मध्याह्नमपराह्नन्तु द्वेधा पूर्वापरार्धके' प्र० (३६–३७ श्लो) ॥५६–६०॥

अब आगे ६ प्रकार के मानों के नामों को विविध ग्रन्थों के वचन से बताते हैं ।

नवधा मानम् [1]सूर्यसिद्धान्ते--

९ प्रकार के मान सूर्यसिद्धान्त के आधार पर

ब्राह्मं दैवं तथा पैत्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा ।
सौरं च सावनं चान्द्रमार्क्ष्यं मानानि वै नव ॥ ६१ ॥

सूर्यसिद्धान्त में कहा है कि १ ब्रह्म सम्बन्धी (ब्रह्म), २ देवसम्बन्धी (दिव्य) ३ पितृ सम्बन्धी, 'प्रजापतेरिदं प्राजापत्यम्' 'मन्वन्तर व्यवस्था च प्राजापत्यमुदाहृतम्' ४ मनुसम्बन्धी, ५ गुरु सम्बन्धी, ६ सौर, ७ सावन, ८ चान्द्र और ९ वां नाक्षत्र मान होता है ॥६१॥

पौलस्त्यः--

पौलस्त्य के आधार पर

[2]ब्राह्मं दैवं मनोर्मानं पैत्र्यं सौरं च सावनम् ।
नाक्षत्रं च तथा चान्द्रं जैवं मानानि वै नव ॥ ६२ ॥

पौलस्त्य ऋषि ने भी १ ब्राह्म, २ दैव, ३ मनु, ४ पैत्र्य, ५ सौर, ६ सावन, ५ नाक्षत्र, ८ चान्द्र और ९ वां जैव मान बताया है ॥६२॥

भास्कर के आधार पर

[3]एवं पृथक् मानुषदैवजैवपैत्र्यर्क्षसौरेन्दवसावनानि ।
ब्राह्मं च काले नवमप्रमाणं ग्रहाश्च साध्या मनुजैः स्वमानात् ॥६३॥

---

१. १४ अ० १२ श्लोक ।

२. ज्यो० नि० २४ पृ० २२ श्लोक ।

३. सि० शि० म० का० ३२ श्लोक ।

सिद्धान्तशिरोमणि में भी इसी रीति से मानों के नाम है। तथा ग्रन्थों का आनयन मनुष्य मान से करना चाहिये। ऐसा भास्कर का कथन है ॥६३॥

व्यवहारप्रदीपे--

व्यवहार प्रदीप के आधार पर

सौरमैन्दवमार्ष्यं च दैवं जैवं च सावनम्।
पैत्र्यं च मानुषं ब्राह्ममिति मानानि वै नव ॥ ६४ ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे वृहद्दैवज्ञरञ्जने कालादिमानज्ञानं नाम तृतीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥३॥

व्यवहार प्रदीप में भी इसी प्रकार के मानों के नाम हैं ॥६४॥

विशेष—वसिष्ठसंहिता में भी कहा है 'ब्राह्मं च दिव्यं मनुपित्र्यमानंसौरं च चान्द्रं गुरुसावनर्क्षम्। एषां नवानां च....' (११ अ० १ श्लो०) ६४॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिषी गयादत्तजी के पुत्र पं० रामदीन द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का कालादिमान नाम तीसरा प्रकरण समाप्त हुआ।

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदकृता वृहद्दैवज्ञरञ्जनस्थतृतीयप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी व्याख्या परिपूर्णा ॥३॥

अथ चतुर्थं संवत्सरप्रकरणं प्रारभ्यते

थव आगे चौथे प्रकरण में अत्यन्त उपयोगी बात जो कि प्रायः सभी पञ्चाङ्गों में लिखी रहती है अर्थात् यह साल किस नाम से या यों समझिये कि इस वर्ष का ६० के नामों से क्या नाम है तथा इसे जानने की क्या विधि है और उनके नाम क्या-क्या हैं एवं वाष्प आदि से उत्पन्न उत्पात कौन-कौन होते हैं। इसे बताते हैं।

नारदः--

नारद मुनि के आधार पर

गृह्यते सौरमानेन प्रभवाद्यब्दलक्षणम् ॥ १ ॥

श्री नारद मुनि का कहना है कि प्रभवादि ६० संवत्सरों का ग्रहण सौर मास से करना चाहिये।

वेदाङ्गज्योतिषे तु--

वेदाङ्ग ज्योतिष के आधार पर

माघशुक्लप्रपन्नस्य पौषकृष्णसमापिनः।
इति चान्द्रमासेन प्रभवादिषष्टिसंवत्सराणां प्रवृत्तिरुक्ता।

वेदाङ्ग ज्योतिष में तो पौष मास की समाप्ति के अनन्तर माघशुल्क से प्रारम्भ माना है इस लिये चान्द्रमास से प्रभवादि की प्रवृत्ति सिद्ध होती है।

भानुघ्नभागादिसमैरहोभिस्तस्य प्रवृत्तिः प्रथमं क्रियात्स्यात्।
इत्यनेन क्वचित्सौरमानेनोक्ता। इति त्रिविधा प्रभवादिषष्टिसंवत्सराणां प्रवृत्तिर्दृश्यते तत्र साधुपक्षो विचार्यते।
अत्र प्रभवादिप्रवृत्तिः बार्हस्पत्यमानेनैव शोभना।
मानान्तरं सदा पूर्वकबार्हस्पत्यमानेनैव षष्ट्यब्दगणनोक्तेति तत्र द्रष्टव्यम्।

अंशादि फल को १२ से गुना करके जो दिनादि हो उतने दिन पूर्व मेष से प्रवृत्ति संवत् की होती है इस से ज्ञात होता है कि कहीं पर सौरमान से सवंत्सर का आनयन होता है। इस प्रकार तीन रीति से संवत् का आनयन होता है। इस में अच्छा तरीका है जो है उसे कहते हैं। यथा गुरु संचार से इसे जानने की विधि शास्त्रों में श्रेष्ठ बताई है।

इन तीनों में गुरु मान से ही संवत्सर की प्रवृति उत्तम मानी गई है।

तदाह सूर्यसिद्धान्ते--

सूर्यसिद्धान्त के आधार पर

यथा--

[1]बार्हस्पत्येन षष्ट्यब्दं ज्ञेयं नान्यैस्तु नित्यशः ॥ २ ॥

सूर्यसिद्धान्त में कहा है कि प्रभवादि ६० वर्षों का ज्ञान सर्वदा गुरुमान से ही करना चाहिये अन्य ब्राह्मादि मान से नहीं करना चाहिये ॥२॥

लघुवसिष्ठसिद्धान्ते--

लघुवसिष्ठसिद्धान्त के आधार पर

मध्यगत्या भभोगेन गुरोर्गौरववत्सराः ॥ ३ ॥

लघुवसिष्ठसिद्धान्त में गुरु की मध्यम गति के तुल्य एक राशि में संचार वश एक गुरु का वर्ष होता है ॥३॥

[2]भास्कराचार्योऽपि---

भास्कराचार्य के आधार पर

बृहस्ततेर्मध्यमराशिभोगं सांवत्सरं सांहितिका वदन्ति ।

एवं भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि में भी कहा है कि गुरु अपनी मध्यम गति से एक राशि का जब तक भोग करता है, उतने सयय तक एक प्रभवादि संवत् की सत्ता रहती है ऐसा संहिता शास्त्र जानने वालों का कहना है ।

इत्यनेन मध्यमगुरुराशिपूरणसमय एव प्रभवादिषष्ट्यब्दप्रवृत्तिरिति सूचितम् । फलनिर्देशस्तु गुरुमानोत्पन्नप्रभवादिसंवत्सराणामित्येवाह ।

इस से सिद्ध होता है कि मध्यम गुरु राशि पूरण काल ही प्रभवादिका समय है । इन संवत् में जन्म लेने वाले का फल तो स्पष्ट गति से जब गुरु १ राशि का भोग कर ले तब तक के समय के हिसाब से करना चाहिये । अर्थात् फलादेश में स्पष्ट ग्रह ही फल देने में समर्थ होते हैं ।

[3]वसिष्ठोऽपि--

वसिष्ठ के आधार पर

षष्ट्यब्दजन्मप्रभवादिकानां फलं च सर्वं गुरुमानतः स्यात् ॥ ४ ॥

इति वेदाङ्गज्योतिषवचनन्तु ततोऽन्यविषयं यदाह गर्गः--

---

१. सू० सि० १४ अ० २ श्लोक ।

२. सि० शि० म० का० २ श्लोक ।

३. व० सं० ११ अ० ३ श्लोक ।

ऋषि वसिष्ठ ने भी गुरु मान से प्रभवादि ६० वर्षों की प्रवृत्ति स्वीकार की है ।।४।।

वेदाङ्ग ज्योतिष का वचन तो अन्य विषय के लिये है ।

गर्गाचार्य जी के आधार पर

माघशुक्लं समारभ्य चन्द्रार्कौ वासवर्क्षगौ ।
जीवशुक्लौ यदा स्यातां षष्ट्यब्दादिस्तदा भवेत् ।। ५ ।।

गर्गाचार्य जी का कहना है कि माघशुल्क के प्रारम्भ से जब शुक्ल पक्ष में धनिष्ठा नक्षत्र में सूर्यचन्द्र, गुरु विद्यमान थे, तब ६० प्रभवादि वर्षों की प्रवृत्ति हुई थी ।।५।।

श्रीपतिनापि--

श्रीपति के आधार पर

इयं हि षष्टिः परिवत्सराणां बृहस्पतेर्मध्यमराशिभोगात् ।
उदाहृता पूर्वमुनिप्रवीणैर्नियोजनीया गणनाक्रमेण ।। ६ ।।

आचार्य श्रीपति जी ने भी मध्यम गुरु गति से एक राशि के भोग समय को वत्सर समय इस लिए माना है कि पूर्व मुनियों ने ही इस मत को स्वीकृति प्रदान की है ।।६।।

तपसि खलु यदासावुद्गमं याति मासि प्रथमलवगतः सन् वासवे वासवेज्यः ।
निखिलजनहितार्थं वर्षवृन्दे वरिष्ठः प्रभवइति स नाम्ना जायतेऽब्दस्तदानीम् ।।७।।

माघ मास में धनिष्ठा के प्रथम अंश में गुरु का उदय हुआ था समस्त जन कल्याण के लिये प्रभव नामक वत्सर था ।।७।।

तृतीयपक्षस्तु फलाभावादुपेक्ष इत्युपरम्यते

फल के अभाव में तीसरे पक्ष का त्याग करके विराम ग्रन्थकार ले रहे हैं ।

६० संवतों में प्रथम प्रभव नामक वर्ष की प्रवृत्ति का समय

[1]वराहः—

वराह के आधार पर

आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रवृत्तो माघे यदा यात्युदयं सुरेज्यः ।
षष्ट्यब्दपूर्वः प्रभवः स नाम्ना प्रपद्यते भूतहितस्तदाऽब्दः ।। ८ ।।

आचार्य वराहमिहिर का कहना है कि जब धनिष्ठा के प्रथम अंश में स्थित होकर वृहस्पति माघ मास में उदित होता है उस समय से षष्ट्यब्दों में प्रथम प्रभव नामक वर्ष का प्रारम्भ होता है। यह वर्ष प्राणियों के लिये शुभ करने वाला होता है ।।८।।

---

१. ब० सं० ८ अ० २७ श्लोक ।

मुहूर्तगणपति में कहा है 'माघे मासि धनिष्ठायाः प्रथमे चरणे गुरुः। यदोदेति तदा श्रेष्ठः प्रभवो वत्सराग्रणीः० (१ प्र० ११ श्लो०) ॥८॥

[1]पैतामहसिद्धान्ते--

पैतामह सिद्धान्त के आधार पर

प्रमाथी प्रथमं वर्षं कल्पादौ ब्रह्मणा स्मृतम्।
तदा हि षष्टिहृच्छाके शेषं चान्द्रोऽत्र वत्सरः ॥ ९ ॥

व्यवहारिकसंज्ञोऽयं कालः स्मृत्यादिकर्मसु।
योज्यः सर्वत्र तत्रापि जैवो वा नर्मदोत्तरे ॥ १० ॥

पैतामहसिद्धान्त में कहा है कि ब्रह्माजी ने प्रथम कल्प की आदि में प्रमाथी नामक संवत् स्मरण किया अर्थात् पहले पहले प्रमाथी नाम वर्ष था। इसलिये शक में या यों जानिये शक संख्या में ६० का भाग देने से चान्द्र संवत्सर गुरु मान से होता है। व्यवहार के लिये यह समय की वर्षात्मक संज्ञा स्मृति कार्यों में ग्रहण करना चाहिये।

सारांश—चान्द्र वर्ष में समस्त शुभ कार्य नर्मदा नदी के दक्षिण देशों में होते हैं और नर्मदा के उत्तर देशों में गुरु संचारवश ही वर्षों की गणना करना चाहिये ॥ ९–१० ॥

[2]आर्ष्टिषेणिः--

आर्ष्टिषेणि के आधार पर

स्मरेत्सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रसंवत्सरं सदा।
नान्यं यस्माद्वत्सरादौ प्रवृत्तिस्तस्य कीर्तिता ॥ ११ ॥

ऋषि आर्ष्टिषेणि का कहना है कि समस्त शुभ कार्यों में चान्द्र संवत् को ही ग्रहण करना चाहिये क्योंकि शास्त्रों में युगादि की प्रवृत्ति चैत्र शुक्ल से प्राप्त होती है। अन्य किसी वर्ष से नहीं प्रतिपादित है ॥ ११ ॥

मकरन्दे--

मकरन्द ग्रन्थ से सम्वत् आनयन

द्विवेदपञ्चेन्दुविहीनशाके गृहा गृहाणां दशयुक्त्रिभागः।
लवा गृहाः स्वीयदिगंशहीना लिप्ता विलिप्ता रसकुञ्जरागाः ॥१२॥

तष्टानि खाङ्गैर्भवनानि भूमियुतानि शुक्लादिह वत्सरः स्यात्।
भानुघ्नभागादिसमैरहोभिस्तस्य प्रवृत्तिः प्रथमं क्रियात्स्यात् ॥ १३ ॥

१. ज्यो० नि० २६ पृ० १२–१३ श्लोक।
२. ज्यो० नि० २६ पृ० १४ श्लोक।

उदाहरणं तु ग्रन्थविस्तरभयान्नात्रास्माभिर्लिखितं तच्चैव मकरन्दात् कर्तव्यं द्रष्टव्यं चेति ।

मकरन्द में कहा है कि १५४२ को अभीष्ट शक में घटाने से अभीष्ट गुरु भगण राशि होती है । इसमें १० जोड़कर ३ का भाग देने से अंश तथा राशि में दशमांश घटाने पर पाठान्तर से जोड़ने पर कला और ७८६ से भाग राशियों में देने से विकला फल होता है । इस गुरु भगण राशि में ६० का देने से जो राशि हो तत्तुल्य राशि गुरु की गत राशि होती है । इसमें एक जोड़ने पर जो संख्या हो उसके समान ६० संवतों में जिसकी प्राप्ति हो वह संवत् चैत्र शुक्ल से होता है ।

इस अंशादि को १२ से गुना करने से जो दिनादि प्राप्त हो तत्तुल्य दिन मेष के सूर्य से पूर्व इसकी प्रवृत्ति होती है ॥ १२-१३ ॥

उदाहरण तो ग्रन्थ बढ़ जाने के नाते यहाँ नहीं दिया जा रहा है । उस उदाहरण को तो मकरन्द से ही करना देखना चाहिये ।

राजावली में कहा है—'शाकः सूर्येषुचन्द्रैश्च हीनः शेषः समाः समा । गताऽब्दास्तत्र विज्ञेया वत्सरानयने पुनः । याताब्दा यमवर्जिता नगगुणा शून्याम्बराङ्गोद्धृता माद्यं लब्धमिताऽब्दनेत्रदहनाढ्यं साब्दशक्रेन्दुतः । दिग्भागाप्तकलायुतं प्रभवतोऽब्दाः षष्टिशेषाः स्मृताः । शेषांशाः रविभिर्हता दिनमुखं मेषाऽर्कतः प्राग्भवेत्' ॥ १२–१३ ॥

अन्य भी शक्राक्षेन्दुवियुक्शको नगगुणः शून्याम्बराङ्गोदधृतो माद्यं लब्धमिताऽब्द-वेददहनाढ्यं साब्दभूपेन्दुतः । दिग्भागा सकलायुतं प्रभवतोऽब्दाषष्टिशेषा स्मृताः । शेषांशा रविभिर्हता दिनमुखं मेषाऽर्कतः प्राग्भवेत्' ( ) ॥ १२–१३ ॥

नोट—पुस्तक में—'ग्रहा ग्रहाणां' 'लवा ग्रहा' 'रसकुञ्जराङ्गम्' यहाँ पर मातृका के आधार पर दिया है । मातृका में 'स्वीयदिगंशयुक्ता' यह पाठान्तर है ॥ १२-१३ ॥

टिप्पणी —ज्योतिष के इतिहास का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि मकरन्द नाम का कोई श्लोक बद्ध ग्रन्थ नहीं है किन्तु सारणी रूप ग्रन्थ अवश्य है और आज भी मकरन्द के पञ्चाङ्ग प्रकाशित होते है । आचार्य पं० मकरन्द जी का जन्म आज से ५०० वर्ष पूर्व हुआ था । इनका १४०० जन्म शक है तथा सारिणी भी १४०० से प्राप्त होती है । इसका परिवर्तन समय-समय पर हुआ है । यह सुन्दर पञ्चाङ्ग के आनयन की सारणी है ।यह पद्य मकरन्द विवरण में है ॥१२–१३॥

नर्मदा के दक्षिण संवत् आनयन

शाकः सार्कः षष्टितष्टो नर्मदादक्षिणे भवेत् ।
संवत्सरोऽन्यदेशे स्यात्स एव भवसंयुतः ॥ १४ ॥

शक में १२ जोड़कर ६० से भाग देने पर नर्मदा के दक्षिण में संवत् होता है और अन्य देश में ११ जोड़कर जो हो वह संवत् होता है ॥ १४ ॥

विशेष—मुहूर्तगणपति में कहा है 'शाकों द्वादशभिर्युक्तः षष्टिहृद्वत्सरो भवेत्। रेवायां दक्षिणे भागे मानवाख्यः स्मृतो बुधैः। स एव नवभिर्युक्तो नर्मदायास्तथोत्तरे' (१ अ० १५-१६ श्लोक) ॥ १४ ॥

अथ संवत्सरनामानि। श्रीपतिः[1]—

अब आगे ६० संवतों के नाम आचार्य श्रीपति के वाक्य से बताते हैं।

प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः।
अङ्गिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैश्वरः॥ १५॥
बहुधान्यः प्रमाथी च विक्रमो वृषसंज्ञकः।
चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पर्थिवो व्ययः॥ १६॥
सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतः खरः।
नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ॥ १७॥
हेमलम्बो बिलम्बश्च विकारी शार्वरी प्लवः।
शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसुपराभवौ॥ १८॥
प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत्।
परिधावी प्रमाथी च आनन्दो राक्षसोऽनलः॥ १९॥
पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थो रौद्रदुर्मती।
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः क्रोधनः क्षयः॥ २०॥

१ प्रभव, २ विभव, ३ शुक्ल, ४ प्रमोद, ५ प्रजापति, ६ अङ्गिरा, ७ श्रीमुख, ८ भाव, ९ युवा, १० धाता, ११ ईश्वर, १२ बहुधान्य, १३ प्रमाथी, १४ विक्रम, १५ वृष, १६ चित्रभानु, १७ सुभानु, १८ तारण, १९ पार्थिव, २० व्यय, २१ सर्वजित्, २२ सर्वधारी, २३ विरोधी, २४ विकृत, २५ खर, २६ नन्दन, २७ विजय, २८ जय, २९ मन्मथ, ३० दुर्मुख, ३१ हेमलम्ब, ३२ विलम्ब, ३३ विकारी, ३४ शार्वरी, ३५ प्लव, ३६ शुभकृत्, ३७ शोभन, ३८ क्रोधी, ३९ विश्वावसु, ४० पराभव, ४१ प्लवंग; ४२ कीलक, ४३ सौम्य, ४४ साधारण, ४५ विरोधकृत्, ४६ परिधावी, ४७ प्रमाथी, ४८ आनन्द, ४९ राक्षस, ५० अनल, ५१ पिङ्गल, ५२ कालयुक्त, ५३ सिद्धार्थ, ५४ रौद्र, ५५ दुर्मति, ५६ दुन्दुभी, ५७ रुधिरोद्गारी, ५८ रक्ताक्ष, ५९ क्रोधन, ६० क्षय ये ६० संवत्सर होते हैं॥ १५–२०॥

बारह युग का ज्ञान

युगं भवेद्वत्सरपञ्चकेन युगानि च द्वादशवर्षसङ्ख्या।
भवन्ति तेषामधिदेवताश्च क्रमेण वक्ष्यामि मुनिप्रणीतम्॥ २१॥

पांच वर्षों का एक युग होता है और युग बारह होते हैं अर्थात् एक-एक युग में पाँच प्रभव वर्षादि के १२ युग होते हैं या यों समझिये प्रभवादि पाँच की युग संज्ञा होती है।

इन बारह युगों में ६० वर्षात्मक काल होता है। उन बारह युगों के जो मुनियों द्वारा कथित अधिपति होते हैं उन्हें मैं क्रम से बताता हूँ ॥ २१ ॥

बारह युगों के अधिपति

[1]विष्णुर्जीवः शक्रो दहनस्त्वष्टा चाहिर्बुध्न्यः पितरः।
विश्वे सोमश्चेंद्रो ज्वलनो नासत्याख्यश्च भगः॥ २२॥

प्रथम युग का स्वामी विष्णु, दूसरे का जीव (बृहस्पति), तीसरे का शक्र (इन्द्र), चौथे का दहन (अग्नि), पांचवें का त्वष्टा (प्रजापति), छटे का अहिर्बुध्न्य, सातवें का पितर, आठवें का विश्वेदेवा, नवें का सोम, दशवें का इन्द्राग्नि, ग्यारहवें का अश्विनी कुमार और बारहवें युग का भग (सूर्य) अधिक होता है ॥ २२ ॥

विशेष—प्रकाशित बृहज्ज्योतिसार में 'विश्वेदाश्चन्द्रज्वलनौ नासात्यनामानौ च भग' यह पाठान्वर है ॥ २२ ॥

समाससंहिता में कहा है 'विष्णुगुरुशक्रहुतभुक्त्वष्टाहिर्बुध्न्यपित्र्यविश्वानि। सोममथेन्द्राग्न्याख्यं त्वाश्विनमपि भागसंज्ञं च' (बृ० सं० ७ अ० २३ श्लोक भट्टो०) ॥ २२ ॥

वराहः[2]—

बारह युगों के उत्तमादि भाग वराह के आधार पर

चत्वारि मुख्यानि युगानि तेषां विष्ण्विन्द्रजीवानलदैवतानि।
चत्वारि मध्यानि च मध्यमानि प्रान्त्यानि चत्वार्यधमानि विन्द्यात् ॥२३॥

पूर्वकथित बारह युगों में बिष्णु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि जिनके देवता हैं वे उत्तम, मध्य के चार (प्रजापति, अहिर्बुध्न्य पितर और विश्वेदेव) जिनके देवता हैं वे मध्यम और अन्त के चार (सोम, शक्रानल, अश्वि और सूर्य) जिनके देवता हैं वे अशुभ होते हैं ॥ २३ ॥

समाससंहिता में कहा है 'चत्वारि युगान्यादौ शुभानि मध्यानि मध्यमफलानि। चत्वार्यन्त्यानि न शोभनानि वर्षैर्विशेषोऽत्र' (बृ० सं० ७ अ० २६ श्लोक भट्टो०) ॥२३॥

[3]श्रीपतिः—

प्रत्येक युग के अन्दर होने वाले ५. ५ वर्षों के नाम व देवता श्रीपति के अधार पर

संवत्सरः प्रथमकः परिवत्सरोन्यस्तस्मादिडान्विदितिपूर्वपरापरे स्युः।
एवं युगेषु सकलेषु तदीयनाथा वह्न्यम्बुशीतगुविरञ्चिशिवाः क्रमेण ॥ २४॥

---

१. बृ० ज्यो० सा० ४ पृ०।
२. ज्यो० नि० २६ पृ० १५-२० श्लोक।
३. बृ० सं० ८ अ० २६ श्लोक।

आचार्य श्रीपति का कहना है कि पहला संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इडावत्सर, चौथा अनुवत्सर और पाँचवा इदवत्सर संज्ञक होता है। इनके स्वामी क्रम से अग्नि, सूर्य, चन्द्र, प्रजापति और शिव हैं। जैसे—संवत्सर का स्वामी अग्नि, परिवत्सर का सूर्य, इडावत्सर का चन्द्र, अनुवत्सर का प्रजापति व इद्वत्सर का स्वामी शिव होता है ॥ २४ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'आदौ संवत्सरो ज्ञेयो युगस्थानन्तदैवतः। भानुमद्दैवतः प्रोक्तो द्वितीयः परिवत्सरः। इडावत्सरसंज्ञश्च तृतीयः सोमदैवतः। अनुवत्सरकस्तुर्यः प्राजापत्यः समीरितः। तथैवेदवत्सरो गौरीदैवतः स तु पञ्चमः। युगं तैः पञ्चभिर्वर्षैः षष्टिर्द्वाशभिर्युगैः' (१ प्र० १८–२० श्लोक) ॥ २४ ॥

विशेष— ज्योतिष सार में 'पूर्वपदाद् भवेयुः यह पाठान्तर है ॥ २४ ॥

बृहत्संहिता में भी कहा है 'संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्कं इदादिकः शीनमयूखमाली। प्रजापतिश्चाप्यनुवत्सरः स्यादिद्वत्सरः शैलसुतापतिश्च' (७ अ० २४ श्लोक) ॥ २४ ॥

[1]वराहः—

पूर्वकथित १२ युगों के स्वामियों के नाम वराह के बश

विष्णुः सुरेज्यो बलिभिहुताशो त्वष्टोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च।
क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमशक्रानलाख्याश्च भगाः प्रदिष्टाः ॥ २५ ॥

आचार्य वराहमिहिर ने भी पूर्वोक्त क्रम से ही प्रथम युग का बिष्णु, दूसरे का सुरेज्य (वृहस्पति) तीसरे का बलमित् (इन्द्र) चौथे का हुताश (अग्नि), पाचवें का त्वष्टा (प्रजापति), छटे का उत्तरप्रोष्ठपदाधिप (अहिर्बुंन्य), सातवें का पितर, आठवें का विश्वेदेव, नवें का सोम, दशवें का शक्रानल (इन्द्राग्नि), ग्यारहवें का अश्वि (अश्विनी कुमार) और बारहवें युग का भग (सूर्य) ये स्वामी हैं। ऐसा कहा है ॥ २५ ॥

और भी भिन्न ज्योतिषसार में 'विष्णुर्जीवः शुक्रोदहनस्त्वष्टा महेश्वरः पितरः। विश्वेदेवाश्चद्र' (३२) ॥ २५ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'कृष्णः सूरिस्त्विद्रो ज्वलनस्त्वष्ट्रा चाहिर्बुंन्यः पितरः। विश्वेचन्द्रस्त्विन्द्रो दहनस्त्वश्विन्याख्यो भगस्त्वपरः' (६ अ० २८ श्लोक)।

तथा मुहूर्तगणपति में 'तदीशा वन्हिजीवेन्द्रपावकस्त्वष्टसंज्ञकाः। अहिर्बुंन्यश्च पितरो विश्वदेवा निशाकरः पुरुहूतोऽनलो (१ प्र० ११२ श्लोक) ॥ २५ ॥

---

१. बृ० सं० ८ अ० २३ श्लोक।

पूर्वोक्त पाँच संवत्सरों का फल

[1]वृष्टिः समाद्ये वहुला द्वितीये प्रभूततोया कथिता तृतीये ।
पश्चाज्जलं मुञ्चति यच्चतुर्थं स्वल्पोदकं मुञ्चति पञ्चमश्च ॥ २६ ॥

आचार्य वराहमिहिर का कहना है कि संवत्सर नामक वर्ष में मध्यम रूप से श्रावणादि चार मासों में वृष्टि होती है, परिवत्सर नामक वर्ष में आद्य भाग में (श्रावण, भाद्र में), इदावत्सर नामक वर्ष में चारों मासों में बहुत वृष्टि, अनुवत्सर नामक वर्ष में अन्त में (आश्विन व कार्तिक में) वृष्टि होती है और इद्वत्सर नामक वर्ष में थोड़ी वर्षा होती है ॥२६॥

मतान्तरम्[2]--

मतान्तर से

आनन्दादेर्भवेद्ब्रह्मा भवादेर्विष्णुरेव च ।
जयादेः शङ्करः प्रोक्ताः सृष्टिपालननाशकाः ॥ २७ ।

आनन्दादि २० का ब्रह्मा, भवादि २० का विष्णु और जयादि २० का शंकर इसलिये स्वामी होते हैं कि एक सृष्टि करने वाला, दूसरा पालन करने वाले और तृतीय संहार करने वाला है ॥२७॥

अब आगे तत्त्वविवेक नामक ग्रन्थ के वचनों से वाष्प की उत्पत्ति व इस से होने वाले भूगोलिक खगोलीय चमत्कार एवं कठिन रोगों का भी ज्ञान कैसे होता है। इसे बताते हैं ।

वाष्पोत्पत्तिः । तत्त्वविवेके--

वाष्प निदान से शीतादि उत्पत्ति ज्ञान

[3]ऊर्ध्वं कुगोलादध एव चाग्नेर्भूर्वायुरस्त्यत्र सदैव शीतम् ।
महत्कुतः कैरपि योजनैस्तद्वाष्पाम्बुदाद्यं जनयत्यपूर्वम् ॥ २८ ॥
तद्वाष्परूपं कथयामि सम्यक् यतोऽन्यवैचित्र्यमपीहि खस्थम् ।

श्री कमलाकर भट्ट ने अपने सिद्धान्ततत्त्वविवेक नामक ग्रन्थ में कहा है कि भूगोल से ऊपर और अग्निगोल के नीचे ही भूवायु रहती है । उक्त दोनों गोल के मध्य में सदा ही अधिक शीत की स्थिति होती है । वह शीत पृथ्वी से उँचा कितने योजन अर्थात् बारह योजन पृथ्वी से ऊपर अपूर्व वाष्प व मेघादि को पैदा करता है । क्योंकि भूवायु की स्थिति भी बारह योजन ऊपर ही भूमि में रहती है । 'भूमेर्बहिर्द्वादश यो-

१. वृ० सं० ८ अ० २३ श्लोक ।
२. ज्यो० नि० २९ पृ० ६१ श्लोक ।
३. सि० तत्त्व मध्यमा० १६९–२१३ = २८-४२ ॥

जनानि भूवायुः' ऐसा भास्कराचार्य जी ने कहा है। उन भूवायु सम्बन्धी चमत्कारों को अच्छी तरह से समस्त भेदों के साथ कहता हूँ। जिन वाष्पों से आकाश में विचित्रिता दृष्टि गोचर होती है उन्हें भी बताता हूँ ॥२८–२८½॥

वाष्प से इन्द्रधनुषादि का ज्ञान

अग्न्यम्बुवायुप्रभवाः सदोर्ध्वं बाष्पाः कुपृष्ठाद्गगनं प्रयान्ति ॥ २९ ॥
अनेकवर्णं वियतीन्द्रचापं ग्रहात्समन्तात्परिवेष उक्तः।
तथैव भानां पतनं च विद्युत्तथैव गन्धर्वपुरं विचित्रम् ॥ ३० ॥

भूगोल के अन्तर्गत अग्नि, जल वायु से होने वाली गैस आकाश में जाकर अनेक रंगों में धनुष जैसी आकृति बन जाती है। जिसे जनता इन्द्रधनुष के नाम से व्यवहार करती है। तथा ग्रहों के चारों ओर जो परिधि बनती है उसे परिवेष, नक्षत्रों का या यों समझिये ताराओं का गिरना उल्का, विजली चमकना एवं विचित्र गन्धर्वनगर का दीखना ये सब वाष्प से ही उत्पन्न होते हैं २८½–३०॥

वाष्प से अन्य भी

ये केतवोरिष्टफलप्रदाः खेऽम्बुदाश्च भूकम्प इहास्ति लोके।
मारी महाख्या करकाप्रपाताद्यं सर्वमित्थं किल वाष्पतोऽत्र ॥ ३१ ॥

और भी जो अनिष्ट फल देने वाले केतु, आकाश में मेघ, भूकम्प, महामारी (हैजा) कुहरा ओला गिरना वगैरह समस्त दूषित पदार्थ वाष्प से ही उत्पन्न होते हैं ॥३१॥

इन्द्रधनुष में अनेक रङ्ग का कारण

विरलावयवैर्वाष्पैर्मिश्रितैः सूर्यरश्मिभिः।
अधोधः संस्थितैश्चित्रान्वर्गान्नश्यन्ति[1] भूस्थिताः ॥ ३२ ॥

इस भूगोल पर एक के नीचे एक स्थित होने से मनुष्य जब अघन अवयवों से युक्त वाष्प को सूर्य की किरणों से मिश्रित देखता है तो वाष्प में अनेक वर्ण हो जाते हैं ॥३२॥

उल्का पतन का कारण

बाष्पैः साकं गन्धकादिपरागा अपि भूमितः।
गच्छन्त्यूर्ध्वं ततश्चाग्निप्रयोगादग्निशस्त्रवत् ॥ ३३ ॥
तारारूपाः सुगोलाग्निकणा भूमिं प्रयान्ति हि।

जब भूमि से गन्धकादि पदार्थ वाष्प के साथ आकाश में ऊँचे जाते हैं तो ऊपर अग्नि का गोल है इसलिये अग्निशस्त्र की तरह गन्धकादि पदार्थ अग्नि गोल से सम्पर्क करके पटाके की तरह भूमि पर गोल कण अग्नि का गिरता है। उसे ही लोग तारारूप मानकर कहते हैं कि उल्का पतन हो गया है ॥३३½॥

---

१. वर्णान् पश्यन्ति समुचितः पाठः।

मेघ (बादल) का कारण

तथा शैत्यप्रयोगेण वाष्पा एव घने घना: ॥ ३४ ॥
इतस्ततो वायुवशाद्गच्छन्ति वियति स्थिता: ।

जब कि भूमि से निकली हुई गैस शीत से संमिश्रण करती है तो आकाश में मेघ हो जाते हैं। तथा भूवायु वश ही आकाश मे इधर उधर घूमते हैं ।।३३ $\frac{1}{2}$–३४$\frac{1}{2}$।।

भूकम्प का लक्षण

पाषाणै: कठिना भूमिर्यत्र तत्र कुतो बलात् ॥ ३५ ॥
वाष्पनि:सरणात्कम्प: शब्दोऽपि सततं भुवि ।
अत एवान्यभूमौ तु विनायासात्कुत: किल ॥ ३६ ॥
वाष्पनि:सरणे तत्र कदाचिद् रिष्टदोऽपि स: ।
भूमिकम्प: पर्वतादौ सर्वदैवेति निर्णय: ॥ ३७ ॥

जहाँ की भूमि पत्थरों से कड़ी होती है वहाँ की भूमि से सहसा (अचानक) जब वाष्प निकलती है तो भूमि काँपने लगती है और शब्द भी उस कंपन काल में होता है। इससे सिद्ध होता है कि धरती हलने में भूमि का फटना ही हेतु है।

बाल्मीकि रामायण में भी कहा है 'तस्य शब्दोमहानासीन्निर्घातसमनिस्वनः। भूमिकम्पश्च सुमहान् पर्वतस्येव दीर्यत:' (बा० का० ६७ सर्ग १८ श्लोक)।

सारांश—भूगोलान्तर्गत जल, अग्नि, वायु तत्त्वादि के संघर्ष से उत्पन्न वायु के चक्र से विदीर्ण भूमि काँपने लगती है। इस विषय का विशेष वर्णन बारहवें प्रकरण में आगे अवलोकन करें।

कोमल भूमि में विना प्रयास के जो भूमि से कभी वाष्प निकलती है तो पृथ्वी में कम्प होता है। यह कम्पन कभी शुभ करने वाला भी होता है। अधिकतर भूकम्प कष्टदायक ही होता है ॥ ३४–३७ ॥

विशेष—यहाँ रिष्ट शब्द से कल्याण का ही ग्रहण किया गया है, क्योंकि अमरकोष में कहा है 'रिष्टं क्षेमाशुभाभावे'। परन्तु फलित ज्योतिष में प्राय: रिष्ट से कष्ट का ही प्रतिपादन पाया जाता है। सारावली में कहा है—'नि:शेषरिष्टहन्ता भुजङ्गलोकस्य गरुड इवेति' प्राय: कर सर्वदा जहाँ की भूमि पहाड़ों से कठिन होती है अर्थात् पर्वती इलाकों में भूकम्प होता हैं ॥ ३४$\frac{1}{2}$–३७ ॥

महामारी हैजा का लक्षण

दुष्टदिष्टवशाद्भूस्थविषसम्बन्धतोऽत्र ये ।
बाष्पा नृदेहलग्नास्तद्वशेन मरणं यत: ॥ ३८ ॥
महामारीति नाम्ना वै ख्याता लोके प्रजायते ।

दुर्भाग्यवश भूमिस्थ जहर से सम्बन्ध करके जो वाष्प निकलती है वह जब मनुष्य के शरीरों में मिलती है तो उनके कारण जो जन क्षति होती है। इसलिये लोक (संसार) में मनुष्य उसे महामारी नाम से कहते हैं ॥ ३८–३८½ ॥

उदयकालीन सूर्य बिम्ब की लालिमा का कारण

अथ वाष्पाम्बुयुगं बिम्बमुदयेऽर्कस्य पश्यति ॥ ३९ ॥
तेन दृश्यं भवेद्रक्तवर्णं भूपृष्ठगस्य तत् ।
वेलाहीनं कालहीनं खगजं ग्रहणादिकम् ॥ ४० ॥
कदाचित्कुत्रचिद्वान्योत्पातजं तद्धि वाष्पजम् ।

उदयकालीन सूर्य को जलवाष्प से परिप्लुत ही देखा जाता है। इसलिये भूपृष्ठ में स्थित जन लाल वर्ण के ही सूर्य को देखते हैं। आकाशस्थ ग्रहणादिक वेला व काल से रहित होकर कभी वा कहीं भी वाष्पजन्य अन्य उत्पात की तरह दृष्टिगोचर होता है ॥ ३८½–४०½ ॥

बीज कर्म का खण्डन

वेलाहीनेऽन्तरं यत्तद्बीजं मत्वैव कालजम् ॥ ४१ ॥
कर्मार्हं खचरं शुद्धं नाशयन्त्यधमा बलात् ।
इत्थं संक्षेपतः प्रोक्तं विस्तारोऽस्यान्यशास्त्रतः ॥ ४२ ॥

समय के परिवर्तन से जो ग्रहों में अन्तर पड़ता है उसे बीजसंस्कार कहते हैं। इस बीज से संस्कृत ग्रह कर्म योग्य होता है। ऐसा जो लोग कहते हैं वे अधम हैं। मैंने यहाँ संक्षेप में कहा है। इसका विस्तार अन्य शास्त्रों से जानना चाहिए ॥ ४०½–४२ ॥

विशेष—यहाँ पर कमलाकर ने बीज का खण्डन किया है। अर्थात् निर्बीज ग्रह ही कार्यों में उपयुक्त होते हैं, क्योंकि सूर्यसिद्धान्त में यह संस्कार नहीं है। इसलिये युक्ति शून्य खण्डन भास्कराचार्यजी का मेरी दृष्टि में उचित नहीं हैं ॥ ४०½–४२ ॥

इति श्रीमज्ज्योतिर्विद्वर्यगयादत्तात्मजश्रीरामदीनज्योतिर्विद्विरचिते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने चतुर्थं संवत्सरप्रकरणं समाप्तम्

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिषी गयादत्त के पुत्र श्रीरामदीन ज्योतिर्विद् द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक ग्रन्थ का संवत्सर प्रकरण नाम का चौथा प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधरचतुर्वेदकृता चतुर्थप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी व्याख्या पूर्तिमगात् ॥४॥

अथ पञ्चमं वर्षाप्रकरणं व्याख्यायते ।

अब आगे पाँचवे प्रकरण का प्रारम्भ करते हैं। इस में वर्षा का विचार किया गया है। अर्थात् भूमि में वर्षा कब व कितनी होगी इस बात को वायुवश तथा अनेक प्रकार के ग्रह योगों से विविध ग्रन्थों के आधार पर बताते हैं। क्योंकि अन्न ही संसार का जीवन है और अन्न की उत्पत्ति वर्षा से ही होती है। इसलिये इस प्रकरण में इसी बात का विवेचन करते हैं। पाठक गण इसे अध्ययन करने पर प्रसन्न इस लिये होंगे कि बहुत सी लोकोक्ति इस में शास्त्रोक्त पद्धति से ओत प्रोत हैं।

तत्रादौ वायुपरीक्षा--

भूवायु कक्षा में होने वाले चमत्कार

लल्ल:[1]--

निर्घातोल्कापरिवेषविद्युच्छक्रचापसलिलमुचः ।
गन्धर्वनगरपूर्वा मध्ये भूवायुकक्षायाम् ॥ १ ॥

आचार्य लल्ल ने अपने 'शिष्यधीवृद्धिद' ग्रन्थ में कहा है कि निर्घात, उल्का, परिवेष, विद्युत्, इन्द्रधनुष, मेघ, अपूर्व गन्धर्वनगर इत्यादि समस्त चमत्कार भूवायु में ही होते हैं। अर्थात् जहाँ तक भूवायु की स्थिति आकाश में है वहीं तक पूर्वोक्त चमत्कार दीखते हैं ॥१॥

कहा है—अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम् ॥१॥

[2]भास्करोऽपि—

आकाश में भूवायु की स्थिति का ज्ञान

भूमेर्बहिर्द्वादश योजनानि भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम् ।
इति ॥ २ ॥

भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है कि भूमि से बारह योजन तक भूमि की वायु रहती है तथा इसी में ही मेघ बिजली आदि रहती है ॥२॥

आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त समय में हवा से वर्षा का ज्ञान

[3]आषाढ्यां भास्करास्ते सुरपतिककुभे वाति वाते सुवृष्टिः
सस्यध्वंसं प्रकुर्याद्यदि दहनदिशि मन्दवृष्टिर्यमेन ।

---

१. प्रा० मा० ऋ० वि० ४० पृ० ।

२. १८ पृ० पा० लि० ३४ ३३२ श्लोक १-२ श्लोक ।

३. म० यू० चि० १८ पृ० ३२ श्लोक ।

नैऋंत्यां मध्यमा स्याद्वरुणबहुजला: वायवे वायुकोप:
कौवेर्यां सस्यपूर्णा भवति वसुमती तद्वदीशानकोणे ॥ ३ ॥

यदि आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त समय में पूर्व दिशा की हवा चले तो सुन्दर वृष्टि होती है। यदि उसी दिन व समय अग्नि कोण से हवा वहे तो धान्यों का नाश, दक्षिण की वायु से थोड़ी वर्षा, नैऋंत्य कोण की से मध्यम वर्षा, पश्चिमी दिशा की हवा से अधिक वर्षा, वायव्य कोण की से हवा का प्रकोप, उत्तर और ईशान कोण की हवा से वसुन्धरा धान्यों से परिपूर्ण होती है ॥३॥

तथा कृषिपराशर में कहा है 'आषाढ्यां पौर्णमास्यां सुरपतिककुभो वाति वातः सुवृष्टिः। सस्यध्वंसं प्रकुर्याद् दहनदिशिगतो मन्दवृष्टिर्यमेन ॥ नैऋत्यां शस्यहानिर्वरुणादिशि जलं वायुना वायुकोप:। कावेर्यां शस्यपूर्णां प्रथयति नियतं मेदिनीं शम्भुना च' (पृ० १३ श्लो० ५९॥ ॥३॥

अन्यः—

प्रकारान्तर से

आषाढमासस्य च पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदि वाति वातः।
पूर्वस्तदा सस्ययुता धरित्री नन्दन्ति लोकाः सजला घनाः स्युः ॥ ४ ॥

यदि आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त समय में पूर्व की हवा चले तो भूमि धान्यों से परिपूर्ण व बादल जलवाले आते हैं और संसारी जीव आनन्दित होते हैं ॥४॥

गर्ग जी ने कहा है 'आषाढ्यां पूर्ववातेन सर्वसस्या च मेदिनी०

तथा मयूरचित्रक में 'आषाढ़मासस्य च पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदि वाति वायुः। पूर्वस्तदा सस्ययुता च मेदिनी नन्दन्ति लोका जलदायिनो घनाः ॥ (स० भ० पु० पा० लि०सं० ३४३३२ श्लो० ७७) ॥४॥

और भी मेघमाला में रुद्रयामलीय वाक्य 'आषाढ़ी पूर्णिमायां तु पूर्ववातो यदा भवेत्। निष्पत्तिः सर्वधान्यानामारोग्यञ्च भविष्यति' स० भ० पु० पा० लि० सं० २७२०२ श्लो० ४२) ॥४॥

ओर भी वनमाला में 'शुचिवलक्षदलान्ततमोमुखे यदि वहत्यनिलो हरिदिग्भवः। जलमलं सृजति क्षितिमण्डले बहुमुदं बहुधा वसुधाभृतः ॥४॥

तथा वृहत्संहिता में भी 'पूर्वः पूर्वसमुद्रवीचिशिखरप्रस्फालनाघूर्णितश्चन्द्रार्कांशुसटाकलापकलितो वायुर्यदाकाशतः। नैकान्तस्थितनीलमेघपटला शारद्यसंवर्धिता, वासन्तोत्कटसस्यमण्डिततला सर्वा मही शोभते० ॥(२७ अ० श्लो० ॥४॥

आषाढ़ी के दिन अग्निकोण व दक्षिण की वायु का फल

कृशानुवाते मरणं प्रजानामन्नस्य नाशः खलु वृष्टिनाशः ।
याम्ये मही सस्यविवर्जिता स्यात् परस्परं यान्ति नृपा विनाशम् ॥५॥

यदि आषाढ़ी के दिन सूर्यास्त काल में अग्निकोण की पवन का आगमन होता है तो अन्नों का नाश, प्रजा (जन समुदाय) का मरण और वर्षा का अभाव होता है। यदि दक्षिण से हवा आती है तो पृथ्वी पर धान्यों का अभाव और परस्पर की लड़ाई से धनिकों का विनाश होता है ॥५॥

गर्गाचार्य जी ने कहा है 'आषाढ्यामग्निवातेन अस्थिशेषा मही भवेत् । आषाढी पौर्णमास्यान्तु दक्षिणो यदि मारुतः । तथा सुभटकोटीनां मही पिबति शोणितम्' ॥५॥

तथा मयूरचित्रक में 'कृशानुवायौ मरणं प्रजानामन्नस्य नाशः खलु वृष्टिनाशः । याम्ये मही सस्यविवर्जिता स्यात् कष्टं परं यान्ति नृपा विनाशम् ॥५॥

अन्य भी मेघमाला में 'आषाढ्यामग्निवातं चेदस्थिशेषा मही तदा । आषाढ़ी पूर्णिमायां तु दक्षिणो यदि मारुतः । सकूपेषु तडागेषु तथा निर्झरणेषु च । तदा न दृश्यते तोयं देवि देवो (न) वर्षति' ॥५॥

अपि च वनमाला में 'अनलकोणभवो यदि मारुतो वहति मन्दजवो रजनीमुखे । वमति भस्मकृशानुशिखाकुला वदनतः परितोऽपि वसुन्धरा । दिनकरे विकरे परिघट्टयन् दिवि घनं यदि दक्षिणमारुतः । प्लवति मन्दपयः कणिकामतो भुवि भयं जनयन् तनुतेऽम्बुदः' ॥५॥

तथा वृ० संहि० में 'यदाग्नेयो वायुमलयशिखरा स्फालनपटुः, प्लवत्यस्मिन् योगे भगवति पतङ्गे प्रवसति । तदा नित्योद्दीप्ता ज्वलनशिखरा लिङ्गितलता स्वगात्रोष्मोच्छ्वासैर्वमति वसुधा भस्म-निकरम्' (२७ अ० २ श्लोक) ॥५॥

तालीपत्रलतावितानतरुभिः शाखामृगान्नर्तयन्, योगेऽस्मिन् प्लवति ध्वनिः सपरुषो वायुर्यदा दक्षिणः । तद्वद्योगसमुत्थितस्तु गजवत्तालाङ्कुशैर्घट्टिता, कीनाशा इव मन्दवारिकणिका मुञ्चन्ति मेघास्तदा' (२७ अ० ३२ श्लोक) ॥५॥

तथा लोकोक्ति में भी 'अगिन कोन जो बहे समीरा । पड़ैं काल दुःख सहै शरीरा ॥ दखिन बहे जल थल अलगोरा । ताहि समय जूझैं बड़ बीरा' ॥५॥

आषाढी के दिन सूर्यास्त के समय नैऋत्यकोण व पश्चिमी हवा का फल

नैशाचरो वाति यदात्र वातो न वारिदो वर्षति भूरि वारि ।
प्रत्यक्समीरे सुखिनो मनुष्या जलान्नपूर्णा च वसुन्धरा स्यात् ॥ ६ ॥

यदि आषाढी पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त काल में नैऋत्यकोण की हवा बहती है तो मेघ अधिक वर्षा नहीं करते किन्तु आकाश को आच्छादित ही करते हैं।

यदि उसी समय पश्चिम की हवा चलती है तो अधिक वृष्टि होने से भूमि अन्नों से परिपूर्ण हो जाती है ॥६॥

श्री गर्गाचार्य जी ने कहा है 'आषाढ्यां नैऋतो वायुर्यदि तत्र प्रदृश्यते। विक्रयित्वा सदा सर्वं कर्त्तव्यो धान्यसङ्ग्रहः ॥ आषाढ्यां वारुणे वाते वृष्टिः सस्यं भवेद्ध्रुवम्' ॥६॥

तथा मयूरचित्रक में 'नैशाचरो वाति यदाऽत्र वातो न वारिदो यच्छति वारि भूरि। तदा मही सस्यविवर्जिता स्यात् क्रन्दन्ति लोकाः क्षुधया प्रपीडिताः। आषाढमासे यदि पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदि वारुणोऽनिलः। प्रवाति नित्यं सुखिनः प्रजाः स्युर्जनान्नयुक्ता वसुधा तदा स्यात्' ॥६॥

अपि च वनमाला में 'असुरकोणभवः क्षणदामुखे वहति चेदमलो विजलोऽम्बुदः। अतिकरालकपालकुलावृता वसुमती रुदतीव विलक्ष्यते। वरुणवायुरिला रजसां कणा निकरमुग्रजवो द्रुतमुत्क्षिपन्। वहति चेदमितो धरणीभृतो भुजबलं सकलं व्रजति क्षयम्' ॥६॥

और भी वनमाला में 'आषाढी पूर्णिमायां तु नैऋत्यां यदि मारुतः। विक्रयित्वा तदा सर्वं कर्तव्यो धान्यसङ्ग्रहः ॥ आषाढी पूर्णिमायां तु पश्चिमो यदि मारुतः। निष्पत्तिः सर्वधान्यानां लोके वर्षति माधवः' ॥६॥

तथा बृहत्संहिता में 'सूक्ष्मैलालवलीलवङ्ग निचयान् व्याघूर्णयन् सागरे भानोरस्तमये प्लवत्यविरतो वायुर्यदा नैऋतः। क्षुत्तृष्णावृतमानुषास्थिशकलप्रस्तारभारच्छदा, मत्ता प्रेतवधूरिवोग्रचपला भूमिस्तदा लक्ष्यते। यदा रेणूत्पातैः प्रविचलसटाटोपचपलः प्रवातः पश्चाच्चेद्दिनकरकरापातसमये। तदा सस्योपेता प्रवरनिकराबद्धसमरा क्षितिः स्थानस्थानेष्वविरतवसामांसरुधिरा' ॥६॥

एवं लोकोक्तियाँ 'नैऋत कोन बूंद ना परै। राजा परजा भूखौं मरै ॥
नैऋत भई बूंद ना परै। राजा परजा भूखौं मरै ॥६॥

आषाढी पूर्णिमा सूर्यास्त समय में वायुकोण व उत्तरी पवन का फल

वायव्यवाते जलदागमे स्यादभ्रस्य नाशः पवनैः प्रचण्डैः।
सौम्येऽनिले धान्यजलाकुला धरा नन्दन्ति लोका भयदुःखवर्जिताः ॥ ७ ॥

यदि आषाढ़ी के दिन सूर्य के अस्त काल में वायव्य कोण की हवा चलती है तो वर्षा काल में प्रखर वायु के चलने से आकाश दूषित होता है।

यदि उसी समय उत्तरी हवा चलती है तो धनधान्य से भूमि परिपूर्ण होती है और संसारी जीव भय व दुःख से रहित होकर प्रसन्न रहते हैं ॥७॥

गर्गाचार्य जी ने कहा है 'शलभादि च वायव्ये मशकाश्च पतन्ति हि। उत्तरे मारुते लोका गीतवाद्यशुभैर्युता' ॥७॥

तथा मयूरचित्रक में 'वायव्यवाते जलदागमः स्यादन्नस्य नाशः पवनोद्धता च । सौम्येऽनिले धान्यजलाकुला धरा नन्दन्ति लोका भयदुःखवर्जिताः ॥७॥

मेघमाला में कहा हैं 'आषाढ़ी पूर्णिमायां तु वायव्यां यदि मारुतः । नकुलाः शलभाश्चैव मूषकाश्च पतन्ति वा' ॥७॥

अन्य भी वनमाला में 'अनिलकोणभवः पवनो यदा वहति सायमिला विमला भवेत् । अतितरां नवनीरदधारया फलमया हि तया भुवि पादपाः ॥ सति निशावदने गगने रवौ चलित उत्तरतः शुचि पर्वणि । वहति मन्दगतिः पवनो धरारवधरासितवारिधराकुलाः' ॥७॥

और भी वृ० सं० में 'आषाढ़ी पर्वकाले यदि किरणपतेरस्तकालोपपत्तौ वायव्यो वृद्धवेगः पवनघनवपुः पन्नगार्धानुकारी । जानीयाद् वारिधाराप्रमुदितमुदितामुक्तमण्डूककण्ठां, सस्योद्भासैकचिह्नां सुखबहुलतया भाग्यसेनामिवोर्वीम् ॥ मेरुग्रस्तमरीचिमण्डलतले ग्रीष्मावसाने रवौ, वात्या मोदिकदम्बगन्धसुरभिर्वायुर्यदा चोत्तरः । विद्युद्भ्रान्तिसमस्तकालकलना मत्तास्तदा तोयदाः, उन्मत्ता इव नष्टचन्द्रकिरणां गां पूरयन्त्यम्बुभिः' ॥७॥

तथा लोकोक्ति 'वायब बहु जल थल अतिमारी । मूस उगाह दण्ड बस नारी । उत्तर उपजै बहु धनधान । खेत वात सुख करै किसान ।

आषाढी पूर्णिमा सूर्यास्त काल में ईशान कोण की वायु का फल

ऐशेऽन्नवृद्धिर्बहुवारिपूरिता धरा च गावो बहुदुग्धसंयुताः ।
भवन्ति वृक्षाः फलपुष्पदायिनो नन्दन्ति भूपाश्च परस्परं तदा ॥ ८ ॥

यदि आषाढ़ सुदी पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त कालीन ईशान कोण की हवा चलती है तो भूमि अधिक जल से परिपूर्ण होकर अन्न को वृद्धि होती है तथा गायें भी अधिक दूध देनेवाली, वृक्ष फलफूल दाता और आपस में राज्यों की प्रीति भी बढ़ती है ॥८॥

वृहत्संहिता के आषाढी योगाध्याय में कहा है कि 'आषाढ्यां पौर्णमास्यां तु यद्यैशानोऽनिलो भवेत् । अस्तं गच्छति तीक्ष्णांशौ सस्यसम्पत्तिरुत्तमा' ॥८॥

तथा गर्गाचार्य जी ने भी कहा है 'आषाढ्यां पौर्णमास्यां तु ईशानो मारुतो भवेत् । अस्तं गच्छति शीतांशौ (तीक्ष्णांशोः ?) सस्य सम्पत्तिरुत्तमा' ॥८॥

एवं वृ० सं० में 'ऐशानो यदि शीतलोऽमरगणैः संसेव्यमानो भवेत् पुन्नागागरुपारिजातसुरभिर्वायुः प्रचण्डध्वनिः । आपूर्णोदकयौवना वसुमती सम्पन्नसस्याकुला, धर्मिष्ठाः प्रणतारयोः नृपतयो रक्षन्ति वर्णास्तदा'(२७अ० ८ श्लो) ॥८॥

अन्य भी मयूरचित्रक में 'ऐशेन वृद्धिर्बहुवारिपूरिता धरा च गावो बहुदुग्धसंयुताः । भवन्ति वृक्षाः फलपुष्पदायिनो वातेऽभिनन्दन्ति नृपाः परस्परम्० ॥८॥

तथा मेघमाला में 'आषाढ़ी पूर्णिमायान्तु ऐशानो यदि मारुतः । गीतवाद्यरता लोकाः सुभिक्षं प्रबलं भवेत्' ॥८॥

और भी वनमाला ग्रन्थ में 'दिनपतावपराक्षितिजं गते वहति शङ्करकोणभवोऽनिलः वसुमती मुदिता नवशस्यगोकुलपदैर्जलदैरभिलक्ष्यते' ॥८॥

और भी लोकोक्तियों में 'कोन इसान दुंदुमी बाजै। दही भात भोजन सब गाजै॥ 'जो कहुँ बहै इसाना कोना। उपजै विस्वा दो दो होना' ॥८॥

'सावन पछिवा भादों पुरवा, आसिन बसे इसान। कातिक कान्ता सीक न डोलै गाजैं सबै किसान०॥८॥

मुहुर्तगणपति में कहा है 'आषाढ़े पौर्णिमायां च प्रदोषे वा दिवानिशम्। प्राच्यां वायोस्तु वृष्टिः स्याद्धान्यनिष्पत्तिरुत्तमा॥ अल्पवृष्टिस्तथाग्नेय्यामग्नेर्भीतिर्महर्घता। दुर्भिक्षं रौरवं घोरमनावृष्टिश्च नैऋतौ॥ वारुण्यां च महावृष्टिर्धान्योत्पत्तिश्च मध्यमा। वायौ वायुः प्रचण्डः स्याद् वृष्टिर्धान्यं च मध्यमम्। बहुधान्यं शुभा वृष्टिरुत्तरस्यां सुखी जनः। ऐशान्यां सस्यसम्पत्तिर्धनाढया सुखिनो जनाः' (१५ प्र० २५५–२५८) ॥८॥

तथा बृहज्ज्योतिषसार में भी 'आषाढ़े पूर्णिमायाञ्चेदनिलो वाति नैर्ऋतः। अनावृष्टिर्धान्यनाशो जलं कूपे न दृश्यते॥ आषाढ़े पूर्णिमायान्तु वायव्ये यदि मारुतः। धर्मशीलस्तदा लोके धनं धान्यं गृहे गृहे। आषाढ़े पूर्णिमायान्तु ईशान्ये याति मारुतः। सुखिनो हि तदा लोका गीतवाद्यपरायणाः॥ वह्निकोणे वह्निभीतिः पश्चिमे च जलाद्भयम्। अन्यत्र यदि वायुः स्यात् सुभिक्षं जायते तदा॥' (१३ पृ०) ॥८॥

आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन ८ दिशाओं की वायु का फल

आषाढ्यां पूर्णिमायां च वायुर्वहति चाष्टदिक्।
प्रजानां सर्वसौख्यं च राज्ञां सौख्यं परस्परम्॥ ९॥

यदि आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन सायं काल सूर्यास्त समय में आठों दिशा की हवा चलती है तो जनता को सब प्रकार का सुख और राजाओं में मैत्री व सुख का उदय होता है ॥९॥

मेघमाला में कहा है 'अषाढ़ी पूर्णिमायान्तु चतुर्दिक्षु च मारुतः। धान्यानि च महर्घ्याणि वह्निदाहः प्रकीर्तितः ॥६॥

आषाढ़ी के दिन हवा न चलने का फल

आषाढ्यां यदि वा वायुर्न वहति कदाचन।
तदा सर्वत्र वृष्टिः स्यात्सस्यवृद्धिः प्रजायते॥ १०॥

यदि आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन हवा न चलती हो तो उस वर्ष सब जगह अच्छी वर्षा होने से अन्न की पैदाइश अधिक होती है ॥१०॥

तथा मेघमाला में इसके विपरीत कहा है 'निर्वातगगना देवि यदाषाढ़स्य पूर्णिमा। तदा तु सर्वमेदिन्यां जलं नास्तीति कथ्यते० ॥१०॥

आषाढ़ी के दिन खण्ड वायु का फल

आषाढ्यां खण्डवायुः स्याद्धरी च वहते यदि।
रसाज्यशर्करावृद्धिः सर्वसौख्यं प्रजायते॥ ११॥

यदि आषाढ़ी के दिन खण्डवायु सुन्दर चलती है तो रस, घी, चीनी की वृद्धि होती है और उस वर्ष में सब प्रकार का सुख होता है ॥११॥

आषाढीयोगोऽयं सम्यक् प्रोक्तो मुनिमतं समालोक्य ।
यं ज्ञात्वा दैवविदो लोके ख्यातिं समायान्ति ॥ १२ ॥

मैने यह आषाढ़ी योग का ऋषियों के मतों को अच्छी तरह समझकर वर्णन किया है। इस आषाढ़ी योग को ज्योतिषी लोग जान कर संसार में प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं ॥१२॥

अब आगे त्रैलोक्यप्रकाश ग्रन्थ के आधार पर आषाढ़ी पूर्णिमा को ६० घटी मित मध्यम मान से मान कर ५,५ घटी के १२ मासों की कल्पना करके प्रत्येक मास में वृष्टि जानने के लिये जो वर्णन है उसे बताते है ।

त्रैलोक्यप्रकाशे[1]—

त्रैलोक्य प्रकाश के आधार पर

आषाढ्यां घटिकाषष्ट्या मासद्वादशनिर्णयः ।
द्वादशपञ्चका षष्टिरित्येवं क्रममादिशेत् ॥ १३ ॥
पञ्चनाडी भवेन्मासो मासि मासि फलं पृथक् ।
यत्र नाड्यां शुभो वातो विद्युदभ्रादिगर्जनम् ॥ १४ ॥
तत्र मासि भवेद्वृष्टिरित्थं कालस्य निर्णयः ।
पूर्णिमायां विनष्टायां विनष्टं वर्षमादिशेत् ॥ १५ ॥

त्रैलोक्य प्रकाश ग्रन्थ में कहा है कि आषाढ़ी पूर्णिमा की ६० घटी मध्यम मान से मान कर उसमें १२ का भाग इसलिये देना चाहिये क्योंकि मास बारह होते हैं।

इस प्रकार १२ का भाग देने पर ५.५ घटी के १२ भाग हो जाँयगे। मेरी समझ में पूर्णिमा तिथि के स्पष्ट भोग में १२ का भाग देकर जो द्वादशांश हो उस में क्रम से मास में आने वाली वर्षा का विचार करना चाहिये। अर्थात् जिस द्वादशांश में उस दिन सुन्दर वायु, बिजली और मेघों की गर्जना होती है उस अंश के मास में वृष्टि होती है यह समस्त मासों का निर्णय है। यदि आषाढी के दिन सुन्दर वायु व मेघादि की गर्जना न हो तो उस वर्ष वर्षा का अभाव होता है ॥१३–१५॥

तथा गुरुसंहिता में भी गर्गोक्त वाक्य इस प्रकार है 'आषाढे तु घटीषष्ट्या मासद्वादशनिर्णयः । पञ्चनाडीभवेन्मासः षष्ट्या वर्षविनिर्णयः । सर्वरात्रं यदाभ्राणि वातः पूर्वोत्तरो यदि । वर्षे तत्र कणाः पुष्टाः जायन्ते जगदीप्सितम् । यदा नाभ्रस्य लेशोऽपि वातः पूर्वोत्तरो न हि । न वर्षते तदा मेघो दुष्टकालो भवेदिह । यत्र मासविभागे च निर्मलं दृश्यते नभः । तत्र हानिस्त्वनावृष्टिर्विज्ञेयं गर्गभाषितम्' ॥१३–१५॥

---

१. प्रा० भा० ऋ० वि० ४० पृ० ।

अब आगे जल्दी वर्षा देने वाले योग व प्रश्न काल में जलादि शकुन से वर्षा योग को बताते हैं।

अथ सद्योवृष्टिलक्षणं प्रश्नं चाह मयूरचित्रके[1]—

मयूरचित्रक के वश

शुक्ले पक्षे शशिनि तनुगे तोयराशिस्थिते वा
केन्द्रे याते प्रचुरमुदकं सौम्यदृष्टिप्रदिष्टम्।
पापैर्दृष्टे न च बहुजलं प्रश्नकालेऽपि तज्ज्ञै-
र्वाच्यं सर्वं फलमविकलं चन्द्रवद्भार्गवेऽपि ॥ १६ ॥

यदि प्रश्न काल में शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा जलचर राशिस्थ होकर लग्न में या केन्द्र में बली हो तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो अधिक वर्षा देने वाला होता है। यदि पापग्रह से दृष्ट हो तो अधिक जल नहीं बरसाता है। अर्थात् उस वर्ष अच्छी वर्षा नहीं होती है। उक्त प्रकार से यदि शुक्र भी हो तो प्रश्न काल में वर्षा अच्छी होगी ऐसा कहना चाहिये ॥१६॥

अब आगे जल्दी वर्षा होने का लक्षण और प्रश्न के आधार पर शीघ्र वर्षा होने के योगों को मयूर चित्रक नामक ग्रन्थ के आधार पर बताते हैं।

प्रकारान्तर से

वर्षाप्रश्ने स्पृशति सलिलं वारिकार्योन्मुखो वा
पृच्छाकाले सलिलमिति वा श्रूयते तन्मुखे वा।
दृष्टः कूपो विमलसलिलं चेद्वदेद्वारिवृष्टि-
मेतत्सर्वं भवति च फलं व्यत्ययं व्यत्ययेन ॥ १७ ॥

यदि वृष्टि सम्बन्धी प्रश्न समय में पूछने वाला जल का स्पर्श करके या जल सम्बन्धी कार्य करने वाला हो, जल सुनाई देता हो या जल का नाम ले रहा हो या शुद्ध जल का कुआँ दीख रहा तो अच्छी वर्षा होगी, ऐसा कहना चाहिये। इसके विपरीत प्रतीत होता हो तो वर्षा का अभाव होता है॥१७॥

वनमाला में कहा है—'द्रव्यं जलार्द्रं सजलं घटं वा स्पृष्ट्वा जलासन्नगतस्तदानीम्। प्रष्टाऽम्बुकामोन्मुख एव पृच्छत्यलं वदेदम्बु' ॥१७॥

तथा वृ० सं० में भी 'आर्द्रं द्रव्यं स्पृशति यदि वा वारि तत्संज्ञकं वा, तोयासन्नो भवति यदि वा तोयकार्योन्मुखो वा। प्रष्टा वाच्यः सलिलमचिरादस्ति निःसंशयेन, पृच्छा-काले सलिलमिति वा श्रूयते यत्र शब्दः' ॥१७॥

और भी कृषिपराशर में 'जलस्थो जलहस्तो वा निकटेऽथ जलस्य वा। द्रष्टा पृच्छति वृष्ट्यर्थं वृष्टिः सञ्जायतेऽचिरात् ॥१७॥

---

१. १८ पृ० पा० लि० ३४३३२।

अन्य भी

प्रष्टुर्ब्रूयाज्जलमविरलं दुर्निरीक्ष्योऽतिसूर्यः।
प्रातःकाले भवति जलदः स्निग्धवैदूर्यकान्तिः॥ १८॥

यदि प्रातः कालीन सूर्य अत्यन्त दुर्निरीक्ष्य हो तथा मेघ वैदूर्य की शोभा के समान हो तो निरन्तर वृष्टि होगी। ऐसा कहना चाहिये॥१८॥

वनमाला में कहा है 'उदयाचलमागतो दिनेशः कनकाभोऽमलविद्रुमच्छविश्चेत्। प्रतपन् किरणो न दुर्निरीक्ष्यो द्रुतमम्भः पतति क्षितौ तदानीम्'॥१८॥

तथा बृ० सं० में भी 'उदयशिखरिसंस्थो दुर्निरीक्ष्योऽतिदीप्त्या, द्रुतकनकनिकाशः स्निग्धवैदूर्यकान्तिः'॥१८॥

प्रकारान्तर

प्रातःकाले पीतरश्मिर्दुर्निरीक्ष्यो भवेद्रविः।
स्निग्धवैदूर्यकान्तिश्चेन्मेघो वृष्टिप्रदः स्मृतः॥ १९॥

यदि सवेरे का सूर्य पीला दुःसह हो तथा चमकदार वैदूर्य मणि के समान आभा वाले बादल हों तो सुन्दर वर्षा होगी। ऐसा आदेश होना चाहिए॥१९॥

[1]प्रावृट्काले यदा सूर्यो मध्याह्ने दुःसहो भवेत्।
तद्दिने वृष्टिदः प्रोक्तो द्रुतस्वर्णसमप्रभः॥ २०॥

वर्षा ऋतु में जिस दिन मध्याह्न का सूर्य दुःसह तथा द्रवीभूत सुवर्ण के समान आकृति का होता है तो उस दिन वर्षा होती है॥२०॥

शकुन से वर्षा

[2]यदा जलं च विरसं वियद्गोनेत्रसन्निभम्।
दिशश्च विमलाः सर्वाः काकाण्डाभं यदा नभः॥ २१॥
[3]न यदा वाति पवनः स्थलं यान्ति झषादयः।
शब्दं कुर्वन्ति मण्डूकास्तदा स्याद्वृष्टिरुत्तमा॥ २२॥

वर्षा ऋतु में जब जल स्वाद रहित तथा गाय के नेत्रों के समान आकाश स्वच्छ हो तथा समस्त दिशाएँ निर्मल हों या कौए के अण्डे के तुल्य आभा वाला आकाश हो हवा न चलती हो एवं मछली जल को छोड़ कर भूमि पर आ रही हों और मेढक चिल्ला रहे हों तो अच्छी वर्षा होती है॥२१–२२॥

तथा बृ० सं० में भी 'विरसमुदकं गोनेत्राभं वियद्विमला दिशो, लवणविकृतिः

---

१. म० यू० चि० १८ पृ० ३ श्लोक।
२. मयू० चि० १८ पृ० ४ श्लोक।
३. म० चि० १८ पृ० ५ श्लोक।

काकाण्डाभं यदा च भवेन्नभः। पवनविगमः पोप्लूयन्ते झषाः स्थलगामिनो रसनमसकृन्मण्डूकानां जलागमहेतवः' ॥२१-२२॥

वनमाला में कहा है 'दशदिशो विमला विरसं पयो द्रवति वा लवणं किल यद्दिने तदिह गोनयनाभमलं पयः पतति वायसकाण्डनिभं नभः' ॥२१॥

वनमाला में कहा है 'न वाति यदि मारुतो रविरुदेति चण्डद्युतिः, द्रुतं भुवि झषावलिर्व्रजति रन्तुरम्भस्तटान्। तदैव जलमागतं पयसि भेककोलाहलो, वदेदिह समन्ततो बुधवरः पयोदागमे' ॥२२॥

अन्य शकुन से

[1]नखैर्लिखन्ति मार्जाराः पृथिवीं च यदा भृशम्।
लोहाणां मलनिचयो विस्रगन्धो यदा भवेत् ॥ २३ ॥
[2]सेतुं कुर्वन्ति रथ्यायां शिशवो मिलिता यदा।
शुद्धाञ्जनाभा गिरयो वाष्पमुद्रितकन्दराः ॥ २४ ॥
[3]पिपीलिका यदाण्डानि गृहीत्वोच्चैः प्रयान्ति वै।
सर्पा वृक्षं समायान्ति तदा बहुजलप्रदाः ॥ २५ ॥

वर्षा ऋतु में जब बिलाउ अपने नखों से भूमि को खोदें या लोहे के मल समूह में दुर्गन्ध आती हो तथा जब बालक एकत्रित होकर मार्ग में मिट्टी से पुल बनायें और पर्वत शुद्ध आभा वाले हों व भाप से मुद्रित गुफा हों या चीटीं अण्डाओं को लेकर भीत पर चढ़ रही हों या साँप वृक्षों पर चढ़ रहे हों तो अच्छी वर्षा इन शकुनों से होती है ॥२३-२५॥

वनमाला में कहा है 'लिखन्तो वसुधामुच्चैर्विडाला स्वनखैर्यदा। सेतुबन्धाश्च रथ्यायां वाजिनो बालनिर्मिताः' लोहानां मलगन्धश्च पर्वताः कज्जलोपमाः। कन्दरा वाष्प-संरुद्धा भवन्तीह जलप्रदाः ॥२३-२५॥

और भी कृषिपराशर में 'उत्तिष्ठन्त्यण्डमादाय यदा चैव पिपीलिकाः। कुर्वन्ति बालका मार्गे धूलिभिः सेतुबन्धनम्। वृक्षाग्रारोहणं चाहेः सद्यो वर्षणलक्षणम्' ॥२३-२५॥

एवं बृ० सं० में भी 'विनोपघातेन पिपोलिकानामण्डोपसङ्क्रान्तिरहिव्यवायः। द्रुमावरोहश्च भुजङ्गमानां वृष्टेर्निमित्तानि गवां प्लुतञ्च ०॥२३-२५॥

तथा बृ०सं० में भी'मार्जारा भृशमवनिं नखैर्लिखन्तो लोहानां मलनिचयः सविस्रगन्धः। रथ्यायां शिशुरचिताश्च सेतुबन्धाः सम्प्राप्तं जलमचिरान्निवेदयन्ति ॥ गिरयोऽञ्जनचूर्णसन्निभा यदि वा वाष्पनिरुद्धकन्दराः। कृकवाकुविलोचनोपमाः परिवेषाः शशिनश्च वृष्टिदाः'॥२३-२५॥

---

१. मयू० चि० १८ पृ० ६ श्लोक।
२. मयू० चि० १८ पृ० ७ श्लोक।
३. मयू० चि० १८ पृ०।

शीघ्र वर्षा होने का कारण

[1]गावः सूर्यं निरीक्षन्ति कृकलासगणास्तथा ।
गेहान्नेच्छन्ति पशवो निर्गमाः कुक्कुरास्तथा ॥ २६ ॥
[2]लताश्चोर्ध्वमुखाः सर्वाः स्नानं कुर्वन्ति पक्षिणः ।
पांसुभिश्च तृणाग्राणि सेवन्ते च सरीसृपाः ॥ २७ ॥
[3]वियत्तित्तिरपक्षाभमलिपक्षनिभं तथा ।
तदा वृष्टिः समादेश्या निश्चितं दैवचिन्तकैः ॥ २८ ॥

यदि वर्षा ऋतु में वृक्षस्थ गिरगिट तथा गायें उँचा मुह करके सूर्य को देखते हों तथा घर के पशु व कुत्ता घर से बाहर जाने की इच्छा न करते हों और लतायें ऊर्ध्व-मुख हों तथा पक्षी धूलि से स्नान करते हों या कृमि जाति साँप आदि तृण के प्रान्त भाग पर आरूढ हों या आकाश तीतुर पक्षी के पंख के समान आभा वाला हो या भ्रमर के पंख के तुल्य हो तो ज्योतिषो को आदेश देना चाहिये कि निश्चय शीघ्र वर्षा होगी ॥ २६-२८ ॥

वृ० सं० में कहा है 'तरुशिखरोपगताः कृकलासा गगनतलस्थितदृष्टिनिपाताः । यदि च गवां रविवीक्षणमूर्ध्व निपतति वारि तदा न चिरेण । नेच्छन्ति विनिर्गमं गृहाद्-धुन्वन्ति श्रवणान् खुरानपि । पशवः पशुवच्च कुक्कुरा यद्यम्भः पततीति निर्दिशेत् । वल्लीनां गगनतलोन्मुखाः प्रवालाः स्नायन्ते यदि जलपांसुभिर्विहङ्गाः । सेवन्ते यदि च सरीसृपास्तृणाग्राण्यासन्नो भवति तदा जलस्य पातः । यदि तित्तिरपत्रनिभं गगनं मुदिताः प्रवदन्ति च पक्षिगणाः । उदयास्तमये सवितुर्द्युनिशं विसृजन्ति घना न चिरेण जलम्' (२८ अ० ८-६, १३, १७ श्लो०) ॥ २६-२८ ॥

तथा वनमाला में भी 'तित्तिरच्छदनिभं गगनं वा पक्षिणोऽपि मुदिताः प्रलपन्ति । उद्गमास्तसमये सवितुश्चेदादिगन्तमतुला जलवृष्टिः' ॥ २६-२८ ॥

जन्तुओं की चेष्टा से वर्षा का ज्ञान

अवातवातस्तपशीत उष्णं रटन्ति मण्डूकशिवाहिचातकाः ।
मयूरकण्ठद्युतिसूर्यमण्डले त्रिभिर्दिनैर्वारि पतन्ति भूतले ॥ २९ ॥

यदि वर्षा ऋतु में दिन व रात में हवा न चले और सूर्य चन्द्र अधिक गरम हों व मेढक, स्यार, सर्प और चातकों का शब्द सुनाई पड़े एवं सूर्य मण्डल मोर के कण्ठ सदृश हो तो तीन दिन में अच्छी वर्षा होती है ॥ २९ ॥

वनमाला में कहा है 'न वाति यदि मारुतो रविरुदेति चण्डद्युतिः । तदेव जलमागतं पयसि भेककोलाहलो' ॥ २६ ॥

---

१. मयू० चि० १८ पृ० ।
२. मयू० चि० १८ पृ० ।
३. मयू० चि० १८ पृ० ।

ग्रहस्थिति वश वृष्टि ज्ञान

[1]प्रावृट्काले शीतरश्मिर्यदा स्यात्सूर्यादस्ते सौम्यदृष्टो यदा स्यात् ।
बुद्धिस्थाने सप्तमे च त्रिकोणे वृष्टिर्वाच्या दैवविद्भिः पुराणैः ॥ ३० ॥

जब वर्षा ऋतु में चन्द्रमा सूर्य से सप्तम स्थान में शुभग्रह से दृष्ट हो या बुद्धि स्थान, सप्तम, पञ्चम या नवम में शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो प्राचीन विद्वानों का कहना है कि वर्षा होती है ॥ ३० ॥

विशेष—ग्रन्थान्तर में इससे कुछ भिन्न वचन प्राप्त होते हैं 'प्रावृषि शीतकरो भृगुपुत्रात् सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः । सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगश्च जलाऽगमनाय' (बृ० सं० २८ अ० २९ श्लोक) ॥ ३० ॥

तथा प्रा० मा० ऋ० वि० में 'प्रावृट्काले शीतरश्मिः शनिश्च शुक्रादस्ते सौम्यदृष्टश्च मन्दात् । वृद्धिस्थाने सप्तमे त्रित्रिकोणे वृष्टिर्वाच्या दैवविद्भिः पुरस्तात्' ॥३०॥

एवं वनमाला में 'नवमपञ्चमभावमुपागते हिमकरे मकरेऽपि समन्ततः । ददति मन्दमतो भुवि जीवनं सरवका नवका हि बलाहकाः' ॥ (७६ पृ०) ॥ ३० ॥

शुभग्रहों की स्थिति वश वर्षा का ज्ञान

[2]शुभाश्च जलराशिस्थाः केन्द्रगाः स्वीयगेहगाः ।
जलप्रदाः सिते पक्षे विधौ चोदयगे जले ॥ ३१ ॥

वर्षाकाल में शुक्ल पक्ष में अपनी जलराशिस्थ शुभग्रह केन्द्र स्थान में हों तथा चन्द्रमा लग्न में जल राशि में हो तब वर्षा होती है ॥ ३१ ॥

अन्य ग्रहस्थिति वश वृष्टि ज्ञान

[3]सप्तमगौ रविचन्द्रौ सितरविजौ रसातले लग्नात् ।
प्रावट्काले जलदौ भवतो वा द्वितीयसहजस्थौ ॥ ३२ ॥

वर्षाकाल में जिस राशि से सप्तम में चन्द्रमा व सूर्य हो तथा चौथे स्थान में उसी राशि लग्न से शुक्र व शनि हो वा दूसरे एवं तीसरी राशि में हों तो वर्षा होती है ॥ ३२ ॥

प्रश्न लग्न से वर्षा का ज्ञान

[4]प्रश्नलग्नात्तोयराशिर्यदि वित्ततृतीयगः ।
तोयसंज्ञो ग्रहस्तत्र भवत्यत्र जलप्रदः ॥ ३३ ॥

यदि प्रश्न लग्न से दूसरी व तीसरी राशि जलचर हो और उक्त राशियों में जल संज्ञक ग्रह हो तो वर्षा होगी ऐसा आदेश देना चाहिये ॥ ३३ ॥

---

१. मयू० चि० १८ पृ० १२ श्लोक ।
२. मयू० चि० १८ पृ० १३ श्लोक ।
३. मयू० चि० १८ पृ० १४ श्लोक ।
४. मयू० चि० १८ पृ० १६ श्लोक ।

दो शुभ ग्रह के योग से वर्षा

[1]समागमे ज्ञसितयोस्तथा च गुरुशुक्रयोः ।
तथैव जीवबुधयोर्वृष्टिः स्यान्नात्र संशयः ॥ ३४ ॥

जब बुध शुक्र का या गुरु शुक्र का या गुरु बुध का समागम होता है अर्थात् दो ग्रह एक राशि में होते हैं तो अवश्य ही वर्षा होती है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥

अन्य योग

[2]यदा भवन्ति सूर्यस्य ग्रहाः पृष्ठावलम्बिनः ।
पुरतो वा यदा यान्ति तदा स्वेकार्णवा मही ॥ ३५ ॥

जिस समय समस्त ग्रह सूर्य से पीछे या आगे की राशियों में संचरण करते हैं तो अच्छो वर्षा होती है ॥ ३५ ॥

[3]बुधशुक्रयोर्मध्यगतः सूर्यः स्याज्जलशोषकः ।
तयोर्यदि समीपस्थस्तदा बहुजलप्रदः ॥ ३६ ॥

राशि चक्र में बुध व शुक्र के बीच में जब सूर्य रहता है तो वर्षा नहीं होती और यदि इनके समीप हो तो अधिक वर्षा होती है ॥ ३६ ॥

[4]अग्रे याति यदा भौमः पश्चाच्चलति भास्करः ।
तदा वृष्टिर्न बहुला जायते नात्र संशयः ॥ ३७ ॥

यदि भमण्डल में आगे भौम व पीछे की राशि में सूर्य हो तो वर्षा काल में अच्छी वर्षा नहीं होती हैं। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ३७ ॥

बुधो यदि समीपस्थो न कुजन्मा पुरो यदि ।
अनन्तपदविन्यासश्चातुचर्यां सरसं कवेः ॥ ३८ ॥

यदि आकाश मण्डल में सूर्य के समीप बुध हो और भौम आगे न हो तो अच्छी वर्षा होती है जैसे चतुरता में अनन्त पद सरस कविता होती है ॥३८॥

अब आगे वराहोक्त विधि से वर्षा के योग को कहते हैं।

[5]वराहः—

व्रजति यदि कुजः पतङ्गमार्गे घट इव भिन्नतरे जलं ददाति ।
अथ भवति यदा दिवाग्रगश्च प्रलयघनानपि शोषयेद्धरित्रीम् ॥ ३९ ॥

---

१. मयू० चि॰ १८ पृ० १७ श्लोक।
२. मयू० १८ पृ० १८ श्लोक।
३. मयू० १६ पृ० १९ श्लोक।
४. मयू० १९ पृ० २० श्लोक।
५. न० ज० च० २१ पृ०।

आचार्य वराहमिहिर का कथन है कि यदि सूर्य के मार्ग में अर्थात् राशि में मङ्गल हो तो घड़े की तरह भिन्न तल में वर्षा होती है यदि सूर्य से आगे भौम हो तो प्रलयकारी मेघों का भी शोषण हो जाता है। अर्थात् वृष्टि नहीं होती है ॥ ३९ ॥

अब आगे लल्लाचार्य जी के बताये हुए योग कहते हैं।

लल्लः—

बुधशुक्रौ समीपस्थौ सजलां कुरुते महीम्।
तयोर्मध्यगतो भानुः समुद्रमपि शोषयेत् ॥ ४० ॥

आचार्य लल्ल का कथन है कि यदि बुध शुक्र समीप हों तो जल से युक्त भूमि को बना देते हैं। इस योग में यदि सूर्य मध्य में हो तो समुद्र का भी शोषण होता है। सारांश यह है कि वर्षा नहीं होती है ॥४०॥

यदारसौरी सुरराजमन्त्री यदैकराशौ समसप्तके च।
अयोध्यलङ्कापुरमध्यदेशे भ्रमन्ति लोकाः क्षुधया प्रपीडिताः ॥ ४१ ॥

जब राशि मण्डल में भौम शनि व गुरु एक राशिस्थ होते हैं या सम सप्तक में उक्त ग्रह होते हैं तो अयोध्या व लंका के मध्य में जो देश आते हैं उनमें संसारी जीव भूख से दुःखी होते हैं ॥४१॥

[1]वराहः—

अब आगे ग्रह स्थिति वश वराहोक्त वर्षा के योग को बताते हैं।

प्रावृषि शीतकरो भृगुपुत्रः (त्रात्) सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः।
सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगश्च जलागमनाय ॥ ४२ ॥

यदि वर्षा काल में शुक्र की राशि से सप्तम राशि में चन्द्रमा शुभ ग्रह से दृष्ट हो अथवा शनि से नवम पञ्चम में शुभ दृष्टि हो तो अच्छी वर्षा होती है ॥४२॥

अन्य वृष्टि योग

प्रायो [2]ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसङ्क्रमे च।
पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के नियमेन चार्द्राम् ॥ ४३ ॥

प्रायः ग्रहों के उदय व अस्त काल में, चन्द्रमा के साथ समागम होने पर, मण्डल प्रवेश होने पर, पक्ष के अन्त में, सूर्य के अयन संक्रमण में और सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में रहने पर अवश्य ही वर्षा होती है ॥४३॥

दो ग्रहों की युति वश वर्षा का ज्ञान

[3]समागमे पतति जलं ज्ञशुक्रयोर्ज्ञजीवयोर्गुरुसितयोश्च सङ्गमे।
यमारयोः पवनहुताशजं भयं न दृष्टयोरसहितयोश्च सद्ग्रहैः ॥४४॥

---

१. बृ० सं० २८ अ० १९ श्लोक।
२. बृ० सं० २८ अ० २० श्लोक।
३. बृ० सं० २८ अ० २१ श्लोक।

यदि आकाश में बुध शुक्र व बुध गुरु व बुध शुक्र का योग हो तो वर्षा होती है यदि मंगल शनि की युति हो व शुभ ग्रह से दृष्ट न हो तो वायु का प्रकोप होने से अग्नि भय होता है ॥४४॥

ग्रहों की स्थिति से वर्षा

[१]अग्रतः पृष्ठतो वापि ग्रहाः सूर्यावलम्बिनः।
यदा तदा प्रकुर्वन्ति महीमेकार्णवामिव ॥ ४५ ॥

जब राशि चक्र में सूर्य से पीछे वा आगे समस्त ग्रह होते हैं तो भूमि को समुद्र की तरह बना देते हैं। अर्थात् अच्छी वर्षा समस्त भूमि पर होती है ॥४५॥

अथ त्रिनाडीचक्रम्—

अब आगे वर्षा जानने के लिए त्रिनाडी चक्र को बताते हैं। सारांश यह है कि २७ नक्षत्रों को तीन स्थान में विभाजित करके उन में ग्रहों के संयोग से होने वाली वर्षा का ज्ञान जिस परिस्थिति में होता है। उसे बताते हैं

त्रिनाडी चक्र का ज्ञान

सर्पचक्रं तथा लेख्यमश्विन्यादित्रिनाडिकम्।
नवनन्दनवर्क्षाणि स्वर्गपातालभूमिषु ॥ ४६ ॥
एकनाडीस्थिताः सर्वे क्रूराः सौम्याश्च खेचराः।
सद्यो वृष्टिं विजानीयात्प्रभूतं जलमादिशेत् ॥ ४७ ॥
स्वर्गनाडीगताः क्रूराः सौम्याः पातालचारगाः।
तद्वृष्टिर्जायते तत्र क्षिप्रं तोयं समुद्रगम् ॥ ४८ ॥
नपुंसकानां योगः स्याद्वायुः स्त्रीयोगतो ध्रुवम्।
पुंस्त्रीसंयोगतो वृष्टिर्ग्रहाश्चेत्सबलास्तदा ॥ ४९ ॥
क्लीबस्त्रीयोगतः शीतं पुंयोगे वाततो भयम्।
वातनाड्यादिगाः खेटाः कुर्युर्नाडीभवं फलम् ॥ ५० ॥
बुधशुक्रमहीसूनुगुरवश्चैकनाडिगाः।
निस्संशयं तदा काले जायते वृष्टिरुत्तमा ॥ ५१ ॥
चलत्यङ्गारके वृष्टिरुदये च बृहस्पतौ।
शुक्रस्यास्तमने वृष्टिर्वक्रान्ते च शनेर्भवेत् ॥ ५२ ॥

एक सर्प की आकृति बनाकर उसे नो भागों में विभाजित करके पुनः एक भाग में ३ नक्षत्रों को अश्विनी आदि क्रम से लिखने पर ९ स्थानों में ३ पंक्तियां बनती हैं। उन की क्रम से स्वर्ग, पाताल, भूमि अर्थात् ऊर्ध्व ९ पंक्ति में स्थित, नक्षत्रों को स्वर्ग, मध्य में स्थित की पाताल और तीसरी पंक्ति में स्थित नक्षत्रों की भूमि संज्ञा समझ कर वर्षा का आदेश करना चाहिये।

---

१. बृ० सं० २८ अ० २२ श्लोक।

जब समस्त शुभ व पाप ग्रह एक नाडी में होते हैं तो शीघ्र ही अधिक पानी की वर्षा होगी ऐसा जानना चाहिये।

जब इस त्रिनाडी चक्र में स्वर्ग नाडी में पापग्रह और पाताल नाडी में शुभ ग्रह संचारण करते हैं तो शीघ्र वर्षा होती है।

जब एक नाडी में नपुंसक ग्रहों का योग होता है या स्त्री संज्ञक ग्रहों का तो वायु चलती है वर्षा नहीं होती है। जब स्त्री व पुरुष संज्ञक बली ग्रह एक नाडी में होते हैं तो उत्तम वर्षा होती है। जब नपुंसक व स्त्री ग्रह होते हैं तो ठंड होती है। तथा पुरुष ग्रह एक नाडी में होते हैं तो वायु का भय होता है। वातादि नाडी में स्थित ग्रह तज्जनित फल प्रदान करता है।

स्पष्टार्थ चक्र

अ	आ	पु	उ	ह	ज्ये	मू	श	पू	स्वर्ग
भ	मृ	पु	पू	चि	अ	पू	ध	उ	पताल
कृ	रो	श्ले	म	स्वा	वि	उ	श्र	रे	भूमि

जब बुध, शुक्र, भौम गुरु एक नाडी में उक्त सर्प चक्र में होते हैं तो उस समय अवश्य ही अच्छी वर्षा होती है।

जब भौम मार्गी होता है तब या गुरु का उदय या शुक्र का अस्त समय और शनि की वक्रता समाप्ति में वर्षा होती है ॥४६-५२॥

मयूरचित्रके—

अब आगे मयूर चित्रक नामक ग्रन्थ में जो कहा है उसे बताते हैं।

मयूरचित्रक वश

शुक्रस्यास्तमये वृष्टिरिज्ये चोदयमागते।
सञ्चरत्यवनीसूनौ वृष्टिर्भेदे त्रिधा [1]मता ॥ ५३ ॥

मयूरचित्रक में कहा है कि शुक्र के अस्तकाल में, गुरु के उदय काल में और भौम के मार्गी होने पर तीन प्रकार से वृष्टि होती है ॥५३॥

अङ्गारको यदा मार्गी तदा सञ्चरते रविः।
तुषारं वर्षते देवः खण्डं खण्डं च वर्षति ॥ ५४ ॥

यदि सूर्य के संचरण काल में भौम मार्गी हो तो पाला पड़ता है तथा कहीं-कहीं वर्षा भी होती है ॥५४॥

चन्द्रात्त्रिकोणे द्यूने शुक्रो वा धरणीसुतः।
तदा काले भवेद्वृष्टिर्नात्र कार्या विचारणा ५ ॥ ५५ ॥

---

१. मयू० चि० २४९१२ पृ० ८ श्लोक ६७ किन्तु शुक्रस्यास्तमयेदेवपूज्ये तूदयमागते पाठ है।

जब उक्त काल में चन्द्रमा से ५ या ६ या ७ स्थान में शुक्र या भौम होता है तो अवश्य ही वर्षा होती है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ५५ ॥

जलयोगे समायाते यदा चन्द्रसितौ ग्रहौ।
क्रूरदृष्टैर्युतौ वापि तदा मेघोऽल्पवृष्टिदः ॥ ५६ ॥

वर्षा ऋतु में जब चन्द्रमा व शुक्र एक राशि में पाप ग्रह से दृष्ट या युक्त हों तो अल्पवर्षा होगी ऐसा जानना चाहिये ॥ ५२ ॥

भानोरग्रे महोपुत्रो जलशोषकः प्रजायते।
भानोः पश्चान्महीपुत्रो वृष्टिर्भवति भूयसी ॥ ५७ ॥

यदि वर्षाकाल में सूर्यं से आगे भौम गमन करता है तो वर्षा का अभाव होता है और यदि सूर्यं से पीछे की राशि में स्थित होता है तो अधिक वर्षा होती है ॥ ५७ ॥

अब आगे सर्पाकृति सप्तनाडी चक्र को बताकर उससे वर्षा का ज्ञान जिस प्रकार से होता है उसे बताते हैं। या यों समझिये एक सर्प की आकृति बनाकर उसे, ७ भागों में विभक्त करके पुनः एक भाग को ४ भागों में बाँटने पर अभिजित के साथ नक्षत्रों का न्यास आगे बताई गई विधि से कर के कथित पद्धति से इस चक्र के द्वारा करना चाहिये। यह बताया जा रहा है।

अथ सप्तनाडचः—

[1]अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं सप्तनाडिकम्।
येन विज्ञानमात्रेण वृष्टि जानन्ति साधकाः ॥ ५८ ॥

कृत्तिकादि लिखेद्भानि साभिजित्तु क्रमेण च।
सप्तनाडीव्यधस्तत्र कर्त्तव्यः पन्नगाकृतिः ॥ ५९ ॥

ताराचतुष्कवेधेन नाडिकैका प्रजायते।
तासां नामान्यहं वक्ष्ये तथा चैव फलानि च ॥ ६० ॥

कृत्तिका च विशाखा च मैत्राख्यं भरणी तथा।
ऊर्ध्वाद्या शनिनाडी स्याच्चण्डनाड्यभिधा मता ॥ ६१ ॥

रोहिणी स्वातिज्येष्ठाश्विद्वितीया नाडिका मता।
आदित्यप्रभवा नाडो वायुनाडी तथैव च ॥ ६२ ॥

सौम्यं चित्रा तथा मूलं पौष्णर्क्षं च चतुर्थकम्।
तृतीयागारनाडी च दहनाख्या तथैव च ॥ ६३ ॥

---

१. न० ज० च० २०५ पृ० १-६ श्लोक।

'रौद्रं हस्तं पूर्वाषाढं तथा भाद्रपदोत्तराः।
चतुर्थी जीवनाडी स्यात्सौम्यनाडी प्रकीर्त्तिता ॥ ६४ ॥
पूनर्वसूत्तराफाल्गुन्युत्तराषाढतारकाः ।
पूर्वभाद्रा च शुक्राख्या पञ्चमी नीरनाडिका ॥ ६५ ॥
पुष्यर्क्षं फाल्गुनी पूर्वा अभिजिच्छततारका।
षष्ठी नाडी च विज्ञेया बुधाख्या जलनाडिका ॥ ६६ ॥
आश्लेषार्क्षं मघा कर्णं धनिष्ठाभं तथैव च।
अमृताख्या हि सा ज्ञेया सप्तमी चन्द्रनाडिका ॥ ६७ ॥

ग्रन्थकार कह रहे हैं कि मैं अब कथित सप्तनाडी चक्र को इसलिये बता रहा हूँ कि इसके जानने पर साधक लोग वर्षा का ज्ञान करके जनोपकारार्थ आदेश करते हैं ? एक सर्प की आकृति बनाकर उसे सात भागों में विभाजित करके पुनः एक भाग के चार हिस्से करने पर चार नाडियाँ बनती हैं अर्थात् इन चारों नक्षत्र की एक नाडी होती है। न्यास करते समय प्रथम कृत्तिका नक्षत्र से ही अभिजित के साथ विभाजित करने पर ७ × ४ = २८ नक्षत्र उचित होते हैं। अब इन सातों नाडियों के नाम व फल मैं बताता हूँ।

कृत्तिका, विशाखा, अनुराधा, भरणी इन चार नक्षत्रों की शनि की चण्डा संज्ञक ऊर्ध्व प्रथम नाडी है।

२ री—रोहिणी, स्वाती, ज्येष्ठा, अश्विनी सूर्य की वायु संज्ञक।
३ री—मृगशिरा, चित्रा, मूल, रेवती, भौम की अग्नि „ ।
४ थी—आर्द्रा, हस्त, पू-षा० उ० भा० गुरु की सौम्या „ ।
५ वीं—पुनर्वसु, उ० फा० उ० षा० पू० भा० शुक्र की नीरा „ ।
६ टीं—पुष्य, पू० फा० अभि० शतभिषा बुध की जल „ ।
७ वीं- आश्लेषा, मघा, श्रवण, धनिष्ठा चन्द्र की अमृत „
होती है ॥ ५८-६७ ॥

तथा वनमाला में भी कहा है 'कृत्तिकादियमान्तानि साभिजिद् भानि संलिखेत्। सर्पाकृतिः स्यात्प्रस्तारः तद्वेधविधिरुच्यते। भचतुष्टयवेधेन नाडिकैका प्रजायते। आद्या चण्डाऽनिला चान्या तृतीया दहनाभिधा। सौम्या चतुर्थी विज्ञेया नीराख्या पञ्चमी मता। ऊर्ध्वतः क्रमतस्तासां मन्दभानुमहीसुताः। गुरुभार्गवविच्चन्द्राश्चण्डादीनामधीश्वराः' ॥ ५८—६७ ॥

---

१. न० ज० च० २०६ पृ० ७-१५ श्लोक।

स्पष्टार्थ चक्र

चंडा	वायु	दह०	सौम्या	नीरा	जल	अमृ०
शनि	सूय	मंगल	जीव	शुक्र	बुध	चंद्र
कृ	रो	मृ	आ	पु	पु	श्ले
वि	स्वा	चि	ह	उ	पू	म
अ	ज्ये	मू	पू	उ	ऽभि	श्र
भ	अ	रे	उ	पू	श	ध

नाडीवश फल

मध्यमार्गे स्थिता सौम्या नाडी तस्याग्रपृष्ठतः ।
सौम्या याम्यगता ज्ञेयं नाडिकानां त्रिकं त्रिकम् ॥ ६८ ॥
क्रूरा याम्यगता नाड्यः सोम्या सौम्यदिगाश्रिताः ।
मध्यनाडी च मध्यस्था ग्रहरूपफलप्रदाः ॥ ६९ ॥
एकनाडीगता द्वाद्या ग्रहाः क्रूराः शुभा यदि ।
ततो नाडीफलं वाच्यमशुभं यदि वा शुभम् ॥ ७० ॥
ग्रहाः कुर्युर्महावातं गताश्चण्डाख्यनाडिकाः ।
वायुनाडीगता वायुं दहनामतिदाहकाः ॥ ७१ ॥
सौम्यनाडीगता मध्या नीरस्था मेघवाहकाः ।
जलायां वृष्टिदश्चद्रश्चन्द्रनाडीगते यदि ॥ ७२ ॥
[1]एकोप्येतत्फलं दत्ते स्वनाडीसंस्थितो ग्रहः ।
भूसुतः सर्वनाडीषु दत्ते नाडीसमं फलम् ॥ ७३ ॥

इस सप्तनाडी चक्र में मध्य में स्थित सौम्य नाडी है और आगे की तीन नाडी सौम्य संज्ञक और पीछे की तीन नाडी याम्य संज्ञक हैं। पापग्रह याम्यनाडी में व शुभग्रह उत्तर नाडी में हों एवं मध्यनाडी यथावत् हो तो ग्रहों के अनुसार सौम्य याम्य नाडी का फल होता है। यदि एक नाडी में २, ३ शुभग्रह हों तो उस नाडी का शुभाशुभ फल कहना चाहिये।

यदि वर्षा समय में चण्डनाडी में ग्रह हों तो अधिक हवा चलती है, वायु नाडी में भी ग्रहों के रहने पर हवा सुन्दर चलती है, तथा अग्नि नाडी में ग्रह हों तो अत्यन्त गर्मी होती है, सौम्य नाडी में मध्यम अर्थात् सुहावना मौसम होता है एवं नीरा में

१. न० ज० च० २०८ पृ० १६-२१

मेघों का आगमन और जल नाडी में ग्रहों के साथ चन्द्रमा होने पर तथा अमृत में भी अच्छी वर्षा होती है ॥

यदि एक भी ग्रह अपनी नाडी में संचरण करता है तो उस नाडी का फल देता है और मङ्गल समस्त नाडियों में नाम सदृश फल देता है, यह इसकी विशेषता है ॥ ६८–७३ ॥

तथा वनमाला में भी कहा है 'सौम्या मध्यगतानाडी तत्पुरः पृष्ठमागतः । उत्तरं दक्षिणं ज्ञेयं नाडिकानां त्रिकं त्रिकम् । क्रूरा दक्षिणपार्श्वस्थाः सौम्या उत्तरमागगाः । मध्या मध्यगतानाडी ग्रहृरूपफलप्रदाः । द्वयाद्या यद्येकनाडीस्था ग्रहाः पापाः शुभा यदि । महावातं तु चण्डायां वाय्वां वायुविशेषतः ।

अग्निनाड्यां महादाहं कुर्वन्ति भुवि सर्वतः । नामानुसारतोऽन्यत्र फलं कुर्वन्ति खेचराः । सौम्यानाडीगता मध्या नीरस्था मेघवाहकाः । जलायां जलदश्चन्द्रः चन्द्रनाडीगतो ग्रहः । फलमेकोऽपि संधत्ते स्वनाड्यां स्वफलप्रदः । सर्वत्र नाडिकातुल्यं मङ्गलः कुरुते फलम् ॥६८–७३॥

चक्र से फल का ज्ञान

प्रावृट्काले समायाते रौद्रऋक्षगते रवौ ।
नाडीवेधसमायोगे जलयोगं वदाम्यहम् ॥ ७४ ॥

वर्षा ऋतु में आर्द्रा नक्षत्र में सूर्य के आने पर नाडी वेध होने का जो जलयोग अर्थात् यों समझिये वर्षा होने का योग होता है उसे मैं बता रहा हूँ ॥७४॥

यत्र नाड्यां स्थितश्चन्द्रः तत्रस्थाः खेचरा यदि ।
क्रूराः सौम्याश्च मिश्रा वा तद्दिने वृष्टिरुत्तमा ॥ ७५ ॥

वर्षा काल में आर्द्रा नक्षत्र में सूर्य के आने पर उक्त चक्र में चन्द्र को देख कर तथा उसी नाडी में शुभ व पाप ग्रह वा दोनों (शुभ, पाप) हों तो उस दिन अच्छी वर्षा होती है ॥ ७५ ॥

वनमाला में भी कहा है 'यत्र नाड्यां गतश्चन्द्रस्तत्रगा यदि खेचराः । मित्रग्रहविभिन्ना वा तद्दिने जलमुत्तमम्' ॥ ७५ ॥

एकऋक्षे समायुक्ता जायन्ते यदि खेचराः ।
तत्र काले महावृष्टिर्यावत्तस्यांशके शशी ॥ ७६ ॥

केवलैः सौम्यपापैर्वा ग्रहैर्विद्धो यदा शशी ।
तदा तुच्छं च पानीयं दुर्दिनं च भवेद्ध्रुवम् ॥ ७७ ॥

वर्षा के समय जिस दिन एक नक्षत्र में अधिक ग्रह या समस्त एकत्रित हों तो अधिक वर्षा होती है । जब तक चन्द्रमा उस नक्षत्र का त्याग नहीं करता तब तक वर्षा निरन्तर होती है । जब चन्द्रमा केवल पापग्रह या शुभग्रह या दोनों से मिलता है तो अल्प वर्षा होती है और दूषित दिवस होता है ॥ ७६–७७ ॥

वनमाला में भी कहा है 'एकनक्षत्रगे योगे ग्रहास्तत्र भवन्ति चेत् । तद्दिने महती वृष्टिर्यावत्तद्भागगो विधुः । केवलैरिह संविद्धः पापैर्वाथ शुभग्रहैः । तत्र स्वल्पं जलं ज्ञेयं वाम्बरं मेघमेदुरम् ॥७६–७७॥

अन्य योगों द्वारा वर्षा ज्ञान

यस्य ग्रहस्य नाडिस्थश्चन्द्रमास्तद्ग्रहेण च ।
दृष्टो युक्तः करोत्यम्भः यदि क्षीणो न जायते ॥ ७८ ॥
पीयूषनाडिगश्चन्द्रस्तत्र खेटाः शुभाशुभम् ।
त्रिचतुःपञ्च पानीयं दिनान्येकत्रिसप्तकम्' ॥ ७९ ॥
एवं जलाख्यनाडीस्थे चन्द्रे मिश्रग्रहान्विते ।
दिनार्द्धं दिवसं पञ्च दिनानि जायते जलम् ॥ ८० ॥

वर्षा ऋतु में उक्त चक्र का न्यास करके उस में देखना चाहिये कि चन्द्रमा किस ग्रह की नाडी में स्थित है । तदनन्तर यदि चन्द्रमा उसकी नाडी में उस से युक्त या दृष्ट हो तो अच्छी वर्षा होती है । क्षीण चन्द्रमा होने पर अच्छी वर्षा का अभाव होता है ।।

अमृत नाडी में यदि शुभ व पाप ग्रहों का योग हो तो या यों समझिये कि ३ ग्रह चन्द्रमा के साथ उस नाड़ी में हों तो एक दिन लगातार तथा ४ ग्रहों का योग हो तो ३ दिन तक और अमृत नाडी में पांच ग्रहों के साथ चन्द्रमा के रहने पर सात दिन तक पानी बरसता है ।।

इसी प्रकार जल नाडी में भी अर्थात् जलनाडी में तो ३ ग्रहों के साथ चन्द्रमा आधे दिन तक, ४ ग्रहों के साथ सहयोग से एक और जलनाडी में पांच ग्रह हों तो पाँच दिन तक वर्षा होती है ।। ७८–८० ।।

तथा वनमाला में भी कहा है 'त्रयो वाऽप्यथ चत्वारः पञ्च वा खेचराः क्रमात् । एकत्रिसप्तदिवसानलं वर्षति वारिदः ।। एवं जलायामपि वासरार्धं दिनं तथा पञ्चदिनानि नीरम्' ।। ७८-८० ।।

अन्य नाड़ियों द्वारा फल का ज्ञान

अमृतादित्रिनाडीषु जायन्ते सर्वखेचराः ।
तत्र वृष्टिः क्रमाज्ज्ञेया धृत्या (१८) कं (१२) रस (६) सङ्ख्यया ।। ८१ ।।

यदि अमृतादि तीन नाडियों में समस्त ग्रह हों तो यों समझिये कि यदि अमृत नाडी में चन्द्रमा के साथ सब ग्रह हों तो १८ दिन, जल नाडी में १२ दिन और नीरा नाडी में समस्त ग्रहों के साथ चन्द्रमा हो तो ६ दिन तक वर्षा होती है ॥ ८१ ॥

नीरा नाडी का पुनः विशेष फल

नीरनाडीस्थिते चन्द्रे तत्रस्थैः पूर्ववद् ग्रहैः ।
यामं दिनार्द्धकं त्रीणि दिनानि जायते जलम् ॥ ८२ ॥

---

१. न० ज० च० २०९ पृ० २२-२७ श्लोक ।

यदि नीरा नाडी में चन्द्रमा तीन ग्रहों के साथ हो तो एक प्रहर, ४ ग्रहों के साथ हो तो आधे दिन तक और पाँच ग्रहों से युक्त चन्द्रमा हो तो तीन दिन तक वर्षा होती है ॥८२॥

सौम्यनाडीगताः सर्वे वृष्टिदास्ते दिनत्रयम् ।
शेषनाड्यां महावाता दुष्टवृष्टिप्रदा ग्रहाः ॥ ८३ ॥

यदि सौम्यनाडी में समस्त हों तो तीन दिन तक पानी बरसता है और शेष नाडियों में ग्रह योग होने पर अधिक हवा और दूषित वृष्टि दाता ग्रह होते हैं ॥८२॥

निर्जला जलदा नाडी भवेद्योगे शुभाधिके ।
क्रूराधिके समायोगे जलदा अपि दाहकाः ॥ ८४ ॥

जो कि नाडी पानी देने वाली वर्णित नहीं है किन्तु यदि उस नाडी में शुभ ग्रहों का योग होता है तो वह जल प्रदा होती है । जो कि जल देने वाली तो है किन्तु पाप ग्रहों के जमाव से दाहक हो जाती है ॥८४॥

[1]यस्य (याम्य०) नाडीस्थिताः क्रूरा अनावृष्टिप्रदा ग्रहाः ।
शुभयुक्ता जलस्थास्तेऽतिवृष्टिप्रदाः ग्रहाः ॥ ८५ ॥

जिस नाडी में पाप ग्रह इकट्ठे हो जाते हैं तो उस समय में वर्षा नहीं होती है और यदि शुभ ग्रहों से युक्त नाडी होती है तो बहुत अच्छी वर्षा होती है ॥८५॥

अन्य योग

एकनाडीसमारूढौ चन्द्रमाधरणीसुतौ ।
यदि तत्र भवेज्जीवस्तदा वारिमयी मही ॥ ८६ ॥

जब चन्द्रमा व भौम एक नाडी में होकर गुरु से युक्त होते हैं तो समस्त भूभाग पानी से प्लावित होता है ॥८६॥

बुधशुक्रौ यदैकत्र गुरुणा च समन्वितौ ।
चन्द्रयोगस्तदा काले जायते वृष्टिरुत्तमा ॥ ८७ ॥

जब बुध शुक्र एक नाडी में गुरु से युक्त होकर चन्द्रमा से संयोग करते हों तो उत्तम वृष्टि होती है ॥८७॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'भृगुसौम्यौ यदैकत्र स्यातां जीवान्वितौ तदा । वृष्टिः स्याद् बहुलाऽकस्माच्चन्द्रयोगे विशेषतः' (२१ प्र० ३२७ श्लो०) ॥८७॥

तथा वनमाला में भी 'एकत्र बुधशुक्रौ वा भवेतां गुरुसंयुतौ । तत्र चन्द्रसमायोगाज्जायते वृष्टिरुत्तमा' ॥८७॥

तथा कृषिपराशर में कुछ भिन्न है—यद्येकराशौ भवतः सितेन्दुजौ पयोऽतिपूर्णां कुरुतो वसुन्धराम् । तयोस्तु मध्ये यदि पद्मबान्धवस्तदा महीशोषमुपैति नान्यथा' ॥८७॥

---

१. न० ज० च० २१० पृ० २८-३२ श्लोक ।

जलयोगे समायाते यदा चन्द्रसितौ ग्रहौ ।
क्रूरैर्दृष्टौ युतौ वापि तदा मेघाल्पवृष्टिदाः ॥ ८८ ॥

वर्षा काल में जब चन्द्रमा व शुक्र एक राशि में स्थित हों तथा क्रूर ग्रहों से दृष्ट या युत हों तो अल्प वर्षा होती है ॥८८॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'भृगुचन्द्रमसौ पापैः खेचरैर्यदि संयुतौ । तदा स्वल्पोदका वृष्टिर्जलयोगे महत्यपि' (२१ प्र० ३१८ श्लो०) ॥८८॥

सौम्यनाडीगता मध्या नीरस्था मेघवाहकाः ।
जलानां वृष्टिदश्चन्द्रश्चन्द्रनाडीगते यदि ॥ ८९ ॥

जब समस्त ग्रह सौम्य नाडी में होते हैं तो मध्यम वर्षा, नीरा नाडी में बादल और चन्द्रमा अपनी नाडी में ग्रहों के साथ होता है तो अच्छी वर्षा होती है ॥८६॥

तथा वनमाला में भी 'सौम्या नाडीगता मध्या नीरस्था मेघवाहकाः । जलायां जलदश्चन्द्रः चन्द्रनाडीगतो ग्रहः' ॥८६॥

उदयास्तगता मार्गे वक्रे युक्ताश्च सङ्गमे ।
जलनाडीगताः खेटा अतिवृष्टिप्रदायकाः ॥ ९० ॥

ग्रहों के उदय व अस्त में, मार्गी होने के समय, वक्री होने पर और संगम हो जाने पर तथा जल नाडी में समस्त ग्रह हों तो बहुत अच्छी वर्षा होती है ॥९०॥

तथा कृषिपराशर में कहा है 'ग्रहाणामुदये चास्ते तथा वक्रातिचारयोः । प्रायो वर्षन्ति हि घना नृपाणामुद्यमेषु च ॥९०॥

नक्षत्रों की स्त्री पुरुष नपुंसक संज्ञा

मूलाच्चतुर्दश पुंसां नक्षत्राणि क्रमाद्बुधैः ॥ ९१ ॥
[1]आर्द्रादिदशकं स्त्रीणां विशाखात्रिनपुंसकम् ।

आर्द्रा से दश १० नक्षत्रों की स्त्री संज्ञा व विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा की नपुंसक और मूल से चौदह नक्षत्रों की पुरुष संज्ञा होती है ॥९१॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'स्त्री संज्ञानि दशार्द्रातो भानि प्रोक्तानि कोविदैः । विशाखा त्रितयं क्लीबं पुंसंज्ञानीतराणि च' (२१ प्र० ३२५ श्लो) ॥६१॥

वायुर्नपुंसके भे च स्त्रीणां भे चाभ्रदर्शनम् ।
स्त्रीणां पुरुषसंयोगे वृष्टिर्भवति निश्चितम् ॥ ९२ ॥

यदि क्लीब संज्ञक नक्षत्रों में योग हो तो वायु चलती है तथा स्त्री संज्ञक में योग हो तो निर्मल आकाश और स्त्री संज्ञक व पुरुष सज्ञंक में योग हो तो अच्छी वृष्टि होती है ॥६२॥

---

१. न० ज० च० २१३ पृ० १-२ श्लोक ।

ग्रहों की शुष्कादि संज्ञा

रविभौमार्कजाः शुष्काः सजलौ चन्द्रभार्गवौ ।
बुधवाचस्पतिर्ज्ञेयौ सजलौ जलराशिगौ ॥ ९३ ॥

सूर्य,भौम, शनि, शुष्क, (सूखे) चन्द्रमा व शुक्र जलसंज्ञक और जलसंज्ञक राशियों में यदि बुध शुक्र गुरु हों तो उनकी भी जल संज्ञा होती है ।९३।।

जल संज्ञक राशि

कुम्भकर्कटकौ मीनमकरालितुलाधराः ।
सजला राशयः प्रोक्ता निर्जलाः शेषराशयः ॥ ९४ ॥

कुम्भ, कर्क, मीन, मकर, वृश्चिक, तुला इनकी जल संज्ञा और अवशिष्टों की (मेष, वृष, मिथुन, सिंह, कन्या, धनु,) निर्जल संज्ञा होती है ।।९४।।

तथा जातकपारिजात में कहा है 'मीनालिकर्कटमृगा सलिलाभिधानास्तोयाश्रया घटवधूयुगगोपसंज्ञाः' ।।९४।।

इति श्रीमज्ज्योतिर्विद्वर्यगयादत्तात्मजरामदीनज्योतिर्विद्विरचिते
सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने पञ्चमं वृष्टिप्रकरणं समाप्तम् ।।५।।

इस प्रकार ज्योतिषवेत्ताओं में श्रेष्ठ श्री गयादत्त जी के पुत्र पं० रामदीनज्योतिषी के द्वारा रचित बृहदैवज्ञरञ्जन नामक ग्रन्थ का पाँचवाँ वर्षा प्रकरण समाप्त हुआ ।

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवा-
त्मजमुरलीधरचतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्यपञ्चम-
प्रकरणस्य श्रीधरीहिन्दी टीका पूर्णा ।।५।।

अथ षष्ठं फलकुसुमलताप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे छटे प्रकरण में वृक्षों में फल फूलों की वृद्धि को देखकर या यों समझिये उनकी उन्नति से पदार्थों की प्राप्ति और धान्यों की अभिवृद्धि कैसे होती है इसका विचार इस प्रकरण में किया गया है ।।

वाराहीये—

वराह के आधार पर प्रथम इस प्रकरण के प्रयोजन का ज्ञान

फलकुसुमसंप्रवृद्धि वनस्पतीनां विलोक्य विज्ञेयम् ।
सुलभत्वं द्रव्याणां निष्पत्तिश्चापि सस्यानाम्[1] ।। १ ।।

वृक्षों में अनायास फल व फूलों की अभिवृद्धि जान कर पदार्थों की सुलभता और धान्यों की निष्पत्ति का ज्ञान करना चाहिए ।।१।।

किस पदार्थ से किस की वृद्धि

[2]शालेन कलमशालि रक्ताशोकेन रक्तशालिश्च ।
पाण्डूकः क्षीरिकया नीलाशोकेन सूकरकः ।। २ ।।

यदि शाल (साखू) के वृक्ष पर फल फूलों की वृद्धि हो तो जड़हन धान्य आदि की, लाल अशोक से लाल धान्यों की, दूधी से पाण्डूक की और नील अशोक पर फूलों की वृद्धि से सूकरक नामक धान्य की वृद्धि होगी ऐसा जानना चाहिये ।।२।।

यवादि धान्यों की वृद्धि का लक्षण

[3]न्यग्रोधेन तु यवकस्तिन्दुकवृद्धया च षष्टिको भवति ।
अश्वत्थेन च ज्ञेया निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम् ।। ३ ।।

यदि वट के वृक्ष में फल व फूलों की वृद्धि दृष्टिगोचर हो तो जौ की, तेन्दुआ में फल फूल बढ़ने पर साठी धान्य की और पीपल के वृक्ष में यदि फल फूलों की वृद्धि हो तो समस्त धान्य अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं ।।३।।

तिलादि धान्यों की वृद्धि का लक्षण

[4]जम्बूभिस्तिलमाषाः शिरीषवृद्धया च कङ्गुनिष्पत्तिः ।
गोधूमाश्च मधूकैर्यववृद्धिः सप्तपर्णेन ।। ४ ।।

---

१. बृ० सं० २६ अ० १ श्लोक ।
२. बृ० सं० २६ अ० २ श्लोक ।
३. बृ० सं० २६ अ० ३ श्लोक ।
४. बृ० सं० २६ अ० ४ श्लोक ।

यदि जामुन के वृक्षों में अधिक फल फूल लगें तो तिल माष (उड़द) आदि की, शिरस से ककुनी की, महुए से गेंहू को और सप्तपर्ण वृक्ष पर अधिक फल फूल नजर आते हों तो जौ की वृद्धि होती है ॥४॥

कपासादि वृद्धि का लक्षण

[१]अतिमुक्तककुन्दाभ्यां कर्पासं सर्षपान्वदेदसनैः।
वदरीभिश्च कुलत्थांश्चिारबिल्वेनादिशेन्मुद्गान् ॥ ५ ॥

यदि वसन्तीलता और कुन्द पुष्पों में फल की वृद्धि हो तो रुई की, असना से सरसों की, वेर से कुलथी और करञ्ज (कंजा) में फल फूलों की वृद्धि हो तो मूंग की फसल अच्छी पैदा होती है ॥५॥

अलसी आदि का वृद्धि लक्षण

[२]अतसीवेतसपुष्पैः पलाशकुसुमैश्च कोद्रवा ज्ञेयाः।
तिलकेन शङ्खमोक्तिकरजतान्यथ चेङ्गुदेन शणाः ॥ ६ ॥

यदि बेंत के वृक्ष में फल फूलों की वृद्धि हो तो तीसी की, पलास (ढाक) से कोदों की, तिलक से शंख, मोती व चांदी की और इङ्गुदी वृक्षों में फल फूलों की वृद्धि हो तो सन् की फसल अधिक उत्पन्न होती है ॥६॥

हाथी आदि की वृद्धि लक्षण

[३]करिणश्च हस्तिकर्णैरादेश्या वाजिनोऽश्वकर्णेन।
गावश्च पाटलाभिः कदलीभिरजाविकं भवति ॥ ७ ॥

यदि हस्तिकर्ण वृक्षों में फल फूलों की वृद्धि होती दीखे तो हाथी की, अश्वकर्ण वृक्ष से घोड़ा की, पाटला से गायों की और केलाओं के वृक्ष पर अधिक फल फूल उत्पन्न हों तो बकरी, भेड़, भेड़ा आदि की वृद्धि होती है ॥७॥

सोना आदि वृद्धि का लक्षण

[४]चम्पककुसुमैः कनकं विद्रुमसम्पच्च बन्धुजीवेन।
कुरुबकवृद्धया वज्रं वैदूर्य्यं नन्दिकावर्त्तैः ॥ ८ ॥

यदि चम्पा फूल की वृद्धि हो तो सोना की, बन्धुजीव से मूंग की, कुरबक से वज्र की और नन्दिकावर्त वृक्ष में फल फूलों की वृद्धि से वैदूर्यमणि की वृद्धि होवी है ॥८॥

---

१. वृ० सं० २६ अ० ५ श्लोक।
२. वृ० सं० २६ अ० ६ श्लोक।
३. वृ० सं० २६ अ० ७ श्लोक।
४. वृ० सं० २९ अ० ८ श्लोक।

केसर आदि वृद्धि का लक्षण

[1]विद्याच्च सिन्दुवारेण मौक्तिकं कुङ्कुमं कुसुम्भेन।
रक्तोत्पलेन राजा मन्त्री नीलोत्पलेनोक्तः ॥ ९ ॥

यदि सिन्धुवास वृक्ष में फल फूलों की वृद्धि हो तो मोती को, कुसुम्म से केशर की, रक्तकमल से राजा की और नीलकमल में वृद्धि होने से मन्त्री की वृद्धि होती है ॥९॥

व्यवसायादि वृद्धि का लक्षण

[2]श्रेणी सुवर्णपुष्पैः पद्मैर्विप्राः पुरोहितः कुमुदैः।
सौगन्धिकेन वलपतिरर्केण हिरण्यपरिवृद्धिः ॥ १० ॥

सुवर्णपुष्प से व्यापारी की, कमल से ब्राह्मण की, कुमुद से पुरोहित की, सुगन्ध वस्तु से सेनापति की और आम के वृक्षों में पुष्पों की वृद्धि से सुवर्ण की वृद्धि होती है ॥१०॥

मनुष्यों के कल्याण का लक्षण

[3]आम्रैः क्षेमं भल्लातकैर्भयं पीलुभिस्तथारोग्यम्।
खदिरशमीभ्यां दुर्भिक्षमर्जुनैः शोभना वृष्टिः ॥ ११ ॥

जिस वर्ष आम के वृक्षों में फल अधिक आते हैं तो उस वर्ष में मनुष्य मात्र का शुभ होता है। यदि भल्लातक पर वृद्धि हो तो भय, पीलू से आरोग्य, खैर तथा सीसम से दुर्भिक्ष और अर्जुन वृक्ष पुष्पादि से अच्छी वर्षा होगी। ऐसा जानना चाहिये ॥११॥

सुभिक्ष का ज्ञान

[4]पिचुमन्दनागकुसुमैः सुभिक्षं मारुतः कपित्थेन।
निचुलेनावृष्टिभयं व्याधिभयं भवति कुटजेन ॥ १२ ॥

यदि नीम व नाग केशर वृक्षों में फल फूल अधिक हों तो सुभिक्ष, कपित्थ से हवा की, निचुल से अवृष्टि का भय और कुटज वृक्ष पर पुष्पादि वृद्धि से रोग भय होता है ॥१२॥

गन्ना आदि वृद्धि का लक्षण

[5]दूर्वाकुशकुसुमाभ्यामिक्षुर्वह्निश्च कोविदारेण।
श्यामालताभिवृद्धया वन्धक्यो वृद्धिमायान्ति ॥ १३ ॥

---

१. वृ० सं० २६ अ० ९ श्लोक।
२. वृ० सं० २६ अ० १० श्लोक।
३. वृ० सं० २६ अ० ११ श्लोक।
४. वृ० सं० २६ अ० १२ श्लोक।
५. वृ० सं० २६ अ० १३ श्लोक।

यदि दूब व कुश के पुष्पों की वृद्धि हो तो गन्ना की, कचनार से अग्नि की और श्यामलता में पुष्पादि वृद्धि से व्यभिचारिणी स्त्री की वृद्धि होती है ॥ १३ ।

वृक्षों के पत्तों से वर्षा का ज्ञान

[1]यस्मिन्देशे स्निग्धनिच्छिद्रपत्राः संदृश्यन्ते वृक्षगुल्मा लताश्च ।
तस्मिन्वृष्टिः शोभना सम्प्रदिष्टा रूक्षैश्छिद्रैरल्पमम्भः प्रदिष्टम् ॥ १४ ॥

जिस देश में फैली हुई लता व लताओं के पत्ते चीकने व छिद्र रहित दृष्टिगोचर होते हैं तो उस देश में उस समय सुन्दर वर्षा होती है । यदि पत्तों में रूखापन व छिद्र हों तो अल्प पानी बरसता है । ऐसा जानना चाहिये ॥ १४ ॥

पराशर ने भी कहा है 'अच्छिद्रपत्राः सुस्निग्धाः फलपुष्पसमन्विताः । निर्दिशन्ति शुभं वृक्षा विपरीतं विगर्हिताः' ॥ १४ ॥

[2]मुहूर्तगणपतौ—

अब आगे मुहूर्तगणपति ग्रन्थ के आधार पर वृक्षों में पुष्प की वृद्धि से वर्षा व धान्य की वृद्धि को बताते हैं ।

वृक्षादौ बहुभिः पुष्पैर्महावृष्टिः प्रजायते ।
यत्र स्वल्पतरा वृष्टिर्दूर्वाभिश्चेक्षबोधिकाः ॥ १५ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है कि वृक्षों में पुष्पों की बढ़ोतरी दृष्टिगोचर होती है तो अधिक वर्षा होती है और अल्पता हो तो अल्प वर्षा होती है ॥ १५ ॥

मधूकैर्बहुगोधूमा यवाः स्युर्वटजैः फलैः ।
सुभिक्षं नागनिम्बैः स्याच्छालवृक्षैस्तु शालयः ॥ १६ ॥

यदि महुआ के वृक्षों में अधिक फल पुष्प हों तो गेहूँ की, वट के फल पुष्पों की वृद्धि से जौ की व नागफली एवं नीम के वृक्षों में पुष्पादि की अधिकता से देश में सुभिक्ष अर्थात् यों समझिये कि सभी पदार्थ सुलभ होते हैं और साल के वृक्षों में पुष्पादि की वृद्धि से साठी आदि धान की वृद्धि होती है ॥ १६ ॥

अश्वत्थादधिकं धान्यमर्जुनादधिकं जलम् ।
क्षेममाम्रैश्च पालाशैः कोद्रवा जम्बुतस्तिलाः ॥ १७ ॥

यदि पीपल के वृक्षों में अधिक पुष्पादि हों तो धान्यों की, अर्जुन वृक्ष से जल की, आम के से जनकल्याण, ढाक से कोदों और जामुन के वृक्षों में पुष्पादि विशेष हों तो तिल की वृद्धि होती है ॥ १७ ॥

दुर्भिक्षं खदिरे रोगाः कुटजैः परिकीर्तिताः ॥ १८ ॥

---

१. बृ० सं० २९ अ० १४ श्लोक ।
२. २० प्र० २५१–२५४ श्लो० ।

यदि खैर के वृक्षों में पुष्पादि की वृद्धि हो तो अकाल का प्रकोप और कौरैया के वृक्षों में पुष्पादि वृद्धि से रोगों की वृद्धि होती है ॥ १८ ॥

अथार्द्रादिनक्षत्राणां जलवर्षणे फलम्—

आर्द्रादि में वर्षा का फल

जलमार्द्रापुनर्वस्त्वोः पुष्ये शालीमधूकयोः ।
विषं श्लेषा मघा प्रोक्ता जलममृतसन्निभम् ॥ १९ ॥
सर्पिः पूर्वा दधिश्चैव उत्तराफाल्गुनी भवेत् ।
त्वाष्ट्रेक्षुरससम्पत्तिः स्वात्यां स्यादधिकं मधु ॥ २० ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्प नक्षत्र में सूर्य रहने पर वर्षा होने पर धान व महुआ को श्रेष्ठ, श्लेषा व मघा में अमृत समान होनेपर भी जहर (अशुभ), पूर्वा में घी, उत्तराफाल्गुनी में दही, चित्रा में ऊख की वृद्धि और स्वाती में होने से चैत की फसल अच्छी होती है ॥ १६–२० ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनज्योतिर्विद्विरचिते सङ्ग्रहे
वृहद्दैवज्ञरञ्जने षष्ठं फलकुसुमलताप्रकरणं समाप्तम् ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिषियों में श्रेष्ठ ज्योतिर्वेत्ता गयादत्तजी के पुत्र श्री पं० रामदीन द्वारा रचित संग्रहात्मक वृहद्दैवज्ञरञ्जन का फलकुसुमलता नामक छटा प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-
मुरलीधरचतुर्वेदकृता वृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्थषष्ठप्रकरणस्य
श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्णा ॥ ६ ॥

अथ ग्रहाणां योगकथनं नाम सप्तमं प्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे ग्रह योग कथन नामक सातवें प्रकरण में भगोलीय विविध ग्रह योगों के द्वारा संसार में जीव मात्र के लिये होने वाले शुभाशुभ योगों को बताते हैं ।

[1]मयूरचित्रके—

प्रथम मयूर चित्रक नाम के ग्रन्थ से योगों का विचार प्रस्तुत करते हैं ।

सूर्य भौम युति का फल

[2]रौद्रनक्षत्रगावेतौ यदि सूर्यमहीसुतौ ।
मासे महर्घतां यान्ति धान्यानि स्वस्थतां पुनः ॥ १ ॥

जिस मास में रौद्र (आर्द्रा) नक्षत्र में सूर्य भौम की युति होती है तो धान्यों के मूल्यों में वृद्धि अर्थात् महँगी होती है ॥ १ ॥

सूर्य केतु युति का फल

[3]स्वर्भानुके च भरणीं मृगं वा यदि चास्थितौ ।
लवणं महर्घतां याति सिन्धुदेशोद्भवं विदुः ॥ २ ॥

जब कि भरणी या मृगशिरा में सूर्य केतु की युति होती है तो समुद्र देशों में होने वाले नमक के भावों में वृद्धि होती है अर्थात् नमक पर तेजी आती है ॥ २ ॥

बुध-शुक्र-भौम युति का फल

बुधशुक्रमहीपुत्रा भुजङ्गर्क्षे समाश्रिताः ।
नन्दन्ति लोकाः सुखिनः सुभिक्षं जनयन्ति च ॥ ३ ॥

जब कि बुध-शुक्र-भौम ग्रह श्लेषा नक्षत्र में एकत्रित होते हैं तो संसार में सुभिक्ष अर्थात् प्राणी मात्र सुखी होता है और उस युति के समय की भी लोग बड़ाई करते हैं ॥ ३ ॥

स्वाती में भौम और रेवती में सूर्य होनेपर फल

[4]स्वातीं याति यदा भौमो रेवतीं याति भास्करः ।
चलच्चित्ता महीपालाः प्रजानाशं प्रयान्ति च ॥ ४ ॥

---

१. मयू० ५ पृ० १ श्लोक ।
२. मयू० ५ पृ० २ श्लोक ।
३. मयू० ५ पृ० ३ श्लोक ।
४. मयू० ५ पृ० ४ श्लोक ।

जब कि स्वाती नक्षत्र में भौम और रेवती में सूर्य होता है तो उस समय के राजा या यों समझिये कि शासनाधिकारी अस्थिर स्वभाव वाले और जनसमुदाय का ह्रास होता है ।। ४ ।।

अनुराधा में शनि व ज्येष्ठा में गुरु का फल

[१]अनुराधां गतः सौरिर्ज्येष्ठायां च वृहस्पतिः ।
पश्चिमायां तदा युद्धं प्रजानाशं प्रयाति च ।। ५ ।।

जब कि अनुराधा में शनि और ज्येष्ठा में गुरु होता है तो पश्चिम दिशा में युद्ध होने से जनस्थिति का विनाश होता है ।। ५ ।।

मूल में शनि, स्वाती में बुध व मघा में चन्द्रमा का फल

[२]मूले मन्दो बुधः स्वात्यां मघायां चन्द्रमा यदि ।
सङ्ग्रहे सर्वधान्यानां लाभो भवति नान्यथा ।। ६ ।।

जब कि मूल में शनि, स्वाती में बुध और मघा में चन्द्रमा होता है तो समस्त धान्यों को इकट्ठा करने से लाभ होता है अन्यथा भविष्य में महगी आ जाने से हानि ही उठानी पड़ती है ।। ६ ।।

उ० षा० में शनि से सप्तमस्थ सूर्य का फल

[३]विश्वभे च गतो मन्दः सप्तमर्क्षे यदा रविः ।
तदा जलविनाशः स्यात्प्रजानां कदनं तथा ।। ७ ।।

जब कि उत्तराषाढ में शनि और उससे सप्तम नक्षत्र में सूर्य होता है तो वर्षा का अभाव व जनता को कलह होता है ।। ७ ।।

श्रवण नक्षत्र में पापी ग्रह का फल

[४]श्रवणर्क्षे यदा क्रूरो ग्रहः कश्चित्समाश्रितः ।
अन्नं महघतां याति गोधूमाश्च विशेषतः ।। ८ ।।

जब कि श्रवण नक्षत्र में कोई क्रूर ग्रह आता है तो अन्नों के भावों में तेजी आती है । विशेषकर गेहूँ अधिक तेज हो जाता है ।। ८ ।।

धनिष्ठा में शनि भौम युति का फल

[५]वासवक्ष यदा सौरिर्भूमिपुत्रेण संयुतः ।
न वर्षन्ति जलं मेघाः सस्यहानिश्च जायते ।। ९ ।।

---

१. मयू० ५ पृ० ५ श्लोक ।
२. मयू० ५ पृ० ६ श्लोक ।
३. मयू० ५ पृ० ७ श्लोक ।
४. मयू० ५ पृ० ८ श्लोक ।
५. मयू० ५ पृ० ९ श्लोक ।

जब कि धनिष्ठा नक्षत्र में शनि भौम एकत्रित होते हैं तो वृष्टि का अभाव होने से धान्यों की उपज कम होती है ।। ६ ।।

श्रवण में गुरु व चित्रा में भौम का फल

[1]वारुणे च यदा जीवश्चित्रायां धरणीसुतः ।
तदा नश्यन्ति गोधूमाः सस्यहानिर्महर्घता ।। १० ।।

जब कि श्रवण में गुरु व चित्रा में भौम होता है तो गेहूँ का अभाव और अन्य अन्नों के दामों में तेजी आती है ।। १० ।।

मकर या कुम्भ में सूर्य, मङ्गल, शुक्र चन्द्रमा युति का फल

[2]भानुर्भौमो भृगुश्चैव शनिक्षेत्रे समाश्रिताः ।
यदा निशापतिस्तत्र तदा दुर्भिक्षतो भयम् ।। ११ ।।

जब कि मकर या कुम्भ में सूर्य, भौम, शुक्र, चन्द्रमा एकत्रित होते हैं तो अकाल पड़ने से जीव मात्र को भय होता है ।। ११ ।।

वृष राशि में राहु भौम युति का फल

[3]वृषे राहुर्यदा भौमौ षष्ठे मासि महद्भयम् ।
भवत्यत्र न सन्देहस्तदा दुर्भिक्षपीडनम् ।। १२ ।।

जब कि वृष राशि में राहु व भौम होते हैं तो उस योग से छठे मास में अधिक भय और दुर्भिक्ष से पीड़ा होती है । इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ।। १२ ।।

मिथुन राशि में शनि या राहु का फल

[4]मिथुनक्ष सूर्यपुत्रो राहुर्वा यदि संस्थितः ।
दुर्भिक्षं जायते तत्र पश्चिमायां नृपक्षयः ।। १३ ।।

जब कि मिथुन राशि में शनि या राहु का संचरण होता है तो दुर्भिक्ष संसार में होता है और पश्चिम देशीय शासक का विनाश होता है ।। १३ ।।

सूर्य राहु भौम और चन्द्रमा शुक्र शनैश्चर युति का फल

[5]रविराहुमहीपुत्राः शशिशुक्रशनैश्चराः ।
एकराशि गता ह्येते तदा पृथ्वी भयाकुला ।। १४ ।।
[6]पूर्वदेशे महापीडा नृपाणां संक्षयो भवेत् ।
प्रजानाशो व्याधिभयं तस्मिन्काले न संशयः ।। १५ ।।

---

१. मयू० ५ पृ० १० श्लोक ।
२. मयू० ५ पृ० ११ श्लोक ।
३. मयू० ५ पृ० १२ श्लोक ।
४. मयू० ५ पृ० १३ श्लोक ।
५. मयू० ५ पृ० १४ श्लोक ।
६. मयू० ५ पृ० १५ श्लोक ।

जब कि सूर्य, राहु भौम या चन्द्र, शुक्र, शनि एक राशि में एकत्रित होते हैं तो समस्त भू-भाग भय से व्यथित होता है और पूर्वीय क्षेत्र में अधिक पीड़ा व शासक का विनाश या धनिक वर्गों का ह्रास, प्रजा का नाश और निश्चय ही रोगों का आतंक होता है ।। १४-१५ ।।

एक राशि में सू० च० मं० श० बु० रा० युति का फल

[1]सूर्यचन्द्रारमन्दाश्च राहुश्चन्द्रसुतो यदि ।
एकराशि गता ह्येते दक्षिणस्यां भयप्रदाः ।। १६ ।।

जब कि सूर्य चन्द्रमा, भौम, बुध, शनि, राहु एक राशि में एकत्रित होते हैं तो दक्षिण देश का जन समुदाय भयभीत होता है ।। १६ ।।

एक राशि में मं० सू० श० रा० शु० गुरु युति का गल

[2]एकराशिगता ह्येते कुजार्कशनिराहवः ।
शुक्रो गुरुश्च तत्रैव तदा भयविवर्द्धनाः ।। १७ ।।
[3]उत्तरे छत्रभङ्गः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।

जब कि एक राशि में भौम, सूर्य, शनि राहु, शुक्र, एक राशि में होते हैं तो उत्तर देश में ही जीव त्रस्त होते हैं, राजा (शासक) का विनाश होता है । इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।।१७–१७ १७½।।

एक राशि में सू० चं० मं० गु० श० बु० युति का फल

रविचन्द्रकुजा जीवमन्दचन्द्रसुता यदि ।। १८ ।।
[4]समाश्रिता ह्येकराशि तदा पृथ्वी भयाकुला ।
राज्ञां नाशो व्याधिभयं प्रजानां संक्षयो भवेत् ।। १९ ।।

जब कि सूर्य, चन्द्रमा, भौम या गुरु, शनि, बुध एक राशि में इकट्ठे होते हैं तो समस्त भूमण्डल भय के व्यथित, राजाओं का नाश और समुदाय का ह्रास होता है ।।१७–१७½।।

एक राशि में मं० सू० गु० शु० युति का फल

[5]कुजार्कजीवशुक्राश्च यदैकत्र समाश्रिताः ।
भयं व्याधिं प्रकुर्वन्ति सर्वधान्यमहर्घता ।। २० ।।

जिस समय में भौम, सूर्य, गुरु, शुक्र, एक राशि में मिलते हैं तो भय तथा रोगों के दाता और समस्त अन्नों के दामों को बढ़ाने वाले होते हैं ।।२०।।

---

१. मयू० ५ पृ० १६ श्लोक ।
२. मयू० चि० ६ पृ० १७ श्लोक ।
३. मयू० चि० ६ पृ० १८ श्लोक ।
४. मयू० चि० ६ पृ० १९ श्लोक ।
५. मयू० चि० ६ पृ० २० श्लोक ।

सिंह राशि में मं० सू० चं० बु० गु० युति का फल

[१]कुजार्केन्दुज्ञजीवाश्च सिंहराशिं समाश्रिताः ।
छत्रभङ्गः प्रजानाशो भयभीता च मेदिनी ॥ २१ ॥

जिस समय में सिंह राशि में भौम, सूर्य, चन्द्रमा, बुध, गुरु इकट्ठे होते हैं तो शासक व जनता का नाश और डर से डरी हुई भूमि रहती है ॥२१॥

एक राशि में बु० शु० सू० युति का फल

[२]एकराशिस्थिता ह्येते सौम्यशुक्रदिनाधिपाः ।
सर्वधान्यमहर्घत्वं मेघाः स्वल्पजलप्रदाः ॥ २२ ॥

जिस समय एक राशि में बुध, शुक्र, सूर्य इकट्ठे होते हैं तो समस्त अन्न महँगे और बादल थोड़ा पानी बरसाते हैं ॥२२॥

एक राशि में शनि गुरु का तथा गुरु से सातवें शनि का फल

[३]एकनक्षत्रगा ह्येते तदा भयविवर्द्धनः ।
यदा जीवयुतो मन्दो जीवाद्वा सप्तमे स्थितः ।
[४]तदा प्रजा विनश्यन्ति भूपाश्चान्नपरिक्षयाः ॥ २३ ॥

जिस समय में एक राशि में शनि गुरु मिलते हैं या गुरु से सप्तम राशि में शनि होता है तो जन समाज का विनाश और राजाओं के अन्नों का ह्रास होता है। अर्थात् राजकीय भण्डारागार में अन्न संग्रह का अभाव होता है ॥२३॥

एक राशि में शनि भौम युति का फल

कर्कमीनमृगस्त्रीषु शनिभौमौ यदा स्थितौ ।
[५]तदा युद्धाकुला पृथ्वी धनधान्यविवर्जिता ॥ २४ ॥

जिस समय में कर्क या मीन या मकर या कन्या राशि में शनि भौम मिलते हैं तो युद्ध से दुःखी पृथ्वी और धन धान्य से रहित होती है ॥२४॥

मिथुन, कन्या, धनु, मीन राशि में शनि का फल

मिथुनस्त्रीधनुर्मीनराशौ मन्दो यदा भवेत् ।
[६]तदा भूपा विनश्यन्ति पृथ्वी शोणितपूरिता ॥ २५ ॥

---

१. मयू० चि० ६ पृ० २१ श्लोक ।
२. मयू० चि० ६ पृ० २२ श्लोक ।
३. मयू० चि० ६ पृ० २३ श्लोक ।
४. मयू० चि० ६ पृ० २४ श्लोक ।
५. मयू० चि० ६ पृ० २५ श्लोक ।
६. मयू० चि० ६ पृ० २६ श्लोक ।

जिस समय में मिथुन वा कन्या वा धनु वा मीन में शनि का संचार होता है तो राजकीय शासकों का नाश और भूमि में अधिक स्थलों पर लड़ाई होने से खून से प्लावित पृथ्वी होती है ॥२५॥

एक राशि में सू० शु० गु० युति का फल

रविशुक्रसुराचार्या यदैकत्र समाश्रिताः ।
[1]राज्यभ्रंशः प्रजानाशः सर्वसस्यमहर्घता ॥ २६ ॥

जिस समय में एक राशि में सूर्य, शुक्र, गुरु, एकत्रित होते हैं तो शासक व जनता का नाश और समस्त अन्न महँगे होते हैं ॥२६॥

एक राशि में सू० शु० मं० युति का फल

रविभार्गवभौमाश्च राशिमेकं समाश्रिताः ।
[2]घृततैलमसूरान्नं महर्घति महाभयम् ॥ २७ ॥

जिस समय में एक राशि में सूर्य, शुक्र, भौम इकट्ठे होते हैं तो घी, तिल, तेल, खली, मसूर के भावों में वृद्धि और बड़ा भय होता है ॥२७॥

एक राशि में गु० शु० श० रा० युति का फल

सुरेज्यकविमन्दाश्च राहुरेकत्र संस्थिताः ।
[3]मेघा जलं प्रमुञ्चन्ति सर्वधान्यमहर्घता ॥ २८ ॥

जिस समय में एक राशि में गुरु, शुक्र, शनि, राहु मिलते हैं तो बादल अधिक वर्षा करते हैं और समस्त अन्नों के भाव बढ़ जाते हैं ॥२८॥

एक राशि में सू० बु० गु० श० रा० युति का फल

रविज्ञगुरुमन्दाश्च राहुयुक्ता यदा स्थिताः ।
[4]सुभिक्षं क्षेममारोग्यं तस्मिन्काले न संशयः ॥ २९ ॥

जिस समय में एक राशि में सूर्य, बुध, गुरु, शनि, राहू योग करते हैं तो देश में अमन चैन, कल्याण और नीरोगता होती है । इसमें संदेह नहीं करना चाहिये ॥२९॥

एक राशि में भौम, शुक्र, शनि० युति का फल

एकराशिगता ह्येते भौमभार्गवसूर्यजाः ।
[5]तदा भूपा विनश्यन्ति प्रजानां संक्षयो भवेत् ॥ ३० ॥

जिस समय में एक राशि में भौम, शुक्र, शनि, इकट्ठे होते हैं तो राजाओं (शासकों) का नाश और जनक्षति होती है ।३०।

---

१. मयू० चि० ६ पृ० २७ श्लोक ।
२. मयू० चि० ६ पृ० २८ श्लोक ।
३. मयू० चि० ६ पृ० २९ श्लोक ।
४. मयू० चि० ६ पृ० ३० श्लोक ।
५. मयू० ६ पृ० ३० श्लोक ।

एक राशि में शु० श० मं० गु० युति का फल

[1]शुक्रमन्दारजीवाश्च यदैकत्र समाश्रिताः।
मेघा जलं न मुञ्चन्ति दुर्भिक्षं जायते तदा ॥ ३१ ॥

जिस समय में एक राशि में शुक्र, शनि, भौम, गुरु मिलते हैं तो बादल आ आ कर चले आते हैं तथा वर्षा नहीं करते, इसलिए अकाल की सम्भावना होती है।३१।

एक राशि में शु० गु० श० मं० बु०

[2]गुरुमन्दारशुक्राश्च यदा सौम्यसमन्विताः।
देशभ्रंशः प्रजानाशो वस्त्रधात्वोर्महर्घता ॥ ३२ ॥

जिस समय में एक राशि में गुरु, शनि, भौम, शुक्र, बुध इकट्ठे होते हैं तो देश नष्ट, जनता का नाश, वस्त्र और धातुओं में तेजी आती है ।।३२।।

एक राशि में सू० चं० गु० युति का फल

[3]दिननाथेन्दुगुरवो यदैकत्र समाश्रिताः।
उत्तरस्यां दिशि भयं प्रजाः क्रन्दन्ति नित्यशः ॥ ३३ ॥
[4]यवान्नमुद्गवस्त्राणां सङ्ग्रहे च कृते सति।
मासे सप्तमके चैव लाभो भवति पुष्कलः ॥ ३४ ॥

जिस सभय में एक राशि में सूर्य, चन्द्रमा, गुरु मिलते हैं तो उत्तर दिशा भय से व्याप्त होकर वहाँ की जनता प्रतिदिन विलाप करती है। उस समय जौ, मूंग, वस्त्रों का संग्रह करने पर सातवें ही मास में लाभ हो जाता है ।। ३३-३४ ।।

एक राशि में सू० चं० शु० गु० बु० युति का फल

[5]रवीन्दुशुक्रेज्यशशाङ्कपुत्रा यदैकराशौ सहिता भवन्ति।
मेघाः प्रवर्षन्ति महर्घता स्यात्प्रजाविनाशो दिशि निर्ऋते स्यात् ॥३५॥

जिस समय में एक राशि में सूर्य, चन्द्र, शुक्र, गुरु, बुध एकत्रित होते हैं तो मेघ अधिक वर्षा करते हैं, महर्घता होती है और नैर्ऋत्य दिशा की जनता का ह्रास होता है ।। ३५ ।।

एक राशि में गु० सू० शु० श० मं० युति का फल

[6]जीवार्कशुक्रार्कसुताः यदैकराशिं गता भूमिसुतेन युक्ताः।
भूपालपीडान्नमहर्घता स्यात् क्रन्दन्ति लोकास्त्रभयाभितप्ताः ॥ ३६ ॥

---

१. मयू० ६ पृ० ३१ श्लोक।
२. मयू० ६ पृ० ३२ श्लोक।
३. मयू० ६ पृ० ३३ श्लोक।
४. मयू० ६ पृ० ३४ श्लोक।
५. मयू० चि० ७ पृ० ३५ श्लोक।
६. लयू० चि० ७ पृ० ३६ श्लोक।

जिस समय में एक राशि में गुरु, शुक्र, शनि, भौम एकत्रित होते हैं तो राजा (शासक) लोग दुःखी, अन्नों की महगी और संसार अस्त्र भय से पीड़ित होता है ।। ३६ ।।

एक राशि में शनि राहु युति का फल

[1]शनिराहू यदैकत्र भवेतां सहितौ तदा ।
सर्वधान्यमहर्घत्वं राजानो भयविह्वलाः ।। ३७ ।।

जिस समय में एक राशि में शनि राहु इकट्ठे होते हैं तो समस्त अन्न के भावों में वृद्धि और राजा (शासक) भय से विह्वल होते हैं ।। ३७ ।।

एक राशि में मं० शु० युति का फल

[2]एकराशिगतावेतौ धरापुत्राङ्गिरःसुतौ ।
तदा मेघा न वर्षन्ति वर्षाकाले न संशयः ।। ३८ ।।

जिस समय में एक राशि में मंगल शुक्र की युति होती है तो वर्षा समय में अच्छी वर्षा नहीं होती है । इसमें सन्देह की आवश्यकता नहीं है ।। ३८ ।।

एक नक्षत्र में मं० शु० गु० युति का फल

[3]महीसुतो दैत्यपुरोहितो गुरुर्यदैकनक्षत्रसमाश्रिताः ग्रहाः ।
तदा सुभिक्षं च यवान्नसङ्ग्रहे मासे चतुर्थे विपुलो हि लाभः ।।३९।।

जिस समय में एक नक्षत्र में भौम, शुक्र, गुरु इकट्ठे होते हैं तो सुभिक्ष अर्थात् समस्त पदार्थ सस्ते व सुलभ होते हैं तथा जौ का संग्रह करने पर चौथे मास में प्रचुर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।। ३९ ।।

एक राशि में ७ ग्रहों की युति का फल

[4]सप्त ग्रहा यदैकस्था गोलयोगस्तदा भवेत् ।
दुर्भिक्षं राष्ट्रपीडा च तस्मिन् योगे न संशयः ।। ४० ।।

जिस समय में एक राशि में सातों ग्रह इकट्ठे होते हैं तो गोल नामक योग होता है । इस योग में दुर्भिक्ष व राष्ट्र पीड़ा हाती है । इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए ।।४०।।

भचक्र में सूर्य, शुक्र, चन्द्र की स्थिति वश फल

[5]अग्रे याति दिवानाथः पृष्ठे च भृगुनन्दनः ।
मध्ये सोमसुतो याति भवत्यन्नमहर्घता ।। ४१ ।।

---

१. मयू० चि० ७ पृ० ३७ श्लो० ।
२. मयू० चि० ७ पृ० ३८ श्लो० ।
३. मयू० चि० ७ पृ० ३९ श्लो० ।
४. मयू० चि० ७ पृ० ४० श्लो० ।
५. मयू० चि० ७ पृ० ४१ श्लो० ।

राशिचक्र में सूर्य की राशि से पीछे की राशि में शुक्र और चन्द्रमा इन दोनों के मध्य में जब होता है तो अन्न के भावों में महगी आती है ।। ४१ ।।

शुक्र शनि बुध वश फल

[1]गच्छतोऽग्रे शुक्रशनी बुधः पृष्ठं समाश्रितः ।
धनधान्याकुला पृथ्वी प्रजा नन्दन्ति सर्वशः ।। ४२ ।।

बुध से आगे की राशि में शुक्र शनि जब होते हैं तो समस्त भूमण्डल धन धान्य से परिपूर्ण होकर जनता आनन्द से काल को व्यतीत करती है ।। ४२ ।।

सूर्य भौम की स्थिति से फल

[2]भौमस्य पृष्ठतो याति भानुश्चेज्जलशोषकः ।
भवत्यत्र न सन्देहो विपरीतो जलप्रदः ।। ४३ ।।

जब सूर्य के पीछ भौम होता है तो वर्षा नहीं होती और सूर्य से आगे होनेपर अच्छी वर्षा होती है इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ।। ४३ ।।

पुनः प्रकारान्तर से

[3]मेषे समाश्रितो भानुर्वृषे च धरणीसुतः ।
भयव्याधियुता लोका नृपाणां विग्रहो महान् ।। ४४ ।।

जब कि मेष राशि में सूर्य और वृष राशि में भौम होता है तो संसारी जीव भय व रोगों से व्याप्त होते हैं और राजाओं से शत्रुता होती है ।। ४४ ।।

मेष राशि में श० सू० शु० भौ० युति का फल

[4]मेषे शनैश्चरो भानुर्भार्गवो भूमिजस्तथा ।
दुर्भिक्षं लोकपीडा च भवेत्पृथ्वी भयाकुला ।। ४५ ।।

जिस समय में मेष राशि में शनि, सूर्य, शुक्र, भौम का योग होता है तो, दुर्भिक्ष (अकाल) मानस सन्ताप और भूमि भय से खिन्न होती है ।। ४५ ।।

वृष राशि में श० शु० भौ० युति का फल

[5]वृषराशिं यदा प्राप्ताः शनिभार्गवभूमिजाः ।
दुर्भिक्षं राष्ट्रभङ्गश्च लोकानां भयमादिशेत् ।। ४६ ।।

जिस समय में वृष राशि में शनि, शुक्र, भौम का योग होता है तो दुर्भिक्ष, राष्ट्र-भंग, सांसारिक जीवों में भय व्याप्त होता है ।। ४६ ।।

---

१. मयू० चि० ७ पृ० ४२ श्लो० ।
२. मयू० चि० ७ पृ० ४३ श्लो० ।
३. मयू० चि० ७ पृ० ४४ श्लो० ।
४. मयू० चि० ७ पृ० ४५ श्लो० ।
५. मयू० चि० ७ पृ० ४६ श्लो० ।

वृष राशि में सू० भौ० श० युति का फल

[1]वृषे भानुः कुजः सौरिस्तदा युद्धं समादिशेत् ।
न वर्षन्ति जलं मेघा दुर्भिक्षं लोकपीडनम् ॥ ४७ ॥

जिस समय में वृष राशि में सूर्य भौम, शनि का योग होता है तो भूमि में लड़ाई होती है और मेघ पानी नहीं देते हैं इससे अकाल होकर संसारी जीव दुःख भोगते हैं ॥ ४७ ॥

शनि, गुरु, भौम, स्थिति वश फल

[2]मीनराशिगते मन्दे कर्कटस्थे वृहस्पतौ ।
तुलाराशिगते भौमे तदा दुर्भिक्षमादिशेत् ॥ ४८ ॥

जिस समय में मीन राशि में शनि व कर्क में गुरु और तुला राशि में भौम होता है तो अकाल पड़ता है ॥ ४८ ॥

तुला राशि में शु० श० भौ० युति का फल

[3]शुक्रार्किभूमिपुत्रा हि तुलाराशिसमाश्रिताः ।
तदा युद्धं महाघोरं राज्ञां चैव परस्परम् ॥ ४९ ॥

जिस समय में तुला राशि में शुक्र, शनि, भौम एकत्रित होते हैं तो पारस्परिक राजाओं में बहुत बड़ी लड़ाई होती है ॥४९॥

मीन राशि में चं० शु० भौ० युति का फल

[4]चन्द्रभार्गवधरासुता यदा मीनराशिमुपयान्ति वै तदा ।
दुर्लभं भवति सर्वधान्यकं वारिदश्च न जलं प्रमुञ्चति ॥५०॥

जिस समय मीन राशि में चन्द्रमा, शुक्र, भौम की युति होती है तो समस्त धान्य (अन्नादि) अप्राप्य और वर्षा का उस समय अभाव होता है ॥५०॥

गुरु शनि युति का फल

[5]गुरुयुक्तः शनिर्वक्रं करोति च यदा तदा ।
नवमे मासि गोधूमतिलतैलमहर्घता ॥ ५१ ॥

जिस समय में गुरु से युक्त हाकर शनि वक्री होता है तो नवें मास में गेहूँ, तिल, तैल में मँहगी आती है ॥५१॥

गु० शु० व श० भौ० युति का फल

[6]गुरुशुक्रावेकराशिं गतौ दुर्भिक्षदुःखदौ ।
युद्धदौ शनिमाहेयौ तदा दुर्भिक्षकारकौ ॥ ५२ ॥

---

१. मयू० चि० ७ पृ० ४७ श्लो० ।
२. मयू० चि० ७ पृ० ४८ श्लो० ।
३. मयू० चि० ७ पृ० ४९ श्लो०—'शुक्रार्किभूमि पुत्राहि' पा० है ।
४. मयू० चि० ७ पृ० ५० श्लो० ।
५. मयू० चि० ७ पृ० ५१ श्लो० ।
६. मयू० चि० ७ पृ० ५२ श्लो० ।

जिस समय में गुरु शुक्र का योग होता है तो अकाल एवं जन समुदाय दुःखी होता है। शनि भौम का एक राशि में योग होने पर दुर्भिक्ष तथा पारस्परिक कलह होता है ॥५२॥

शुभग्रह के अतिचारी होने पर फल

[१]यदा शुभग्रहः कश्चिदतिचारं करोति च।
तदा नृपाः क्षयं यान्ति दुर्भिक्षं तत्र दारुणम्॥ ५३ ॥

जिस समय में कोई शुभ ग्रह अतिचारी होता है तो राजाओं का ह्रास और दुर्भिक्ष से दुःख होता है ॥५३॥

पापग्रह के अतिचारी होने पर फल

[२]अतिचारं यदा क्रूरो ग्रहः कश्चित्करोति च।
तदा नन्दन्ति राजानो धनधान्याकुला धरा॥ ५४ ॥

जिस समय में कोई पापग्रह अतिचारी होता है तो राजा आनन्दित होते हैं और धनधान्यों से आकुल धरा होती है ॥५४॥

श० शु० की स्थितिवश फल

[३]यदातिचारगो मन्दो वक्रीभूतोऽङ्गिरःसुतः।
तदा नन्दन्ति राजानो धनधान्याकुला धरा॥ ५५ ॥

जिस समय में शनि अतिचारी और शुक्र वक्री होता है तो राजा आनन्दित होते हैं और धनधान्यों से व्याप्त भूमि होती है ॥५५॥

शुभ पाप स्थितिवश फल

[४]यदा क्रूरग्रहो वक्रो शुभश्चैवातिचारगः।
तदा भवति दुर्भिक्षं राज्ञां युद्धं परस्परम्॥ ५६ ॥

जिस समय में क्रूर ग्रह वक्री और शुभ ग्रह अतिचारी होता है तो दुर्भिक्ष और राजाओं में आपसी लड़ाई होती है ॥५६॥

अन्य स्थिति से फल

[५]यस्मिन्मासे पूर्णिमायां यदा वर्षति वारिदः।
गोधूमघृतधान्यानां तस्मिन्मासे महर्घता॥ ५७ ॥

जिस मास की पूर्णिमा में वर्षा होती है तो उस समय में गेहूँ, घी, धान्य के भावों में उछाल आती है ॥५७॥

---

१. मयू० चि० ८ पृ० ५३ श्लो०।
२. मयू० चि० ८ पृ० ५४ श्लो०।
३. मयू० चि० ८ पृ० ५५ श्लो०।
४. मयू० चि० ८ पृ० ५६ श्लो०।
५. मयू० चि० ८ पृ० ५७ श्लो०।

प्रकारान्तर से

[1]यदा मलिम्लुचे भौमोऽङ्गिरा राश्यन्तरे व्रजेत् ।
गुरुर्वा महतो वृष्टिरथवा लोकसंक्षयः ॥ ५८ ॥

जिस अधिक मास में भौम व शुक्र या गुरु एक राशि के अन्तर में होते हैं तो अधिक वर्षा व संसार का ह्रास होता है ॥५८॥

पुनः प्रकारान्तर से

[2]कार्तिके मार्गशीर्षे च सङ्क्रान्तौ वारिवर्षणम् ।
तदा महर्घता पौषे सस्यवृद्धिश्च मध्यमा ॥ ५९ ॥

जब कि कार्तिक या अगहन मास में संक्रान्ति के दिन वर्षा होती है तो पौष में मँहगी और मध्यम धान्यों की वृद्धि होती है ॥५६॥

गु० शु० श० बु० युति का फल

[3]गुरुशुक्रार्किशशिजा यदैकत्र समाश्रिताः ।
घातयोगं विजानीयात्पांसुवृष्टिस्तदा भवेत् ॥ ६० ॥

जिस समय में गुरु, शुक्र, शनि, बुध एक राशि में एकत्रित होते हैं तो धूलि की वर्षा करने वाला घात योग होता है ॥६०॥

सू० चं० भौ० स्थितिवश फल

[4]सूर्याद्विधुः पञ्चमसप्तमः स्यात्क्षोणीसुतो याति तथारिगेहे ।
दिग्दाहयोगो मुनिना प्रदिष्टो सञ्जात उल्कापतनादिकारी ॥६१॥

जिस समय में सूर्य से पांचवें या सातवें चन्द्रमा और छठें स्थान में भौम होता है तो दिग्दाह नाम का योग होता है । तथा उल्का पतन की आशंका होती है ॥६१॥

भूमिकंपन योग

[5]उपप्लवात्सप्तमगो महीजो महीसुतात्पञ्चमगो यदा बुधः ।
बुधाद्विधुः स्याच्च चतुष्टयस्थितः स चेह भूकम्पनयोग ईरितः ॥६२॥

यदि उपप्लव (उत्पात) की राशि से सातवें भौम और मङ्गल से पांचवें बुध तथा बुध से केन्द्र में (१ । ४ ७ । १०) चन्द्रमा हो तो भूकम्प होता है ॥६२॥

दक्षिण दिशा में दुर्भिक्ष का ज्ञान

[6]मेषे वृषे कुलीरार्द्धे यदोत्पाता भवन्ति हि ।
दक्षिणस्यां तदा युद्धं प्रजाः क्षुद्दुःखपीडिताः ॥ ६३ ॥

---

१. मयू० चि० ८ पृ० ५८ श्लो० ।
२. मयू० चि० ८ पृ० ५६ श्लो० ।
३. मयू० चि० ८ पृ० ६० श्लो० ।
४. मयू० चि० ८ पृ० ६१ श्लो० ।
५. मयू० चि० ८ पृ० ६२ श्लो० ।
६. मयू० चि० ८ पृ० ६३ श्लो० ।

यदि मेष या वृष या कर्क राशि के अर्ध भाग स्थित सूर्य में उत्पात होते हैं तो दक्षिण दिशा में लड़ाई और जनता भूख से दुःखी होती है ।।६३।।

प्रकारान्तर से दुर्भिक्ष का ज्ञान

[१]मिथुनेऽर्केऽन्ननाशः स्याद्विन्ध्ये सिंहलके भयम् ।
[२]कान्यकुब्जे महापीडा कन्यायां संस्थिते रवौ ।। ६४ ।।

यदि मिथुन के सूर्य में उत्पात होता है तो विन्ध्य देश में अन्न का विनाश और सिंहल देश में भय होता है ।

यदि कन्या राशि के सूर्य में उत्पात होता है तो कान्यकुब्ज देश में जनता नाना प्रकार के दुःखों से व्याप्त होती है ।।६४।।

तुला वृश्चिक, मकर में उत्पात का फल

[३]तौलिन्यर्के च दुर्भिक्षं देशभङ्गोऽथ पिङ्गले ।
वृश्चिके च मृगे सूर्ये दुर्भिक्षं नर्मदातटे ।। ६५ ।।

यदि तुला राशि के सूर्य में उत्पात हो तो दुर्भिक्ष व देश भंग, वृश्चिक के सूर्य में पिंगल देश में और मकर के सूर्य में नर्मदा नदी के किनारे दुर्भिक्ष होता है ।।६५।।

धनु, कुम्भ में उत्पात का फल

धनुष्यर्के विनश्यन्ति देशाः कालिञ्जरादयः ।
मद्रदेशस्य नाशः स्यात् कुम्भेऽर्के सस्यपीडनम् ।। ६६ ।।

यदि धनु के सूर्य में उत्पात हो तो कालिञ्जरादि देशों का विनाश और कुम्भ के सूर्य में मद्र देश का नाश तथा अन्न पीड़ा होती है ।।६६।।

शुक्र शनि अस्त का फल

[४]शुक्रसौर्योर्द्वयोरस्तमेकराशौ यदा भवेत् ।
अन्नपीडा महायुद्धं देशे देशे च विग्रहाः ।। ६७ ।।

यदि किसी भी एक राशि में शुक्र, शनि, अस्त हों तो अन्नों का दुःख तथा देश देशान्तरों में परस्पर कलह तथा घनघोर लड़ाई होती है ।।६७।।

४, ५ ग्रहों की युति का फल

[५]चत्वारः पञ्चषाः खेटा बलिनस्त्वेकराशिगाः ।
राज्ञां बहुभयं दद्युररिभिर्दुःखदा मताः ।। ६८ ।।

जब किसी एक राशि में चार या पाँच ग्रह एकत्रित होते हैं तो राजाओं को शत्रुओं से नाना प्रकार के क्लेश भोगने पड़ते हैं ।।६८।।

---

१. मयू० चि० ८ पृ० ६४ श्लो० ।
२. मयू० चि० ८ पृ० ६५ श्लो० ।
३. मयू० चि० ८ पृ० ६६ श्लो० ।
४. मयू० चि० २३ पृ० २७ श्लो० ।
५. मयू० चि० २३ पृ० २८ श्लो० ।

२, ३ ग्रह वक्री होने का फल

[1]यदा प्रतीपगौ खेटौ नृपं क्षोभयतस्तदा ।
प्रतीपगास्त्रयः खेटा युद्धवृष्टिभयप्रदाः ॥ ६९ ॥

जिस समय में दो ग्रह वक्री होते हैं तो राजाओं में क्षोभ की वृद्धि और तीन ग्रह वक्री होने पर अधिक लड़ाई, वर्षा और भय होता है ॥६९॥

४, ५ ग्रह वक्री होने का फल

[2]राजान्यत्वं हि कुर्वन्ति चत्वारो यदि वक्रिणः ।
प्रतीपगाः पञ्च खेटा भङ्गदा राज्यराष्ट्रयोः ॥ ७० ॥

जिस समय में चार ग्रह वक्री होते हैं तो राज्यमङ्ग और पाँच ग्रह वक्री होने पर राज्य व राष्ट्र का विनाश होता है ॥७०॥

भूविनाश योग ज्ञान

[3]अर्कसौरी भौमसौरी तमस्सौरीज्यमङ्गलौ ।
गुरुसौरी महायोगो महीनाशाय कल्पते ॥ ७१ ॥

जिस समय में सूर्य शनि, या भौम शनि, या राहु शनि या गुरु भौम या गुरु शनि की युति होती है तो प्रायः पृथ्वी में विनाश की अधिकता होती है ॥७१॥

५, ६ , ७, ८ ग्रह युति का फल

[4]पञ्च ग्रहा घ्नन्ति चतुष्पदानां ते षट् ग्रहा घ्नन्ति समस्तभूपान् ।
सप्तग्रहा घ्नन्ति समस्तदेशान् अष्टग्रहैः स्यात्खलु कूटयोगः ॥७२॥

जिस समय में पांच ग्रह एक राशि में आते हैं तो पशुओं का विनाश तथा ६ ग्रह होने से समस्त राजाओं का व सात ग्रह होने पर समस्त देशों का नाश होता है और आठ ग्रह एक स्थान में होने से कूट योग होता है ॥७२॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने ग्रहाणां योगकथनं नाम सप्तमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार प्रकार ज्योतिषवेत्ता गयादत्तजी के पुत्र रामदीन द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञ-रञ्जन नामक सङ्ग्रह ग्रन्थ का ग्रहों का योग कथन नामक सातवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥७॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधरचतुर्वेदकृता सप्तमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी व्याख्या पूर्तिमगात् ॥७॥

---

१. मयू० चि० २३ पृ० २६ श्लो० ।
२. मयू० चि० २३ पृ० ३० श्लो० ।
३. मयू० चि० २३ पृ० ३१ श्लो० ।
४. मयू० चि० २३ पृ० ३२ श्लो० ।

अथ अष्टमं ग्रहाणामुत्पातप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे आठवें प्रकरण में उत्पातों का वर्णन किया गया है। उन्हें विविध योगों से बताते हैं।

मत्स्यपुराणे—

अथ प्रवक्ष्ये द्विजपुङ्गवानां ज्ञानं सुदिव्यं तरुभूमिवारिजम्।
उत्पातसंज्ञान् विविधान् विकारान् जातांश्च देशे नृपराज्यभङ्गान् ॥ १ ॥

मत्स्य पुराण में कहा है कि श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिए सुन्दर दिव्य ज्ञान को जो कि वृक्ष या भूमि या जल से उत्पन्न होता है, उसे कहता हूं। वे वृक्षादि जन्य उत्पात अनेक विकारों से उत्पन्न होते हैं और जिस देश या स्थान में उत्पात उत्पन्न होते हैं वहाँ के राजा का तन्त्र नष्ट होता है तथा स्वयं पदच्युत होकर नष्ट होता है ॥१॥

विशेष—उत्पात किसे कहते हैं और ये उत्पात क्यों हुआ करते हैं इसका क्या कारण है। इस जिज्ञासा में उत्तर है कि 'प्रकृतेरन्यत्वमुत्पातः' तथा (यः प्रकृतिविपर्यासः सर्वः संक्षेपतः स उत्पातः। क्षितिगगनदिव्यजातो यथोत्तरं गुरुतरो भवति' इन वाक्यों से सिद्ध होता है कि प्रकृति का विपर्यास हो या यों समझिये कि प्रकृति के बदलने पर भूमिजन्य, आकाशीय और दिव्य तीन प्रकार से उत्पात हुआ करते हैं। इसके विषय में भी आचार्य वराह ने कहा है कि मनुष्यों में जब विनीतता नहीं होती तो उससे पाप होता है। यही पाप जब प्रचुर मात्रा में होता है तो इससे उपद्रव होता है। दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम उत्पात उन उपद्रवों की सूचना देते हैं। आचार्य वराह ने कहा है 'अपचारेण नराणामुपसर्गः पापसञ्चयाद् भवति। संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमांस्त उत्पाताः॥ (बृ० सं० ४६ अ० २ श्लो०) ॥१॥

तथा गर्गाचार्य जी ने भी कहा है 'अतिलोभादसत्याद्वा नास्तिक्याद्वाप्यधर्मतः। नरापचारान्नियतमुपसर्गः प्रवर्तते' ॥१॥

उत्पात होने में अन्य कारण यह भी है कि मनुष्यों के अविनय से अप्रसन्न देवता गण उन उत्पातों को उत्पन्न करते हैं। कहा है 'मनुजानामपचारादपरक्ता देवताः सृजन्त्येतान्' और भी गर्गाचार्य जी का वचन 'ततोऽपचारो मर्त्यानामपरज्यन्ति देवताः। ते सृजन्त्यद्भुतान् भावान् दिव्यभूम्यन्तरिक्षजान् ॥१॥

एवं वसिष्ठसंहिता में भी 'अन्यत्वं प्रकृतेः यत्तदसावुत्पातसंज्ञकम्। अधर्मतस्त्वसत्याच्च नास्तिक्यादतिलोभतः। अनाचारा नृणां नित्यमुपसर्गः प्रजायते। दिव्यान्तरिक्षक्षितिजविकारा घोररूपिणः' ॥१॥

दिव्य उत्पात उसे कहते हैं जो कि सूर्य आदि ग्रह और नक्षत्रों के विकार युत होने से होता है। उल्का, निर्घात, विकार युत वायु, सूर्य, चन्द्र का परिवेष, गन्धर्व नगर, इन्द्रधनुष आदि से हुए उत्पातों का नाम आन्तरिक्ष उत्पात और चलायमान वस्तु के स्थिर एवं स्थिर के चलायमान होने का नाम भौम उत्पात होता है॥

भौम उत्पात तो शान्ति से नष्ट हो जाता है और आन्तरिक्ष कम होता है, एक दिव्य उत्पात शान्ति से भी नष्ट नहीं हो पाता है कहा है 'दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृतमुल्कानिर्घात-पवनपरिवेषाः। गन्धर्वपुरपुरन्दरचापादि यदान्तरिक्षं तत्॥ भौमं चरस्थिरभवं तच्छान्तिभिराहतं शमुपैति। नाभसमुपैति मृदुतां शाम्यति नो दिव्यमित्येके' ॥१॥

तथा गर्गाचार्य जी ने भी कहा है 'स्वर्भानुकेतुनक्षत्रग्रहताराकेन्द्रजम्। दिवि चोत्पद्यते यच्च तद्दिव्यमिति कीर्तितम्॥ वाय्वभ्रसन्ध्यादिग्दाहपरिवेषतमांसि च। खपुरं चेन्द्रचापं च तद्विन्द्यादन्तरिक्षजम्॥ भूमावुत्पद्यते यच्च स्थावरं वाथ जङ्गमम्। तदैकदैशिकं भौममुत्पातं परिकीर्तितम्' ॥१॥

अन्य भी समाससंहिता में 'दिव्यं ग्रहर्क्षजातं भुवि भौमं स्थिरचरोद्भवं यच्च। दिग्दाहोल्कापतनं परिवेषाद्यं वियत्प्रभवम्' ॥१॥

महर्षि पराशर ने भी कहा है 'भौमं शान्तिहतं नाशमुपगच्छति मार्दवम्। नाभसं च शमं याति दिव्यमुत्पातदर्शनम् ॥१॥

आचार्य वराह का सिद्धान्त है कि अधिक सुवर्ण, गौ, अन्न, भूमि का दान करने से दिव्य भी उत्पात शान्त होता है। कहा है 'दिव्यमपि शान्तिमुपैति प्रभूतकनकान्न-गोमहीदानैः। रुद्रायतने भूमौ गोदोहात् कोटिहोमाच्च ॥१॥

सूर्य चन्द्रग्रहण से ७ दिन के मध्य उल्कादि पतन फल

भूकम्पनिर्घातरजोऽतिपाता आसप्तरात्राद् ग्रहणाद्रवीन्द्वोः।
उल्कानिपाताः परिवेषचापाः स्युर्यत्र तद्देशनृपस्य नाशः॥ २॥

जब सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण से ७ दिन के भीतर भूकम्प, निर्घात, अधिक धूलि उड़ना, उल्का पतन, परिवेष, इन्द्रधनुष आदि जहाँ दिखाई देते हैं तो उसी स्थान के स्वामी का नाश होता है ॥२॥

केतु के उदय से फल

यस्यां शिखा स्याद्दिशि धूमकेतोः प्रयाति यस्यामुदितोऽथ केतुः।
रौद्रः स्पृशेद्भानि च यानि यानि तेषां सदेशान्नृपतीन्निहन्यात्॥ ३॥

धूमकेतु जिस दिशा में उदित होता है तथा उसकी शिखा (चोटी) जिस दिशा में रहती है और रौद्र केतु जिस २ नक्षत्र का स्पर्श करता है तो उक्त दिशाओं के राजा या यों समझिये कि स्वामी का विनाश होता है ॥३॥

विशेष—रौद्र केतु पूर्व और अग्निकोण में उदित होने वाला, तीन शिखा वाला कपिश, रूक्ष या ताम्र के समान किरण वाला और आकाश के तीन भाग में गमन करने वाला होता है। कहा है 'प्राग्वैश्वानरमार्गे शूलाग्रः श्यावरूक्षताम्रार्चिः। नभस्त्रिभागगामी रौद्र इति'॥ (बृ० सं० ११ अ० ३२ श्लो०) ॥३॥

अन्य उत्पात लक्षण व फल

ज्येष्ठास्थितोऽर्केण कुजेन युक्तो राहुः शनिर्वाप्युदितश्च केतुः।
यदा तदानीं भुवि सार्वभौमा रोगाद्रणाद्वा लभते प्रभङ्गम्॥ ४॥

जब कि ज्येष्ठा नक्षत्र में सूर्य भौम से युक्त राहु शनि या केतु से युक्त होकर उदित होता है तो शासक जन (राजा) रोग या युद्ध से नष्ट होते हैं ॥४॥

अपर उत्पात व फल

निरन्तरा सप्तदिनानि वृष्टिर्वर्षा विनाल्पा प्रचुराथ वा स्यात्।
अङ्गारमांसास्थिघृतादिवृष्टिर्वा यत्र तद्देशनृपस्य भङ्गः॥ ५॥

जब कि निरन्तर सात दिन तक अधिक या अल्प वृष्टि होती है। या विना वर्षा के सात दिन तक अंगार, मांस, हड्डी या घृतादि की वर्षा होती है तो जिस देश में उक्त स्थिति उत्पन्न होती है तो वहाँ का शासक (राजा) पदच्युत होता है ॥५॥

वर्षा ऋतु में सात दिन निरन्तर पानी से उत्पात

प्रावट्काले च सप्ताहाद्वर्षणात्खलु भूपतेः।
सैन्यक्षोभो भवेन्नूनं दीर्घकालान्न संशयः॥ ६॥

जब कि वर्षा काल में निरन्तर सात दिन तक वर्षा होती है तो निश्चय ही राजा की सेना में अधिक क्षोभ होता है ॥६॥

वृक्षोत्पन्न उत्पात

रक्तादिवर्णेवसनैः प्रवेष्टितान् पश्यन्ति यस्मिन् विषये नरास्तरून्।
शुष्काः प्ररोहन्ति पतन्ति नोरुजो वृक्षाश्च तद्देशनृपस्य विच्युतिः॥ ७॥

जब कि मनुष्य वृक्षों को लाल कपड़ों के वस्त्रों से आच्छादित देखने लगता है तथा सूखे वृक्षों में अंकुर को एवं हृष्ट-पुष्ट वृक्षों को गिरते अचानक देखता है तो इस उत्पात रूपी शकुन से वहाँ के शासक की पदच्युति होती है ॥७॥

जलजन्य उत्पात

रुदन्ति जल्पन्ति हसन्ति वाप्यः शुष्यन्त्यशोष्याः सलिलाशयाश्च।
यान्ति प्रतीपं सरितश्च कूपा नश्यन्ति वा भङ्गभयाय राज्ञाम्॥ ८॥

जब कि वापियाँ अर्थात् बावरी दीर्घिका या यों समझिये कि सञ्चित जल के अभाव से रोने लगें तथा लोग भी चिल्लाते रहें या हँसते रहें और पानी के श्रोत भी

सूखने लगें या नदी की धारा विपरीत दिशाओं में बहने लगे या अच्छे अच्छे कुएँ अचानक नष्ट होने लगें तो उस देश के शासक का नाश हो जाता है ॥८॥

अन्य उत्पात का लक्षण

प्रासादकोटध्वजहर्म्यतोरणाः पतन्त्यकस्माच्च विना निमित्ततः ।
रुदन्त्यभीक्ष्णं रजनीषु कुक्कुरा यस्मिश्च तस्मिन्विषये नृपच्युतिः ॥ ९ ॥

जब कि देवताओं के मन्दिर और राजकीय निवास स्थान या कोठे या ध्वजा या धनिक लोगों के मकान विना कारण के धराशायी होने लगें और रात में निरन्तर कुत्ते रोने लगें तो शासक की पदच्युति होती है या यों समझिये कि ये उत्पात अशुभ सूचक होते हैं ॥९॥

अन्य उत्पात का लक्षण

रूक्षः क्षपायां परिवेष इन्दोर्भानोर्यदा सर्वदिने दशाहान् ।
चतुस्त्रिखेटाः परिवेषगा वा स्युर्यत्र तद्देशनृपस्य भङ्गः ॥ १० ॥

जब कि रात्रि में चन्द्रमा का नीरस परिवेष लक्षित होता है या समस्त दिन सूर्य का परिवेष हो या तीन चार ग्रह परिवेशगत हों तो दस दिन में उस देश के राजा का या यों समझिये शासक का नाश होता है ॥१०॥

पशु मनुष्य नक्षत्र जन्य उत्पात

गर्भो विचित्रो महिषीतुरङ्गीतारागवं [णं ?] द्वित्रिसमुद्भवो वा ।
चतुस्त्रिशीर्षाङ्घ्रिभुजैर्नृजन्म यस्मिन्पुरे तस्य नृपस्य भङ्गः ॥ ११ ॥

जब कि भैंस व घोड़ी गर्भ से विचित्र वस्तु पैदा करने लगें या नक्षत्र समुदाय संकुचित दीखने लगे, तीन चार सिर, पैर और हाथवालों का जन्म होने लगे तो जिस नगर में ऐसा होता है तो वहाँ के शासक का नाश होता है ॥११॥

अन्य उत्पात का ज्ञान

पृथ्वीविदारश्च विनाम्बुपातात्स्रावो जलस्याम्बुविहीनदेशात् ।
सरित्तडागादिषु रक्ततोयं राज्ञः प्रभङ्गाय भवेत्समार्धात् ॥ १२ ॥

जब बिना वर्षा के भूमि फटने लगे और जल रहित देशों से जल स्रोत जैसा बहने लगें, नदी, तालाब के पानी रुधिरमय होने लगे तो ६ महीना के भीतर वहाँ के राजा या शासक का नाश होता है ॥१२॥

अन्य उत्पात का लक्षण

ग्रस्तं विधुं वाप्युदयस्थमर्कं लग्नस्थमिन्दुं परिवेषगं वा ।
उल्का निहन्याद्विषये च यस्मिंस्तस्य क्षितीशो मरणं प्रपश्येत् ॥ १३ ॥

जिस समय में ग्रसित चन्द्रमा अथवा उदयस्थ सूर्य या लग्नस्थ चन्द्र अर्थात् उदित चन्द्रमा परिवेष से घिरा हुआ हो तथा किसी विचार के समय उल्का का पतन होता है तो उस देश के राजा (शासक) का विनाश होता है ॥१३॥

अपर उत्पात का लक्षण

प्रबन्धकाकासितकीलकाद्या ये केतवस्ते रविमण्डलस्थाः।
सूर्यग्रहे वास्तमयोदये स्युर्यस्मिन्पुरे तस्य नृपस्य भङ्गः॥ १४ ॥

जब कि प्रबन्ध, कौवा, असित कीलकादि केतु सूर्यग्रहण के समय या सूर्योदय या अस्त के समय रविमण्डल में होते हैं तो जिस नगर में ऐसी स्थिति हो जाती है तो उस नगर के स्वामी का अनिष्ट होता है ॥१४॥

अन्य उत्पात लक्षण

विना वारिप्रवाहाद्वै वर्धन्ते सलिलाशयाः।
यत्र तत्र नृपभ्रंशः सस्यवृद्धेरथ क्षयात्॥ १५ ॥

जब कि बिना जल प्रवाह के अर्थात् बिना वर्षा से तालाबों में पानी बढ़ जाता है या जिस देश नगर में ऐसा होता है तो वहाँ के राजा का यों समझिये वहाँ के शासक का तन्त्र फेल हो जाता है और अन्नों का ह्रास होता है ॥१५॥

सूर्य सम्बन्धी उत्पात लक्षण व फल

सन्ध्याद्वयेऽर्कः परिवेषकारी रक्तैश्च मेघैः स्थगितो रणाय।
खण्डोऽतिकृष्णस्तपनोऽतिरूक्षो यस्मिन् पुरे तस्य पुरस्य हानिः॥ १६ ॥

जब कि दोनों सन्ध्याओं में लाल बादलों से सूर्य परिवेषकारी या अधिक काला खण्डित या शुष्क होता है तो वहाँ लड़ाई समाप्त हो जाती है और उस नगर का नाश होता है ॥१६॥

छाया सम्बन्धी उत्पात लक्षण व फल

सुनिर्मलेऽर्के घनरेणुहीने छाया प्रतीपाथ न दृश्यते वा।
यस्मिश्च देशे सुमहद्भयं च तस्मिन्समायात्यचिरादरिभ्यः॥ १७ ॥

जब कि अधिक धूलि से रहित सुन्दर निर्मल सूर्य की छाया विपरीत दिशा में दिखाई देती है या निर्मल सूर्य होने पर छाया किसी की भी दिखाई न पड़े तो उस देश में शीघ्र ही शत्रु से भय प्राप्त होता है ॥१७॥

तथा बृ० सं में भी 'यद्यमलेऽर्के छाया न दृश्यते प्रतीपा वा। देशस्य तदा सुमहद्भयमायातं विनिर्देश्यम्' ॥१७॥

देव चेष्टा से उत्पात व फल

भङ्गः पातो जल्पनं रोदनं वा नृत्यं हास्यं देवतानां च यत्र।
धूमज्वालास्वेदभस्मप्रमोक्षो दुर्भिक्षार्तिर्भूपभङ्गोऽथ तत्र॥ १८ ॥

जब कि देव मूर्तियां अचानक गिरने लगती हैं या टूटने लगती हैं, रोती हैं या चिल्लाने लगती हैं या नृत्य करने लगती हैं या हंसने लगती हैं या धुआं की लौ निकलने लगती या पसीना या भस्म निकलती हुई प्रतीत होती है तो वहां राजा का विनाश और दुर्भिक्ष होने से उस स्थान के लोग दुःखी होते हैं ॥१८॥

अन्य उत्पात लक्षण व फल

नरा विहङ्गाः पशवः प्रदीप्ता नदन्ति युद्धयन्ति विना निमित्तात् ।
व्रजन्ति वा मैथुनमन्यजातां यस्मिन्पुरे तस्य नृपस्य भङ्गः ॥ १९ ॥

जब कि जिस देश में प्रदीप्त मनुष्य, पक्षी, पशु, अकारण आनन्दित होते हैं या लडाई लड़ते हैं या अन्य जाति से मैथुन करते हैं तो वहां के राजा (शासक) का विनाश होता है ॥१९॥

अन्य उत्पात लक्षण व फल

आरण्यसत्त्वः प्रविशेदभीतो दिवा च यस्मिन्नगरे विशेषात् ।
सूर्योदये वास्तमये शृगालाः प्राच्यां प्रतीच्यां नृपतेर्भयाय ॥ २० ॥

जब कि कोई वन जीव निर्भय होकर नगर में प्रवेश करता है, विशेषकर सूर्योदय या सूर्यास्त समय में श्यार जिस नगर में पूर्व या पश्चिम से आता है तो राजा को भयभीत बना देता है ॥२०॥

वायु जन्य उत्पात लक्षण व फल

अतिप्रचण्डः पवनः सशर्करो निरन्तरं सप्तदशाष्टवासरान् ।
नैर्ऋत्यजो दक्षिणपश्चिमोद्भवो यस्मिन्पुरे तत्र रिपोर्भयं भवेत् ॥ २१ ॥

जब कि निरन्तर सात या आठ या दस दिन तक मृत्कोणों के साथ नैऋत्यकोण या अत्यन्त पश्चिम की प्रखर हवा चलती है तो उस स्थान पर शत्रु से भय उत्पन्न होता है ॥२१॥

पशु चेष्टा जन्य उत्पात लक्षण व फल

गावस्तुरङ्गा द्विरदा क्षपायां क्रन्दन्ति हर्षन्ति नदन्ति दीनम् ।
सन्त्यक्तधाराश्रुविलोचनाश्च यस्य क्षितीशस्य च तस्य भङ्गः ॥ २२ ॥

जब कि रात के समय में गाय, घोड़े और हाथी अकारण चिल्लाने लगते हैं या हर्षित होते हैं या आनन्दित होते हैं या नेत्रों से आँसू बहाते हैं तो उस राजा को नष्ट कर देते हैं ॥२२॥

अन्य उत्पात लक्षण व फल

प्रासादयानालयपादपाद्या वह्निं विना यत्र परिज्वलन्ति ।
धूमोऽथ वा स्यादनलैर्विनैव यस्मिन्पुरे तस्य नृपस्य भङ्गः ॥ २३ ॥

जब कि जिस नगर में राज महल, सवारी घर और वृक्षादि बिना अग्नि के जलने लगें या बिना अग्नि के धुआँ निकलता है तो उस नगर के राजा का नाश होता है ॥२३॥

तथा बृ० सं० में कहा है 'प्रासादभवनतोरणकेत्वादिष्वनलेन दग्धेषु। तडिता षण्मासात् परचक्रस्यागमो नियमात्' 'धूमोऽनग्निसमुत्थो रजस्तमश्चाह्निजं महाभयदम्' ॥ (४६ अ० २० श्लो०) ॥२३॥

तथा वसिष्ठसंहिता में भी 'संधुक्षतोऽपि नृपतेः पीडाजनपदस्य च। यस्मिन् पुरे जनपदे धूमोऽनग्नौ महद्भजः' ॥२३॥

वाद्यजन्य उत्पात व फल

अनाहतास्तूर्यमृदङ्गभेरीशब्दा भवेयुर्नृपतेश्च यस्य।
भेर्यादिशब्दा गिरिकुञ्जवाप्यां यस्मिन्पुरे तस्य नृपस्य भङ्गः ॥ २४ ॥

जब कि विना बजाये जिस नगर में तुरई, भेरी और मृदङ्गादि के शब्द पर्वत लता व जलाशयों में होते हैं तो उस स्थान के स्वामी का विनाश होता है ॥२४॥

नक्षत्रजन्य उत्पात लक्षण व फल

तारागणो यत्र विभाति वासरे सुनिर्मले खे न विभाति वा निशि।
सविस्फुलिङ्गस्त्वथ धूमसंयुतो यस्मिन् पुरे तस्य नृपस्य भङ्गः ॥ २५ ॥

जबकि जिस नगर में दिन में ताराओं का दर्शन और रात्रि में अदर्शन हो तथा विस्फुलिङ्ग से या धुआँ से युक्त तारा मण्डल होता है तो वहाँ के राजा का नाश होता है ॥२५॥

इन्द्रधनुष उत्पात लक्षण व फल

माहेन्द्रचापो जलदैर्विना दिवा रात्रौ समेघोपि महेन्द्रदिग्भवः।
स राज्यपीडां कुरुते विशेषतो जलेतरो भाति जगत्यवृष्टिकृत् ॥ २६ ॥

जब कि जिस राज्य में मेघों के बिना दिन में इन्द्रधनुष दिखाई दे या रात्रि में मेघों के साथ पूर्व दिशा में दिखाई पड़े तो उस राज्य में या स्थान पर वर्षा का अभाव होता है ॥२६॥

तथा बृ० सं० में कहा है 'व्यभ्रे नभसीन्द्रधनुर्दिवा यदा दृश्यतेऽथवा रात्रौ। प्राच्यामपरास्यां वा तदा भवेत्क्षुद्भयं सुमहत्' ॥ (४६ अ० ४५ श्लो०) ॥२६॥

वृष्टिजन्य उत्पात लक्षण व फल

वृष्टिस्तडिद्वारिदगर्जनस्वना विना पयोदैः प्रभवन्ति यत्र वा।
चलाः स्थिराः स्युः प्रचलं च निश्चला यस्मिन्पुरे तस्य नृपस्य विच्युतिः ॥२७॥

जब कि मेघों के अभाव में बादलों की गड़गड़ाहट के साथ जिस स्थान पर वर्षा होती है तथा चल वस्तु स्थिर होने लगें और स्थिर पदार्थों में गति उत्पन्न हो तो वहाँ का शासक (राजा) पद से हट जाता है ॥२७॥

जलजन्य उत्पात लक्षण व फल

सदा निर्भरजलाद्रेः स्थिरता देवतालपाषाणः ।
प्रतिमादेरानयनं वा राज्ञो राज्यभङ्गाय स्यात ॥ २८ ॥

जब किसी सर्वदा झरने के जल में जो कि पर्वत से बहता है उसमें स्थिरता और मन्दिरों से पाषाण की प्रतिमा गतिशील जिसके राज्य में होती है उसका राज्य भङ्ग होता है ॥२८॥

अन्य उत्पात लक्षण व फल

अट्टालकोटध्वजतोरणाद्यमुदेति गान्धर्वपुरं हि रक्तम् ।
प्रधूमितायां दिशि यस्य राज्ये तस्य प्रविद्यात्क्षितिपस्य भङ्गः ॥ २९ ॥

जब कि जिसके राज्य में प्रधूमित दिशा में आकाश में अट्टालिका, परकोटा, ध्वजा तोरण या लाल गन्धर्व नगर का उदय होता है तो वहाँ के शासक (राजा) का नाश होता है ॥२६॥

अन्य उत्पात लक्षण व फल

काष्ठदाहः पीतवर्णोऽग्निवर्णः स्पष्टां छायां व्यञ्जयेत्सूर्यवद्यः ।
पक्षान्मासाद्वा स भूपं निहन्याद्दुर्भिक्षार्ति मानवानां च कुर्यात् ॥ ३० ॥

जब कि काठ जलाने पर उसकी आँच का रङ्ग पीला हो तथा उस अग्नि से सूर्य की तरह स्पष्ट छाया प्रतीत होती है तो उस देश के राजा का मरण एक पक्ष या एक मास के भीतर होता है । तथा जनता अन्न की क़मी के कारण दुःख भोगती है ॥३०॥

समस्त जगत नाशक उत्पात लक्षण

रोहिणीशकटे केतुर्भिन्द्यात्सौरोऽथ वा कुजः ।
यदा तदा जगत्सर्वं संक्षयं यात्यसंशयः ॥ ३१ ॥

जब कि रोहिणी शकट को केतु और शनि या मंगल केतु भेदन करता है तो अवश्य ही समस्त संसार नष्ट हो जाता है ॥३१॥

अन्य उत्पात लक्षण व फल

पूर्वे द्वितीये प्रहरे दिवानिशं पृथ्वीप्रकम्पः पवनाग्निमण्डले ।
दुर्भिक्षचौरानलभूमिविग्रहामयैः प्रजां हन्ति नरेन्द्रभङ्गदः ॥ ३२ ॥

जब कि दिन या रात्रि के पहले या दूसरे प्रहर में हवा या अग्नि के मण्डल में भूमि में कम्पन होता है तो अकाल, चोर, अग्नि और भूमि में लड़ाई भय रोग के कारण प्रजा और शासक का मान मर्दन होता है ॥३२॥

तृतीय चतुर्थ प्रहर में उत्पात का फल

तुर्ये तृतीये प्रहरे दिवानिशं भूमिप्रकम्पो वरुणेन्द्रमण्डले ।
सस्यार्धवृद्धिः प्रचुराम्बुवृष्टिदो हन्यान्नृपान्कण्ठमुखामयज्वरैः ॥ ३३ ॥

जब कि रात या दिन के तीसरे या चौथे प्रहर में वरुण या इन्द्र मण्डल में भूमि में चंचलता आती है तो अन्नों की वृद्धि और अधिक वर्षा होती है । तथा राजाओं का कण्ठ, मुख व ज्वर रोगों से विनाश होता है ॥३३॥

ग्रहणजन्य उत्पात व फल

सौम्यां दिशि श्रावणकार्तिकाश्विने भानोर्हिमांशोर्ग्रहणं यदा भवेत् ।
पादांशमर्द्धं च सुरेज्यवीक्षितं तदा भवेत्क्षेमसुवृष्टिवृद्धिभाक् ॥३४॥

जब कि श्रावण या कार्तिक या आश्विन में चतुर्थांश अथवा आधा सूर्य चन्द्रमा का ग्रहण गुरु से दृष्ट होता है तो उत्तर दिशाओं में सुख, आनन्द, सुन्दर वृष्टि और स्थान की वृद्धि होती है ॥३४॥

प्रकारान्तर से

याम्यां च सर्वं ग्रहणं रवीन्द्वोर्ग्रस्तोदयास्तौ च यदा भवेताम् ।
कुजार्कजाभ्यां च निरीक्षितौ स्तस्तदा जगत्क्षुद्भयकष्टमेति ॥ ३५ ॥

जब कि सूर्य या चन्द्रमा का सर्व ग्रहण हो तथा ग्रसित का उदय या अस्त तथा भौम शनि से दृष्ट हो तो दक्षिण की जनता भूख से कष्ट पाती है ॥३५॥

आकाशीय उत्पात लक्षण व फल

प्रासादकोटध्वजतोरणान्वितं स्कन्देति गन्धर्वपुरं सितप्रभम् ।
प्रशान्तदिश्यस्तमयोदये रवेस्तद्भूपतेर्वृद्धिजयार्थसौख्यदम् ॥ ३६ ॥

जब कि जिस के राज्य में प्रशान्त दिशा में सूर्यास्त या उदय के समय आकाश में महल, परकोटा, ध्वजा तोरण से युक्त सफेद स्कन्द गन्धर्व नगर का अवलोकन हो तो उस राज्य की वृद्धि, विजय, धन और सुख होता है ॥३६॥

परिवेष से उत्पात लक्षण व फल

स्निग्धः समग्रः परिवेष इन्दोर्भानोर्यदा माक्षिकशाम्भकान्तिः ।
अखण्डितो रौप्यनिभोऽथ वा स्यात्प्रावृष्यलं क्षेमसुभिक्षवृष्ट्यै ॥ ३७ ॥

जब कि जिस देश में सूर्य या चन्द्रमा चीकने समस्त परिवेष अर्थात् घेरे में आते हैं । अथवा चाँदी के समान अखण्ड घेरे में आते हैं सहत तुल्य रंग के आते हैं तो वर्षा काल में अच्छी वर्षा होती है और समस्त सुख साधन प्राप्त होते हैं ॥३७॥

अन्य उत्पात लक्षण व फल

सूर्योदये वास्तमये दिने वा तमोनिभो भूरिरजो निपातः ।
पक्षाद्दशद्वादशवासराद्वा यस्मिन्पुरे तस्य नृपस्य भङ्गः ॥ ३८ ॥

जब कि जिसके राज्य में सूर्योदय समय में या अस्त समय में या दिन में अन्धकार के सदृश अत्यन्त धूलि उड़ती है तो वहाँ के राजा का पन्द्रह या दस या बारह दिन में मान नष्ट होता है ॥३८॥

उल्कापात से अनिष्ट ज्ञान

उल्कानिपाता बहवः क्षपायां रूक्षाश्च रक्ता चितपन्नगाभाः ।
एकाथ वोग्रा नियतेर्दिवोल्का यस्मिन्नपुरे तस्य नृपस्य भङ्गः ॥ ३९ ॥

जब कि जिस देश में रात्रि में रूखी, लाल, चितकबरे सर्प की कान्ति के समान चमकदार अनेक उल्काओं का पतन होता है या दिन में एक उग्र उल्का का सम्पात हो तो वहाँ के राजा का अभिमान चूर-चूर हो जाता है ॥३९॥

प्रकारान्तर से

दिवाथ रात्रौ तरणेः पुरस्तान्निर्घातपातः समहीप्रकम्पः ।
उल्कान्वितो वा स्वयमेव वा स्याद्यस्मिन् पुरे तस्य नृपस्य भङ्गः ॥ ४० ॥

जब कि जिस स्थान में दिन या रात्रि में सूर्योदय के पूर्व भूमि हिलने के साथ निर्घात का पतन हो या स्वयं ही उल्का का पात हो तो वहाँ के राजा का सम्मान नष्ट होता है ॥४०॥

पुनः प्रकारान्तर से

महीप्रकम्पाश्चः पुनस्तृतोये तुर्येऽथ वा सप्तमवासरे वा ।
पक्षेऽथ मासे भवति द्वितीयः पृथ्वीप्रकम्पो मरणाय राज्ञाम् ॥ ४१ ॥

जब कि जिस स्थान में पृथ्वी हिलने के बाद पुनः दूसरा प्रस्खलन तीसरे या चौथे या सातवें या पन्द्रहवें दिन या मास में होता है तो उस स्थान के स्वामी का विनाश होता है ॥४ ॥

दो ग्रहणों से उत्पात लक्षण व फल

सहस्ररश्मेर्ग्रहणात् सुधांशोः पक्षावसाने ग्रहणं यदा स्यात् ।
तदा नरेन्द्राः स्वबलप्रकोपैर्यान्ति क्षयं सौख्यमुपैति लोकः ॥ ४२ ॥

जब कि सूर्य ग्रहण के १५ दिन बाद चन्द्रमा का ग्रहण होता है तो राजा समुदाय अपने पुरुषार्थ के क्रोध से नष्ट होते हैं और जनता सुखी होती है ॥४२॥

अन्य उत्पात लक्षण व फल

तुषाररश्मेर्ग्रहणाच्च भानोः पक्षावसाने ग्रहणं यदा स्यात् ।
तदा नरेन्द्राः स्वबलप्रकोपैर्यान्ति क्षयं कष्टमुपैति लोकः ॥ ४३ ॥

जब कि चन्द्रमा के ग्रहण के पन्द्रह दिन बाद सूर्य का ग्रहण होता है तो राजा लोग अपने बल के क्रोध से ह्रास की प्राप्ति करते हैं और संसारी लोक कष्ट से दुःख भोगते हैं ॥४३॥

पुनः ग्रहण से उत्पात लक्षण व फल

तुषाररश्मेर्ग्रहणाच्च भानोः पक्षावसाने ग्रहणं यदा स्यात् ।
तदा क्षितीशाः स्वचमूप्रकोपैर्यान्ति क्षयं कष्टमुपैति लोकः ॥ ४४ ॥

जब कि चन्द्रमा के ग्रहण के अनन्तर १५ वें दिन सूर्य का ग्रहण होता है तो राजा लोग अपनी सेना के क्रोध से नष्ट होते हैं और जनता कष्ट भी भोगती है ॥ ४४ ॥

पुनः ग्रहण से उत्पात लक्षण व फल

आसप्तरात्राद्ग्रहणाद्रवीन्द्वोः स्यात्खेटयुद्धात्परिवेषचापात् ।
दिग्दाहकम्पात्कवृदष्टियुद्धरोगाःप्रशान्तिश्च जलप्रपातात् ॥ ४५ ॥

जब कि सूर्य या चन्द्रमा के ग्रहण के सात दिन बाद ग्रह युद्ध, परिवेष, दिग्दाह, भूस्खलन हो तो कुत्सित वर्षा, लड़ाई और रोग होते हैं तथा सुन्दर वर्षा होने से शान्ति प्राप्त होती है ॥ ४५ ॥

अन्य उत्पात लक्षण व फल

रात्रौ धनुर्दिने उल्का तारा चैव दिने तथा ।
रात्रौ तु धूमकेतुश्च भूकम्पश्च तथैव हि ॥ ४६ ॥
एतानि दुष्टचिह्नानि देशक्षयकराणि च ॥ ४७ ॥

जब कि रात्रि में इन्द्रधनुष, दिन में उल्का पात तथा तारा का दर्शन और रात में धूमकेतु या भूकम्प हो तो इन दुष्ट चिन्हों से देश का विनाश होता है ॥ ४६-४७ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने ग्रहाणां उत्पातकथनं नाम अष्टमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिषवेत्ता गयादत्त जी के पुत्र पं० रामदीन द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रहात्मक ग्रन्थ का ग्रहों के उत्पात कहने वाला आठवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥८॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधरचतुर्वेदकृता अष्टमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी व्याख्या पूर्तिमगात् ॥ ८ ॥

अथ नवमं परिवेषादिप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे नवें परिवेष प्रकरण में परिवेष का स्वरूप, उनके वर्ण, स्वामी, कुबेर कृत परिवेष, ऋतु के वश परिवेष का लक्षण, अशुभ परिवेष फल, उसके वर्ण वश शुभाशुभ ज्ञान, परिवेष से वृष्टि का ज्ञान, परिवेष गत ग्रहों का फल, तिथि क्रम से परिवेषादि के फल को वराह मिहिरोक्त वचन बल से बताते हैं ।

[1]वाराहीये—

परिवेष का स्वरूप

सम्मूर्च्छिता रवीन्द्वोः किरणाः पवनेन मण्डलीभूताः ।
नानावर्णाकृतयस्तन्वभ्रे व्योम्नि परिवेषाः ॥ १ ॥

आचार्य वराहमिहिर का कथन है जब कि वायु के द्वारा मण्डलीभूत सूर्य तथा चन्द्रमा के किरण के अनुरूप मेघ वाले आकाश में प्रतिविम्वित होकर अनेक वर्ण के दिखाई देते हैं उसी का नाम परिवेष होता है ॥ १ ॥

समय के आधार पर परिवेष का फल

रविशशिपरिवेषे पूर्वयामे च पीडा रविशशिपरिवेषे मध्ययामे च वृष्टिः ।
रविशशिपरिवेषे धान्यनाशस्तृतीये रविशशिपरिवेषे राज्यभङ्गश्चतुर्थे ॥ २ ॥

जब कि सूर्य चन्द्रमा का परिवेष पहले प्रहर में होता है तो पीड़ा, दूसरे में वर्षा, तीसरे में अन्नों का नाश और चौथे प्रहर में होता है तो राज्य भंग होता है ॥ २ ॥

परिवेषों के रंग और उनके स्वामी

ते [2]रक्तनीलपाण्डुरकापोताभ्राभशबलहरिशुक्लाः ।
इन्द्रयमवरुणनिर्ऋतिश्वसनेशपितामहाग्निकृताः ॥ ३ ॥

ये परिवेष इन्द्र, यम, वरुण, निर्ऋति, वायु, शिव, ब्रह्मा और अग्निकृत क्रम से रक्त, नील, थोड़ा सा श्वेत, कबूतरी रंग, मेघ वर्ण, कृष्णश्वेत, हरे और सफेद रंग के होते हैं । या यों समझिये कि इन्द्रकृत लाल, यमकृत नीला, वरुण कृत थोड़ा सफेद, निर्ऋति कृत कबूतरी रंग, वायु कृत मेघ वर्ण, शिव कृत शबल, ब्रह्मा कृत हरा और अग्नि कृत सफेद रंग का होता है ॥ ३ ॥

कुबेर कृत परिवेष का रंग

[3]धनदः करोति मेचकमन्योन्यगुणाश्रयेण चाप्यन्ये ।
प्रविलीयते मुहुर्मुहुरल्पफलः सोऽपि वायुकृतः ॥ ४ ॥

---

१. बृ० सं० ३४ अ० १ श्लो० ।
२. बृ० सं० ३४ अ० २ श्लो० ।
३. बृ० सं० ३४ अ० ३ श्लो० ।

कुबेर कृत मयूर कण्ठ सदृश नील रंग का परिवेष होता है। अन्य इन्द्रादि कृत परिवेष मिले हुए रंग के होते हैं। जो परिवेष बार बार उत्पन्न होकर नष्ट होता है वह वायु जन्य होने से अल्प फल प्रदान करता है ॥ ४ ॥

तथा काश्यप ऋषि ने भी कहा है 'सितपीतेन्द्रनीलाभा रक्तकापोतबभ्रवः। शबला-बहिर्वर्णाश्च विज्ञेयास्ते शुभप्रदाः॥ ऐन्द्रयामाप्यनैऋर्त्यवारुणाः सौम्यवह्निजाः। दृश्यादृश्येन भावेन वायव्यः सोऽपि कष्टदः' ॥ ४ ॥

ऋतुओं के आधार पर परिवेष का फल

[1]चाषशिखिरजततैलक्षीरजलाभः स्वकालसम्भूतः।
अविकलवृत्तः स्निग्धः परिवेषः शिवसुभिक्षकरः ॥ ५ ॥

जबकि नीलकण्ठ, मोर, चांदी, तेल, दूध और जल के सामान शोभा वाला परिवेष यदि क्रम से अपने समय में उत्पन्न होता है। अर्थात् यदि शिशर ऋतु में नीलकण्ठ की कान्तिवाला, वसन्त में मोरकी तरह, गर्मी में चांदी की तरह, वर्षा में तेल, शरद में दूध और हेमन्त ऋतु में जल तुल्य कान्ति वाला होकर अखण्ड मण्डलाकार व निर्मल हो तो लोगों का शुभ तथा सुभिक्ष होता है ॥ ५ ॥

काश्यप ऋषि ने कहा है 'शिशिरे चाषवर्गश्च वसन्ते शिखिसन्निभः। ग्रीष्मे रजतसंकाशः प्रावृट्तैलसमुद्भवः। गोक्षीरसदृशः शस्तः परिवेषः शरत्स्मृतः। हेमन्ते जलसङ्काशः स्वकाले शुभदः स्मृतः' ॥५॥

अशुभ परिवेष का लक्षण

[2]सकलगगनानुचारी नैकाभः क्षतजसन्निभो रूक्षः।
असकलशकटशरासनश्रृङ्गाटकवत् स्थितः पापः ॥ ६ ॥

जब कि समस्त आकाश मण्डल में बिहार करने वाला अनेक रंग का, लाल, रूखा, अखण्डित तथा गाड़ी या धनुष या त्रिभुज की तरह आकृति वाला परिवेष होता है तो दूषित फलदायक कहा है ॥६॥

परिवेष के रंग से शुभाशुभ फल

[3]शिखिगलसमेऽतिवर्षं बहुवर्णे नृपवधो भयं धूम्रे।
हरिचापनिभे युद्धान्यशोककुसुमप्रभे चापि ॥ ७ ॥

जब कि मोर के कण्ठ के समान नीले रंग का परिवेष होता है तो अधिक वर्षा, अनेक रंगों का होने से राजा का नाश, धूम्र वर्ण होने से भय, इन्द्रधनुष के तुल्य और अशोक पुष्प के समान कान्तिवाला परिवेष हो तो परस्पर में युद्ध होने की सूचना देता है ॥७॥

---

१. बृ० सं० ३४ अ० ४ श्लो०।
२. बृ० सं० ३४ अ० ५ श्लो०।
३. बृ० सं० ३४ अ० ६ श्लो०।

परिवेष से वर्षा का ज्ञान

[1]वर्णेनैकेन यदा बहुलःस्निग्धः क्षुराभ्रकाकीर्णः ।
स्वर्तौ सद्यो वर्षं करोति पीतश्च दीप्तार्कः ॥ ८ ॥

जब कि एक रंग का, अधिक, निर्मल, उस्तरा के तुल्य मेघों से व्याप्त, अपनी ऋतु में परिवेष दृष्टिगोचर होता है तो शीघ्र वर्षा होती है ।

यदि पीले रंग का परिवेष हो और उस समय सूर्य की किरणें तीखीं हों तो भी जल्दी वर्षा होती है ॥८॥

भयप्रद परिवेष का लक्षण

[2]दीप्तमृगविहङ्गरुतः कलुषः संध्यात्रयोत्थितोऽतिमहान् ।
भयकृत्तडिदुल्काद्यैर्हतो नृपं हन्ति शस्त्रेण ॥ ९ ॥

जब सूर्य की ओर मुख करके हिरण व पक्षी समुदाय के शब्द युत, रूखा, तीनों सन्ध्याओं म उत्पन्न अत्यन्त विशाल परिवेष दृष्टिगोचर होता है तो संसार में भय व्याप्त होता है । ऐसा समझना चाहिये ॥९॥

तथा गर्गाचार्य जी ने कहा है 'उदयास्तमयोर्मध्ये सूर्याचन्द्रमसोर्द्वयोः । परिवेषः प्रदृश्येत तद्राष्ट्रमवसीदति' ॥९॥

नृपविनाश परिवेष लक्षण

[3]प्रतिदिनमर्कहिमांशोरहर्निशं रक्तयोर्नरेन्द्रवधः ।
परिविष्टयोरभीक्ष्णं लग्नास्तमयस्थयोस्तद्वत् ॥ १० ॥

जब कि प्रतिदिन सूर्य का और रात में चन्द्रमा का लाल रंग का परिवेष दिखाईदेता है या उदय व अस्त के समय प्रतिदिन परिवेष दिखाई देता है तो राजा का नाश होता है ॥१०॥

तथा गर्गाचार्य जी ने कहा है 'दिवा सूर्ये परीवेषो रात्रौ चन्द्रे यदा भवेत् । एकस्मिश्चिदहोरात्रे तदा नश्यति पार्थिवः । एतेन विधिना नित्यं सप्ताहं परिविष्यते । सर्वभूतविनाशः स्यात्तस्मिन्नुत्पातदर्शने' ॥१०॥

एवं समाससंहिता में भी 'शृङ्गाटकचापविकारसन्निभः परुषमूर्तिरतिबहुलः । सकलगगनानुचारी बहुवर्णश्चावलम्बी च । द्वित्रिगुणः खण्डो वा सन्ध्यात्रयमुत्थितो ग्रहच्छादी । परिवेषः पापफलो ग्रहरोधी हन्ति तद्भक्तीः । स्निग्धो मधुघृतशिखिचाप-पत्रनीलोत्पलाब्जरजतनिभः । क्षेमसुभिक्षाय भवेत् परिवेषोऽर्कस्य शशिनो वा ॥१०॥

---

१. बृ० सं० ३४ अ० ७ श्लो० ।
२. बृ० सं० ३४ अ० ८ श्लो० ।
३. बृ० सं० ३४ अ० ९ श्लो० ।

परिवेष से सेनापति आदि को भय

[1]सेनापतेर्भयकरो द्विमण्डलो नातिशस्त्रकोपकरः ।
त्रिप्रभृति शस्त्रकोपं युवराजभयं नगररोधम् ॥ ११ ॥

जब कि आकाश में दो मण्डल वाला परिवेष दृष्टिगोचर होता है तो सेना नायक भय से युक्त, किन्तु ज्यादे शस्त्र भय करने वाला नहीं होता है ।

यदि तीन, चार, पाँच मण्डलों से युक्त परिवेष होता है तो शस्त्र कोप, युवराज को भय और शत्रुओं से नगर को अवरुद्ध करने वाला होता है ॥११॥

तथा गर्गाचार्य जी ने कहा है 'द्विमण्डलपरीवेषः सेनापतिभयङ्करः । युद्धे सुदारुणं कुर्याद् दृश्यते मण्डलैस्त्रिभिः' ॥११॥

परिवेष से वर्षा का योग

[2]वृष्टिस्त्र्यहेण मासे न विग्रहो वा ग्रहेन्दुभनिरोधे ।
होराजन्माधिपयोर्जन्मर्क्षे चाशुभो राज्ञः ॥ १२ ॥

जब कि आकाश में ताराग्रहों में कोई एक ग्रह, चन्द्रमा और कोई एक नक्षत्र ये तीनों परिवेष में आ जाते हैं तो तीन दिन में वर्षा और लड़ाई होती है ।

अथवा जिस राजा का जन्मलग्नेश, जन्मराशीश या जन्मनक्षक्ष ये तीनों एक परिवेष में हो जाते हैं तो राजा के लिये अशुभ फल होता है ॥१२॥

तथा गर्गाचार्य जी ने कहा है 'त्रीणि यत्रावरुध्येरन्नक्षत्रं चन्द्रमा ग्रहः । त्र्यहेण वर्षतीन्द्रश्च मासाद्वा जायते भयम्' ॥१२॥

परिवेष स्थित शनि का फल

[3]परिवेषमण्डलगतो रवितनयः क्षुद्रधान्यनाशकरः ।
जनयति च वातवृष्टिं स्थावरकृषिकृन्निहन्ता च ॥ १३ ॥

जब कि परिवेष में शनि स्थित होता है तो छोटे अन्नों (कौनी आदि) का नाश वायुयुत वृष्टि, स्थावर (वृक्ष आदि) की हानि और किसानों का नाश होता है ॥१३॥

परिवेष स्थित मंगल गुरु का फल

[4]भौमे कुमारबलिपतिसैन्यानां विद्रवोऽग्निशस्त्रभयम् ।
जीवे परिवेषगते पुरोहितामात्यनृपपीडा ॥ १४ ॥

जब कि परिवेष में मंगल आ जाता है तो कुमार, सेना का स्वामी और सेनाओं को व्याकुल, अग्नि से भय तथा शस्त्र भय करता है ।

---

१. बृ० सं० ३४ अ० १० श्लो० ।
२. बृ० सं० ३४ अ० ११ श्लो० ।
३. बृ० सं० ३४ अ० १२ श्लो० ।
४. बृ० सं० ३४ अ० १३ श्लो० ।

जब कि परिवेष में गुरु होता है तो पुरोहित, सचिव और राजाओं को पीड़ा प्राप्त होती है ॥१४॥

परिवेष स्थित बुध व शुक्र का फल

[1]मन्त्रिस्थावरलेखकपरिवृद्धिश्चन्द्रजे सुवृष्टिश्च ।
शुक्रे यायिक्षत्रियराज्ञोपीडाप्रियं चान्नम् ॥ १५ ॥

जब कि परिवेष में बुध आ जाता है तो सचिव, वृक्षादि और लेखकों की वृद्धि तथा सुन्दर वर्षा होती है ।

यदि परिवेष में शुक्र होता है तो गमन करने वाले क्षत्रियों तथा रानियों को पीड़ा और दुर्भिक्ष होता है ॥१५॥

परिवेष स्थित राहु व केतु का फल

[2]क्षुदनलमृत्युनराधिपशस्त्रेभ्यो जायते भयं केतौ ।
परिविष्टे गर्भभयं राहौ व्याधिर्नृपभयं च ॥ १६ ॥

जब कि परिवेष में केतु दृष्टिगोचर होता है तो दुर्भिक्ष, अग्नि, मरण, राजा और शस्त्र का भय होता है ।

यदि परिवेष में राहु होता है तो गर्भ भय, व्याधि और राज भय होता है ॥१६॥

समाससंहिता में कहा है 'बलपुरोहितनरपतिकृषिकृत्पीड़ा क्रमेण परिविष्टैः । कुजगुरुसितार्कपुत्रैः सौम्येन तु मन्त्रिपरिवृद्धि । केतोः शास्त्रोद्योगो राहोः परिवेषेण रोगभयम् । युद्धक्षुदभयनृपतेर्नाशं व्याध्यादिभिः क्रमशः' ॥१६॥

परिवेष में दो तीन आदि ग्रह होने का फल

[3]युद्धानि विजानीयात्परिवेषाभ्यन्तरे द्वयोर्ग्रहयोः ।
दिवसकृतः शशिनो वा क्षुदवृष्टिभयं त्रिषु प्रोक्तम् ॥ १७ ॥
[4]याति चतुर्षु नरेन्द्रः सामात्यपुरोहितो वशं मृत्योः ।
प्रलयमिव विद्धि जगतः पञ्चादिषु मण्डलस्थेषु ॥ १८ ॥

जब कि सूर्य चन्द्रमा के परिवेष में दो ताराग्रह स्थित होते हैं तो युद्ध, तीन ग्रह हों तो दुर्भिक्ष और अवृष्टि का भय, चार ग्रह हों तो मन्त्री और पुरोहित के साथ राजा की मृत्यु और सूर्य या चन्द्रमा के परिवेष में पाँचों तारा ग्रह हों तो संसार का प्रलय होता है ॥१७–१८॥

---

१. वृ० स० ३४ अ० १४ श्लो० ।
२. वृ० सं० ३४ अ० १५ श्लो० ।
३. वृ० सं० ३४ अ० १६ श्लो० ।
४. वृ० सं० ३४ अ० १७ श्लो० ।

तारा ग्रह व नक्षत्र का अलग-अलग परिवेष फल

[1]'ताराग्रहस्य कुर्यात्पृथगेव समुत्थितो नरेन्द्रवधम् ।
नक्षत्राणामथवा यदि केतोर्नोदयो भवति ॥ १९ ॥

जब कि केतु का उदय न हुआ हो तथा ताराग्रह या नक्षत्र पृथक् पृथक् परिवेष से युत होते हैं तो राजा का विनाश होता है ॥१९॥

तथा काश्यप ऋषि ने कहा है 'परिवेषाभ्यन्तगौ द्वौ ग्रहौ यायिनागरौ । युद्धं च भवति क्षिप्रं घोररूपं सुदारुणम् । मण्डलान्तरिता पञ्च जगतः संक्षययावहाः । अथ ताराग्रहस्यैव नक्षत्राणामथापि वा । परिवेषो यदा दृश्यस्तदा नरपतेर्वधः । यदि केतूदयो न स्यादन्यथा तद्वदेद्फलम्' ॥१९॥

तिथिक्रम से परिवेष का फल

[2]'विप्रक्षत्रियविट्शूद्रहा भवेत्प्रतिपदादिषु क्रमशः ।
श्रेणीपुरकोशानां पञ्चम्यादिष्वशुभकारी ॥ २० ॥

[3]युवराजस्याष्टम्यां परतस्त्रिषु पार्थिवस्य दोषकरः ।
पुररोधो द्वादश्यां सैन्यक्षोभस्त्रयोदश्याम् ॥ २१ ॥

[4]नरपतिपत्नीपीडां परिवेषोऽभ्युत्थितश्चतुर्दश्याम् ।
कुर्यात्तु पञ्चदश्यां पीडां मनुजाधिपस्यैव ॥ २२ ॥

जब कि प्रतिपदा आदि चार तिथियों में परिवेष दिखाई दे तो ब्राह्मण आदि चार वर्णों का विनाश होता है । या यों समझिये प्रतिपदा में परिवेष हो तो ब्राह्मणों का द्वितीया में क्षत्रियों, का तृतीया में वैश्यों का और यदि चतुर्थी तिथि में परिवेष दिखाई दे तो शूद्रों का, पंचमी में तुल्य जातियों के संघ का, छठ में नगर का, सप्तमी में कोश का, अष्टमी में युवराज का, नवमी, दशमी, एकादशी में यदि परिवेष दिखाई दे तो राजा का अशुभ करने वाला होता है ।

यदि द्वादशी तिथि में वरिवेष दिखाई देता है तो नगर का अवरोध, त्रयोदशी में सेनाओं में आकुलता, चौदश में रानी को और पूर्णिमा में यदि परिवेष दिखाई दे तो राजा को पीड़ा होती है ॥ २०–२२ ॥

---

१. बृ० सं० ३४ अ० १८ श्लो० ।
२. बृ० सं० ३४ अ० १९ श्लो० ।
३. बृ० सं० ३४ अ० २० श्लो० ।
४. बृ० सं० ३४ अ० २१ श्लो० ।

परिवेष में रेखा वश शुभाशुभ फल

[1]नागरकाणामभ्यन्तरस्थिता यायिनां च बाह्यस्था ।
परिवेषमध्यरेखा विज्ञेयाक्रन्दसाराणाम् ॥ २३ ॥

[2]रक्तः श्यामो रूक्षश्च भवति येषां पराजयस्तेषाम् ।
स्निग्धः श्वेतो द्युतिमान् येषां भागो जयस्तेषाम् ॥ २४ ॥

जब कि परिवेष के अन्दर रेखा दिखाई देती है तो नगर वासियों का, परिवेष से बाहर दिखाई दे तो गमन करने वाले राजाओं का और परिवेष के मध्य में रेखा दिखाई दे तो भयङ्कर युद्ध की सार वस्तुओं का शुभाशुभ करने वाली होती है ।

जिस राजा की तरफ लाल, काला या रुक्ष वर्ण का होता है तो उस राजा की पराजय होती है । अर्थात् यों सयझिये कि परिवेष के अन्दर काला, लाल रूक्ष हो तो नगर वासियों की, बाहर में ऐसी स्थिति हो तो गमन करने वाले विजयेच्छु राजा की और यदि परिवेष के मध्य में लाल, काला, या रूक्ष दिखाई दे तो सेनाओं की पराजय होती है । तथा जिनका भाग निर्मल, श्वेत और कान्ति युक्त हो तो उनकी विजय होती है ॥ २३–२४ ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे
वृहद्दैवज्ञरञ्जने परिवेषकथनं नाम नवमं प्रकरणं
समाप्तम् ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमान् गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिष वेत्ता पं० रामदीन द्वारा कृत वृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रहात्मक ग्रन्थ का परिवेष के फल कहने वाला नवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता नवमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी व्याख्या परिपूर्णा ॥ ९ ॥

---

१. वृ० स० ३४ अ० २२ श्लो० ।
२. वृ० सं० ३४ अ० २३ श्लो० ।

अथ दशमं निर्घातप्रकरणं प्रारभ्यते।

अब आगे दसवें प्रकरण में निर्घात किसे कहते हैं, इसको और समय के आधार पर होने वाले लक्षण व फल को बतलाते हैं।

तच्च वाराहीये—

वराह वश निर्घात का लक्षण

[1]पवनः पवनाभिहतो गगनादवनौ यदा समापतति।
भवति तदा निर्घातः स च पापो दीप्तविहगरुतः॥ १॥

जब कि आकाश में हवा से हवा टकरा कर पृथ्वी में पड़ती है, उस समय उसके गिरने से जो शब्द होता है, उसे निर्घात कहते हैं। यदि यह सूर्याभिमुख पक्षियों के शब्द से युक्त हो तो दूषित फल देना वाला होता है॥ १॥

तथा गर्गाचार्य जी ने कहा है 'यदान्तरिक्षे बलवान् मारुतो मारुताहतः। पतत्यधः सनिर्घातो भवेदनिलसम्भवः'॥ १॥

समयवश निर्घात का लक्षण

[2]अर्कोदयेऽधिकरणिकनृपधनियोधाङ्गनावणिग्वेश्याः।
आप्रहरांशेऽजाविकमुपहन्याच्छूद्रपौरांश्च॥ २॥

[3]आमध्याह्नाद्राजोपसेविनो ब्राह्मणांश्च पीडयति।
वैश्यजलदांस्तृतीये चौरान्प्रहरे चतुर्थे तु॥ ३॥

[4]अस्तं याते नीचान् प्रथमे यामे निहन्ति सस्यान्।
रात्रौ द्वितीययामे पिशाचसङ्घान्निपीडयति॥ ४॥

[5]तुरगकरिणस्तृतीये विनिहन्याद्यायिनश्चतुर्थे।
भैरवजर्जरशब्दो याति यतस्तां दिशं हन्ति॥ ५॥

जबकि सूर्योदय काल में निर्घात होता है तो अधिक रणिक, राजा, धनी, शूर, स्त्री, व्यापारी और वेश्याओं का नाश होता है। यदि दिन के पहिले प्रहर में हो तो, भेड़ छाग पालक, शूद्र व पुरवासियों का नाश होता है। दूसरे प्रहर में राजा सेवक और

१. वृ० सं० ३९ अ० १ श्लो०।
२. वृ० सं० ३६ अ० २ श्लो०।
३. वृ० सं० ३९ अ० ३ श्लो०।
४. वृ० सं० ३६ अ० ४ श्लो०।
५. वृ० सं० ३९ अ० ५ श्लो०।

ब्राह्मणों को पीड़ा होती है। तीसरे में व्यापारी व मेघ का नाश और चौथे प्रहर में निर्घात हो तो चोरों को पीड़ा होती है। तथा रात के पहिले प्रहर में धान्यों का नाश, दूसरे में पिशाच समूहों को पीड़ा, तीसरे में हाथी व घोड़ों का नाश और यदि रात्रि के चौथे प्रहर में निर्घात हो तो गमन करने वालों का नाश होता है। तथा जिस दिशा में फूटे हुए घड़े की तरह भयङ्कर शब्द जाता है तो उस दिशा का नाश होता है ॥ २–५ ॥

समाससंहिता में कहा है 'निर्घातोऽहोरात्रेण हन्ति नृपपौरभृत्यराष्ट्रजनान्। तस्करविप्रांश्चार्कोदयाद्दिशं पतति यस्याम्' ॥ २–५ ॥

गर्गाचार्य जी ने भी कहा है 'यदा सूर्योदये प्राप्ते निर्घातःश्रूयते भुवि। क्षत्रिया योधमुख्याश्च पीड्यन्तेऽत्र न संशयः। प्रहरांशे तथा वैश्यान् हन्याद् गोजीविनस्तथा। परिवृत्ते हरौ वेश्या अपराह्णे तु दस्यवः। नीचचौरांश्च हन्यात् स अस्तमेति दिवाकरे। प्रथमे प्रहरे सस्यान्यर्द्धरात्रे तु राक्षसान्। रात्रित्रिभागे वैश्यांश्च प्रत्यूषे चाहितो भवेत्। यां दिशं चाभिहन्येत निर्घातो भैरवः स्वनः' ॥ २–५ ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने निर्घातलक्षणं नाम दशमं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिषवेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र रामदीनजी द्वारा विरचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संगृहीत ग्रन्थ का दसवाँ निर्घात लक्षण नाम वाला समाप्त हुआ ॥ १० ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता दशमप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी व्याख्या परिपूर्णा ॥ १० ॥

अथैकादशं इन्द्रधनुःप्रकरणं प्रारभ्यते।

अब आगे ग्यारहवें इन्द्र धनुष प्रकरण में मत मतान्तरों से इन्द्र धनुष के स्वरूप को, तथा उसके वर्ण से संसारी फल को, विदिशाओं में उत्पन्न के फल को, जलादि में स्थित फल को, चारों दिशाओं में स्थित होने के फल को और उसके द्वारा ब्राह्मणादि वर्णों के अशुभ फल को बताते हैं।

तत्तु वाराहीये—

वराह वश इन्द्र धनुष का स्वरूप

[1]सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे।
वियति धनुः संस्थानां ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः॥ १॥

जब कि मेघाच्छादित नभो मण्डल में सूर्य की रश्मियाँ पवन से टकराती हैं तो अनेक रंगों से युक्त धनुषाकार जो दिखाई देता है, उसी को लोग इन्द्र धनुष नाम से पुकारते हैं॥ १॥

[2]केचिदनन्तकुलोरगनिश्वासोद्भूतमाहुराचार्याः।
कश्यपस्तु—

मतमतान्तर से स्वरूप व फल

अनन्तकुलयाता ये पन्नगाः कामरूपिणः।
तेषां निश्वाससंभूतमिन्द्रचापं प्रचक्षते॥ २॥
तद्यायिनां नृपाणामभिमुखमजयावहं भवति।

किसी आचार्य का कहना है कि नागराज के वंश में उत्पन्न सर्पों के निश्वास से यह इन्द्र धनुष उत्पन्न होता है।

इस केचित् मत में कश्यपजी का भी मत है, ऐसा उनके वाक्य से पता चलता है। यदि इस इन्द्र धनुष को सामने करके राजा लोग शत्रु विजय हेतु प्रस्थान करते हैं तो ऐसे राजा पराजय का अनुभव करते हैं॥ २-२½॥

इन्द्र धनुष के स्वरूप के आधार पर फल

[3]आच्छिन्नमवनिगाढं द्युतिमत्स्निग्धं घनं विविधवर्णम्॥ ३॥
द्विरुदितमनुलोमं च प्रशस्तमम्भः प्रयच्छति च॥ ४॥

---

१. बृ० सं० ३५ अ० १ श्लो०।
२. बृ० सं० ३५ अ० २ श्लो०।
३. बृ० सं० ३५ अ० ३ श्लो०।

जब कि अखण्ड, भूमि में लगा हुआ, उज्ज्वल, निर्मल, अविकल, अनेक वर्ण युत, दो बार उदित हो या पश्चिम दिशा में दिखाई दे तो शुभ फल तथा अधिक वर्षा होती है ॥ २½-४ ॥

विशेष—इस पद्य में जो अनुलोम शब्द है उसका कोई-कोई उत्तर और दक्षिण दिशा अर्थ बतलाते हैं। इसमें ऋषि पुत्र नाम से वाक्य भट्टोत्पली में मिलता है। जैसे 'द्विरुत्तरमविच्छिन्नं स्निग्धमिन्द्रायुधं नरम्। पृष्ठतो विजयाय स्याद्विच्छिन्नं परुषं न तु' ॥ २½-४ ॥

तथा इस विषय में नन्दी का कथन है कि 'बहुवर्णमविच्छिन्नं द्विरुन्नतं स्निग्धममरपतिचापम्। पश्चात् पार्श्वे वापि प्रयाणकाले रिपुवधाय' ॥ ३-४ ॥

और भी बृहस्पतिजी का वाक्य 'नीलताम्रमविच्छिन्नं द्विगुणं सिद्धमायतम्। पृष्ठतः पार्श्वयोर्वापि जयायेन्द्रधनुर्भवेत्' ॥ २½-४ ॥

अपि च गर्गोक्तमयूर चित्र में 'पूर्वस्यां दिशि सङ्ग्रामे भवतीन्द्रधनुर्यदि। पश्चिमे च प्रयातानां जयस्तत्र न संशयः। येषां प्रवृत्ते सङ्ग्रामे पश्चादिन्द्रधनुर्भवेत्। पूर्वेण तु प्रयातानां जयस्तत्र न संशयः। येषां प्रवृत्ते सङ्ग्रामे वामपार्श्वे च पृष्ठतः। धनुः प्रादुर्भवेदैन्द्रं जयस्तेषां न संशयः। येषां प्रवृत्ते सङ्ग्रामे पुरस्ताद् दक्षिणेन वा। धनुः प्रादुर्भवेदैन्द्रं वधं तेषां विनिर्दिशेत्। पश्चिमे तु दिशो भागे भवतीन्द्रधनुर्यदि। समेघगगनं स्निग्धं वैदूर्यविमलद्युतिः। विद्युच्च निर्मला भाति पूर्वे वायुर्यदा भवेत्। सप्तरात्रं महावर्षं निर्दिशेद्दैवचिन्तकः' ॥ २½-४ ॥

विदिशा में स्थित इन्द्र धनुष का फल

[1]विदिगुद्भूतं दिक्स्वामिनाशनं व्यभ्रजं मरककारि।
पाटलपीतकनीलैः शस्त्राग्निक्षुत्कृता दोषाः ॥ ५ ॥

जब कि ईशान कोण में इन्द्र धनुष दिखाई देता है तो गजाध्यक्ष का, अग्नि कोण में उदित होनेपर कुमार का, नैर्ऋत्य में दूत का और वायव्य विदिशा में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो गुप्तचर का नाश होता है।

इन्द्र धनुप थोड़ा लाल होनेपर शस्त्र दोष, पीला हो तो अग्नि दोष और नीले रंग का दिखाई देता है तो दुर्भिक्ष होता है ॥ ५ ॥

जल आदि इन्द्र धनुष का फल

[2]जलमध्येऽनावृष्टिर्भुवि सस्यवधस्तरौ स्थिते व्याधिः।
वल्मीके शस्त्रभयं निशि सचिववधाय धनुरैन्द्रम् ॥ ६ ॥

---

१. बृ० सं० ३५ अ० ४ श्लो०।
२. बृ० सं० ३५ अ० ५ श्लो०।

जिस समय जल में इन्द्र धनुष दिखाई देता है तो वर्षा का अभाव, भूमि पर दिखाई दे तो धान्यों का नाश, वृक्ष पर दीखे तो व्याधि, टीले पर दिखाई दे तो शस्त्र-भय और रात्रि में दृष्टिगोचर हो तो सचिव का नाश होता है ॥ ६ ॥

पूर्वापरास्थ इन्द्र धनुष का फल

[1]वृष्टिं करोत्यवृष्ट्यां वृष्टिं वृष्ट्यां निवारयत्यैन्द्र्याम् ।
पश्चात्सदैव वृष्टिं कुलिशभृतश्चापमाचष्टे ॥ ७ ॥

जब कि अनावृष्टि के समय पूर्व दिशा में इन्द्र धनुष दिखाई देता है तो वर्षा और बर्षाकाल में दीखे तो वर्षा का अभाव होता है । तथा पश्चिम दिशा में उदित होनेपर सदा वर्षा करने वाला होता है ॥ ७ ॥

दिग्वश अन्य फल

[2]चापं मघोनः कुरुते निशायामाखण्डलायां दिशि भूपपीडाम् ।
याम्यापरोदक्प्रभवं निहन्यात्सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च ॥ ८ ॥

जब कि रात्रि के समय पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई देता है तो राजा लोग पीड़ित होते हैं । तथा दक्षिण दिशा में दीखे तो सेनापति, पश्चिम में दीखने पर प्रधान पुरुष और उत्तर में इन्द्र धनुष दृष्टि पथ पर आये तो सचिव का विनाश होता है ॥ ८ ॥

तद्वश ब्राह्मणादि वर्णों का अशुभ फल

[3]निशि सुरचापं सितवर्णाद्यं जनयति पीडां द्विजपूर्वाणाम् ।
भवति च यस्यां दिशि तद्देश्यं नरपतिमुख्यं न चिराद्धन्यात् ॥ ९ ॥

जब कि रात्रि के समय श्वेत आदि वर्ण का इन्द्रधनुष दिखाई देता है तो ब्राह्मणादि वर्णों का नाश होता है । अर्थात् श्वेत रंग का हो तो ब्राह्मणों का, लाल रंग का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और काले रंग का इन्द्रधनुष दिखाई दे तो शूद्रों का नाश होता है । तथा जिस दिशा में दीखता है तो उस दिशा के राजा का विनाश शीघ्र होता है ॥ ९ ॥

तथा कश्यप ऋषि ने कहा है 'अवृष्टौ वर्षणं कुर्यादैन्द्रीं दिशमुपाश्रितम् । पश्चिमायां महद्वर्षं करोतीन्द्रधनुः सदा । रात्रौ चेद् दृश्यते पूर्वे भयं नरपतेर्भवेत् । याम्यायां बलमुख्यश्च विनाशमभिगच्छति । पश्चिमायां प्रधानस्य सौम्यायां मन्त्रिणो वधः । स्निग्धवर्णैर्घनैः शुभ्रैर्वारुण्यां दिशि दृश्यते । बहूदकं सुभिक्षं च शिवं सस्यप्रदं भवेत्' ॥ ९ ॥

---

१. बृ० सं० ३५ अ० ६ श्लो० ।
२. बृ० सं० ३५ अ० ७ श्लो० ।
३. बृ० सं० ३५ अ० ८ श्लो० ।

वाराहीतः कृतमिदमिन्द्रचापविलक्षणम् ।
ग्रन्थविस्तारभयतो रामदीनेन धीमता ॥ १० ॥

मैंने रामदीन ने ग्रन्थ के बढ़ने के डर से वराहसंहिता से इन्द्र धनुष लक्षण प्रकरण का वर्णन किया है ॥ १० ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने इन्द्रचापलक्षणं नाम एकादशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र पं० रामदीन द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहात्मक ग्रन्थ का इन्द्रधनुष लक्षण नामक ग्यारहवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ११ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदविहिता श्रीधरी हिन्दी टीका रुद्रप्रकरणस्य पूर्णा ॥ ११ ॥

अथ द्वादशं भूमिकम्पप्रकरणं आरभ्यते।

अब आगे बारहवें प्रकरण में भूकम्प क्यों और कैसे तथा इससे शुभाशुभ होने के मय की सूचना का ज्ञान भी कहते हैं। ग्रन्थकार ने वाराही संहिता के समस्त पद्य प्रस्तुत किये हैं। उन्हीं सब बातों का विवेचन इसमें है।

वाराहीये—

मतान्तरों के साथ पृथिवी हिलने का लक्षण

[1]क्षितिकम्पमाहुरेके बृहदन्तर्जलनिवासिसत्त्वकृतम्।
भूभारखिन्नदिग्गजविश्रामसमुद्भवं चान्ये॥ १॥

किन्हीं कश्यपादि मुनियों का कहना है कि जल में निवास करने वाले बड़े जीवों के धक्के से भूमि हिलती है। एवं गर्गादि महर्षियों का मत है कि जिस समय भूमि में वजन बड़ जाता है। इसलिये दिग्गज अर्थात् दिशाओं के मालिक थक कर थोड़ा आराम करने की सोचते हैं अतः भूमि में कम्पन होता हैं॥ १॥

कश्यपऋषि ने कहा है 'वारुणस्योपरि पृथ्वी सशैलवनकानना। स्थिता जलजसत्त्वाश्च सक्षोभाश्चालयन्ति ताम्'॥ १॥

तथा गर्गाचार्य जी भी 'चत्वारः पृथिवीं नागा धारयन्ति चतुर्दिशम्। वर्धमानः सुवृद्धश्चातिवृद्धश्च पृथुश्रवाः। वर्धमानो दिशं पूर्वां सुवृद्धो दक्षिणां दिशम्। पश्चिमामतिवृद्धश्च सौम्याशां तु पृथुश्रवाः॥ नियोगाद् ब्रह्मणो ह्येते धारयन्ति वसुन्धराम्। ये श्वसन्ति यदा शान्ता स वायुः श्वसितो महान्॥ वेगान् महीं चालयन्ति भावाभावाय देहिनाम्'॥ १॥

पुनः प्रकारान्तर से

[2]अनिलोऽनिलेन निहतः क्षितौ पतन्सस्वनं करोत्येके।
केचित्त्वदृष्टकारितमिदमन्ये प्राहुराचार्याः॥ २॥

श्री वसिष्ठ ऋषिका कहना है कि जब आकाश में वायु से वायु टकराकर भूमि में गिरती है तो शब्द के साथ भूकम्प होता है।

वृद्धगर्गाचार्य जी का कथन है कि प्रजाओं के अदृष्ट अर्थात् पुण्य पाप के कारण पृथिवी हिलती है॥ २॥

---

१. बृ० सं० ३२ अ० १ श्लोक।
२. बृ० सं० ३२ अ० २ श्लोक।

वसिष्ठ ऋषि ने कहा है 'यदा तु बलवान् वायुरान्तरिक्षानिलाहताः। पतत्याशु स निर्घातो भवेदनिलसंभवः। तस्य योगान्निपततश्चलत्यन्याहता क्षितिः। सोऽभिघातः समुत्थः स्यात् सनिर्घातं महीचलः' ॥ २ ॥

तथा वृद्धगर्गजी का कथन 'प्रजा धर्मरता यत्र तत्र कम्पं शुभं भवेत्। जनानां श्रेयसे नित्यं विसृजन्ति सुरोत्तमाः। विपरीतस्थिता यत्र जनास्तत्र शुभं तथा। विसृजन्ति प्रजानान्तु दुःखशोकाभिवृद्धये' ॥ २ ॥

पराशर आदि मुनियों का मत

[1]गिरिभिः पुरा सपक्षैर्वसुधा प्रपतद्भिरुत्पतद्भिश्च।
आकम्पिता पितामहमहामरसदास सव्रीडम् ॥ ३ ॥
[2]भगवन्नाम ममैतत्त्वया कृतं यदचलेति तन्न तथा।
क्रियतेऽचलैश्चलद्भिः शक्ताहं नास्य खेदस्य ॥ ४ ॥
[3]तस्याः सगद्गद्गिरं किञ्चित्स्फुरिताधरं विनतमीषत्।
साश्रुविलोचनमाननमवलोक्य पितामहः प्राह ॥ ५ ॥
[4]मन्युं हरेन्द्र धात्र्याः क्षिप कुलिशं शैलपक्षभङ्गाय।
शक्रः कृतमित्युक्त्वा मा भैरिति वसुमतीमाह ॥ ६ ॥
[5]किन्त्वनिलदहनसुरपतिवरुणाः सदसत्फलावबोधार्थम्।
प्राग्द्वित्रिचतुर्भागेषु दिननिशोः कम्पयिष्यन्ति ॥ ७ ॥

पूर्वकाल में आकाश से गिरते हुए व भूमि से उड़ते हुए पंख वाले पहाड़ों के द्वारा कम्पित पृथ्वी देवताओं की सभा में लज्जा के साथ ब्रह्माजी से बोली हे प्रभु आप ने मेरा नाम अचला रक्खा है किन्तु चलायमान, भ्रमण करते हुए पर्वतों के द्वारा वह नाम वैसा नहीं रहा अर्थात् मैं चलायमान हूँ। अतः इस दुःखको सहन करने के लिये मैं समर्थ नहीं हूँ। इस प्रकार भूमि का गद्-गद् वाणी वाला कुछ-कुछ फड़कते हुए अधर वाला, विनम्र तथा आसुओं से युक्त नेत्र वाला मुख देखकर ब्रह्माजी ने कहा—हे इन्द्र तुम पृथ्वी के दुःख का नाश करो और पर्वतों के पंखो को नष्ट करने के लिये वज्र का प्रहार करो। इस प्रकार ब्रह्मा जी का आदेश जान कर इन्द्र ने भूमि से कहा तुम डर मत करो। मैं इनके पंखों को काट देता हूँ। किन्तु शुभाशुभ फल जानने के लिये वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण दिन तथा रात के क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ भाग में तुझे कम्पित करेंगे।

---

१. बृ० सं० ३२ अ० ३ श्लोक।
२. बृ० सं० ३२ अ० ४ श्लोक।
३. बृ० सं० ३२ अ० ५ श्लोक।
४. बृ० सं० ३२ अ० ६ श्लोक।
५. बृ० सं० ३२ अ० ७ श्लोक।

जैसे दिन के पूर्वार्ध में वायु, उत्तरार्ध में अग्नि, रात्रि के पूर्वार्ध में इन्द्र और उत्तरार्ध में वरुण तुझे कम्पित करेंगे ।। ३-७ ।।

कहा भी है 'रात्रौ दिवा च पूर्वाह्णे वायव्यः कम्प उच्यते । मध्याह्ने चार्द्धरात्रे च हौताशः कम्प उच्यते ।। दिवारात्रौ तृतीयेंऽशे माहेन्द्रश्चाभिगीयते । चतुर्थे वर्तमनेंऽशे वारुणं निर्दिशेद्बुधः' ।।३-७।।

तथा गर्गाचार्य जी ने भी कहा है 'कृत्वा चतुर्धाहोरात्रं द्विधाहोऽथ द्विधा निशम् । देवताश्रययोगाच्च चतुर्धा भगणं तथा ।। पूर्वे दिनार्धे वायव्य आग्नेयोऽर्द्धे तु पश्चिमे । ऐन्द्रः पूर्वे च रात्र्यर्द्धे पश्चिमार्द्धे तु वारुणः ।। चत्वार एवमेते स्युरहोरात्रविकल्पजाः । निमित्तभूता लोकानामुल्कानिर्घातभूचलाः' ।।३-७।।

वायव्य कम्प का लक्षण व फल

[1]चत्वार्यार्यम्णाद्यान्यादित्यं मृगशिरोऽश्वियुक् चेति ।
मण्डलमेतद्वायव्यमस्य रूपाणि सप्ताहात् ।। ८ ।।

[2]धूमाकुलीकृताशे नभसि नभस्वान् रजः क्षिपन् भौमम् ।
विरुजन् द्रुमांश्च विचरति रविरपटुकरावभासी च ।। ९ ।।

[3]वायव्ये भूकम्पे सस्याम्बुवनौषधिक्षयोऽभिहितः ।
श्वयथुश्वासोन्मादज्वरकासभवो वणिक्पीडा ।। १० ।।

[4]रूपायुधभृद्वैद्यस्त्रीकविगान्धर्वपण्यशिल्पिजनाः ।
पीडयन्ते सौराष्ट्रककुरुमगधदशार्णमत्स्याश्च ।। ११ ।।

नक्षत्रों में से उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, मृगशिरा, अश्विनी इनकी वायव्य मण्डल संज्ञा होती है । यदि इनमें से किसी नक्षत्र में भूमि हिलने की संभावना होती है तो इनसे सात दिन पहिले ये लक्षण दीखने लगते हैं । जैसे धूम से युक्त दिशा वाला आकाश होता है, पृथ्वी से धूलि उड़ती हुई और वृक्षों को तोड़ती हुई हवा चलती है और सूर्य की किरणें मन्द हो जाती हैं । वायव्य भूकम्प होने से अन्न, जल व औषधियाँ नष्ट होती हैं । तथा वनियों को शोथ, दमा, उन्माद, ज्वर और खांसी से उत्पन्न पीड़ा होती है । वेश्या, शस्त्र से जीविका करने वाला, वैद्य, स्त्री, कवि, गान विद्या जानने वाला, व्यापारी, शिल्पी और सौराष्ट्र, कुरु, मगध, दशार्ण और मत्स्यदेशवासी मनुष्य पीड़ा प्राप्त करता है ।।८-११।।

तथा गर्गाचार्य जी ने कहा है 'प्रथमेऽह्नि चतुर्मासो निर्घातोल्कामहीचलाः । सौम्यादित्यार्यम्णहस्तचित्रास्वात्यश्विनीषु च ।। भवन्त्यनिलजाः सर्वे लक्षणान्यवधारय ।

---

१. बृ० सं० ३२ अ० ८ श्लोक ।
२. बृ० सं० ३२ अ० ९ श्लोक ।
३. बृ० सं० ३२ अ० १० श्लोक ।
४. बृ० स० ३२ अ० ११ श्लोक ।

धूमव्याप्ता: दिश: सर्वा नमस्वान् प्रक्षिपन् रज: ।। द्रुमाश्च मञ्जश्चरति रविस्तपति शीतल: । सप्तमेऽहनि कम्प: स्याद् भूमेरनिलसंभव:' ।।८–११।।

आग्नेय मण्डल का लक्षण व फल

[1]पुष्याग्नेयविशाखाभरणीपित्र्याजभाग्यसंज्ञानि ।
वर्गो हौतभुजोऽयं करोति रूपाण्यथैतानि ।। १२ ।।

[2]तारोल्कापातावृतमादीप्तमिवाम्बरं सदिग्दाहम् ।
विचरति मरुत्सहाय: सप्तार्चि: सप्तदिवसान्त: ।। १३ ।।

[3]आग्नेयेऽम्बुदनाश: सलिलाशयसङ्क्षयो नृपतिवैरम् ।
दद्रूविचर्चिकाज्वरविसर्पिका: पाण्डुरोगश्च ।१४ ।।

[4]दीप्तौजस: प्रचण्डा: पीडयन्ते चाश्मकाङ्गवाह्लीका: ।
तङ्गणकलिङ्गवङ्गद्रविडा: शबराश्च नैकविधा: ।। १५ ।।

भचक्र में से पुष्य, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मघा, पूर्वाभाद्रपदा और पूर्वाफाल्गुनी इनकी आग्नेय मण्डल संज्ञा होती है। यदि इनमें से किसी नक्षत्र में भूकम्प होता है तो इससे सात दिन पहिले, दिग्दाह, तारा या उल्का का पतन से आकाश प्रज्वलित होता है और वायु की सहायता से अग्नि का संचरण होता है। आग्नेय भूकंपन में मेघ और जलाशयों (वापी, कुआ, तालाब आदि) का विनाश, राजाओं में आपसी कलह, दाद, खुजली, ज्वर, पेचिस ओर पीलिया रोग की वृद्धि होती है। तेजस्वी, क्रोधी मनुष्य, अश्मक, अङ्ग, वाल्हीक, तङ्गण, कलिङ्ग, वङ्ग, द्रविण और शबर देशवासी नानाविध रोगों के शिकार होते हैं ।।१२–१५।।

गर्गाचार्य जी ने कहा है 'द्वितीयेऽन्हि चतुर्भागे निर्घातोल्कामहीचला: । पित्र्यभाग्याजपुष्याग्निविशाखायमदैवतै: ।। भवन्त्यनिलजास्ते च लक्षणानि निबोध मे । तारोल्कापातदिग्दाहैरादीप्तं लक्ष्यते नभ: ।। मरुत् सहाय: सप्तार्चि: सप्ताहान्तश्चरत्यपि । सप्तमेऽहनि विज्ञेय: कम्पश्चानलसंभव:' ।।१२–१५।।

इन्द्र मण्डल का लक्षण व फल

[5]अभिजिच्छ्रवणधनिष्ठाप्राजापत्येन्द्रवैश्वमैत्राणि ।
सुरपतिमण्डलमेतद्भवन्ति चाप्यस्य रूपाणि ।। १६ ।।

---

१. बृ० सं० ३२ अ० १२ श्लोक ।
२. बृ० सं० ३२ अ० १३ श्लोक ।
३. बृ० सं० ३२ अ० १४ श्लोक ।
४. बृ० सं० ३२ अ० १५ श्लोक ।
५. बृ० सं० ३२ अ० १६ श्लोक ।

[1]चलिताचलवर्ष्माणो गम्भीरविराविणस्तडिद्वन्तः ।
गवलालिकुलाहिनिभा विसृजन्ति पयः पयोवाहाः ॥ १७ ॥

[2]ऐन्द्रं स्तुतिकुलजातिख्यातावनिपालगणपविध्वन्सि ।
अतिसारगलग्रहवदनरोगकृच्छर्दिकोपाय ॥ १८ ॥

[3]काशियुगन्धरपौरवकिरातकीराभिसारहलमद्राः ।
अर्बुदसुराष्ट्रमालवपीडाकरमिष्टवृष्टिकरम् ॥ १९ ॥

भचक्र में से अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, अनुराधा इन नक्षत्रों की इण्द्रमण्डल संज्ञा होती है। यदि इन नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में भूकम्प होता है तो इससे सात दिन पूर्व पर्वत के समान शरीर वाले, गम्भीर शब्द करने वाले, बिजली वाले, महिषशृङ्ग, भ्रमर कुल तथा सांपों के समान कान्ति वाले वर्षा करते हैं। इस ऐन्द्र कम्पन में मुख्य वंश में उत्पन्न मनुष्य, यशस्वी राजा और संधियों में प्रधान का विनाश तथा अतिसार, कण्ठरोग, मुखरोग और कफ जन्य रोग की वृद्धि होती है। काशी, युगन्धर, पौरव, किरात, कीर, अभिसार, हल, मद्र, अर्बुद, सुराष्ट्र और मालव देश में रहने वाले पीड़ा प्राप्त करते हैं तथा प्रयोजन के अनुसार वर्षा होती है ॥१६–१६॥

तथा गर्गाचार्य जी ने कहा है 'निशार्द्धे तु यदा पूर्वे उल्कानिर्घातभूचलाः। मैत्रेन्द्र-वैश्वश्रवणाभिजिद्रोहिणिवासवैः ॥ स्यादिन्द्रसंभवः कम्पो लक्षणानि च मे शृणु। वर्षन्ति बहवो मेघा वराहमहिषोपमाः ॥ धुन्वन्तो मधुरान् रावान् विद्युद्भासितभूतलाः। सप्तमेऽहनि संप्राप्ते कम्पः स्यादिन्द्रसंभवः' ॥१६–१९॥

वरुण मण्डल का लक्षण व फल

[4]पौष्णाप्याद्रश्लेषामूलाहिर्बुन्यवरुणदेवानि ।
मण्डलमेतद्वारुणमस्यापि भवन्ति रूपाणि ॥ २० ॥

[5]नीलोत्पलालिभिन्नाञ्जनत्विषो मधुरराविणो बहुलाः ।
तडिदुद्भासितदेहा धाराङ्कुरवर्षिणो जलदाः ॥ २१ ॥

[6]वारुणमर्णवसरिदाश्रितघ्नमतिवृष्टिदं विगतवैरम् ।
गोनर्दचेदिकुकुरान् किरातवैदेहिकान् हन्ति ॥ २२ ॥

---

१. वृ० सं० ३२ अ० १७ श्लोक ।
२. वृ० सं० ३२ अ० १८ श्लोक ।
३. वृ० सं० ३२ अ० १९ श्लोक ।
४. वृ० सं० ३२ अ० २० श्लोक ।
५. वृ० सं० ३२ अ० २१ श्लोक ।
६. वृ० सं० ३२ अ० २२ श्लोक ।

भचक्र में से रेवती, पूर्वाषाढा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, उत्तराभाद्रपदा, शतभिषा इनकी वरुण मण्डल संज्ञा होती है। यदि इन नक्षत्रों में से किसी नक्षत्र में पृथ्वी हिलती है तो इस कम्पन से सात दिन पहले समुद्र तथा नदी तट वासियों का विनाश, अधिक वर्षा, परस्पर शत्रुता से हीन मनुष्य तथा गोनर्द, चेदी, कुकुर, किरात और विदेह देश में निवास करने वालों का विनाश होता है ॥२०–२२॥

तथा गर्गाचार्य जी ने कहा है 'निशायां पश्चिमे भागे निर्घातोल्का महीचलाः। पौष्णाप्यार्द्रोरगा मूलाहिर्बुध्न्यं वरुणं तथा॥ कम्पो वारुण एभिःस्याच्छृणु तस्यैव लक्षणम्। वर्षन्ति जलदास्तत्र नीलाञ्जनचयोपमाः॥ विद्युद्भासितदेहाश्च मधुरस्वर-भूषिताः। सप्तमेऽहनि संप्राप्ते कम्पः स्याद्वारुणस्ततः' ॥२०–२२॥

भूकम्पादि का फल

[1]षड्भिर्मासैः कम्पो द्वाभ्यां पाकं च याति निर्घातः।
अन्यानप्युत्पातान् जगुरन्ये मण्डलैरेतैः॥ २३॥

भूकम्प का फल ६ मास में तथा निर्घात का फल दो महीने में होता है। गर्ग आदि मुनियों का कहना है कि अन्य उत्पातों का फल मण्डल के साथ ही होता है॥२३॥

तथा गर्गाचार्य जी ने कहा है 'निर्घातोल्कामहीकम्पाः स्निग्धगम्भीरनिस्वनाः। मेघाः स्तनितशब्दाश्च सूर्येन्दुग्रहणे तथा॥ परिवेषेन्द्रचापं च गन्धर्वनगरं तथा। मण्डलै-रेव बोधव्याः शुभाशुभफलप्रदाः' ॥२३॥

और भी समाससंहिता में 'आर्यम्णपूर्वं भचतुष्टयं च शशाङ्कमादित्यमथाश्विनी च। वायव्यमेतत् पवनोऽत्र चण्डो मासद्वयेनाशुभदः प्रजानाम्॥ अजैकपादं बहुला भरण्यो भाग्यं विशाखा गुरुभं मघा च। क्षुदग्निशस्त्रामयकोपकारि पक्षैस्त्रिभिर्मण्डलमग्नि-संज्ञम्। प्राजापत्यं वैष्णवं मैत्रमैन्द्रं विश्वेशंस्याद् वासवं चाभिजिच्च। ऐन्द्रं ह्येतन्मण्डलं सप्तरात्रात् कुर्यात्तोयं हृष्टलोकं प्रशान्तम्॥ आहिर्बुध्न्यं वारुणं मूलमाप्यं पौष्णं सार्पं मन्मथारीश्वरं च। सद्यः पाकं वारुणं नाम शस्तं तोयप्रायं हृष्टलोकं प्रशान्तम्' ॥२३॥

उल्का आदि उत्पातों के फल का नियम

[2]उल्का हरिश्चन्द्रपुरं रजश्च निर्घातभूकम्पककुप्प्रदाहाः।
वातोऽतिचण्डं ग्रहणं रवीन्द्वोर्नक्षत्रताराागणवैकृतानि॥ २४॥

[3]व्यभ्रे वृष्टिवैकृतं वातिवृष्टिर्धूमोऽनग्निर्विस्फुलिङ्गार्चिषो वा।
वन्यं सत्त्वं ग्राममध्ये विशेद्वा रात्रावैन्द्रं कार्मुकं दृश्यते वा॥ २५॥

---

१. बृ० सं० ३२ अ० २३ श्लोक।
२. बृ० सं० ३२ अ० २४ श्लोक।
३. बृ० सं० ३२ अ० २५ श्लोक।

[1]सन्ध्याविकारः परिवेषखण्डा नद्यः प्रतीपा दिवि तूर्यनादाः ।
अन्यच्च यत्स्यात्प्रकृतेः प्रतीपं तन्मण्डलैरेव फलं निगद्यम् ॥ २६ ॥

उल्का, गन्धर्वपुर, धूलि, निर्घात, भूकम्प, दिग्दाह, भयङ्कर वायु, सूर्यचन्द्र का ग्रहण, विकारयुक्त नक्षत्र और तारागण, बिना बादल के वर्षा, विकार युत वायु के साथ वृष्टि, अग्नि की चिनगारीदार लपट, वन में रहने वाले पशुओं का गाँव में आना, रात्रि में इन्द्रधनुष दिखाई देना, सन्ध्या में विकार, परिवेष खण्ड, नदियों की गति में विपरीतता, आकाश में तुरही का बजना तथा प्रकृति के विरुद्ध अन्य लक्षण होना इन समस्तों का फल पूर्व कथित मण्डलों के आधार वश ही कहना चाहिये ॥२४–२६॥

मण्डलों के द्वारा कंपन का फल रहित होना

[2]दैत्येन्द्रो वायव्यं वायुश्चाप्यैन्द्रमेवमन्योन्यम् ।
वारुणहौतभुजावपि वेलानक्षत्रजाः कम्पाः ॥ २७ ॥

इन्द्र के मण्डल में उत्पन्न कम्प वायव्य कम्प का, वायव्य मण्डल में उत्पन्न कम्प इन्द्र का, वारुण मण्डल में उत्पन्न कम्प अग्नि कम्प का, अग्नि मण्डल में उत्पन्न कम्प वारुण कम्प का, वेला जात कम्प नक्षत्र कम्प का और नक्षत्र जात कम्प वेला जात कम्प का नाश करता है। यदि वायव्य मण्डलान्तर्गत वायव्य वेला में कम्प हो तो अपने फल की पुष्टि होती है। एवमेव अन्य भी समझना चाहिये ॥२७॥

वेला मण्डल के वश कम्पोक्त फल में विशेष

[3]प्रथितनरेश्वरमरणव्यसनान्याग्नेयवायुमण्डलयोः ।
क्षुद्भयकरकावृष्टिभिरुपताप्यन्ते जनाश्चापि ॥ २८ ॥

जब कि आग्नेय मण्डल तथा वायव्य वेला में या वायव्य मण्डल एवं आग्नेय वेला में भूकम्प होता है तो राजाओं का मरण या मरण के तुल्य कष्ट होता है और मनुष्य गण दुर्भिक्ष, मृत्यु तथा अवृष्टि से पीड़ित होते हैं ॥ २८ ॥

वेला मण्डल के भेद से कम्पोक्त फल में विशेष

[4]वारुणपौरन्दरयोः सुभिक्षशिववृष्टिहार्दयो लोके ।
गावोऽतिभूरिपयसो निवृत्तवैराश्च भूपालाः ॥ २९ ॥

यदि वारुण मण्डल और ऐन्द्र वेला में या ऐन्द्र वेला व वारुण मण्डल में भूकम्प होता है तो जनता धनधान्य से परिपूर्ण, कुशल वृष्टि और चित्त में शान्ति होती है

---

१. वृ० सं० ३२ अ० २६ श्लोक ।
२. वृ० सं० ३२ अ० २७ श्लोक ।
३. वृ० सं० ३२ अ० २८ श्लोक ।
४. वृ० सं० ३२ अ० २९ श्लोक ।

तथा गाय अधिक दूध देने वाली तथा राजा लोग परस्पर में शत्रुता से रहित होते हैं ॥ २९ ॥

तथा काश्यप जी ने कहा है 'ऐन्द्रश्चानिलजं हन्ति वायव्यश्चापि शक्रजम् । आप्यो हौतभुजं हन्ति चाग्निर्वारुणसम्भवम् ॥ वाय्वग्निमिश्रितो यश्च वेला मण्डलसम्भवः । दुर्भिक्षव्याधिरोगैस्तु पीड्यन्ते तत्र जन्तवः ॥ माहेन्द्रवारुणे यत्र वेला मण्डलसंभवः । सुभिक्षक्षेमधर्माणां तत्र वृष्टिः प्रतिष्ठिता ॥ २९ ॥

तथा अन्य भी 'योऽन्यस्मिन्नक्षत्रे भागे चान्यत्र भूचलो भवति । स भवेद् व्यामिश्र-फलस्तन्मे गदितो निबोध त्वम् ॥ कुरुशाल्वमत्स्यनैषधपुण्ड्रान्धकालिङ्गविन्ध्यपाद-स्थान् । वाय्वाग्नेयः कम्पः सानलजीवान् भजति मैत्र्याम् ॥ प्राच्यशकचीनपह्लव-यौधेयकर्पदियक्षवद्गोमान् । शरदण्डमगधबन्धकिविनाशनः शक्रवायव्यः ॥ आवन्तिकाः पुलिन्दा विदेहकाश्मीरदरदवासान्ताः । बाह्याश्रिताश्च वायव्यवारुणे प्राप्नुयुः पीडाम् ॥ ऐक्ष्वाकवाऽरश्मरथ्यान् पटच्चराभोरचीनमरुकुत्सान् । ऐन्द्राग्नेयः कम्पो हिनस्ति राज्ञश्च समुदीर्णान् ॥ सरितः सरः समुद्राश्रितांश्च गानर्दमङ्गनाराज्यम् । क्षत्रियगणांश्च हन्यात् कम्पो वरुणाग्निदैवत्यः ॥ काश्याभिसारकाच्युतकच्छद्वीपार्यदेशजाः पुरुषाः । गणपूजिताः कुलाग्र्या नृपाश्च वरुणेन्द्रवध्याः स्यु' ॥ २६ ॥

अनुक्त फल समय का निर्णय

[1]'पक्षैश्चतुर्भिरनिलस्त्रिभिरग्निर्देवराट् च सप्ताहात् ।
सद्यः फलति च वरुणो तेषु न कालोऽद्भूतेपूक्तः ॥ ३० ॥

जिन उपद्रवों के फल का समय नहीं कहा है उनका यदि उत्पात वायव्य मण्डल में हो तो दो मास में, आग्नेय मण्डल में हो तो डेढ मास में, इन्द्र मण्डल में हो तो सात दिन में और वारुण मण्डल में हो तो उसी दिन फल होता है ॥ ३० ॥

मण्डल के आधार पर भूकम्प का प्रदेश

[2]चलयति पवनः शतद्वयं शतमनलो दशयोजनान्वितम् ।
सलिलपतिरशीतिसंयुतं कुलिशधरोऽभ्यधिकं च षष्टितः ॥ ३१ ॥

जब कि वायव्य मण्डल में भूकम्प होता है तो दो सौ योजन तक, अग्निमण्डल में हो तो दश योजन तक, वारुण मण्डल में हो तो एक सौ अस्सी योजन तक और ऐन्द्र मण्डल में भूकम्प हो तो आठ से अधिक योजन तक पृथ्वी में कम्पन होता है ॥३१॥

तथा काश्यप जी ने कहा है 'वायव्ये मण्डले नित्यं योजनानां शतद्वयम् । दशाधि-कमथाग्नेय ऐन्द्रे षष्ट्याधिकं शतम् । शतं चाशीतिसंयुक्त वारुणे मण्डले चलेत्' ॥३१॥

---

१. बृ० स० ३२ अ० ३० श्लोक ।
२. बृ० सं० ३२ अ० ३१ श्लोक ।

भूकम्प के बाद पुनः भूकम्प का फल

[1]त्रिचतुर्थसप्तमदिने मासे पक्षेऽथ वा त्रिपक्षे च।
यदि भवति भूमिकम्पः प्रधाननृपनाशनो भवति ॥ ३२ ॥
वाराहमतमालोक्य भूकम्पस्यापि लक्षणम्।
व्यलिखत्सङ्ग्रहेऽप्यस्मिन् रामदीनसुधीरयम् ॥ ३३ ॥

जब कि भूकम्प होने के अनन्तर तीसरे, चौथे, सातवें, पन्द्रहवें या पैंतालीसवें दिन पुनः भूमि हिलती है तो उस स्थान के राजा का नाश होता है ॥३२॥

तथा गर्गाचार्य जी ने कहा है 'अर्द्धमासे चतुर्थेऽह्नि तृतीये वाथ सप्तमे। कम्पात् पुनर्यदा कम्पो मासे सार्द्धे यदापि वा। उत्पद्यते जने यत्र तत्र विन्द्यान्महद्भयम्' ॥३२॥

मैंने वराह मिहिराचार्य के मत को देखकर भूकम्प का लक्षण इस ग्रन्थ में लिखा है ॥३३॥

विशेष—यह समस्त प्रकरण बृहत्संहिता से सङ्गृहीत है ॥३३॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते
सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने भूकम्पलक्षणं नाम
द्वादशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र पण्डित रामदीन द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का बारहवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदविहिता द्वादशप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ १२ ॥

---

१. बृ० सं० ३२ अ० ३२ श्लोक।

अथ त्रयोदशं दिग्दाहलक्षणप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे तेरहवें प्रकरण में रंगों के भेद से दिग्दाह का फल, दिग्दाह का लक्षण, समस्त दिशाओं में दिग्दाह का फल और दिग्दाह के शुभ लक्षण को बताते हैं।

रंग के भेद से दिग्दाह का फल

[1]दाहो दिशां राजभयाय पीतो देशस्य नाशाय हुताशवर्णः ।
यश्चारुणः स्यादपसव्यवायुः सस्यस्य नाशं स करोति दृष्टः ॥ १ ॥

जब कि पीले रंग का दिग्दाह होता है तो राजा भयभीत, अग्नि वर्ण का हो तो देश का विनाश और बाईं तरफ लोहित वर्ण का वायु दिखाई दे तो धान्यों का नाश होता है ॥ १ ॥

दिग्दाह का लक्षण और फल

[2]योऽतीव दीप्त्या कुरुते प्रकाशं छायामपि व्यञ्जयतेऽर्कवद्यः ।
राज्ञो महद्वेदयते भयं स शस्त्रप्रकोपं क्षतजानुरूपः ॥ २ ॥

जब कि दिग्दाह अपनी अत्यधिक कान्ति से प्रकाशित होता है और सूर्य की तरह दृश्यमान द्रव्य की छाया को भी प्रकाशित करता है, तथा राजा को भयभीत करता है। यदि वह लाल रंग का हो तो शस्त्र का भय होता है ॥ २ ॥

समस्त दिशाओं में दिग्दाह का फल

[3]प्राक् क्षत्रियाणां च नरेश्वराणां प्राग्दक्षिणे शिल्पिकुमारपीडा ।
याम्ये सहोग्रैः पुरुषैस्तु वैश्या दूताः पुनर्भूप्रमदाश्च कोणे ॥ ३ ॥
[4]पश्चात्तु शूद्राः कृषिजीविनश्च चौरास्तुरङ्गैः सह वायुदिक्स्थे ।
पीडां व्रजन्त्युत्तरतश्च विप्राः पाखण्डिनो वाणिजकाश्च शार्व्याम् ॥ ४ ॥

जब कि पूर्व दिशा में दिग्दाह दिखाई देता है तो वह राजा के साथ क्षत्रियों को पीडित करता है। अग्निकोण में दिखाई देता है तो लोहार सोनार आदि कारीगरों को व कुमारों को पीडा होती है। दक्षिण में दृष्टिगोचर हो तो क्रूर मनुष्य, वैश्य, दूत और पुनर्भू स्त्री (अक्षत योनि दुबारा शादी करने वाली) को पीडा होती है। पश्चिम दिशा में दीखने से शूद्र व किसानों को, वायव्यकोण में दिखाई देने से घोड़ों के साथ

---

१. बृ० सं० ३१ अ० १ श्लोक।
२. बृ० सं० ३१ अ० २ श्लोक।
३. बृ० सं० ३१ अ० ३ श्लोक।
४. बृ० सं० ३१ अ० ४ श्लोक।

चोरों को, उत्तर दिशा में दीखे तो ब्राह्मणों को और ईशान कोण में दिग्दाह दिखाई दे तो पाखण्डी और वनियों को पीड़ा होती है ॥ ३–४ ॥

तथा काश्यप जी ने कहा है 'प्राच्यां दिशि प्रदीप्तायां श्रेणीनां भयमादिशेत् । आग्नेय्यान्तु कुमाराणां वैश्यानां दक्षिणे तथा ॥ नैऋत्यां च स्त्रियो हन्ति शूद्रान् पश्चिमतस्तथा । वायव्यायां चौरभयं विप्राणामुत्तरे तथा ॥ पाखण्डिवणिजां पीडा ह्यैशानी यदि दीप्यते' ॥ ३–४ ॥

दिग्दाह का शुभ लक्षण

[1]नभः प्रसन्नं विमलानि भानि प्रदक्षिणं वाति सदा गतिश्च ।
दिशां च दाहः कनकावदातो हिताय लोकस्य सपार्थिवस्य ॥ ५ ॥

जब कि निर्मल आकाश व नक्षत्र दक्षिणावर्त क्रम से घूमता हुआ वायु और सुवर्ण की तरह दिग्दाह होता है, तो राजा के साथ समस्त लोग सुखी होते हैं ॥ ५ ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते
सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने दिग्दाहलक्षणं नाम
त्रयोदशं प्रकरणं समाप्तम् ॥१३॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र पण्डित रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक सङ्ग्रह ग्रन्थ का तेरहवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधरचतुर्वेदकृता त्रयोदशप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका समाप्तिमगात् ॥ १३ ॥

---

१. बृ० सं० ३१ अ० ५ श्लोक ।

अथ चतुर्दशं उल्कालक्षणप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे चौदहवें प्रकरण में उल्का का स्वरूप, इसके पतन के विविध लक्षण और कालक्रम से फल को बताते हैं।

उल्का का स्वरूप व भेद

[1]दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्युल्काः ।
धिष्ण्योल्काशनिविद्युत्तारा इति पञ्चधा भिन्नाः ॥ १ ॥

जब कि प्राणी स्वर्ग के सुख का काल के हिसाव से उपभोग करके पृथ्वी में आता है तो आते हुए स्वरूप को उल्का कहते हैं। इसके धिष्ण्या, उल्का, अशनि, बिजली और तारा ये पाँच भेद होते हैं ॥ १ ॥

विशेष—गर्गाचार्य जी का कहना है कि लोकपाल लोगों की परीक्षा करके शुभाशुभ फल ज्ञान के लिये अस्त्रों को छोड़ते हैं उसी का नाम उल्का होता है ॥ १ ॥

तथा उनका वाक्य भी 'स्वास्त्राणि संसृजन्त्येते शुभाशुभनिवेदिनः । लोकपाला महात्मानो लोकानां ज्वलितानि तु ॥ १ ॥

अन्य भी स्वल्पसंहिता में आचार्य वराहमिहिर का वचन 'अस्त्राणि लोकपाला लोकाभावाय सृजन्त्युल्काः । केषाञ्चित् पुण्यकृतां तत्रोल्काविच्युतिः स्वर्गात् ॥ १ ॥

अपि च नारद ने कहा है 'स्वर्गच्युतानां रूपाणि यान्युल्कास्तानि वै भुवि । धिष्ण्योल्का विद्युदशनिस्ताराः पञ्चविधाः स्मृताः' ॥ ज्यो० नि० २६२ पृ० १११ ॥

फल के समय ज्ञान

[2]उल्का पक्षेण फलं तद्वद्धिष्ण्याशनिस्त्रिभिः पक्षैः ।
विद्युदहोभिः षड्भिस्तद्वत्तारा विपाचयति ॥ २ ॥

जब कि उल्का का पतन होता है तो इसका फल पन्द्रह दिन में, धिष्ण्या भी १५ दिन में, अशनि पैंतालीस दिन में, बिजली और तारा ६ दिन में अपना शुभाशुभ फल देती है ॥ २ ॥

समाससंहिता में कहा है 'उल्काथ पञ्चरूपा धिष्ण्योल्का विद्युतोऽशनिस्तारा । धिष्ण्योल्के पक्षफले तत्त्रिगुणाश्चाशनिः षडहिकेऽन्ये । फलपादकरीतारा धिष्ण्यार्धं पुष्कलं शेषाः' ॥ २ ॥

तथा नारद ने कहा है 'पाचयन्ति त्रिभिः पक्षैर्धिष्ण्योल्काशनिसंज्ञिताः । विद्युत् षड्भिरहोभिश्च तारातद्वत्फलप्रदा' ॥ २ ॥

---

१. बृ० सं० ३३ अ० १ श्लोक ।
२. बृ० सं० ३३ अ० २ श्लोक ।

फल भाग का ज्ञान

[1]तारा फलपादकरी फलार्द्धदात्री प्रकीर्तिता धिष्ण्या।
तिस्रः सम्पूर्णफला विद्युदथोल्काशनिश्चेति ॥ ३ ॥

तारा का फल ¼, धिष्ण्या का आधा और विद्युत् उल्का, अशनि इन तीनों का पूर्ण होता है ॥ ३ ॥

तथा नारद ने कहा है 'फलपादकरी तारा धिष्ण्याख्यार्धफलप्रदा। पात उल्काविद्युदशन्याख्याः संपूर्णफलदा नृणाम्' ॥ ३ ॥

अशनि का स्वरूप

[2]अत (श ?) निस्वनेन महता नृगजाश्वमृगाश्मवेश्मतरुपशुषु।
निपतति विदारयन्ती धरातलं चक्रसंस्थानाम् ॥ ४ ॥

जिस समय अशनि का पतन होता है तो यह अधिक शब्द करती हुई भूमि को फाड़ती हुई तथा चक्र की तरह भ्रमण करती हुई हाथी, घोड़ा, हिरन, पत्थर, घर, वृक्ष या पशुओं पर गिरती है ॥ ४ ॥

समाससंहिता में कहा है 'अशनिः प्राणिषु निपतति दारयति धरातलं बृहच्छब्दाः' ॥ ४ ॥

तथा नारद जी ने कहा है 'अश्वेभोष्ट्रपशुनृषु वृक्षक्षोणीषु च क्रमात्। विदारयन्ती पतिता स्वनेन महतोऽशनिः' ॥ ४ ॥

बिजली गिरने का स्वरूप

[3]विद्युत्सत्त्वत्रासं जनयन्ती तटतटस्वना सहसा।
कुटिलविशाला निपतति जीवेन्धनराशिषु ज्वलिता ॥ ५ ॥

जिस समय आकाश से बिजली का पतन होता है तो प्राणियों को भयभीत करती हुई तट तट शब्द करती हुई कुटिल और विशाल स्वरूपवाली प्राणियों या काठ के समुदाय को जलाती हुई शीघ्र गिरती है ॥ ५ ॥

समाससंहिता में कहा है 'विद्युत्तटतटशब्दा ज्वालामालाकुला पतति' ॥ ५ ॥

तथा नारद जी ने कहा है 'जनयित्री च संत्रासं विद्युद्व्योम्नि ततः स्फुटम्। वक्रा विशाला ज्वलिता पतन्ती वनराजिषु' ॥ ५ ॥

धिष्ण्या पतन का स्वरूप

[4]धिष्ण्या कृशाल्पपुच्छा धनूंषि दश दृश्यतेऽन्तराभ्यधिकम्।
ज्वलिताङ्गारनिकाशा द्वौ हस्तौ सा प्रमाणेन ॥ ६ ॥

---

१. बृ० सं० ३३ अ० ३ श्लो०।
२. बृ० सं० ३३ अ० ४ श्लो०।
३. बृ० सं० ३३ अ० ५ श्लो०।
४. बृ० सं० ३३ अ० ६ श्लो०।

जिस समय आकाश से धिष्ण्या का गिरना होता है वो यह पतली देहवाली, लघु पूँछ से युक्त जाज्वल्यमान अग्नि के तुल्य, दो हाथ लम्बी और दस धनुष प्रमाण भूमि में दिखाई देने वाली होती है ॥ ६ ॥

तथा समाससंहिता में कहा है 'धिष्ण्या सिता द्विहस्ता धनूंषि दश याति कृशदेहा' ॥ ६ ॥

एवं नारद जी ने 'धिष्ण्या सपुच्छा पतति ज्वलिताङ्गारसन्निभा। हस्तद्वय-प्रमाणा सा दृश्यतेऽतिसमीपतः ॥ ६ ॥

तारा पतन का स्वरूप

[1]तारा ह्रस्तं दीर्घा शुक्ला ताम्राब्जतन्तुरूपा वा।
तिर्यगधश्चोर्ध्वं वा याति वियत्युह्यमानेव ॥ ७ ॥

जिस समय आकाश से तारा का पतन होता है तो यह एक हाथ लम्बी, श्वेत, ताम्र या कमल सूत्र के समान अतिसूक्ष्म, तिरछी, नीचे और ऊपर की तरफ जाती है ॥ ७ ॥

समाससंहिता में कहा है 'तारा तु हस्तमात्रा यात्यूर्ध्वमधः स्थिता सिता ताम्रा' ॥७॥

तथा नारद जी ने भी 'ताराब्जतनुवच्छुक्ला हस्तदीर्घाम्बुजारुणा। ऊर्ध्वं यात्यथवा तिर्यगधो वा गमनान्तरे ॥ ७ ॥

उल्का पतन का स्वरूप

[2]उल्का शिरसि विशाला निपतन्ती वर्धते प्रतनुपुच्छा।
दीर्घा भवति च पुरुषं भेदा बहवो भवन्त्यस्याः ॥ ८ ॥

जिस समय आकाश से उल्का गिरती है तो यह विशाल मस्तकवाली, पुरुष के प्रमाण तुल्य लम्बी और गिरने के समय बढ़ती हुई गिरती है। इसके अनेक भेद होते हैं ॥ ८ ॥

समाससंहिता में कहा है 'उल्काग्रतो विशाला बहुप्रकारा परुषमात्रा' ॥ ८ ॥

तथा नारद जी ने भी 'उल्का शिरो विशाला तु पतन्ती वर्धयेत्तनुम्। दीर्घपुच्छा भवेत्तस्या भेदाः स्युर्बहवस्तथा' ॥ ८ ॥

उल्का का भेद व फल

[3]प्रेतप्रहरणखरकरभनक्रकपिदंष्ट्रिलाङ्गलमृगाभाः ।
गोधाहिधूमरूपा पापा या चोभयशिरस्का ॥ ९ ॥

---

१. वृ० सं० ३३ अ० ७ श्लो०।
२. वृ० सं० ३३ अ० ८ श्लो०।
३. वृ० सं० ३३ अ० ६ श्लो०।

जिस समय उल्का प्रेत, शस्त्र, गदहा, ऊँट, नाक, मगर, बन्दर, सुअर आदि हल, मृग, गोह, सांप और धुआँ के समान स्वरूप वाली या दो सिर वाली होती है तो अशुभ फल देने वाली होती है ।। ९ ।।

तथा नारद जी ने कहा है 'पीडाश्चोष्ट्राहिगोमायुखरगोगजदांष्ट्रिकाः । कपिगोधाधूमनिभा विविधाः पापदा नृणाम्' ।। ९ ।।

उल्का का अन्य भेद व फल

[1]ध्वजझषकरिगिरिकमलेन्दुतुरगसन्तप्तरजतहंसाभाः ।
श्रीवृक्षवज्रशङ्खस्वस्तिकरूपाः शिवसुभिक्षाः ।। १० ।।

जिस समय में मछली, ध्वजा, हाथी, पर्वत, कमल, चन्द्रमा, घोड़ा, तपी हुई धूलि, हंस, नारियल वृक्ष, हीरा या शस्त्र, शङ्ख या स्वस्तिक रूप वाली दिखाई देती है या गिरती है तो उसी स्थान में लोग पूर्ण सुखी होते हैं ।। १० ।।

तथा काश्यप जी ने कहा है 'नरेभतुरगाश्वाश्मवृक्षेषु च पतेत्सदा । ज्वलन्ती चक्रवद् दृश्या त्वशना रावसंयुता । विद्युत्त्रासकरो भीमा शब्दयन्ती तटत्तटा । बृहच्छीर्षातिसूक्ष्मा च जीवेषु च पतेत् सदा । धनूंषि दश या दृश्या सा च धिष्ण्या प्रकीर्तिता । ज्वलिताङ्गारसदृशी द्वौ हस्तौ सा प्रमाणतः । पद्मताम्राकृतिश्चैव हस्तमात्रायता गता । तिर्यगूर्ध्वमधो याति सोह्यमानेव तारका । उल्का मूर्धनि विस्तीर्णा पतन्ती वर्धते तु सा । तनुपुच्छा नृमात्रा तु बहुभेदसमावृता । आयुधप्रेतसदृशी जम्बुकोष्ट्रखराकृतिः । धूम्रवर्णा तु पापाख्या विशीर्षा या तु मध्यमा । ध्वजपद्मेभहंसाभा पर्वताश्वसमप्रभा । श्रीवृक्षशङ्खभा सदृशी या चोल्का सा शिवप्रदा' ।। १० ।।

तथा नारदजी ने कहा है 'अश्वेभचन्द्ररजतवृषहंसध्वजोपमा । वज्रशङ्खस्वस्तिकाब्जरूपाः शिवसुखप्रदा' ।। १० ।।

उल्का का अन्य स्वरूप व फल

[2]अम्बरमध्याद्बह्व्यो निपतन्त्यो राजराष्ट्रनाशाय ।
बम्भ्रमती गगनोपरि विभ्रममाख्याति लोकस्य ।। ११ ।।

जिस समय उल्का आकाश में बहुत प्रकार से स्वरूप बदल कर गिरती है तो राजा तथा राष्ट्र का विनाश होता है तथा जो उल्का आकाश में बार-बार भ्रमण करती है, वह संसार को विपत्ति की सूचना देती है ।। ११ ।।

तथा नारदजी ने कहा है 'निपतन्ती स्वराद्बह्वी राजराष्ट्रक्षयाय च । यद्यम्बरे निपतति लोकस्याप्यतिविभ्रमम् ।। ११ ।।

---

१. बृ० सं० ३३ अ० १० श्लो० ।
२. बृ० सं० ३३ अ० ११ श्लो० ।

अन्य स्वरूप व फल

[१]संस्पृशती चन्द्रार्कौ तद्विसृता वा सभूप्रकम्पा च।
परचक्रागमनृपभयदुर्भिक्षावृष्टिभयजननी ॥ १२ ॥

जिस समय उल्का सूर्य या चन्द्र को स्पर्श करती है अथवा सूर्य या चन्द्र से निकल कर भूकम्प करती हुई गिरती है, वह दूसरे राजा का आगमन, राजभय, दुर्भिक्ष और वर्षा का अभाव करती है ॥ १२ ॥

तथा नारदजी ने कहा है 'यद्यर्केन्दू संस्पृशति तत्तद्भूमिप्रकम्पनम्। परचक्रागमभयं जनानां क्षुद्भयं जलात्' ॥ १२ ॥

उल्का का अन्य स्वरूप व फल

[२]पौरेतरघ्नमुल्कापसव्यकरणं दिवाकरहिमांश्वोः।
उल्का शुभदा पुरतो दिवाकरविनिःसृता यातुः ॥ १३ ॥

जिस समय आकाश में उल्का सूर्य व चन्द्रमा के प्रदक्षिण क्रम से चलती है तो क्रम से पुर में रहने वाले और बाहर रहने वालों का विनाश करती है। अर्थात् सूर्य के प्रदक्षिण क्रम से चलती है तो पुरवासियों का और चन्द्र के प्रदक्षिण क्रम से चलती है तो बाहर रहने वालों का नाश करती है। जब कि उल्का सूर्य किरण से निकल कर जाने वालों के आगे गिरती है तो वह अच्छे फल की सूचना देने वाली होती है ॥ १३ ॥

तथा नारदजी ने कहा है 'अर्केन्द्वोरपसव्योल्का पौरेतरविनाशदा'।

अन्य उल्का का स्वरूप व फल

[३]शुक्ला रक्ता पीता कृष्णा चोल्का द्विजादिवर्णघ्नी।
क्रमशश्चैतान् हन्युर्मूर्द्धोरःपार्श्वपुच्छस्थाः ॥ १४ ॥

जिस समय सफेद, लाल, पीली और काली उल्का गिरती है तो क्रम से ब्राह्मण आदि वर्णों को नष्ट करने वाली होती है। अर्थात् यदि सफेद उल्का का पतन हो तो ब्राह्मणों का, लाल से क्षत्रियों का, पीली से बनियों का और काली से शूद्रों का नाश, होता है।

यदि मस्तक के ऊपर से गिरे तो ब्राह्मणों का, छाती से गिरे तो क्षत्रियों का, बगल से वैश्यों का और पीछे से गिरे तो शूद्रों का नाश करती है ॥ १४ ॥

उल्का का और स्वरूप व फल

[४]उत्तरदिगादिपतिता विप्रादीनामनिष्टदा रूक्षा।
ऋज्वी स्निग्धा खण्डा नीचोपगता च तद्वृद्ध्यै ॥ १५ ॥

---

१. बृ० सं० ३३ अ० १२ श्लो०।
२. बृ० सं० ३३ अ० १३ श्लो०।
३. बृ० सं० ३३ अ० १४ श्लो०।
४. बृ० सं० ३३ अ० १५ श्लो०।

जिस समय आकाश से उल्का उत्तर की तरफ गिरती है तो ब्राह्मणों को, पूर्व में गिरे तो क्षत्रियों को, दक्षिण में गिरे तो वैश्यों को और पश्चिम की ओर गिरे तो शूद्रों को अशुभ फल देती है।

यदि उल्का सीधी, चिकनी, अखण्ड और आकाश के नीचे भाग में जाने वाली हो तो ब्राह्मणादि वर्णों की वृद्धि करने वाली होती है ॥ १५ ॥

अन्य स्वरूप व फल

[1]श्यावारुणनीलासृग्दहनासितभस्मसन्निभा रूक्षा ।
सन्ध्यादिनजा वक्रा दलिता च परागमभयाय ॥ १६ ॥

जिस समय आकाश से पतित उल्का बानर के मुख के समान लाल, सन्ध्याकाल में उत्पन्न, दिन में उत्पन्न, वक्र या खण्डित पतित होती है तो पुरवासियों को शत्रु के आगमन से भयभीत करने वाली होती है ॥ १६ ॥

उल्का का स्वरूप तथा फल

[2]नक्षत्रग्रहघातैस्तद्भक्तीनां क्षयाय निर्दिष्टा ।
उदये घ्नती रवीन्दू पौरेतरमृत्यवेऽस्ते वा ॥ १७ ॥

जिस समय उल्का आकाश में नक्षत्र या ग्रह का उपघात करती है तो नक्षत्र व्यूह में उक्त उस नक्षत्र या ग्रह के भक्तों का विनाश करने वाली होती है।

जब कि उल्का सूर्य या चन्द्रमा को उदय या अस्तकाल में हनन करती है तो क्रम से पुरवासियों और बाहर रहने वालों का नाश करती है। अर्थात् सूर्य हत हो तो पुरवासियों का और चन्द्रमा हत हो तो बाहर रहने वालों का विनाश करने वाली होती है ॥ १७ ॥

काश्यप ऋषि ने कहा है 'नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव यद्युल्काध्वस्तधूमिताः । तद्देशनाथ-नाशाय लोकानां सम्भ्रमाय च' ॥ १७ ॥

तथा समाससंहिता में भी 'उदगादिषु विप्रादीन् सितलोहितकृष्णवर्णाश्च । घ्नन्ति ग्रहर्क्षाघातैस्तद्भक्तीनां च नाशाय' ॥ १७ ॥

उल्का से हत नक्षत्रों का फल

[3]भाग्यादित्यधनिष्ठामूलेषूल्काहतेषु युवतीनाम् ।
विप्रक्षत्रियपीडा पुष्यानिलविष्णुदेवेषु ॥ १८ ॥
[4]ध्रुवसौम्येषु नृपाणामुग्रेषु सदारुणेषु चौराणाम् ।
क्षिप्रेषु कलाविदुषां पीडा साधारणे च हते ॥ १९ ॥

---

१. बृ० सं० ३३ अ० १६ श्लो० ।
२. बृ० सं० ३३ अ० १७ श्लो० ।
३. बृ० सं० ३३ अ० १८ श्लो० ।
४. बृ० सं० ३३ अ० १९ श्लो० ।

जिस समय आकाश में पूर्वा फाल्गुनी, पुनर्वसु या धनिष्ठा या मूल नक्षत्र की योग तारा उल्का से हत होती है तो युवती स्त्रियों को पीड़ा होती है।

जब कि पुष्प या स्वाती या श्रवण नक्षत्र की योग तारा उल्का से हत होती है तो ब्राह्मण व क्षत्रियों को पीड़ा होती है।

जब कि उत्तराफाल्गुनी या उत्तराषाढा या उत्तराभाद्रपद या रोहिणी या मृगशिर या चित्रा या अनुराधा या रेवती नक्षत्र की योग तारा उल्का से हत होती है तो राजाओं को पीड़ा होती है।

जब कि पूर्वा फाल्गुनी या पूर्वाषाढा या पूर्वाभाद्रपद या भरणी या मघा या आर्द्रा या श्लेषा या ज्येष्ठा या मूल नक्षत्र की योग तारा उल्का से हत होती है तो चोरों को पीड़ा होती है।

जब कि अश्विनी या हस्त या अभिजित या कृत्तिका या विशाखा की योग तारा उल्का से हत होती है तो कला वेत्ताओं को दुःख प्राप्त होता है ॥ १८-१९ ॥

नारद जी ने कहा है 'चरधिष्ण्येषु पतिता स्त्रीणां चोल्का भयप्रदा। क्षिप्रभेषु विशां पीडा भूपतीनां स्थिरेषु च। मृदुभेषु द्विजातीनां दारूणां दारुणेषु च। उग्रभेषु च शूद्राणां परेषां मिश्रभेषु च' ज्यो० नि० २६२ पृ० ॥ १८–१९ ॥

देवमूर्ति आदि पर उल्का गिरने का फल

[1]कुर्वन्त्येताः पतिता देवप्रतिमासु राजराष्ट्रभयम्।
शक्रोपरि नृपतीनां गृहेषु तत्स्वामिनां पीडा ॥ २० ॥
[2]आशाग्रहोपघाते तद्देश्यानां खले कृषिरतानाम्।
चैत्यतरौ सम्पतिता सत्कृतपीडां करोत्युल्का ॥ २१ ॥
[3]द्वारि पुरस्य पुरक्षयमथेन्द्रकीले जनक्षयोऽभिहितः।
ब्रह्मायतने विप्रान् विनिहन्याद्गोमिनो गोष्ठे ॥ २२ ॥

जिस समय आकाश से उल्का देवमूर्ति पर गिरती है तो राजा और राष्ट्र को भय, इन्द्र के ऊपर गिरे तो राजाओं को भय और घर पर गिरे तो घर के मालिक को पीड़ा होती है।

जिस दिशा का स्वामी ग्रह उल्का से हत हो तो उस दिशा में रहने वाले मनुष्यों को, खलिहान में गिरे तो किसानों को और छोटे मन्दिर के पास के वृक्ष पर गिरे तो पुर (नगर) का, दरवाजे के किवाड़ पर गिरे तो नगरवासियों का, ब्रह्मा के मन्दिर पर गिरे तो ब्राह्मणों का और गायों के स्थान पर गिरे तो गायों के पालने वाला का नाश करती है ॥ २०–२२ ॥

---

१. बृ० सं० ३३ अ० २० श्लो०।
२. बृ० सं० ३३ अ० २१ श्लो०।
३. बृ० सं० ३३ अ० २२ श्लो०।

तथा नारद ऋषि ने कहा है 'राज्यराष्ट्रविनाशाय प्रासादप्रतिमासु च। गृहे तत्स्वामिनां पीडा नृपाणां पर्वतेषु च। दिक्षु तत्तद्दिगीशानां कर्षकाणां स्थलेषु च। प्राकारे परिखे वाऽपि द्वारि तत्पौरमध्यमे। परचक्रागममयं राज्यपौरजनक्षयः। गोष्ठे गोस्वामिनां पीडा शिल्पकानां जलेषु च'। ज्यो० नि० २६२ पृ० ॥ २०–२२ ॥

गिरती हुई उल्का की आकृति से फल

[1]क्ष्वेडास्फोटितवादितगीतोत्क्रुष्टस्वना भवन्ति यदि।
उल्कानिपातसमये भयाय राष्ट्रस्य सनृपस्य ॥ २३ ॥

जिस समय आकाश से उल्का गिरती हुई सिंह के समान शब्द करती है या आस्फोटित, वाद्य और गान का गिरते समय उद्घोष करती है तो राजा व राष्ट्र भयभीत हो जाते हैं ॥ २३ ॥

उल्का के स्वरूप वश फल

[2]यस्याश्चिरं तिष्ठति खेऽनुषङ्गो दण्डाकृतिः सा नृपतेर्भयाय।
या चोह्यते तन्तुधृतेन खस्था या वा महेन्द्रध्वजतुल्यरूपा ॥ २४ ॥

जिस समय आकाश में उल्का की आसक्ति अधिक समय तक रहती है, जब कि दण्डाकार दिखाई दे या आकाश में डोरी बँधी हुई की तरह स्थिर रहे या इन्द्र धनुष की तरह दिखाई दे तो राजा के लिये भय की सूचना देती हैं ॥ २४ ॥

तथा नारद ऋषि ने कहा है 'राजहन्त्री तन्तुनिभा इन्द्रध्वजसमाऽथवा'। ज्यो० नि० २६२ पृ० ॥ २४ ॥

अन्य फल आकार से

[3]श्रेष्ठिनः प्रतीपगा तिर्यगा नृपाङ्गनाम्।
हन्त्यधोमुखी नृपान् ब्राह्मणानथोर्ध्वगा ॥ २५ ॥
[4]बर्हिपुच्छरूपिणी लोकसंक्षयावहा।
सर्पवत्प्रसर्पिणी योषितामनिष्टदा ॥ २६ ॥
[5]हन्ति मण्डलापुरं छत्रवत्पुरोहितम्।
वंशगुल्मवत् स्थिता राष्ट्रदोषकारिणी ॥ २७ ॥
[6]व्यालसूकरोपमा विस्फुलिङ्गमालिनी।
खण्डशोऽथवा गता सस्वना च पापदा ॥ २८ ॥

---

१. वृ० सं० ३३ अ० २३ श्लो०।
२. वृ० सं ३३ अ० २४ श्लो०।
३. वृ० सं० ३३ अ० २५ श्लो०।
४. वृ० सं० ३३ अ० २६ श्लो०।
५. वृ० सं ३३ अ० २७ श्लो०।
६. वृ० सं० ३३ अ० २८ श्लो०।

जिस समय उल्का विपरीत गमन करती है अर्थात् जहाँ से आती है और वहीं लोट कर जाती है तो इस प्रकार की उल्का सेठों का, तिरछी चलने वाली रानियों का, नीचे मुख वाली राजाओं का और ऊपर जाने वाली उल्का ब्राह्मणों का विनाश करने वाली होती है।

जब कि उल्का मोर की पूँछ के समान होती है तो वह लोगों को नाश करती है। यदि सर्प की तरह चलने वाली होती है तो स्त्रियों को अशुभ फल देने वाली होती है।

यदि मण्डलाकृति उल्का होती है तो नगर का, छाते के सदृश हो तो पुरोहित का नाश करने वाली होती है और बाँस की बीड़ के समान उल्का हो तो राष्ट्र को भयभीत करने वाली होती है।

जब कि उल्का साँप या सूअर की तरह चिनगारियों की माला पहनी हुई खण्ड खण्ड और शब्द करने वाली उल्का अशुभ फल देने वाली होती है।। २५–२८ ।।

तथा नारद ऋषि ने कहा है 'प्रतीपगा राजपत्नीं तिर्यगा च चमूपतिम्। अधोमुखी नयं हन्ति ब्राह्मणानूर्ध्वगा तथा। वृक्षोपमा पुच्छनिमाजनसंक्षोभकारिणी। प्रसर्पणो या सर्पवत्साऽङ्गनानामनिष्टदा। वर्तुलोल्का पुरं हन्ति च्छत्राकारा पुरोहितम्। वंशगुल्मलताकारा राष्ट्रविद्रावणी तथा। सूकरव्यालसदृशा खण्डाकारा च पापदा। इन्द्रचापनिभा-राज्यं खे नता हन्ति तोयदम्'। व्यो० नि० २६२–२६३ पृ०।। २५–२८ ।।

स्वरूप वश अन्य फल

[1]सुरपतिचाप्रपतिमा राज्यं नभसि विलीना जलदान् हन्ति।
पवनविलोमा कुटिलं याता न भवति शस्ता विनिवृत्ता वा ।। २९ ।।

जिस समय आकाश में इन्द्रधनुष की आकृति वाली उल्का उत्पन्न होकर विलीन हो जाती है तो मेघों का विनाश कर देती है।

जब कि वायु के प्रतिकूल टेढ़ी होकर चलने वाली उल्का उत्पन्न होकर नीचे की तरफ नहीं आने वाली शुभ नहीं होती है ।। २६ ।।

और भी पतन वश फल

[2]अभिभवति यतः पुरं बलं वा भवति भयं तत एव पार्थिवस्य।
निपतति च यया दिशा प्रदीप्ता जयति रिपूनचिरात्तया प्रयातः ।।३०।।

जिस समय आकाश से जिस दिशा से उल्का का पतन, पुर या सेना के ऊपर होता है तो राजा को उसी दिशा से भय होता है और जिस दिशा को प्रकाशित

---

१. वृ० सं० ३३ अ० २६ श्लो०।
२. वृ० सं० ३३ अ० ३० श्लो०।

करती हुई गिरती है तो उस दिशा में यदि शत्रु पर चढ़ाई की जाय तो शत्रुओं का विनाश जल्दी होता है ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने उल्कालक्षणं नाम चतुर्दशप्रकरणं समाप्तम् ॥ १४ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता गयादत्तजी के पुत्र पं० रामदीन द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का उल्का लक्षण नामक चौदहवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदविहिता चतुर्दशप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ १४ ॥

अथ पञ्चदशं वर्षेशनिर्णयप्रकरणं प्राभ्यते ।

अब आगे पन्द्रहवें प्रकरण में किस संवत् का कौन राजा होता है या इस वर्ष का वा अभीष्ट वर्ष का कौन राजा, मन्त्री इत्यादि होगा, इसका निर्णय इस प्रकरण में किया गया है । उसे बताते हैं ।

कल्पलतायाम्—

अभीष्ट वर्ष के राजा का ज्ञान

संवत्सरस्य चान्तस्य कुहूर्भवति यद्दिने ।
अपरो वासरो योऽसौ सोऽयं राजा विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

कल्पलता नामक ग्रन्थ में कहा है कि जिस वर्ष के राजा का ज्ञान अभीष्ट हो उससे पहिले संवत् की अन्तिम अमावास्या जिस दिन की हो अर्थात् जिस वासर में हो उससे दूसरा वार नामक ग्रह ही राजा होता है । जैसे संवत् २०३८ की अमावस्या अन्तिम गुरुवार के दिन है अतः इससे दूसरा वार शुक्र संवत् २०३६ में राजा हुआ है ॥ १ ॥

[1]रत्नावल्याम्—

प्रकारान्तर से राजा का ज्ञान

चैत्रशुक्लप्रतिपदि यो वारोऽर्कोदये स वर्षेशः ।
उदयद्वितये पूर्वो नोदययुगलेऽपि पूर्वः स्यात् ॥ २ ॥
दर्शान्तेऽनल्पेऽपि पूर्वो राजा तदागमोऽपि विज्ञेयः ।
यस्माच्चैत्रसितादेरुदयाद्भानोः प्रवृत्तिरब्दादेः ॥ ३ ॥
दर्शप्रतिपत्सन्धौ चैत्रादौ यो भवेद्वारः ।
सोऽब्दपतिर्विज्ञेयः प्रतिपदि मध्याह्नकाले यः ॥ ४ ॥
बहुभिः कीर्तितो राजा रवेरुदयकालिकः ।
तत्र भूपद्वये वृद्धौ भूपाभावस्तिथिक्षये ॥ ५ ॥

रत्नावली नामक ग्रन्थ में कहा है कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के सूर्योदय समय में जो वासर होता है, वह वर्षेश या वर्ष का स्वामी राजा होता है ।

यदि दो दिन प्रतिपदा उदय में हो तो पहिले दिन जो वार हो वही तथा:प्रतिपदा का क्षय हो तो भी प्रथम दिन का वार वाला ग्रह राजा होता है । और अमावस्या अधिक हो तो भी प्रथम दिन वाला राजा होता है तो आगम से विरोध उत्पन्न

---

१. ज्यो० नि० २९ पृ० ।

होगा। क्योंकि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा के सूर्योदय समय में जो वासर होता है वही राजा होता है। ऐसा आगम में प्रमाण है। या अमावस्या प्रतिपत् की सन्धि में चैत्र शुक्ल पक्ष की आदि में जो वार होता है वह राजा होता है।

या मध्याह्न काल में प्रतिपदा जिस दिन हो वह राजा होता है। किन्तु अनेक विद्वान् इसी पक्ष में सहमत हैं कि उदयकालीन प्रतिपदा में जो वासर होता है वही राजा माना जाता है।

यदि प्रतिपदा दो दिन उदय में हो तो उस वर्ष दो राजा और प्रतिपदा का क्षय हो तो राजा का अभाव होता है ॥२-५॥

तथा ब्रह्मगुप्त ने कहा है 'चैत्रसितादेरुदयाद्भानोर्दिनमासयुगकल्पाः। सृष्टयादौ लङ्कायां समं प्रवृत्ता दिनेऽर्कस्य' ॥२-५॥

[1]गर्गः—

गर्गोक्त वचन से राजा का ज्ञान

अमाप्रतिपदोः सन्धिर्मध्याह्नात्पूर्वतो यदि।
तदा तद्दिनपो राजा परतश्चेत् परो भवेत् ॥ ६ ॥

श्री गर्गाचार्य जी का कहना है कि अमावास्या व प्रतिपदा की सन्धि यदि मध्याह्न से पूर्व हो तो उसी दिन का वार और मध्याह्न के अनन्तर सन्धि हो तो आगे वाला राजा होता है ॥६॥

मकरन्दे—

मकरन्दोक्त वाक्यों से वर्षेश का ज्ञान

यस्मिन्वारेऽपराह्णे स्यात्प्रतिपन्मधुशुक्लजा।
स एव नृपतिर्ज्ञेयो वराहाद्व्यवहारतः ॥ ७ ॥

अन्ये तु यत्र वारे किंस्तुघ्नकरणं स्यात्तमेव राजानमूचुः। एवं मतभेदे सति पूर्वे व्यवस्थामाहुः।

काम्बोजखार्जूरकिरातसिन्धुदेशेषु विल्वेष्वपि दर्दुरेषु।
किंस्तुघ्नमध्याह्नगतेऽब्दपः स्यादन्येषु सूर्योदयगो दिनेशः ॥ ८ ॥

मकरन्द नामक ग्रन्थ में कहा है कि जिस दिन अपराह्ण काल में चैत्र शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा होती है तो उसी दिन का वासर उस वर्ष का राजा वराह के व्यवहार से होता है ॥७॥

अन्य विद्वानों का कहना है कि जिस वार में किन्तुघ्न करण होता है वही राजा होता है।

---

१. ज्यो० नि० २९ पृ०।

इस प्रकार यहाँ या यों समझिये कि वर्षेश के निर्णय में मतभेद होने के नाते पूर्वाचार्यों ने व्यवस्था यह की है कि काम्बोज, खाजूंर, किरात, सिंधु, बिल्व, दर्दुर देशों में जिस दिन मध्याह्न के समय किंस्तुघ्न करण होता है वही वासर उस वर्ष का राजा होता है। तथा अन्य देशों में सूर्य के उदय समय में जब प्रतिपदा होती है तो उसी दिन का वार वर्षेश होता है ॥७–८॥

राजा, मन्त्री, सस्येश, रसेश, नीरसेश का ज्ञान

चैत्रादिमेषादिकुलीरतौलिमृगादिवाराधिपतिक्रमेण ।
राजा चमूपो ह्यथ सस्यनाथो रसाधिपो नीरसनायकश्च ॥ ९ ॥

मकरन्द नामक ग्रन्थ में कहा है चैत्रशुक्ल प्रतिपदा के दिन जो वासर होता है वह राजा, मेष संक्रान्ति के दिन जो वार होता है वह मन्त्री (सचिव), कर्क सङ्क्रमण के दिन जो वार होता है वह सस्येश, तुला सङ्क्रान्ति के दिन जो वार होता है वह रसेश और मकर सङ्क्रमण के दिन जो वार होता है वह नीरसेश होता है ॥९॥

[1]फलोदये—

फलोदय ग्रन्थ से राजा सचिवादि का ज्ञान

चैत्रस्य शुक्लप्रतिपत्तिथौ यो वारः स उक्तो नृपतिस्तदाब्दे ।
मेषप्रवेशे किल भास्करस्य यस्मिन्दिने स्यात्स तु राजमन्त्री ॥ १० ॥

कर्कसंक्रान्तेर्यो वारः स अग्रधान्येश्वरः ।
धनसंक्रान्तेर्यो वारः स पश्चिमधान्येश्वरः ॥ ११ ॥

कर्कप्रवेशे दिनपस्य उक्तं सस्यस्य नाथो मुनिभिः पुराणैः ।
आर्द्राप्रवेशे दिननाथ उक्तो मेघाधिपः प्रोक्तनविप्रवर्यैः ॥ १२ ॥

सिंहसंक्रान्तिवारेशो दुर्गेशः परिकीर्तितः ।
कन्यासंक्रान्तिदिनपो धनेशः परिकीर्तितः ॥ १३ ॥

तुलाप्रवेशेऽहनि यस्य वारो रसाधिपोऽयं नियतः प्रदिष्टः ।
चापप्रवेशे दिवसाधिनाथे धान्याधिपो वै कथितो मुनीन्द्रैः ॥ १४ ॥

नक्रसंक्रान्तिवारेशो नीरसेशः प्रकीर्तितः ।
मीनसंक्रान्तिदिनपः फलेशः परिकीर्तितः ॥ १५ ॥

(ज्योतिष) फलोदय नामक ग्रन्थ में कहा है कि चैत सुदी परिवा के दिन जो वार होता है वह राजा, सूर्य की मेष संक्रान्ति में जो वार होता है वह मन्त्री, कर्क संक्रान्ति के दिन जो वार होता है वह अग्रधान्येश्वर, धनु संक्रान्ति में जो वार होता है वह पश्चिम धान्येश्वर, प्राचीन आचार्यों का कहना है कि कर्क संक्रमण के दिन जो वासर

---

१. ज्यो० नि० २६ पृ० ।

होता है वह सस्येश, आर्द्रा में सूर्य के जाने पर जो वार होता है मेघेश, सिंह संक्रान्ति में दुर्गेश, कन्या संक्रान्ति में धनेश, तुला में रसेश, धनु में धान्येश, मकर में नीरसेश और मीन संक्रमण के दिन जो वार होता है वह फलेश होता है ॥१०–१५॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'चैत्रादिमेषचापार्द्रातुलाकर्कदिनेश्वराः। नृपमन्त्रिधान्यतोयरससस्याधिपेश्वराः' ॥१०–१५॥

तथा वसिष्ठसंहिता में कहा है 'चैत्रस्य शुक्लाद्यतिथेश्च वारनाथोऽब्दपस्तस्य चमूपतिः सः। मेषस्य संक्रान्तितिथेश्च वारनाथस्तु सस्याधिपतिर्भवेत् सः॥ कुलीरसंक्रान्तिजवारनाथो रसाधिपस्तौलिनि वासरेशः। फलं तथैषां क्रमशश्चतुर्णां पृथक् पृथग्यत्प्रयतः प्रवक्ष्ये॥ वर्षाधिपो मेषदिनस्य वारश्चमूपतिश्चैत्रदिनादिवारः। हूणेषु वङ्गेषु खशेषु मागधेष्वेवं च पौण्ड्रेष्वपि टंकरेषु' (११ अ० ८–१० श्लो०) ॥१०–१५॥

मूहूर्तगणपति में कहा है 'चैत्रेमासि सिते पक्षेऽर्कोदये प्रतिपत्तिथौ। यो वासरः स राजा स्यात्तस्मिन् वर्षे ततः फलम्। मेषेऽर्कवेशे यो वारः स मन्त्री कथ्यते बुधैः। चापे धान्यपतिर्ज्ञेय आर्द्रायां जलदाधिपः। रसाधिपस्तुलायां स्यात् कर्के शस्यपतिस्तथा। मकरे स्वर्णरत्नादि नीरसेशो बुधैः स्मृतः' (मिश्र० प्र० १७५–१७७ श्लो० ॥१०–१५॥

प्रकारान्तर

रामघ्नशाको नग (७) भक्तशेषः पक्षेण (२) युक्तो भवतीह राजा।
बाणेन मन्त्री वसुभिश्च वर्षा नाथश्चतुर्भि (४) र्यदि सस्यनाथः॥ १६॥

त्रिगुणित शका में ७ का भाग देकर शेष में २ जोड़ने से राजा, पांच से मन्त्री, आठ जोड़ने से वर्षा स्वामी और चार जोड़ने पर सस्येश होता है॥ १६॥

अथ विंशोपकानयनम् —

विंशोपकों का आनयन

[1]शके त्रिघ्ने हृते शैलैर्लब्धं स्थाप्यं पृथक् पृथक्।
शेषं द्विघ्नं शरै (५) र्युक्तं वर्षं स्याच्च ततः पुनः॥ १७॥
[2]लब्धं शाकं प्रकल्प्यैवं कर्तव्याः प्रोक्तवत्क्रियाः।
धान्यं तृणं ततः शीतमुष्णं मारुतवृद्धयः।
नाशोऽथ विग्रहश्चैवं जायन्ते क्रमतस्त्विमे॥ १८॥

जिस वर्ष में विंशोपकों का आनयन अभीष्ट हो उस वर्ष की शक संख्याको तीन से गुणा करके सात का भाग देने पर जो लब्धि हो उसे धान्यादि के लिये शक कल्पना करना चाहिये। एवं शेष को दो से गुना करके उसमें पाँच जोड़ने से वर्षा होगी। पुनः लब्धि को अर्थात् जिसकी कि कल्पना शक में की है, उसी को तीन से गुना करके सात का भाग देने पर जो शेष हो उसे दो से गुना करके ५ जोड़ने पर धान्य की संख्या होगी। इसी नियम से क्रिया करने पर वर्षा से विग्रहान्त संख्या होती है॥ १७-१८॥

---

१. मु० ग० २१ प्र० १७८ श्लो०।
२. मु० ग० २१ प्र० १७९ श्लो०।

विशेष　शक सं० = १९०४। इससे वर्षादि अङ्कों का ज्ञान पाठकों की सुविधा के लिये। जैसे इस वर्ष शक सं० १९०४ है। इस लिये इसे ३ तीन गुना करने पर १९०४ × ३ = ५७१२ हुआ। इसमें सात का भाग देने पर ५७१२ ÷ ७ = लब्धि ८१६। शेष = ०। इसे दो से गुनने पर ० × २ = ०। इसमें ५ जोड़ दिया तो ५ यह वर्षा संख्या हुई। पुन: लब्धि ८१६ को शक माना अतः ८१६ × ३ = २४४८ इसमें सात का भाग देने पर २४४८ ÷ ७ = ३४९ लब्धि। शेष = ५। अत: ५ × २ = १० + ५ = १५ यह धान्य संख्या हुई। पुनः ३४९ लब्धि को शक कल्पना किया इसलिये ३४९ × ३ = १०४७ में सात का भाग देने पर १०४७ ÷ ७ = १४९ लब्धि। शेष = ४ × २ = ८ + ५ = १३ तृण संख्या हुई। पुनः १४९ को शक मानकर पूर्ववत् क्रिया करने से = १४९ × ३ = ४४७ में सात का भाग देने पर ४४७ ÷ ७ = ६३ लब्धि। शेष = ६ × २ = १२ + ५ = १७ शीत संख्या हुई। पुनः ६३ × ३ = १८९ × ७ = २७ लब्धि। शेष = ० × २ = ० + ५ उष्ण संख्या हुई। पुनः लब्धि २७ को तीन से गुना करने पर ८१ ÷ ७ = ११ लब्धि। शेष ४ × २ = ८ + ५ = १३ वायु संख्या हुई। इसी प्रकार क्रिया करने पर अवशिष्टों का ज्ञान करना चाहिये ॥ १७–१८ ॥

तथा वसिष्ठसंहिता में कहा है 'त्रिघ्ने शकाब्दे मुनिभिर्विभक्ते द्विनिघ्नशेषं शरयुक्तु वृष्टिः। धान्यं तृणं शीतमथोष्णवायू प्रजासमृद्धिः क्षयराजविग्रहौ॥ त्रिघ्नः शाकः सप्तभक्तो लब्धं रामहतं भवेत्। शेषं तु द्विगुणीकृत्य शरेणैव तु मिश्रयेत्। वृष्टिरन्नं तृणं शीतं तेजो वायुश्च संज्ञकाः। विग्रहं सर्वलोकानां ज्ञायते च पुनः पुनः। ॥१७–१८॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में' रामनिघ्ने शके सप्तभक्ते मुहुर्द्विघ्नशेषं शरैः संयुतं कारयेत्। पूर्ववद् वृष्टिरन्नं च शीतं तृणं चाऽतपो मारुतो जन्तुवृद्धिक्षयौ विग्रहः ॥१७–१८॥

सर्वनिष्पत्ति आदि का ज्ञान

[1]वर्षादिनवकस्याथ　योगं　दशहृते　युतः।
तल्लब्धं निष्पत्तिरुक्ता　सार्धार्धं　धर्मसत्यके॥ १९॥

मुहुर्तगणपति में बताया है कि वर्षादि ९ विश्वाओं का योग करके दस का भाग देने पर लब्धि सर्व निष्पत्ति, आधा जोड़ने पर धर्म व ½ युक्त करने पर सत्य होता है। प्रकाशित मूल ग्रन्थ में 'लब्धं निष्पत्तिरुत्कृष्टा मासार्धं धर्मसत्यके' पाठ है ॥१९॥

अथ क्षुदानयनम्—

क्षुधादि का आनयन

[2]शाके सप्तगुणे नन्दै (९) र्भक्ते लब्धं तु तत्क्वचित्।
निधाय द्विगुणं शेषं सैकं क्षुत्स्यात्ततः पुनः॥ २०॥
[3]लब्धं शाकं प्रकल्प्यैवं कर्तव्या प्रोक्तवत्क्रिया॥ २१॥

---

१. मु० ग० २१ प्र० १८० श्लो०।　२. मु० ग० २१ प्र० १८१ श्लो०।
३. मु० ग० २१ प्र० १८२ श्लो०।

तृषा निद्रा तथालस्यमुद्यमः शान्तिरेव च ।
[1]क्रोधो दण्डोऽथ मित्रत्वमुत्सवः पापपुण्यके ॥ २२ ॥

अभीष्ट शक संख्या को सात से गुना करके ६ का भाग देने पर लब्धि की शक संज्ञा और शेष को दो से गुना करके एक जोड़ने पर क्षुधा संख्या वर्ष में होती है। पुनः लब्धि को सात से गुना करके नौ का भाग देने पर लब्धि की शक संज्ञा और शेष को दूना करके एक जोड़ने से तृषा संख्या आती है। इसी प्रकार क्रिया करने से निद्रादि से लेकर पुण्यान्त तक संख्या का ज्ञान होता है ॥ २०–२२ ॥

विशेष—शक सं० १९०४ में क्षुधादि का ज्ञान। जैसे १९०४ × ७ = १३३२८ ÷ ९ = ल० १४८०। शे० = ८ × २ = १६ + १ = १७ = क्षुधा।

पुनः लब्धि को शक मानकर ७ से गुना करने पर १४८० × ७ = १०३६० ÷ ९ = लब्धि = ११५१। शे० = १ × २ = २ + १ = ३ तृषा। पुनः ११५१ को ७ गुना करने पर ११५१ × ७ = ८०५७ ÷ ९ = ल० ८९५। शे० २ × २ = ४ + १ = ५ निद्रा। पुनः वही क्रिया ल० ८९५ × ७ = ६२६५ ÷ ९ = ल० ६९६। शे० = १ × २ = २ + १ = ३ आलस्य। फिर वही प्रक्रिया ६९६ × ७ = ४८७२ ÷ ९ = ल० ५४१। शे० = ३ × २ = ६ + १ = ७ उद्यम। फिर ल० ५४१ को ७ से गुना करने पर ५४१ × ७ = ३७८७ ÷ ९ = ४२० ल० शे० = ७ × २ = १४ + १ = १५ शान्ति। पुनः ४२० × ७ = २९४० ÷ ९ = ३२६ ल०। शे० = ६ × २ = १२ + १ = १३ क्रोध। फिर ३२६ × ७ = २२८२ ÷ ९ = २५३ ल०। शे० = ५ × २ = १० + १ = ११ दण्ड। पुनः २५३ × ७ = १७७१ ÷ ९ ल० १९६। शे० ७ × २ = १४ + १ = १५ मैत्री। फिर १९६ × ७ = १३७२ ÷ ९ ल० १५२। शे० ४ × २ = ८ + १ = ९ उत्सव। पुनः १५२ × ७ = १०६४ ÷ ९ ल० ११८। शे० = २ × २ = ४ + १ = ५ पाप। फिर वही क्रिया ल० ११८ × ७ = ८२६ ÷ ९ = ल० ९१। शे० ७ × २ + १ = १५ पुण्य।

अथ प्रकारान्तरेण क्षुदानयनम्—

प्रकारान्तर से क्षुधातृषादि ज्ञान

[2]शाके वेदै (४) र्हते शैलै (७) र्भक्ते लब्धं च पूर्ववत् ।
शेषं च द्विगुणं सैकं क्षुधा तृष्णा सुषुप्तिका ॥ २३ ॥
[3]आलस्यमुद्यमः शान्तिः क्रोधो लोभोऽथ भेदकः ।
दण्डोऽथ मैथुनं चौर्यं रसनिष्पत्तिरेव च ॥ २४ ॥
[4]फलनिष्पत्तिरुत्साहः पुण्यं पापं तथैव च ।
सर्वंनिष्पत्तिरित्येवं संपत्तिश्च यथाक्रमात् ॥ २५ ॥

---

१. मु० ग० २१ प्र० १८३ श्लो०। २. मु० ग० २१ प्र० १८४ श्लो०।
३. मु० ग० २१ प्र० १८५ श्लो०। ४. मु० ग० २१ प्र० १८६ श्लो०।

जिस शक में क्षुधादि का ज्ञान अभीष्ट हो तो उस शक संख्या को ४ से गुना करके ७ का भाग देने पर जो शेष बचे उसे दो से गुना करके उसमें एक जोड़ने पर अभीष्ट वर्ष में क्षुधा संख्या का ज्ञान होता है। इसके अनन्तर लब्धि को ४ से गुना करके सात का भाग देने पर जो लब्धि आती है उसको बार २ शक मान कर ४ से गुना करके क्रिया करनी चाहिये। तथा शेष को दो से गुना करके एक मिलाने पर क्रम से तृष्णा, सुषुप्ति, आलस्य, उद्यम, शान्ति, क्रोध, लाभ, दण्ड, मैथुन, चौर्य, रसनिष्पत्ति, फलनिष्पत्ति, उत्साह, पुण्य, पाप, सर्वनिष्पत्ति और सम्पत्ति संख्या का ज्ञान होता है ॥२३-२५

विशेष—उदाहरण शक १९०४×४=७६१६÷७=१०८८ ल० शे०= ०×२=०+१=१ क्षुधा।

पुनः ल० १०८८×४=४३५२÷७=६२१ ल०।

शे०=५×२=१०+१=११ तृषा।

फिर ल० ६२१×४=२४८४÷७=३५४ ल०।

शे०=६×२=१२+१=१३ सुषुप्ति।

पुनः ३५४×४=१४१६÷७=२०२ ल०। शे०=२×२=४+१=५ आलस्य।

फिर ल० २०२×४=८०८÷७=११५ ल०। शे०=३×२=६+१=७ उद्यम।

पुनः ल० ११५×४=४६०÷७=६५ ल०। शे०=५×२=१०+१=११ शान्ति।

फिर ल० ६५×४=२६०÷७=३७ ल०। शे०=१×२=२+१=३ क्रोध।

पुनः ३७ ल० को २ गुना करने पर ७४÷७=१० ल०।

शे०=४×२=८+१=९ लोभ।

फिर ल० १०×४=४०÷७=५ ल०। शे० ५×२=१०+१=११ भेद।

पुनः ५×४=२०÷७=२ ल०। शे० ६×२=१२+१=१३ दण्ड।

फिर ल० २×४=८÷७=१ ल०। शे० १×२=२+१=३ मैथुन।

पुनः १×४=४÷७=ल०, ०। शे०=४×२=८+१=९ चौर्य ॥२३-२५॥

टिप्पणी—इसके आगे लब्धि शून्य होने से क्रिया समाप्त हो जाती है किन्तु श्लोक में वर्णित रसनिष्पत्ति आदि का ज्ञान अवशिष्ट रहता है ॥२३-२५॥

तथा वसिष्ठसंहिता में कहा है 'शाकं च वेदगुणितं सप्तभिर्भागमाहरेत्। शेषं च द्विगुणीकृत्य रूपं चैव तु मिश्रयेत्। क्षुधा तृषा च निद्रा च आलस्यं तूद्यमस्तथा। शान्तिः क्रोधस्तथा लोभो भेदो मैत्री तथैव च। उत्साहपुण्यपापानि ज्ञातव्यानि यथाक्रमम्। शाको वेदमितैर्निघ्नः शैलैर्लब्धयुगाहतैः। यच्छेषं तत् पुनर्निघ्नं सैकं प्राग्वत् प्रजायते। क्षुधा तृष्णा तथा निद्राऽलस्योद्यमविषं तमः। क्रोधो दण्डश्च भेदः स्यादिच्छाग्निश्च रसाःक्रमात्' ॥२३-२५॥

और भी ज्योतिर्निबन्ध में 'शाके च वेदगुणिते सप्तभिर्भागमाहरेत्। शेषं च द्विगुकृत्य रूपं चैव तु मिश्रितम्। क्षुधातृषा तथा निद्रा आलस्योद्यम एव च। शान्तिः

क्रोधस्तथा दण्डो भेद इष्टस्तथैव च। ततस्तु रसनिष्पत्तिः फलनिष्पत्तिरेव च। उत्साहः सर्वलोकानां ज्ञातव्यो निश्चितं बुधैः' (३२-३३ पृ०) ॥२३-२५॥

और भी वहीं पर प्रकारान्तर से 'शाकः सागरताडितो नवहृतो लब्धं निधाय क्वचिच्छेषं दस्रहतं शशाङ्कसहितं क्षुत्तृट् सुषुप्तिः क्रमात्। आलस्यं तत उद्यमश्च कथितः, शान्तिस्तथा क्रोधयुग्। दण्डो मैत्रमथोत्सवश्च गदितः पापं च पुण्यं तथा' (पृ० ३३) ॥ २३-२५ ॥

अथोग्रत्वाद्यानयनम्—

उग्रत्वादिका आनयन

[1]शाकश्चाष्ट (८) गुणः खेटै (९) र्भक्तो लब्धं च पूर्ववत्।
द्विघ्नं शेषं त्रिभिर्युक्तमुग्रत्वं च रसोद्भवः ॥ २६ ॥
[2]फलोत्पत्तिस्तथा व्याधी रोगनाशस्तथैव च।
आचारश्चाप्यनाचारो मृतिर्जन्म ततः परम्।
चौरोपशमनं वह्नेर्भीतीरग्निशमः क्रमात् ॥ २७ ॥

अभीष्ट शक संख्या को आठ से गुना करके नौ से भाग देने पर लब्धि को आगे की क्रिया के लिये शक मानना चाहिये; जब तक श्लोक में वर्णित वस्तुओं का ज्ञान न हो तब तक कल्पना करना चाहिये और शेष को सर्वदा दो से गुनाकर तीन मिलाना चाहिये। अर्थात् प्रथम शेष वश उग्रत्व की संख्या व द्वितीयादि शेष से रसोद्भव, फलोत्पत्ति, व्याधि, रोगनाश, आचार, अनाचार, मरण, जन्म, चौरोपशमन, अग्निभय और अग्निशमन की संख्या का ज्ञान क्रम के होता है ॥ २६-२७ ॥

विशेष—जैसे अभीष्ट शक १६०४ × ८ = १५२३२ ÷ ९ = १६९२ ल०। शे० = ४ × २ = ८ + ३ = ११ उग्रता।

पुनः १६९२ × ८ = १३५३६ ÷ ९ = १५०४ ल०। शे० = ० × २ = ० + ३ = ३ रसोद्भव।

फिर १५०४ × ८ = १२०३२ ÷ ९ = १३३६ ल०। शे० = ८ × २ + ३ = १९ फलोद्भव।

पुनः १३३६ × ८ = १०६८८ ÷ ९ = ११८७ ल०। शे० = ५ × २ + ३ = १३ रोग।

फिर ११८७ × ८ = ९४९६ ÷ ९ = १०५५ ल०। शे० = १ × २ + ३ = ५ रोगनाश।

पुनः १०५५ × ८ = ८४४० ÷ ९ = ९३७ ल०। शे० = ७ × २ + ३ = १७ आचार।

फिर ९३७ × ८ = ७४९६ ÷ ९ = ८३२ ल०। शे० = ८ × २ + ३ = १९ अनाचार।

पुनः ८३२ × ८ = ६६५६ ÷ ९ = ७३९ ल०। शे० = ५ × २ + ३ = १३ मरण।

फिर ७३९ × ८ = ५९१२ ÷ ९ = ६५६ ल०। शे० = ८ × २ + ३ = १९ जन्म।

---

१. मु० ग० २१ प्र० १८७ श्लो०। २. मु० ग० २१ प्र० १८८ श्लो०।

पुनः ६५६ × ८ = ५२४८ ÷ ९ = ५८३ ल० । शे० = १ × २ + ३ = ५ चोरशमन ।
फिर ५८३ × ८ = ४६६४ ÷ ९ = ५१८ ल० । शे० = २ × २ + ३ = ७ अग्निमय ।
पुनः ५१८ × ८ = ४१४४ ÷ ९ = ४६० ल० । शे० = ४ × २ + ३ = ११ अग्निशमन ।

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'शकाब्दं वसुभिर्निघ्नं नवभिर्भागमाहरेत् । शेषं च द्विगुणीकृत्य त्रिभिर्युक्तं तु कारयेत् । उग्रं रसः फलोत्पत्तिवर्याधिश्च व्याधिनाशनम् । सदाचारोऽप्यनाचारो मरणं जन्म एव च । देशोपद्रवः स्वास्थ्यं च चौरकुलमयं तथा । चौरोपशमनं चाग्निमयं साम्यं क्रमेण च' ॥ २६–२७ ॥

तथा वसिष्ठसंहिता में कहा है 'शकादग्निहतान्नन्दहृताच्छेषं द्विनिघ्नितम् । त्रिभियुंते पुनर्लब्धा सप्तधैवं प्रजायते । शलभा मूषकाश्चैव दैविकं हिममेव वा । ताम्रं स्वचक्रं च तथा परचक्रमिति क्रमात्' (११ अ० ४९–५० श्लोक) ॥ २६–२७ ॥

अथ शलभाद्यानयनम्—

शलभादि का आनयन

[1]शाके त्रिघ्ने हृते नन्दै (९) र्लब्धं स्थाप्यं तदुक्तवत् ।
द्विघ्नं शेषं त्रिभिर्युक्तं शलभो मूषकस्तथा ॥ २८ ॥
[2]दैविकं पीतताम्रे च चक्रं च परचक्रकम् ॥ २९ ॥

अभीष्ट शक संख्या को तीन से गुना करके नौ का भाग देने पर लब्धि को शक और शेष को दो से गुना करके तीन जोड़ने पर क्रम से शलभ, मूषक, दैव, पीत, ताम्र स्वचक्र, परचक्रादि का ज्ञान होता है ॥ २८–२९ ॥

विशेष—जैसे शक १९०४ × ३ = ५७१२ ÷ ९ = ल० ६३४ । शे० = ६ × २ + ३ = १५ शलभ ।
पुनः ६३४ × ३ = १९०२ ÷ ९ = २११ ल० । शे० = ३ × २ + ३ = ९ मूषक ।
फिर २११ × ३ = ६३३ ÷ ९ = ७० ल० । शे० = ३ × २ + ३ = ९ दैविक ।
पुनः ७० × ३ = २१० ÷ ९ = २३ ल० । शे० = ३ × २ + ३ = ९ पीत ।
फिर २३ × ३ = ६९ ÷ ९ = ७ ल० । शे० = ६ × २ + ३ = १५ ताम्र ।
पुनः ७ × ३ = २१ ÷ ९ = २ ल० । शे० = ३ × २ + ३ = ९ स्वचक्र ।
फिर २ × ३ = ६ ÷ ९ = ० ल० । शे० = ६ × २ + ३ = १५ परचक्र ।

अथ प्रकारान्तरम्—

प्रकारान्तर से शलभादि आनयन

[3]शैलघ्नो नवहृच्छाकः शेषं द्विघ्नं युतं त्रिभिः ।
शलभो मूषको दैवं पीतं ताम्रं स्वचक्रकम् ॥ ३० ॥
परचक्रागमश्चैवं क्रमाज्ज्ञेयं च पूर्ववत् ॥ ३१ ॥

---

१. मु० ग० २१ प्र० १८९ श्लो० ।   २. मु० ग० २१ प्र० १९० श्लो० ।
३. मु० ग० २१ प्र० १९१ श्लो० ।

अभीष्ट शक को सात से गुना करके ९ का भाग देने पर लब्धि को शक और शेष को दो से गुना करके तीन जोड़ने पर क्रम से शलभ, मूषक, दैव, पीत, ताम्र, स्वचक्र, परचक्रागम संख्या का ज्ञान होता है ॥ ३० ॥

विशेष—जैसे शक सं० १६०४×७ = ११२२८ ÷ ९ = १४८० ल० । शे० ८×२ = १६ + ३ = १९ शलभ ।
पुनः १४८०×७ + १०३६० ÷ ९ = ११५१ ल० । शे० = १×२ + ३ = ५ मूषक ।
फिर ११५१×७ = ८०५७ ÷ ९ = ८९५ ल० । शे० २×२ + ३ = ७ दैव
पुनः ८९५ को शक मानकर आगे की क्रिया करने पर अभीष्टों की संख्या का ज्ञान होता है ॥ ३०–३१ ॥

अथोद्भिज्जादिप्राण्यानयनम्—

उद्भिजादि जीवों का आनयन

[1]शाके बाणैर्नगैरर्कैरीशै (५।७।१२।११) र्निघ्ने पृथक् पृथक् ।
सप्तभक्तेऽवशेषं यद्द्विघ्नं पञ्चयुतं क्रमात् ॥ ३२ ॥
[2]उद्भिज्जः स्वेदजश्चैव जरायुःप्रभवोऽण्डजाः ॥ ३३ ॥

अभीष्ट शक संख्या को चार स्थान में पृथक् पृथक् स्थापित करके पाँच, सात, बारह और ग्यारह से गुना कर गुणन फलों में सात का भाग देकर शेष को २ से गुना करके पाँच जोड़ने पर उद्भिज, स्वेदज, जरायुज, अण्डज संख्या क्रम से होती है ॥ ३२–३३ ॥

विशेष—जैसे अभीष्ट शक संख्या १६०४ को चार स्थानों पर स्थापित किया—
१६०४ × ५ = ९५२० ÷ ७ = १३६० ल० । शे० ०×२ + ५ = ५ उद्भिज
दूसरे स्थान में १९०४×७=१३३२८ ÷ ७=१९०४ ल० । शे० ०×२ + ५=५ स्वेदज ।
तीसरे „ „ १९०४×१२=२२८४८÷७=३२६४ ल० । शे० ०×२ + ५=५ जरायुज ।
चौथे „ „ १९०४ × ११ = २०९४४ ÷ ७ = २९९२ ल० । शे० ०×२ + ५ = ५ अण्डज ॥ ३२–३३ ॥

अथ धर्मानयनम्—

धर्म का आनयन

[3]खाभ्रखाभ्राङ्कवेदै (४९०००) श्च कलिशेषसमा युतिः ।
कलिमानेन संभक्ता यल्लब्धं धर्मराशयः ॥ ३४ ॥

अभीष्ट वर्ष में अवशिष्ट कलि संख्या में ४६०००० जोड़कर कलियुग संख्या से भाग देने पर लब्धि धर्म संख्या अभीष्ट वर्ष में होती है ॥ ३४ ॥

---

१. मु० ग० २१ प्र० १९२ श्लो० ।
२. मु० ग० २१ प्र० १९३ श्लो० ।
३. मु० ग० २१ प्र० १६७ श्लो० ।

अथ प्रकारान्तरम्—

अभीष्ट वर्ष में राशियों के आय व्यय का साधन

[1]रसा-(६) स्तिथ्यो (१५) गजाः (८) शैलचन्द्रा (१७) नन्देन्दव (१९) स्तथा।
स्वर्गा (२१) दिशः (१०) क्रमाज्ज्ञेया रव्यादीनां ध्रुवा इमे ॥३५॥

[2]निजराशिपतेर्वर्षं स्वामिनो ध्रुवयोगके।
त्रिघ्ने बाणयुते भक्ते तिथि (१५) भिः शेषसम्मिताः ॥ ३६ ॥

[3]आयाः स्युः त्रिगुणे लब्धे शराढ्यास्तिथि (१५) भिर्हृते।
शेषे व्ययाः क्रमात्स्वस्य राशीनां कथितं (ता ?) बुधैः ॥ ३७ ॥

अभीष्ट शक संख्या में राशि स्वामी की ध्रुवाङ्क संख्या जोड़कर उस योग फल को तीन से गुना करके पाँच जोड़कर पन्द्रह से भाग देने पर शेष संख्या उस राशि की आय होती है तथा लब्धि में पुनः स्वामी ध्रुवाङ्क जोड़कर तीन से गुना करके गुणन फल में पाँच जोड़कर पन्द्रह का भाग देने पर शेष व्यय संख्या होती है।

ध्रुवाङ्क—६ सूर्य की, १५ चन्द्रमा की, ८ भौम की, १७ बुध की, १९ गुरु की, २१ शुक्र की और १० शनि की संख्या होती है ॥ ३५–३७ ॥

विशेष—जैसे १९०४ शक में वृश्चिक राशिका आय व्यय करना है। इसलिये १९०४ में वृश्चिक राशि का स्वामी भौम की ध्रुवाङ्क संख्या ८ जोड़ने से १९०४+८=१९१२ हुआ। इसे तीन से गुना करने पर=१९१२×३=५७३६+५=५७४१÷१५=ल० ३८२। शेष=११ यह इस शक में आय संख्या हुई।
पुनः ३८२+८=३९०×३=११७०+५=११७५÷१५=ल० ७८। शे०=५ व्यय ॥ ३५–३७ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'रवेरङ्गानि ६ चन्द्रस्य तिथयोऽ१५ ष्टौ ८ कुजस्य च। ज्ञस्यात्यष्टि १७ र्गुरोरेकोनविंशति १९ रथो भृगोः। एकविंशतिराख्याता २१ मन्दस्य १० दशसंमिता। राहोर्द्वादश १२ वर्षाणि दशायाः कथितानि च। स्वस्वामिवर्षाधिपवत्सरैक्यं त्रिघ्नं शराढयं तिथिभक्तशेषम्। आयोत्थलब्धिस्त्रिगुणार्थयुक्ता तिथ्याप्तशेषो व्ययसंज्ञकः स्यात्' ॥ (३२ पृ०) ॥ ३५–३७ ॥

अथ संवत्सरादत्र सुभिक्षादिज्ञानमनुक्रमादाह—

सुभिक्षादि का आनयन

[4]त्रिघ्नं संवत्सरं युक्तं शरैर्भक्तेऽथ सप्तभिः।
चतुर्द्वित्रिमिते शेषे सुभिक्षं विपुलं भवेत् ॥ ३८ ॥

[5]त्रिपञ्चके च दुर्भिक्षं षट् (ड् ?) भूसंस्थे च मध्यमम्।
शून्ये तु रौरवं ज्ञेयं फलं वर्षे बुधैः स्मृतम् ॥ ३९ ॥

---

१. मु० ग० २१ प्र० १९६ श्लो०। २. मु० ग० २१ प्र० २०० श्लो०।
३. मु० ग० २१ प्र० २०१ श्लो०। ४. मु० ग० २१ प्र० २०४ श्लो०।
५. मु० ग० २१ प्र० २०५ श्लो०।

इष्ट संवत् संख्या को तीन से गुना करके गुणनफल में पाँच मिलाकर सात का भाग देने पर चार, दो, शेष प्राप्त होने पर विपुल सुभिक्षा तथा तीन पाँच शेष में दुर्भिक्ष, ६, एक में मध्यम और शून्य शेष में उस वर्ष दुःख का साम्राज्य होता है ॥३८–३९॥

विशेष—जैसे २०३९×३=६११७+५=६१२२÷७=ल० ८७४। शेष ४ अतः सुभिक्षा ॥ ३८-३९ ॥

अन्यच्च—

प्रकारान्तर से सुभिक्षादि साधन

[1]द्विघ्नः संवत्सरै(रो ?)रामैर्हीनो भक्ते(क्तो ?) नगैस्ततः।
शेषे बाणमितैर्युग्मैः सुभिक्ष हायने भवेत् ॥ ४० ॥
[2]वेदचन्द्रमिते ज्ञेयं दुर्भिक्षं खे तु रौरवम्।
रसानलमिते मध्यमेतद्वाच्यं फलं बुधैः ॥ ४१ ॥

अभीष्ट संवत् संख्या को दो से गुना करके गुणन फल में तीन घटाने से जो शेष प्राप्त हो उसमें सात का भाग देने पर पाँच, दो शेष में सुभिक्ष, चार, एक में दुर्भिक्ष, शून्य में घनघोर दुःख और ६ व ३ शेष में मध्यम फल होता है, ऐसा पंडितों को कहना चाहिये ॥ ४०–४१ ॥

विशेष—जैसे संवत् २०३९×२=४०७८–३=४०७५÷७ ल० ५८२। शे०=१ अतः दुर्भिक्ष ॥ ४०–४१ ॥

अथ वर्तमानसंवत्सरस्य नामसङ्ख्याङ्कात्सुभिक्षादिज्ञानम्—

वर्तमान संवत् की नाम संख्या के अङ्क से सुभिक्षादि ज्ञान

[3]प्रभवाद्विगुणं कृत्वा त्रिभिन्यूनं च कारयेत्।
सप्तभिस्तु हरेद्भागं शेषं ज्ञेयं शुभाशुभम् ॥ ४२ ॥
[4]एकं चत्वारि दुर्भिक्षं पञ्चद्वाभ्यां सुभिक्षकम्।
त्रिषष्ठे तु समं ज्ञेयं शून्ये पीडा न संशयः ॥ ४३ ॥

वर्तमान में जिस नाम का संवत् हो उसे प्रभवादि से गिनने पर जो संख्या प्राप्त हो उसे दो से गुना करके गुणन फल में तीन घटाकर सात का भाग देने पर यदि शेष १ या ४ हो तो दुर्भिक्ष, ५ या २ में सुभिक्ष, ३ या ६ में समता और शून्य शेष प्राप्त हो तो उस वर्ष में अधिक दुःख होता है। अर्थात् नाना प्रकारके कष्टों की जनता को प्राप्ति होती है ॥ ४२–४३ ॥

---

१. मु० ग० २१ प्र० २०६ श्लो०।
२. मु० ग० २१ प्र० २०७ श्लो०।
३. बृ० ज्यो० सा० ८ पृ० २० श्लो।
४. बृ० ज्यो० सा० ८ पृ० २१ श्लो०।

विशेष—जैसे २०३६ में युवा नामक संवत् है। इसे प्रभवादि से गिनने पर ६ संख्या आता है। इसलिये ६×२ = १८ − ३=१५ ÷ ७=शे०=१ अतः दुर्भिक्ष ॥४२–४३॥

अथ शकात्सुभिक्षादिज्ञानमत्राह--

शक से सुभिक्षादि ज्ञान

[1]शाके त्रिघ्ने युते बाणैः शैलैर्भक्तेऽथ शेषके।
क्रमाद्वोध्यं सुभिक्षं च दुर्भिक्षं च सुभिक्षकम् ॥ ४४ ॥
महर्घं समता ज्ञेया चैकतो रौरवं तु खे ॥ ४५ ॥

इष्ट शक संख्या को तीन से गुना करके उसमें पाँच जोड़कर सात का भाग देने पर यदि एक शेष बचे तो सुभिक्ष, २ शेष में दुर्भिक्ष, ३ में सुभिक्ष, ४ में महर्घता, ५ में समता, ६ शेष में रौरव (घनघोर दुःख) और शून्य शेष में भी कष्ट ही होता है ॥४४-४५॥

अथ वर्षस्यात्र शुभाशुभविचारः--

वर्तमान वर्ष में प्राणी के नाम से शुभाशुभ का ज्ञान

तिथिवारर्क्षयोगानां युतिः संवत्सरान्वितः।
प्रष्टुर्नामाक्षरैर्युक्तस्त्रिहृतः शेषके फलम् ॥ ४६ ॥
एकेन क्लेशं समता च द्वाभ्यां सुखं त्रिशेषे मुनयो वदन्ति ॥ ४७ ॥

अभीष्ट संवत् संख्या में पूछने वाले व्यक्ति के नामाक्षरों की संख्या और जिस समय प्रश्न हो उस समय की तिथि, वार, नक्षत्र और योग की संख्या को जोड़कर तीन से भाग देने पर यदि एक शेष बचे तो क्लेश, २ में समता और तीन शेष में अर्थात् शून्य शेष में सुख होता है। ऐसा मुनि लोग कहते हैं ॥ ४६–४७ ॥

अथ शकाद्वृष्टिज्ञानम्—

शक से वर्षा का ज्ञान

त्रिघ्नः शाको द्वित्रिर्युक्तो भक्तो वेदैश्च शेषके।
विषमे प्रचुरा वृष्टिः समाङ्के स्वल्पिका भवेत् ॥ ४८ ॥

अभीष्ट शक संख्या को तीन से गुना कर गुणन फल में पांच जोड़ने पर जो योगफल हो उसमें चार का भाग देने पर यदि शेष विषम (१।३) हो तो अधिक वर्षा और सम शेष (२।०) हो तो अल्प वर्षा होती है ॥ ४८ ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्विरत्कृते सङ्ग्रहे
बृहद्दैवज्ञरञ्जने वर्षेशादिनिर्णयो नाम पञ्चदशं प्रकरणं
समाप्तम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिषशास्त्र वेत्ता गयादत्त जी के पुत्र पं० रामदीन द्वारा विरचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का वर्षेशादिनिणय नाम वाला पन्द्रहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता पञ्चदशप्रकणस्य श्रीधरी हिन्दी व्याख्या परिपूर्णा ॥ १५ ॥

---

१. मु० ग० २२ प्र० २०२–२०३ श्लो०।

अथ षोडशमयनप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे सोलहवें प्रकरण में अयन का विचार किया गया है । अर्थात् अयन किसे कहते हैं । इसका क्या उपयोग है तथा इन अयनों में क्या क्या करना चाहिए और फलादेश में सायन अयन या निरयन अयन गृहीत होता है । इसे विभिन्न ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं ।

तच्च सौरमेव । उक्तं च भास्करीयसिद्धान्ते-'वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरात्'[1]इति ।

वह अयन सौर से ही ज्ञात होता है । अर्थात् सूर्य की सङ्क्रान्ति से ही या यों समझिये सूर्य के गमन से ही इसका ज्ञान होता है ।

भास्करीय सिद्धान्त में अर्थात् सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ में कहा है कि वर्ष, अयन, ऋतु और युग का ज्ञान सूर्य के भ्रमण से ज्ञात होता है ।

'यातीत्ययनम्' अर्थात् ६ राशि उत्तर और ६ राशि दक्षिण दिशा में जब गमन करता है तो उत्तरायन, दक्षिणायन होता है ॥

तथा सिद्धान्तशेखरे में कहा है 'युगायनर्तुप्रभृतीनि सौरात्' (१ अ० ५० श्लो०) ॥

सोमसिद्धान्ते—

सोमसिद्धान्त के आधार पर

यावदर्को न कर्कादि स्पृशेत्तावत्पुरायनः ।
सौम्याख्यमथ तिग्मांशुर्यावन्न मकरादिगः ॥ १ ॥
तावद्याम्यायनं तत्स्यात् । इति ।

सोमसिद्धान्त में कहा है कि जब तक सूर्य कर्क की आदि में प्रवेश न करे अर्थात् मकरादि से मिथुनान्त में भ्रमण करे तब तक उत्तरायन और कर्कादि से धनु राशि के अन्त तक जब गमन करता है तो दक्षिणायन होता है । सारांश यह है कि सूर्य जब तक दक्षिण की ओर प्रतिदिन उदित होता है तब तक दक्षिणायन और इसके विपरीत में उत्तरायन होता है ॥ १ ॥

[2]सूर्यसिद्धान्ते—
भानोर्मकरसङ्क्रांतेः षण्मासा उत्तरायणम् ।
कर्कादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासाद्दक्षिणायनम् ॥ २ ॥
अत्र केचित्सायनार्कवशादेव अयनप्रवृत्तिरिति वदन्ति ,
तन्न । यतो निरयनगणनयैव लोके सकलव्यवहारो दृश्यते ।

---

१. सि० शि० म० का० १३ श्लो० ।
२. १४ अ० ६ श्लो० ।

सूर्यसिद्धान्त में कहा है कि सूर्य की मकर सङ्क्रान्ति से अर्थात् यों समझिये कि सूर्य के मकर राशि में प्रवेश होने से ६ मास तक उत्तरायन और कर्कादि से धनुराशि के अन्त तक सूर्य के भ्रमण वश दक्षिणायन होता है ॥ २ ॥

इस उत्तरायन व दक्षिणायन की गणना किसी-किसी के मत में सायन सूर्य की सक्रान्तिवश ही अयन का प्रारम्भ माना गया है किन्तु वह पक्ष उचित इसलिये नहीं है कि संसार में निरयन गणना से ही व्यवहार होता देखा जा रहा है ।

तद्यथा [1]वसिष्ठसंहितायाम्—

वसिष्ठसंहिता वश

षट् पौष्णभाद्वादशरौद्रधिष्ण्यात्सुराधिपाद्भानि नव क्रमेण ।
पूर्वार्धमध्यापरभागगेन्दुर्भुङ्क्तेऽखिलं व्योमचरास्तथैव ॥ ३ ॥

ग्रहाणां पूर्वार्धमध्यापरभागयोगित्वं निरयनगणनैव प्रत्यक्षतो गणितागतनक्षत्रे दृश्यते ।

सायनत्वेऽपि ग्रहः कदाचिदेकनक्षत्रान्तरे नक्षत्रद्वयान्तरे वोपलभ्यते, एवं सति यात्रादिशुभकार्यमुहूर्तेषु भरण्यादिदुष्टनक्षत्राणां, गुरुपुष्यादिसिद्धियोगानां च व्यवहारो निरयनेनैवोपपद्यते । सायनगणना तु नियतविषया ।

जैसा कि वसिष्ठसंहिता में कहा है कि रेवती से ६ नक्षत्रों में चन्द्रमा के रहने पर पूर्वार्ध, आर्द्रा से १२ नक्षत्रों तक मध्य और ज्येष्ठा से ६ नक्षत्र तक चन्द्रमा के रहने पर, परभाग संज्ञा होती है । उसी प्रकार अन्य ग्रहों के उक्त नक्षत्रों में संचरण से भी पूर्वार्ध, मध्य, पर संज्ञा होती है ॥ ३ ॥

ग्रहों की पूर्वार्धादि संज्ञा निरयन गणित से प्राप्त ही प्रत्यक्ष देखी जाती है । अयन जोड़ने पर कभी एक नक्षत्र और कभी-कभी २ नक्षत्र का अन्तर उपलब्ध होता है । इसलिये यात्रादि शुभ मुहूर्तों में तथा भरण्यादि दूषित नक्षत्रों के विचार में एवं गुरु पुष्यादि सिद्धियोगों का विचार संसार में निरयन ग्रह नक्षत्रों से सिद्ध किया हुआ प्रत्यक्ष है, सायन गणना का विचार तो निश्चित विषयों में ही किया जाता है ।

उक्तञ्च ब्रह्मसिद्धान्ते--

ब्रह्मसिद्धान्त वश

अयनांशा प्रदातव्या लग्ने क्रान्तौ चरागमे ।
वित्रिभे सत्रिभे पाते तथा दिक्कर्मपातयोः ॥ ४ ॥

इति । अतएव शिष्टाः सायनमकरसङ्क्रमवशेन प्रवृत्तोत्तरायणे विवाहादि शुभकर्म न कुर्वन्ति ॥

जैसा कि ब्रह्मसिद्धान्त में कहा है लग्न, क्रान्ति, चरागम, वित्रिभ, सत्रिभ, पात, दिशा और दृक्कर्म के आनयन में अयनांश जोड़कर ही साधन करना चाहिये ॥४॥

इसलिये शिष्ट समुदाय सायन मकर में सूर्य के प्रवेश वश उत्तरायन में विवाहादि शुभ मुहूर्तों का आचरण नहीं करते हैं ॥

---

१. ३ अ० १६ श्लो० ।

दक्षिणायन में वर्जित कार्य

रात्रिभागः समाख्यातः खरांशोर्दक्षिणायनम् ।
व्रतबन्धादिकं तत्र चूडाकर्म च वर्जयेत् ॥ ५ ॥
जलाशयसुरारामप्रतिष्ठा व्रतबन्धनम् ।
अग्न्याधानं विवाहं च चौलं राज्याभिषेचनम् ।
नवगेहप्रवेशादीन् न कुर्याद्दक्षिणायने ॥ ६ ॥

सूर्य के दक्षिण गमन पर्यन्त काल को रात्रि कहते हैं इसलिये दक्षिणायन में विवाह, चूडाकर्म, जलाशय, देव प्रतिष्ठा, बगीचा, यज्ञोपवीत, अग्न्याधान, चौल, राजाभिषेक और घर का प्रवेशादि शुभ कार्य नहीं करना चाहिये ॥५-६॥

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है 'गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठापरिणयदहनाधानचौलोपवीतक्षोणीपालाभिषेकोदवसितविशनं नैव याम्यायने स्यात्' (५ प्र० २६ श्लो०) ॥५-६॥

तथा पीयूषधारा में भी 'चूडाकर्मनृपाभिषेकनिलयाग्न्याधानपाणिग्रहान्देवस्थापनमौञ्जिबन्धनविधी कुर्यान्न याम्यायने' (५ प्र० २६ श्लो० टी०) ॥५-६॥

उत्तरायन में विहित कार्य

'गृहप्रवेशस्त्रिदशप्रतिष्ठा विवाहचौलव्रतबन्धदीक्षा ।
सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद्गर्हितं तत्खलु दक्षिणायने ॥ ७ ॥

जब कि सूर्य उत्तर में गमन करता है, उस काल में घर का प्रवेश, देवता प्रतिष्ठा, विवाह, चौल, व्रतबन्ध, दीक्षादि शुभ कार्य करना चाहिये । और दूषित कार्य दक्षिणायन में करना चाहिये ॥७॥

विशेष—मुहूर्तचिन्तामणि संस्कार प्रकरण श्लोक सं० २६ की पीयूषधारा टीका में रत्नावली के नाम से इस प्रकार का पद्य है 'गृहप्रवेशत्रिदशप्रतिष्ठाविवाहचौलव्रतबन्धपूर्वम् । सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं.......' ॥७॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे
बृहद्दैवज्ञरञ्जने अयनकथनं नाम षोडशं प्रकरणं
समाप्तम् ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिषवेत्ता गयादत्त जो के पुत्र पं० रामदीन जो ज्योतिषी के द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का अयन विचार नामक सोलहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥१६॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदविहिता अयनाख्यस्य षोडशप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दो टीका
समाप्तिमगात् ॥१७॥

---

१. मु० चि० ५ पृ० २६ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० सा० ४ पृ० ।

अथ सप्तदशं ऋतुप्रकरणं प्रारभ्यते।

अब आगे सत्रहवें प्रकरण में ऋतुओं के विषय में बताया गया है कि ऋतु किसे कहते हैं। इनका ज्ञान कैसे होता है। एक दिन में समस्त ऋतुओं का ज्ञान तथा ऋतुओं के स्वमी कौन-कौन ग्रह होते हैं।

अत्र पूर्वोक्तसिद्धान्तवाक्यादृतवः सौरा एव ज्ञेयास्तेषां च गणनाक्रम उक्तो रत्नमालायाम्—

[1]मृगादिराशिद्वयभानुभोगात्षडर्तवः स्युः शिशिरो वसन्तः।
ग्रीष्मश्च वर्षा च शरच्च तद्वद्धेमन्तनामा कथितोऽत्र षष्ठः॥ १॥

इस विषय में पहले के अयन प्रकरण में सिद्धान्तशिरोमणि के वाक्य से प्रतिपादित है कि ऋतुओं का ज्ञान भी सूर्य की गति वश ही होता है।

ऋतुओं की गणना के विषय में रत्नमाला नामक ग्रन्थ में कहा है कि मकरादि दो-दो राशियों में सूर्य के रहने पर शिशिरादि ऋतुएँ होती हैं। अर्थात् मकर कुम्भ में सूर्य के रहने पर शिशिर, मीन-मेष में वसन्त, वृष-मिथुन में ग्रीष्म, कर्क सिंह में वर्षा, कन्या-तुला में शरद और वृश्चिक व धनुराशि में सूर्य के रहने पर हेमन्त ऋतु होती है॥१॥

[2]सूर्यसिद्धान्ते—

सूर्यसिद्धान्त वश

द्विराशिमाना ऋतवस्ततोऽपि शिशिरादयः।
मेषादयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः॥ २॥

सूर्यसिद्धान्त में कहा है कि मकरादि से हो दो-दो राशियों में सूर्य के रहने पर शिशिरादि ६ ऋतुएँ होती हैं।

इन बारह राशियों को सूर्य के भोगने पर बारह मासों का सौर वर्ष भोग काल ही ऋतुओं के नाम से कहा जाता है॥२॥

[3]गणपतिः—

मुहूर्तगणपति के आधार पर

मीनमेषगते सूर्ये वसन्तः परिकीर्तितः।
वृषभे मिथुने ग्रीष्मो वर्षा सिंहेऽथ कर्कटे॥ ३॥

---

१. ज्यो० सा० ४ पृ०।
२. ३, १४ अ० १० श्लो०।
३. मु० ग० १ पृ० २५ श्लो०।

[1]कन्यायां च तुलायां च शरदृतुरुदाहृतः ।
हेमन्तो वृश्चिकद्वन्द्वे शिशिरो मृगकुम्भयोः ॥ ४ ॥

मुहूर्तगणपति ग्रन्थ में कहा है कि मीन राशि व मेष में सूर्य के रहने पर वसन्त, वृष–मिथुन में गर्मी, कर्क–सिंह में वर्षा, कन्या–तुला में शरद, वृश्चिक व धनु राशि में सूर्य के रहने पर हेमन्त और मकर व कुम्भ में शिशिर ऋतु होती है ॥ ३–४ ॥

अन्य मत से

[2]मेषादितो द्विद्विभभानुभोगाद्वसन्तपूर्वा ऋतवः षडुक्ताः ॥ ५ ॥

किसी का मत है कि मेषादि से दो दो राशियों में सूर्य के रहने पर वसन्तादि ६ ऋतुएँ होती हैं ॥ ५ ॥

दाक्षिणात्य मत से

[3]चैत्रादिद्विद्विमासाभ्यां वसन्तादृतवश्च षट् ।
दाक्षिणात्याः प्रगृह्णन्ति दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ ६ ॥

चैत्रादि दो दो मासों की वसन्तादि ६ ऋतुएँ होती हैं । ऐसा दाक्षिणात्य लोग मानकर दैव, पितृ कार्य करते हैं ॥ ६ ॥

सुश्रुतौ—

सुश्रुत के आधार पर

तत्र पूर्वाह्णे वसन्तः, मध्याह्ने ग्रीष्मः, अपराह्णे प्रावृट्, प्रदोषे वार्षिकं, शरदमर्धरात्र्ये, प्रत्यूषसि हेमन्तमुपलक्षयेत् ।

तथा सुश्रुत नामक ग्रन्थ में कहा है कि पूर्वाह्ण काल वसन्त, मध्याह्न गीष्म, अपराह्ण वर्षा, प्रदोष का शिशिर, आधी रात शरद और उषः काल हेमन्त ऋतु होता है ॥

कामरत्नेऽपि—

कामरत्न के आधार पर

वसन्तश्चैव पूर्वाह्णे ग्रीष्मो मध्याह्न उच्यते ।
वर्षा ज्ञेयापराह्णे तु प्रदोषे शिशिरः स्मृतः ॥ ७ ॥
अर्धरात्रौ शरत्काल उषा हेमन्त उच्यते ।
ऋतवः कथिता ह्येते शास्त्रज्ञैः पूर्वसूरिभिः ॥ ८ ॥

---

१. मु० ग० १ पृ० २६ श्लो० ।

२. ज्यो० सा० ४ पृ० ।

३. ज्यो० स० ४ पृ० ।

एवं कामरत्ननामक ग्रन्थ में भी कहा है कि वसन्त पूर्वाह्न, गर्मी मध्याह्न, वर्षा अपराह्न, प्रदोष शिशिर, आधी रात शरद और ऊषा काल हेमन्त ऋतु होता है। ऐसा पहिले के शास्त्र जानने वालों ने कहा है ॥ ७–८ ॥

अथ ऋतूनामधिपा: [1]सर्वार्थचिन्तामणी—

ऋतु स्वामी वर्णन सर्वार्थचिन्तामणि के वश

भृगोर्वसन्तः क्षितिसूनुभान्वोर्ग्रीष्मः शशाङ्कस्य ऋतुः प्रवर्षः।
विदः शरद्दैवगुरोस्तु हेम (हैम्नो ?) ऋतुः शनेः स्याच्छिशिरस्तु कालः ॥९॥

सर्वार्थचिन्तामणि ग्रन्थ में कहा है कि वसन्त ऋतु का शुक्र, मंगल व सूर्य ग्रीष्म का, चन्द्रमा वर्षा का, बुध शरद का, गुरु हेमन्त का और शनि शिशिर ऋतु का स्वामी होता है ॥ ९ ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे
बृहद्दैवज्ञरञ्जने ऋतुकथनं नाम सप्तदशं प्रकरणं
समाप्तम् ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन द्वारा रचित बृहद् वज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का ऋतु कथन नामक सत्रहवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता सप्तदशप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्णा ॥ १७ ॥

---

८. १ अ० ५० श्लो०।

अथाष्टादशं मासप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे अठारहवें प्रकरण में मास कितने होते हैं और उन चारों के क्या-क्या लक्षण व नाम हैं । इसे बताते हैं ।

ते मासाश्चतुर्विधाश्चान्द्रसौरसावननाक्षत्रभेदात् ।

मास— चान्द्र, सौर, सावन, नाक्षत्र ये चार प्रकार के मास होते हैं । वैसे नव प्रकार से मास, वर्ष का विचार प्रायः ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों में प्राप्त होता है । किन्तु 'चतुर्भिर्व्यवहारोऽत्र' इस सूर्यसिद्धान्त के वचन से चान्द्र, सौर, सावन और नाक्षत्र मास से ही व्यवहार होता है ।

उक्तञ्च बृहस्पतिना —

मासों का कथन

चतुर्विधास्तु विज्ञेया मासा वर्षाश्च तैस्तथा ।
वर्षे तु द्वादशे पूर्णे वर्षमासविशेषता ॥ १ ॥

आचार्य बृहस्पति ने कहा है कि मास व वर्ष चार प्रकार के होते हैं । उनके जब बारह वर्ष पूर्ण होते है तो बर्ष, मास में विशेषता होती है ॥ १ ॥

सौरश्चान्द्रश्च नाक्षत्रः सावनश्च चतुर्विधः ।
राशौ राशौ रवेर्योगात्सौरमासः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥
कुहोर्यदावसानं स्याच्चान्द्रस्याद्यन्तकस्तथा ।
नक्षत्रचै (मे ?) के चन्द्रस्य योगावृत्त्या यदा तदा ॥ ३ ॥
मासो नाक्षत्रनामाऽयं व्यवहारप्रसिद्धिदः ।
त्रिंशद्भानूदयादेव मासः सावन उच्यते ॥ ४ ॥

वे सौर, चान्द्र, नाक्षत्र और सावन नाम वाले होते हैं । एक राशि को जब सूर्य भोग कर लेता है तो सौर मास होता है । अर्थात् सूर्य की सङ्क्रान्ति से अग्रिम सङ्क्रमण के पूर्व संचरण समय तक सूर्य का मास सौर कहलाता है ।

दो अमावास्याओं के मध्य का काल अर्थात् शुक्ल प्रतिपदा से अमा की समाप्ति पर्यन्त काल चान्द्रमास होता है । या यों समझिये ३० तिथियों के भोग काल को चान्द्र मास कहते हैं ।

एक नक्षत्र में चन्द्रमा के योग की आवृत्ति से जब २७ नक्षत्रों का भोग चन्द्रमा कर लेता है तो नाक्षत्र मास होता है ।

सूर्योदय से सूर्योदय पूर्व समय को सावन दिन कहते हैं । इस प्रकार ३० उदयों का सावन मास होता है ॥ २–४ ॥

तथा सूर्यसिद्धान्त में कहा है 'ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत् संक्रान्त्या सौर उच्यते। मासैर्द्वादशभिर्वर्षं' (म० १३ श्लो०) 'नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रम्' ॥२–४॥

एवं सिद्धान्तशिरोमणि में 'रवीन्द्वोर्युतेः संयुतिर्यावदन्या विधोर्मास, इनोदयद्वयान्तरं तदर्कसावनं दिनम्। तदेव मेदिनीदिनं भवासरस्तु भभ्रमः' (म० २० श्लो०) ॥२–४॥

[1]श्रीपतिनाऽपि—

श्रीपति के आधार पर

दर्शावधिं मासमुशन्ति चान्द्रं सौरं तथा भास्कर राशिचारात्।
त्रिंशद्दिनं सावनसंज्ञमार्या नाक्षत्रमिन्दोर्भगणभ्रमाच्च ॥ ५ ॥

आचार्य श्रीपति जी ने भी कहा है कि अमान्त से अमान्त तक चान्द्र, एक राशि का जब सूर्य भोग कर लेता है तो सौर, ३० सूर्योदयों का सावन और २७ नक्षत्रों का जब चन्द्रमा भोग कर लेता है तो नाक्षत्रमास होता है ॥ ५ ॥

लोमशसिद्धान्तेऽपि—

लोमशसिद्धान्त के आधार पर

चान्द्रो दर्शावधिर्मासः स च सूर्येन्दुसङ्गमः।
तयोर्विश्लेषसमयेऽग्रिमो मास उदाहृतः ॥ ६ ॥
तेषामैन्दवमासानां चैत्राद्याख्याश्च संस्मृताः ॥ ७ ॥

लोमशसिद्धान्त में भी अमा तक चान्द्र, अर्थात् एक चन्द्र सूर्य युति से द्वितीय युति पर्यन्त चान्द्र या यों समझिये कि दो युतियों के अन्तर्वर्ती समय को चान्द्रमास कहते हैं। वे चैत्रादि से होते हैं। अर्थात् चैत, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढादि होते हैं ॥६–७॥

[2]आर्ष्टिषेणिः—

आर्ष्टिषेण के आधार पर

दर्शान्तो वैदिको मासो राकान्तः स्मार्त उच्यते।
पौराणो हरिघस्रान्तः श्रौत (सौर ?) उत्पत्तिपूर्वकः ॥ ८ ॥

आचार्य आर्ष्टिषेण का कहना है कि दर्शान्त से दर्शान्त वैदिक, पूर्णिमान्त से पूर्णिमान्त तक स्मार्त, एकादशी के अन्त से अन्त तक पौराणिक और उत्पत्ति पूर्वक मास श्रौतमास होता है ॥ ८ ॥

वृद्धगर्गः—

किस कार्य में किस मास का ग्रहण

[3]विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनः स्मृतः।
वार्षिके पितृकार्ये च मासश्चान्द्रोऽभिधीयते ॥ ९ ॥

---

१. ज्यो० सा० ५ पृ०। २. ज्यो० नि० ३४ पृ०। ३. ज्यो० नि० ३४ पृ०।

वृद्ध गर्गाचार्य जी ने कहा है कि विवाहादि में सौरमास, यज्ञादि में सावन, वार्षिक और पितृ सम्बन्धि कार्य में चान्द्रमास का ग्रहण करना चाहिये ॥ ९ ॥

श्रीपतिः—

प्रकारान्तर से ज्ञान

चान्द्रे विवाहाध्वरपूर्वकार्यं स्त्रीगर्भवृद्ध्यादि च सावनाख्ये।
सौरोऽखिलं खेचरकर्म कुर्यान्नाक्षत्रमासे घनगर्भपूर्वम् ॥ १० ॥

आचार्य श्रीपति का कथन है कि विवाह, यज्ञ सौरमास में, स्त्री के गर्भ वृद्धयादि सावन में, सौर में समस्त ग्रह कार्य और नाक्षत्र मास में आकाशस्थ बादलों के गर्भ का ज्ञान करना चाहिये ॥ १० ॥

बृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर

पराश्रयाणां यद्वत्स्यात्स्वाश्रयश्च शुभं कथम्।
तस्मात्स्थिराणि कार्याणि शुभकर्माणि मानवैः ॥ ११ ॥
दैवोत्सवश्च कर्तव्यो सौरेण नैव चान्द्रतः।
श्राद्धादयश्च सौरेण मासेन नैव चान्द्रतः ॥ १२ ॥

आचार्य बृहस्पति का कहना है कि जैसे दूसरे का आश्रय लेने वालों का शुभ नहीं होता है। इसलिये अपने आधीन शुभ स्थिर कार्य मनुष्यों को सौर से करना चाहिये तथा देवता का उत्सव सौर मास के आधार पर करना चाहिये न कि चान्द्रमास के आधार पर और श्राद्धादि कार्य चान्द्रमास वश करना चाहिये सौर मास के वश नहीं करना चाहिये ॥११-१२॥

नारदः—

प्रकारान्तर से

ग्रहाणां निखिलश्चारो गृह्यते सौरमानतः।
वृद्धेर्विधानं स्त्रीगर्भं सावनेन च गृह्यते ॥ १३ ॥
प्रवर्षणं मेघगर्भे नाक्षत्रेण प्र गृह्यते ॥ १४ ॥

नारद ऋषि का कहना है कि समस्त ग्रहों के चार का विचार सौरमास से व विधाता का विधान और स्त्री के गर्भ का सावन मास से तथा मेघ के गर्भ व वर्षा का नाक्षत्र मास से करना चाहिये ॥१३-१४॥

[1]वसिष्ठः—

वसिष्ठ के आधार पर

उद्वाहयज्ञोपनयनप्रतिष्ठातिथिव्रतक्षौरमहोत्सवाद्यम्।
पर्वक्रिया वास्तुगृहप्रवेशः सर्वं हि चान्द्रेण विगृह्यमेतत् ॥ १५ ॥

---

१. व० सं० ११ अ० ७ श्लो०।

वसिष्ठ ऋषि का कथन है कि विवाह–यज्ञ–उपनयन–प्रतिष्ठा–तिथिव्रत–क्षौर–महोत्सव–पर्वक्रिया–वास्तु और गृह प्रवेश में चान्द्रमास का प्रयोग करना चाहिये ॥१५॥

अन्य:—

प्रकारान्तर से

तापनीकृष्णयोर्मध्ये चान्द्रमासः प्रशस्यते ।
अन्ये तु सर्वदेशेषु सौरो व्रतविवाहयोः ॥ १६ ॥

अन्य लोगों का मत है कि तापनी व कृष्ण के बीच के देशों में यज्ञोपवीत व विवाह में चान्द्र मास का और अवशिष्ट समस्त देशों में सौर मास के आधार पर विवाह यज्ञोपवीत का विचार करना चाहिये ॥१६॥

ग्रहण में विशेष

विन्ध्याद्रेर्दक्षिणे भागे चान्द्रो मासः प्रशस्यते ।
उदग्भागे तु विन्ध्यस्य सौरमानं विधीयते ॥ १७ ॥
अन्येषु सर्वदेशेषु मिश्रमानं प्रकल्पयेत् ॥ १८ ॥

विन्ध्य पर्वत के दक्षिण भाग में चान्द्रमास व उत्तर भाग में सौर मास और अन्य समस्त देशों में सौर-चान्द्र के योगवश शुभ कार्य करना चाहिये ॥१७-१८॥

[1]नारदः—

नारद के आधार पर

यस्मिन्मासे पौर्णमासी येन धिष्ण्येन संयुता ।
तन्नक्षत्राह्वयो मासः पौर्णमासस्तथाह्वयः ॥ १९ ॥

नारद ऋषि का कहना है कि पूर्णिमान्त मास जिस नक्षत्र से युक्त होता है अर्थात् जिस मास की पूर्णिमा जिस नक्षत्र से युक्त है उसी के आधार पर उस मास का नाम होता है । जैसे चित्रायुक्त पूर्णिमा चैत्र, विशाखा से वैशाख, ज्येष्ठा से जेठ आदि मास होते हैं ॥१६॥

अब आगे सूर्यसिद्धान्त के वाक्य से पूर्णिमा के दिन तत् मास संज्ञक नक्षत्र नहीं प्राप्त होता है तो वहाँ किस नक्षत्र का ग्रहण करना चाहिये, इसे बताते हैं ।

[2]सूर्यसिद्धान्ते—

सूर्यसिद्धान्त के आधार पर

कार्तिकादिषु मासेषु कृत्तिकादि द्वयं द्वयम् ।
अन्त्योपान्त्यौ पञ्चमश्च त्रिभमासत्रयं स्मृतम् ॥ २० ॥

---

१. ज्यो० नि० ३३ पृ० ।
२. १४ अ० १६ श्लो० ।

सूर्यसिद्धान्त में कहा है कि यदि कार्तिकादि मास में कृत्तिकादि नक्षत्र न हों तो अर्थात् कृत्तिका रोहिणी से कार्तिक या यों समझिये कृत्तिका से दो नक्षत्र तथा अन्त्य, उपान्त्य और पाँचवें मास में तीन नक्षत्रों का ग्रहण होता है। या यों समझिये अन्त्य मास आश्विन व उपान्त्य भाद्रपद तथा पाँचवाँ फाल्गुन में क्रमसे रेवती, अश्विनी, भरणी नक्षत्र पूर्णिमा के दिन होने से आश्विन व इसी प्रकार शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद से युत भाद्रपद और मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी से युत फाल्गुन मास होता है॥ २०॥

गुरुः—

बृहस्पति के आधार पर

नक्षत्रद्वितयेष्विन्दौ पूर्णे त्वाष्ट्रद्वये ततः।
मासाश्चैत्रादयः षड्भिः षट्सप्तान्त्यत्रिभिर्दिनैः॥ २१॥

बृहस्पति जी का कहना है कि चित्रा स्वाती में पूर्णिमा होने पर चैत अर्थात् चित्रादि दो-दो नक्षत्रों से युत चैत आदि मास होते हैं किन्तु छटा सातवाँ व बारहवाँ मास तीन नक्षत्रों से होता है॥ २१॥

रघुनाथोऽपि—

रघुनाथ के आधार पर

द्वे द्वे चित्रादितारासां परिपूर्णेन्दुसङ्गमे।
मासाश्चैत्रादिका ज्ञेयास्त्रिगैः षष्ठान्त्यसप्तमाः॥ २२॥

आचार्य रघुनाथ ने भी चित्रादि दो-दो से चैत्रादि और छटा, सातवाँ व बारहवाँ मास तीन नक्षत्रों में से होता है ऐसा बताया है॥ २२॥

तेषां नामानि मुहूर्तगणपतौ[1]—

मुहूर्तगणपति वश

मासश्चैत्रोऽथ वैशाखो ज्येष्ठश्चाषाढसंज्ञकः।
ततस्तु श्रावणो भाद्रपदोऽथाऽश्विनसंज्ञकः॥ २३॥
[2]कार्तिको मार्गशीर्षश्च पौषो माघोऽथ फाल्गुनः॥ २४॥

इन मासों के नाम मुहूर्तगणपति ग्रन्थ में चैत, वैशाख, जेठ, आषाढ, सावन, भादों, आश्विन, कार्तिक, अगहन, पूस, माघ और फाल्गुन वर्णित हैं॥ २३-२४॥

इनके पर्यायवाची नाम

[3]मधुश्च माधवश्चैव शुक्रः शुचिरथो नभाः।
नभस्यश्चैष ऊर्जश्च सहश्चाथ सहस्यकः॥ २५॥
तपस्तथा तपस्यश्च माससंज्ञाः क्रमादमूः॥ २६॥

---

१. १ प्र० २७ श्लो०। २. मु० ग० १ प्र० २८ श्लो०।
३. मु० ग० १ प्र० २९ श्लो०।

१ मधु (चेत), माधव (वैशाख) शुक्र (जेठ), शुचि (आषाढ) नभ (सावन) नभस्य (भादों) इष (आश्विन) ऊर्ज (कार्तिक) सह (अगहन) सहस्य (पूस), तप (माघ) तपस्य (फाल्गुन) ये नामान्तर हैं ।। २५–२६ ।।

तथा श्रीपति ने भी कहा है 'मधुस्तथा माधवसंज्ञकश्च शुक्रः शुचिश्चाथ नभो नभस्यौ । तथेष ऊर्जश्च सहःसहस्यौ तपस्तपस्याविति ते क्रमेण' (ज्यो-नि० ३३ पृ०) ।। २६ ।।

मासेश्वरास्त्रैलोक्यप्रकाशे—

चैत्रादि मासों के स्वामी

आषाढो भास्करो ज्ञेयो ज्येष्ठमासः कुजः पुनः ।
श्रावणः सबलः शुक्रश्चन्द्रो भाद्रपदः स्मृतः ।। २७ ।।
पौषश्च मार्गशीर्षश्च गुरुर्ज्ञाश्विनकार्तिकौ ।
चैत्रवैशाखकौ राहौ मन्देऽथ माघफाल्गुने ।। २८ ।।

त्रैलोक्यप्रकाश ग्रन्थ में कहा है कि आषाढ का सूर्य, जेठ का भौम, सावन का शुक्र, भादों का चन्द्रमा व पूस अगहन का गुरु, आश्विन, कार्तिक का बुध, चैत, वैशाख का राहु और माघ व फागुन का स्वामी शनि होता है ।। २७–२८ ।।

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे
बृहद्दैवज्ञरञ्जने मासकथनं नाम अष्टादशं प्रकरणं
समाप्तम् ।। १८ ।।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा विहित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का मास कथन नामक अठारहवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ।। १८ ।।

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधरचतुर्वेदकृता धृतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ।। १८ ।।

अथकोनविंशं अधिमासप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे उन्नीसवें प्रकरण में अधिमास अर्थात् अधिक मास के विषय में, प्रथम अधिक मास या यों समझिये मल मास का लक्षण क्या होता है तथा इसका ज्ञान कैसे होता है और इस मास में क्या करना चाहिये एवं किन-किन का त्याग होता है । इसे अनेक ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं ।

तल्लक्षणं सिद्धान्तशिरोमणौ[1]—

सिद्धान्तशिरोमणि के आधार पर अधिक क्षय मास का लक्षण

असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटः स्या
द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित् ।
क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्या
त्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं स्यात् ॥ १ ॥

सिद्धान्तशिरोमणि नामक ग्रन्थ में श्री भास्कराचार्यजी ने कहा है कि जिस चान्द्र महिना में सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती है तो उस मास की अधिक मास संज्ञा यों हो जाती है कि चान्द्र महिना वही होता है कि जिस में सूर्य की संक्रान्ति होती है । इसलिये संक्रमण रहित मास अधिक या मल या पुरुषोत्तम होता है ।

एवं जिस मास में अर्थात् चान्द्र मास में दो संक्रान्ति सूर्य की होने से एक मास की हानि उपस्थित होती है । इसलिये २ संक्रान्ति वाले चान्द्रमास को क्षय मास कहते हैं ।

यह क्षय मास प्रायः अभी कार्तिकादि तीन मास में होता है या यों समझिये कार्तिक, अगहन, पूस ही क्षय हो सकता है । किन्तु किसी किसी के पक्ष में 'कार्तिक आदि येषां ते० अर्थात् कार्तिक है आदि में जिसके या यों समझिये अगहन, पूस, माघ इन्हीं में क्षय की संभावना होती है, ऐसा कथन है । तथा जिस वर्ष में क्षय मास होता है उस वर्ष में दो अधिक मास १ तीन मास के पूर्व तथा १ अनन्तर से होता है । यहाँ किसी के मत में प्रथम अधिक मास तीस दिन का और अन्य पक्ष में साठ दिन का मानते हैं ॥ १ ॥

[2]मुहूर्तमार्तण्डे—

मुहूर्तमार्त्तण्ड के आधार पर लक्षण

एकस्मिन्वर्षे अधियुगे अधिकद्वये सति पूर्वोऽधिमासो
प्रथमोऽधिमासः प्राकृतः प्राकृतवज्ज्ञेयः । अधिकवन्न त्याज्यः ।
अर्थादुत्तरोऽधिकमासो मलमासस्तदुक्तम् ।
मासद्वयेऽब्दमध्ये च संक्रमो न भवेद्यदा ।
प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादुत्तरस्य मलिम्लुचः ॥ २ ॥

---

१. म० अधि० नि० ६ श्लो० । २. मा० व० टी० ११ पृ० २ श्लो० ।

यदि एक ही वर्ष में क्षय तथा दो अधिमासों की प्राप्ति हो तो क्षय से प्रथम अर्थात् पहिला अधिक मास प्राकृत होता है अधिक की तरह त्याज्य नहीं होता है अर्थात् उत्तर वाला या यों समझिये क्षय के बाद वाला अधिक मास मलमास होता है। ऐसा कहा गया है।

जैसे—यदि एक वर्ष में दो चान्द्र महिनाओं में सूर्य की संक्रान्ति न हो तो क्षय से पूर्ववर्ती महिना प्राकृत अर्थात् तीस दिन का होता है। क्षय से बाद वाला अधिक होता है ॥२॥

[1]पितामहः—

पितामह का कथन

अष्टाधिमासाः स्युर्नित्यं प्रोच्यन्ते फाल्गुनादयः।
सौम्यपौषौ क्षयो नित्यं भवेतामिति निश्चितम् ॥ ३ ॥
क्षयो वाप्यधिमासो वा स्यादूर्ज इति निश्चितम्।
न क्षयो नाधिमासः स्यान्माघो वै परिकीर्तितः ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी का आदेश है कि फागुन आदि आठ महीनों में से ही अधिक मास और अगहन व पूस मास क्षय नित्य होता है। ऐसा निश्चित प्राय है।

क्षय के विषय में यह भी संभावना है कि वह क्षय व अधिमास कार्तिक हो सकता है तथा माघ महीना न तो अधिक व क्षय हो सकता है ॥ ३–४ ॥

चण्डेश्वरः—

आचार्य चण्डेश्वर द्वारा लक्षण

दर्शद्वयमतिक्रम्य यदा सङ्क्रमते रविः।
मलमासः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥ ५ ॥

आचार्य चण्डेश्वर का कहना है कि यदि दो अमावास्याओं के अन्तर सूर्य की संक्रान्ति न होने से उक्त मास को मल मास कहते हैं। इस मल मास में समस्त शुभ काम नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥

बादनारायण के आधार पर

षष्टिभिर्दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः।
आद्यो मलिम्लुचः पक्षो द्वितीयः प्राकृतः स्मृतः ॥ ६ ॥

आचार्य बादरायण का कथन है कि यह मलमास साठ दिन का होता है। पहिला पक्ष तो यह है कि क्षय पूर्ववर्ती अधिक मास अर्थात् मलमास ६० दिन का।

दूसरा पक्ष है कि पहिले वाला अधिमास प्राकृत अर्थात् ३० तीस दिन का होता है। अबभी इस देश में दोनों धारा बहती हैं ॥ ६ ॥

---

१. ज्यो० नि० ८२ पृ० २-३ श्लो०।

[1]पौलस्तिसिद्धान्ते—

पौलस्ति सिद्धान्त के आधार पर लक्षण

स्फुटगत्या यदा चन्द्रो रविमण्डलमध्यगः ।
तदूर्ध्वं सङ्क्रमो भानोर्मासः स्यात्स मलिम्लुचः ॥ ७ ॥

पौलस्तिसिद्धान्त में वर्णित है कि जब चन्द्रमा अपनी स्पष्ट गति से चलकर सूर्य बिम्ब के मध्य में होता है तो इस संयोग के अनन्तर (यहाँ भी दो अमाओं के पश्चात् यह ध्यान रखते हुए) यदि सूर्य संक्रमण होता है तो उस मास को मलिम्लुच या अधिक कहते हैं ॥७॥

ब्रह्मसिद्धान्ते—

ब्रह्म सिद्धान्त के वश लक्षण

चान्द्रो मासो ह्यसङ्क्रान्तो मलमासः प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥

ब्रह्मसिद्धान्त में प्रतिपादित है कि जिस चान्द्र महिना में सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती है। उसे मलमास कहते हैं ॥८॥

[3]कालनिर्णये—

काल निर्णय द्वारा लक्षण

सङ्क्रमो यदि भवेद्रवेस्ततो मण्डलाद्वहिरनिर्गते विधौ ।
उच्यतेऽथ स हि सङ्क्रमो बुधैः शुद्धमास इतरो मलिम्लुचः ॥ ९ ॥

इसमें कहा है कि यदि सूर्य मण्डल से बाहर न निकले हुए चन्द्र के मध्य काल में संक्रमण होने से शुद्ध मास एवं इसके विपरीत में मलिम्लुच मास होता है ॥९॥

[3]मुहूर्तमार्तण्डेऽपि—

मुहूर्तमार्त्तण्ड द्वारा लक्षण

ब्रह्माद्यैरिनमण्डलान्त उदितश्चान्द्रस्त्वमान्तः परै-
र्मासोऽसङ्क्रमणो द्विसङ्क्रमणको ज्ञेयोऽधिकोऽथो क्षयः ॥ १० ॥

ब्रह्मा आदि सिद्धान्त कर्ताओं ने सूर्य मण्डल के अन्त संयोग तक के चान्द्र योग से मास और मण्डल के बाहर चन्द्र के जाने पर यदि संक्रान्ति हो तो अधिक मास अर्थात् ब्रह्मादि पक्ष में मण्डलान्त मास और अन्य मत में अमान्त से अमान्त तक। एक चान्द्र मास जब ही कहलाता है जब इसके मध्य सूर्य की संक्रान्ति होती है तो चान्द्रमास अन्यथा अधिक मास होता है। जिस चान्द्रमास में अर्थात् दो अमाओं के भीतर यदि दो सूर्य की संक्रान्ति हों तो क्षयमास होता है ॥१०॥

---

१. ज्यो० नि० ८२ पृ० ८ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ८२ पृ० ६ श्लो०।
३. ११ प्र० २ श्लो०।

अन्यत्रापि—

अन्य मत से

शकुन्यादिचतुष्कं तु रवेर्मलमुदाहृतम् ।
तदूर्ध्वं क्रमते भानोर्मासः स्यात्तु मलिम्लुचः ॥ ११ ॥
[1]द्वात्रिंशता गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा ।
घटिकानां चतुष्केण पतत्येकोऽधिमासकः ॥ १२ ॥

ग्रन्थान्तर में लिखा है कि शकुनि आदि चार करण सूर्य का मल कहा गया है इसलिये इनके अनन्तर यदि सूर्य का संक्रमण हो तो अधिक मास होता है ।।

यह अधिक मास ३२ महीना १६ दिन ४ घटो के पश्चात् मध्यम मान से होता है ।।११–१२।।

गर्गः—

गर्ग मत से लक्षण

यदा चन्द्रोऽर्कबिम्बस्थस्ततः सङ्क्रमते रविः ।
दानव्रतादि यज्ञादि वर्ज्यं तत्राधिमासके ॥ १३ ॥

जब कि सूर्य बिम्बस्थ चन्द्रमा होता है तो उसके बाद यदि सूर्य की संक्रान्ति होती है तो अधिक मास होने के कारण दान, व्रत, यज्ञादि शुभ कार्य नहीं करना चाहिये ।।१३।।

लल्लः—

लल्लमत से अधिक मास की परिभाषा

[2]यदा शशी याति गभस्तिमण्डलं दिवाकरः सङ्क्रमणं करोत्यनु ।
विवाहयज्ञोत्सवनाशहेतुकस्तदाधिमासः कथितः स्वयम्भुवा ।।१४।।

आचार्य लल्ल का कहना है कि जब चन्द्रमा सूर्य मण्डल में प्रवेश करता है और इसके पश्चात् सूर्य की संक्रान्ति यदि होती है तो अधिक मास होता है । इसमें विवाह, यज्ञ, उत्सव आदि नहीं करना चाहिये । ऐसा ब्रह्मा जी का कथन है ।।१४।।

[3]शार्ङ्गधरफलग्रन्थे—

शार्ङ्गधर फल ग्रन्थ से परिभाषा

चन्द्रार्कयोस्तु बिम्बैक्यं प्रतिपद्दर्शसन्धिषु ।
तिथ्यन्तादुभयतो रसनाड्योर्कमण्डलात् ॥ १५ ॥
तन्मण्डलाच्छशी गच्छेत्ततः सूर्यस्य सङ्क्रमः ।
मासोऽसौ मलिनः प्रोक्तो न तद्धीनोऽधिकः स्मृतः ॥ १६ ॥

---

१. ज्यो० सा० ७ पृ० ।
२. ज्यो० नि० ८३ पृ० १० श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ८३ पृ० १२-१३ श्लो० ।

शार्ङ्गधर फल ग्रन्थ में कहा है कि अमा व प्रतिपदा की सन्धि में सूर्य व चन्द्र बिम्ब का एकीकरण करके तिथ्यन्त से ६ घटी बाद एवं ६ घटी पूर्व चन्द्रमा सूर्य-मण्डलस्थ होता है। इसके अनन्तर सूर्य संक्रमण होने पर अधिक मास होता है इससे हीन होने पर अधिक नहीं होता है ॥१५-१६॥

[1]पितामहः—

पितामह के मत से सूर्यमण्डलस्थ नाडिका का ज्ञान

प्रतिपद्दर्शसन्धौ तु बिम्बैक्यं चन्द्रसूर्ययोः।
जवान्तराप्तषष्टिघ्नं नाडिका अर्कमण्डलम् ॥ १७ ॥

पितामह जी का कथन है कि अमावास्या व प्रतिपदा की सन्धि में सूर्य बिम्ब व चन्द्र विम्ब का ऐक्य करके उसमें दोनों की गतियों के अन्तर से भाग देकर लब्धि को ६० से गुनने पर अभीष्ट दिन सूर्यमण्डल में चन्द्रमा की घटी होती है ॥१७॥

[2]ज्योतिःप्रकाशे--

ज्योतिः प्रकाश के मत से

दर्शान्त एकैः कथितोत्र मासः परैः प्रदिष्टो रविमण्डलान्तः।
मतद्वये चेद्रविसङ्क्रमः स्यात्स एव पूर्वस्य न चापरस्य ॥ १८ ॥

ज्योतिः प्रकाश में कहा है कि किसी एक पक्ष में दर्शान्त से दर्शान्त तक चान्द्रमास तथा अन्य पक्ष में सूर्यमण्डलान्त से मण्डलान्त तक चान्द्रमास होता है। यदि दोनों मत में इसके भीतर संक्रमण हो तो चान्द्रमास अन्यथा अर्थात् दर्शान्त या मण्डलान्त में संक्रान्ति हो तो अधिक मास होता है ॥१८॥

[3]श्रीपतिः--

श्रीपति के मत से

सवितृमण्डलमेति यदा शशी तदनु सङ्क्रमणं कुरुते रविः।
मखमहोत्सवनाशकरस्तदा मुनिवरैः कथितोऽधिकमासकः ॥ १९ ॥

आचार्य श्रीपति का कहना है कि जब चन्द्रमा सूर्य मण्डल में रहता है और यदि मण्डल बाहर आने पर सूर्य की संक्रान्ति होती है तो अधिक मास होता है। इसमें यज्ञ, महोत्सवादि का विनाश होता है। ऐसा श्रेष्ठ ऋषियों ने प्रतिपादन किया है ॥१९॥

[4]गर्गः--

गर्ग के मत से अधिक में त्याज्य कर्म

अग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञो दानव्रतानि च।
वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ॥ २० ॥

---

१. ज्यो० नि० ८३ पृ० १४ श्लो०। २. ज्यो० नि० ८३ पृ० १५ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ८३ पृ० ११ श्लो०। ४. ज्यो० नि० ८३ पृ० २३ श्लो०।

गमनं देवतीर्थानां विवाहमभिषेचनम् ।
यानं च गृहकर्माणि मलमासे विवर्जयेत् ॥ २१ ॥

गर्गाचार्य जी का कहना है कि अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रतादि, वेदव्रत, वृषोत्सर्ग, चूडा कर्म, व्रतबन्ध, देवतीर्थों में गमन, विवाह, अभिषेक, यान और घर के काम अर्थात् गृहारम्भादि कार्य अधिक मास में नहीं करना चाहिये ॥२०–२१॥

तथा च [1]सूर्योदये--

सूर्योदय के मत से मलमास में कर्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान

आवश्यकर्म मासाख्यं मलमासमृताब्दिकम् ।
तीर्थेभच्छाययोः श्राद्धमाधानाङ्गपितृक्रियाम् ॥ २२ ॥
[2]कुर्यान्मलिम्लुचे वर्षे मध्ये चेत्सर्वदाधिकम् ।
तत्र स्यान्मासिकं मृत्युं मासात्स द्वादशो यदि ॥ २३ ॥
[3]प्रेतक्रियां समाप्यात्र कुर्वीताभ्युदयं तथा ।
श्यामाकाग्रयणं कृच्छ्रेण स्याद्वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ २४ ॥
[4]काम्यारम्भं वृषोत्सर्गं पर्वोत्सवमुपाकृतिम् ।
मेखलाचौलमाङ्गल्याग्न्याधानोद्यापनक्रियाः ॥ २५ ॥
[5]वेदव्रतमहादानाभिषेकान्वर्द्धमानकम् ।
इष्टं पूर्तं तथा यस्य विध्यलोपोऽन्यदा कृतौ ॥ २६ ॥

सूर्योदय नामक ग्रन्थ में कहा है कि मास में विहित आवश्यक कार्य, मलमास में मरने वाले का वार्षिक श्राद्ध, तीर्थ व गजच्छाया श्राद्ध, आधानाङ्गीभूत पितरों की क्रिया करना चाहिये। यदि मध्य में किसी के मलमास हो तो एक मास का अधिक ही श्राद्ध होगा, अर्थात् जिस मास में यह प्राप्त होता है उसकी द्विरावृत्ति होती है। यदि मल में ही किसी की मृत्यु हो तो उससे जो बारहवां मास हो उस में प्रेत क्रिया को समाप्त करना चाहिये। और आभ्युदयिक तथा श्यामाकाग्रयण कृच्छ्र के साथ करना चाहिये।

काम्य कार्य का आरम्भ, वृषोत्सर्ग, पर्वोत्सव, उपाकृति, मेखला, चौल, माङ्गल्य, अग्न्याधान, उद्यापन कर्म, वेदव्रत, महादान, अभिषेक, वर्द्धमानक, इष्ट तथा पूर्त कर्म नहीं करना चाहिये। और किसी की विधि का विनाश न हो ऐसे कार्य इसमें करना चाहिये ॥२२–२६॥

---

१. ज्यो० नि० ८३ पृ० ४ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ८३ पृ० ५ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ८३ पृ० ६ श्लो० ।
४. ज्यो० नि० ८३ पृ० ७ श्लो० ।
५. ज्यो० नि० ८३ पृ० ८ श्लो० ।

[1]स्मृतिरत्नावल्याम्--

स्मृतिरत्नावली के आधार पर कर्त्तव्य

प्रवृत्तं मलमासात्प्राग्यत्काम्यमसमापितम् ।
आगते मलमासेऽपि तत्समाप्यमसंशयम् ॥ २७ ॥

स्मृति रत्नावली नामक ग्रन्थ में प्रतिपादित है कि जिस काम्य प्रयोग का आरम्भ मलमास से पूर्व ही हो गया है उसके दिनों की समाप्ति में जो होना चाहिये वह इस अधिक मास में विहित है। अर्थात् उसकी समाप्ति अवश्य ही संदेह रहित होकर करना चाहिये ॥२७॥

फलविवेके--

फल विवेक के आधार पर निषिद्ध कर्म

मलमासे तु यो यात्रां कुर्यान्मोहेन भूपतिः ।
पराजयो भवेत्तस्य कलहो जीवनाशनम् ॥ २८ ॥

फल विवेक नामक ग्रन्थ में लिखा है कि जो राजा मोह के वशीभूत होकर यात्रा इसमें करता है उसकी सेना के सिपाहियों का कलह के साथ नाश और राजा का पराजय होता है ॥२८॥

गर्गः--

गर्ग के मत से

सोमयागादिकर्माणि नित्यान्यपि मलिम्लुचे ।
तथैवाग्रयणाधानचातुर्मास्यादिकान्यपि ॥ २९ ॥
महालयाष्टकाश्राद्धोपाकर्माद्यपि कर्म यत् ।
स्पष्टमासे विशेषाढ्याविहितं वर्जयेन्मले ॥ ३० ॥

गर्गाचार्य जी का आदेश है कि सोमयागादि नित्य कर्म, आग्रयण, आधान, चातुर्मास्यादि, महालय, अष्टका श्राद्ध, उपाकर्मादि मल मास में नहीं करना चाहिये। ये सब स्पष्ट मास में ही होते हैं।

बृहस्पतिः--

बृहस्पति जी के आधार पर

अग्न्याधानप्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च ।
वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ॥ ३१ ॥
माङ्गल्यमभिषेकं च मलमासे विवर्जयेत् ॥ ३२ ॥

गुरु जी कहते हैं कि अग्न्याधान, प्रतिष्ठा. यज्ञ, दानव्रतादि, वेदव्रत, वृषोत्सर्ग, चूडाकर्म, यज्ञोपवीत, माङ्गल्य और अभिषेक मल मास में नहीं करना चाहिये ॥ ३१-३२ ॥

---

१. ज्यो० नि० ८३ पृ० १३ श्लो० ।

मरीचिः--

मरीचि जी के वचन से निषिद्ध कर्म

गृहप्रवेशगोदानास्थानाश्रयमहोत्सवम् ।
न कुर्यान्मलमासे तु संसर्पांहस्पतौ तथा ॥ ३३ ॥

ऋषि मरीचि जी का कहना है कि गृह प्रवेश, गोदान, स्थान का आश्रय, महोत्सव मलमास में तथा संसर्प व अंहस्पति मास में नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥

वसिष्ठः--

वसिष्ठजी के आधार पर निषिद्ध कार्य

वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठा यज्ञकर्म च ।
न कुर्यान्मलमासे तु संसर्पांहस्पती तथा ॥ ३४ ॥

ऋषि वसिष्ठजी का कहना है कि वापी, कुआ, तालाब आदि, प्रतिष्ठा, यज्ञादि कार्य मलमास व संसर्प, अंहस्पति (क्षय) में नहीं करना चाहिये ॥ ३४ ॥

मनुस्मृतौ--

मनुस्मृति के आधार पर कर्त्तव्य

[1]तीर्थश्राद्धं दर्शश्राद्धं प्रेतश्राद्धं सिपण्डनम् ।
चन्द्रसूर्यग्रहे स्नानं मलमासे विधीयते ॥ ३५ ॥

मनुस्मृति में कहा है कि तीर्थ श्राद्ध, दर्श श्राद्ध, प्रेतश्राद्ध, सपिण्डीकरण, चन्द्र-सूर्यग्रहणीय स्नान अधिक मास में करना चाहिये ॥ ३५ ॥

पराशरः--

पराशर मुनि के आधार पर कर्त्तव्य

[2]गर्भे वार्धुषिके भृत्ये प्रेतकर्मणि मासिके ।
सपिण्डीकरणे नित्ये नाधिमासं विवर्जयेत् ॥ ३६ ॥

ऋषि पराशर का कहना है कि अधिक मास में गर्भस्थ की मास संज्ञा, वर्द्धापन कार्य, सेवक की मास संज्ञा, प्रेत कार्य, मासिक कर्म, सपिण्डी करण और प्रतिदिन करने वाले कार्य का त्याग नहीं करना चाहिये ॥ ३६ ॥

कात्यायनस्मृतौ--

कात्यायनि स्मृति के आधार पर

[3]गर्भाधानादिका अन्नप्राशनान्ता मलिम्लुचे ।
कर्तव्या कर्णवेधादिक्रिया नान्या कदाचन ॥ ३७ ॥

---

१. ज्यो० नि० ८४ पृ० ।
२. ज्यो० नि० ८३ पृ० ।
३. ज्यो० नि० ८३ पृ० ।

कात्यायनि स्मृति में कहा है कि गर्भाधानादि संस्कार से अन्न प्राशन सस्कार के अन्त तक करना तथा कर्णवेधादि क्रिया अधिक मास में कभी नहीं करना चाहिये ॥ ३७ ॥

[1]गणपतिः--

गणपति के आधार पर

गर्भाधानादिसंस्कारे तथान्नप्राशने शिशोः ।
न तत्र गुरुशुक्रास्तमलमासादिदूषणम् ॥ ३८ ॥

गणपति का कथन है कि गर्भाधानादि संस्कार में, बालक के अन्न प्राशन समय में गुरु शुक्र अस्तत्व और मलमास जनित दोष नहीं होता है। क्योंकि इसमें काल की प्रधानता होने से उक्त कार्य मलमास में करना चाहिये ॥ ३८ ॥

अथाधिमासफलम्--

अब आगे किन २ मासों में अधिक मास पड़ने पर क्या २ फल होता है। इसे सूर्यपुराण के वाक्य से बताते हैं।

सूर्यपुराणे—

अधिक मासों में चैत वैशाख का फल

सुभिक्षं क्षेममारोग्यं चैत्रे तु सुहितप्रजाः ।
वृष्टिः सुभिक्षं वैशाखे ज्वरातीसारसम्भवाः ॥ ३९ ॥

सूर्यपुराण में कहा है कि यदि चैत महिना अधिक हो तो सुभिक्ष, कल्याण, नीरोगता और इच्छित शुभ कामनाओं से युत जनता होती है।

जब वैशाख मास अधिक मास होता है तो सुभिक्ष, सुन्दर वर्षा, ज्वर और अतिसार (पेचिस) की संभावना होती है ॥ ३९ ॥

जेठ व आषाढ का फल

रोगपीडा भवेज्ज्येष्ठे यज्ञदानादिकं बहु ।
यशः पुण्यं सुभिक्षं च द्विराषाढे महत् सुखम् ॥ ४० ॥

जब कि जेठ मास अधिक होता है तो रोग से कष्ट यज्ञ और अधिक दानादि होवे हैं।

जब कि आषाढ मास दो होते हैं तो पुण्य, यश, सुभिक्ष तथा अधिक सुख होता है ॥ ४० ॥

सावन व भादों का फल

सर्वकामसमृद्धिः स्यात् श्रावणे शूद्रवृद्धयः ।
विरोधः क्षत्रियाणां तु युद्धं भाद्रपदे विदुः ॥ ४१ ॥

---

१. मु० ग० १४ पृ० २० श्लो० ।

जिस वर्ष श्रावण मास मल मास होता है तो समस्त कामों को समृद्धि और शूद्रों की वृद्धि और भाद्रपद मास अधिक मास होने पर विरोध और क्षत्रियों में युद्ध होता है ॥ ४१ ॥

आश्विन व कार्तिक अगहन फागुन का फल

आश्विने परचक्रेण तस्करैः पीडिताः प्रजाः ।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं दुर्भिक्षं दक्षिणापथे ॥ ४२ ॥

राजानस्तत्र नश्यन्ति वृद्धिर्ब्राह्मणजातिषु ।
द्विकार्तिकं शुभं धान्यं सन्तुष्टाः सकलाः प्रजाः ॥ ४३ ॥

नानायज्ञाः प्रवर्तन्ते विप्रेभ्यो वृद्धिरुत्तमा ।
मार्गशीर्षे सुभिक्षं तु नीरोगाः सकलाः प्रजाः ॥ ४४ ॥

राजान्यत्वं सुभिक्षं च फाल्गुने जायते सुखम् ॥ ४५ ॥

जब आश्विन मास अधिक मास होता है तो दूसरे के शासन व चोरों से जनता दुःखी, सुभिक्ष, कल्याण, नीरोगता, दक्षिण में दुर्भिक्ष, राजाओं का नाश और ब्राह्मणों की वृद्धि होती है ।

जब कि दो कार्तिक मास होते हैं तो शुभ, अच्छे अनाज, समस्त जनता प्रसन्न, अनेक यज्ञ और ब्राह्मणों की वृद्धि होती है ।

जब कि अगहन मास मलमास होता है तो सुभिक्ष, समस्त जनता रोगों से हीन और फागुन मास अधिक होने पर राजा का परिवर्तन, सुभिक्ष और सुख होता है ॥ ४२ ४५ ॥

अथ कस्मिन् वर्षे कोऽधिमासो भविष्यतीति ज्ञानार्थमुक्तम् ।

मकरन्दे—

अब आगे किस वर्ष में अधिक मास होगा यह जानने के लिये जो विधि मकरन्द ग्रन्थ में वर्णित है उसे बताते हैं ।

मलमासानयन विधि

शाकः षड्रसभूपकै (१६६६) विरहितो नन्देन्दु (१९)
भिर्भाजितः शेषेऽग्नौ (३) च मधुः शिवे
(११) तदपरो ज्येष्ठेऽम्बरे (१०) चाष्टके (८) ।
आषाढो नृपते (१६) र्नभश्च शरके (५) विश्वे
(१३) नभस्यस्तथा बाहू (२)
चाश्विनसंज्ञको मुनिवरैः प्रोक्तोऽधिमासः क्रमात् ॥ ४६ ॥

मकरन्द ग्रन्थ में कहा है कि शक संख्या में १६६६ घटाकर उन्नीस का भाग देने पर यदि ३ शेष बचे तो चैत, ११ शेष में वैशाख, १० में जेठ, ८ में आषाढ, १६ में

सावन, १३, ५ में भाद्रपद, और २ शेष में आश्विन मास होता है। ऐसा श्रेष्ठ ऋषियों का कहना है ॥४६॥

अन्यः—

प्रकारान्तर से उक्त विधि ज्ञान

अष्टाश्विनन्दै (९२८) वियुते च शाके नवेन्दुभिर्भाजितशेषमङ्कम्।
खं (०) रुद्र (११) अष्टा (८) विषु (५) विश्व
(१३) युग्मं (२) चैत्रादितः सप्त सदाधिमासः ॥४७॥

अन्य का कहना है कि शक संख्या में ९२८ घटाकर अवशिष्ट में १९ का भाग देने पर यदि शेष ९ हो तो चैत्र, ० में वैशाख, ११ में जेठ, ८ में आषाढ, ५ में सावन, १३ में भादों, २ में आश्विन ये चैत से सात मास मल मास होते हैं ॥४७॥

अन्यस्तु—

पुनः प्रकारान्तर से

शशिमुनिविधुवह्निमि (३१७१) श्रिता शककाले, द्विगुणमनु
(१४३२) विहीनो नन्दचन्द्रै (१९) र्विभक्तः।
यदि भवति स शेषः सध्रुवोऽङ्को विलोक्य
गणकमुनिभिरुक्तं चात्र चैत्रादिमासः ॥ ४८ ॥

यदा षोडशके शेषे समासं च द्वितीयकम्।
आषाढमासकं कार्यं ब्रह्मसिद्धान्तभाषितम् ॥ ४९ ॥

किसी के मत में शक संख्या में ३१७१ जोड़कर १४३२ घटाकर १९ का भाग देने पर यदि शेष संख्या अधिमास की हो तो उसे देखकर अधिक मास का आदेश करना चाहिये। यहाँ ब्रह्मसिद्धान्त के मत से १६ शेष में आषाढ का ग्रहण करना चाहिये ॥४८–४९॥

अन्यः—

पुनः प्रकारान्तर

मेघेषुभू (१५१७) हीनशकोऽङ्कऽचन्द्रैः
(१९) शेषोऽधिमासा मधुतश्च सप्त।
रामो (३) महेशो (११) वसु (८)
खं (०) नृपोऽ (१६) र्थो (५) विश्वे
(१३) भुजः (२) कार्तिकपञ्चनष्टा ॥ ५० ॥

किसी का कहना है कि शक संख्या में १५१७ को घटाकर १९ से भाग देने पर ३ शेष में चैत, ११ में वैशाख, ८ में जेठ, १० में आषाढ. १६ में सावन, १३, ५ में भादों, २ में क्वार मलमास होता है ॥ कार्तिक से ५ मास अधिक नहीं होते हैं ॥५०॥

संवत्	अधिमास	संवत्	अधिमास	संवत्	अधिमास
१९५५	आश्विन	२०५८	आश्विन	२१६१	आश्विन
१९५८	आषाढ	२०६१	श्रावण	२१६२	चैत्र
१९६१	ज्येष्ठ	२०६४	ज्येष्ठ	२१६४	श्रावण
१९६४	चैत्र	२०६७	वैशाख	२१६७	आषाढ
१९६६	श्रावण	२०६९	भाद्रपद	२१७०	वैशाख
१९६९	आषाढ	२०७२	आषाढ	२१७२	भाद्रपद
१९७३	वैशाख	२०७५	ज्येष्ठ	२१७५	आषाढ
१९७४	भाद्रपद	२०७७	आश्विन	२१७८	वैशाख
१९७७	श्रावण	२०८०	श्रावण	२१८०	भाद्रपद
१९८०	ज्येष्ठ	२०८३	ज्येष्ठ	२१८१	फाल्गुन
१९८३	चैत्र	२०८५	कार्तिक	२१८३	श्रावण
१९८५	श्रावण	२०८६	चैत्र	२१८६	ज्येष्ठ
१९८८	आषाढ	२०८८	भाद्रपद	२१८९	वैशाख
१९९१	वैशाख	२०९१	आषाढ	२२२६	कार्तिक
१९९३	भाद्रपद	२०९४	ज्येष्ठ	२२२७	चैत्र
१९९६	श्रावण	२०९६	आश्विन	२२४५	कार्तिक
१९९९	ज्येष्ठ	२०९९	भाद्रपद	२२४५	फाल्गुन
२००२	चैत्र	२१०२	ज्येष्ठ	२२८३	}कार्तिक
२००४	श्रावण	२१०४	फाल्गुन		}फाल्गुन
२००७	आषाढ	२१०७	श्रावण	२३०२	}आश्विन
२०१०	वैशाख	२११०	आषाढ	२३६७	}फाल्गुन
२०१२	भाद्रपद	२११३	वैशाख	२३६८	आश्विन
२०१५	श्रावण	२११५	भाद्रपद	२४२३	चैत्र
२०१८	ज्येष्ठ	२११८	आषाढ	२५०८	कार्तिक
२०२०	आश्विन	२१२१	ज्येष्ठ	२५०९	आश्विन
२०२७	चैत्र	२१२३	फाल्गुन	२६४९	चैत्र
२०२३	श्रावण	२१२६	श्रावण	२६५०	}आश्विन
२०२६	आषाढ	२१२९	आषाढ		}चैत्र
२०२९	वैशाख	२१३२	वैशाख	२६६८	अश्विन
२०३१	भाद्रपद	२१३४	भाद्रपद	२७९०	फाल्गुन
२०३४	आषाढ	२१३७	आषाढ	२७९१	आश्विन
२०३७	ज्येष्ठ	२१४०	ज्येष्ठ		चैत्र
२०३९	आश्विन	२१४२	कार्तिक	२८०९	}आश्विन
२०३९	फाल्गुन	२१४२	फाल्गुन		}फाल्गुन
२०४२	श्रावण	२१४५	श्रावण	२९३१	आश्विन
२०४५	ज्येष्ठ	२१४८	आषाढ	२९३२	चैत्र
२०४८	वैशाख	२१५१	वैशाख	२९५०	}आश्विन
२०५०	भाद्रपद	२१५३	भाद्रपद		}फाल्गुन
२०५३	आषाढ	२१५६	आषाढ	२९९६	कार्तिक
२०५६	ज्येष्ठ	२१५९	ज्येष्ठ	२९९७	चैत्र

अन्यत्रापि--

और भी प्रकारान्तर

शाके भानु (१२) मिते गुण्यंभागमेकोन (१९) विंशतिः ।
चैत्राद्या गणनीयाश्च अधिमासाः प्रकीर्तिताः ॥ ५१ ॥

अन्य ग्रन्थान्तर में भी कहा है कि शक संख्या को १२ से गुणित करके १९ का देने पर शेष के आधार पर चैत आदि अधिक मास की गणना करना चाहिये ॥५१॥

[1]पञ्च मासास्तु वैशाखादधिकाः संव्यवस्थिताः ।
भवन्ति चाष्टभिर्वर्षैः भवैर्वाङ्कनिशाकरैः ॥ ५२ ॥
[2]तथैव फाल्गुनश्चैत्र आश्विनः कार्तिकोऽधिकः ।
एते क्विन्द्रैः (१४१) शराङ्गैश्च (६५) कदाचिद्गोकुवत्सरैः ॥ ५३ ॥
[3]मार्गपौषौ क्षयौ स्यातां कदाचित्कार्तिको भवेत् ।
अधिमासस्तदा ज्येष्ठे भवेन्नित्यं क्षयो यदा ॥ ५४ ॥
[4]क्षयात्प्रागधिमासः स्यान्नित्यं भाद्रपदत्रये ।
आश्विनोर्जौ सदा स्यातामादौ भाद्रपदः सकृत् ॥ ५५ ॥
यस्मिन्वर्षे कार्तिकक्षयो भवेत्तस्मिन्वर्षे ज्येष्ठोऽधिमासो भवेत् ।
अत्र ज्येष्ठशब्देन भाद्रपदो ज्ञेयः ॥

वैशाख से पांच मास अधिक ८ या ११ या १९ वर्ष में होते हैं। इसी प्रकार फागुन, चैत, आश्विन व कार्तिक मास भी अधिक मास १४१ वर्ष या ६५ या १६ वर्ष में होते हैं। अगहन व पूस मास प्रायः करके क्षय मास होते हैं तथा कभी कभी कार्तिक मास भी क्षय मास होता है। जब क्षय अगहन या पूस का होता है तो जेठ मास अधिक होता है। क्षय मास से पूर्व भादों से तीन मास अधिक होते हैं। प्रायः क्वार, कातिक ही अधिकतम होते हैं। कभी-कभी भादों मास भी अधिक होता है। जिस वर्ष कातिक का क्षय होता है तो उस वर्ष जेठ मास अधिक होता है। यहाँ जेठ शब्द से भादों का ग्रहण करना चाहिये ॥५२-५५॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे
बृहद्दैवज्ञरञ्जने अधिमासकथनं नाम एकोनविंशं
प्रकरणं समाप्तम् ॥ १९ ॥

इस प्रकार ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र पं० ज्योतिषी रामदीन कृत सङ्ग्रहात्मक बृहद्दैवज्ञरञ्जन ग्रन्थ का अधिमास कथन नामक उन्नीसवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥१९॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवेदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदकृता, एकोनविंशतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥१९॥

---

१. ज्यो० नि० ८२ पृ० ४ श्लो०। २. ज्यो० नि० ८२ पृ० ५ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ८२ पृ० ६ श्लो०। ४. ज्यो० नि० ८२ पृ० ७ श्लो०।

अथ विंशं क्षयमासप्रकरणं प्रारभ्यते।

अब आगे बीसवें प्रकरण में क्षयमास किसे कहते हैं और यह कब होता है तथा कितने दिन के बाद होता है एवं इसके होने पर क्या फल होता है और जनन मरण में कौन-सा मास ग्रहण करना चाहिये। इसे बताते हैं।

माहेश्वरः—

महेश्वर के आधार पर

[1]यत्र मासि रविसङ्क्रमद्वयं तत्र मासयुगलं क्षयाह्वयम्।
व्योमरामदिवसैर्भवेच्छुभे यज्ञकर्मणि च वर्जयेत्तु तम्॥ १॥

आचार्य महेश्वर का कहना है कि जिस चान्द्र मास में दो संक्रान्ति सूर्य की होती हैं तो एक मास का क्षय होता है। क्योंकि संक्रमण युक्त मास ही मास होता है। अतः दो संक्रान्ति होने के नाते एक का लोप होता है। यह द्विसंक्रणमयुक्त मास तीस दिन का होता है। इसमें शुभ यज्ञादि कार्य नहीं करना चाहिये॥ १॥

[2]भास्करीयसिद्धान्ते--

द्वितीय भास्कर के मत से गतागत कुछ क्षय मास

गतोब्ध्यद्रिनन्दै- (९७४) मिते शाककाले तिथीशै-
(१११५) भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः (१२५६)।
गजाद्र्यग्निभूमि (१३७८) स्तथा प्रायशोऽयं
कुवेदेन्दुवर्षैः (१४१) क्वचिद्गोकुभिश्च (१९)॥ २॥

श्रीभास्कराचार्य जो ने सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है कि ९७४ शक में क्षय हुआ था और १११५ व १२५६ और १३७८ शक में क्षय मास होगा। प्रायः यह क्षय मास १४१ वर्ष या १९ वर्ष के बाद हुआ करता है॥ २॥

विशेष—उक्त लक्षण १३७८ में नहीं घटता है॥ २॥

[3]स्मृतिरत्नावल्याम्--

स्मृति रत्नावली के आधार पर क्षय की परिभाषा व फल

एक एव यदा मासः सङ्क्रातिद्वयसंयुतः।
मासद्वयगतं श्राद्धं तस्मिन्नेव प्रशस्यते॥ ३॥
[4]क्षयमासो भवेद्यस्मिन्तस्मिन्वर्षेऽतिविग्रहम्।
दुर्भिक्षं वाथवा पीडा छत्रभङ्गं करोति वा॥ ४॥

---

२. सि० शि० म० अधि० ७ श्लो०। १. ज्यो० नि० ८४ पृ० १ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ८४ पृ० ३ श्लो०। ४. ज्यो० नि० ८४ पृ० ६ श्लो०।

[1]पक्षस्य मध्ये द्वितिथी विनष्टे महाहवो रौरवविग्रहं च ।
पक्षे विनष्टे नृपती विनष्टे मासक्षयश्चेत्क्षयती वसुन्धरा ।। ५ ।।

स्मृतिरत्नावली में कहा है कि एक ही चान्द्र मास यदि दो संक्रान्तियों से युक्त हो तो दोनों मासों के श्राद्ध उसी में करना चाहिये । क्योंकि एक का क्षय इसमें वर्णित है ।

जिस साल में क्षय मास होता है तो उस वर्ष अधिक लड़ाई, झंझट, दुर्भिक्ष अथवा पीडा या छत्र भंग होवा है । जिस पक्ष में दो तिथियों का क्षय होता है तो बड़ी लड़ाई, घनघोर द्वेषता, पक्ष नष्ट होने पर राजा का नाश और मास क्षय होने पर भूमण्डल ही क्षीणता से व्याप्त होता है ।। ३–५ ।।

[2]बृहत्कालनिर्णये —

बृहत्काल निर्णय के आधार पर तिथि वश मास ज्ञान

तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयेऽर्धे तथोत्तरः ।
मासाविति बुधैर्ज्ञेयौ क्षयमासस्य मध्यगौ ।। ६ ।।

बृहत्कालनिर्णय में कहा है कि तिथि के प्रथम अर्ध भाग में पहिला और उत्तरार्ध में २ रे का क्षयमास में इष्ट मास का ज्ञान करना चाहिये ।। ६ ।।

संवत्	क्षयमास	संवत्	क्षयमास	संवत्	क्षयमास
२०२०	मार्गशीर्ष	२१८०	पौष	२६४९	मार्गशीर्ष
२०३९	पौष	२२२६	मार्गशीर्ष	२६६८	
२०८५	मार्गशीर्ष	२२४५	पौष	२७९०	मार्गशीर्ष
२१०४	मार्गशीर्ष	२२८३	मार्गशीर्ष	२८०९	पौष
२१२९	मार्गशीर्ष	२३०२	मार्गशीर्ष	२९३१	मार्गशीर्ष
२१४२	कार्तिक	२३६७	मार्गशीर्ष	२९५०	पौष
२१६१	मार्गशीर्ष	२५०८	मार्गशीर्ष	२९९६	मार्गशीर्ष

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने
क्षयमासकथनं नाम विंशं प्रकरणं समाप्तम् ।। २० ।।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी रामदीन जी द्वारा रचित सङ्ग्रहात्मक बृहद्दैवज्ञरंजन ग्रन्थ का बीसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ।। २० ।।

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता नखप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ।।२०।।

---

१. ज्यो० नि० ८४ पृ० ७ श्लो० ।

२. ज्यो० नि० ८४ पृ० ४ श्लो० ।

अथ एकविंशं पक्षप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे इक्कीसवें प्रकरण में पक्ष किसे कहते हैं, पक्ष कितने होते हैं, उनके नाम क्या हैं, उनकी अन्य संज्ञा क्या होती है, इसे बताते हैं ।

तल्लक्षणमुक्तं सिद्धान्तसारे—

सिद्धान्तसार के आधार पर पक्ष लक्षण ज्ञान

सूर्येन्दुसङ्गमस्यैव विश्लेषसमयाद्बुधैः ।
शुक्लपक्षोऽथ राकान्तस्तदग्रे कृष्णपक्षकः ॥ १ ॥

सिद्धान्तसार में कहा है कि सूर्य चन्द्र सङ्गम या युति के ६ राशि अन्तर काल को पक्ष कहते हैं । अर्थात् युति से जब अन्तर ६ राशि का होता है तो एक पक्ष होता है । या यों समझिये सूर्य चन्द्रमा की युति अमा को होती है । इसमें चन्द्रमा अधिक गति शाली होने से सूर्य के आगे जब ६ राशि पर होता है तो प्रतिपदा से पूर्णिमा के अन्त तक शुक्ल और उसके अग्रिम सङ्गम तक कृष्ण पक्ष होता है । क्योंकि शुक्लता की वृद्धि इन्हीं दिनों में होने से इसे शुक्लपक्ष ही कहा जाता है । यह वृद्धि पूर्णिमान्त तक ही होती है । और कृष्ण पक्ष में अर्थात् पूर्णिमा के अनन्तर प्रतिपदा से ह्रास शुक्लत्व का होता है । अतः इसे कृष्ण पक्ष कहा जाता है । सारांश–शुक्ल की वृद्धि व ह्रास से शुक्ल कृष्ण संज्ञा प्रत्यक्ष है ॥ १ ॥

श्रीपतिः—

श्रीपति के आधार वश पक्ष का लक्षण

स्वनामनक्षत्रसमाननामा मासाश्च पक्षावपि देवपित्री ।
उक्तौ निरुक्तौ खलु शुक्लकृष्णौ शुभाशुभे कर्मणि तौ प्रशस्तौ ॥ २ ॥

आचार्य श्रीपति ने कहा है कि अपने नाम के नक्षत्र के समान ही मास होता है। इसे मास प्रकरण में बता दिया गया है । उस चान्द्रमास के प्रथम अर्धभाग को देव व शुक्ल तथा दूसरे अंश की पितृ व कृष्ण संज्ञा होती है । शुक्ल पक्ष में शुभ कार्य और कृष्ण पक्ष में अशुभ कार्य करना चाहिये ॥ २ ॥

अन्यः—

अन्य के मत से

[1]पूर्वापरे मासदले हि पक्षौ पूर्वापरौ तौ सितनीलसंज्ञौ ।
पूर्वस्तु दैवस्त्वपरश्च पैत्र्यः केचित्तु कृष्णेऽसितपञ्चमीतः ॥ ३ ॥
आदौ शुक्लः प्रवक्तव्यः केचित्कृष्णेऽपि मासके ॥ ४ ॥

---

१. ज्यो० सा० ७ पृ० ।

किसी का कथन है कि मास का पहिला आधा हिस्सा शुक्ल व देव और दूसरा आधा हिस्सा नील व पित्र्य संज्ञक होता है।

किसी के मत में शुक्ल पंचमी से कृष्ण चतुर्थी तक शुक्ल व अवशिष्ट कृष्ण पक्ष होता है। ऐसा कहते हैं।

अर्थात् शुक्ल पक्ष पंचमी से १५ दिन शुक्ल पक्ष और इसी प्रकार आगे १५ दिन कृष्ण पक्ष होता है ॥३-४॥

केचिन्मतेन—

अन्य किसी के मत से भिन्न लक्षण

कृष्णाष्टमीदलादूर्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमी भवेत्।
तावत्क्षीणशशी ज्ञेयः सम्पूर्णस्तदनन्तरम् ॥ ५ ॥

किसी २ आचार्य का कहना है कि कृष्णपक्ष की अष्टमी के अर्द्ध के अनन्तर से शुक्ल पक्ष की अष्टमी तक क्षीण शशि होता है और इसके बाद शुक्ल पक्ष होता है। सारांश यह है कि शुक्ल पक्ष की नवमी से कृष्ण पक्ष की अष्टमी तक चन्द्रमा पूर्ण होता है ॥ ५ ॥

अन्योऽपि—

अन्य मत से

कृष्णाष्टमी त्वष्टमिशुक्ल यावत्तावदपूर्णाः शशिनो वदन्ति।
केचिदूचुः कृष्णशिवाख्यतिथ्यादमान्तयावत् प्रवन्दति तावत् ॥ ६ ॥

किसी का कथन है कि कृष्ण पक्ष की अष्टमी से शुक्लाष्टमी तक क्षीण चन्द्रमा और अन्य के मत में कृष्णाष्टमी से अमान्त तक क्षीण शशि होता है। ऐसा कहना है ॥ ६ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने
पक्षकथनं नाम एकविंशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २१ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिषवेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित संग्रहात्मक बृहद्दैवज्ञरञ्जन ग्रन्थ का इक्कीसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥२१॥

इति श्रीमधुपुरीवास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधरचतुर्वेदकृता एकविंशतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥२१॥

अथ द्वाविंशं तिथिप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे बाईसवें प्रकरण में तिथि का क्या लक्षण होता है या यों समझिये तिथि की क्या परिभाषा होती है, तिथि की देह संज्ञा, तिथि के गुण दोष, स्वामी, इनमें विहित कार्य, किस तिथि में क्या करना चाहिये इत्यादि विषयों को बताते हैं ।

तल्लक्षणमुक्तं वसिष्ठसिद्धान्ते—

वसिष्ठ सिद्धान्त के आधार पर तिथि का लक्षण

सूर्यान्निर्गत्य यत्प्राचीं शशी याति दिने दिने ।
लिप्तादिसाम्ये सूर्येन्दु तिथ्यन्तेऽर्कांशकैस्तिथिः ॥ १ ॥

महर्षि वसिष्ठ ने अपने सिद्धान्त में कहा है कि सूर्य के साथ संयोग करके चन्द्रमा का प्रतिदिन का गमन तिथि संज्ञक होता है । जब कि सूर्य चन्द्रमा एक राशि में कलादि से समान होते हैं तो दर्श होता है । इसके अनन्तर अधिक गतिमान चन्द्रमा जब १२ अंश अधिक होता है तो एक तिथि होती है । या यों समझिये १२, १२ अंश के अन्तर से एक एक तिथि होती है ॥१॥

[1]सूर्यसिद्धान्ते—

सूर्यसिद्धान्त के आधार पर लक्षण

अर्काद्विनिस्सृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी ।
तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः ॥ २ ॥

सूर्यसिद्धान्त में कहा है कि दर्शान्त में चन्द्रमा, सूर्य से संयोग करके जब १२ अंश उस राशि से पूर्व दिशा को जाता है तो यह चान्द्रमान होता है । इस चान्द्रमान से १२ अंश जब सूर्य से चन्द्रमा आगे होता है तो यह तिथि नाम से व्यवहार में प्रसिद्ध होता है ॥ २ ॥

तथा विष्णुधर्मोत्तर में भी कहा है 'आदित्याद् विप्रकृष्टस्तु भागद्वादशकं यदा । चन्द्रमाः स्यात्तदा राम तिथिरित्यभिधीयते' ॥ २ ॥

और भी वृ० ज्यो० सा० में 'अमादि पौषमास्यन्ता या एव शशिनः कला । तिथयस्ताः समाख्याताः षोडशैव सुधीजनैः । तन्यन्ते कलया यस्मात्तस्मात्तास्तिथयः स्मृताः' (२८ पृ०) ॥ २ ॥

विशेष—यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि १२ अंश के अन्तर से एक तिथि क्यों होती है । इसका समाधान भी स्पष्ट है । एक चान्द्र दिन ही एक तिथि भोग काल होता है । तथा तिथियां एक मास में ३० होती हैं । इसलिये बारह राशियों के अंशों में

---

१. १३ अ० १२ श्लो० ।

=१२×३०=३६० में ३० का भाग देने पर एक तिथि का भोग काल १२ अंश ही सिद्ध होता है न्यूनाधिक भोग सिद्ध नहीं हो सकता ॥२॥

अथ तिथिप्रशंसा संहिताप्रदीपे[1]—

संहिता प्रदीप के आधार पर तिथि प्रशंसा

तिथिः शरीरं मन इन्दुवीर्यं विलग्नमात्मावयवास्तु भाद्याः।
शुद्धे शरीरेऽन्यतरद्विचिन्त्यं न क्वापि कुड्येन विनास्ति चित्रम् ॥ ३ ॥

संहिता प्रदीप में कहा है कि तिथि शरीर होता है। मन चन्द्रबल, लग्न आत्मा अन्य राश्यादि अवयव होते हैं। शरीर शुद्ध रहने पर ही चन्द्र, लग्नादि का विचार करना चाहिये। क्योंकि बिना भीत के चित्र निर्माण नहीं किया जा सकता। इसलिये शरीर के रहते हुए ही मन, चन्द्रादि का विचार करना चाहिये। अर्थात् प्रथम तिथि शुद्धि परमावश्यक है। यही इससे ज्ञात होता है ॥३॥

अन्य प्रशंसा

केनापि दोषेण तिथौ प्रदुष्टे दुष्यन्ति लग्नेन्दुबलर्क्षवाराः।
सौन्दर्यकान्त्यादिमुखा गुणाश्च नासाविहीनस्य भवन्त्यसाराः ॥ ४ ॥

यदि किसी प्रकार से तिथि में दोष उपस्थित हो तो, लग्न, चन्द्रबल, नक्षत्र, वारादि असार हैं अर्थात् सारहीन हैं। जैसे नासिका से रहित व्यक्ति को मुखादि सुन्दरता असार होती है ॥४॥

[2]सर्वत्र कार्येषु शुभाशुभेषु पृच्छन्ति लोके तिथिमेव पूर्वम्।
न क्वापि योगं करणं ग्रहं वा तस्मात्तिथेर्मुख्यतरत्वमुक्तम् ॥ ५ ॥

संसार में शुभाशुभ को पूछने वाले व्यक्ति तिथि को ही प्रथम पूँछते हैं। अर्थात् किसमें यह कार्य करूँ। न योगादि को पूँछता है इसलिये तिथि का प्राधान्य होता है ॥५॥

सदोष तिथि का ग्रहण

[3]वारर्क्षचन्द्रोदयशुद्धिलाभे तिथिः सदोषाऽपि भवेददोषा।
सौरभ्यकान्त्यादिगुणैः सरोजं सकण्टकत्वेऽपि यतो गुणाढ्यम् ॥ ६ ॥

जिस मुहूर्त में वार, नक्षत्र, चन्द्र और लग्न शुद्धि प्राप्त है तथा तिथि दोष से युक्त होने पर भी दोषमुक्त होती है। क्योंकि कमल में काँटे होने पर भी अपनी सौरभ्य द्युति के गुणों से काँटे से युक्त भी त्याज्य नहीं होता है ॥६॥

---

१. ज्यो० नि० ६४ पृ० ४ श्लोक।
२. ज्यो० नि० ३४ पृ० १ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ६१ पृ० ७ श्लो०।

प्रकारान्तर

[1]विशुद्धमृक्षं सबलं च लग्नं यथा प्रयत्नेन विलोकयन्ति ।
तथा न योगं करणं तिथिं वा दोषो गुणो वापि तिथेर्यतोऽल्पः ॥ ७ ॥

जैसे प्रायः लोग प्रयत्न पूर्वक शुद्ध नक्षत्र व बली लग्न को ही देखते हैं अर्थात् इनका विचार करते हैं। तथा योग, तिथि और करण के दोष गुणों का विचार नहीं करते हैं। क्योंकि तिथि की गुण संख्या अल्प होती है ॥७॥

तिथ्यादिगुण सङ्ख्या

[2]तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रं च चतुर्गुणम् ।
वारश्चाष्टगुणः प्रोक्तः करणं षोडशान्वितम् ॥ ८ ॥
द्वात्रिंशल्लक्षणो योगस्तारा: षष्टिगुणाः स्मृताः ।
चन्द्रः शतगुणः प्रोक्तो लग्नं कोटिगुणं स्मृतम् ॥ ९ ॥

कहा है कि तिथि का १ गुण, नक्षत्र का ४, वार का ८, करण का १६, योग का ३२, तारा का ६०, चन्द्रमा का १००, और लग्न का १ करोड गुण होता है। अतः लग्न शुद्ध होने पर समस्त दोषों का विलय होता है । ॥८–९॥

नारदः--

नारदजी का कथन

गुणस्य दोषस्य च तारतम्यं विचारणीयं विदुषा प्रयत्नात् ।
कश्चिद्गुणो दोषशतं निहन्ति दोषो गुणानामपि हन्ति लक्षम् ॥ १० ॥

श्री नारद जी का कहना है कि गुण व दोष इन दोनों का तारतम्य से विद्वान् को विचार करना चाहिये। क्योंकि कहीं पर गुण सैकड़ों दोषों का विनाश करता है तो कहीं पर एक दोष ही एक लाख गुण को नष्ट करता है। इसलिये शुभाशुभ का न्यूनाधिक देखकर फलादेश करना चाहिये ॥१०॥

पूर्वापराभ्यां सहितस्तिथिभ्यां निहन्ति दर्शो निचयं गुणानाम् ।
तमेव हित्वामृतसिद्धियोगस्तिथेरशेषानपि हन्ति दोषान् ॥ ११ ॥

जैसे अमावास्या तिथि अपनी पूर्ववाली वा उत्तर वाली तिथि से युक्त होती है तो ऐसी अमा गुणों के समूहों को नष्ट कर देती है। तथा एक अमृत सिद्ध योग तिथि के समस्त दोषों का नाशक होता है ॥११॥

[3]वृन्दावने--

विवाह वृन्दावनीय विशेष

अमातिथिः पार्श्वतिथिद्वयेन समं न माङ्गल्यमुपादधीत ।
लोकं पृणस्तत्र तिथेः प्रणेता तस्मान्न पीयूषवपुर्वपुष्मान् ॥ १२ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६१ पृ० ८ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ६१ पृ० २५ श्लो० ।
३. अ० ८ श्लो० २३ ।

विवाह वृन्दावन में कहा है कि अमावास्या तिथि यदि पूर्व व उत्तर तिथियों के साथ हो या यों समझिये यदि अमा तिथि चतुर्दशी या प्रतिपदा से युक्त हो तो शुभफल देने वाली नहीं होती है। क्योंकि तिथि को बताने वाला चन्द्रमा प्रशस्त अर्थात् सुन्दर शरीरधारी नहीं होता है ॥१२॥

स्यातामुभौ दोषगुणौ महान्तौ यदा तदा हीनतरो गुणः स्यात् ।
पुण्ये कृते पातकिनाधिकेन नोपैति पापीति जनापवादः ॥१३॥

जब कि दोष अधिक व गुणों का अबाहुल्य होता है तो अल्प गुण होता है। सारांश है कि जैसे अधिक पापी की अल्प पुण्य करने से शान्ति नहीं होती है। उसी प्रकार दोषों के बाहुल्य में अल्प गुण से दोष की निवृत्ति नहीं होती है किन्तु जनता में पुण्य करने पर और अधिक शिकायत होती है ॥१३॥

चण्डेश्वरः--

चण्डेश्वर के वाक्य से तिथियों के स्वामी

वह्निर्ब्रह्मा पार्वती विघ्नराजो नागः स्कन्दो भास्करस्त्र्यम्बकश्च ।
दुर्गा देवी चान्तकृद्विष्णुविष्णू कामश्चेशश्चेन्दुरेतैः पुराणैः ॥१४॥

आचार्य चण्डेश्वर ने कहा है कि प्रतिपदा आदि तिथि से प्रारम्भ कर पूर्णिमा व अमावास्या तक १५ तिथियों के स्वामी अग्नि, ब्रह्मा, पार्वती आदि देवता होते हैं।

जैसे प्रतिपदा तिथि का स्वामी या देवता अग्नि, द्वितीया का ब्रह्मा, तृतीया का पार्वती, चौथ का गणेश, पंचमी का सर्प, छठ का स्कन्द=कार्तिकेय, सप्तमी का सूर्य, अष्टमी का महादेव=शंकर, नवमी का दुर्गा जी, दशमी का यमराज, एकादशी का विश्वेदेव, द्वादशी का विष्णु भगवान, त्रयोदशी का कामदेव, चौदस का शिव भगवान और पूर्णिमा व अमा का स्वामी व देवता चन्द्रमा होता है ॥१४॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'क्रमात्तिथीशा ब्रह्माग्नी विरिञ्चिर्विष्णुशैलजे। विनायकयमौ नागचन्द्रौ स्कन्दोऽर्कवासवौ। महेशो वसवो नागदुर्गे दण्डधराह्वयः। शिवो विश्वे हरिरवी कामः शर्वकली ततः॥ शिवो विश्वे दर्शसंज्ञतिथीशाः पितरः स्मृताः। कामोभयोः केचिदुचुरधिपस्तु धनाधिपः'। (पृ० सं० ३४–३५) ॥१४॥

तथा वसिष्ठसंहिता में भी 'दिनाधिपा धातृविधातृविष्णुयमेन्दुषड्वक्त्रशचीश्वराश्च। वस्वाख्यनागौ परतश्चधर्मशिवार्ककामाः कलिविश्वसंज्ञौ। सदैव नष्टेन्दुतिथीश्वराः स्युर्नूनं च एते पितरः क्रमेण। धनाधिपं केचिदुशन्ति सन्तस्त्वधीश्वरं वै हरिकामतिथ्योः॥ वह्निर्विधाताऽद्रिसुता गणेशः सर्पः कुमारो दिनपो महेशः। दुर्गा यमो विश्वहरी च कामः शिवो निशीशश्च पुराणदृष्टः' (१२ अ० १–३ श्लो०) ॥१४॥

एवं बृहत्संहिता में भी 'कमलजविधातृहरियमशशाङ्कषड्वक्त्रशक्रवसुभुजगाः। धर्मेशसवितृमन्मथकलयो विश्वे च तिथिपतयः' (९९ अ० १ श्लो०) ॥१४॥

और भी मुहूर्तचिन्तामणि में 'तिथीशा वन्हिको गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः। शिवो दुर्गान्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी' (१ पृ० ३ श्लो०) ॥१४॥

श्रीपतिः--

श्रीपति का कथन

तिथौ हि दर्शसंज्ञके पितॄनुशन्त्यधीश्वरान्।
त्रयोदशीतृतीययोः स्मृतस्तु वीतपीपरैः ॥ १५ ॥

आचार्य श्रीपति का कहना है कि दर्श संज्ञा वाली तिथि का पितर स्वामी होता है। तेरस व तृतीया का वीत पीपर अधिक होता है ॥१५॥

ज्योतिःप्रकाशे--

अधीश्वरों की संज्ञा का प्रयोजन

[1]स्वस्य देवप्रतिष्ठायां मन्त्रसङ्ग्रहणे तथा।
पवित्रदमनारोपे ग्राह्यास्तस्य तिथिर्बुधैः ॥ १६ ॥

ज्योतिःप्रकाश ग्रन्थ में कहा है स्वकीय देवता की स्थापना, मन्त्रग्रहण, पवित्रार्पण में उसी देवता की तिथि ग्रहण करना चाहिये ॥१६॥

श्रीपतिस्तु--

श्रीपति के वाक्य से तिथियों की नन्दा आदि संज्ञा

[2]नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति सर्वास्तिथयः क्रमात्स्युः।
कनिष्ठमध्येष्टफलास्तु शुक्ले कृष्णे भवत्युत्तममध्यहीनाः ॥१७॥

आचार्य श्रीपति का कहना है कि प्रतिपद, षष्ठी, एकादशी (१ । ६ । ११) इन तिथियों का एक नाम नन्दा भी है। इसी प्रकार द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी (२ । ७ । १२) का एक अपर नाम भद्रा भी है। तथा तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी (३ । ८ । १३) का नाम जया, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी (४ । ९ । १४) का नाम रिक्ता और पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा या अमावास्या (५ । १० । ३० । १५) का नाम पूर्णा होता है।

ये दोनों पक्ष की तिथियाँ क्रम से शुक्ल व कृष्ण पक्ष में शुभाशुभ के लिये कही गई हैं। जैसे—शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से पंचमी तक अशुभ क्योंकि इन दिनों में चन्द्र शुक्लता अल्प ही बढ़ती है। इसलिये १—५ तिथि तक अशुभ और षष्ठी से शुक्ल पक्ष की से दशमी तक चन्द्रमा में शुक्ल की वृद्धि निरन्तर होने से अपूर्ण वृद्धि से मध्यम संज्ञा इनकी होती है।

पुनः एकादशी से पूर्णिमा तक चन्द्र में पूर्ण शुक्लत्व की वजह से ये एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा शुभ संज्ञक तिथियाँ शुक्ल पक्ष में होती हैं।

---

१. ज्यो० नि० ३५ पृ० ६ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ३५ पृ० ७ श्लो०।

इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की प्रतिपद से पञ्चमी तक अल्प शुक्लता नष्ट होने के नाते ये पाँचों शुभ और षष्ठी से दशमी तक पूर्ण शुक्ल का नाश न होने के कारण मध्यम और कृष्ण पक्ष की एकादशी से अमावास्या तक पूर्ण शुक्लत्व का ह्रास होने से इनकी अशुम संज्ञा वर्णित है ।। १७ ।।

नन्दादि की शुभाशुभता

[1]वृद्धिः सुमङ्गलपदा च बलाखला च लक्ष्मीवती
त्वथ यशा परतस्तु मित्रा ।
तद्वद्बला सुमहती तिथिरुग्रकर्मा
स्याद्धर्मिणो प्रतिपदादि तथैव नन्दा ।। १८ ।।
[2]क्रमाद्यशोवत्यपराजयोग्रा सौम्याह्वया पञ्चदशी तिथिश्च ।
फलानि नाम्ना सदृशानि तासां महर्षिभिर्नूनमुदाहृतानि ।। १९ ।।

आचार्य श्रीपति ने कहा है कृष्ण पक्ष की नन्दा वृद्धि कर्ता व अच्छा फल देने वाली भद्रा बली व दूषित, जया लक्ष्मीवती, रिक्ता यशदाता व पूर्णा मित्रा, शुक्ल पक्ष की नन्दा बली, सुमहती, भद्रा उग्र कर्मा, जया धर्मिणी, रिक्ता यशोवती, अपराजया, उग्रा और पूर्णा सौम्य संज्ञक होती है ।। इनके फल नाम सदृश ऋषियों ने बताये हैं ।। १८–१९ ।।

नन्दा तिथि व भद्रा तिथियों में विहित कार्य

[3]नन्दासु चित्रोत्सववास्तुतन्त्रक्षेत्रादि कुर्वीत तथैव नृत्यम् ।
विवाहभूषाशकटाध्वयाने भद्रासु कार्याण्यपि पौष्टिकानि ।। २० ।।

नन्दा तिथियों में चित्रोत्सव, वास्तु, तान्त्रिक कार्य, घर का आरम्भ और नाचने का कार्य करना चाहिये ।

भद्रा तिथि में विवाह, अलङ्कार सम्बन्धी कार्य, रेल से गमन या गाड़ी बनवाने का काम और पौष्टिक कार्य करना चाहिये ।। २० ।।

गर्गाचार्य जी ने कहा है 'नन्दा प्रतिपदित्युक्ता प्रशस्ता ध्रुवकर्मसु । ज्ञानस्य च समारम्भे प्रवासे च विगर्हिता ।। नाद्यादत्र तपः कुर्यात् पुष्टिसौभाग्यमेव च । जन्म चात्रोत्तमं विन्द्यात् स्वयंभूर्देवता यतः ।। भद्रेत्युक्ता द्वितीया तु शिल्पव्यायाभिनां हिता । आरम्भे भेषजानां च प्रवासे च प्रवासिनाम् । आवाहांश्च विवाहांश्च वास्तुक्षेत्रगृहाणि च । पुष्टिकर्मकरश्रेष्ठा देवता च बृहस्पतिः' (बृ० सं ६६ अ १ श्लो० भट्टो० टी० ।।२०।।

मुहूर्तगणपति में कहा है 'गीतं नृत्यं तथा क्षेत्रं चित्रोत्सवगृहादिकम् । वस्त्रालङ्कार-शिल्पादि नन्दास्वेतच्छुभं स्मृतम् ।। विवाहोपनयो यात्रा भूपशिल्पकलादिकम् । गजाश्वरथ-कृत्यं च भद्रातिथिषु सिद्धिदम्' (१ प्र० ७–८ श्लो०) ।। २० ।।

---

१. ज्यो० नि० ३५ पृ० ८ श्लो० । २. ज्यो० नि० ३५ पृ० ९ श्लो० ।
३. ज्यो० सा० १० पृ० १ श्लो० ।

जया व रिक्ता में विहित कार्य

[1]'जयासु सङ्ग्रामबलोपयोगिकार्याणि सिद्धयन्ति हि निर्मितानि ।
रिक्तासु विद्वद्द्विपबन्धघातविषाग्निशस्त्राणि च यान्ति सिद्धिम् ॥ २१ ॥

जया संज्ञक तिथियों में लड़ाई और बल के उपयुक्त कार्य सिद्ध होते हैं ।

रिक्ता संज्ञक तिथियों में विद्वत्ता, ब्राह्मण, बन्धन, अभिघात, जहर, अग्नि और शस्त्र सम्बन्धी कार्यों की सिद्धि होती है ॥ २१ ॥

तथा गर्गाचार्य जी ने कहा है 'बलेत्युक्ता तृतीया तु बलसम्पच्च कारयेत् । गोऽश्वकुञ्जरभृत्यानां दमनं मानसानि च ॥ कुर्यादासवकर्माणि बीजान्यपि च वापयेत् बलकर्मारभेतैव विष्णुं विन्द्याच्च दैवतम् ॥ रिक्ता प्रोक्ता चतुर्थी च क्षुद्रकर्म प्रयोजयेत् । गोग्रहं दारुणं कुर्यात् कूटशास्त्रं समारभेत् । अत्र सम्मारणं कुर्यादभिघाताश्रमाणि च । ध्रुवसेनावधं कुर्याद् भौमं विन्द्याच्च दैवतम्' । (बृ० सं० ६६ अ० १ श्लो० भट्टो०) ॥ २१ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'सैन्यसंग्रामशस्त्रादि यात्रोत्सवगृहादिकम् । भेषज्यं चैव वाणिज्यं सिद्धेत्सर्वं जयासु च । शत्रूणां बधबन्धादि विषशस्त्रनियोजनम् । कर्तव्यं तच्च रिक्तायां नैव सन्मङ्गलं क्वचित्' (१ प्र० ६-१० श्लो० ॥ २१ ॥

पूर्णा व दर्श (अमा) तिथि में विहित कार्य

[2]'पूर्णासु माङ्गल्यविवाहयात्रा सपौष्टिकं शान्तिककर्म कार्यम् ।
सदैव दर्शे पितृकर्म मुक्त्वा नान्यद्विदध्याच्छुभमङ्गलानि ॥ २२ ॥

पूर्णा संज्ञा वाली तिथियों में माङ्गल्य, विवाह, यात्रा, पौष्टिक और शान्ति कर्म करना चाहिये ।

अमावास्या में केवल पितृ कर्म को छोड़कर अन्य माङ्गलिक शुभ कार्य नहीं करना चाहिये ॥ २२ ॥

तथा गर्गाचार्य जी ने कहा है 'पूर्णा च पञ्चमी प्रोक्ता प्रशस्ता ध्रुवकर्मणि । नवान्नाग्रयणानां च शयनाशनवेश्मनाम् । जन्मक्षेत्रविभूषार्था व्यवहारौषधिक्रिया । प्रशान्तं पौष्टिकं कर्म सोमं विन्द्याच्च दैवतम्' । अमावास्या तु सिद्धार्था पितृयज्ञोऽत्र शस्यते देवकार्याणि कुर्वीत गोकुलं तु निवेशयेत् । पुरोहिताय वरुणं कुर्याद्यज्ञक्रियां तथा । बलि चैवोपहारांश्च पितरश्चात्र देवता:' (बृ० सं० ६६ अ० १ श्लो० भट्टो०) ॥ २२ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'व्रतबन्धविवाहादियात्रा राजाभिषेचनम् । शान्तिकं पौष्टिकं कर्म पूर्णासु खलु सिद्धयति' (१ प्र० ११ श्लो० ॥ २२ ॥

---

१. ज्यो० सा० १० पृ० २ श्लो० ।

२. ज्यो० सा० १० पृ० ३ श्लो० ।

कृष्ण पक्ष की निषिद्ध तिथि

षष्ठ्यष्टमी चतुर्थी चतुर्दशी द्वादशी च नवमी च।
कृष्णस्य तु पञ्चदशी शुभकर्मसु वर्जितास्तिथयः ।। २३ ।।

कृष्ण पक्ष की षष्ठी, अष्टमी, चतुर्थी, चौदस, द्वादशी, नवमी और अमावास्या में शुभ कार्य नहीं करना चाहिये ।। २३ ।।

तथा नारद जी ने कहा है । 'अष्टमी द्वादशी षष्ठी चतुर्थी च चतुर्दशी । तिथयः पक्षरन्ध्राख्या दुष्टास्ता अतिनिन्दिताः' । (ज्यो० नि० ३५ पृ०) ।। २३ ।।

अभीष्ट तिथि

एकादशी द्वितीया पञ्चमी सप्तमी तृतीया च।
प्रतिपद्दशमी चेष्टा त्रयोदशी पौर्णमासी च ।। २४ ।।

एकादशी, द्वितीया, पञ्चमी, सप्तमी, तृतीया, प्रतिपदा, दशमी, तेरस और पूर्णमासी शुभ होती है ।। २४ ।।

राका, अनुमति, कुहू, सिनीवाली परिभाषा

राकानुमत्याविति पौर्णमास्यौ रात्रीन्दुहृष्टेन्दुवशाद्भवेताम् ।
कुहूः सिनीवाल्यपि नष्टदृष्टे चन्द्रे स्मृते चासितपञ्चदश्यौ ।। २५ ।।

जिस पूर्णिमा के दिन चन्द्र अपनी परिपूर्ण किरणों से युक्त होता है । उसे राका कहते हैं ।

जिस पूर्णिमा में चन्द्रमा स्वकीय परिपूर्ण रश्मियों से युक्त नहीं होता उसे अनुमति कहते हैं ।

इसी प्रकार जिस अमावास्या में चन्द्रमा की कला पूर्ण रूप से क्षीण होती है उसे कुहू और जिसमें कुछ अवशिष्ट रश्मियां रहती हैं तो उसे सिनीवाली संज्ञा दी जाती है ।। २५ ।।

अमरकोष में कहा है 'कलाहीने सानुमतिः पूर्णे राका निशाकरे । सा दृष्टेन्दु सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहू ।' (का० ४ व० ८ श्लो०) ।। २५ ।।

तथा वसिष्ठसंहिता में 'दिवा चन्द्रवती राका पूर्णिमानुमती निशि । सिनीवाली दृष्टचन्द्रा नष्टचन्द्रा कुहूस्तथा' (१२ अ० ३०–३१ श्लो०) ।। २५ ।।

विशेष स्नान में निषिद्ध तिथि

[1]स्नातुर्जनस्य दशमी तनयान् त्रयोदश्यर्थं निहन्त्युभयमेतदपि द्वितीया ।
सप्तम्यनिन्दुनवमीषु च सम्पदित्सुः स्नायात्कदाचिदपि नामलकैर्मनुष्यः ।।२६।।

दशमी, त्रयोदशी, द्वितीया तिथि को उबटना वगैरह और सप्तमी, अमावास्या, नवमी के दिन आँवला से स्नान नहीं करना चाहिए ।

---

१. मु० चि० १ पृ० ७ श्लो० पी० टी० ।

दशमी में पुत्रों का नाश, तेरस में धन नाश तथा द्वितीया में उबटना से स्नान करने से पुत्र व धन दोनों का नाश होता है ॥ २६ ॥

[1]रामः—

कार्य विशेष में निषिद्ध तिथि

षष्ठ्यष्टमीभूतविधुक्षयेषु   नो सेवेत ना तैलपले क्षुरं रतिम् ।
नाभ्यञ्जनं विश्वदशद्विके तिथौ धात्रीफलैः स्नानममाद्रिगोष्वसत् ॥२७॥

मुहूर्तचिंतामणि नामक अपने ग्रन्थ में रामाचार्य ने कहा है कि षष्ठी तिथि में तेल, अष्टमी में मांस भक्षण, चौदस में हजामत और अमावास्या (पंचपर्वो) में मैथुन नहीं करना चाहिये ।

तथा द्वितीया, दशमी, और तेरस में उबटन नहीं लगाना चाहिये और सप्तमी, नवमी और अमावास्या को आँवले से स्नान नहीं करना चाहिये ॥ २७ ॥

नारद जी ने कहा है 'षष्ठ्यां तैलं तथाष्टम्यां मासं क्षौरं तिथौ कलेः । पूर्णिमादर्शयोर्नारीसेवनं परिवर्जयेत्' ॥

एवं रत्नमाला में भी 'षष्ठीषु तैलं पलमष्टमीषु क्षौरक्रिया नैव चतुर्दशीषु । स्त्रीसेवनं नष्टकलासु पुंसामायुः क्षयार्थं मुनयो वदन्ति ।

भट्टभास्कर ने कहा है 'सप्तम्यचन्द्रानवमीषु देहश्रीसन्ततीरामलकैर्नरस्य । स्नानं निहन्यात्`......(मु० चि० १ प्र० ७ श्लो० पी० टी० ॥ २७ ॥

और भी वसिष्ठसहिता में 'कामदुर्गान्तकविधि नष्टेन्द्वर्कदिनेषु च । सकृदामलकस्नानं सम्पत्पुत्रविनाशनम्' ॥ (१२ अ० २८ श्लो०) ॥ २७ ॥

अन्य भी काश्यप जी ने बताया है 'षष्ठ्यां दशप्रतिपदि द्वादश्यां च दिनक्षये । कुर्यादामलस्नानं दशम्यां मूढधीर्नरः । पुत्रनाशो भवेत्तस्य त्रयोदश्यां धनक्षयः । संपत्पुत्रक्षयस्तस्य द्वितीयायामसंशयम् ॥ सप्तम्यां च नवम्यां च अमायां कुलनाशनम् । (मु० चि० १ प्र० ७ श्लो० पी० टी०) ॥ २७ ॥

अपर भी ज्योतिर्निबन्ध में 'यः करोति दशम्यां च स्नानमामलकैः सह । पुत्रहानिर्भवेत्तस्य द्वितीयायां न संशयः ॥ अर्थपुत्रक्षयस्तस्य द्वितीयायां न संशयः । अमायां च नवम्यां च सप्तम्यां च कुलक्षयः पृ० ३५' ॥२७॥

परिहारमाह—

उक्त का परिहार

शनौ षष्ठ्यां स्मृतं तैलं महाष्टम्यां पलाशनम् ।
क्षौरं शुक्लचतुर्दश्यां दीपमाल्यां तु मैथुनम् ॥ २८ ॥

---

१. मु० चि० १ प्र० ७ श्लो० ।

यदि षष्ठी तिथि शनिवार को हो तो उसमें तेल लगाना, महाष्टमी में मांस भक्षण, शुक्ल पक्ष की चौदश में क्षौर (हजामत) और दिवाली के दिन स्त्रीसंगम करना चाहिये ॥२८॥

युगादि तिथियों का ज्ञान

अब आगे कौन-कौन सी तिथि किस-किस मास की युगादि होती है या यों समझिये कि किस युग का किस मास की तिथि में प्रारम्भ हुआ है। इसे बताते हैं।

युगादि मास तिथि

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां कृतं युगम्।
कार्तिके शुक्लपक्षे तु त्रेतायां नवमेऽहनि ॥ २९ ॥
भाद्रकृष्णत्रयोदश्यां प्रवृत्तिर्द्वापरस्य च।
माघे तु पौर्णमास्यां हि घोरं कलियुगं तथा ॥ ३० ॥

वैशाख मास शुक्ल पक्ष की तृतीया अर्थात् अक्षय तृतीया को कृत युगादि, कार्तिक शुक्ल नवमी अक्षय नवमी त्रेता युगादि, भादों कृष्ण तेरस को द्वापर युगादि और माघ पूर्णिमासी को कलियुगादि कहते हैं। या यों समझिये उक्त तिथियों में उक्त युग का प्रारम्भ होने से युगादि तिथि उनकी संज्ञा होती है ॥२९-३०॥

ऐसा ही वसिष्ठसंहिता में कहा है 'कृष्णा पञ्चदशी माघे नभस्ये च त्रयोदशी। शुक्ले तृतीया वैशाखे नवम्यूर्जे युगादयः' (१२ अ० ३६) ॥२९-३०॥

तथा नारदजी ने कहा है 'कार्तिके शुक्ल नवमी चादिः कृतयुगस्य सा। त्रेतादिर्माधवे शुक्ला तृतीया पुण्यसम्मिता। कृष्णा पञ्चदशी माघे द्वापरादिरुदीरिता। कल्यादिः स्यात् कृष्णपक्षे नभस्ये च त्रयोदशी' (मु० चि० १ पृ० ५७ श्लोक पीयू० टी०) ॥२९-३०॥

और भी मूहूर्तचिन्तामणि में 'युगाद्याः सिते, गोग्नीबाहुलराधयोर्मदनदर्शौ भाद्रमाघासिते' (मु० चि० १ प्र० ५७ श्लो०) ॥२९-३०॥

विशेष—उक्त श्लोक की व्याख्या में भादों तेरस को अमान्तमास होने के नाते पूर्णिमान्त मास के विचार से क्वार, तेरस को द्वापर का और माघपूर्णमास को त्रेता का फाल्गुन कृष्ण अमावास्या में कलियुग का आरम्भ हुआ था। ऐसा समझना चाहिये। क्योंकि ग्रन्थान्तर में इसी प्रकार से उपलब्धि है ॥२९-३०॥

दानादि महत्व

युगारम्भे तु तिथयो युगाद्यास्तेन कीर्तिताः।
तासु दत्तं हुतं किञ्चित्सर्वं बहुफलं भवेत् ॥ ३१ ॥

इन युगादि तिथियों में दान व यज्ञ अल्प करने पर भी अधिक फलदायी होता है। अर्थात् अल्प से अधिक का लाभ होता है ॥३१॥

स्पष्टार्थ सारिणी

चारों युग	सत युग	त्रेता युग	द्वापर युग	कलियुग
मास	कार्तिक	वैशाख	भाद्र	माघ
पक्ष	शुक्ल	शुक्ल	कृष्ण	कृष्ण
तिथि	९	३	१३	१५

अब आगे मन्वादि तिथियों को बताते हैं। अर्थात् किस तिथि में किस मन्वन्तर का प्रारम्भ होता है। या यों समझिये कि चौदह मन्वन्तर किन-किन तिथि में प्रारम्भ होते हैं। इसे बताते हैं।

मन्वादि तिथियों का ज्ञान

अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादश्यूर्जे मधौ तृतीया च।
भाद्रपदेऽपि तृतीया श्रावणमासे त्वमावास्या ॥ ३२ ॥
एकादशी च पौषे शुचि सितदशमी च सप्तमी माघे।
बहुलाष्टमी नभस्येऽथाषाढी कार्तिकी तद्वत् ॥ ३३ ॥
फाल्गुनसितपञ्चदशी चैत्री ज्येष्ठस्य पौर्णमासी च।
मन्वन्तरादय इमे चतुर्दशोक्ता बुधैः पुण्याः ॥ ३४ ॥

आश्विन शुक्ल नवमी १, कार्तिक शुक्ल द्वादशी २, चैत शुक्ल तृतीया ३, भादों शुक्ल तृतीया ४, श्रावण कृष्ण अमावास्या (पूर्णिमान्त से भादों की अमा) ५, पौष शुक्ल एकादशी ६, आषाढ शुक्ल दशमी ७, माघ शुक्ल सप्तमी ८, श्रावण कृष्ण ८ (भाद्रपद कृष्ण अष्टमी) ९, आषाढ शुक्ल पूर्णिमा १०, कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा ११, फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा १२, चैत्र शुक्ल पूर्णिमा १३ और जेठ शुक्ल पूर्णिमा की १४ मन्वादि संज्ञा होती है। या यों समझिये उक्त चौदह तिथियों में चौदह मन्वन्तरों का प्रारम्भ होता है। मनीषियों का कहना है कि ये बड़ी पुण्य तिथियाँ हैं ॥३२–३४॥

तथा वसिष्ठसंहिता में कहा है 'ईषे च शुक्ला नवमी कार्तिके द्वादशी तथा। मास-द्वये तृतीया स्याच्चैत्रे भाद्रपदेऽपि च ॥ अमावास्या श्रावणे च पौषस्यैकादशी सिता। आषाढे शुक्लनवमी माघमासे तु सप्तमी ॥ कृष्णाष्टमी नभस्ये च आषाढी कार्तिकी तथा। फाल्गुने चैत्रमासे च ज्येष्ठमासे च पूर्णिमा। मन्वन्तरादितिथयः पुण्याः स्युः पितृकर्मसु। तासु जप्तं हुतं दत्तं फलं भवति चाक्षयम्' (१२ अ० ३२-३५ श्लो०) ॥३२–३४॥

नारद जी ने भी कहा है 'द्वादश्यूर्जे शुक्लपक्षे नवम्याश्वयुजे सिते। चैत्रे भाद्रपदे चैव तृतीया शुक्लसंज्ञिता। एकादशी सिता पौषेऽप्याषाढे दशमी सिता। माघे च सप्तमी शुक्ला नभस्येऽप्यासिताष्टमी। श्रावणे मास्यमावास्या फाल्गुने मासि पूर्णिमा। आषाढे

कार्तिके मासि चैत्री ज्येष्ठस्य पूर्णिमा । मन्वादय: स्नानदानश्राद्धेष्वानन्त्य-पुण्यदा ॥३२–३४॥

अन्य भी मत्स्यपुराण में 'आश्वयुक् शुक्लनवमी कार्तिके द्वादशी तथा । तृतीया चैत्र-मासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥ श्रावणस्य त्वमावास्या पौषस्यैकादशी तथा ॥ आषाढ-स्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी । श्रावणस्याष्टमी कृष्णा आषाढस्यापि पूर्णिमा । फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी पञ्चदशी सिता: । मन्वन्तरादयश्चैता: दत्तस्याक्षय-कारिका:' ॥३२–३४॥

मुहूर्तचिन्तामणि में भी कहा है 'मन्वाद्यास्त्रितिथी मधौ तिथिरवो ऊर्जे शुचौ दिक्तिथी, ज्येष्ठऽन्त्ये च तिथिस्त्विषे नव तपस्यश्वा: सहस्ये शिवा । भाद्रेऽग्निश्च सिते त्वमाष्ट नभस: कृष्णे' (१ प्र० ५७ श्लो०) ॥३२–३५॥

स्पष्टार्थ सारणी

मास	चैत्र	ज्येष्ठ	आषाढ	सावन	भादों	क्वार	कातिक	पूस	माघ	फागुन
पक्ष	शुक्ल	शुक्ल	शुक्ल	कृष्ण	शुक्ल	शुक्ल	शुक्ल	शुक्ल	शुक्ल	शुक्ल
मन्वादि तिथि	३ १५	१५	१० १५	८ ३०	३	९	१२ १५	११	७	१५

विशेष—प्राय: मन्वादि युगादि तिथियों में स्नान, हवन, जप, तप एवं दान पुण्य करने की अनुमति शास्त्रीय ग्रन्थों से सिद्ध होती है । तथापि ग्रन्थान्तर में कहा है 'या चैत्रवैशाखसिततृतीया माघे च सप्तम्यथ फाल्गुनस्य । कृष्णे द्वितीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनिप्रमुख्यै:' (२९ अ० ३९ श्लो०) ।

अर्थात् वसिष्ठसंहिता में चैत्र और वैशाख शुक्ल तृतीया और माघ शुक्ल सप्तमी तिथि मन्वादि युगादि संज्ञक होने पर शुभ कार्यों ग्रहण करने की अनुमति प्राप्त है ॥३२–३४॥

अब आगे तिथि की वृद्धि व ह्रास यह कैसे प्रतीत होता है इसे श्रीपति जी के वाक्य से बताते हैं ।

श्रीपति:—

तिथि ह्रास व वृद्धि का ज्ञान

यत्रैक: स्पृशति तिथिद्वयावसानं
वारश्चेदवमदिनं तदुक्तमाद्यै: ।
य: स्पर्शाद्भवति तिथित्रयस्य चाह्नां
त्रिद्युस्पृक् स पुनरिदं द्वयं च नेष्टम् ॥ ३५ ॥

आचार्य श्रीपति जी ने कहा है जिस वार में दो तिथियाँ समाप्त होकर तीसरी का भी प्रारम्भ हो जाता है तो मध्यवर्तिनी का ह्रास हो जाता है। इसलिये तिथिक्षय संज्ञा हो जाती है। यह इष्ट नहीं होता है।

वृद्धि—जो तिथि तीन वारों में व्याप्त होती है उसे तिथि वृद्धि कहते हैं। इसकी त्रिद्युस्पृक संज्ञा होती है। इसमें मध्य वार वाली अशुभ होती है।

तिथ्यंशचक्रम् ।														
४	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८	५२	५६	६०
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१	२
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१	२	३
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१	२	३	४
६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१	२	३	४	५
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१	२	३	४	५	६
८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१	२	३	४	५	६	७
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१	२	३	४	५	६	७	८
१०	११	१२	१३	१४	१५	१	२	३	४	५	६	७	८	९
११	१२	१३	१४	१५	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
१२	१३	१४	१५	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
१३	१४	१५	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१४	१५	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
१५	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४

अब आगे इसी वाक्य की पुष्टि में ज्ञानमञ्जरी के वचन से तिथि ह्रास वृद्धि को बताते हैं।

ज्ञानमञ्जर्याम्—

पुनः उक्त का ही कथन

तिथित्रयं स्पृशत्येको वारश्चेदवमं हि तत्।
त्रिवारस्पृक् तिथिर्यत्र त्रिदिनस्पृक्च उच्यते ॥ ३६ ॥
कृतं यन्मङ्गलं तत्र त्रिषु स्पृगवमे दिने।
भस्मी भवति तत्क्षिप्तमग्नौ सम्यग् यथेन्धनम् ॥ ३७ ॥

जब कि एक वार में तीन तिथियों का समागम होता है तो मध्यवर्तिनी का ह्रास होने से तिथि क्षय होता है। और जबकि तीन वारों में एक तिथि होती है तो इसे त्रिवारस्पृक् तिथि कहते हैं। इसे वृद्धि तिथि कहते हैं॥

तिथि वृद्धि व ह्रास में किया हुआ शुभ कार्य नष्टहो जाता है। जैसे अग्नि में फेंका हुआ इंधन शीघ्र नष्ट होता है। इसलिये समस्त कर्मों में क्षय-वृद्धि दिन त्याज्य होता है ॥ ३६-३७ ॥

विशेष—अत्यधिक आवश्यक होने पर तिथि–क्षय–वृद्धि दिन में भी कार्य करने को कहा गया है। जैसे 'अवमाख्यं तिथेर्दोषं केन्द्रगो देवपूजित:। हन्ति यद्वत् पापचयं व्रतं द्वैवार्षिकं यथा'॥ इसलिये शुभ लग्न कुण्डली में यदि बृहस्पति केन्द्र में हो तो इस प्रकार की मुहूर्त लग्न में शुभ कार्य करना चाहिये ॥ ३६-३७ ॥

अब आगे क्षण तिथि किसे कहते हैं तथा इसका ज्ञान कैसे होता है। इसे नारद ऋषि के वाक्य से बताते हैं।

नारदः—

तिथेः पञ्चदशो भागः क्रमात्प्रतिपदादितः।
क्षणसंज्ञा तदर्द्धानि तासामर्द्धप्रमाणतः ॥ ३८ ॥

श्री नारद ऋषि का कहना है कि तिथि का पन्द्रहवाँ भाग क्षण तिथि, क्षण का आधा मुहूर्त और मुहूर्त के आधे हिस्से को एक घटी कहते हैं ॥ ३८ ॥

अब आगे ज्योतिषसार के वाक्य से सूर्य चन्द्र नक्षत्र वश तिथि ज्ञान को बताते हैं।

ज्योतिषसारे—

[1]मासभाच्चन्द्रभं यावद्गणयेत्तावदेव तु।
यावन्ति गणनाद्भानि तावन्त्यस्तिथयः क्रमात् ॥ ३९ ॥

ज्योतिषसार में कहा है कि मास नक्षत्र से अर्थात् सूर्य नक्षत्र से वर्तमान चन्द्र नक्षत्र तक गणना करके तत्तुल्य तिथि का ज्ञान होता है ॥ ३९ ॥

अब आगे कुछ विशेष तिथियों में जिन २ वस्तुएँ के सेवन से अनुकूलता होती है। उसे बताते हैं।

गुरुः—

दर्शे प्रतिपदष्टम्यां मांसस्त्रीतैलसेवनात्।
चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां चाण्डालो जायते नरः ॥ ४० ॥

बृहस्पति जी का कहना है कि अमावास्या, प्रतिपदा, अष्टमी, और चौदश में मांस, स्त्रीसेवन और तेल लगाने से मनुष्य चाण्डाल होता है ॥ ४० ॥

अब आगे प्रतिपदादितिथियों में किस वस्तु का परित्याग करना चाहिये। इसे ज्योतिषसार के वाक्य से बताते हैं।

---

१. प्र० ४ श्लो० १।

[1]कूष्माण्डं बृहतीफलानि लवणं वर्ज्यं तिलाम्लं तथा
तैलं चामलकं दिवप्रसवताशीर्षं कपालान्त्रकम् ।
निष्पावांश्च मसूरिकाफलमथो वृन्ताकसंज्ञं मधु
द्यूतं स्त्रीगमनं क्रमात्प्रतिपदादिष्वेवमाषोडश ॥ ४१ ॥

प्रतिपदा के दिन कूष्माण्ड (पेठा), द्वितीया में वृहती फल (भटकटैया) तृतीया में नमक, चतुर्थी में तिल, पञ्चमी में खटाई, षष्ठी में तैल, सप्तमी में आँवला, अष्टमी में नारियल, नवमी में लौकी, दशमी में पडोल, एकादशी में दलिया, द्वादशी में मसूर, तेरस में वेंगन, चौदस में सहत, पूर्णिमा में जुआ और अमावास्या के दिन स्त्री संसर्ग वर्जित होता है ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे
बृहद्दैवज्ञरञ्जने तिथिकथनं नाम द्वाविंशं प्रकरणं
समाप्तम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित संग्रहात्मक वृहद्दैवज्ञरञ्जन ग्रन्थ का बाईसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ २२ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधरचतुर्वेदकृता द्वाविंशतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका समाप्ता ॥ २२ ॥

---

१. ज्यो० सा० ४ प्र० ७ श्लो० ।

अथ त्रयोविंशं वारप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे तेईसवें वार प्रकरण में किस मान से इसकी गणना की जाती है और इनकी शुभ, अशुभ, चर, ध्रुवादि संज्ञा व प्रयोजन, उपादेयता, कर्तव्याकर्तव्य इत्यादि विषयों को बताते हैं ।

प्रथम पुलस्तिसिद्धान्त से वार के आनयन में कौन सा मान सहायक होता है इसे बताते हैं ।

तन्मानलक्षणमुक्तं पुलस्तिसिद्धान्ते—

अथ सावनमानेन वाराः सप्त प्रकीर्तिताः ।
ते चार्कोदययोरेव विवरे तु समाः स्मृताः ॥ १ ॥

पुलस्तिसिद्धान्त में बताया है कि सावन मान से वार का आनयन होता है और वे सात ही होते हैं । एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक एक-एक वार होता है । क्योंकि दो उदयों के मध्यवर्ती काल को सावन दिन कहा जाता है और यह भी है कि सातों समान होते हैं ॥ १ ॥

तथा वसिष्ठसंहिता में कहा है 'प्रभाकरस्योदयनात् पुरे स्याद् वारप्रवृत्तिर्दशकन्धरस्य । चरार्द्धदेशान्तरनाडिकाभिरूर्ध्वं तथाधोऽप्यपरत्र तस्मात्' (१३ प्र० ११ श्लो०) ॥ १ ॥

और भी ज्योतिनिर्बन्ध में 'वारप्रवृत्ति मुनयो वदन्ति सूर्योदयाद्रावणराजधान्याम् । ऊर्ध्वं तथाऽधोऽप्यपरत्र तस्माच्चरार्धदेशान्तरनाडिकाभिः' (पृ० ३७ श्लो० १७) ॥ १ ॥

[1]वसिष्ठोऽपि—

वसिष्ठसंहिता के आधार वश

वारप्रवृत्तिविज्ञानं क्षणवारार्थमेव हि ।
अखिलेष्वन्यकार्येषु दिनानि उदयाद्भवेत् ॥ २ ॥

वसिष्ठसंहिता में बताया है कि वारप्रवृत्ति विज्ञान क्षण विज्ञान के लिये है । किन्तु अन्य समस्त कार्यों में दो उदयों के बीच के समय को मानकर कार्य १ वार की गणना से करना चाहिये ॥ २ ॥

वारः स्वदेशार्कोदयादिति वसिष्ठसिद्धान्ते—

वसिष्ठसिद्धान्त में भी वार की गणना दो उदयों के मध्य को मानकर की है । उसे बताते हैं ।

---

१. व० सं० १३ प्र० १३ श्लो० ।

राश्यादिसाम्यं मासान्ते पक्षान्तेंऽशादिकौ समौ ।
सर्वेषामेव मानानां दिनमर्कस्य दर्शनात् ॥ ३ ॥

वसिष्टसिद्धान्त में कहा है कि राशि की समता अर्थात् सूर्य चन्द्रमा मास के अन्त में जब एक राशि में होते हैं तो मासान्त होता है। और पक्ष के अन्त में अंशों की समता होती है तथा समस्त वारों की गणना सूर्य के उदय से होती है ॥ ३ ॥

तेषां नामानि—

वारों के नाम

रविः सोमो मङ्गलश्च बुधो जीवः सितः शनिः ।
एतेषां नामतो वाराः सप्तैव कथिताः पुरा ॥ ४ ॥

अब उनके नामों को बताते है। सूर्य १, चन्द्रमा २, मंगल ३, बुध ४, गुरु ५, शुक्र ६ और ७ वाँ शनिवार होता है। ऐसा पहिले कहा हुआ है ॥ ४ ॥

श्रीपतिः—

वारों की शुभ, पाप संज्ञा

शुक्रेन्दुबुधजीवानां वाराः सर्वत्र शोभनाः ।
भानुभूसुतमन्दानां शुभकर्मसु केष्वपि ॥ ५ ॥

गुरु, चन्द्रमा, बुध, शुक्र इनकी शुभ और सूर्य, मंगल व शनि की अशुभ संज्ञा होती है। किन्हीं कार्यों में पाप ग्रहों की उपादेयता होने से पापग्रह भी शुभ होता है ॥ ५ ॥

एवं वसिष्ठसंहिता में कहा है 'पूर्णेन्दुशुक्रज्ञसुरेज्यवाराः प्रोक्तेषु कार्येष्वपि शोभनाः स्युः। ये सूर्यसूर्यात्मजभौमवाराः प्रोक्तेषु कार्येष्वपि शोभनाः स्युः' (१३ प्र० १६ श्लोक) ॥५॥

अन्य भी ज्योतिर्निबन्ध में 'सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः। भानुभौमशनिवासरेषु तु प्रोक्तमेव खलु कर्म सिध्यति' (३७ पृ० १५ श्लो०) ॥५॥

रविवार में विहित कार्य

[1]राजाभिषेकोत्सवयानसेवागोवह्निमन्त्रौषधिशस्त्रकर्म ।
सुवर्णताम्रोर्णिकचर्मकाष्ठसङ्ग्रामपण्यादि रवौ विदध्यात् ॥ ६ ॥

आचार्य श्रीपति का कहना है कि रविवार में राजा का अभिषेक, उत्सव, यान, सेवा, गो, वन्हि (अग्नि) मन्त्र, औषधि, शस्त्र, सुवर्ण, तांबा, ऊन, चमड़ा, काष्ठ, युद्ध और व्यापार कार्य करना चाहिये ॥६॥

---

१. ज्यो० सा० १३ पृ० १ श्लो० ।

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'राजाभिषेकोत्सवमङ्गलाश्च सेवाहवस्त्वौषधिचित्रकर्म। धातुक्रियाभूषणलाक्षचर्मधान्योर्णकोष्ठादि रवौ विदध्यात्' (१३ प्र० १ श्लो०) ॥६॥

एवं ज्योतिर्निबन्ध में नारद जी का वाक्य 'नृपाभिषेकमाङ्गल्यसेवायानास्त्रकर्म यत्। औषधाहवधान्यादि विधेयं भानुवासरे' (३६ पृ० ६ श्लो०) ॥६॥

अन्य भी मुहूर्तगणपति में 'राज्याभिषेकमाङ्गल्यं यानमन्त्रास्त्रमौषधम्। रणः पण्याग्निसेवाद्यं सुवर्णादिरवौ स्मृतम्' (३प्र० ५ श्लोक) ॥६॥

सोमवार में विहित कर्म

[1]'शङ्खाब्जमुक्तारजतेक्षुभोज्यस्त्रीवृक्षकृष्यम्बुविभूषणाद्यम्।
गीतक्रतुक्षीरविकारशृङ्गीपुष्पाक्षरारम्भणमिन्दुवारे ॥ ७ ॥

सोमवार के दिन शङ्ख, कमल, मोती, चांदी, ईख, भोजन सम्बन्धी, स्त्री, वृक्ष, खेती, जल, भूषण, गान, यज्ञ, दूध, विकार, शृंगी, पुष्प और विद्यारम्भ कार्य करना चाहिये ॥७॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'मुक्ताम्बुशङ्खस्फटिकेक्षुरौप्यक्षीरोषधोद्यानकृषिक्रियाद्यम्। स्त्रीनृत्यगीताखिलवास्तुकर्म शशाङ्कवारे रविवासरोक्तम्' (१३ प्र० २ श्लो०) ॥७॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में 'शङ्खमुक्ताम्बुरजतवृक्षेक्षुस्त्रीविभूषणम्। पुष्पगीतक्रतुक्षीर-कृषिकर्मेन्दुवासरे' (३६ पृ०) ॥७॥

अन्य भी मुहूर्तगणपतिमें 'शङ्खमौक्तिकरौप्यादिभूषा गीतं क्रतुः कृषिः। भोज्यं स्त्रीक्षुविकाराम्भः कर्मोक्तं सोमवासरे' (३ प्र० ६ श्लो०) ॥७॥

मङ्गलवार में विहित कार्य

[2]भेदानृतस्तेयविषाग्निशस्त्रबन्धाभिघाताहवशाठ्यदम्भान्।
सेनानिवेशाकरधातुहेमप्रवालकार्यादि कुजेऽह्नि कुर्यात् ॥ ८ ॥

भौमवार के दिन भेद, झूठ, चोरी, विष (जहर), अग्नि, शस्त्र, बन्धन, अभिघात (मारण), युद्ध, कपट, दंभ, सेना रखना, खान, धातु, सोना, मूँगा और खून सम्बन्धी या लाल कार्य करना चाहिये ॥८॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'विषाग्निशस्त्राहवभेदरम्भस्तेयानृतोग्रा वधबन्ध कर्म। छेदप्रवालाखिलधातुकर्म सदाभिचारं च कुजेऽह्नि कुर्यात्' (१३ प्र० ३ श्लो०) ॥८॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में भी 'विषाग्निबन्धनस्तेयसन्धिविग्रहकर्षणम्। धात्वाकर-प्रवालादि कर्म भूमिजवासरे' (३६ पृ०) ॥८॥

अन्य भी मुहूर्तगणपति में 'भेदस्तेयानृतं शाठ्यं विषशस्त्राग्निघातकम्। प्रवालकर-हेमाद्यमेतत् कुर्यात् कुजेऽहनि' (३प्र० ७ श्लो०) ॥८॥

---

१. ज्यो० सा० १३ पृ० २ श्लो०।

२. ज्यो० सा० १३ पृ० ३ श्लो०।

बुधवार में विहित कार्य

[1]नैपुण्यपण्याध्ययनं कलाश्च शिल्पादिसेवालिपिलेखनानि ।
धातुक्रियाकाञ्चनयुक्तिसन्धिव्यायामवादाश्च बुधे विधेयाः ॥ ९ ॥

बुधवार के दिन चतुरता सम्बन्धी, पुण्य, पढ़ना, कला, शिल्पशास्त्र (कारीगरी) सेवा, लिपि, लेखन, धातु सम्बन्धी, सोना, युक्ति, मित्रता, व्यायाम और वाद विवाद कार्य करना चाहिये ॥९॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'नैपुण्यवाहाहवशिल्पसन्धिव्यायामपण्याखिललेखनाद्यम्‌ । धातुक्रियाविद्रुमभूषणाद्यं बुधेऽह्निकार्यं गणितप्रपञ्चम्‌' (१३ प्र० ४ श्लो०) ॥९॥

एवं ज्योतिर्निबन्ध में भी 'नृत्यशिल्पकलागीतलिपिभूरससङ्ग्रहम्‌ । विवादधातु-सङ्ग्रामकर्म कुर्याद्विदोऽहनि' (३७ पृ०) ॥९॥

अन्य भी मुहूर्तगणपति में 'कालनैपुण्यवाणिज्यं सन्धिव्यायामसेवनम्‌ । वेदाध्ययन-लेखादि विदध्याद्बुधवासरे' (३ प्र० ८ श्लो०) ॥९॥

गुरुवार में विहित कार्य

[2]धर्मक्रिया पौष्टिकयज्ञविद्यामाङ्गल्यहेमाम्बरवेश्मयात्रा ।
रथाश्वभैषज्यविभूषणाद्यं कार्यं विदध्यात्सुरमन्त्रिणोऽह्नि ॥ १० ॥

गुरुवार के दिन धार्मिक, पौष्टिक, यज्ञ, विद्या, माङ्गल्य, सुवर्ण, वस्त्र, घर, यात्रा, रथ, घोड़ा, औषध और आभूषण सम्बन्धी कार्य करना चाहिये ॥१०॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'यज्ञक्रियामङ्गलपुष्टिविद्याहेमाम्बरोद्यानविभूषणाद्यम्‌ । भैषज्यशास्त्राहवनृत्यगीतचरस्थिराद्यं सुरपूज्यवारे' (१३ प्र० ५ श्लो०) ॥१०॥

एवं ज्योतिर्निबन्ध में भी 'यज्ञपौष्टिकमाङ्गल्यस्वर्णवस्त्रादिभूषणम्‌ । वृक्षगुल्मलता-यानकर्म देवेज्यवासरे' (३७ पृ०) ॥१०॥

अन्य भी मुहूर्तगणपति में 'यज्ञोधर्मक्रियाविद्या माङ्गल्यं पौष्टिकं गृहाः । यात्राभैषज्य-भूषाद्या विधेया गुरुवासरे' (३ प्र० ६ श्लो०) ॥१०॥

शुक्रवार में विहित कार्य

[3]स्त्रीगीतशय्यामणिरत्नगन्धं वस्त्रोत्सवालङ्करणादि कर्म ।
भूपण्यगोकोशकृषिक्रियाश्च सिध्यन्ति शुक्रस्य दिने समस्तम्‌ ॥ ११ ॥

शुक्रवार के दिन स्त्रियों का गान, खाट, मणि, रत्न, गंध, वस्त्र, उत्सव, अलङ्कार, भूमि, व्यापार, गाय, द्रव्य, खजाना और कृषि सम्बन्धी कार्य करना चाहिये ॥११॥

---

१. ज्यो० सा० १३ पृ० ४ श्लो० ।
२. ज्यो० सा० १४ पृ० ५ श्लो० ।
३. ज्यो० सा० १४ पृ० ६ श्लो० ।

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'स्त्रीगीतमुक्ताफलवज्ररौप्यसुगन्धशय्याभरणाम्बराद्यम्। उद्यानकृष्यम्बुलतास्त्रपण्यमाङ्गल्यपुष्पादिसितेऽह्नि कुर्यात्' (१३ प्र० ६ श्लो०) ॥११॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में भी 'नृत्यगीतादिवादित्रस्वर्णस्त्रीरत्नभूषणम्। भूपण्योत्सवगोधान्यवाजिकर्म भृगोर्दिने' (३७ पृ०) ॥११॥

अन्य भी मुहूर्तगणपति में 'गीतं स्त्रीरत्नशय्यादि वस्त्रं भूषोत्सवं क्रियाः। भूपण्यकृषिकोशाद्याः सर्वे सिद्ध्यन्ति मार्गवे' (३प्र० १० श्लो०) ॥११॥

शनिवार में विहित कार्य

'लोहाश्मसीसत्रपुरस्त्रदासपापानृतस्तेयविषासवाद्यम् ।
गृहप्रवेशो द्विपबन्धदीक्षा स्थिरं च कर्मार्कसुतेऽह्नि कुर्यात् ॥ १२ ॥

शनिवार के दिन लोहा, पत्थर, जस्ता, पीतल, शस्त्र, नौकर, पाप, झूंठ, चोरी, जहर, आसव, गृह प्रवेश, हाथी, बन्धन, दीक्षा और स्थिर काम करना चाहिये ॥१२॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'समस्तवस्तुग्रहणाश्मसीसदीक्षात्रपुस्थैर्यगृहादिकर्म। खरोष्ट्रगोहेमतुलायदासपापानृताद्यं रविपुत्रवारे' (१३ प्र० ७ श्लो०) ॥१२॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में भी नारद जी का वचन 'त्रपुसीसायसाश्मादि विषपापासवानृतम्। स्थिरकर्माखिलं वास्तुसङ्ग्रहः सौरिवासरे' (३७ पृ०) ॥१२॥

अन्य भी मुहूर्तगणपति में 'गृहप्रवेशदीक्षादि गजबन्धः स्थिरक्रिया। दासशस्त्रानृतं स्तेयमेतत्सिद्ध्येच्छनैश्चरे' (३ प्र० १: श्लो०) ॥१२॥

अब आगे वारों की स्थिर, चर, उग्र, मिश्रादि संज्ञा को बताते हैं।

स्थिरादि संज्ञा

[२]रविः स्थिरः शीतकरश्चरश्च महीज उग्रः शशिजश्च मिश्रः।
लघुः सुरेज्यो भृगुजो मृदुश्च शनिश्च तीक्ष्णः कथितो मुनीन्द्रैः ॥१३॥

रवि की स्थिर, चन्द्र की चर, भौम की उग्र, बुध की मिश्र, गुरु की लघु, शुक्र की मृदु और शनिवार की तीक्ष्ण संज्ञा मुनीन्द्रों ने किया है ॥१३॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'सूर्यः स्थिरः शीतकरश्चरात्मा धराज उग्रः शशिजो विमिश्रिः। देवेन्द्रपूज्यो लघुरिन्द्रशत्रुः पूज्यो मृदुस्तीक्ष्णतनुश्च सौरिः' (१३ प्र० ८ श्लोक) ॥१३॥

अन्य भी मुहूर्तगणपति में 'स्थिरः सूर्यश्चरश्चन्द्रो भौमश्चोग्रो बुधः समः। लघुर्जीवो मृदुः शुक्रः शनिस्तीक्ष्णः समीरितः' (३ प्र० ४ श्लो०) ॥१३॥

---

१. ज्यो० सा० १४ पृ० ७ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ३६ पृ० ३ श्लो०।

वारों की उपादेयता

शस्तो हि लाक्षारसरञ्जनेऽर्को माञ्जिष्ठकौसुम्भकरागयोश्च ।
महीसुतः काञ्चनभूषणेषु पतङ्गसूनुः खलु लोहकृत्ये ॥ १४ ॥

लाख, मजीठ व कौसुम्भ रंग काम में सूर्य, सोने के गहनों में मङ्गल और लोह काम में शनि शुभ माना जाता है ॥ १४ ॥

गर्गः—

गर्ग वाक्य से उपादेयता

[1]लाक्षाकौसुम्भमाञ्जिष्ठरोगकाञ्चनभूषणे ।
प्रशस्तौ भौममार्तण्डौ रविजो लोहकर्मणि ॥ १५ ॥

गर्गाचार्य जी का कथन है कि लाख, माञ्जिष्ठ, कौसुम्भ राग और सुवर्ण के आभूषणों के कार्यों में सूर्य व भौम के वार शुभ फल दाता होते हैं। और शनिवार के दिन लोहे का कार्य करने पर शुभ फल की प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥

पुनः प्रकारान्तर

[2]सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः ।
भानुभौमशनिवासरेषु तु प्रोक्तमेव खलु कर्म सिध्यति ॥ १६ ॥

सोम, बुध, गुरु और शुक्रवार समस्त कार्यों में सिद्धि देने वाले होते हैं। तथा सूर्य, मंगल, शनिवार में जो कार्य कथित हैं उन्हीं को करना चाहिये ॥ १६ ॥

शुभाशुभ वार ज्ञान

क्षीणेन्दुसौरिकुजवक्रिदिने न शस्तं
शस्तं च कर्म यदि चोपचयस्थिताः स्युः ।
अस्तङ्गतस्य विकृतस्य च नेष्टमह्नि
सर्वं प्रशस्तमिह शेषदिनेश्वराणाम् ॥ १७ ॥

क्षीणचन्द्र का दिन और शनि व मंगल के वक्री होने के दिन शुभ नहीं होते है। तथा कार्य लग्न से उपचय स्थानों में उक्त अवस्था में होने पर शुभ फल दायी होते हैं।

तथा अस्त व विकार से युक्त वार के दिन अभीष्ट नहीं होते अर्थात् अशुभ होते हैं। शेष वार शुभ होते हैं ॥ १७ ॥

श्रीचण्डेश्वर जी के वाक्य से वारों की अशुभता तथा करणों का विफलत्व कब होता है, इसे बताते हैं।

---

१. ज्यो० नि० ३७ पृ० २२ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ३७ पृ० १५ श्लो० ।

चण्डेश्वरः—

न वारदोषाः प्रभवन्ति रात्रौ विशेषतो भौमशनैश्चराणाम् ।
मध्याह्नकालादुपरि प्रवृत्ताः फलं न दद्युः करणानि चैवम् ॥ १८ ॥

श्री आचार्य चण्डेश्वर जी ने कहा है कि वार का दोष रात्रि में नहीं होता है। विशेष कर मंगल और शनि का नहीं होता है। तथा मध्याह्न काल से जिस अशुभ करण की सत्ता रहती है तो वह भी अशुभ फल दायिनी नहीं होती है ॥ १८ ॥

प्रकारान्तर से वारों के दोषादोष का ज्ञान

[1]न वारदोषाः प्रभवन्ति रात्रौ देवेज्यदैत्येज्यदिवाकराणाम् ।
दिवःशशाङ्कार्कजभूसुतानां सर्वत्र निन्द्यो बुधवार उक्तः ॥ १९ ॥

किसी का कथन है कि रात्रि में गुरु, शुक्र और सूर्य का तथा दिन में चन्द्र, शनि और मंगलवार का दोष नहीं होता है। बुधवार का दोष सदा रहता है अर्थात् दिन व रात दोनों में होता है ॥ १९ ॥

अथात्र रेखापुराणि देशान्तरं चाह—

रेखा देश व देशान्तर का ज्ञान

[2]पुरी राक्षसी देवकन्याथ काञ्ची सितः पर्वतः पर्यलीवत्सगुल्मौ ।
पुरी चोज्जयिन्याह्वया गर्गराटं कुरुक्षेत्रमेरुर्भुवो मध्यरेखा ॥२०॥

भास्कराचार्य ने कहा है कि मेरु से या यों समझिये कि ध्रुव से ९० अंश की दूरी पर जो वृत्त किया जाता है वह नाडीवृत्त होता है। यह वृत्त भूमि के दो विभाग दक्षिण व उत्तर करता है। इसी प्रकार ध्रुव से जो रेखा लंका तक जाती है उसके मध्य के देश रेखा देश होते हैं। उन्हीं के कुछ नाम आचार्य ने इस प्रकार लंका ध्रुव की मध्य रेखा में लंका, देव कन्या, कांची, सित पर्यली, गुल्म, वत्स, उज्जैन, गर्गराट, कुरुक्षेत्रादि देशों की रेखा देश संज्ञा होती है। या यों समझिये कि उक्त देशों का स्पर्श करने वाली रेखा भूमध्य रेखा होती है ॥ २० ॥

देशान्तर कला ज्ञान

रेखा स्वदेशान्तरयोजनघ्नी गतिर्ग्रहस्याभ्रगजैर्विभक्ता ।
लब्धा विलिप्ताः खचरे विधेयाः प्राच्यामृणं पश्चिमतो धनान्ता ॥२१॥

रेखा देश व स्वदेश के अन्तर योजनों का ज्ञान करके उन देशान्तर योजनों से ग्रह की गति को गुणित करके ९० से भाग देने पर देशान्तर कला होती है। उन आनीत कलाओं का ग्रह में धन ऋण करने पर स्वदेशीय ग्रह का उदय काल होता है। यदि

---

१. ज्यो० सा० १४ पृ० ;

२. मु० चि० १ पृ० ५४ श्लो० पी० टी० ।

रेखा देश से अपना देश पूर्व हो तो ऋण और पश्चिम हो तो धन अर्थात् जोड़ने से स्वदेशीय उदय काल होता है। क्योंकि पूर्व में पहिले उदय व पश्चिम में बाद में होता है ॥ २१ ॥

श्रीपतिः—

अब आगे वार प्रवृत्ति कब होती है। इसे श्रीपति के वाक्य से बताते हैं।

[1]'वारप्रवृत्तिं मुनयो वदन्ति सूर्योदयाद्रावणराजधान्याम्।
ऊर्ध्वं तथाधोप्यपरत्र तस्माच्चरार्धदेशान्तरनाडिकाभिः ॥ २२ ॥

आचार्य श्रीपति ने कहा है कि रावण की राजधानी लंका में जब सूर्योदय होता है तब वार का प्रारम्भ होता है। अन्य देशों में चरार्ध व देशान्तर घटी इन दोनों के पहिले व बाद में स्वदेश में सूर्योदय होने के नाते वार की प्रवृत्ति होती है ॥ २२ ॥

[2]चरार्धदेशान्तरयोर्वियोगो योगेऽथ पानीयपलैश्च सम्यक्।
सूर्योदयादूर्ध्वमृणे धनेऽधो वारप्रवृत्तिं मुनयो वदन्ति ॥ २३ ॥

चरार्ध व देशान्तर के योग वियोग से जो घटी, पल प्राप्त हो उसे लङ्का के उदय से पूर्व में उदय हो तो ऋण अर्थात् घटाना और बाद में सूर्योदय हो तो जोड़ने पर स्वदेश में वार का प्रारम्भ होता है ॥ २३ ॥

विशेष—यह श्लोक पीयूषधारा में 'चरार्धदेशान्तरयोर्वियोगोत्थमानीय पलैश्च सम्यक्' इस प्रकार शुद्ध उपलब्ध है' ॥ २३ ॥

सिद्धान्तसारे—

अब आगे सिद्धान्त सार के वाक्य से वार प्रवृत्ति को बताते हैं।

याम्ये सौम्ये क्रमाद्गोले चरनाडयो धनर्णकाः।
प्रत्यक्प्राग्देशयोस्तद्वत्स्युर्देशान्तरनाडिकाः ॥ २४ ॥
चरार्द्धदेशान्तरनाडिकानां धनर्णतैक्ये युतिरन्यथान्या।
सूर्योदयादूर्ध्वमधश्च ताभिः प्राच्यां प्रतीच्यां दिनपप्रवृत्तिः ॥ २५ ॥

सिद्धान्तसार में कहा है कि दक्षिण गोल में सूर्य के रहने पर प्राप्त चरघटी पलको जोड़ना और उत्तर गोल में घटाना चाहिये। तथा पश्चिम स्वदेश होने पर धन और पूर्व में रेखादेश से स्वदेश हो तो ऋण करना चाहिये।

यदि पूर्वापर अन्तर और दक्षिणोत्तर अन्तर दोनों की धन हों तो योग और ऋणात्मक दोनों हों तो भी योग करके ऋणात्मक ही युति होती है। अन्यथा धन ऋण हों तो 'धनर्णयोरन्तरमेव योगः' इससे अन्तर करके जो फल प्राप्त उसके पहिले और बाद अर्थात् लंका के रेखादेशीय सूर्योदय से वार का आरम्भ उस देश में होता है ॥

---

१. ज्यो० नि० ३७ पृ०।
२. ज्यो० नि० ३७ पृ०।

सारांश यह है कि पूर्वापर व दक्षिणोत्तर अन्तर से अर्थात् दोनों के संस्कार से जो फल प्राप्त हो उसके पूर्व व बाद में वार का प्रारम्भ होता है ॥ २४-२५ ॥

शिरोमणिसिद्धान्ते—

शिरोमणि सिद्धान्त के आधार पर

सूर्योदयादूर्ध्वमधश्च ताभिः प्राच्यां प्रतीच्यां दिनपप्रवृत्तिः ।
ऊर्ध्वं तथाधश्चरनाडिकाभी रवावुदग्दक्षिणगोलजाते ॥ २६ ॥

शिरोमणि सिद्धान्त में बताया है कि रेखादेशीय सूर्योदय, से पहिले जिस देश में सूर्योदय होता है वहाँ यह समागत इष्टफल (पू०-द०) धन या यों समझिये कि रेखा देशीय सूर्योदय में जोड़ने पर स्वदेश में वार प्रारम्भ का काल होता है । और पश्चिम देश हो तो घटाने पर स्वदेशीय वार प्रवृत्ति काल होता है ॥ २६ ॥

ज्योतिःसारे —

ज्योतिः सार के आधार पर

देशान्तरचरार्धाभ्यां सौम्ये गोल इनोदयात् ।
ऊर्ध्वं वारप्रवृत्तिः स्याद्याम्ये चाधः प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥

ज्योतिः सार में कहा है कि उत्तरगोल में सूर्योदय से पूर्व चरार्धदेशान्तर काल तुल्य और दक्षिण में सूर्योदय के बाद वार प्रवृत्ति होती है ॥ ३७ ॥

श्रीपतिः—

श्रीपति के आधार पर

[1]वारे ग्रहस्योपचयावहस्य कार्यं यथोद्दिष्टमुपैति सिद्धम् ।
भवेत्तदेवापचयावहस्य प्रयत्नतो निर्मितमप्यसाध्यम् ॥ २८ ॥

आचार्य श्रीपति का कहना है कि जिस वार में कार्य किया जाता है वह लग्न से उपचय स्थानों में हो तो कार्य की सिद्धि होती है । और लग्न से अपचय स्थानों में वार के होने पर प्रयत्न पूर्वक कार्य करने पर भी सिद्धि नहीं होती है ॥ २८ ॥

अब आगे वार का भोग कब तक रहता है इसे आचार्य चण्डेश्वर जी वाक्य से बताते हैं ।

चण्डेश्वरः—

चण्डेश्वर के आधार पर

मीनालिमेषकलशेषु दिनान्तमात्रं
गोकर्ककार्मुकघटेष्वपि चार्धरात्रम् ।
स्त्रीयुग्मसिंहमकरेषु निशावसानं
वारस्य भोगमिह यन्मुनयो वदन्ति ॥ २९ ॥

---

१. ज्यो० नि० ३७ पृ० ।

आचार्य जी का कहना है कि मीन, वृश्चिक, मेष, कुम्भ के सूर्य में दिन के अन्त तक, वृष, कर्क, धनु, तुला के सूर्य में आधी रात तक और कन्या, मिथुन, सिंह व मकर के सूर्य में रात के अन्त तक वार का भोग होता है। ऐसा ऋषि लोगों का आदेश है ॥ २९ ॥

लल्लोऽपि—

आचार्य लल्ल के भी वार भोग का परिचय

मेषालिकुम्भमीनार्के वारभोगं दिनान्तके।
गोधनुष्कर्कटे चार्धरात्रे शेषे निशान्तकम् ॥ ३० ॥

श्रीलल्लाचार्य जी ने बताया है कि मेष, वृश्चिक, कुम्भ, मीन के सूर्य में दिन के अन्त तक, वृष, धनु, कर्क के सूर्य में आधी रात तक और शेष राशियों के सूर्य में रात की समाप्ति तक वार का भोग होता है ॥३०॥

अब आगे कल्पतरु के आधार पर वारों में त्याज्य कार्य क्या होते हैं या यों समझिये कि किस वार में कौन सा कार्य नहीं करना चाहिये, इसे बताते हैं ॥

कल्पतरौ—

नाभ्यङ्गमर्के न च भूमिपुत्रे क्षौरं च शुक्रेऽथ कुजे च मांसम्।
वुधे च योषा परिवर्जनीया शेषेषु सर्वाणि समाचरेच्च ॥ ३१ ॥

कल्पतरु नामक ग्रन्थ में बताया है कि रविवार के दिन उबटना देह में नहीं लगाना चाहिये। मङ्गल व शुक्रवार को क्षौर (मुंडन), मंगल को मांस और बुधवार के दिन स्त्री संसर्ग (उपभोग) नहीं करना चाहिये ॥३१॥

अब आगे ज्योतिःसार के आधार पर किस वार में कर्ज लेना, देना व वापसी करना इसे बताते हैं।

ज्योतिःसारे—

ऋणं भौमे न गृह्णीयान्न देयं वुधवासरे।
ऋणच्छेदं कुजे कुर्यात्सञ्चयं सोमनन्दने ॥ ३२ ॥

ज्योतिःसार में कहा है कि मंगलवार के दिन कर्ज नहीं लेना चाहिये। तथा बुधवार के दिन देना नहीं चाहिये। मंगल वार के दिन ऋण वापिस करना और बुधवार के दिन संग्रह करना चाहिये ॥३२॥

काल होरा का महत्व

यस्य ग्रहस्य वारे यत्किञ्चित्कर्म प्रकीर्तितम्।
तत्तस्य कालहोरायां सर्वमेव विधीयते ॥ ३३ ॥

जिस वार में जो कार्य करने को पहिले कहा गया है वह कार्य अन्य वारों में अभीष्ट वार की कालहोरा में करना चाहिये ॥३३॥

अन्यदपि—

और भी

[1]यस्य खेटस्य यत्कर्म वारे प्रोक्तं विधीयते।
ग्रहस्य क्षणवारेऽपि तस्य तत्कर्म सर्वदा ॥ ३४ ॥

जिस ग्रह के वार में जो कर्म आचरण के लिये बताया है। वह कार्य अन्य वारों में अभीष्ट ग्रह क्षण वार में समस्त कार्य करना चाहिये ॥३४॥

अब आगे अभीष्ट समय में काल होरा के ज्ञान को श्रीपति जी के वाक्य से बताते हैं।

श्रीपतिः—

[2]वारप्रवृत्तेर्घटिका द्विनिघ्नाः कालाख्यहोरापतयः शराप्ताः।
दिनाधिपाद्या रविशुक्रसौम्यशशाङ्कसौरेज्यकुजाः क्रमेण ॥ ३५ ॥

अभीष्ट को या यों समझिये कि वार प्रवृत्ति से जितना इष्ट हो उसे दो से गुणित कर पांच का भाग देने पर लब्धितुल्य रविवासर आदि में दिन पति से या सूर्यवार के क्रम से सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, शनि, गुरु व मंगल की काल होरा होती हैं। इस प्रकार तीन आवृत्तियों में ३ तोन और जोड़ने पर एक दिन की २४ कालहोरा होती हैं। चक्र से स्पष्ट है ॥३५॥

नारदः—

नारदजी के आधार पर

यस्मिन्वारे क्षणे वार इष्टस्तद्वासराधिपः।
आद्यः षष्ठो द्वितीयोऽस्मात्तस्मात्षष्ठस्तृतीयकः ॥ ३६ ॥
षष्ठः षष्ठश्चेतरेषां कालहोराधिपाः स्मृताः।
सार्धनाडीद्वयेनेव दिवारात्रं यथाक्रमात् ॥ ३७ ॥

श्री नारदऋषिजी ने बताया है कि जिस वार में काल होरा जानने की इच्छा हो तो प्रथम होरा उसी वार की दूसरी उससे षष्ठ की पुनः उससे छटे की इसी क्रम से कालहोरा होती हैं। दिन और रात में २४ कालहोरा होती हैं। अतः एक कालहोरा २ घटी ३० पल की होती है ॥३६-३७॥

विशेष—इस वार गणना क्रम का प्रादुर्भाव भारतीय ग्रन्थों से ही सिद्ध होता है। तथा ये सात ही होते हैं, और सूर्य के बाद, चन्द्रादि ही होंगे अन्य नहीं, इन समस्त प्रश्नों का उत्तर सहज ही में समझ लेते हैं।

जैसे—सात ही क्यों होते हैं। सिद्धान्त ग्रन्थों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि ग्रहों की कक्षा सात हैं। अतः ७ होते हैं। अहोरात्र, दिन रात का द्योतक ही है। दिन २४ घंटे व ६० घड़ी का होता है। इसे तो प्रायः सब ही मानते हैं।

---

१. मु० चि० १ प्र० ५४ श्लो० पी० टी०।
२. मु० चि० १ प्र० ५४ श्लो० पी० टी०।

ग्रह सात होने से एक दिन में ३ आवृत्ति में ३ जोड़ने पर चौबीस होता है । और उसमें १ जोड़ने पर आगे वार का ज्ञान होता है । कहा है कि शनि-गुरु-भौम-सूर्य-शुक्र-बुध-चन्द्र क्रम से ग्रहों की कक्षा है । इसलिये एक दिन में चौथी संख्या आने पर सूर्य प्रथम वार का स्वामी अब दूसरा पुनः इससे चौथा चन्द्रमा आगे भी इसी प्रकार सिद्धि है । भारतवासियों के इस गौरव को प्रायः समस्त लोग स्वीकार करते ॥३६–३७॥

काल होरा सारिणी

रविवार होरा	चन्द्रवारे होरा	भोमवारे होरा	बुधवारे होरा	गुरुवारे होरा	भृगुवारे होरा	शनिवारे होरा
सू २.३०	चं २।३०	मं २।३०	बु. २।३०	बृ २।३०	शु २।३०	श २।३०
शु ५।०	श ५।०	सू ५।०	चं ५।०	मं ५।०	बृ ५।०	बृ ५।०
बु ७।३०	बृ ७।३०	शु ७।३०	श ७।३०	सू ७।३०	चं ७।३०	मं ७।३०
चं १०।०	मं १०।०	बु १०।०	बृ १०।०	शु १०।०	श १०।०	सू १०।०
श १२।३०	सू १२।३०	चं १२।३०	मं १२।३०	बु·१२।३०	बृ १२।३०	शु १२।३०
बृ १५।०	शु १५।०	श १५।०	सू १५।०	चं १५।०	मं १५।०	बु १५.०
मं १७।३०	बु १७।३०	बृ १७।३०	शु १७।३०	श १७।३०	सू १७।३०	चं १७।३०
सू २०।०	चं २०।०	मं २०।०	बु २०।०	बृ २०।०	शु २०।०	श २०।०
शु २२।३०	श २२।३०	सू २२।३०	चं २२।३०	मं २२।३०	बु २२।३०	बृ २२।३०
बु २५।०	बृ २५।०	शु २५।०	श २५।०	सू २५।०	चं २५।०	मं २५।०
चं २७।३०	मं २७।३.	बु २७'३०	बृ २७।३०	शु २७।३०	श २७।३०	सू २७।३०
श ३०।०	सू ३०।०	चं ३०।०	म ३०।०	बु ३०।०	बृ ३०।०	शु ३०।०
बृ ३२।३०	शु ३२।३०	श ३२।३०	सू ३२।३०	चं ३२।३०	मं ३२।३०	बु ३२।३०
मं ३५।०	बु ३५।०	बृ ३५।०	शु ३'।०	श ३५।०	सू ३५।०	चं ३५।०
सू ३७।३०	चं ३७।३०	मं ३७।३०	बु ३७।३०	बृ ३७।३०	शु ३७।३०	श ३७।३०
शु ४०।०	श ४०।०	सू ४०।०	चं ४०।०	मं ४०।०	बु ४०।०	बृ ४०।०
बु ४२।३०	बृ ४२।०	शु ४२।३०	श ४२।३०	सू ४२।३०	चं ४२।३०	मं ४२।३०
चं ४५।०	मं ४५।०	बृ ४५।०	बृ ४५।०	शु ४५।०	श ४५।०	सू ४५।०
श ४७।३०	सू ४७।३०	चं ४७।३०	मं ४७।३०	बु ४७।३०	बृ ४७।३०	शु ४७।३०
बृ ५०।०	शु ५०।०	श ५०।०	सू ५०।०	चं ५०।०	मं ५०।०	बु ५०।०
मं ५२।३०	बु ५२।३०	बृ ५२।३०	शु ५२।३०	श ५२।३०	सू ५२।३०	चं ५२।३०
सू ५५।०	चं ५५।०	मं ५५।०	बृ ५५।०	बृ ५५।०	शु ५५।०	श ५५।०
शु ५७।३०	श ५७।३०	सू ५७।३०	चं ५७।३०	मं ५७।३०	बृ ५७।३०	बृ ५।७३०
बु ६०।०	बृ ६०।०	शु ६०।०	श ६०।०	सू ६०।०	चं ६०।०	मं ६०।०

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे
बृहद्दैवज्ञरञ्जने वारकथनं नाम त्रयोविंशं प्रकरणं
समाप्तम् ॥ २३ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिषवेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित संग्रहात्मक बृहद्दैवज्ञरञ्जनग्रन्थ का २३वाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥२३॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदविहिता श्रीधरी हिन्दी व्याख्या त्रयोविंशतिप्रकरणस्य पूर्तिमगात् ॥२३॥

अथ चतुर्विंशं नक्षत्रप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे चौबीसवें प्रकरण में नक्षत्रों के विषय में विविध बातों को बताते हैं ।

संहिताप्रदीपे--

नक्षत्र की प्रधानता

[1]सर्वत्र कार्येषु हि शोभनेषु नक्षत्रशुद्धिं मृगयन्ति पूर्वाः ।
यत्कर्म यस्मिन्करणीयमुक्तं तत्र प्रदेयं विदुषा विदित्वा ।। १ ।।

संहिताप्रदीप में बताया है कि समस्त शुभ कामों में नक्षत्र शुद्धि का ही विचार प्रथम किया जाता है । अतः जिस नक्षत्र में जो कर्म कहा गया है उसे जानकर ही विद्वान् व्यक्ति को उपदेश देना चाहिये ।।१।।

अब आगे वृहस्पति जी के वचनों से कुछ विशेष बात बताते हैं ।

गुरुजी का कहना है कि मैं अब नक्षत्रों की स्वरूप तारा, देवता, गोत्र स्वभावों को बताता हूँ ।

गुरुः--

कृत्तिका का स्वरूप, तारादि का ज्ञान

नक्षत्राणां प्रवक्ष्यामि रूपताराश्च सङ्ख्यया ।
देवताश्च तथा गोत्रं स्वभावं तद्भवं ततः ।। २ ।।
कृत्तिका क्षुरसंस्थाना षट्तारा चाग्निदेवता ।
अग्निवेश्यश्च गोत्रेण विज्ञेया मृदुदारुणा ।। ३ ।।
अग्न्याधानादिकर्माणि पाकयज्ञक्रतुक्रियाम् ।
आरामविषघातांश्च चुल्लि कर्म च कारयेत् ।। ४ ।।
इष्टिं च पशुबन्धं च चौलोपनयनानि च ।
यावन्ति चोग्रकर्माणि पशूनामर्चनानि च ।। ५ ।।
तेजस्विनां च कर्माणि आयुधानि च कारयेत् ।
ऋणं दद्यान्न गृह्णीयात्तेजस्वी चात्र कथ्यते ।। ६ ।।

कृत्तिका नक्षत्र ६ ताराओं के योग से छुरा के समान स्वरूपधारी, अग्नि देवता वाला, अग्निवेश्य गोत्र वाला, सौम्य दारुण, अग्न्याधानादि कार्य, पाक, यज्ञ, यज्ञक्रिया, बगीचा, जहर, घात, चूल्हा बनाना, इष्टि, पशुओं का बन्धन, चौल, यज्ञोपवीत, उग्र कार्य, पशु पूजा, तेजस्वी कार्य, आयुध शस्त्र सम्बन्धी कार्य करना चाहिये तथा कर्ज देना व लेना नहीं चाहिये ।।२-६।।

---

१. ज्यो० नि० ४३ पृ० ।

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'अग्निपरिग्रहसाहसरिपुवधदहनास्त्रशस्त्रकर्माद्यम् । धातुर्वादविधानं विवादलोहाश्म बहुलायाम्' (१४ प्र० ४२ श्लो० ॥२–६॥

इति कृत्तिका ।

रोहिणी के स्वरूप, तारादि का ज्ञान

रोहिणी शकटाकारा संस्थाना पञ्चतारका ।
नक्षत्रं स्थावरं विद्धि दैवतं च प्रजापतिः ॥ ७ ॥
गोत्रेण गौतमी ज्ञेया बन्धनानि प्रकारयेत् ।
आरामं च विवाहं च गोपुराट्टालिकानि च ॥ ८ ॥
यावन्ति ध्रुवकर्माणि मङ्गलानि च कारयेत् ।
प्राकाराणि च कुर्वीत प्रासादभवनानि च ॥ ९ ॥
पत्तनं नगरग्रामं स्थापयेद्देशमेव च ।
क्षेत्रारम्भं च कुर्वीत आरामं चाभिषेचयेत् ॥ १० ॥
ऋणं तद्वन्न गृह्णीयात्क्षुरकर्म न कारयेत् ।
कल्याणानि प्रकुर्वीत नाशुभाश्चात्र जायते ॥ ११ ॥

रोहिणी नक्षत्र पाँच ताराओं के योग से गाड़ी जैसी आकृतिवाला, स्थिर, प्रजापति देवता व गौतमी गोत्र वाला होता है । इसमें बन्धन, बगीचा, विवाह, द्वार, अटारी, ध्रुव (स्थिर), मांगलिक, काँटा आदि या गर्त आदि घेरा, देवतायतन, राजकीय नौकर का घर, शहर, गाँव की स्थापना, खेती का आरम्भ या घर का प्रारम्भ, वाटिका और अभिषेक सम्बन्धि काम करना चाहिये । कर्ज व हजामत ग्रहण नहीं करना चाहिये । इस रोहिणी नक्षत्र में शुभ काम करने की अनुमति है और अशुभ कार्य नहीं करना चाहिये ॥७–११॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'सुरनरसद्माद्यखिलं विवाहधनधान्यसङ्ग्रहोपनयम् । उत्सवभूषणमङ्गलमजभे कार्यं सपौष्टिकं कर्म' (१४ प्र० ५ श्लो०)॥७–११॥

इति रोहिणी ।

मृगशिरा का स्वरूप व तारादि ज्ञान

त्रितारं सोमदैवत्यं मृदुं मृगशिरो विदुः ।
कात्यायनीति गोत्रेण गार्हस्थ्यं चात्र कारयेत् ॥ १२ ॥
राज्याभिषेकं कुर्वीत शयनान्यासनानि च ।
अञ्जनं कारयेत्तत्र गोदानं पौष्टिकानि च ॥ १३ ॥
वाहनानि च कर्माणि शुभदान्यशुभानि च ।
गतास्वानां गृहारम्भे प्रवेशादीनि कारयेत् ॥ १४ ॥
यथोक्तं कर्म रोहिण्यां सर्वमस्मिन् प्रकारयेत् ।
धर्मकर्मादिदानानि विद्यारम्भादि कारयेत् ॥ १५ ॥
कर्मशीलश्च दानी च मृदुश्चैवात्र जायते ॥ १६ ॥

मृगशिरा नक्षत्र तीन ताराओं के योग से सरल स्वरूप वाला, चन्द्रमा देवतावाला, कात्यायनी गोत्रवाला है। इसमें गृहस्थी, राजाभिषेक, शयन, आसन, काजल, गोदान, पुष्टता, वाहन (सवारी), शुभ, अशुभ रोहिणी नक्षत्रोक्त, धर्मादि, दान, विद्यारम्भ सम्बन्धी कार्य करना चाहिये। इसमें प्रायः कर्मठ, दाता और सरल पुरुष का जन्म होता है ॥१२–१६॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'शान्तिकपौष्टिकशिल्पव्रजकर्मोद्वाहकमङ्गलाद्यधिकम्। सुरसंस्थापनवास्तुक्षेत्रारम्भादि सिद्ध्यते सौम्ये' (१४ प्र० ६ श्लो०) ॥१२–१६॥

इति मृगशिरा।

आर्द्रा का स्वरूप, तारादि ज्ञान

एकतारा भवेदार्द्रा रुद्रश्चैवात्र देवता।
घातयेन्नगरं ग्रामं पुरदेशं तथैव च कारयेत् ॥ १७ ॥
यावन्ति धान्यकर्माणि यशस्वी चात्र जायते।
यावन्ति पापकर्माणि दारुणानि च कारयेत्।
गोष्ठागारादि कुर्वीत कृषिकर्मं च कारयेत् ॥१८॥
शीद्यपि चैव गोत्रेण मेधावी चात्र जायते ॥ १९ ॥

आर्द्रा नक्षत्र की एक तारा होती है। इसका देवता महादेव है। यह नगर, गाँव, पुर, देश को नष्ट करने वाला होता है। इसमें पाप, दारुण (कठिन) गोष्ठागार, खेती और समस्त धान्य सम्बन्धी कार्य करना चाहिये। प्रायः इस नक्षत्र में मेधावी और यशस्वी पुरुष का जन्म होता है। इसका गोत्र शीद्यपि होता है ॥ १७–१९ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'प्रहरणदारुणबन्धनविग्रहविषसन्धिवह्निकर्माद्यम्। छेदन-दहनोच्चाटनमारणकृत्यं च रौद्रभे कुर्यात् (१४ प्र० ७ श्लो०) ॥ १७–१९ ॥

इत्यार्द्रा।

पुनर्वसु नक्षत्र का स्वरूप तारादि ज्ञान

पुनर्वसु द्वितारा च कुण्डल्याभ्यामिवालवत्।
अदितिर्देवता चात्र मन्त्रयोगं च कारयेत् ॥ २० ॥
पुनर्भवाय युंज्यानाः मङ्गलानि तथा शुभम्।
पुनः कर्माणि यावन्ति चिकित्सा चात्र कारयेत् ॥ २१ ॥
इन्द्राणीं स्थापयेच्चात्र इन्द्रस्थानं च कारयेत्।
वात्स्यायनी च गोत्रेण मेधावी चात्र जायते ॥ २२ ॥

पुनर्वसु नक्षत्र दो ताराओं के योग से २ सूर्य की गोलाई के स्वरूप वाला, अदिति देवता वाला है।

इसमें मंत्र ग्रहण, मांगलिक, शुभ समस्त कार्य, चिकित्सा, इन्द्राणी की स्थापना, इन्द्र के स्थान सम्बन्धि कार्य करना चाहिये। इसका वात्स्यायनी गोत्र होता है और बुद्धिमान् का जन्म होता है ॥ २०-२२ ॥

व० सं० में कहा है 'शान्तिकपौष्टिकयात्राव्रतप्रतिष्ठानृपाहवाद्यखिलम्। भूषणवास्तुविधानंवाहनकृषिकर्म सप्तमे धिष्ण्ये (१४ प्र० ८ श्लो०) ॥ २०-२२ ॥

इति पुनर्वसुः।

पुष्य नक्षत्र का स्वरूप, तारादि ज्ञान

त्रितारामिषुसंस्थानामिष्टां क्षिप्रप्रदं शुभम्।
पुरोहितमुपाध्यायं दैवज्ञं नागवं तथा ॥ २३ ॥
एवमादौ निमित्तानि यात्रां चैवात्र कारयेत्।
यावद्विषोग्रकर्माणि पुष्ये प्राकारमण्डपान् ॥ २४ ॥
पौष्टिकानि च कर्माणि चौलोपनयनानि च।
विवाहकर्मवर्ज्यानि शुभकर्माणि कारयेत् ॥ २५ ॥
अञ्जनं प्रेषयेदत्र दैवतं च बृहस्पतिः।
राज्याभिषेकः कर्तव्यः प्रासादादीनि कारयेत् ॥ २६ ॥
आयुष्मान्धनवांश्चात्र पुण्यकर्मा च जायते ॥ २७ ॥

पुष्य नक्षत्र की तीन तारा या यों समझिये तीन तारा योग से जो धनुष की आकृति खगोल में है वही, अर्थात् धनुषाकारी, इष्ट, शीघ्रता देने वाला, शुभ पुरोहित, उपाध्याय, दैवज्ञ (ज्योतिषी) पर्वत सम्बन्धिकार्य, निमित्तक यात्रा, जहर, उग्र, घेरा, मण्डप, पुष्टता, चौल, उपनयन और विवाह को छोड़कर समस्त शुभता सम्बन्धित काम करना चाहिये। इसमें दिग्गज को भेजना चाहिये। इसका बृहस्पति देवता है। इसमें राजाभिषेक, मठ, मन्दिरों का निर्माण करना चाहिये। इसमें दीर्घायु, धनी, पुण्यवान् का जन्म होता हैं ॥ २३-२७ ॥

व० सं० में कहा है 'स्थिरचरशान्तिकपौष्टिकभूषणशिल्पव्रतोत्सवाद्यखिलम्। वनिताकरसंग्रहणं त्यक्त्वान्यत्कर्म सिद्धयते पुष्ये' (१४ प्र० ६ श्लो०) ॥ २३-२७ ॥

इति पुष्यम्।

आश्लेषा का स्वरूप तारादि ज्ञान

आश्लेषा सार्पदैवत्या षट्तारा तु विसंस्थिता।
आग्रायणीति गोत्रेण शकटादीनि कारयेत् ॥ २८ ॥
पुनर्भवाय युंज्याना तडागादीनि कारयेत्।
यावन्ति चोग्रकर्माणि शत्रुनाशादि कारयेत् ॥ २९ ॥

विषवृद्धयानि मन्त्राणि धनवांश्चात्र जायते।
मेधावी बहुपुत्रश्च वसुमान् जायते नरः ॥ ३० ॥

गोगणं वार्धिकं कुर्यात्कल्याणादीनि सम्पदम्।
यावन्ति धान्यकर्माणि पितृकर्माणि कारयेत् ॥ ३१ ॥

आश्लेषा नक्षत्र ६ ताराओं के योग से दृष्टिगोचर होता है। इसका सार्प देवता तथा आग्रायणी गोत्र है।

इसमें गाड़ी तालाब आदि, उग्रता, शत्रुनाश, जहर वृद्धि सम्बन्धी कार्य करना चाहिये। इसमें धनी, मेधावी, अधिक पुत्र वाला पैदा होता है। अथवा गऊ समुदाय की वृद्धि, कल्याण, धन, धान्य और पितृ सम्बन्धी कार्य करना चाहिये ॥ २८–३१ ॥

व० सि० में कहा है 'उद्धृतरिपुमदमञ्जनसाहसवाणिज्यकपटकर्म। अनलायस सङ्ग्रहणक्ष्वेडस्तेयादि सर्पभे कार्यम् (१४ प्र० १० श्लो०) ॥ २८–३१ ॥

इत्याश्लेषा—

मघा का स्वरूप, तारादि ज्ञान

चतुस्तारा मघा ज्ञेया कुट्टाकारं च यष्टिवत्।
पितरो देवताश्चात्र कार्याण्याश्लेषवद्भवेत् ॥ ३२ ॥

मघा नक्षत्र चार ताराओं के योग से कुट्टाकृति वाला, लकड़ी की तरह, पितर देवता वाला है। इसमें आश्लेषा नक्षत्र में उक्त कार्य करना चाहिये ॥ ३२ ॥

व० सं० में कहा है 'युवतीकर सङ्ग्रहणंवापीकूप तडागोत्सवाद्यं च। क्षितिपत्या-हवसवं पितृधिष्ण्ये च पैतृकं कार्यम्' (१४ प्र० २२ श्लो०) ॥ ३२ ॥

इति मघा—

पूर्वा फाल्गुनी का स्वरूप तारादि ज्ञान

द्वितारा फाल्गुनी पूर्वा उग्रा च भगदेवता।
पर्यङ्कसंस्थिता वापि गोत्रं विद्यात्पराशरम् ॥ ३३ ॥

उग्रकर्माणि कुर्वीत उग्रं चैवात्र जायते।
मघायामुदितं सर्वमस्यामपि विधीयते ॥ ३४ ॥

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र दो ताराओं के योग से दीखता है। इसकी उग्र संज्ञा और भगदेवता है। पलंग की आकृति वाला, पराशर गोत्र वाला है। इसमें उग्र कार्य करना चाहिये। तथा उग्र का (क्रूर) ही जन्म होता है। और मघा में जो कार्य करने को कहा गया है वह भी इसमें करना चाहिये ॥ ३३–३४ ॥

व० सं० में कहा है 'शिल्पप्रहरणबन्धनदारुणचित्रकापटं कर्म। नय्नद्रुमासवाद्यं भाग्ये कुडचप्रहरणं च' (१४ प्र० १२ श्लो०) ॥ ३३–३४ ॥

इति पूर्वाफाल्गुनी—

उत्तराफाल्गुनी का स्वरूप, तारादि ज्ञान

द्वितारोत्तरफाल्गुन्या स्थिराख्यार्यमदेवता ।
पर्यङ्कसंस्थिता चात्र गोत्रेण च पराशरः ॥ ३५ ॥
कन्यासुवर्णविद्यान्नपुष्टिस्थानं तथैव च ।
नपुंसकानि वस्त्राणि वेश्यावादं च कारयेत् ॥ ३६ ॥
यावन्ति भगकार्याणि मङ्गलानि च कारयेत् ।
चौलोपनयनं कार्यं स्थावराणि च कारयेत् ॥ ३७ ॥
गोगणं निगडं चैव शयनान्यसनानि च ।
भवन्ति पुष्टिमाप्नोति गृहकर्माणि कारयेत् ॥ ३८ ॥
खादसत्यं च गोत्रेण दन्ति चैवात्र जायते ॥ ३९ ॥

उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र दो ताराओं के योग से शय्या की सी आकृतिवाला तथा पराशर गोत्र वाला है । इसमें कन्या, सोना, विद्या, अन्न, पुष्टता, स्थान, नपुंसकता, वस्त्र, वेश्याविवाद, ऐश्वर्य, मांगलिक, चौल, यज्ञोपवीत, स्थिर, गाय, समूह, बन्धन, शयन, आसन सम्बन्धी कार्य पुष्ट होते हैं । घर सम्बन्धी कार्य करना चाहिये । इसका खादसत्य गोत्र है । इसमें आगे निकले हुए दाँतवाले का जन्म होता है ।। ३५–३६ ।।

व० सं० में कहा है 'उपनयनं करपीडनमखिलं स्थिरशिल्पभूषणं त्वखिलम् । पुरसदनप्रारंभणमम्बररणकार्यमर्यमर्क्षेषु' (१४ प्र० १३ श्लो०) ।। ३५–३६ ।

इत्युत्ताफल्गुनी—

हस्त का स्वरूप तारादि ज्ञान

सावित्रं पञ्चतारा स्याद्धस्तं हस्ताङ्गसंस्थितम् ।
कुण्डिनी चैव गोत्रेण क्षिप्रकर्मात्र कारयेत् ॥ ४० ॥
सदा सव्यं च कुर्वीत महातन्त्रं तथैव च ।
सारस्वतादिकर्माणि विद्यादानं गृहाणि च ॥ ४१ ॥
वाहनानां च कर्माणि गृहारम्भप्रवेशने ।
गजाश्वरथशस्त्राणां पूजाकर्माणि कारयेत् ॥ ४२ ॥
यावन्ति वज्रकर्माणि मङ्गलानि च कारयेत् ।
चौलोपनयनं चैव विवाहादीनि वाससाम् ॥ ४३ ॥
आच्छादनं च वाप्यां च मेधावी चात्र जायते ॥ ४४ ॥

हस्त नक्षत्र पाँच ताराओं के योग से हाथ के समान स्वरूप वाला, सावित्रनामक देवता वाला, कुंडिनी गोत्र का है । इसमें क्षिप्रकर्म, दक्षिण, महातन्त्र, विद्या सम्बन्धी, विद्या दान, घर, सवारी, मकान निर्माण, घर में प्रवेश, हाथी, घोड़ा, रथ व शस्त्रों की

पूँजा सम्बन्धी, वज्र, मांगलिक, चौल, यज्ञोपवीत, विवाह, वस्त्र, आच्छादन, वापी सम्बन्धी कार्य करना चहिये। इसमें बुद्धिमान् का जन्म होता है॥ ४०-४४॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'भेषजयात्राविद्याविवाहशिल्पव्रताम्बराभरणम्। सुरसंस्थापनमखिलं वास्तुप्रारम्भमर्कनक्षत्रे' (१४ प्र० १४ श्लो०)॥ ४०-४४॥

ज्योतिर्निबन्ध में भी 'प्रतिष्ठोद्वाहसीमन्तयानं वस्त्रोपनायनम्। क्षौरवास्त्वभिषेकाश्च भूषणं कर्म भानुभे' (४० पृ० १५ श्लो०)॥ ४०-४४॥

इति हस्तः—

चित्रा का स्वरूप तारादि ज्ञान

एकतारा भवेच्चित्रा त्वष्टा चैवात्र देवता।
पत्यन्नासंस्थितं चापि अत्रिगोत्रं च गोत्रतः॥ ४५॥
कर्णयोर्वेधनं कुर्यात्सेतूनां चैव बन्धनम्।
पानभूमिं च कुर्वीत गोपुरास्थानमण्डपान्॥ ४६॥
गवां निलयरक्षां च मङ्गलानि च कारयेत्।
विचित्राणि च वस्त्राणि क्षुरकर्माणि कारयेत्॥ ४७॥
यावन्ति शस्त्रकर्माणि सपण्यानि च कारयेत्।
भाण्डागारादि कुर्वीत औषधानि शुभानि च॥ ४८॥
गोष्ठागारायुधागारान्गृहरक्षादि कारयेत्।
राजप्रसादान् गृह्णीयाच्छत्रवाहनपूर्वकान्॥ ४९॥
रोगी स्नानादि कुर्वीत सुभगश्चैव जायते॥ ५०॥

चित्रा नक्षत्र की एक ही तारा है। त्वष्टा इसका देवता है। पत्यन्न संस्थित होने पर भी गोत्र से अत्रि गोत्र है। इसमें कनछेदन, पुल निर्माण, प्याऊ, नगर द्वारा, मंडप, गाय, घर, रक्षा, मांगलिक, वस्त्र, विचित्रिता, क्षुर, शस्त्र, व्यापार, भंडार घर, औषधि, गोष्ठ व शस्त्र घर, घर रक्षा सम्बन्धी कार्य करना चाहिये। तथा राजा से सम्मान में प्राप्त छत्र सवारी आदि का ग्रहण करना चाहिये एवं रोग की मुक्ति होने पर स्नान भी इसी में करना चाहिये। प्रायः चित्रा में जन्म लेने वाला भाग्यशाली होता है॥ ४५-५०॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'शान्तिक पौष्टिकमखिलं स्थिरकार्यवस्त्रभूषणंशिल्पम्। उपनयनं वास्तुकृषिक्षितिपतिकार्यं च चित्रायाम्'। (१४ प्र० १५ श्लो०)॥ ४५-५०॥

तथा ज्यो० नि० में नारदजी का वचन 'प्रवेशवस्त्रसीमन्तप्रतिष्ठाव्रतबन्धनम्। त्वाष्ट्रभे वास्तु विद्याश्च क्षौरभूषणकर्म यत्' (४० पृ० १६ श्लो०)॥ ४५-५०॥

इति चित्रा—

स्वाती का स्वरूप तारादि ज्ञान

प्रत्येकं संस्थिता स्वाती वायव्यां चैकतारकी।
माण्डव्येति च गोत्रेण प्रस्थाने चापि गर्हिता ॥ ५१ ॥
नवारम्भं च कुर्वीत नावप्रस्थानमेव च।
अश्वन्याश्च पुण्यांश्च कारयेद्भेरितूर्यकान् ॥ ५२ ॥
मृदङ्गपणवाद्यांश्च कवचादीनि कारयेत्।
वाहनं च विवाहं च सफलं चात्र जायते ॥ ५३ ॥

स्वाती नक्षत्र की एक तारा है। मांडव्य गोत्र इसका है। इसमें यात्रा नहीं करना चाहिये। इसमें नाव बनाने का काम, नाव में यात्रा, घोड़ा, वन्य पुण्य, भेरी व तुरई वाद्य, मृदङ्ग, डमरू, कवच, सवारी, विवाह सम्बन्धी कार्य करना चाहिये। इसमें सफल पुरुष का जन्म होता है ॥ ५१–५३ ॥

व० सं० में कहा है 'सुरनरसद्मविधानं भूषणवैवाहमङ्गलाद्यखिलम्। बीजारोपणशस्त्रक्षितिपतिसमरं विभूषणं स्वातौ' (१४ प्र० १६ श्लो०) ॥ ५१–५३ ॥

तथा ज्यो० नि० में 'प्रतिष्ठोपनयोद्वाहवस्त्रसीमन्तभूषणम्। विवाहेऽश्वेभकृष्यादि क्षौरकर्म समीरमे' (४० पृ० १७ श्लो०) ॥ ५१–५३ ॥

इति स्वाती—

विशाखा का स्वरूप तारादि ज्ञान

विशाखेन्द्राग्निदैवत्यां मृदङ्गफणमेव च।
कौशिकी च चतुस्तारा संस्थानं तोरणोपमम् ॥ ५४ ॥
स्थापयेत्सर्वबीजानि मङ्गलानि च कारयेत्।
इष्टं च पशुबन्धं च चौलोपनयनानि च ॥ ५५ ॥
यावन्ति मिश्रकर्माणि तेजस्वी चात्र जायते।
मेधावी तीक्ष्णवीर्यश्च विषमं चात्र जायते ॥ ५६ ॥
इत्येतत्समवर्गं च दक्षिणाद्वारसंस्थितम्।
यदि पीडा भवेदत्र पीड्यते च यदि स्वयम् ॥ ५७ ॥

विशाखा का नक्षत्र ४ ताराओं के योग से द्वार तोरण के सदृश आकृति वाला, इन्द्रअग्नि देवता वाला, मृदङ्ग के तुल्य, कौशकी गोत्र वाला है। इसमें समस्तबीजों की स्थापना, मांगलिक, अभीष्ट; पशु बन्धन, चौल, जनेऊ, मिश्र कर्म सम्बन्धी कार्य करना चाहिये। इसमें तेजमान्, बुद्धिमान्, उग्र, पराक्रमी और विषम स्वभावी का जन्म होता है यह समस्त दक्षिण द्वार संस्थान समवर्ग है। यह नक्षत्र पीडित जब होता है तो जन्म लेने वाले को दुःख होता है ॥ ५४–५७ ॥

व० सं० में कहा है 'उपचयवस्तुग्रहणं भूषणनववस्त्रचित्रकार्यं च। भेषजशकट-प्रहरणशिल्पविचित्रं द्विदैवमे कार्यम्' (१४ प्र० १७ श्लो०) ॥ ५४-५७ ॥

ज्यो० नि० में भी 'वस्त्रभूषणवाणिज्यवसुधान्यादिसङ्ग्रहम्। इन्द्राग्निभे नृत्यगीत-शिल्पलेखनकर्म च' (४० पृ० १८ श्लो०) ॥ ५४-५७ ॥

इति विशाखा—

अनुराधा का स्वरूप तारादि ज्ञान

षट्तारा तु भवेन्मैत्रं रथानामिव संस्थितः।
अपरद्वारकं श्रेष्ठं विवाहकरणे शुभः ॥ ५८ ॥
आयुषः कर्म कुर्वीत ऐन्द्राग्निस्थावराणि च।
मैत्रमुक्तानि सर्वाणि गन्धकर्म च कारयेत् ॥ ५९ ॥
लेख्यकर्म च कुर्वीत अक्षवेलां च कारयेत्।
विशेषस्वामिसन्मानं कर्मणा स्वामिदर्शने ॥ ६० ॥
श्रेष्ठमेतत्परिज्ञेयं मुहूर्ते मैत्रसाह्वये।
अश्वोष्ट्रगजकर्माणि शाला तेषां प्रवेशनम् ॥ ६१ ॥
कुर्यात्त्वगस्थिविद्यादीन्यारभेन्मैत्रदैवते।
अत्र पावकगोत्रेण जायते मनुजाधिपः ॥ ६२ ॥

अनुराधा नक्षत्र ६ ताराओं के योग से रथ की आकृति का, श्रेष्ठ मैत्र देववाला, दो दरवाजों से युक्त है। इसमें विवाह व आयु, इन्द्र, अग्नि, स्थिर मित्रता, गुप्त, गन्ध, लेख्य, जुआ, विशेषता पूर्वक स्वामी का सन्मान व दर्शन करना चाहिये। मैत्र, साह्व-व मुहूर्त इसका श्रेष्ठ होता है। तथा घोड़ा, ऊँट, हाथी सम्बन्धी व उनके आवासजन्य, प्रवेश, त्वचा, हड्डी, विद्या सम्बन्धी कामों का आरम्भ करना चाहिये। इसका पावक गोत्र है और इसमें राजा का जन्म होता है ॥५८-६२॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'करमर्दनमुपनयनं यात्रासुरसद्मसंनिवेशाद्यम्। स्थिरचर-कार्यं त्वखिलं भूषणमश्वेभकर्ममित्रर्क्षे' (१४ प्र० १८ श्लो०) ॥५८-६२॥

ज्यो० नि० में भी 'प्रवेशस्थापनोद्वाहव्रतबन्धादिमङ्गलम्। वस्त्रभूषणवास्तव्यौमित्रभे सन्धिविग्रहौ' (४० पृ० १९ श्लो०) ॥५८-६२॥

इत्यनुराधा—

ज्येष्ठा का स्वरूप तारादि ज्ञान

त्रितारं चेन्द्रदैवत्यं ज्येष्ठा कुण्डलसंस्थिता।
राज्याभिषेकं कुर्वीत सेनापत्यं तथैव च ॥ ६३ ॥
स्थापयेन्नगरग्रामाधिपत्या नायकादिका।
दर्शनं स्वामिभूपानां ज्येष्ठा श्रेष्ठासु कर्मणाम् ॥ ६४ ॥

वाहनानां च कार्याणां खर्वटाद्वास्तुमेव च।
अभिचाराणि कार्याणि मघा स्यात्तद्वदेव हि ॥ ६५ ॥
काश्यपी चैव गोत्रेण दारुणो चात्र जायते ॥ ६६ ॥

ज्येष्ठा नक्षत्र तीन ताराओं के योग से कुण्डल की आकृति वाला है। इसमें राजा का अभिषेक, सेनापत्य, शहर, गाँव के स्वामी और नायकादि की स्थापना, स्वामी व राजा का दर्शन, श्रेष्ठ कर्म, लघु वाहन (सवारी), वास्तु, अभिचार सम्बन्धी और मघा में कथित कार्य करना चाहिये। इसका काश्यपी गोत्र है। इसमें क्रूर स्वभावी का जन्म होता है ॥६३–६६॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'रिपुवधभेदनदहनप्रहरणवह्निलोहकार्याद्यम्। स्तेयविषानं विविधं शिल्पं चित्रं सुरेशभे कार्यम्' (१४ प्र० १९ श्लो०) ॥६३–६६॥

और भी ज्योतिर्निबन्ध में 'क्षौरास्त्रशस्त्रवाणिज्यगोमहिष्यम्बुकर्म यत्। इन्द्रभे नृत्यगीताद्यं शिल्पलोहाश्मलेखनम्' (४० पृ० २० श्लो०) ॥६३–६६॥

इति ज्येष्ठा—

मूल का स्वरूप तारादि ज्ञान

तारा द्वादश मूलोग्रा निर्ऋतिस्तत्र देवता।
कौशिकी चैव गोत्रेण सङ्घविक्रयकर्मणि ॥ ६७ ॥
यावन्ति भेदकर्माणि स्थैर्याणि च शुभानि च।
स्थितानि वाहनादीनां स्वामिदर्शनपूर्वकम् ॥ ६८ ॥
यावन्ति चोग्रकर्माणि दारुणानि च कारयेत्।
विवाहं चाभिषेकं च चौलोपनयनानि च ॥ ६९ ॥
स्वामिकर्म च कुर्वीत मङ्गलानि तथैव च।
मूलका मूलकर्माणि शास्त्रविद्यादि कारयेत् ॥ ७० ॥
नगरग्रामराष्ट्रादिप्रवेशं च विशेषतः।
एतत्कार्यं बुधाः (धैः) श्रेष्ठमुग्रं चैवात्र जायते ॥ ७१ ॥

मूल नक्षत्र बारह ताराओं के योग से आकाश में दृष्टिगोचर होता है। यह उग्रा संज्ञा व निर्ऋति देवता और कौशिकी गोत्र वाला है। इसमें सहयोग से बेचने का कार्य, भेद, स्थिरता, शुभता, वाहन (सवारी). स्वामिदर्शन, उग्र, दारुण, विवाह, अभिषेक, चौल, उपनयन, स्वामी, माङ्गलिक, मूल, शस्त्र, विद्या सम्बन्धी कार्य करना चाहिये। तथा शहर गाँव और राष्ट्रादि प्रवेश विशेषकर करना चाहिये। प्रायः इसमें उत्तम और उग्र पुरुष का जन्म होता है ॥६७–७१॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'कृषिभवनविपिनकार्यं वापीकूपादिबीजनिर्वापम्। समरविभूषणशिल्पं विग्रहसन्धिश्च मूलनक्षत्रे' (१४ प्र० २२ श्लो०) ॥६७–७१॥

ज्योतिर्निबन्ध में भी 'विवाहकृषिवाणिज्यदारुणाहवभेषजम् । निऋंती नृत्यशिल्पास्त्र-सन्धिविग्रहलेखनम्' (४० पृ० २१ श्लो०) ॥६७-७१॥

इति मूलम्—

पूर्वाषाढा का स्वरूप तारादि ज्ञान

पूर्वाषाढं चतुस्तारामापश्चैवात्र देवता ।
दाक्षायणं च गोत्रेण सिंहपुच्छसदृक् तनुः ॥ ७२ ॥
नवारम्भं च कुर्वीत जलकर्मं तथैव च ।
हुडयानश्च देवाश्च तडागादीनि कारयेत् ॥ ७३ ॥
यावन्ति चोग्रकर्माणि तावन्त्यत्र शुभप्रदम् ।
अग्निकर्माणि कुर्वीत कूपांश्चैवात्र खानयेत् ॥ ७४ ॥
निगडत्वबन्धनागारदारुणश्चात्र जायते ॥ ७५ ॥

पूर्वाषाढा नक्षत्र चार ताराओं के योग से सिंह की पूँछ के समान उपलब्ध होता है । इसका देवता जल और दाक्षायण गोत्र है । इसमें तालाब बगैरह, अग्नि, कुआँ की खुदाई सम्बन्धी काम करना चाहिये । इसमें जेल भोगी व क्रूर का जन्म होता है ॥७२–७५॥

व० सं० में कहा है 'शम्बरबन्धनमोक्षणवापीकूपादिनिग्रहं हननम् । द्रुमखण्डन-वनचारिणपक्षिणां च यत्कार्यमम्बुभे कार्यम्' (१४ प्र० २१ श्लो०) ॥७२–७५॥

इति पूर्वाषाढा—

उत्तराषाढ का स्वरूप, तारादि ज्ञान

आषाढा ह्युत्तरा ज्ञेया विश्वेदेवा द्वितारका ।
गजापीडसमास्थाना गार्गी गोत्रं च स्थावरम् ॥ ७६ ॥
छत्रध्वजपताकाश्च मुकुटं कुण्डलानि च ।
यानभूमिं च कुर्वीत शालिव्रीहींश्च वापयेत् ॥ ७७ ॥
स्थावराणि च कुर्वीत शान्तिहोमं च कारयेत् ।
यानि राजन्ययोग्यानि राज्ञां चैवाभिषेचनम् ॥ ७८ ॥
गोगणं नृगणं कुर्यात् दैवतस्थावराणि च ।
सर्वाणि शुक्लशालानि हस्तिबन्धं च कुर्वते ॥ ७९ ॥
गजाश्वनरवत्कर्मं कौतुकी चापि जायते ॥ ८० ॥

उत्तराषाढा नक्षत्र दो ताराओं की युति से हाथी के मांथे पर रखी हुई माला कें समान, विश्वेदेव देवता वाला, गार्गी गोत्र का है । इसमें स्थिर, छत्र, ध्वजा, पताका, मुकुट, कुण्डल, सवारी का, भूमि सम्बन्धी कार्य करना चाहिये । इस में जडहन व साठी धान का बीजारोपण, स्थिर, शान्ति, होम, क्षत्रिय के उपयुक्त, राजाभिषेक, गो समुदाय,

जन समुदाय, देवता, स्थिरता, समस्त शुभ्र शाल, हाथ का बन्धन, हाथी, घोड़ा और मनुष्य के समान कर्म करने वाला कौतुकी का इसमें जन्म होता है ॥७६–८०॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'स्थापनमुण्डनमण्डनवास्तुनिवेशं प्रवेशनाद्यञ्च। बीजारोपण-वाहनभूषणवस्त्रं च वैश्यभे कार्यम्' (१४ प्र० २२ श्लो०) ॥७६–८०॥

इत्युत्तराषाढा—

अभिजित् का देवता तारादि ज्ञान

अभिजिद्ब्रह्मदैवत्यं त्रीणि ताराणि कारयेत्।
यात्रागारसमुद्दिश्य ब्रह्मणो वचनं यथा ॥ ८१ ॥

अभिजित तीन ताराओं के योग से उपलब्ध है। इसका ब्रह्मा देवता है। इसमें यात्रा, मकान सम्बन्धी ही कार्य करना चाहिये। ऐसा सृष्टि कर्ता का कथन है ॥८१॥

विशेष—नक्षत्र प्रायः २७ ही होते हैं। किन्तु मतान्तर से २८वां अभिजित् भी नक्षत्र होता है। इसका परिमाण उत्तराषाढ नक्षत्र के चतुर्थ चरण (अन्तिम २५ घटी के आसन्न) तथा श्रवण के प्रथम पाद के तृतीयांश (लगभग ४ घटी) का योग (लगभग १९ घटी) ही ज्योतिष समाज में सर्वमान्य है। स्पष्ट रूप से अभिजित् का मान चन्द्रमादि की राश्यादि ९। ६। ४०। ० से ९। १०। ५३। २० तक निश्चित किया गया है ॥८१॥

इत्यभिजित्—

श्रवण का स्वरूप, तारा, देवतादि ज्ञान

वैष्णवं श्रवणं विद्याद्वर्तुलं त्रीणि तारकम्।
अगस्त्यं चैव गोत्रेण सर्वकर्माणि कारयेत् ॥ ८२ ॥
यज्ञशालां च कुर्वीत चौलोपनयनानि च।
क्षेत्रारम्भं च कुर्वीत विवाहं च विवर्जयेत् ॥ ८३ ॥
प्रत्यक् द्वाराणि सप्तैते नक्षत्राणि विभागशः।
यदि पीडयते चैव सार्वदिक् च मनीषिणः ॥ ८४ ॥

श्रवण नक्षत्र तीन ताराओं के योग से गोल आकृति वाला, विष्णु देवता और अगस्त्य गोत्र वाला है। इसमें समस्त कार्य करना चाहिये। तथा यज्ञशाला, चौल, उपनयन, घर का खेती का प्रारम्भ करना चाहिये। इसमें विवाह नहीं करना चाहिये। ये विभाग से पश्चिम द्वार वाला नक्षत्र यदि पीडित होता है तो समस्त दिशाओं में विद्वान् दुःखी होते हैं ॥८२–८४॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'शान्तिकपौष्टिकमङ्गलविचित्रकृषिशिल्पमम्बराद्यञ्च। धाम-विधानस्थापनमुपनयनं विष्णुभे कार्यम्' (१४ प्र० २३ श्लो०) ॥८२–८४॥

ज्यो० नि० में भी 'प्रतिष्ठाक्षौरसीमन्तयानोपयनौषधम् । पुरारामगृहारम्भं विष्णुभे पट्टबन्धनम्' (४० पृ० २२ श्लो०) ॥८३–८४॥

इति श्रवणम्—

धनिष्ठा का स्वरूप, तारा, देवतादि ज्ञान

धनिष्ठा वसुदैवत्या चतुस्तारास्तु सा स्मृता ।
मृदङ्गसंस्थिता चैव गोत्रं सङ्ख्यानकं स्मृतम् ॥ ८५ ॥
यात्रापेक्षं च कुर्वीत चौलोपनयनानि च ।
यज्ञारम्भं च कुर्वीत विवाहं च विवर्जयेत् ॥ ८६ ॥
स्वामिदर्शनसन्मानं कारयेद्ग्राहयेत्क्रमात् ।
सर्वविद्यासमारम्भवाहनानि प्रजानि च ॥ ८७ ॥
कुर्वीत गोवृषं चात्र जायते बीजवापने ।
कर्माणि चात्र मुख्यं च जायते कुलसम्भवः ॥ ८८ ॥

धनिष्ठा नक्षत्र चार ताराओं के योग से मृदङ्ग की सी आकृति वाला, वसु देवता और सांख्यायन गोत्र वाला है । इसमें यात्रा, चौल, यज्ञोपवीत, यज्ञ का आरम्भ, स्वामी के दर्शन में सन्मान करना चाहिये और ग्रहण भी करना चाहिये । तथा समस्त विद्याओं का आरम्भ जन्य वाहन जन्य, गाय बैल, सम्बन्धी कार्य (बीज वपन) करना चाहिये । इस में जन्म लेने वाला कुल में मुखिया होता है ॥८५–८८॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'उपनयनं चौलविधि जलतुरगोष्ट्रेभदेवनिर्माणम् । कृषिभवनाहवमम्बरविपिनोद्यानाश्मभूषणं वसुभे' (१४ प्र० २४ श्लो०) ॥८५–८८॥

ज्योतिर्निबन्ध में भी 'वस्त्रोपनयनक्षौरप्रतिष्ठायानभेषजम् । वसुभे वास्तुसीमन्तप्रवेशाश्वेभभूषणम्' (४० पृ० २३ श्लो०) । ८५–८८॥

इति धनिष्ठा—

शतभिषा का स्वरूप तारादि ज्ञान

उदग्द्वारं शतभिषक् वारुणं चात्र दैवतम् ।
कात्यायनी च गौत्रेण ताराश्चैव शतं भवेत् ॥ ८९ ॥
आदानं सम्प्रदानं च मधुमेधं तथैव च ।
गोगाराणि च कुर्वीत नानारम्भं च कारयेत् ॥ ९० ॥
बीजवापनकार्याणि यात्राक्षेत्रं तथैव च ।
मित्रदर्शनसन्मानं स्वामिदर्शनपूर्वकान् ॥ ९१ ॥
गोशाला चाश्वशाला च गजशालादि कारयेत् ।
एषां भैषज्यकर्माणि शुभं चैषां च कारयेत् ॥ ९२ ॥
जयप्रवचनं कुर्यात्तेजस्वी चात्र जायते ।
मत्या च शौर्यसम्पन्नो गुणवान्नृपसंयुतः ॥ ९३ ॥

शतभिषा नक्षत्र सौ ताराओं के योग से उत्तर द्वार संज्ञक, वारुण देवता और कात्यायनी गोत्र वाला है। इसमें आदान, प्रदान, गाय, घर, विविध प्रकार के प्रारम्भ, बीज बोना, यात्रा, खेती, मित्र दर्शन, सन्मान, स्वामिदर्शन, गोशाला, अश्व शाला, हाथी का घर सम्बन्धी कार्य करना चाहिये। तथा गाय आदि की चिकित्सा करवाना चाहिये। विजय जन्य भाषण करना चाहिये। इसमें तेजस्वी, गुणी, राजा से युक्त और विक्रम से युक्त बुद्धिवाला जन्म ग्रहण करता है ॥ ८९-९३ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'समरारम्भविभूषणगजबलतुरगोष्ट्रशस्त्रनावाद्यम्। मुक्ताफलरजतमयं वरुणर्क्षे वास्तुकर्माद्यम्' (१४ प्र० २५ श्लो०) ॥ ८९-९३ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में भी 'प्रवेशस्थापनक्षौरमौञ्जीबन्धनभेषजम्। अश्वाभरणसीमन्तवास्तुकर्म जलेशभे' (४० पृ० २४ श्लो० ॥ ८९-९३ ॥

इति शतभिषा—

पूर्वाभाद्रपदा का स्वरूप तारादि ज्ञान

अजैकपाद्द्वितारं च पूर्वं प्रोष्ठपदं स्मृतम्।
गोत्रेण हारितश्चैव सर्वं चैवात्र जायते ॥ ९४ ॥
तोयदैवतनक्षत्रे यान्युक्तान्यत्र कारयेत् ॥ ९५ ॥

पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र दो ताराओं के योग से, अज चरण देवता व हारित गोत्र वाला है। इसमें सब प्रकार से युक्त मनुष्य का जन्म होता है। इसमें जो कार्य शतभिषा में कहे गये हैं उन्हें करना चाहिये ॥ ९४-९५ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'अजचरणर्क्षे कुर्यात्साहसजलयन्त्रशिल्पकर्माद्यम्। मृद्धातुर्वादच्छेदनकृषिमहिषोष्ट्राजेभविक्रयणम्' (१४ प्र० २६ श्लो०) ॥ ९४-९५ ॥

इति पूर्वाभाद्रपदा--

उत्तराभाद्रपद का स्वरूप तारादि ज्ञान

अहिर्बुध्न्यं द्वितारं च उत्तरप्रोष्ठपाद्विदुः।
आरम्भाणि च कुर्वीत गोत्रेण विषमाणि च ॥ ९६ ॥
परित्यागं च गेहानि वानप्रस्थालयानि च।
कुर्याच्चाश्वनिकांश्चैव वाहनानि च कारयेत् ॥ ९७ ॥
स्वामिदर्शनसन्मानं कारयेद्ग्राहयेत्क्रमात्।
अश्वोष्ट्रगजशालादीन् कारयेद्वै समानि च ॥ ९८ ॥
गोत्रेण काश्यपी चैव अश्वशालादि कारयेत्।
कर्म कुर्वीत यात्रादि लेपनानि शुभानि च ॥ ९९ ॥
विवाहमैत्रसम्बन्धं स्वामिदर्शनमेव च।
एवमादीनि कर्माणि शुभान्यत्र प्रयोजयेत् ॥ १०० ॥

हस्ते पुष्ये च मूले च श्रवणे कथितान् शुभान् ।
सर्वाण्यत्र प्रयुञ्जीत अहिर्बुध्न्ये सुराधिप ॥ १०१ ॥

उत्तराभाद्रपद नक्षत्र दो ताराओं के योग से अहिर्बुंध्न्य देवता व काश्यपी गोत्र वाला है । इसमें विपरीत कार्यों का आरम्भ, स्वामी (मालिक) का दर्शन व सम्मान करना तथा प्राप्त करना चाहिये । परित्याग, घर, वानप्रस्थों के मकान सम्बन्धी काम और अश्विनी में कथित कार्य करना व वाहन (सवारी) सम्बन्धी कार्य, घोड़ा, ऊँट, हाथियों के मकान निर्माण करना, यात्रा, लेपन, शुभ, विवाह मित्रता, स्वामिदर्शन इत्यादि शुभ कार्य एवं हस्त, पुष्य, मूल और श्रवण नक्षत्रों में वर्णित समस्त शुभ कार्य करना चाहिये ॥ ९६-१०१ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'परिणयनं व्रतबन्धनसुरनरसदनप्रतिष्ठाश्च । आहिर्बुंध्न्ये भूषणमम्बरवास्तुप्रवेशमभिषेकम्' ॥ ९६-१०१ ॥

इत्युत्तराभाद्रपदा--

रेवती का स्वरूप तारादि ज्ञान

रेवती पौष्णदैवत्या द्वात्रिंशत्तारका विदुः ।
मनीषिणं व्रजं कुर्याद्विवाहकरणानि च ॥ १०२ ॥
पौष्णमैत्रमुहूर्ते च ब्राह्मे वा पैतृकानले ।
स्वामिदर्शनसन्मानं शुभं राज्याभिषेचनम् ॥ १०३ ॥
वर्जयेद्याम्यदिग्यानं शवदाहं च वर्जितम् ।
मृदुं च मर्दलाकारं गर्गगोत्रं च भं तथा ॥ १०४ ॥
स्थावराणि च कुर्वीत देवस्थानान्यनुग्रहात् ।
प्रतिष्ठादीनि कुर्वीत विशेषात्स्थावराणि च ॥ १०५ ॥
क्षेत्रारम्भं च कुर्वीत यात्रारम्भं तथैव च ।
अञ्जनं वस्त्रमाङ्गल्यं विद्यारम्भं च कारयेत् ॥ १०६ ॥
तेजस्वी वा विशुभ्रश्च पण्डितश्चात्र जायते ।
अहिबुंध्न्ये तु यत्प्रोक्तं तत्सर्वं चात्र कारयेत् ॥ १०७ ॥

रेवती नक्षत्र बत्तीस ताराओं के योग से पौष्ण देवता वाला है । इसमें विद्या, गोशाला, विवाह, सम्बन्धी कार्य करना चाहिये । पौष्ण, मैत्र ब्राह्म मुहूर्त में वा पैतृक, अनल में अपने स्वामी का दर्शन व सन्मान शुभ, राजाभिषेक करना चाहिये । इस नक्षत्र में दक्षिण दिशा की यात्रा तथा शव का दाह नहीं करना चाहिये । इसकी मृदु संज्ञा व ढोल की सी आकृति व गर्ग गोत्र है । इसमें स्थिर, देवस्थान, प्रतिष्ठा, गृहारम्भ, यात्रा आँजन, वस्त्र, माङ्गलिक, विद्यारम्भ करना तथा कराना चाहिये । इसमें सफेद वर्ण, वा तेजस्वी विद्वान् का जन्म होता है । और उत्तरा भाद्रपद में जो कहा गया है । वह भी करना चाहिये ॥ १०२-१०७ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'स्थलजलभूषणमखिलं धामविधानं त्वमर्त्यमर्त्यानाम् । करपीडनमुपनयनं मङ्गलमखिलं च पौष्णभे कार्यम्' (१४ प्र० २८ श्लो०) ॥१०२-१०७॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में भी 'विवाहव्रतबन्धाश्च प्रतिष्ठायानभूषणम् । (प्रवेशवस्त्र-सीमन्त क्षौरभेषजमन्त्यभे' (४१ पृ० २५ श्लो०) ॥ १०२–१०७ ॥

इति रेवती—

अश्विनी का स्वरूप, तारादि ज्ञान

अश्विनी दैवतं क्षिप्रं आश्विनद्वित्रितारकम् ।
क्षिप्रकर्माणि सर्वाणि चौलोपनयनानि च ॥ १०८ ॥

स्वामिदर्शनसन्मानं कर्मण्यत्र प्रयोजयेत् ।
यात्रान्नप्राशनादीनि गजाश्वानां शुभानि च ॥ १०९ ॥

एषां स्थानानि चारम्भः प्रवेशादीनि कारयेत् ।
ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च सूरश्च मेधावी चात्र जायते ॥ ११० ॥

अश्विनी नक्षत्र दो ३ ताराओं की युति से, अश्विनी कुमार देवता व क्षिप्र संज्ञा वाला है । इसमें समस्त क्षिप्र, चौल, यज्ञोपवत, प्रभु दर्शन व सन्मान यात्रा, अन्न प्राशनादि शुभ कार्य, हाथी, घोड़ा का मकान निर्माण व प्रवेश सम्बन्धी कार्य करना चाहिये । इसमें महान्, उत्तम, वीर मेधावी का जन्म होता है ॥ १०८–११० ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'यात्राभेषजभूषणविद्याश्वेभाजशिल्पवस्त्राद्यम् । उत्सव-मङ्गलकार्यं कर्त्तव्यं दस्रनक्षत्रे' (१४ प्र० २ श्लो०) ॥ १०८–११० ॥

और भी ज्योतिर्निबन्ध में 'वस्त्रोपनयनक्षौरसीमन्ताभरणक्रिया । स्थापनाश्वे-भयानास्त्रकृषिविद्यादयोऽश्विभे' (४० पृ० ३ श्लो०) ॥ १०८–११० ॥

इत्यश्विनी—

भरणी का स्वरूप, तारादि ज्ञान

याम्यं त्रितारं चोग्रं च भरणीयमदैवतम् ।
मौद्गल्याय च गोत्रेण क्रूरकर्माणि कारयेत् ॥ १११ ॥

जायते वरुणश्चात्र सर्वकर्माणि कारयेत् ।
विषनाड्यां भरण्यां च क्रूरवारेण संयुते ॥ ११२ ॥

रिक्तातिथियुते तत्र क्रूरकर्माणि कारयेत् ।
जायते अभिकुर्वन्ति सर्वकर्माणि साधयेत् ॥ ११३ ॥

त्रिपूर्वे चैव नक्षत्रे पूर्वोक्तं कर्म दारुणम् ।
तत्सर्वं याम्यनक्षत्रे कुर्वीत मघवन् क्रमात् ॥ ११४ ॥

उदग्द्वाराणि सर्वाणि सप्तैतानि न संशयः ।
उद्धूकश्चैव पीडयते उत्तराश्वदिशस्तथा ॥ ११५ ॥
एवं कर्मगुणं प्रोक्तं तारायाश्चानुसङ्ख्यया ।
देवताश्चैव गोत्रेण नक्षत्राणां समासतः ॥ ११६ ॥

भरणी नक्षत्र तीन ताराओं के योग से यम देवता व मौद्गल्य गोत्र वाला है। इसमें वरुण का जन्म होता है। तथा समस्त कठिन काम करना चाहिये। यदि इसकी विषनाडी, क्रूर वार, रिक्ता इनके योग में किसी क्रूर कार्य का आरम्भ किया जाता है तो उसकी सिद्धि होती है। तीनों पूर्वाओं में भी उक्त दारुण तथा भरणी में भी पूर्वादि क्रम से कार्य करना चाहिये ये उत्तर द्वार संज्ञक सात है। इसमें उत्कट भक्त या मेरी समझ में जन्म लेने वाला कष्ट पाता है तथा उत्तर पूर्व दिशा में इसके पीडित होने पर दुःख होता है ॥

इस प्रकार मैंने नक्षत्रों की तारा संख्या, देवता, गोत्र, कार्य गुणों का भरणी आदि क्रम से वर्णन पूर्ण किया ॥ १११-११६ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'साहसदारुणशत्रुप्रशमननिक्षेपकूपकृष्याद्यम् । विषवधबन्धनदहनप्रहरणकार्याणि भरणीषु' (१४ प्र० ३ श्लो०) ॥ १११-११६ ॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में भी 'वापीकूपतडागादि विषशस्त्रोग्रदारुणम् ॥ विलप्रवेशगणितनिक्षेपा याम्यभे शुभाः' (४० पृ० ४ श्लो०) ॥ ११६-११६ ॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में लल्लाचार्य जी का वाक्य तारा विषय में। यथा—'शिखिशिखिरसशरगुणशशिकृतगुणरसविषययमलयमविषयाः । शशिशशिकृतयुगगुणशिवयुगगुणदहनजलधिशतममलाः । यमलरदा साभिजितास्तारासङ्ख्येयमाश्विनादीनाम् । तारामितैरहोभिर्मासैरब्दैश्च फलपाकः ।

तुरगमुखसदृक्षं योनिरूपं क्षुराभं शकटसममथैणस्योत्तमाङ्गेन तुल्यम् । मणिगृहशरचक्राभानि शालोपप्नं भं शयनसदृशमन्यश्चात्र पर्यङ्करूपम् । हस्ताकारमतश्च मौक्तिकसमं चान्यत्प्रवालोपमं धिष्ण्यं तोरणवत्स्थितं मणिनिभं सत्कुण्डलाभं परम् । क्रुध्यत् केसरिविक्रमेण सदृशं शय्यासमानं परं चान्यद्दन्तिविलासवत् स्थितमितः शृङ्गारकव्यक्ति च । त्रिविक्रमाभं च मृदङ्गरूपं वृत्तं ततोऽन्ययमलद्वयाभम् । पर्यङ्कतुल्यं मुरजानुकारमित्येवमश्वादिभचक्ररूपम्' यह श्रीपति का कथन है। (४३ पृ० ५७-६१ श्लो०) ॥१११-११६॥

इति भरणी—

अथ नक्षत्रे वृक्षोत्पत्तिः तदाह नारदः—

अब आगे किस नक्षत्र में किस वृक्ष की उत्पत्ति हुई है, इसे बताते हैं। इसे कहने का तात्पर्य यह है कि नक्षत्र दोष रहने पर तदुद्भव वृक्ष की पूंजा करने से शान्ति होती है। अतः कहना आवश्यक था।

स्पष्टार्थ तारा सारिणी

न. क्रम सं.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
नक्षत्र	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृ. शि.	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	श्लेषा	मघा	पू. फा.	उ. फा.	हस्त	चित्रा
तारा संख्या	३	३	६	५	३	१	४	३	५	५	२	२	५	१
न. क्रम स.	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
नक्षत्र	स्वाती	विशा.	अनु.	ज्येष्ठा	मूल	पू. षा.	उ. षा.	अभि.	श्रव.	धनि.	शतभिषा	पू. भा.	उ. भा.	रेवती
	१	४	४	३	११	२	२	३	३	४	१००	२	२	३२

नक्षत्राधिप सारिणी

न. क्रम सं.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
नक्षत्र	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृ. शि.	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	श्लेषा	मघा	पू. फा.	उ. फा.	हस्त	चित्रा
देवता	अ. कु.	यम	अग्नि	ब्रह्मा	चन्द्र	शिव	अदित	बृहस्प.	सर्प	पितर	भग.	अर्यमा.	रवि	विश्व
नक्षत्र	स्वाती १५	विशा. १६	अनु. १७	ज्येष्ठा १८	मूल १९	पू. षा. २०	उ. षा. २१	अभि. २२	श्रव. २३	धनि. २४	शतभि. २५	पू. भा. २६	उ. भा. २७	रेवती २८
देवता	वायु	इन्द्राग्नि	मित्र	इन्द्र	राक्षस	जल	वि. दे.	ब्रह्मा	विष्णु	वसु	वरुण	अजपाद	अहिर्बु.	पूषा

वृक्षोऽश्विभाद्याम्यधिष्ण्यजो मकरस्तरुः ।
उदुम्बरश्चाग्निधिष्ण्ये रोहिण्यां जम्बुकस्तरुः ॥ ११७ ॥

इन्दुभात्खदिरो जातः कृष्णपक्षस्तु रौद्रभात् ।
सम्भूतो दितिभाद्वीशः पिप्पलः पुष्यसम्भवः ॥ ११८ ॥

सार्पधिष्ण्यान्नागवृक्षो वटः पितृभसम्भवः ।
पलाशो भाग्यभाज्जातः प्लक्षश्चार्यमसम्भवः ॥ ११९ ॥

अरिष्टवृक्षो रविभाच्छ्रीवृक्षस्त्वाष्ट्रसम्भवः ।
स्वात्यर्क्षजोऽर्जुनो वृक्षो द्विदैवत्याद्विकङ्कतः ॥ १२० ॥

मित्रभाद्वकुलो जातोऽरिष्टः पौरन्दरर्क्षजः ।
सर्ववृक्षो मूलभाच्च जम्बुश्चाम्बुनिधिः स्मृतः ॥ १२१ ॥

पनसो वैश्वभाज्जातश्चार्कवृक्षश्च विष्णुभात् ।
वसुधिष्ण्याच्छमीजातः कदम्बो वरुणर्क्षजः ॥ १२२ ॥

अजैकपाच्चूतवृक्षोऽहिर्बुध्न्यादेव मण्डुकः ।
मधुवृक्षः पौष्ण्यधिष्ण्याद्धिष्णवृक्षं प्रपूजयेत् ॥ १२३ ॥

अश्विनी व भरणी नक्षत्र में जलोद्भव, कृत्तिका में गूलर, रोहिणी में जामुन, मृगशिरा में खैर, आर्द्रा में कृष्णपक्ष, पुनर्वसु में वोश, पुष्य में पीपल, श्लेषा में नाग केसर, मघा में वट, पूर्वाफाल्गुनी में ढाक, उत्तरा फाल्गुनी में पाकर, हस्त में रीठा, चित्रा में बेल, स्वाती में अर्जुन, विशाखा में कटाय, अनुराधा में मोलसरी, ज्येष्ठा में रीठा, मूल में समस्त, पूर्वाषाढा में जम्बु, उत्तराषाढा में कटहल, श्रवण में आक, धनिष्ठ में छोंकरा, शतभिषा में कदम्ब, पूर्वाभाद्रपदा में आम, उत्तराभाद्रपदा में सोना पाठा और रेवती नक्षत्र में मधु वृक्ष की उत्पत्ति है। इस लिये नक्षत्र में अशुभता होने पर उस वृक्ष की पूजा करना चाहिये ॥११७-१२३॥

ज्योतिर्निबन्ध में इसके कुछ विपरीत वाक्य नारद के प्राप्त होते हैं। यथा—विषवृक्षोऽश्विभो याम्ये धिष्ण्ये चामलकस्तरुः । उदुम्बरो वन्हिधिष्ण्ये कभे जम्बुद्रुमो भवेत् । इन्दुभात् खदिरो जातः कलिवृक्षस्तु रुद्रभात् । संभूतोऽदितिभाद्वंश पिप्पःल पुष्यसंभवः । स्वात्यर्क्षादर्जुनो जातो द्विदैवत्याद्विकङ्कतः । मित्रभाद्वकुलो जातो लक्ष्मीः पौरन्दरर्क्षजाः ! मूलर्क्षात्सर्जवृक्षश्च वकुलो वारिधिष्ण्यजः । पनसोवैश्वभाज्जातो ह्यर्कवृक्षस्तु विष्णुभात् । वसुधिष्ण्याच्छमी जातः कदम्बो वारुणर्क्षजः । अजैपयाच्चूतवृक्षोऽहिर्बुन्याल्पिचुमन्दकः । मधुवृक्षः पौष्ण्यधिष्ण्याद्विष्णुवृक्षं प्रपूजयेत् । अरियोनिश्चारिवृक्षः पीडनीयः प्रयत्नतः' (४३ पृ० ६७–७२ श्लो०) ॥११७–१२६॥

अब आगे किस नक्षत्र के आश्रित कौन-कौन पदार्थ होते हैं। इसे वराहमिहिराचार्य जी वचनों से बताते हैं।

अथ नक्षत्रव्यूहः वाराहीसंहितायाम्—

कृत्तिका के आश्रित पदार्थ

[1]आग्नेये सितकुसुमाहिताग्निमन्त्रज्ञसूत्रभाष्यज्ञाः।
आकरिकनापितद्विजघटकारपुरोहिताब्दज्ञाः ॥ १२४ ॥

बृहत्संहिता में कहा है कि कृत्तिका नक्षत्र के आश्रित श्वेत पुष्प, अग्निहोत्री, मन्त्र का जानने वाला, यज्ञ वेत्ता, वैयाकरण, खान, नाऊ, ब्राह्मण, कुम्हार, पुरोहित और ज्योतिषी ये पदार्थ बताये हैं ॥१२४॥

रोहिणी के आश्रित पदार्थ

[2]रोहिण्यां सुव्रतपुण्यभूपधनियोगयुक्तशाकटिकाः।
गोवृषजलचरकर्षकशिलोच्चयैश्वर्यसम्पन्नाः ॥ १२५ ॥

रोहिणी नक्षत्र के आश्रित सुव्रत, व्यापारिक वृत्ति, राजा, योगी, गाड़ी से जीविका चलाने वाले, गाय, बैल, जल में रहने वाले जन्तु, किसान, पर्वत और ऐश्वर्य से युक्त ये पदार्थ हैं ॥१२५॥

मृगशिरा के आश्रित पदार्थ

[3]मृगशिरसि सुरभिवस्त्राब्जकुसुफलरत्नवनचरविहङ्गाः।
मृगसोमपीथिगान्धर्वकामुकालेहहाराश्च ॥ १२६ ॥

मृगशिरा नक्षत्र के आश्रित सुगन्धियुक्त द्रव्य, वस्त्र, जलोत्पन्न, फूल, फल, रत्न, वनवासी, पक्षी, हिरन, सोमरस पीनेवाला, गवैया, विषयी और पत्रवाहक ये पदार्थ हैं ॥१२६॥

आर्द्रा के आश्रित पदार्थ

[4]रौद्रे वधबन्धानतपरदारस्तेयशाठ्यभेदरताः।
तुषधान्यतीक्ष्णमन्त्राभिचारवेतालकर्मज्ञाः ॥ १२७ ॥

आर्द्रा नक्षत्र के आश्रित हिंसक, बांधने वाला, झूठ बोलने वाला, परस्त्रीगामी, चोर, धूर्त, भेद कराने वाला, भूसी वाले धान्य, क्रूर, मन्त्रशास्त्र वेत्ता, अभिचारज्ञ और वेताल के उत्थापन कार्य का ज्ञाता ये पदार्थ हैं ॥१२७॥

---

१. बृ० सं० १५ अ० १ श्लो०।
२. बृ० सं० १५ अ० २ श्लो०।
३. बृ० सं० १५ अ० ३ श्लो०।
४. बृ० सं० १५ अ० ४ श्लो०।

पुनर्वसु के आश्रित पदार्थ

[१]आदित्ये सत्यौदार्यशौचकुलकुरूपधीयशोर्थऽयुताः ।
उत्तमधान्यं वणिजः मेवाभिरताः सशिल्पिजनाः ॥ १२८ ॥

पुनर्वसु नक्षत्र के आश्रित सच बोलने वाला, दानी, पवित्र, दूसरे के धन में प्रीति न रखने वाला, कुलीन, सुन्दर, बुद्धिमान, यशस्वी, धनी, उत्तम, धान्य, वनिया, नौकर और चित्रकारी का ज्ञाता ये पदार्थ हैं ॥१२८॥

पुष्य के आश्रित पदार्थ

[२]पुष्ये यवगोधूमाः शालीक्षुवनानि मान्त्रिणो भूपाः ।
सलिलोपजीवनः साधवश्च यज्ञेष्टिसक्ताश्च ॥ १२९ ॥

पुष्य नक्षत्र के आश्रित जौ, गेहूँ, धान्य, गन्ना, वन, मन्त्री, राजा, जल जीवी, सज्जन और यज्ञ ज्ञाता ये पदार्थ हैं ॥१२९॥

आश्लेषा के आश्रित पदार्थ

[४]अहिदेवे कृत्रिमकन्दमूलफलकीटपन्नगविषाणि ।
परधनहरणाभिरतास्तुषधान्यं सर्वभिषजश्च ॥ १३० ॥

आश्लेषा नक्षत्र के आश्रित कृत्रिम द्रव्य, कन्द, मूल, फल, कीड़ा, सर्प, विष, परधन हारी, भूसी वाले धान्य और समस्त औषधि करने वाला ये पदार्थ हैं ॥१३०॥

मघा के आश्रित पदार्थ

[३]पित्र्ये धनधान्याढ्याः कोष्ठागाराणि पर्वताश्रयिणः ।
पितृभक्तिवणिक्सूराः क्रव्यादाः स्त्रीद्विषो मनुजाः ॥ १३१ ॥

मघा नक्षत्र के आश्रित धनधान्य से संपन्न, कोष्ठ, घर, पहाड़ों का आश्रय करने वाले, माता पिता के भक्त, व्यापारी, वीर, मांसाहारी और स्त्रीद्वेषी ये पदार्थ हैं ॥१३१॥

पूर्वाफाल्गुनी के आश्रित पदार्थ

[५]प्राक्फाल्गुनीषु नटयुवतीसुमनगान्धर्वशिल्पियण्यानि ।
कार्पासलवणमाक्षिकतैलानि कुमारकाश्चापि ॥ १३२ ॥

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र के आश्रित नाचने वाले स्त्री, भाग्यवान्, गायक, चित्रकारी का ज्ञाता, व्यापार, रुई, नमक, शहद, तेल और बालक ये पदार्थ हैं ॥१३२॥

---

१. बृ० सं० १५ अ० ५ श्लो० ।
२. बृ० सं० १५ अ० ६ श्लो० ।
३. बृ० सं० १५ अ० ७ श्लो० ।
४. बृ० सं० १५ अ० ८ श्लो० ।
५. बृ० सं० १५ अ० ९ श्लो० ।

उत्तराफाल्गुनी के आश्रित पदार्थ

[1]आर्यम्णे मार्दवशौचविनयपाखण्डिदानशास्त्ररताः ।
शोभनधान्यमहाधनधर्मानुरताः समनुजेन्द्राः ॥ १३३ ॥

उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के आश्रित कोमल हृदय वाला, शुद्ध, विजयी, पाखण्डी (वेद निन्दक), दानी, शास्त्रों में आसक्त, सुन्दर धान्य, अतिशय धनी, कर्म में निरत और राजा ये पदार्थ हैं ।।१३३।।

हस्त के आश्रित पदार्थ

[2]हस्ते तस्करकुञ्जररथिकमहामन्त्रशिल्पिपण्यानि ।
तुषधान्यं श्रुतयुक्ता वणिजस्तेजोयुताश्चात्र ॥ १३४ ॥

हस्त नक्षत्र के आश्रित चोर, हाथी, रथ पर चलने वाले, हस्ति साधन पति, शिल्पी, व्यापार, भूसी वाले धान्य, शास्त्र में आसक्त, वनिया और तेजस्वी ये पदार्थ हैं ।।१३४।।

चित्रा के आश्रित पदार्थ

[3]त्वाष्ट्रे भूषणमणिरागलेख्यगान्धर्वगन्धियुक्तज्ञाः ।
गणितपटुतन्तुवायाः शालक्या राजधान्यानि ॥ १३५ ॥

चित्रा नक्षत्र के आश्रित अलङ्कार ज्ञाता, मणिवेत्ता, रंगरेज, लेखक, गायक, सुगन्धित द्रव्य बनाने वाला, गणितज्ञ, जुलाहा, नेत्र रोग चिकित्सक और राजोपयोगी धान्य ये पदार्थ हैं ।।१३५।।

स्वाती के आश्रित पदार्थ

[4]स्वातौ खरमृगतुरगा वणिजो धान्यवातबहुलानि ।
अस्थिरसौहृदलघुसत्त्वतापसाः पण्यकुशलाश्च ॥ १३६ ॥

स्वाती नक्षत्र के आश्रित पक्षी, मृग, (वन प्राणी) घोड़ा, बनिया, धान्य, (साठी) चनादि, स्थिर मित्र, लघु (छोटे) जीव, तपस्वी और व्यापर में कुशल ये पदार्थ हैं ।।१३६।।

विशाखा के आश्रित पदार्थ

[5]इन्द्राग्निदैवते रक्तपुष्पफलशाखिनः सतिलमुद्गः ।
कार्पासमाषचणकाः पुरन्दरहुताशभक्ताश्च ॥ १३७ ॥

विशाखा नक्षत्र के आश्रित लाल फूल व फल, वृक्ष, तिल, मूंग, रुई, चना, उर्द, इन्दु और अग्नि का भक्त ये पदार्थ हैं ।।१३७।।

---

१. वृ० सं० १५ अ० १० श्लो० ।
२. वृ० सं० १५ अ० ११ श्लो० ।
३. वृ० सं० १५ अ० १२ श्लो० ।
४. वृ० सं० १५ अ० १३ श्लो० ।
५. वृ० सं० १५ अ० १४ श्लो० ।

अनुराधा के आश्रित पदार्थ

[1]मैत्रे शौर्यसमेता गणनायकसाधुगोष्ठियानरताः ।
ये साधवश्च लोके सर्वं च शरत्समुत्पन्नम् ॥ १३८ ॥

अनुराधा नक्षत्र के आश्रित बलवान्, समूह में प्रधान, साधु–दिल्लगी–सवारी या गमन में आसक्त, जनपदों का सज्जन और शरत्कालीन धान्य ये पदार्थ हैं ॥१३८॥

ज्येष्ठा के आश्रित पदार्थ

[2]पौरन्दरेऽतिशूराः कुलवित्तयशो न्विताः परस्वहृताः ।
विजिगीषवो नरेन्द्राः सेनानां चापि नेतारः ।। १३९ ॥

ज्येष्ठा नक्षत्र के आश्रित अधिक वीर, कुलीन, धनी, यशस्वी, परवित्तापहारी, दूसरे को जीतने की इच्छा करने वाला राजा और सेना नायक ये पदार्थ हैं ॥१३९॥

मूल के आश्रित पदार्थ

[3]मूले भेषजभिषजो गणमुख्याः कुसुममूलफलवार्ताः ।
बीजान्यतिधनयुक्ताः फलैर्मूलैर्ये च वर्त्तन्ते ॥ १४० ॥

मूल नक्षत्र के आश्रित औषधि, वैद्य, समूह में प्रधान, पुष्प, मूल व फल से जीविका चलाने वाला, समस्त बीज, अधिक धनी, फलाहारी और कन्दाहारी ये पदार्थ हैं ।।१४०॥

पूर्वाषाढा के आश्रित पदार्थ

[4]आप्ये मृदवो जलमार्गगामिनः सत्यशौचधनसंयुक्ताः ।
सेतुकरवारिजीवकफलकुसुमान्यम्वुजातानि ॥ १४१ ॥

पूर्वाषाढा नक्षत्र के आश्रित कोमल हृदयवाला, जलमार्ग से चलने वाले, सत्य भाषी, पवित्र, धनी, पुल बनाने वाला, जल जीवी, फल, पुष्प और जल में उत्पन्न ये पदार्थ हैं ॥१४१॥

उत्तराषाढा के आश्रित पदार्थ

[5]विश्वेश्वरे महामात्रमल्लकरितुरगदेवताभक्ताः ।
स्थावरयोधा भोगान्विताश्चजे चौजसा युक्ताः ॥ १४२ ॥

उत्तराषाढा नक्षत्र के आश्रित प्रधान, मल्ल (कुश्ती लड़ने वाला) हाथी, घोड़ा, देव भक्त, स्थिर, युद्ध में चतुर, भोगी और तेजस्वी ये पदार्थ हैं ॥१४२॥

---

१. वृ० सं० १५ अ० १५ श्लो० ।
२. वृ० सं० १५ अ० १६ श्लो० ।
३. वृ० सं० १५ अ० १७ श्लो० ।
४. वृ० सं० १५ अ० १८ श्लो० ।
५. वृ० सं० १५ अ० १६ श्लो० ।

श्रवण के आश्रित पदार्थ

[1]श्रवणे मायापटवो नित्योद्युक्ताश्च कर्मं सुमर्थाः ।
उत्साहिनः सधर्मा भागवताः सत्यवचनाश्च ॥ १४३ ॥

श्रवण नक्षत्र के आश्रित मायावी, प्रपञ्ची, सदा कामों में उद्यत, उत्साही, धार्मिक, भगवद् भक्त और सच बोलने वाला ये पदार्थ हैं ॥१४३॥

धनिष्ठा के आश्रित पदार्थ

[2]वसुभे मानोन्मुक्ताः क्लीबाश्चलसौहृदाः स्त्रियां द्वेष्याः ।
दानाभिरता बहुवित्तसंयुताः शमपराश्च नराः ॥ १४४ ॥

धनिष्ठा नक्षत्र के आश्रित अभिमान शून्य, नपुंसक, अस्थिर मित्रता करने वाला, स्त्रीद्वेषी, दानी, बहुत धनी और जितेन्द्रिय ये पदार्थ हैं ॥१४४॥

शतभिषा के आश्रित पदार्थ

[3]वरुणेशे पाशिकमत्स्यध्वजबन्धजलजानि जलचरा जीवाः ।
सौकरिकरजकशौण्डिकशाकुनिकाश्चापि वर्गेऽस्मिन् ॥ १४५ ॥

शतभिषा नक्षत्र के आश्रित जाल से प्राणियों को मारने वाला, मछली मारने वाला, जल में उत्पन्न, जलचर जन्तुओं से जीविका चलाने वाला, डोम, धोबी, मद्य विक्रेता और पक्षियों को मारने वाला ये पदार्थ हैं ॥१४५॥

पूर्वाभाद्रपदा के आश्रित पदार्थ

[4]आजे तस्करपशुपालहिंस्रकीनाशनीचशठचेष्टाः ।
धर्मव्रतैर्विरहिता नियुद्धकुशलाश्च ये मनुजाः ॥ १४६ ॥

पूर्वाभाद्रपदा के आश्रित चोर, पशुपालक, क्रूर. क्षुद्र, नीच, धूर्त, विधर्मी, व्रतहीन, और बाहुयुद्ध में कुशल ये पदार्थ हैं ॥१४६॥

उत्तराभाद्रपदा के आश्रित पदार्थ

[5]आहिर्बुध्न्ये विप्राः क्रतुदानतपोयुता महाविभवाः ।
आश्रमिणः पाखण्डा नरेश्वराः सारधान्यं च ॥ १४७ ॥

उत्तराभाद्रपदा के आश्रित ब्राह्मण, यज्ञ करने वाला, दानी, तपस्वी, अधिक धनी, चतुराश्रम में रहने वाला, वेदनिन्दक, राजा और उत्तम धान्य ये पदार्थ हैं ॥१४७॥

---

१. बृ० सं० १५ अ० २० श्लो० ।
२. बृ० सं० १५ अ० २१ श्लो० ।
३. बृ० सं० १५ अ० २२ श्लो० ।
४. बृ० सं० १५ अ० २३ श्लो० ।
५. बृ० सं० १५ अ० २४ श्लो० ।

रेवती के आश्रित पदार्थ

[1]पौष्ण्ये सलिलजफलकुसुमलवणमणिशङ्खमौक्तिकाब्जानि ।
सुरभिकुसुमानि गन्धा वणिजो नौकर्णधाराश्च ॥ १४८ ॥

रेवती नक्षत्र के आश्रित जलोत्पन्न, फल, फूल, नमक, रत्न, शङ्ख, मोती, सुगन्ध युक्त कमलादि फूल, सुगन्ध, वनिया और नाविक ये पदार्थ हैं ॥१४८॥

अश्विनी के आश्रित पदार्थ

[2]अश्विन्यामश्वहरा सेनापतिवैद्यसेवकास्तुरगाः ।
तुरगारोहाश्च वणिग्रूपोपेतास्तुरगरक्षाः ॥ १४९ ॥

अश्विनी नक्षत्र के आश्रित घोड़े को चुराने वाला, सेनापति, वैद्य, सेवक, घोड़ा, घोड़े पर चढ़ने वाला, वनिया, सुन्दर और घोड़े का रक्षक ये पदार्थ हैं ॥१४९॥

भरणी के आश्रित पदार्थ

[3]याम्येसृक्पीडितभुजाः क्रूरा बधबन्धताडनासक्ताः ।
तुषधान्यं नीचकुलोद्भवा विहीनाश्च सत्त्वेन ॥ १५० ॥

भरणी नक्षत्र के आश्रित रक्त मिश्रित मांस खाने वाला, क्रूर, वध, बन्धन और ताडन करने वाला, भूसी के धान्य, नीचकुलोत्पन्न और उदारता से रहित ये पदार्थ हैं ॥१५०॥

अब आगे किन-किन नक्षत्रों की कौन-कौन सी जाति है या यों समझिये कि विप्र (ब्राह्मण), क्षत्रियादि वर्ण के कौन-कौन नक्षत्र हैं । इसे बताते हैं ।

ब्राह्मणादि जातियों के नक्षत्र

[4]पूर्वात्रियं सानलमग्रजानां राज्ञां तु पुष्येण सहोत्तराणि ।
सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम् ॥ १५१ ॥

[5]आदित्यहस्ताभिजिदाश्विनानि वणिग्जनानां प्रवदन्ति भानि ।
मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाः ॥१५२॥

[6]सौम्यैन्द्रचित्रावसुदैवतानि सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि ।
सार्पं विशाखा श्रवणो भरण्यश्चाण्डालजातेरिति निर्दिशन्ति ॥१५३॥

---

१. बृ० सं० १५ अ० २५ श्लो० ।
२. बृ० सं० १५ अ० २६ श्लो० ।
३. बृ० सं० १५ अ० २७ श्लो० ।
४. बृ० सं० १५ अ० २८ श्लो० ।
५. बृ० सं० १५ अ० २९ श्लो० ।
६. बृ० सं० १५ अ० ३० श्लो० ।

ब्राह्मण जाति के पूर्वाफाल्गुनी, पूर्षाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और कृत्तिका, क्षत्रिय जाति के उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और पुष्प, किसान जाति के रेवती, अनुराधा, मघा और रोहिणी, वैश्य जाति के पुनर्वसु हस्त, अभिजित् और अश्विनी, क्रूर मनुष्यों के मूल, आर्द्रा, स्वाती और शतभिषा, सेवकों के मृगशिरा, ज्येष्ठा, चित्रा और धनिष्ठा तथा चाण्डाल जाति के आश्लेषा, विशाखा, श्रवण और भरणी ये नक्षत्र हैं ॥१५१--१५३॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'हुतवहदेवं पूर्वास्तिस्रोऽपि विप्रगणस्य भानि स्युः । तिस्र-स्तथोत्तरा नृपगणस्य पुष्यश्च विज्ञेयः । हस्तोऽभिजिदश्विन्यः पुनर्वसुश्चेति वणिजां स्युः । पैत्र्यं पौष्णं मैत्रं प्राजापत्यं च कर्षकजनस्य । सेवकजनस्य चित्रा सौम्येन्द्रवासवं च चत्वारि । मूलं रौद्रं स्वाती वारुणमपि चोग्रजातीनाम् । चाण्डालानां भरणी सार्पं चेन्द्राग्निविष्णुदैवं च । सप्तानां जातीनामेभ्यः सदसत् फलं ज्ञेयम्' (४२ पृ० ६२–६५) ॥१५१–१५३॥

पीडित नक्षत्र ज्ञान

[1]रविरविसुतभोगमागतं क्षितिसुतभेदनवक्रदूषितम् ।
ग्रहणगतमथोल्कया हतं नियतमुखाकरपीडितं च यत् ॥ १५४ ॥

[2]तदुपहतामिति प्रचक्षते प्रकृतिविपर्यययातमेव वा ।
निगदितपरवर्गदूषितं कथितविपर्ययगं समृद्धये ॥ १५५ ॥

यदि नक्षत्र शनि व सूर्य के भोग में हो, मङ्गल के भेदन या वक्रगमन से दूषित, ग्रहण कालिक, उल्का से हत, चन्द्रकिरण से पीडित या स्वाभाविक उत्तम गुण से हीन होता है तो उसे मुनि लोग पीडित बताते हैं। जब नक्षत्र पीडित होता है तो उस जाति के लोग दुःखी होते हैं। अपीडित होने पर उस जाति की वृद्धि होती है ॥१५४–१५५॥

कश्यप ऋषि ने भी कहा है 'शनैश्चरस्य सूर्यस्य यदृक्षं भोगमागतम् । धरित्रीतनयेनापि भिन्नं वक्रप्रदूषितम् । राहुग्रस्तमथोल्काभिर्हतमुत्पातदूषितम् । चन्द्रेण पीडितं यच्च प्रकृतेरन्यथास्थितम् ॥ तच्चोपहतकं विन्द्यान्नक्षत्रं हन्ति सर्वदा । स्ववर्गमन्यथा नित्यं पुष्णाति निरुपद्रवम्' ॥१५४–१५५॥

प्रकारान्तर से पीडित नक्षत्र ज्ञान

विद्धं व्योमचरैर्विभिन्नमपि यल्लत्ताहतं राहुणा
युक्तं क्रूरयुतं विमुक्तमथ यद्भोग्यं तथोपग्रहैः ।
दुष्टं यद्ग्रहणोपगं पशुपतेश्चण्डायुधेनाहतं
चोत्पातग्रहयुद्धपीडितमथो यद्धूमितं केतुना ॥ १५६ ॥

---

१. बृ० सं० १५ अ० ३१ श्लो० ।
२. बृ० सं० १५ अ० ३२ श्लो० ।

पश्चात् सन्ध्याहतं चोल्काभिहितं पातदूषितम् ।
यच्चैकार्गलविद्धं तत्पीडितं भं विनिर्दिशेत् ॥ १५७ ॥

जो नक्षत्र पापग्रहों से विद्ध, भेदित, लत्ता से दूषित, राहु से युक्त, पापग्रह से युक्त, वियुक्त, भोग्य हो, उपग्रह से दूषित, ग्रह कालिक, शिवास्त्र से हत, उत्पात से युक्त, ग्रह युद्ध से युक्त, केतु से धूमित, सायं सन्ध्यागत, उल्का से पीडित, पापग्रह से दूषित और अर्गला से विद्ध नक्षत्र पोडित होता है ॥१५६–१५७॥

वाराहः—

पीडित नक्षत्र का फल

नक्षत्रजमुद्वाहे फलमब्दैस्तारकामतैः सदसत् ।
दिवसैर्ज्वरस्य नाशो व्याधेरन्यस्य वा वाच्यः ॥ १५८ ॥

आचार्य वराहमिहिर ने कहा है कि पीडित नक्षत्र में विवाह करने पर उस नक्षत्र की तारा संख्या तुल्य वर्ष में अशुभ फल की प्राप्ति और शुद्ध नक्षत्र में करने पर शुभ फल की प्राप्ति और ज्वर आने पर उतने दिनों में (तारा तुल्य), व्याधि वा अन्य आपत्ति का नाश होता है ॥१५८॥

अथ पुष्यस्यैव प्रशंसा—

अब आगे आकाशीय नक्षत्रों की जमघट में पुष्य नक्षत्र की ही प्रशंसा ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थों में प्राप्त होती है । इस लिये पुष्य नक्षत्र को नक्षत्र सम्राट् माना जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है । इसे विविध शास्त्रों के वाक्यों से बताते हैं । शास्त्रों में प्रतिपादित है कि सर्वशक्तिमान् पुष्य नक्षत्र विशाल ज्योतिषशास्त्र के किसी भी महान् दोष को यह भगा देता है और अपनी कोर्ति स्थापित करता है । यह अनिष्ट योगों को सहज में ही अकर्मण्य बना देता है। जैसे राशि से मुहूर्त में अष्टम हो तो भी शुभ ही फल देता है ।

ज्योपिषतत्त्वे —

ज्योतिष तत्त्व के आधार पर पुष्य की प्रशंसा

ग्रहेण विद्धोप्यशुभान्वितोऽपि विरुद्धतारोऽपि विलोमगोऽपि ।
करोति पुंसां सकलार्थसिद्धि विहाय पाणिग्रहणं हि पुष्यः[1] ॥ १५९॥

ज्योतिष तत्त्व नामक ग्रन्थ में कहा है कि ग्रह से वेधित होने पर, अशुभ ग्रह से युक्त होकर, अनिष्ट तारा होने पर और विपरीत होने पर भी एक विवाह मुहूर्त को छोड़कर समस्त कार्यों में मनुष्यों को अभीष्ट सिद्धि दाता पुष्य होता है ॥१५९॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में 'करोत्यवश्यं सकला······' यह पाठान्तर है । तथा श्रीपति के नाम से उद्धृत है ॥१५९॥

---

१. ज्यो० नि० ४२ पृ० ५६ श्लो० ।

अन्य प्रशंसा

पुष्यः परकृतं हन्ति न च पुष्यकृतं परः।
अपि द्वादशगे चन्द्रे पुष्यः सर्वार्थसाधकः ॥ १६० ॥

पुष्य दूसरे के द्वारा दोष प्राप्त होने पर भी उसका विनाश कर देता है। किन्तु पुष्य द्वारा स्थापित दोष का शमन नहीं होता है। यदि लग्न से या राशि से पुष्यस्थ चन्द्रमा हो तो भी समस्त कार्य सिद्ध करने वाला होता है ॥१६०॥

प्रकारान्तर

[1]परकृतमखिलं निहन्ति पुष्यो न
खलु निहन्ति परस्तु पुष्यदोषम्।
ध्रुवममृतकरेऽष्टमेऽपि पुष्ये
विहितमुपैति सदैव कर्मसिद्धिः ॥ १६१ ॥

और भी अन्य द्वारा दोषारोपण होने पर पुष्य उसका नाशक और पुष्य के दोष को दूसरा नाश नहीं कर सकता है। क्योंकि पुष्यस्थ चन्द्रमा अष्टम में होने पर भी कार्य की सिद्धि देने वाला होता है ॥१६१॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'परकृतदोषं निखिलं निहन्ति पुष्यः परो न पुष्यकृतम्। द्वादशनैधनगेन्दौ बलवान् पुष्यस्त्वभीष्टदः सततम्' (१४ प्र० ७८ श्लो०) ॥१६१॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में भी 'पुष्यः परकृतं हन्ति न तु पुष्यकृतं परः। दोषं यद्यष्टमोऽपीन्दुः पुष्यः सर्वार्थसाधकः' (४२ पृ० ५३ श्लो०) ॥१६१॥

मुहुर्तगणपतौ—

मुहूर्त गणपति के आधार पर पुष्य की प्रशंसा

पापैर्विद्धयुते हीने चन्द्रताराबलान्विते।
पुष्ये सिद्धयन्ति कार्याणि सर्वाणि मङ्गलानि च ॥ १६२ ॥

मुहूर्तगणपति नामक ग्रन्थ में कहा है कि पाप ग्रह से विद्ध या युक्त होने पर और चन्द्र व तारा बल से हीन होकर भी समस्त माङ्गलिक कामों की सिद्धि कराने वाला पुष्य होता है ॥ १६२ ॥

सिंहो यथा सर्वचतुष्पदानां तथैव पुष्यो बलवानुडूनाम्।
चन्द्रे विरुद्धेप्यथ गोचरेपि सिद्धयन्ति
कार्याणि कृतानि पुष्ये[2] ॥ १६३ ॥

जैसे समस्त चार पैर वाले जीवों में सिंह बलवान् होता है उसी प्रकार समस्त नक्षत्रों में यह बली होता है। इसलिये गोचर से इस नक्षत्र में चन्द्रमा के विपरीत होने पर भी कार्यों की सिद्धि बलवत्ता के कारण होती है ॥ १६३ ॥

विशेष—यह पद्य ज्योतिर्निबन्ध में आचार्य श्रीपति के नाम से उद्धृत है।

---

१. ४ प्र० ४३ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ४२ पृ० ५५ श्लो०।

अभी २ पाठकों ने पुष्य नक्षत्र की प्रशस्तता का अध्ययन किया है। किन्तु इसको अलौकिक प्रतिमा सीमा में एक ही व्यवधान है कि इसमें विवाह कार्य नहीं होता। यह क्यों। पुराण परिशीलन से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा जी ने इसकी प्रगल्भता जान कर अपनी कन्या शारदा का विवाह पुष्य नक्षत्र और गुरुवार की सन्निधि में करने का निश्चय किया था। उस अवसर पर अपनी पुत्री के यौवन सौन्दर्य से मुग्ध होकर विचलित हो गये। परिणाम में उनके रोमकूपों से अङ्गुष्ठ परिमित देहधारी साठ हजार 'बालखिल्य' ऋषियों का प्रादुर्भाव हुआ। ये ऋषि उच्चकोटिके तपस्वी हुए। परन्तु इस घटना से क्रोधित होकर ब्रह्मा जी ने पुष्य को शाप देकर संसार में विवाह में इसे अकर्मण्य कर दिया है। इसी से ऊपर के कथन की पुष्टि होती है ॥१६३॥

कालिदास ने ज्योतिर्विदामर में कहा है 'समस्तकर्मोचितकालपुष्यो दूष्यो विवाहे मदमूर्च्छितत्वात् ॥ १६३ ॥

अब आगे रोहिणीशकट का भेदन किस स्थिति में होता है और भेदन होने पर क्या फल होता है। इसे ग्रहलाघव के वाक्य से बताते हैं।

अथ शकटभेदो ग्रहलाघवे—

रोहिणीशकटभेदन व फल

ग्रहस्य रोहिणीशकटभेदं तत्फलं चाह—

गविनगकुलवे (१७) खगोऽस्य चेद्यमदिगिषुः खशराङ्गुलाधिकः।
कभशकटमसौ भिनत्त्यसृक्शनिरुडुपो यदि चेज्जनक्षयः[1] ॥१६४॥

ग्रह लाघव में कहा है कि वृष राशि के १७ सत्रहवें अंश में जिस ग्रह का दक्षिणशर ५० अङ्गुल से अधिक होता है तो वह ग्रह रोहिणी शकट का भेदन करता है।

इस प्रकार यदि भौम या शनि या चन्द्रमा शकट को भेदित करता है तो जन समुदाय की हानि होती है ॥ १६४ ॥

अथ चन्द्रस्य शकटभेदसमयमाह—

चन्द्रमा द्वारा शकट भेदन ज्ञान

स्वर्भानावदितिभतोष्टऋक्षसंस्थे शीतांशुः
कभशकटं सदा भिनत्ति।
भौमार्क्योः शकटभिदा युगान्तरे स्यात्
सेदानीं नहि भवतीदृशि स्वपाते[2] ॥ १६५ ॥

---

१. ग्र० ला० ग्र० छा० ७ श्लो०।
२, ग्र० ला० ग्र० छा० ८ श्लो०।

ग्रहलाघव में वर्णित है कि पुनर्वसु नक्षत्र से ८ आठवें नक्षत्र में जब राहु होता है तो चन्द्रमा रोहिणी शकट को भेदन करता है। शनि व भौम का शकट भेद युगान्तर में होगा। वर्तमान में उन दोनों का पात जो है उससे भेदन असंभव है ॥ १६५ ॥

सूर्यसिद्धान्ते—[1]

सूर्यसिद्धान्त के आधार पर शकट भेदन ज्ञान

वृषे सप्तदशे भागे यस्य याम्योंऽशकद्वयात्।
विक्षेपोऽग्रोऽभ्यधिको भिन्द्याद्रोहिण्याः शकटं तु सः ॥ १६६ ॥
रोहिणी शकटाकारा संस्थाना पञ्चतारका।
इति बृहस्पतिः ॥ १६७ ॥

सूर्यसिद्धान्त में बताया है कि वृष राशि के १७ सत्रहवें अंश में जिस ग्रह का दक्षिणशर दो अंश से अधिक होता है तो वह ग्रह रोहिणी शकट का भेदन करता है ॥ १६६ ॥

बृहस्पति जी ने कहा है कि रोहिणी नक्षत्र पाँच ताराओं के योग से गाड़ी की सी आकृति वाला है ॥ १६७ ॥

रोहिणीशकटं पञ्चतारात्मकं पञ्चाशदङ्गुलं यदस्ति तन्मध्ये ग्रहस्य प्रवेशः दक्षिणशरे पञ्चादशधिक एव भवति यतो रोहिणीशरः शताङ्गुलो याम्यः। अत्र योगतारा याम्यास्ति चन्द्रो वृषभो सप्तदशभागमितस्तस्य शरो दक्षिणः पञ्चाशदङ्गुलाधिकः पुनर्वस्वाद्यष्टनक्षत्रे राहोर्वेधं भवतीति प्रत्यक्षं भौमशन्यो-रेतादृशे पाते दक्षिणः शरः पञ्चाशदङ्गुलाधिको न भवत्येव।

रोहिणी शकट पाँच ताराओं के योग से पचास अंगुल जो है। उसके बीच में ग्रह का प्रवेश पचास अंगुल से अधिक दक्षिणशर होने पर ही होता है। क्योंकि रोहिणी का शर सौ १०० अङ्गुल दक्षिण है। यहाँ पर योग तारा दक्षिण है। अतः वृष के १७ वें भाग में पचास अङ्गुल से अधिक दक्षिण शर होने पर भेदन होता है। पुनर्वसु से आठवें नक्षत्र में राहु के रहने पर भेद होता है। यह प्रत्यक्ष भी होता है। किन्तु भौम व शनि के वर्तमान पात में इनका पचास से अधिक दक्षिण शर अभी प्रत्यक्ष नहीं होता है। अतः भेदित नहीं कर सकते हैं ॥

अथ धनिष्ठादिपञ्चकविचारो दैवज्ञवल्लभे—

अब आगे धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों की पंचक संज्ञा होती है अर्थात् धनिष्ठा का उत्तरार्ध शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन पाँच नक्षत्रों का समूह ज्योतिष संसार में पंचक के नाम से प्रसिद्ध है। या कुंभ मीनस्थ चन्द्रमा के भोग काल को पंचक कहते हैं। यह पंचक कई कर्मों में त्याज्य होता है। इसे विविध ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं।

---

१. अधि० ८ श्लो० १३।

दैवज्ञवल्लभ के आधार पर पंचक में वर्जित कार्य

कुर्यान्न दारुतृणसङ्ग्रहमन्तकाशा-
यानं मृतस्य दहनं गृहगोपनं च।
शय्यावितानमिह वासवपञ्चके च
केचिद्वदन्ति परतो वसुदेवतोऽर्द्धात्‌ ॥ १६८ ॥

दैवज्ञवल्लभ नामक ग्रन्थ में बताया है कि काष्ठ, तृण का सङ्ग्रह, दक्षिण दिशा की यात्रा, मृत का दाह, घर का आच्छादन (पाटना या छप्पर) खाट को बिनवाना ये कार्य धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों में नहीं करना चाहिये। किसी २ का कहना है कि धनिष्ठा के उत्तरार्ध से रेवती के अंत तक उक्त कर्म नहीं करना चाहिये ॥ १६८ ॥

रत्नमालायाम्‌—

रत्नमाला के आधार पर त्याज्य कार्य

वासवोत्तरदलादिपञ्चके याम्यदिग्गमनगेहगोपनम्‌।
प्रेतदाहतृणकाष्ठसङ्ग्रहं शय्यकावितननं च वर्जयेत्‌ ॥ १६९ ॥

रत्नमाला नामक ग्रन्थ में कहा है कि धनिष्ठा के उत्तरार्ध से रेवती के अन्त तक दक्षिण दिशा में गमन, घर का आच्छादन, मरे हुए का अग्नि संस्कार, तिनका व काठ का संग्रह और शय्या का बिनवाना रूपी काम नहीं करना चाहिये ॥ १६९ ॥

ज्योतिःसागरे—

ज्योतिः सागर के आधार पर त्याज्य कार्य

छेदनं सङ्ग्रहं चैव काष्ठादीनां न कारयेत्‌।
श्रवणादौ बुधः षट्कां न गच्छेद्दक्षिणां दिशि ॥ १७० ॥

ज्योतिः सागर में कहा है कि काठ आदि का छेदन (काटना) व संग्रह तथा दक्षिण दिशा की यात्रा पंडित व्यक्ति को श्रवणादि ६ नक्षत्रों में नहीं करना चाहिये ॥ १७० ॥

करने पर फल

अग्निदाहो भयं रोगो राजपीडा धनक्षयः।
सङ्ग्रहे तृणकाष्ठानां कृते वस्वादिपञ्चके ॥ १७१ ॥

यदि पंचक में तिनका व काठ का संग्रह कोई करता है तो दाह भय व रोग और राजकीय पीडा व धन का खर्चा होता है ॥ १७१ ॥

राजमार्तण्डे—

राजमार्तण्ड के आधार पर त्याज्य कार्य

गृहार्थं तृणकाष्ठादिसङ्ग्रहादग्निभिः कलिः।
रोगो दण्डोऽर्थहानिः स्यात्क्रमाद्वस्वादिपञ्चके ॥ १७२ ॥

राजमार्तण्ड नामक ग्रन्थ में प्रतिपादित है कि यदि घर के उपयोग के लिये पंचक में तृण व काठ का संग्रह करने से अग्नि भय, रोग, दण्ड व धन की हानि क्रम से होती है ॥ १७२ ॥

गर्गः—

गर्ग के आधार पर

धनिष्ठापञ्चके चन्द्रे सूर्ये पैत्र्यादिपञ्चके ।
छेदनानि न कर्तव्यं गृहार्थं तृणकाष्ठयोः ॥ १७३ ॥

गर्गाचार्य ने कहा है कि धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों में चन्द्रमा के रहने पर, मघादि पाँच नक्षत्रों में सूर्य के रहने पर घर के लिये तृण व लकड़ी का कटवाना तथा संग्रह करना उचित नहीं होता है ॥ १७३ ॥

तथा मुहूर्तगणपति में भी 'धनिष्ठार्द्धोत्तरं पञ्च ऋक्षेष्वेषु त्यजेद्बुधः । याम्यदिग्गमनं शय्यावितानं गेहगोपनम् । स्तम्भोच्छ्रायं प्रेतदाहं तृणकाष्ठादिसङ्ग्रहम् । भवेत् पञ्चगुणं चात्र जातं लब्धं मृतं गतम्' (४ प्र० ७५-७६ श्लो०) ॥१७३॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'वस्वपरार्द्धात्पञ्चकधिष्ण्ये गेहस्य गोपनं नैव । दक्षिणादिङ्मुखगमनं दाहं प्रेतस्य काष्ठसङ्ग्रहणम्' (१४ प्र० ७७ श्लो०) ॥ १७३ ॥

नारद जी ने कहा है 'वस्वन्त्यार्धादिपञ्चर्क्षेसङ्ग्रहं तृणकाष्ठयोः । याम्यदिग्गमनं शय्यां न कार्यं गृहगोपनम्' (मु० चि० २ प्र० ४८ श्लो० पी० टी०) ॥ १७३ ॥

अन्य भी त्रिविक्रम ने कहा है 'शय्यावितानं प्रेतादिक्रियां काष्ठतृणार्जनम् । याम्यदिग्गमनं कुर्यान्न चन्द्रे कुम्भमीनगे' (मु० चि० २ प्र० ४८ श्लो० पी० टी०) ॥ १७३ ॥

विशेष

पूर्वार्धे नातिदोषाय दाहतक्षणसङ्ग्रहे ।
यानगोपनशय्यायां सम्पूर्णं वासवं त्यजेत् ॥ १७४ ॥

इन उक्त नक्षत्रों का पूर्वार्धं अधिक दोष दायी दाह व तृणादि संग्रह करने में नहीं होता है । धनिष्ठा के पूर्ण भोग काल में दक्षिण यात्रा, गृहाच्छादन व खाट बिनवाने का काम त्याज्य होता है ॥ १७४ ॥

पुनः विशेष

केप्याहुः सङ्कटे घोरे पञ्चके पञ्च नाडिकाः ।
त्याज्याः क्रमात्तृतीयाद्यमन्त्यपादावसानगाः ॥ १७५ ॥

किन्हीं विद्वानों का कहना है कि पंचक में घोर संकट प्राप्त होने पर पाँच घटी का अर्थात् तृतीय पाद वाली आदि की और अन्त की पाँच घटियों का त्याग करके उक्त कार्य करने मेंकोई आपत्ति नहीं होती है ॥ १७५ ॥

अथेन्धनकरणम् निर्णयसिन्धौ—

अब आगे किस वार व नक्षत्र में इंधन कटवाना या संग्रह करना चाहिये। इसे निर्णयसिन्धु के वाक्य से बताते हैं।

ब्रह्मानिलार्कमघमूलविशाखपूर्वारौद्रानुराधगुरुपौष्णश्रवर्क्षयुक्ते ।
वारे कुजार्कभृगुनन्दनसोमजानां भेष्विन्धनस्य करणं भवति प्रशस्तम् ॥१७६॥

निर्णय सिन्धु में बताया है कि रोहिणी, स्वाती, हस्त, मघा, मूल, विशाखा, आर्द्रा, अनुराधा, पुष्य, रेवती और श्रवण नक्षत्र तथा भौम, शुक्र, सूर्य, बुधवार में इंधन का संग्रह शुभ होता है ॥ १७६ ॥

अब आगे रामदैवज्ञ के वाक्य से लकड़ी, गोहरी आदि संग्रह के लिये शुभाशुभ मुहूर्त को बताते हैं।

तत्स्थापनचक्रम् [1]रामदैवज्ञः—

काठ, गोमय पिण्ड संग्रह मुहूर्त

सूर्यर्क्षाद्रसभैरधःस्थलगतैः पाको रसैः संयुतः
शीर्षे युग्ममितैः शवस्य दहनं मध्ये युगैः सर्पभीः।
प्रागाशादिषुवेदभैः स्वसुहृदां स्यात्सङ्गमो रोगभीः
क्वाथादेः करणं सुखं निगदितं काष्ठादिसंस्थापने ॥ १७७ ॥

रामदैवज्ञ ने मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि सूर्य नक्षत्र से चन्द्रमा के प्रथम ६ नक्षत्र अधः स्थलगत हैं। इनमें लकड़ी आदि का संग्रह करने से रस युक्त भोजन तैयार होता है। पुनः ७, ८ नक्षत्रों में किए गये लकड़ी आदि के संग्रह से शव दाह होता है। फिर मध्य ९,१०,११, व १२ संख्यक नक्षत्रों में सर्पभय, १३,१४,१५,१६ संख्यक पूर्वदिशा के नक्षत्रों में मित्रों का समागम, १७,१८,१९,२० संख्यक दक्षिण-दिग्गत नक्षत्रों में रोगमय, २१,२२,२३,२४, संख्यक पश्चिमदिग्गत नक्षत्रों में काढा आदि निर्माण और २५,२६,२७, २८ नक्षत्रों में काठ, गोहरी आदि की स्थापना से सुख होता हे ॥१७७॥

अथ त्रिपुष्करद्विपुष्करयोगौ तत्फलं चाह—

अब आगे त्रिपुष्कर व द्विपुष्कर योगों के लक्षण तथा फल को प्रथम भूपाल वल्लभ ग्रन्थ के वाक्य से बताते हैं। सामान्यतया जिन नक्षत्रों का तीन पाद एक राशि में हो वे त्रिपुष्कर योग नक्षत्र जैसे कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी आदि और जिन नक्षत्रों का दो चरण एक राशि में होता है वे नक्षत्र द्विपुष्कर योग वाले होते हैं। जैसे मृगशिरा, चित्रा, और धनिष्ठा ये द्विपुष्कर योग नक्षत्र होते हैं।

---

१. मु० चि० २ प्र० ४६ श्लो०।

भूपालवल्लभे—

भूपालवल्लभ की उक्ति से त्रिपुष्कर, द्विपुष्कर योग

रविमन्दभौमवारे भद्रातिथित्रिपादके धिष्ण्ये।
योगस्त्रिपुष्कराख्यो द्विपादके यमलनामा स्यात् ॥ १७८ ॥

भूपालवल्लभ नामक ग्रन्थ में बताया है कि सूर्य, शनि, भौम वार व भद्रातिथि और त्रिपाद नक्षत्र (जिनके तीन चरण एक राशि में) के योग से त्रिपुष्कर एवं दो चरण जिनके एक राशि में हैं उनके योग से द्विपुष्कर योग होता है ॥ १७८ ॥

रत्नकोशे—

रत्नकोश के आधार पर त्रिपुष्कर, द्विपुष्कर योग लक्षण

गुरुभौममन्दवारे भद्रायां विषमपादर्क्षे।
योगस्त्रिपुष्करोऽयं त्रिगुणफलो यमलभे द्विगुणम् ॥ १७९ ॥

रत्नकोश नामक ग्रन्थ में कहा है कि गुरु, भौम, शनिवार के दिन भद्रा तिथि व विषम पाद नक्षत्र के योग से त्रिपुष्कर और उक्त तिथिवार में द्विपाद नक्षत्र के योग से द्विपुष्कर योग होता है। त्रिपुष्कर में तिगुना तथा द्विपुष्कर में द्विगुण फल प्राप्त होता है ॥ १७९ ॥

रामस्तु—

मुहूर्तचिन्तामणि के आधार पर भी

[1]भद्रातिथी रविजभूतनयार्कवारे
द्वीशार्यमाजचरणादितिवह्निविश्वे ।
त्रैपुष्करो भवति मृत्युविनाशवृद्धौ
त्रैगुण्यदो द्विगुणकृद्वसुतर्क्षचान्द्रे ॥ १८० ॥

श्रीराम दैवज्ञने अपने मुहूर्तचिन्तामणि ग्रन्थ में कहा है कि सूर्य, (रवि), भौम शनिवार के दिन विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपदा, पुनर्वसु, कृत्तिका, उत्तराषाढा इन नक्षत्रों के योग से त्रिपुष्कर और उक्त तिथि वार के दिन यदि मृगाशिरा, चित्रा या धनिष्ठा नक्षत्र हो तो द्विपुष्कर योग होता है।

त्रिपुष्कर में तिगुना लाभ हानि और द्विपुष्कर में दुगुनी लाभ हानि होती है। या यों समझिये यदि त्रिपुष्कर योग में किसी वस्तु का क्षय होता है तो तीन वस्तु नष्ट होती हैं। यदि लाभ होता है तो तीन वस्तुओं का होता है। इसी प्रकार द्विपुष्कर योग में दूना लाभ या हानि होती है ॥ १८० ॥

---

१. मु० चि० २ प्र० श्लो०।

वशिष्ठसंहिता में कहा है 'रविरविजभौमवारे भद्रायां विषमपादमृक्षं चेत्। त्रिपुष्कराख्यो योगो त्रिगुणफलो यमलर्मैद्विगुणम्' (१४ प्र० ६१ श्लो०) ।। १८० ।।

नारद जी ने भी कहा है 'अर्कार्किभौमवारे चेद्भद्रायां विषमाङ्घ्रिभम्। त्रिपुष्करस्त्रिगुणदो द्विगुणो यमलाङ्घ्रिभे' (मु० चि० २ प्र० ५० श्लो० पी० यू० टी०) ।।१८०।।

तथा कश्यप जी ने भी 'भद्रातिथिशनीज्यारवारे चेद्विषमाङ्घ्रिभम्। त्रिपुष्करं त्रिगुणदं द्विगुणं द्व्यङ्घ्रिभे मृतौ' (मु० चि० २ प्र० ५० श्लो० पी० यू० टी०)।।१८०।।

और भी श्रीपति ने बताया है 'विषमचरणं धिष्ण्यं भद्रातिथिर्यदि जायते। सुर गुरुशनिक्ष्मापुत्राणां कथंचन वासरे।' (मु० चि० २ प्र० ५० श्लो० पी० टी०) ।।१८०।।

तथा मुहूर्तगणपति में भी 'भद्रातिथि शनीज्यारवारे चेद्विषयाङ्घ्रिभम्। नन्दा त्रिपुष्करो योगो यमलो युग्मपादभे' (८ प्र० ६६ श्लो०) ।।१८०।।

गर्गः--

उक्त योगों का गर्गाचार्य द्वारा प्रतिपादित फल

पञ्चके पञ्चगुणितं त्रिगुणं च त्रिपुष्करे।
यमले द्विगुणं सर्वं हानिवृद्ध्यादिकं भवेत् ।। १८१ ।।

श्री गर्गाचार्य जी ने बताया है कि पंचक में पाँच गुना, त्रिपुष्कर में तिगुना और द्विपुष्कर योग में दूना फल होता है। या यों समझिये कि यदि पंचक में किसी की मृत्यु होती है तो उस परिवार में पाँच मरण यदि किसी का लाभ होता है तो अर्थात् जन्म होता है तो पाँच का जन्म कालान्तर में होता है। त्रिपुष्कर व द्विपुष्कर योग में भी हानि लाभ तिगुना व दूना होता है ।। १८१ ।।

ज्योतिःप्रकाशे--

ज्योतिः प्रकाश के आधार पर फल

नष्टं दृष्टं मृतं घातं कलहो डिम्भ एव च।
उपघातश्च योऽत्र स्यात्त्रिगुणः सोऽनुवर्तते ।। १८२ ।।

ज्योतिः प्रकाश में बतलाया गया है कि यदि उक्त त्रिपुष्कर योग में नष्ट, दृष्ट, मृत, घात, लड़ाई, बालक और उपघात जो इस योग में होता है वह सब तिगुना होता है ।। १८२ ।।

अब आगे राम दैवज्ञ के वाक्य से दिन में जो पन्द्रह मुहूर्त होते हैं उनके स्वामियों व रात्रि के भी १५ मुहूर्तों के अधिपों को इसलिये बताते हैं कि जो कर्म नक्षत्र में किया जाता है वह आवश्यकता पड़ने पर उस नक्षत्र के मुहूर्त में करना चाहिये ।।

[1]रामः—

दिन में १५ मुहूर्त स्वामी

गिरिशभुजगमित्राः पितृवस्वम्बुविश्वेऽ-
भिजिदथ च विधातापोन्द्र इन्द्रानली च ।
निर्ऋतिरुदकनाथोप्यर्यमाथो भगः स्युः
क्रमत इह मुहूर्ता वासरे बाणचन्द्राः ॥ १८३ ॥

राम दैवज्ञ ने कहा है कि दिन के प्रथम मुहूर्त का नक्षत्र गिरिश = आर्द्रा १, दूसरे का भुजग=आश्लेषा २, तीसरे का मित्र=अनुराधा ३, चौथे का पितृ=मघा ४। पाँचवें का वसु = धनिष्ठा ५, छटे का अम्बु = पूर्वाषाढा ६, सातवें का विश्वेदेव = उत्तराषाढा ७, आठवें का अभिजित् ८, नवें का विधाता = रोहिणी ९, दसवें का इन्द्र = ज्येष्ठा १०, ग्यारहवें का इन्द्राग्नि = विशाखा ११, बारहवें का निर्ऋति = मूल १२, तेरहवें का उदकनाथ = शतभिषा १३, चौदहवें का अर्यमा = उत्तराफाल्गुनी १४ और पन्द्रहवें मुहूर्तका भग = पूर्वाफाल्गुनी ये दिन में १५ मुहूर्तों में अर्थात् दिनमान के पन्द्रहवें भाग में ये नक्षत्र रहते हैं। अत: नक्षत्र के मुहूर्त में कर्म करना चाहिये ॥ १८३ ॥

दिवा मुहूर्त सारणी

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	
आर्द्रा	श्लेषा	अनुराधा	मघा	धनिष्ठा	पूर्वाषाढ	उत्तराषाढ	अभिजित	रोहिणी	ज्येष्ठा	विशाखा	मूल	शतभिष	उत्तराफा	पूर्वफा	दिवा मुहूर्ताः

नारदः—

अह्नः पञ्चदशो भागस्तथा रात्रिप्रमाणतः ।
मुहूर्तमानं द्वावेव क्षणर्क्षाणि समे स्वराः ॥ १८४ ॥

नारद जी ने कहा है रात्रि व दिन का पन्द्रहवां हिस्सा १ मुहूर्त का समय होता है। यह मुहूर्तों में नक्षत्र ज्ञान के लिये उपयोगी है ॥ १८४ ॥

रात्रि में पञ्चदश मुहूर्तों में नक्षत्र स्थिति

[2]शिवोऽजपादादष्टौ स्युर्भेशा अदितिजीवकौ ।
विष्णवर्कत्वाष्ट्रमरुतो मुहूर्ता निशि कीर्तिताः ॥ १८५ ॥

१. मु० चिं० ६ प्र० ५२ श्लो० ।
२. मु० चिं० ६ प्र० ५३ श्लो० ।

रात्रि मान में पन्द्रह का भाग देकर मुहूर्त का ज्ञान करने से जो प्रथम मुहूर्त घटयादि हो उसका शिव = आर्द्रा १, दूसरे मुहूर्त का स्वामी अजपाद = पूर्वाभाद्रपदा २, तीसरे का अहिर्बुध्न्य = उत्तरभाद्रपदा ३, चौथे का पूषा = स्वाती ४, पाचवें का अश्विनी कुमार = अश्विनी ५, छटेका यम = भरणी ६, सातवें का अग्नि = कृत्तिका ७, आठवें का ब्रह्मा = रोहिणी ८, नवेंका चन्द्र=मृगशिरा ९, दसवें का अदिति पुनर्वसु १०, ग्यारहवें का वृहस्पति पुष्य ११, बारहवें का बिष्णु = श्रवण १२, तेरहवें का सूर्य = हस्त १३, चौदहवें का त्वाष्ट्र = चित्रा १२ और पन्द्रहवें का स्वामी मरुत् = स्वाती नक्षत्र रात्रि के १५ वें नक्षत्र में होता है ॥ १८५ ॥

रात्रि मुहूर्त सारणी

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	
आर्द्रा	पूर्वाभाद्र	उत्तरभाद्र	रेवती	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशि	पुनर्वसु	पुष्य	श्रवण	हस्त	चित्रा	स्वाती	रात्रौ मुहूर्ताः

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे नक्षत्रकथनं नाम चतुर्विंशं प्रकरणम् समाप्तम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष शास्त्र वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा निर्मित संग्रहात्मक वृहद्दैवज्ञरञ्जनग्रन्थका चौबीसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ २४ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदकृता चतुर्विंशतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्णा ॥ २४ ॥

अथ पञ्चविंशं योगप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे पच्चीसवें प्रकरण में मुहूर्त जगत् में योगों की आवश्यकता होती है। इसलिए योग का ज्ञान कैसे होता है तथा उनकी संख्या व नाम क्या-क्या होता है तथा एक योग में समस्त योगों का अन्तर्धान कैसे होता है। उनके स्वामी कौन-कौन हैं, उनमें निन्दनीय कितने हैं और दूषित योग में कितनी घटियों का त्याग करना चाहिये। इत्यादि विचार को विभिन्न वाक्यों से बताते हैं।

चण्डेश्वरः—

चण्डेश्वर के आधार पर इष्ट दिन में योग का ज्ञान

यस्मिन्नृक्षे स्थितो भानुर्यत्र तिष्ठति चन्द्रमाः।
एकीकृत्य त्यजेदेकं योगा विष्कम्भकादयः ॥ १ ॥

आचार्य चण्डेश्वर का कहना है कि जिस दिन योग ज्ञान अभीष्ट हो उस दिन सूर्य जिस नक्षत्र में हो उसकी संख्या और चन्द्रमा जिस नक्षत्र में हो उस नक्षत्र की संख्या को सूर्य की संख्या में जोड़कर या यों समझिये चन्द्र-सूर्य नक्षत्र संख्याओं को मिलाकर उसमें एक घटाकर २७ का भाग देने से जो शेष हो उसे विष्कम्भादि से गिनकर योग का ज्ञान करना चाहिए ॥ १ ॥

गर्गोक्त द्विधा विभाजन

[1]गर्गेणोक्तास्त्विमे योगा आनन्दाद्या निमित्तजाः।
विष्कम्भाद्यास्तथा नित्या अन्ये नैमित्तिकाः पुनः ॥ २ ॥

गर्गाचार्यजी ने कहा है कि ये योग दो प्रकार के होते हैं। एक नित्य दूसरे नैमित्तिक। विष्कम्भादि २७ नित्य योग होते हैं और आनन्दादि तिथि वार के साहचर्य से नैमित्तिक योग होते हैं ॥ २ ॥

प्रकारान्तर से योग ज्ञान

वाक्पतेरर्कनक्षत्रं श्रवणाच्चान्द्रमेव च।
गण्यते तद्युतिं कुर्याद्योगः स्याद्दक्षशेषितः ॥ ३ ॥

जिस दिन योग ज्ञान अभीष्ट हो उस दिन पुष्य नक्षत्र से सूर्य के नक्षत्र तक जो संख्या हो तथा श्रवण नक्षत्र से दिन नक्षत्र गिनने पर जो संख्या हो उन दोनों का योग करके २७ का भाग देने पर शेष तुल्य संख्यक विष्कम्भादि से योग होता है ॥ ३ ॥

---

१. ज्यो० सा० ३६ पृ०।

वसिष्ठः[1]—

वसिष्ठ-संहिता के आधार पर योगों के नाम

विष्कम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनाह्वयः ।
अतिगण्डः सुकर्माख्यो धृतिः शूलोऽथ गण्डकः ॥ ४ ॥
वृद्धिर्ध्रुवाख्यो व्याघातो हर्षणो वज्रसंज्ञकः ।
सिद्धियोगो व्यतीपातो वरीयान् परिघः शिवः ॥ ५ ॥
सिद्धिः साध्यः शुभः शुक्लो ब्रह्मेन्द्रौ वैधृतिः स्मृतः ।
सप्तविंशति योगास्ते स्वनामफलदाः स्मृताः ॥ ६ ॥

वसिष्ठसंहिता में इनके नाम विष्कम्भ १, प्रीति २, आयुष्मान् ३, सौभाग्य ४, शोभन ५, अतिगण्ड ६, सुकर्मा ७, धृति ८, शूल ६, गण्ड १०, वृद्धि ११, ध्रुव १२, व्याघात १३, हर्षण १४, वज्र १५, सिद्धि १६, व्यतीपात १७, वरीयान् १८, परिघ १६, शिव २०, सिद्ध २१, साध्य २२, शुभ २३, शुक्ल २४, ब्रह्म २५, ऐन्द्र २६ और वैधृति २७ ये २७ योगों के नाम अपने समान फल दाता होते हैं ॥ ४–६ ॥

अब आगे योगों के स्वामियों को नारदजी के वचन से बताते हैं ।

[2]नारदः—

योगों के स्वामी नारद के आधार पर

योगेशा यमविष्ण्वन्दुधातृजीवनिशाकराः ।
इन्द्रतोयाहिवह्न्यर्कभूमरुद्भगतोयपाः ॥ ७ ॥
गणेशरुद्रधनदत्वष्टृमित्रषडाननाः ।
सावित्री कमला गौरी नासत्यौ पितरो दितिः ॥ ८ ॥

नारद जी ने बताया है कि विष्कम्भ योग का स्वामी यम, प्रीति का विष्णु, आयुष्मान् का चन्द्रमा, सौभाग्य का ब्रह्मा, शोभन का बृहस्पति, अतिगण्ड का चन्द्र सुकर्मा का इन्द्र, धृति का जल, शूल का सर्प, गण्ड का अग्नि, वृद्धि का सूर्य, ध्रुव का भूमि, व्याघात का वायु, हर्षण का भग, वज्र का वरुण, सिद्धि का गणेश, व्यतीपात का रुद्र वरीयान् का कुबेर, परिघ का विश्वकर्मा, शिव का मित्र, सिद्ध का कार्तिकेय, साध्य का सावित्री, शुभ का लक्ष्मी, शुक्ल का पार्वती, ब्रह्म का अश्विनी कुमार, ऐन्द्र का पितर और वैधृति योग का स्वामी दिति होता है ॥ ७-८ ॥

अब आगे निषिद्ध योगों का कितना भाग त्याग करना चाहिये । इसे वसिष्ठ संहिता के वाक्य से बताते हैं ।

---

१. व० सं० १५ प्र० १-४ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ३८ पृ० १-२ श्लो० ।

निषिद्ध योगों की वर्जित घटी

[1]विरुद्धयोगेषु च आद्यपादः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयः।
सवैधृतस्तु व्यतिपातयोगः सर्वोप्यनिष्टः परिघस्य चार्द्धम् ॥ ९ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है कि विपरीत योगों का पहिला चरण, वैधृती व व्यतीपात के चारों चरण और परिघ योग का प्रथमार्ध समस्त शुभ कामों में वर्जनीय होता है ॥ ६ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है—'वैधृतिव्यतिपाताख्यौ सम्पूर्णौ वर्जयेच्छुभे। वज्र-विष्कम्भयोश्चैव घटिकात्रयमादिकम्। परिघार्धं पञ्च शूले व्याघाते घटिका नव। गण्डातिगण्डयोः षट् च हेयाः सर्वेषु कर्मसु (५ पृ० ५२ श्लो०) ॥ ९ ॥

[2]तिस्रस्तु योगे प्रथमे सवज्रे व्याघातसंज्ञे नव पञ्च शूले।
गण्डातिगण्डे च षडेव नाड्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः ॥ १० ॥

स्पष्टार्थ योग-स्वामी-फल सारिणी

यो-सं.	१	२	३	४	५	६	७	८	९
यो. ना.	विष्कम्भ	प्रीति	आयुष्मान्	सौभाग्य	शोभन	अतिगंड	सुकर्मा	धृति	शूल
स्वामी	यम	विष्णु	चन्द्र	ब्रह्मा	बृहस्पति	चन्द्र	इन्द्र	जल	सर्प
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ
यो. सं	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
यो. ना.	गण्ड	वृद्धि	ध्रुव	व्याघात	हर्षण	वज्र	सिद्धि	व्यतापात	वरीयान्
स्वामी	अग्नि	सूर्य	भूमि	वायु	भग	वरुण	गणेश	रुद्र	कुबेर
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ
यो.सं.	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७
यो. ना.	परिघ	शिव	सिद्ध	साध्य	शुभ	शुक्ल	ब्रह्म	ऐन्द्र	वैधृति
स्वामी	विश्वकर्मा	मित्र	कार्तिकेय	सावित्री	लक्ष्मी	पार्वती	अश्वि. कुमार	पितर	दिति
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ

१. व० सं० १५ प्र० ४ श्लो०। २. ज्यो० सा० १७ पृ०।

विष्कम्भ योग की प्रथम तीन घटी, वज्र व व्याघात की नौ घड़ी, शूल की पाँच, गण्ड और अतिगण्ड योग की ६, ६ घड़ी का शुभ कार्यों में त्याग करना चाहिए ॥ १० ॥

ज्योतिष सार में कहा है 'विरुद्धसंज्ञा इह ये च योगास्तेषामनिष्टः खलु पाद आद्यः। सवैधृतिस्तु व्यतिपातनामा सर्वोऽप्यनिष्टः परिघस्य चार्धम् ।

वसिष्ठसंहिता में 'तिस्रस्तु नाड्यः प्रथमे च वज्रे गण्डातिगण्डेऽपि च षट् च षट् च । व्याघातयोगे नव पञ्चशूले शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः' (१५ प्र० ५ श्लो०) ॥१०॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में 'परिघस्य तु पूर्वार्धं सर्वकार्येषु गर्हितम् । विष्कम्भं घटिकास्तिस्रो नव व्याघातवज्रयोः । गण्डातिगण्डयोः षट् च शूले पञ्च न शोभनाः' (३८ पृ० ४ श्लो०) ॥ १० ॥

अब आगे पात का आनयन किस प्रकार किया जाता है, इसे सूर्यसिद्धान्त के वाक्य से बताते हैं ।

अथ पातानयनम् । [1]सूर्यसिद्धान्ते—

सूर्यसिद्धान्त के आधार पर पातकी गत गम्य घटी का ज्ञान

स्थिरीकृता दीर्घरात्रेन्द्वोर्द्वयोर्विवरलिप्तिकाः ।
षष्टिघ्ना चन्द्रभुक्त्याप्ता पातकालस्य नाडिकाः ॥ ११ ॥

सूर्यसिद्धान्त में बताया गया है कि पूर्व रीति से साधित स्थिरी कृत चन्द्र और अर्धरात्रि कालीन चन्द्र इन दोनों की अन्तर कलाओं को ६० से गुणित करके चन्द्रमा की गति कलाओं से भाग देने पर लब्धि अर्धरात्रि से पात की गत या ऐष्य घड़ी होती है ॥ ११ ॥

वसिष्ठसिद्धान्ते—

वसिष्ठसिद्धान्त के आधार पर

चक्रे चक्रार्द्धतुल्यो वा कियद्भागाधिकोनके ।
सायनार्केन्दुसंयोगे चेत्तदा पातसम्भवः ॥ १२ ॥

वसिष्ठ सिद्धान्त में कहा है कि सूर्य चन्द्रमा का योग जब १२ बारह राशि तुल्य वा ६ राशितुल्य होता है तो कितने अंश अधिक व ऊन होने पर सूर्य चन्द्रमा का संयोग होने से पात का सम्भव होता है ॥ १२ ॥

शुभमङ्गलकर्माणि लोकानां च विनाशयेत् ।
स्नानदानादिकास्तत्र जपश्राद्धादिकाः क्रियाः ॥ १३ ॥

यह पात शुभ व मांगलिक कार्य संसार के नष्ट करने वाला होता है । इस पात में स्नान, दान, जप व श्राद्धादि कार्य करना चाहिये ॥ १३ ॥

---

१. ११ प्र० १३ श्लो० ।

अब आगे पातों की संज्ञा व स्वरूप एवं फल को सूर्यसिद्धान्त के वाक्य से बताते हैं।

[1]सूर्यसिद्धान्ते—

सूर्यसिद्धान्त वश

व्यतीपातः प्रसिद्धोऽस्ति संज्ञाभेदेन वैधृतिः।
स कृष्णो दारुणवपुर्लोहिताक्षो महोदरः ॥ १४ ॥
यच्छुभानां विनाशाय नदन्निव पतत्ययम्।
विनाशयति पातोऽस्मिल्लोकानामसकृद्यतः।
सर्वानिष्टकरो रौद्रो भूयो भूयोऽभिजायते ॥ १५ ॥

व्यतीपात और संख्या भेद से अर्थात् लक्षण के भेद से वैधृति नामक पात प्रसिद्ध है। वह पात काले वर्ण का भयानक आकृति वाला, लाल नेत्रों से युक्त बड़े पेट वाला है। जो कि शुभ कार्यों का शब्द करता हुआ विनाश करने वाला है। और इस संसार में संसारी जीवों के शुभ कामों को बार-बार नष्ट करता है। समस्त चराचरों का अनिष्ट करने वाला बड़ा उग्र, बार-बार प्रति महीने में दो बार उत्पन्न होता है ॥ १४-१५ ॥

अब आगे एक योग में समस्त योगों का अन्तर्धान होता है। अर्थात् विष्कम्भादि प्रत्येक योग में क्रमशः विष्कम्भादि अन्तर्योग उसी प्रकार आते हैं जैसे किसी की महादशा में समस्तों की अन्तर्दशा आती है।

[2]वसिष्ठः—

वसिष्ठसंहिता के आधार पर

योगस्य सप्तविंशांशो योगमानं भवेदिति।
एकस्मिन्नपि योगेऽपि सर्वे योगा भवन्ति हि ॥ १६ ॥

वसिष्ठसंहिता में बताया है कि योग के भोग मान में २७ का भाग देने पर शेष क्रम से एक-एक योग का मान होता है। इस प्रकार एक में समस्त योगों का ज्ञान किया जाता है ॥ १६ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने योगकथनं नाम पञ्चविंशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का पच्चीसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ २५ ॥

---

१. १० प्र० ४ श्लो०। २. व० सं० १५ प्र० ४० श्लो०।

ध्या	ध्रु	वृ	ग.	श्र	धृ	सु	अ	शो	सौ	आ	प्री	वि	२।१३
हृ	ध्या	ध्रु	वृ	ग.	श्र	धृ	सु	अ	शो	सौ	आ	प्री	४।२६
व	हृ	ध्या	ध्रु	वृ	ग.	श्र	धृ	सु	अ	शो	सौ	आ	६।४०
सि	व	हृ	ध्या	ध्रु	वृ	ग.	श्र	धृ	सु	अ	शो	सौ	८।५३
व्य	सि	व	हृ	ध्या	ध्रु	वृ	ग.	श्र	धृ	सु	अ	शो	११।६
व	व्य	सि	व	हृ	ध्या	ध्रु	वृ	ग	श्र	धृ	सु	अ	१३।२०
प.	व	व्य	सि	व	हृ	ध्या	ध्रु	वृ	ग.	श्र	धृ	सु	१५।३३
शि	प	व	व्य	सि	व	हृ	ध्या	ध्रु	वृ	ग.	श्र	धृ	१७।४६
सि	शि	प.	व	व्य	सि	व	हृ	ध्या	ध्रु	वृ	ग.	श्र	२०।०
सा	सि	शि	प	व	व्य	सि	व	हृ	ध्या	ध्रु	वृ	ग.	२२।१३
श्रु	सा	सि	शि	प	व	व्य	सि	व	हृ	ध्या	ध्रु	वृ	२४।२६
श्रु	श्र	सा	सि	शि	प	व	व्य	सि	व	हृ	ध्या	ध्रु	२६।४०
वृ	श्र	श्रु	सा	सि	शि	प	व	व्य	सि	व	हृ	ध्या	२८।५३
प्र:	श्र	श्र	श्रु	सा	सि	शि	प	व	व्य	सि	व	हृ	३१।६
व.	प्र	श्र	श्र	श्र	सा	सि	शि	प	व	व्य	सि	व	३३।२०
वि	व.	प्र:	श्र	श्र	श्र	सा	सा	शि	प	व	व्य	सि	३५।३३
प्री	वि	व.	प्र:	श्र	श्र	श्र	सा	सि	शि	प	व	व्य	३७।४६
आ	प्री	वि	व.	प्र:	श्र	श्र	श्र	सा	सि	शि	प	व	४०।०
सौ	आ	प्री	वि	व.	प्र:	श्र	श्र	श्र	सा	सि	शि	प	४२।१३
शो	सौ	आ	प्री	वि	व.	प्र:	श्र	श्र	श्र	सा	सि	शि	४४।२६
अ	शो	सौ	आ	प्री	वि	व.	प्र	श्र	श्र	श्र	सा	सि	४६।४०
सु	अ	शो	सौ	आ	प्री	वि	व.	प्र	श्र	श्र	श्र.	सा	४८।५३
धृ	सु	अ	शो	सौ	आ	प्री	वि	व.	प्र:	श्र	श्र	श्र	५१।६
श्र	धृ	सु	अ	शो	सौ	आ	प्री	वि	व.	प्र:	श्र	श्र	५३।२०
ग.	श्र	धृ	सु	अ	शो	सौ	आ	प्री	वि	व.	प्र:	श्र	५५।३३
वृ	.	श्र	धृ	सु	अ	शो	सौ	आ	प्री	वि	व.	प्र:	५७।४६
ध्रु	वृ	ग.	श्र	धृ	सु	अ	शो	सौ	आ	प्री	वि	व.	६०।०

व॰	ऽवः	श्र	॰श्र	॰श्र	स्त	सि	श्रि	प	व	थ्र	सि	व	ल
वि	व॰	ऽवः	श्र	॰श्र	॰श्र	स्त	सि	श्रि	प	व	थ्र	सि	व
श्री	वि	व॰	ऽवः	श्र	॰श्र	॰श्र	स्त	सि	श्रि	प	व	थ्र	सि
आ	श्री	वि	व॰	ऽवः	श्र	॰श्र	॰श्र	स्त	सि	श्रि	प	व	थ्र
सौ	आ	श्री	वि	व॰	ऽवः	श्र	॰श्र	॰श्र	स्त	सि	श्रि	प	व
शौ	सौ	आ	श्री	वि	व॰	ऽवः	श्र	॰श्र	॰श्र	स्त	सि	श्रि	प
अ	शौ	सौ	आ	श्री	वि	व॰	ऽवः	श्र	॰श्र	॰श्र	स्त	सि	श्रि
ऽस्म	अ	शौ	सौ	आ	श्री	वि	व॰	ऽवः	श्र	॰श्र	॰श्र	स्त	सि
॰ध	ऽस्म	अ	शौ	सौ	आ	श्री	वि	व॰	ऽवः	श्र	॰श्र	॰श्र	स्त
॰श्र	॰ध	ऽस्म	अ	शौ	सौ	आ	श्री	वि	व॰	ऽवः	श्र	॰श्र	स्त
न.	॰श्र	॰ध	ऽस्म	अ	शौ	सौ	आ	श्री	वि	व॰	ऽवः	श्र	॰श्र
॰व	न.	॰श्र	॰ध	ऽस्म	अ	शौ	सौ	आ	श्री	वि	व॰	ऽवः	श्र
॰ष्ट	॰व	न.	॰श्र	॰ध	ऽस्म	अ	शौ	सौ	आ	श्री	वि	व॰	ऽवः
थ्र	॰ष्ट	॰व	न.	॰श्र	॰ध	ऽस्म	अ	शौ	सौ	आ	श्री	वि	व॰

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरली-धरचतुर्वेदकृता पञ्चविंशतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशं करणप्रकरणं प्रारभ्यते।

अब आगे छब्बीसवें प्रकरण में करण किसे कहते हैं, इनका आनयन कैसे किया जाता है, इनकी संख्या कितनी होती है; ये कितने प्रकार के होते हैं, इनके स्वामी कौन हैं, विष्टि ही भद्रा होती है, भद्रा के भेद व निवासादि का वर्णन विविध ग्रन्थों के वाक्यों से बतलाया गया है। उसे बताते हैं।

अभीष्ट दिन में करण का ज्ञान

[1]गततिथयो द्विनिघ्नाश्च शुक्लप्रतिपदादितः।
एकोनाः सप्तहृच्छेषात् करणं स्याद्ववादिकम् ॥ १ ॥

जिस तिथि के दिन करण ज्ञान अभीष्ट हो उससे पूर्व की तिथि संख्या को शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से गिन कर जो संख्या आये उसे दो से गुणित करके एक घटा कर सात का भाग देने पर शेष तुल्य करण होता है ॥ १ ॥

[2]श्रीपतिः—

श्रीपति के वाक्य से करणों क नाम

ववाह्वयं बालवकौलवाख्यं ततो भवेत्तैतिलनामधेयम्।
गराभिधानं वणिजं च विष्टिरित्याहुरार्याः करणानि सप्त ।। २ ॥
चतुर्दशी या शशिना प्रहीना तस्यादिभागे शकुनी द्वितीये।
दर्शार्द्धयोस्तश्चतुरङ्घ्रनागे किंस्तुघ्नमाद्ये प्रतिपद्दले च ॥ ३ ॥

१ बव, २ बालव, ३ कौलव, ४ तैतिल, ५ गर, ६ वणिज और ७ विष्टि ये करण होते हैं। ऐसा विद्वानों का कथन है ॥ २ ॥

चन्द्रमा से अधिकतम शून्य कृष्णपक्ष की चौदस के उत्तरार्ध से शुक्ल पक्ष प्रतिपदा के प्रथमार्ध तक शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न ये ४ चार करण स्थिर होते हैं ॥ ३ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'आद्यं बवं बालवकौलवाख्ये तत्तैतिलं तद्गरसंज्ञकं च। वणिक् च विष्टिः करणानि सप्त चराणि यानि क्रमशो भवन्ति। तिथ्यर्धमाद्यं शकुनिर्द्वितीयं चतुष्पदं नागकसंज्ञितं च। किंस्तुघ्नमेतान्यचराणि कृष्णचतुर्दशीपश्चिमभागतः स्युः' (२१६ प्र० १-२ श्लो० ॥ २-३ ॥

तथा ज्योतिषसार में 'अन्ते कृष्णचतुर्दश्यां शकुनीदर्शभागयोः। ज्ञेयं चतुष्पदं नागं किंस्तुघ्नं प्रतिपद्दले' (१७ पृ०) ॥ २-३ ॥

---

१. ज्यो० सा० ३७ पृ०।
२. ज्यो० सा० ३७ पृ०।

करण स्वामी का ज्ञान

[1]इन्द्रो ब्रह्मा मित्रनामार्यमाभूः श्रीःकीनाशश्चेति तिथ्यर्धनाथाः ।
कल्युक्षाख्यौ सर्पवायू तथैव ये चत्वारस्ते स्थिराणां चतुर्णाम् ॥ ४॥

१ बव का स्वामी इन्द्र, २ बालव का ब्रह्मा, ३ कौलव का मित्र, ४ तैतिल का सूर्य, ५ गर का भूमि, ६ वणिज का लक्ष्मी और ७ विष्टि करण का यम स्वामी होता है। शकुनि का कलि, चतुष्पद का साँड, नाग का सर्प व किंस्तुघ्न का स्वामी वायु ये स्थिर करणों के स्वामी होते हैं ॥ ४ ॥

चण्डेश्वरः—

चण्डेश्वर के आधार पर स्वामी ज्ञान

बवबालवकौलवतैतिलगरवणिजविष्टिसंज्ञानाम् ।
पतयः स्युरिन्द्रकमलजमित्रार्यमभूः श्रियः सयमाः ॥ ५ ॥
कृष्णचतुर्दश्यर्द्धात् ध्रुवाणि शकुनिचतुष्पदो नागः ।
किंस्तुघ्नमिति च तेषां कलिवृषभफणिमारुताः पतयः ॥ ६ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि संज्ञक करणों के क्रम से इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, सूर्य, भूमि, लक्ष्मी, यम ये अधिपति चर करणों के होते हैं ॥ ५ ॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध से शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न इन स्थिर करणों के क्रम से कलि, साँड, सर्प, वायु ये स्वामी होते हैं ॥ ६ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'इन्द्रो विधाता मित्राख्यस्त्वर्यमा भूर्हरिप्रिया। कीनाशश्चेति तिथ्यर्धनाथाः स्युः क्रमतस्त्वमी । कलिश्च रक्षो भुजगः पवनश्च स्थिरेश्वराः' (१६ प्र० ३–४ श्लो०) ॥ ५–६ ॥

तथा नारदजी ने भी कहा है 'इन्द्रः प्रजापतिर्मित्रस्त्वर्यमा भूर्हरिप्रिया । कीनाशः कलिरुद्राख्यौ तिथ्यर्धेशास्त्वहिर्मरुत्' (ज्यो० नि० ३८ पृ०) ॥ ५–६ ॥

स्पष्टार्थ करण व स्वामी चक्र

करण सं०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
करण नाम	बव	बालव	कौलव	तैतिल	गर	वणिज	वृष्टि	शकुनि	चतुष्पद	नाग	किंस्तुघ्न
करण स्वामी	इन्द्र	ब्रह्मा	मित्र	सूर्य	भूमि	लक्ष्मी	यम	कलि	सांड	सर्प	वायु

अब आगे किस करण में क्या करना चाहिये। इसे बताते हैं।

1. ज्यो० सा० ३७ पृ०।

बव, बालव, कौलव, तैतिलकरण में विहित कार्य

[१]कुर्याद्बवे शुभचरस्थिरपौष्टिकानि
धर्मक्रिया द्विजहितानि च बालवाख्ये !
सम्प्रीतिसिद्धिकरणानि च कौलवे स्युः
सौभाग्यसंश्रुतिशुभानि च तैतिलाख्ये ॥ ७ ॥

रत्नकोश नाम के ग्रन्थ में बताया है कि बव करण में शुभ (व्रत, उत्सवादि), चर, स्थिर (स्थायी) और पुष्टता सम्बन्धी, बालव में धार्मिक व ब्राह्मणों के हितकारी, कौलव में मित्रता व सिद्धि और तैतिल करण में सौभाग्य, वेद, माङ्गलिक कार्य करना चाहिये ॥ ७ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है—'चरस्थिरद्विजहितः पशुधान्यकरादियत् । धातुवाद-वणिग्धान्यकर्म सर्वं बवे हितम् । माङ्गल्योत्सवपानादि वास्तुकर्माखिलं च यत् । नृपाभिषेकसंग्रामकर्म सिद्धयति बालवे । गजोष्ट्राश्वायुधोद्यानविपिनाद्याखिलं च यत् । बालवोक्ताखिलं कर्म कौलवे सिद्धयति ध्रुवम् । सन्धिविग्रहयात्रादि क्रयविक्रयकर्मयत् । तडागकूपखननं कार्यं तैतिलसंज्ञके' (१६ प्र० ५–८ श्लो०) ॥ ७ ॥

ज्योतिषसार में कहा है—'पौष्टिकस्थिरशुभानि बवाख्ये बालवे द्विजहितान्यपि कुर्यात् । कौलवे प्रमदमित्रविधानं तैतिले शुभगताश्रमकर्म' (३८ पृ०) ॥ ७ ॥

गर, वणिज, विष्टि में विहित कार्य

[२]कृषिबीजगृहाश्रयजानि गरे वणिजे ध्रुवकार्यवणिक्युतयः ।
नहि विष्टिहभं विदधाति शुभं परघातविषादिषु सिद्धिकरम् ॥ ८ ॥

गर करण में खेती, बीज, घर, आश्रय जनित, वणिज में ध्रुव, व्यापार योग (संयोग) सम्बन्धी और विष्टि में शुभ कार्य न करके अभिघात जहर आदि सम्बन्धी कार्य करना चाहिए ॥ ८ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है—'प्राकारोद्धरणं सर्वं जलकर्माखिलं च यत् । सर्वतिथ्यर्घ-कथितं कर्म सर्वं गरे हितम् । मूलकर्माखिलं धातुजीवकर्माखिलं च यत् । उक्तानुक्ता-खिलं कर्म ध्रुवं वणिजि सिद्धयति । बधबन्धविषाग्न्यस्त्रछेदनोच्चाटनादि यत् । तुरङ्ग-महिषोष्ट्रादि कर्म विष्टयां च सिद्धयति । न कुर्यान्मङ्गलं विष्टयां जीवितार्थी कदाचन । कुर्वन्नज्ञस्तदा क्षिप्रं तत्सर्वं नाशतां व्रजेत् (१६ प्र० ८–११ श्लो०) ॥ ८ ॥

और भी ज्योतिषसार में—'गरे च बीजाश्रयकर्षणानि वाणिज्यके स्थैर्यवणिक् क्रियाश्च । न सिद्धिमायाति कृतं च विष्टयां विषारिघातादिषु तत्र सिद्धिः' (२८ पृ०) ॥ ८ ॥

---

१. ज्यो० नि० ३८ पृ० ।
२. ज्यो० नि० ३६ पृ० ४ श्लो० ।

शकुनि, चतुष्पद, नाग, किंस्तुघ्न में विहित कार्यं

[1]कार्यं पौष्टिकमौषधादि शकुनौ मूलानि मन्त्रास्तथा
गोकार्याणि चतुष्पदे पितृसुरानुद्दिश्य राज्यानि च।
नागे स्थावरदारुणानि हरणं दौर्भाग्यकर्माण्यतः
किंस्तुघ्ने शुभवृद्धिपुष्टिकरणं माङ्गल्यसिद्धिक्रिया ॥ ९ ॥

शकुनि करण में पुष्टता, औषध (दवा) मूल तथा मन्त्र सम्बन्धी, चतुष्पद में गाय, पितर, देव और राज्य सम्बन्धो, नाग में स्थिर, कठिन, हरण व भाग्य हीनता सम्बन्धी एवं किंस्तुघ्न करण में शुभ, वृद्धि, पुष्टिता, माङ्गलिकता और सिद्धि सम्बन्धी कार्यं करना चाहिये ॥ ६ ॥

ज्योतिषसार में कहा है—'मन्त्रौषधानि शकुनौ तु सपौष्टकानि गोविप्रराज्यपितृकर्मं चतुष्पदेऽपि । सौभाग्यदारुणधृतिध्रुवकर्मनागे किंस्तुघ्ननाम्नि निखिलं शुभकर्मं कार्यम्' (३८ पृ०) ॥ ६ ॥

शुक्ले प्रतिपदस्त्वर्द्धे द्वितीये करणे बवे ।
कुर्य्यान्मङ्गलर्माणि शेषेष्वेवं विचिन्तयेत् ॥ १० ॥

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दूसरे आधे हिस्से में बव करण में शुभ मङ्गल कार्यं करना चाहिये । अवशिष्टों में पूर्वोक्त विहित काम करना चाहिये ॥ १० ॥

अब आगे पूर्वादि दिशाओं में विष्टि के आधार पर मुख के प्रहरों का त्याग या यों समझिये कि गन्तव्य दिशा में भद्रा के मुख की स्थिति कब तक रहती है । इसे बताते हैं ।

जलानलेन्दुक्रूरेशधर्मवातेन्द्रदिक्क्रमात् ।
सङ्ख्यासमानैः प्रहरैर्विष्टिर्दुष्टमुखं यतः ॥ ११ ॥

चतुर्दशी तिथि को पूर्व दिशा में १ प्रहर, अष्टमी में अग्नि कोण २ प्रहर, सप्तमी दक्षिण में ३ प्रहर, पूर्णिमा नैर्ऋत्य में ४ प्रहर, चौथ पश्चिम में ५ प्रहर, दशमी वायव्य में छठा प्रहर, एकादशी उत्तर में ७ वाँ प्रहर और तृतीया तिथि ईशान कोण में ८ वाँ प्रहर भद्रा का मुख होता है ॥ ११ ॥

अन्यः—

अन्य मत से मुख का ज्ञान

[2]भूतदस्रस्वराम्भोधिषडग्निवसुरूपकाः ।
यस्य दिक्सङ्ख्यया ह्येषु क्रमात्तिथ्यर्द्धविष्टिषु ॥ १२ ॥

---

१. ज्यो० नि० ३९ पृ० ५ श्लो० ।
२. मु० चिं० १ प्र० ४४ श्लो० पी० टी० ।

अन्य विद्वानों ने कहा है कि ५, २, ४, ६, ३, ८, १ ये जिस पूर्वादि दिशा के अंक है। उनमें तत्संख्यक प्रहरों में भद्रा का दुर्मुख होता है। क्रमांकों को पूर्वादि दिशा समझना चाहिए ।। १२ ।।

श्रीपतिनापि—

श्रीपतिजी के वाक्य से मुख पुच्छ ज्ञान

'जलशिखिशशिरक्षःसर्वकीनाशवायु-
त्रिदशपतिककुत्सु प्रोक्तमास्यं हि विष्टेः।
नियतमृषिभिराशासङ्ख्ययामैः क्रमेण
स्फुटमिह परिहार्यं मङ्गलेष्वेतदेव ।। १३ ।।

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि जल की दिशा में अर्थात् पश्चिम दिशा में पक्ष की चतुर्थी के उत्तरार्ध में अपनी दिशा संख्या तुल्य पाँचवे प्रहर में भद्रा का मुख होता है। इसी प्रकार शिखि=अग्निकोण में शुक्लपक्षीय अष्टमी में २ दूसरे प्रहर में, शशि=नैर्ऋत्य कोण में पूर्णिमा के दिन अपनी दिशा संख्या ४ वें प्रहर में एवं पूर्वोक्त प्रहरों में अन्य तिथियों में भी ५, ५ घटी भद्रा का मुख व अन्त्य की ३ घटी पूंछ होती है। पुच्छ शुभ होती है। समस्त मङ्गल कामों में भद्रा के मुख की घटियों का त्याग करना चाहिये ।। १३ ।।

चण्डेश्वरः—

आचार्य चण्डेश्वर के आधार पर भद्रा के नाम

कराली नन्दिनी रौद्री सुमुखी दुर्मुखी तथा।
त्रिशिरा वैष्णवी हंसी अष्टावेतास्तु विष्टयः ।। १४ ।।

आचार्य प्रवर ने बताया है कि कराली १, नन्दिनी २, रौद्री ३, सुमुखी ४, दुर्मुखी ५ त्रिशिरा ६ वैष्णवी ७, हंसी ८ ये आठ प्रकार की भद्रा होती है ।। १४ ।।

रत्नकोश में भद्रा के नाम 'हंसो नन्दीन्यपि च त्रिशिराः सुमुखी करालिकाश्चैव वैकृतिरौद्रमुखी च चतुर्मुखी विष्टयः क्रमशः। (मु० चि० १ प्र० ४३ श्लो० पी० टी०) ।। १४ ।।

पक्ष भेद से नाम करण

सर्पिणी च सिते पक्षे वृश्चिकी च सितेतरे।
सर्पिणी मुखतो त्याज्या लाङ्गूले वृश्चिकी त्यजेत् ।। १५ ।।

शुक्ल पक्ष वाली भद्रा सर्पिणी और कृष्ण पक्ष की भद्रा वृश्चिकी संज्ञा वाली होती हैं। सर्पिणी का मुख तथा वृश्चिकी संज्ञा वाली की पूंछ का त्याग करना चाहिए ।। १५ ।।

---

१. ज्यो० नि० ३६ पृ० ७ श्लो०।

श्रीपतिः—

भद्रा की उत्पत्ति

[1]दैत्येन्द्रैः समरेऽमरेषु विजितेष्वीशः क्रुधा दृष्टवान्
स्वं कायात्किल निर्गता खरमुखी लाङ्गूलिनी च त्रिपात्।
विष्टिः सप्तभुजा मृगेन्द्रगलका क्षामोदरी प्रेतगा
दैत्यघ्नी मुदितैः सुरैस्तु करणं प्रान्त्ये नियुक्ता तु सा ॥ १६ ॥

आचार्य श्रीपति ने कहा है कि जिस समय देवासुर संग्राम में देवताओं की पराजय को देखकर श्रीशङ्कर भगवान को क्रोध उत्पन्न हो गया और उनकी दृष्टि हृदय पर पड़ जाने से एक शक्ति उत्पन्न हो गई कि जिसका स्वरूप गदहे के से मुँह वाली, सात भुजा वाली, सिंह के समान गर्दन से युक्त, कृश पेट वाली, प्रेत पर सवार होकर दैत्यों (राक्षसों) का विनाश करने लगी। इससे प्रसन्न होकर देवताओं ने अपने कानों के समीप में स्थापित की अतः इसे करणों में गिना जाने लगा ॥ १६ ॥

मूलर्क्षे शूलयोगे रविदिनदशमी फाल्गुने कृष्णपक्षे याता
विष्टिर्निशायां प्रभवति नियतं शङ्करं पाहि चाङ्गे ॥ १७ ॥

मूल नक्षत्र, शूल योग, रविवार दशमी, फाल्गुन कृष्ण पक्ष में इसका प्रादुर्भाव हुआ है। रात्रि में यह शंकर का पहिरा निरन्तर लगाती है ॥ १७ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'रुद्रस्य भालनेत्राग्नि ज्वालामाला समुद्भवा। कृतकार्या ततः पृथ्व्यां व्यपतद्दग्धमङ्गला। सुरासुराणां समरेऽमरेषु पराजितेष्वीश्वरकोपदृष्टेः। जाता सुरघ्नी मुदितैः सुरौघैः (१६ प्र० १३, १६ श्लो०) ॥ १७ ॥

[2]मुहूर्तगणपतौ—

मुहूर्तगणपति के वश स्वरूप

पुरा देवासुरे युद्धे शम्भुकायाद्विनिर्गता।
दैत्यघ्नी रासभास्या च विष्टिर्लाङ्गूलिनी क्रमात् ॥ १८ ॥
[3]सिंहग्रीवा शवारूढा सप्तहस्ता कृशोदरी।
अमरैः श्रवणप्रान्ते सा नियुक्ता शिवाज्ञया ॥ १९ ॥

मुहूर्तगणपति ग्रन्थ में कहा है पहिले देवासुर सग्राम में श्रीमहादेव जी के शरीर से उत्पन्न होकर दैत्यों का विनाश करने वाली, गदहे के मुख सदृश मुख वाली, पुच्छ से युक्त, सिंह के समान गर्दन वाली, मुरदा पर सवार सात हाथ वाली, दुबले पेट वाली को शंकर की आज्ञा से देवताओं ने अपने कानों के समीप स्थापित किया है ॥ १८–१६ ॥

---

१. मु० चि० १ प्र० ४४ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० सा० ४० पृ०।
२. मु० चि० ७ प्र० १९ श्लो०।
३. मु० ग० ७ प्र० २० श्लो०।

[1]महोग्रा विकरालास्या पृथुदंष्ट्रभयानका।
कार्यघ्नी भुवमायाति वह्निज्वालासमाकुला ॥ २० ॥

यह बड़ी उग्र विकट मुख वाली, बड़ी भयानक दाढ़ियों से युक्त, अग्नि की शिखा से व्याप्त भूमि में आकर कार्यों का विनाश करती है ॥ २० ॥

चण्डेश्वरः—

चण्डेश्वर के आधार पर स्वरूप

असितजलदवर्णा दीर्घनासोग्रदंष्ट्रा
विपुलहनुकपोलापिण्डकोद्वन्द्वजङ्घा ।
अनलशतसहस्रं चोद्धरन्ती समन्ता-
त्पतति भुवनमध्ये कार्यनाशाय विष्टिः ॥ २१ ॥

आचार्य जी का कहना है कि यह काले बादलों के समान रंग वाली, लम्बी नाक व दाढ से युक्त, पुष्ट हनु, (ठोड़ी) व गालों से सम्पन्न और मोटी पीड़री व जाघों से संयुत और चारों ओर सहस्र अग्नि ज्वालाओं से युक्त भूमध्य में कार्य नाश के लिए पतित होती है ॥ २१ ॥

रत्नमाला में स्वरूप 'उद्‌बद्धोद्भटतरपीडिताऽतिकृष्णा दंष्ट्रोग्रा पृथुहनुगण्डदीर्घनासा। हुतवहनं समुद्गिरन्ती विश्वान्तः पतति समन्ततोऽत्र विष्टिः' (मु० चि० १ प्र० ४३ श्लो० पी० पी०) ॥ २१ ॥

भद्रा के शरीर में घटिकाओं की स्थापना

मुखे तु घटिकाः पञ्च द्वे कण्ठे तु सदा स्थिते।
हृदि चैकादश प्रोक्ताश्चतस्रो नाभिमण्डले ॥ २२ ॥

इसके मुख में ५ घटी, कण्ठ में २, हृदय में ग्यारह ११, नाभि में ४ घटियों का न्यास करना चाहिये ॥ २२ ॥

नारदः—

नारद जी के आधार पर घटी स्थापन

[2]मुखे पञ्च गले त्वेका वक्षस्येकादश स्मृताः।
नाभौ चतस्रः षट् श्रोणौ तिस्रः पुच्छाख्यनाडिकाः ॥ २३ ॥

नारद ऋषि का कहना है कि मुख में ५, गले में एक, हृदय में ११, नाभि में ४, श्रोणि (कमर) में ६, और ३ तीन पूंछ में स्थापित करना चाहिये ॥२३॥

---

१. मु० ग० ७ प्र० २१ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ३६ पृ०।

ज्योतिषसार में कहा है 'नाड्यस्तु पञ्चवदनेऽथ गले तथैका वक्षे दशैकसहिता नियतं चतस्रः। नाभ्यां कटौ षटथ पुच्छगताश्च तिस्रो विष्टेर्बुधैरभिहितोऽङ्गविभाग एषः' (३६ पृ०) ॥२३॥

देवज्ञवल्लभे—

घटी स्थापन का फल

'मुखे कार्यहानिर्गले प्राणनाशो हृदि द्रव्यनाशः कलिर्नाभिदेशे।
कटावर्थविध्वंसनं पुच्छभागे जयश्चेति भद्राशरीरे फलं स्यात् ॥२४॥

दैवज्ञ वल्लभ नामक ग्रन्थ में बताया गया है कि मुख घटी में कार्य नाश, गले वाली में प्राणों का नाश, हृदयस्थित में धन नाश, नाभिस्थ में कलह, कमर स्थित में धन का नाश और पुच्छ वाली घटियों में विजय प्राप्त होता है। यह भद्रा के देह में घटी स्थापन का फल होता है ॥२४॥

ज्योतिषसार में कहा है 'मुखे कार्यध्वस्तिर्भवति मरणं चाथ गलके। लयः स्यात् सम्पत्तेर्हृदि कटितटे बुद्धिविलयः। कलिर्नाभौ देशे विजयमथ पुच्छे च जगदुः शरीरे भद्रायाः पृथगितिफलं पूर्वमुनयः' (३६ पृ०) ॥२४॥

तथा वसिष्ठसंहिता में भी 'नाड्यःपञ्च मुखे गलेऽथ घटिका वक्षे दशैकायुताः। नाभिस्तद्घटिकाश्चतुष्टयमिताः षण्नासिकास्तत्कटिः। पुच्छं तन्नाडिकास्तिस्रः पुच्छान्तं मुखतः क्रमात्। विष्टेरङ्गविभागोऽयं फलं वक्ष्ये पृथक् पृथक् ॥ कार्यस्य नाशो वदने गले तु मृत्युः सदा वक्षसि चार्थहानिः। नाभौ च विघ्नं त्वथ बुद्धिनाशः कट्यां जयः संयति पुच्छभागे' (१६ प्र० १६–१८ श्लो०) ॥२४॥

मुहूर्त चिन्तामणि के आधार पर भद्रा का ज्ञान

[२]शुक्ले पूर्वार्द्धेऽष्टमीपञ्चदश्योर्भद्रैकादश्यां चतुर्थ्यां परार्द्धे।
कृष्णेऽन्त्यार्द्धे स्यात्तृतीयादशम्योः पूर्वे भागे सप्तमीशम्भुतिथ्योः ॥२५॥

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है कि शुक्ल पक्ष की अष्टमी व पूर्णिमा तिथि के पूर्वार्ध में एवं चतुर्थी व एकादशी तिथि के उत्तरार्ध में भद्रा अर्थात् विष्टि नामक करण होता है।

कृष्ण पक्ष की तृतीया व दशमी तिथि के उत्तरार्ध में और सप्तमी व चौदस के पूर्वार्ध में भद्रा होती है।

तिथि के पूर्ण भोग काल का पहला आधा हिस्सा पूर्वार्ध और दूसरा भाग उत्तरार्ध होता है ॥२५॥

दीपिका में कहा है 'तृतीया दशमी शेषे तत्पञ्चम्योस्तु पूर्वतः। कृष्णे विष्टिः सिते तद्वत्तासां परतिथिष्वपि' (मु० चि० १ प्र० ४३ श्लो० पी० टी० ॥२५॥

---

१. ज्यो० नि० ३९ पृ०।
२. मु० चि० १ प्र० ४३ श्लो०।

तथा बृहस्पति जी ने भी कहा है 'सिते चतुर्थ्यामन्त्यार्धमष्टम्याद्यार्धमेव च। एकादश्यां परार्धे तु पूर्वार्धे पूर्णशीतगौ। कृष्णे तृतीयान्त्यार्धं हि सप्तम्याद्यार्धमेव च। दशम्यां उत्तरार्धं तु चतुर्दश्यर्धमादितः। विष्ट्याख्योऽयं महादोषः कथितोऽत्र समस्तगः। तदानीं कृतसत्कर्म कर्त्रा सह विनश्यति' (मु० चि० १ प्र० ४३ श्लो० पी० टी०) ॥२५॥

तथा ज्योतिषसार में भी 'कृष्णेऽग्निदशयोरूर्ध्वं सप्तमीभूतयोरधः। शुक्ले वेदेशयोरूर्ध्वं भद्रा प्राग्वसुपूर्णयोः' (३८ पृ०) ॥२५॥

भृगुः—

भृगु जी के आधार पर भद्रा का ज्ञान

कृष्णे च त्रिदशा रात्रौ दिवा सप्तचतुर्दशी।
शुक्ले तुर्येकादशी रात्रावष्टमी पूर्णिमा दिवा ॥ २६ ॥

ऋषि भृगु जी का कहना है कि कृष्ण पक्ष की तृतीया, दशमी तिथि में रात्रि में तथा सप्तमी, चतुर्दशी में दिन में, शुक्ल पक्ष में चौथ, एकादशी में रात में और अष्टमी पूर्णिमा में दिन में भद्रा होती है ॥२६॥

रामः—

राम दैवज्ञ के आधार पर भद्रा का मुख पुच्छ ज्ञान

[1]पञ्चव्द्रिकृताष्टरामरसभूर्यामादिघटयः शराः
विष्टेरास्यमसद्गजेन्दुरसरामाव्द्याश्विबाणाब्धिषु।
यामेष्वन्त्यघटित्रयं शुभकरं पुच्छं तथा वासरे
विष्टिस्तिथ्यपरार्द्धजा शुभकरी रात्रौ तु पूर्वार्द्धजा ॥ २७ ॥

राम दैवज्ञ ने अपने ग्रन्थ में बताया है कि शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि के पाँचवें प्रहर की आदिवाली ५ घटी में भद्रा का मुख होता है। इसी प्रकार अष्टमी के दूसरे प्रहर में, एकादशी के सातवें प्रहर में, पौर्णमासी के चौथे प्रहर में और कृष्णपक्ष की तृतीया के आठवें प्रहर में, सप्तमी के तीसरे प्रहर में, दशमी के छटे प्रहर में और चतुर्दशी के पहिले प्रहर में आदि की ५ घटी में भद्रा का मुख होता है। वह मुख शुभ कार्यों में अशुभ होता है।

शुक्ल पक्ष की पुनः चतुर्थी तिथि के अष्टम प्रहर की अन्त्य की, अष्टमी के प्रथम प्रहर की, एकादशी के छटे प्रहर की, पूर्णिमा के तीसरे प्रहर की और कृष्णपक्ष की तृतीया के सातवें प्रहर की, सप्तमी के दूसरे प्रहर की, दशमी के पाँचवें प्रहर की और चतुर्दशी के चौथे प्रहर की अन्त्य की ३ घटी में भद्रा की पूँछ होती है।

दिन की भद्रा यदि तिथि के उत्तरार्ध की हो और रात की भद्रा तिथि के पूर्वार्ध की हो तो वह शुभ होती है ॥२७॥

---

१. मु० चि० १ प्र० ४३ श्लो०।

व्यवहारसमुच्चय में कहा है 'दशम्यामष्टम्यां प्रथमघटिकापञ्चकपरं हरिद्युः सप्तम्यां द्विदशघटिकान्ते त्रिघटिकम्। तृतीया राकायां खयमघटिकाभ्यः परमवं शुभं विष्टेः पुच्छं शिवतिथिचतुर्थ्योऽत्र विरमे' (मु० चि० १ प्र० ४४ श्लो० पी० टी०) ॥२७॥

बृहस्पतिः—

भद्रा का शुभाशुभत्व ज्ञान

विष्टिस्तु सर्वथा त्याज्या क्रमेणैवागता तु या।
अक्रमेणागता भद्रा सर्वकार्येषु शोभना ॥ २८ ॥

बृहस्पति जी ने बताया है कि क्रम से प्राप्त भद्रा को समस्त मांगलिक कार्यों में छोड़ देना चाहिये और अक्रम से प्राप्त का ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि यह शुभदा होती है ॥२८॥

ब्रह्मयामले—

ब्रह्मयामल के द्वारा शुभाशुभत्व

दिवाभद्रा यदा रात्रौ रात्रिभद्रा यदा दिवा।
न तत्र भद्रादोषः स्यात्सा भद्रा भद्रदायिनी ॥ २९ ॥

ब्रह्मयामल नामक ग्रन्थ में बताया है कि यदि दिनवाली भद्रा रात्रि में हो और रात वाली दिन में हो तो भद्रा का दोष नहीं होता है। इस प्रकार की भद्रा कल्याण करने वाली होती है ॥२९॥

पीयूषधारा टीका में कहा है 'रात्रिभद्रा यदाह्नि स्याद्दिवा भद्रा यदा निशि। न तत्र भद्रा दोषः स्यात् सा भद्रा भद्रदायिनी' (मु० चि० १ प्र० ४४ श्लो०) ॥२९॥

और भी गुरुवाक्य 'निशि पूर्वार्धजा विष्टिर्दिवा चापरतः शुभा। क्रमागता तु या विष्टिः सैव हालाहलोपमा' (मु० चि० १ प्र० ४४ श्लो० पी० टी०) ॥२९॥

लल्लाचार्य जी ने कहा है 'दिवा परार्धजा विष्टिः पूर्वार्धन्त्या यदा निशि। तदा विष्टिः शुभायेति कमलासनभाषितम्' (मु० चि० १ प्र० ४४ श्लो० पी० टी०) ॥२९॥

ब्रह्मसिद्धान्त में भी 'दिवा परार्धजा विष्टिर्विष्टिरेव दिवानिशोः। सा त्याज्या त्वन्यथा विष्टिः सर्वकर्मशुभप्रदा' (मु० चि० १ प्र० ४४ श्लो० पी० टी०) ॥२९॥

लल्लः—

लल्लाचार्य जी के आधार पर भद्रा की पूँछ का ज्ञान

मेष्वर्कनखनाडीभ्यो भद्रापुच्छं घटित्रयम्!
क्रमेण धवले पक्षे व्युत्क्रमेण सितेतरे ॥ ३० ॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि शुक्ल पक्ष की तिथियों में ५, १२, २० घटी के अनन्तर ३ घटी भद्रा का पुच्छ और कृष्ण पक्ष में व्युत्क्रम से पूँछ भद्रा की होती है ॥३०॥

भद्रा के पुच्छ में विहित कार्य

पृथिव्यां यानि कर्माणि शुभान्यप्यशुभानि वा ।
तानि सर्वाणि सिद्धयन्ति विष्टिपुच्छे न संशयः ॥ ३१ ॥

इस भूमि पर जितने शुभाशुम कार्य हैं वे समस्त मद्रा के पुच्छ में सिद्ध होते हैं। इसमें संदेह नहीं करना चाहिये ॥३१॥

प्रकारान्तर

युद्धे भूपतिदर्शने भयपदे घाते च पाते हठे
वैद्यस्यागमने जलप्रतरणे शत्रोः समुच्चाटने ।
सङ्घट्टे गदमज्जने गजमृगोष्ट्राश्वादिके सङ्ग्रहे
स्त्रीसेवा ऋतुमज्जने च शकटे भद्रा सदा गृह्यते ॥ ३२ ॥

युद्ध, राजदर्शन, मय, स्थान, घात, पात, हठ, चिकित्सक के आगमन (बुलाना), जल तरण, शत्रु मगाना, संघट्ट, रोग दूरीकरण, हाथी–घोड़ा–हिरन–ऊंट आदि सङ्ग्रह, स्त्री सेवा, ऋतुमज्जन और शकट (गाढा) सम्बन्धी कार्यों में सर्वथा मद्रा का ग्रहण करना चाहिये ॥३२॥

अन्यः—

और भी

विवादे शत्रुहनने भयार्थे राजदर्शने ।
इक्षुदण्डे तथा प्रोक्ता भद्रा श्रेष्ठा विधीयते ॥ ३३ ॥

विवाह, शत्रु हनन, मयार्थ, राजदर्शन ईख आदि कार्य में मद्रा श्रेष्ठ होती है ॥३३॥

[1]वधबन्धविषाग्न्यस्त्रच्छेदनोच्चाटनादि यत् ।
तुरङ्गमहिषोष्ट्राविकर्म विष्ट्यां तु सिद्धयति ॥ ३४ ॥

वध, बन्धन, जहर, अग्नि, अस्त्र, छेदन, उच्चाटनादि, घोड़ा, भैंसा, ऊंट आदि कार्य मद्रा में सिद्ध होते हैं ॥३४॥

कालीदासः—

कालिदास के आधार पर

स्यादभद्राय भद्रा न शम्भोर्जये मीनराशौ न योगस्तथाप्यर्चने ।
होमकाले शिवायास्तमीस्त(दु)द्भूवः साधने सर्वकाले न मेषेऽनयोः ॥३५

श्री कालिदास ने बताया है कि महादेव जी के जप में तथा मीन राशि के चन्द्रमा में पूजन करने में एवं शिवा के रात में होम काल में प्रादुर्माव साधन में व समस्त काल में मेष के चन्द्रमा में मद्रा अशुमफलदायिनी नहीं होती है ॥३५॥

---

१. व० सं० १६ अ० ११ श्लो० ।

गणपतिः--

मुहूर्तगणपति के आधार पर

[1]खराश्वाप्रसवे दुर्गा पूजने दानकर्मणि।
दाहघातादिके भद्रा शस्ता नान्यत्र शोभना ॥ ३६ ॥

गदहा व घोड़ा की पैदाइश में, दुर्गा पूजा, दान, दाह और घातादि कार्यों में भद्रा शुभफल देने वाली होती है और अन्य कार्यों में अशुभ होती है ॥३६॥

अब भद्रा का निवास किस लोक में किस राशि में चन्द्रमा के रहने पर होता है तथा इसका क्या फल होता है, इसे विविध ग्रन्थ वाक्यों से बताते हैं।

लल्लः--

भद्रा का निवास व फल

कुम्भान्त्यालिहरौ मर्त्ये स्वर्गे चात्र चतुष्टये।
स्त्रीधनुर्जूकनक्रेऽधो भद्रा यत्रैव तत्फलम् ॥ ३७ ॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि कुम्भ, मीन, वृश्चिक व सिंह राशि में चन्द्रमा के रहने पर भद्रा का निवास मर्त्यलोक में और कन्या, धनु, तुला और मकर राशि में चन्द्रमा के रहने पर भद्रा का निवास स्वर्ग लोक में होता है। जहाँ पर इसका निवास होता है वहीं पर इसका फल भी होता है ॥३७॥

भृगुः--

भृगुजी के आधार पर

सिंहालिमीनकुम्भादौ भुवि भद्रास्तु मृत्युदाः।
मेषाच्चतुष्टये स्वर्गे कन्याजूकधनुद्वये।
पाताले सञ्चरेद्भद्रा सुखदा सा प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥

भृगु जी का कहना है कि सिंह–वृश्चिक–कुम्भ–मीन राशिस्थ चन्द्रमा के ही होने पर इस भूमि पर भद्रा का आवास होता है। यह मृत्युदाता होता है।

और मेष-वृष–मिथुन–कर्क में चन्द्रमा के रहने पर स्वर्गलोक में, कन्या–तुला–धनु–मकर राशि में स्थिति होने से पाताल में भद्रा का निवास होता है। ये दोनों शुभ फलदा होती हैं ॥३८॥

[2]गणपतिः--

गणपति के आधार पर निवास

अजत्रयेऽब्जेऽलिगे च भद्रा स्वर्लोकचारिणी।
कन्याद्वये धनुर्युग्मे चन्द्रे भद्रा रसातले ॥ ३९ ॥

---

१. ६ प्र० २७ श्लो०।
२. मु० ग० ६ प्र० २३ श्लो०।

[1]कुम्भे मीने तथा कर्के सिंहे चन्द्रे भुवि स्थिता।
भूर्लोकस्था सदा त्याज्या स्वर्गपातालगा शुभा ॥ ४० ॥

मुहूर्तगणपति में बताया है कि मेष–वृष–मिथुन–वृश्चिक राशि में चन्द्रमा के रहने पर भद्रा का निवास स्वर्गलोक, कन्या–तुला–धनु–मकर में रसातल में, कुम्भ–मीन–कर्क–सिंह राशि में चन्द्रमा की स्थिति से भूमि पर भद्रा का निवास होता है। भूमिस्थ भद्रा का सदा त्याग करना चाहिये। और स्वर्ग-पातालस्थ भद्रा शुभ होती है ॥३९-४०॥

ज्योतिष सार में कहा है 'मीने मेषालिकर्के शशिनि निवसति स्वर्गसंस्थापि विष्टिः कन्यायां तौलिसंस्थे धनुमिथुनगते नागलोके निवासः। कुम्भे सिंहे वृषे वा मकरमुपगते राजते मृत्युलोके भद्रा चन्द्रप्रभावा हिमकरतनयानोशुभालौकिकः स्यात्' ॥ स्वर्गे भद्रा भवेत् सौख्यं पाताले च धनागमः। मृत्युलोके यदा भद्रा कार्यसिद्धिस्तथा नहि' (३६ पृ०) ॥३६–४०॥

मुहूर्तचिन्तामणि में 'कुम्भकर्कद्वये मर्त्ये स्वर्गेऽब्जेऽजात्त्रयेऽलिगे। स्त्रीधनुर्जूकनक्रेऽधो भद्रा तत्रैव तत्फलम्' (१ प्र० ४५ श्लो०) ॥३६–४०॥

पीयूषधारा में भी 'मेषोक्षकौर्प्यमिथुने घटसिंहमीनकर्केषु चापमृगतौलिसुतासु चन्द्रे। स्वर्मर्त्यनागनगरीः क्रमशः प्रयाति विष्टिः फलान्यपि ददाति हि तत्र देशे' ॥

और भी भूपालवल्लभ का वाक्य 'कन्यातुलामकरधन्विषु नागलोके मेषालिवैणिक-वृषेषु सुरालये स्यात्। पाठीनसिंहघटकर्कटकेषु मर्त्ये चन्द्रे वदन्ति मुनयस्त्रिविधां हि विष्टिम्' ॥३६–४०॥

भृगुरपि—

वारानुसार भद्रा के नामों का ज्ञान

[2]सोमे शुक्रे च कल्याणी शनौ चैव तु वृश्चिकी।
गुरौ पुण्यवती ज्ञेया चान्यवारेषु भद्रिका ॥ ४१ ॥

महर्षि भृगुजी ने बताया है कि सोम व शुक्रवार को भद्रा कल्याणी नाम की, शनिवार के दिन वृश्चिकी, गुरुवार के दिन पुण्यवती नाम की और इनके अतिरिक्त वारों में या यों समझिये कि सूर्य, भौम, बुध वारों में इसको भद्रिका संज्ञा होती है ॥ ४१ ॥

तिथि के पूर्वार्ध व परार्ध में भद्रा की स्थिति से फल

[3]मनु (१४) वसु (८) मुनि (७) तिथि (१५) युग (४)
दश (१०) शिव (११) गुण (३) तिथिषु पूर्वाद्याः।
आयाति विष्टिरेषा पृष्ठे शुभदा पुरस्त्वशुभा ॥ ४२ ॥

---

४. मु० न० ६ प्र० २४ श्लो०।

५. ज्यो० सा० ३६ पृ०।

६. मु० चि० १ प्र० ४४ श्लो० पी० टी०।

चतुर्दशी, अष्टमी, सप्तमी, पूर्णिमा तिथि के पूर्वार्ध में और चौथ, दशमी, एकादशी व तृतीया के परार्ध में भद्रा होती है। इसका मुख त्याज्य और पूंछ शुभ होती है ॥४२॥

विशेष—पीयूषधारा में पद्य की प्राप्ति इस प्रकार होती''''गुणसंख्यासु तिथिषु पूर्वस्याः । है ।

ज्योतिष सार में भी 'मनुवसुमुनितिथिषु युग्मदशशिवगुणसंख्यासु तिथिषु पूर्वान्त्या । पाठान्तर है ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने करणकथनं नाम षड्विंशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञ रञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का छब्बीसवाँ करण नाम वाला प्रकरण समाप्त हुआ ॥ २६ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदविहिता षड्विंशतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी व्याख्या परिपूर्णा ॥ २६ ॥

तिथि	४	८	११	१५	३	७	१०	१४
प्रहरादौ	५	२	७	४	८	३	६	१
घटीमुखं	५	५	५	५	५	५	५	५
प्रहरान्ते	८	१	६	३	७	२	५	४
घटीपुच्छे	३	३	३	३	३	३	३	३
अष्ट दिग्	प	अ	उ	न	ई	द	वा	पू

अथ सप्तविंशं चन्द्रप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे सत्ताईसवें प्रकरण में चन्द्र बल की प्रधानता के बारे में विविध ग्रन्थों के वाक्यों से चर्चा होगी इसे बताते हैं ।

शारङ्गधरः—

शार्ङ्गधरीय चन्द्रबल की प्रशंसा

लग्नं देहः षट्कवर्गोऽङ्गकान्तिः प्राणश्चन्द्रो धातवः खेचरेन्द्राः ।
प्राणे नष्टे देहधात्वङ्गनाशः तस्मादिन्दोर्वीर्यमार्यैः प्रधानम् ॥ १ ॥

शार्ङ्ग विवाह पटल में कहा है कि कुण्डली में लग्न शरीर, अङ्ग षड्वर्ग, प्राण चन्द्रमा और अन्य ग्रह धातु होते हैं । प्राण के नष्ट होने पर शरीर के समस्त अवयव नष्ट माने जाते हैं इसलिये सब समय चन्द्रमा के बल की प्रधानता होती है ॥ १॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में इसका पाठान्तर इस प्रकार से 'लग्नं देहोऽङ्गानि षड्वर्गकाश्च प्राण''''तस्मात्सर्वत्रेन्दुवीर्यं प्रधानम्' है' (पृ० सं० ६३ श्लो० १[1] ॥ १ ॥

संहिताप्रदीपे—

संहिता प्रदीप के आधार पर प्रशंसा

यथा प्रधानं प्रणवः श्रुतीनां यथा प्रधानं प्रसवः कलानाम् ।
तथैव शीतांशुबलं प्रधानं नूनं बलानामिह खेचराणाम् ॥ २ ॥

संहिता प्रदीप नामक ग्रन्थ में बताया गया है कि जैसे श्रुतियों में प्रणव, कलाओं में प्रसव प्रधान होता है उसी प्रकार ग्रहों के बल में चन्द्रमा के बल की प्रधानता होती है ॥ २ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'बला अखिलमृगाणां हरिरिव खचरबलानां च चन्द्रबलम् ।' (२० अ० ११ श्लो०) ॥ २ ॥

प्रकारान्तर

बलाबलं चन्द्रमसः प्रसाध्य दद्युर्ग्रहेन्द्रा हि बलाबलानि ।
मनःप्रचारेण यथेन्द्रियाणि वदन्ति वस्तूनि न केवलानि ॥ ३ ॥

प्रथम कुण्डली में चन्द्रमा के बलाबल ज्ञान करके ही अन्य ग्रहों के बलाबल की सफलता जाननी चाहिये, क्योंकि मन के संचरण से ही इन्द्रियां वस्तु का ज्ञान कराने में समर्थ होती हैं । केवल इन्द्रियों से वस्तु का ज्ञान नहीं होता है ॥ ३ ॥

पुनः प्रशंसा

आदौ हि चन्द्रस्य बलं प्रधानं लग्नस्य पश्चादथ सप्तवर्गः ।
किं चन्द्रवीर्येण विनेतराणि कुर्वन्ति सत्यायुषि लक्षणानि[1] ॥ ४ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६३ पृ० १ श्लो० ।

प्रथम चन्द्र बल की, फिर लग्न और इसके पीछे सप्तवर्ग की प्रधानता होती है। चन्द्र बल के अभाव में आयुष्य होने पर भी अन्य लक्षण कुछ भी फली भूत नहीं होते हैं ॥ ४ ॥

श्रीपतिः—

श्रीपति के वाक्य से चन्द्र बल की प्रधानता

[1]आधारमिन्दोर्बलमुक्तमाद्यैराधेयमन्यग्रहजं च वीर्यम्।
आधारशक्तौ परिधिष्ठितानामाधेयवस्तूनि हि वीर्यवन्ति ॥ ५ ॥

श्रीपति आचार्य का कहना है कि प्राचीनाचार्यों ने चन्द्रमा के बल को आधार बताया हैं और अन्य ग्रहों के बल को आधेय कहा है। जिस प्रकार की आधार शक्ति में आधेय वस्तु स्थापित होती है तो फल भी वैसा ही होता है अर्थात् आधेय में भी उतना ही बल होता है ॥ ५ ॥

अन्य भी प्रशंसा

[2]अमृतकिरणवीर्याद्वीर्यमाश्रित्य सर्वे
ददति ह फलमेते खेचराः साध्वसाधु।
निजनिजविषयेषु प्राप्नुवन्ते यतोऽभूत्
फलमिह मनसैवाधिष्ठितानीन्द्रियाणि ॥ ६ ॥

चन्द्रमा के बल से बल का ग्रहण करके ही अन्य ग्रह शुभाशुभ फल देते हैं। जैसे मन से अधिष्ठित होकर इन्द्रियाँ अपने २ विषयों का फल देती हैं ॥ ६ ॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में 'विदधति फलमेते''''। व्याप्रियन्ते यथाऽमी फलमिह''''। (६३ पृ० ४ श्लो०) ॥ ६ ॥

सर्वत्र लग्ने प्रथमं प्रकल्प्यं कर्तुर्बलं चन्द्रमसं ततोऽन्यत्।
बलोपपन्नेऽप्यथ शीतरश्मौ भवन्ति शस्ता बलिनो ग्रहेन्द्राः ॥ ७ ॥

समस्त कार्यों की लग्न में प्रथम कर्ता के चन्द्र बल का विचार करके ही लग्न का आदेश देकर अन्य बातों का विचार करना चाहिये। क्योंकि चन्द्रमा के बली होने पर अन्य ग्रह प्रशस्त होते हैं ॥ ७ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'प्रायेण सर्वत्र विलोकयन्ति चान्द्रं बलं गोचरतो विशुद्धम्। लोकेषु यच्चन्द्रबलं प्रधानं शास्त्रेषु मुख्यं खलु लग्नमेव' (६३ पृ० २२ श्लो० ॥

वैद्यनाथः—

वैद्यनाथ के आधार पर प्रशंसा

यादृशेन शशाङ्केन राशिं सङ्क्रमते ग्रहः।
तादृशं फलमाप्नोति नरः सर्वत्र चिन्तयेत् ॥ ८ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६३ पृ० ३ श्लो०।

२. ज्यो० नि० ६३ पृ० ४ श्लो०।

आचार्य वैद्यनाथ जी ने बयाया है कि जिस प्रकार के चन्द्रमा के होने पर ग्रह दूसरी राशि पर जाता है तो उस ग्रह का फल भी चन्द्रबल के समान ही मनुष्य प्राप्त करता है ॥ ८ ॥

ज्योतिःप्रकाशे--

ज्योतिः प्रकाश के आधार पर प्रशंसा

लग्नं हस्ती नृपश्चन्द्रः सौम्यपापाश्च भृत्यकाः ।
नृपे नष्टे कथं युद्धं कथं हि फलमादिशेत् ॥ ९ ॥

ज्योतिः प्रकाश ग्रन्थ में बताया है कि लग्न हाथी, चन्द्रमा राजा और शुभ पापग्रह सेवक होते हैं । अतः राजा के नाश होने पर कैसा युद्ध और किस प्रकार का फल अर्थात् नष्ट चन्द्र बल में कुछ भी फल नहीं होता है ॥ ९ ॥

नारदः--

अन्य नारद जी के आधार पर प्रधानता

तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रं च चतुर्गुणम् ।
वारश्चाष्टगुणः प्रोक्तः करणं षोडशान्वितम् ॥ १० ॥
द्वात्रिंशल्लक्षणो योगस्तारा षष्टिगुणा स्मृता ।
चन्द्रे शतगुणं पुंसां तस्माच्चन्द्रबलाधिकम् ॥ ११ ॥

नारद ऋषि जी ने बताया है कि तिथि का १ गुण, नक्षत्र का ४, वार का ८, करण का १६, योग का ३२, तारा का ६० और चन्द्रमा १०० गुण होता है । इसलिये पुरुषों का चन्द्रमा का बल प्रधान होता है ॥ १०-११ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है कि 'वृद्धगर्गः-तिथिरेकगुणः प्रोक्तो बलेन द्विगुणः क्षणः । चतुर्गुणं तु नक्षत्रं वारश्चाष्टगुणः स्मृतः । चन्द्रः शतगुणो लग्नं सहस्रगुणमुच्यते । लग्नाद्धोरादयो भेदा बलिनः स्युर्यथोत्तरम् ।' (पृ० ६२ श्लो० २३-२४) ॥ १०-११ ॥

और भी उसी ग्रन्थ में राजमार्त्तण्डका कथन 'तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रञ्च चतुर्गुणम् । वारश्चाष्टगुणश्चैव चन्द्रः शतगुणः स्मृतः' (पृ० ६२ श्लो० २५) ॥१०-११॥

सद्यः स्मरणायेदं लिखितम् । इदं तु पूर्वं तिथिप्रकरणेष्वालेखितम् ।

जल्दी स्मरण के लिये यह लिखा है । इसको पहिले तिथि प्रकरण में भी लिखा है ॥

राजमार्तण्डे--

राजमार्त्तण्ड के आधार पर

चन्द्रबलेन विहीनो न मनःपरितोषदः क्रियारम्भे ।
सुगुणशतैरपि युक्तो वृद्धो रमणो वरस्त्रीणाम् ॥ १२ ॥

राजमार्त्तण्ड में कहा है कि किसी भी कार्य के आरम्भ में चन्द्रमा के निर्बल होने पर मन में प्रसन्नता नहीं होती है। जैसे श्रेष्ठ स्त्रियों को बूढ़ा रमण कर्ता प्राप्त होने पर संतोष नहीं होता है ॥ १२ ॥

अब आगे वसिष्ठसंहिता के वाक्य से वर्षादि, अयनादि, ऋतु को आदि और मासके प्रथम दिनों में यदि चन्द्रमा शुभकारी हो तो वर्षादि में शुभ फल देने वाला होता है, इसे बताते हैं।

वसिष्ठः—

वसिष्ठसंहिता के आधार पर विशेष बात

प्रथमदिने वत्सरतः शुभदे चन्द्रे च यस्य पुरुषस्य।
तद्वर्षंशिशिरकरः शुभफलदस्तस्य वेधयुक्तोऽपि[1] ॥ १३ ॥
अयनावृतुसमये मासे वाप्येवमेत्र जानीयात्।
तारामपि तद्वलतः शुभतारा चैव शुभदा स्यात्[2] ॥ १४ ॥

जिस व्यक्ति का वर्ष के आदि में चन्द्रमा शुमद होता है तो उस वर्षान्त तक वेध युक्त होकर भी अच्छा फल देने वाला होता है तथा चन्द्रमा के शुभकारी होने पर अनिष्ट नहीं होता है ॥ १३ ॥

जब अयन या ऋतु या मास के आदि में चन्द्रमा शुभ फल देने वाला होता है तो अयनान्त, ऋतु पर्यन्त और मास पर्यन्त शुभकारी होता है ॥ १४ ॥

विशेष—प्रकाशित वसिष्ठसंहिता में 'वेधयुक्तोऽपि' के स्थान पर 'बुध युक्तोऽपि' और 'ताराबलमाप्तिस्तच्छुभतारा' यह पाठान्तर है ॥ १३–१४ ॥

श्रीपतिः—

आचार्य श्रीपति जी के आधार पर

वलक्षंपक्षादिगते हिमांशौ शुभे शुभं पक्षमुदाहरन्ति।
सितेतरादावशुभे शुभं च पक्षावनिष्टौ भवतोऽन्यथा तौ ॥ १५ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि जिस व्यक्ति का चन्द्रमा शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन शुभ होता है तो उसका वह पक्ष शुभ फल अर्थात् सुन्दर और कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन यदि अशुभकारी होता है तो यह पक्ष अच्छा फल देने वाला होता है। इसके विपरीत में दोनों पक्ष अनिष्टकारी होते हैं ॥१५॥

नारद ऋषि ने कहा है 'शुक्लपक्षाद्यदिवसे चन्द्रो यस्य शुभप्रदः। स पक्षस्तस्य शुभदः कृष्णपक्षेऽन्यथा शुभः' (ज्यो० नि० ४९ पृ० १ श्लो०) ॥१५॥

वसिष्ठसंहिता में भी कहा है 'सितपक्षस्याद्यदिने शुभदस्तत्पक्षमतिशुभदः। असितस्यादावशुभः शुभफलदः पक्षमखिलं तत् (२० अ० ३ श्लो०) ॥१५॥

---

१. व० सं० २० अ० १ श्लो०।
२. व० सं० २० अ० २ श्लो०।

लल्लः--

लल्लाचार्य जी के आधार पर चन्द्रमा का बलाबल

मासे तु शुक्लप्रतिपत्प्रवृत्तेः पूर्वे शशी मध्यबलो दशाहे।
श्रेष्ठो द्वितीयेऽल्पबलस्तृतीये सौम्यैस्तु दृष्टे बलवान् सदैव ॥ १६ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से दशमी तक मध्यबली, शुक्ल एकादशी से कृष्ण पञ्चमी तक पूर्ण बली और षष्ठी से अमावस्या तक अल्पबल देने वाला चन्द्रमा होता है ॥१६॥

संहितासारे--

संहिता सार के आधार पर

विधुरधिकबलीयान् कीर्तिमान् शुक्लपक्षे
बलमबलमिहोक्तास्तारकीया ग्रहेन्द्राः।
बलवति सति कान्ते विद्यमानेऽपि दक्षे
प्रभवति नहि कर्तुः सर्वकार्याणि योषाः ॥ १७ ॥

संहितासार नामक ग्रन्थ में कहा है कि शुक्ल पक्ष में अधिक बलवान् व कीर्तिमान् चन्द्रमा होता है। यह चन्द्रमा के आधार पर ही तारा व ग्रहों के बल का विवेचन किया है किन्तु जैसे बलवान् सुन्दर चतुर पति उपस्थित होने पर भी स्त्री समस्त कार्य करने को उद्यत नहीं होती है ॥१७॥

केशवः--

आचार्य केशव के आधार पर

[1]पक्षे सिते चन्द्रबलं प्रधानं ताराबलं तत्र न चिन्तनीयम्।
सुस्थे गृहस्थे सबले च पत्यौ प्रधानता नास्ति यतोऽङ्गनानाम् ॥ १८ ॥

आचार्य केशव ने बताया है कि शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा का बल प्रधान होता है। इसमें तारा के बल का विचार नहीं करना चाहिये। क्योंकि स्वस्थ सबल पति के रहने पर भी स्त्री की प्रधानता नहीं होती है ॥१८॥

प्रकारान्तर

[2]कृष्णेऽपि पक्षे विधुवीर्यमेव भवेत्प्रधानं ननु तारकायाः।
दुःस्थः कृशो वा पतिरेव यद्वत्सर्वाणि कार्याणि विधापयीत ॥ १९ ॥

कृष्ण पक्ष में भी चन्द्र बल की प्रधानता होती है तारा का प्राधान्य कृष्ण पक्ष में नहीं होता है क्योंकि दुःखी या दुबला पति ही स्त्री के समस्त कार्यों का निर्वाह करता है ॥१९॥

---

१. ज्यो० नि० ४६ पृ० ७ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ४६ पृ० १० श्लो०।

अब आगे विवाह वृन्दावन के वचन से कृष्ण पक्ष में तारा बलवती होती है, इसका निषेध करना बताते हैं।

[1]वृन्दावने—

प्रोषिते विकलवर्ष्मणि प्रिये तोलिलिः स्त्रियमियेष कार्यिणोम्।
अस्तु किन्तु न पतिप्रतीपतां सान्यथा घटयितुं पटीयसी॥ २०॥

विवाह वृन्दावन में बतलाया है कि पति के प्रवास में या विकल शरीर होने पर स्त्री कार्य करने वाली होती है उसी प्रकार कृष्ण पक्ष में दुर्बल चन्द्रमा के होने से तारा बलीयसी होती है ऐसा अत्रि मुनि का कथन उचित नहीं है। क्योंकि पति के दुर्बल होने पर भी स्त्री पति के विपरीत आचरण नहीं करती है॥२०॥

क्रौर्यमेति बहुले स केवलं नैव नश्यतितमाममां वसन्।
नास्ति चैष यदि तत्र तत्कथं तत्कृता जनिषु रिष्टरौद्रता॥ २१॥

कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा क्रूरत्व को प्राप्त होता है क्षीण होने से तथा अमावस्या में दृष्ट पथ पर न आने के कारण नष्ट चन्द्रमा के नाम से कहा जाता है। यह चन्द्रमा उस दिन सूर्य के साथ रहने पर भी यदि अमा के पास अधिक नष्ट नहीं होता है। यदि यह उस दिन समस्त ही क्षीण होता तो उस दिन में जन्म लेने वाले किस प्रकार से क्रूरता का अनुभव कर सकते हैं॥२१॥

पार्श्वगे निजपतौ कुटुम्बिनी दुर्बलेऽपि तदभीष्टकार्यकृत्।
तारकाऽपि शशिनोऽनुकूलता सम्भवे भवति पक्षपातिनी॥ २२॥

जैसे पतिव्रता स्त्री अपने दुर्बल पति के रहने पर भी पति के अभीष्ट कार्यों का सम्पादन करने वाली होती है। उसी प्रकार तारा चन्द्र के अनुकूल ही आचरण करने वाली होने से कृष्ण पक्ष में भी चन्द्र के बल की प्रधानता सिद्ध होती है॥२२॥

रेणुकः—

आचार्य रेणुक के आधार पर

ताराबलं न हि ग्राह्यं विरुद्धे तु निशाकरे।
न हि धारयते वल्ली निपतन्तं महाद्रुमम्॥ २३॥

आचार्य प्रवर ने बताया है कि विरुद्ध चन्द्रमा के होने पर तारा का बल नहीं ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि गिरते हुए बड़े वृक्ष को वल्ली धारण करने में असमर्थ होती है॥२३॥

बृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर

शुभग्रहेक्षितश्चन्द्रः शुभकर्मरतो यदि।
पापांशके शशाङ्कस्थो दोषान् सर्वान् व्यपोहति॥ २४॥

---

१. ६ अ० ६–११ श्लो०।

बृहस्पति जी का कहना है कि शुभग्रह से दृष्ट चन्द्रमा शुभ कार्य में आसक्त, पापग्रह के नवांश में स्थित चन्द्र समस्त दोषों का नाश कर्ता होता है ।।२४।।

शुभस्यांशे गतश्चन्द्रः शुभकर्मरतो यदि ।
इन्दुग्रहस्य नान्धत्वं हिते रक्षोदयेऽपि च ।। २५ ।।

यदि शुभग्रह के नवांश में स्थित चन्द्रमा चन्द्र-ग्रहण के समय मित्र या शत्रु की राशि में उदित हो तो शुभ कार्य में आसक्त करता है ।।२५।।

चन्द्रः केन्द्रे शुभस्तिष्ठेद्द्विनेत्रर्क्षे बलान्वितः ।
चन्द्रेऽन्धर्क्षगतो वापि न दोषः शुभकर्मसु ।। २६ ।।

यदि चन्द्रमा बल से युक्त होकर केन्द्र में आर्द्रा नक्षत्र का होकर स्थित हो वा अन्ध नक्षत्रों में भी केन्द्र में हो तो शुभ कार्यों में दोष दाता नहीं होता है ।।२६।।

त्रिकोणकण्टके वापि शुभस्तिष्ठेद्बलान्वितः ।
चन्द्रे अन्धर्क्षगो वापि न दोषः सर्वकर्मसु ।। २७ ।।

यदि केन्द्र या त्रिकोण में बल से युक्त शुभ वा अन्ध नक्षत्रों में केन्द्र में हो तो समस्त कार्यों में दोषी नहीं होता है ।।२७।।

गुरूषितनवांशर्क्षकेन्द्रगः शुभकर्मकृत् ।
सितपक्षे शशी पापं स्वांशदोषान् व्यपोहति ।। २८ ।।

यदि गुरु या सूर्य के नवांश में केन्द्र में चन्द्रमा हो तो शुभ फल दाता और शुक्ल पक्ष में समस्त पापों का नाशक व अपने दोषों का नाश करने वाला होता है ।।२८।।

शुभग्रहो सितांशस्थः कर्कटस्थः शुभेक्षितः ।
शुभकर्मकरस्यांशस्थितो दोषान्व्यपोहति ।। २९ ।।

जब कि चन्द्रमा शुभग्रह होकर शुक्र के नवांश में या कर्क में शुभग्रह से दृष्ट या शुभ कर्मकारी के नवांश में होता है तो समस्त दोषों का विनाशी होता है ।।२९।।

जन्मेशाष्टमराशीशौ मिथो मित्रे यदा तदा ।
अष्टमर्क्षोत्थसम्भूतो दोषो नश्यति भावतः ।। ३० ।।

जन्मेश व अष्टमराशीश परस्पर में मित्र हों तो अष्टम राशि जन्मदोष स्वभाव से नष्ट हो जाता है ।।३०।।

जन्मेशमृत्युराशीशौ मिथो मित्रे यदा तदा ।
जन्माष्टमर्क्षे चन्द्रस्य दोषो भङ्गत्वमाप्नुयात् ।। ३१ ।।

जब कि लग्नेश अष्टमेश परस्पर कुण्डली में मित्र हों तो लग्नस्थ व अष्टमस्थ चन्द्रमा का दोष शमन हो जाता है ॥३१॥

उदयपञ्चमधर्मगतः शुभाशुभगदष्टमहर्क्षकवर्गगः ।
शशिनि सौम्यनवांशगते तदा सकलदोषहरः शुभवर्द्धनः ॥ ३२ ॥

जिस कुण्डली में लग्न, पञ्चम, नवम में शुभाशुभ ६, ८ व महर्घ राशि के वर्ग में तथा चन्द्र, बुध के नवांश में या शुभग्रह के नवांश में चन्द्रमा होता है तो समस्त दोषों का नाशक और शुभता को बढ़ाने वाला होता है ॥३२॥

शुभांशकगते चन्द्रे तदंशेशो बलैर्युतः ।
यदि पश्यति लग्नेन्दुर्गुणोऽयं दोषहा स्वयम् ॥ ३३ ॥

शुभग्रह के नवांश में चन्द्र अपने बली नवांशेश से यदि चन्द्रमा व लग्न दृष्ट हो तो चन्द्रमा का यह गुण स्वयं दोष हन्ता होता है ॥३३॥

चन्द्रोऽतिनीचांशकवर्जितश्च पक्षे प्रशस्ते शुभकर्मकृच्च ।
दृष्टः शुभैर्वीर्यसमन्वितश्च योग्यो विधुः स्याच्छुभकर्मणीष्टः ॥ ३४ ॥

चन्द्रमा अति नीचांश से हीन होने पर दोनों पक्षों में शुभ कर्मकारी प्रशस्त माना जाता है । बली चन्द्रमा शुभग्रह से दृष्ट होने पर समस्त शुभ कार्यों में अभीष्ट फलदाता होता है ॥३४॥

स्वांशगश्च शशी प्राणी बलवान् जीवदृष्टिगः ।
लग्नकेन्द्रत्रिकोणस्थो बलवान् दोषनाशनः ॥ ३५ ॥

अपने नवांश में बली गुरु से दृष्ट, केन्द्र (१ । ४ । ७ । १०) त्रिकोण (५ । ९) में स्थित चन्द्रमा बली और दोष शमन करता होता है ॥३५॥

विशेष—पद्य में 'लग्न केन्द्र' यह अनुचित प्रतीत होता है । क्योंकि केन्द्र में लग्न की गणना मानी गई है ॥३५॥

चिन्तामणौ रामाचार्यस्तु—

बली चन्द्रमा होने पर दोषों का विनाश

एकार्गलोपग्रहपातलत्ताजामित्रकर्तर्य्युदयास्तदोषाः ।
नश्यन्ति चन्द्रार्कबलोपपन्ने लग्ने यथार्काभ्युदये तु दोषाः[1] ॥ ३६ ॥

रामदैवज्ञ ने बताया है कि जिस प्रकार सूर्य के उदय से रात्रि का तम नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार सूर्य व चन्द्रमा के बली होने पर लग्नस्थ एकार्गल, उपग्रह, पात, लत्ता, जामित्र, कर्तरी और उदयास्त दोष सब विलीन हो जाते हैं ॥३६॥

---

१. मु० चि० ६ वि० प्र० ६८ श्लो० ।

गुरुरपि--

गुरु के आधार पर भी

पञ्चाङ्गैः सुशुभैर्युक्तः कालः स शुभलग्नगः ।
चन्द्रः शुभांशगः पूर्वे क्रियाणां षोडशादिनाम् ।। ३७ ।।

वृहस्पति जी ने बताया है कि शुभ नवांश में शुभ लग्नस्थ चन्द्रमा, सुन्दर पञ्चाङ्ग से युक्त काल, सोलह संस्कारों में शुभकारी होता है ।।३७।।

अथ प्रत्यहं चन्द्रस्योदयास्तकालनयनं स्थूलमत्राह--

अब आगे स्थूल प्रतिदिन का उदय अस्त किस प्रकार से ज्ञान किया जाता है, इसे बताते हैं ।

तिथिगुणितं रजनीपरिमाणं यम (२) रहितं सितपक्षविमिश्रम् ।
बाणशशाङ्क (१५) विभाजितलब्धं प्रतिदिवसं चन्द्रोदयमस्तम् ।।३८।।

रात्रिमान को तिथि संख्या से गुना करके दो घटाकर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से तिथि संख्या जानकर जोड़ देने पर जो हो उसमें १५ का भाग देने से लब्धि उस दिन का उदय, अस्त होता है ।। ३८ ।।

तिथिः शुक्लादितो ग्राह्या ।

तिथि की शुक्ल पक्ष से गणना करना चाहिये ।

अथ चन्द्रश्रृङ्गोन्नतिज्ञानम्--रामः--

अब आगे—चन्द्रमा की श्रृङ्गोन्नति के ज्ञान को बतलाने के पहिले किस नक्षत्र की सम, वृहत्, जघन्य संज्ञा होती है, इसे मुहूर्तचिन्तामणि के वाक्य से बताते हैं ।

नक्षत्रों की सम, बृहत् व जघन्य संज्ञा का ज्ञान

समं मृदुक्षिप्रवसुश्रवोग्निमघात्रिपूर्वास्त्रपभं बृहत् स्यात् ।
[1]ध्रुवद्विदैवादितिभं जघन्यं सार्पाम्बुपार्द्रानिलशाक्रयाम्यम् ।। ३९ ।।

मूहुर्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में बताया है कि मृदु (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) क्षिप्र (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) संज्ञक व धनिष्ठा, श्रवण कृत्तिका, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्रपद और मूल की सम, ध्रुव (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ उ त्तराभाद्रपद, रेवती) संज्ञक और विशाखा, पुनर्वसु की वृहत् और भरणी, आर्द्रा, आश्लेषा, स्वाती, ज्येष्ठा व शतभिषा की जघन्य संज्ञा होती है ।। ३६ ।।

नारद ने भी कहा है 'तारा जघन्या सार्पेन्द्रा वातार्द्रान्तिकतोयपाः । ध्रुवाददिति-द्विदैवत्यं वृहत्तारा: परा: समा:' (मु० चि० ३ प्र० १० श्लो० पी० टी०) ।।३६।।

तथा वसिष्ठ ने भी कहा है—'जघन्यधिष्ण्यानि जलेशसर्परौद्रेन्द्रयाम्यानिल-

---

१. मु० चि० ३ प्र० १० श्लो० ।

देवतानि । अध्यर्द्धधिष्ण्यान्यदितिद्विदैवस्थिराणि शेषर्क्षसमाह्वयानि' (मु० चि० ३ प्र० १० श्लो० पी० टी०) ॥ ३६ ॥

सम, बृहत्, जघन्य में उदित चन्द्र के आधार पर तेजी मन्दी

जघन्यभे चोदयते हिमांशुः शरेन्दवो बाणकृता बृहत्सु ।
स्वरामसङ्ख्यासमभे महर्घं समर्घसाम्यं विधुदर्शने भवेत्[1] ॥ ४० ॥

आचार्य रामदैवज्ञ ने अपने ग्रन्थ में कहा है कि जिस प्रकार जघन्यादि संज्ञक नक्षत्रों में मुहूर्त के आधार पर संक्रान्ति का फल होता है उसी प्रकार प्रथम चन्द्र-दर्शन से भी उन नक्षत्रों में चन्द्रमा के उदित होने पर तेजी, मन्दी होती है। अर्थात् जघन्य संज्ञक में उदय १५ मुहूर्त का होने से महँगी, बृहत् संज्ञा वाले नक्षत्रों में उदय मुहूर्त संख्या ४५ होने से मन्दी और सम संज्ञकों में उदय संख्या ३० मुहूर्त की होने से सामान्य या यों समझिये कि न सस्ती न महँगी होती है ॥ ४० ॥

रत्नमाला में कहा है 'बृहत्सुधान्यं कुरुते समर्घं जघन्यधिष्ण्याभ्युदितोमहर्घम् । समेषु धिष्ण्येषु समं हिमांशुर्वदन्त्यसंदिग्धमिदं महान्तः' (मु० चि० ३ प्र० ११ श्लो० पी० टी०) ॥ ४० ॥

निबन्धचूडामणौ—

निबन्ध चूडामणि के आधार पर शृङ्गोन्नति ज्ञान

दक्षिणेनोन्नतिं याति मीनमेषोदये शशी ।
सौम्योन्नतस्तथान्येषु समश्च वृषकुम्भयोः ॥ ४१ ॥

निबन्धचूडामणि में बताया है कि मीन मेष राशि में दक्षिण शृङ्ग, वृष, कुम्भ में चन्द्रमा उदय होने पर समान शृङ्ग और अवशिष्ट राशियों में उदय होने से उत्तर शृङ्ग की उन्नति होती है ॥ ४१ ॥

वैष्णवे—

वैष्णव के आधार पर

यस्यां त्वमायामथ पौर्णिमास्यां चन्द्रः शुभैर्दृष्टयुतो न पापैः ।
तस्मिश्च मासे कुरुते समर्घं महर्घकं पापयुतेक्षितश्च ॥ ४२ ॥

वैष्णव ग्रन्थ में बताया है कि जिस मास की पूर्णिमा या अमावास्या में चन्द्रमा शुभग्रहों से दृष्ट और पापग्रहों से अदृष्ट हो तो मन्दी तथा पाप ग्रहों से दृष्ट युत होने पर महँगी होती है ॥ ४२ ॥

अब आगे चन्द्रमा की बारह अवस्थाओं को नारद के वाक्य से बताते हैं।

---

१. मु० चि० ३ प्र० ११ श्लो० ।

नारदः—

षष्टिघ्नं चन्द्रनक्षत्रं तत्कालघटिकान्वितम् ।
वेदघ्नमिषुवेदाप्तमवस्था भानुभाजिताः[1] ॥ ४३ ॥

नारद ऋषि ने कहा है कि अश्विनी नक्षत्र से अभीष्ट दिन की गत चन्द्र नक्षत्र संख्या को ६० से गुणित करके उसमें मयात घटिका मिलाकर ४ से गुणित करके ४५ का भाग देकर लब्धि तुल्य गत अवस्था होती है। यदि लब्धि १२ से अधिक हो तो १२ से भाग देकर समझना चाहिये ॥ ४३ ॥

प्रवासनष्टाख्यजयामृताख्या हास्यारतिक्रीडितसुप्तभुक्ता ।
ज्वराह्वया कम्पितसुस्थिरा च द्विषट् च संख्या हिमगोरवस्था ॥४४॥

जैसे एक लब्धि में प्रवास, २ में नष्ट, ३ में जय, ४ में अमृत, ५ में हास्य, ६ में रति, ७ में क्रीडित, ८ में सुप्त, ९ में भुक्त, १० में ज्वर, ११ में कम्पित और शून्य शेष में सुस्थिर नामक बारहवीं अवस्था होती है ॥४४॥

मु० चि० में कहा है 'षष्टिघ्नं गतभं भुक्तघटीयुक्तं युगाहतम् । शराब्धिहृल्लब्धतोऽर्कशेषेऽवस्थाः क्रियाद्विधोः' (४ प्र० १४ श्लो०) ॥४४॥

अब आगे मरीचि के आधार पर चन्द्रमा की ३६ अवस्थाओं को बताते हैं।

अथ षट्त्रिंशदवस्थानिरूपणम्—

मरीचिः—

चन्द्रस्थितं च नक्षत्रं नाडीकृत्वाब्धिसङ्गुणम् ।
शररूपहृते लब्धं चन्द्रावस्थां वदेत्सुधीः ॥ ४५ ॥
शिरोरोगं १ महाप्रीति २ र्देवकार्यं ३ सुखासनम् ४ ।
नेत्ररोगी ५ सुकर्मा च ६ नारीक्रीडा ७ महाज्वरी ८ ॥ ४६ ॥
सुवर्णभूषणस्याप्ति ९ र्विषभुक्ति-१० स्तु मैथुनम् ११ ।
कुक्षिरोगं १२ जलक्रीडा १३ हास्यान्तं १४ चित्रलेखनम् १५ ॥४७॥
गान्धर्वं १६ गन्धसंयुक्तं १७ कलहो १८ गमनस्तथा १९ ।
क्षुधा २० तृष्णा च २१ निद्रा २२ च
शास्त्रगोष्ठी २३ कलि २४ स्तथा ॥ ४८ ॥
क्रोधं २५ च नृत्यकार्यं २६ च यजमानस्तु तिष्ठति २७ ।
उन्मत्तः २८ स्थानकर्मा च २९
क्षुधा ३० भुक्तिश्च ३१ निद्रिता ३२ ॥ ४९ ॥
सुकर्मा ३३ पापकर्मा ३४ च क्रूरकर्मा ३५ हनिष्यति ३६ ।
इत्येताश्चन्द्रलीलाः स्युः षट्त्रिंशत्स्यात्पलोदयाः ॥ ५० ॥

---

१. मु० चि० ४ प्र० १४ श्लो० पी० टी० ।

मरीचि ऋषि ने बताया है कि चन्द्रमा जिस नक्षत्र में हो उसकी घटिका बनाकर ४ से गुणित करके १५ का भाग देने पर लब्धि के आधार पर चन्द्रमा की आगे वर्णित ३६ अवस्था होती हैं। जैसे एक लब्धि में शिरो रोग, २ में महाप्रीति, ३ में देवकार्य ४ में सुखासन, ५ में नेत्र रोगी, ६ में सुकर्मा, ७ में नारीक्रीडा, ८ में महाज्वरी, ९ में सुवर्णभूषणप्राप्ति, १० में विष भुक्ति, ११ में मैथुन, १२ में कुक्षिरोग, १३ में जलक्रीडा, १४ में हास्यान्त, १५ चित्रलेखन, १६ में गान्धर्व, १७ में गन्ध संयुक्त, १८ में कलह, १६ में गमन, २० में क्षुधा, २१ में तृष्णा, २२ में निद्रा, २३ में शास्त्र-गोष्ठी, २४ में कलि, २५ में क्रोध, २६ में नृत्यकार्य, २७ में यजमान, २८ में उन्मत्त, २६ में स्थानकर्मा, ३० में क्षुधा, ३१ में भुक्ति, ६२ में निद्रिता, ३३ में सुकर्मा, ३४ में पापकर्मा, ३५ में क्रूरकर्मा और ३६ लब्धि में हनिष्यति संज्ञक ३६ पलोदयात्मक चन्द्रमा की केलि अवस्था होती है ॥४५–५०॥

श्रीपतिः—

श्रीपति जी के आधार पर

राशौ राशौ द्वादशेन्दोरवस्थाः प्रोक्ताः
कैश्चित्सूरिभिः शेषिताद्याः।
यात्रोद्वाहाद्येषु कार्येषु नूनं
संज्ञातुल्यं तत्फलम् चिन्तनीयम् ॥ ५१ ॥

आचार्य श्रीपति जी ने कहा है कि प्रत्येक राशि में शेष के वश से बारह अवस्था किन्हीं दो आचार्यों ने जो बतलाई हैं वे समस्त, यात्रा विवाहादि मंगल कार्यों में संज्ञा तुल्य बलवती होती हैं। इसलिये इनका विचार करके ही आदेश होना चाहिये ॥५१॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने चन्द्रकथनं नाम सप्तविंशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २७ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिषवेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का चन्द्रकथन नाम वाला सत्ताईसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥२७॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधरचतुर्वेदविहिता सप्तविंशतिप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी व्याख्या परिपूर्णा ॥२७॥

अथाष्टाविंशं ताराप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे अट्ठाईसवें तारा प्रकरण में अभीष्ट दिन में तारा का ज्ञान, तारा की संख्या कितनी होती है इनमें कौन सी शुभ वा अशुभ होती है, कब बलवती होती है तथा अशुभ होने पर किन किन वस्तुओं का दान होता है, इसे विविध ग्रन्थों के वचनों से बताते हैं ।

इष्ट दिन में तारा का ज्ञान

जन्मभाद्दिननक्षत्रं गणयेत्क्रमतो बुधः ।
हरेन्द्भागं गहेणैव शेषं तारा भवेदिति ॥ १ ॥

जिस दिन तारा का ज्ञान अभीष्ट हो तो अपने जन्म नक्षत्र से इष्ट दिन के नक्षत्र तक गिन कर जो संख्या हो उसमें ९ का भाग देने से जो शेष हो उसके समान तारा होती है । क्योंकि नव तारा ही शास्त्रों में वर्णित हैं ॥१॥

ताराओं के नाम

जन्मसम्पद्विपत्तारा क्षेमा पापा शुभा पुनः ।
कष्टा मैत्रातिमैत्रा च नव तारा उदाहृताः ॥ २ ॥

जन्म १, संपत् २, विपत् ३, क्षेमा ४, पापा ५, शुभा ६, कष्टा ७, मैत्रा ८, अतिमैत्रा ९ ये नव तारा होती हैं ॥२॥

मु० चि० में कहा है 'जन्माख्यसम्पद्विपदः क्षेमप्रत्यरिसाधकाः । वधमैत्रातिमैत्राः स्युस्तारा नामसदृक्फलाः' (४ प्र० १२ श्लो०) ॥२॥

तथा नारद ने भी कहा है 'जन्मसम्पद्विपत् क्षेमप्रत्यरिः साधको वधः । मित्रं परममित्रन्तु जन्मभाच्च पुनः पुनः' (मु० चि० ४ प्र० १२ श्लो० पी० टी० ॥२॥

ताराओं की शुभाशुभता

तारा सर्वा शुभा प्रोक्ता सप्त पञ्च त्रिवर्जिता ।
यात्रा क्षौरविवाहेषु भैषज्ये च परा हिता ॥ ३ ॥

तीन, पाँच, व सात संज्ञा वाली ताराओं को छोड़कर अन्य ६ ताराएँ शुभ होती हैं । यात्रा, क्षौर, विवाह और औषधि सेवन में अशुभ ताराओं का त्याग करना चाहिए ॥३॥

अन्यत्रापि—

प्रकारान्तर से तारा का ज्ञान

जन्मऋक्षं गणेत्यादौ दिनऋक्षावधिं किल ।
नवभिश्च हरेन्द्भागं शेषं तारा विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥

अन्य ग्रन्थ में भी प्रतिपादित है कि अपने जन्म नक्षत्र से इष्ट दिन तक नक्षत्र संख्या गिन कर उसमें नव का भाग देने से शेष तुल्य तारा होती है ।।४।।

शुभ ताराओं का ज्ञान

जन्मतारा द्वितीया च षष्ठी चैव चतुर्थिका ।
अष्टमी नवमी तारा षट् तारा च शुभावहा[1] ॥ ५ ॥

जन्म की, दूसरी, चौथी, छठी, आठवीं और नवीं तारा शुभ होती हैं ।।५।।

बृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर

जन्मसम्पद्विपत्क्षेम प्रत्यरिः साधको वधः ।
मैत्रं परममैत्रं च भवेत्संज्ञास्तु कर्मणाम् ॥ ६ ॥

बृहस्पति जी ने बताया है कि जन्म १, संपत् २, विपत् ३, प्रत्यरम् ५, साधक ६, वध, ७, मैत्र ८ और परम मैत्र ९ ये नव तारा होती हैं ।।६।।

विपदि प्रत्यरिवधे प्रथमान्त्ये त्रिभागतः ।
विनान्येंऽशा शुभाः सर्वे सर्वेषु शुभकर्मसु ॥ ७ ॥

प्रथम आवृत्ति में विपत्, प्रत्यरि तारा शुभ नहीं होती हैं। दूसरी आवृत्ति में विपत् की प्रथम २० घटी या यों समझिये कि तीसरा भाग अशुभ, प्रत्यरि का मध्यम भाग और वध तारा का अन्तिम तीसरा भाग अशुभ होता है। तीसरे आवर्तन में इनका समस्त भाग शुभ होता है इसलिये उक्त अंश ही समस्त शुभ कार्यों में त्याज्य होते हैं ।।७।।

मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है 'मृत्युश्चादिमपर्यये न शुभदोऽथैषां द्वितीयेंऽशकाः नादिप्रान्त्यतृतीयका अथ शुभाः सर्वे तृतीये स्मृताः (४ प्र० १३ श्लो०) ।।७।।

पक्ष के आधार पर बल ज्ञान

कृष्णे बलवती तारा शुक्ले चन्द्रः प्रशस्यते ।
शुक्ले तारा न शुभदा कृष्णे चन्द्रो न शस्यते ॥ ८ ॥

कृष्ण पक्ष में तारा बलवती और शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा बली होता है। शुक्ल पक्ष में तारा अच्छा फल नहीं देती है तथा कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा भी शुभ फल देने में समर्थ नहीं होता है ।।८।।

अशुभता में दान

दद्याद्द्विजातये दानमशुभाय शुचाय च ।
गुडं च लवणं चैव काञ्चनं सतिलं क्रमात् ॥ ९ ॥

---

१. मु० चि० ४ प्र० १२ श्लो० पी० टी० ।

यदि तारा अशुभ हो तो उसकी शुभता के लिये ब्राह्मण को गुड़, नमक और तिल के साथ सुवर्ण अर्थात् विपत् तारा में गुड़, प्रत्यर में नमक और वध तारा में तिल के साथ सोने का दान करना चाहिये ॥९॥

गर्गः—

गर्गोक्त दान

विपत्तारे गुडं दद्याच्छाकं दद्याद्द्विजन्मसु।
प्रत्यरे लवणं दद्यान्नैधने तिलकाञ्चनम् ॥ १० ॥

गर्गाचार्य जी ने बताया है कि विपत् तारा में गुड़, साग, प्रत्यरि में नमक और वधतारा में सतिल सोने का दान करना चाहिये ॥१०॥

दीपिका में कहा है 'प्रत्यरौ लवणं दद्याच्छाकं दद्यात् त्रिजन्मसु। विपत्तारे गुणं दद्यान्निधने तिलकाञ्चनम्' (मु० चि० ४ प्र० १३ श्लो० पी० टी०) ॥१०॥

मुहूर्तचिन्तामणि में भी 'मृत्यौ स्वर्णतिलान् विपद्यपि गुडं शाकं त्रिजन्मस्वथो दद्यात् प्रत्यरितारकासु लवणं सर्वो विपत् प्रत्यरिः' (४ प्र० १३ श्लो०) ॥१०॥

लल्लः—

लल्लाचार्य के आधार पर बल

[1]न कृष्णपक्षे शशिनः प्रभावो ताराबलं तत्र शुभं प्रदिष्टम्।
देशान्तरस्थे विकले च पत्यौ सर्वाणि कार्याणि करोति नारी ॥११॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा के प्रभाव का अभाव और तारा का प्रभाव होता है क्योंकि पति के देशान्तर रहने पर या रोगी अशान्त होने पर स्त्री समस्त कार्यों का सम्पादन करती है ॥११॥

अत्रापि तारापतिवीर्यमेव वदन्ति पक्षद्वितयेऽपि केचित्।
[2]केचिच्च तासां बलयुक्तमिन्दोर्बलं सदा देयमिति ब्रुवन्ति ॥ १२ ॥

कृष्ण पक्ष में भी किसी के मत में चन्द्रमा बली और किसी के पक्ष में चन्द्रमा के सबल होने पर ही तारा शुभ फलदा सदा होती है ॥१२॥

ज्योतिःप्रकाशे—

ज्योतिः प्रकाश के आधार पर

[3]विहाय ताराबलमौषधीशो पक्षद्वयेऽपीष्टफलं न यस्मात्।
अप्राप्य जायानुमतं हि लोके न कार्यसिद्धौ पुरुषः समर्थः ॥ १३ ॥

---

१. ज्यो० नि० ४६ पृ० ८ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ४६ पृ० ६ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ४९ पृ० ११ श्लो०।

ज्योतिः प्रकाश नामक ग्रन्थ में बताया गया है कि दोनों पक्षों (शुक्ल-कृष्ण) में ताराबल का त्याग कर चन्द्रमा शुभ फल देने में समर्थ नहीं होता है। क्योंकि संसार में बिना पत्नी की अनुमति के पुरुष अभीष्ट कार्य की सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है ॥१३॥

वसिष्ठमाण्डव्यमतादिहोत्थं बलाबलं तारकशीतभान्वोः।
[1]विचारितं सम्यगमी तदर्थाः श्लोकास्तुरीयाः सुरसंहितायाम् ॥ १४ ॥

इस प्रकार इस प्रकरण में तारा व चन्द्र के बलाबल का विवेचन वसिष्ठ और माण्डव्य मुनि के मतानुसार अच्छी रीति से किया है फिर भी उन बातों के विचार में आगे ४ श्लोक सुरसंहिता के उन्हीं के अनुवाद रूप हैं उन्हें कहते हैं ॥१४॥

तारा की प्रधानता

[2]तिथयः पञ्च शुक्लाद्याश्चन्द्रतारायुतो बली।
तनुत्वाद्वर्द्धमानोऽपि प्रौढस्त्रीको यथा पतिः ॥ १५ ॥

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से पञ्चमी तक अल्प कलाओं से युक्त रहने पर तारा बल से युक्त चन्द्रमा बलवान् होता है। क्योंकि प्रौढा के संसर्ग से पुरुष बली होता है ॥१५॥

चन्द्र की प्राधानता

[3]परतश्चन्द्रमा एव यावत्कृष्णाष्टमीदलम्।
प्रौढस्तु पुरुषो यद्वत्स्वतन्त्रः स्याद्विना स्त्रियम् ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर या यों समझिये कि शुक्ल पक्ष की षष्ठी से कृष्ण पक्ष की अष्टमी के आधे हिस्से तक चन्द्र बलवान् होता है। स्त्री के विना प्रौढ पुरुष स्वतन्त्र होता है ॥१६॥

तारा का प्रधान्य

[4]कृष्णाष्टम्यूर्ध्वतो यावद्दिनं पैत्र्यं निशाकरः।
क्षीणत्वाद्दुर्बलत्वेन प्रधानं तारकाबलम् ॥ १७ ॥

कृष्ण पक्ष की अष्टमी के उत्तरार्ध से अमावास्या तक चन्द्रमा निर्बल व क्षीण होने के कारण तारा का बली होना स्वाभाविक ही है ॥१७॥

प्रकारान्तर

[5]विकलाङ्गे यथा पत्यौ कार्येषु प्रभवः स्त्रियः।
एवं चन्द्रे च विकले तारा बलवती भवेत् ॥ १८ ॥

---

१. ज्यो० नि० ४६ पृ० १२ श्लो०। २. ज्यो० नि० ४६ पृ० १३ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ५० पृ० १४ श्लो०। ४. ज्यो० नि० ५० पृ० १५ श्लो०।
५. ज्यो० नि० ५० पृ० १६ श्लो०।

जैसे पति के अस्वस्थ या अशान्त होने पर स्त्री समस्त कार्य करने में समर्थ होती है। इसी प्रकार चन्द्रमा के विकल होने पर तारा बलवती है ॥१८॥

अब आगे दूसरी व तीसरी आवृत्ति (तारा गणना में) में नक्षत्रों की या यों समझिये कि ताराओं की विशेष संज्ञाओं को बताते हैं।

तारा विशेष संज्ञा

[1]जन्माद्यं दशमं कर्मं सङ्घातर्क्षे च षोडशम्।
अष्टादशं सामुदायं त्रयोविंशद्विनाशनम् ॥ १९ ॥
[2]मानसं पञ्चविंशर्क्षं नाचरेच्छुभमेषु तु।
[3]अभिषेकेऽभिषेकर्क्षं दशमं जन्मभागतः।
जातिभे जातिनक्षत्रं पापैर्युक्तं न शोभनम् ॥ २० ॥

जन्म नक्षत्र से दशम नक्षत्र की कर्म, सोलहवें की संघात, अठारहवें की सामुदाय, तेईसवें नक्षत्र की विनाश और पच्चीसवें की मानस संज्ञा होती है। इनमें शुभ कार्य नहीं करना चाहिये।

ये ६ नक्षत्र मनुष्यों के अशुभ होते हैं। राजाओं के तीन और देश, जाति व अभिषेक के नक्षत्र होते हैं। अभिषेक में अभिषेक नक्षत्र, जन्म स्थान से देश नक्षत्र, जातिजन्य जाति नक्षत्र ये हैं। उक्त नक्षत्र जब पीडित अर्थात् पापग्रहों से दृष्टयुत होते हैं तो अशुभ फल की प्राप्ति होती है ॥१६–२०॥

विशेष—२० वें श्लोक का ज्योतिर्निबन्ध में उचित पाठान्तर इस रीति से हैं 'मानसंपञ्चविंशाख्यं षड्मानीति नृणां जगुः। नवमानि नृपाणां तु देशजात्य-भिषेकजैः' ॥१६–२०॥

भूपालः--

भूपाल के आधार पर दूषित का ज्ञान

[4]केत्वर्कार्कियुतं भौमवक्रभेदेन दूषितम्।
हतमुल्कोपरागाभ्यां स्वभावान्यत्वमागतम् ॥ २१ ॥

भूपाल नामक ग्रन्थ में बताया है कि केतु, सूर्य, शनि से युक्त, मंगल के वक्र से दूषित, उल्का वा ग्रहण से नष्ट होने पर स्वभाव में परिवर्तन ताराओं के में होने से कम फल होता है ॥२१॥

---

१. ज्यो० नि० ५० पृ० १७ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ५० पृ० १८ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ५० पृ० १६ श्लो०।
४. ज्यो० नि० ५० पृ० २१ श्लो०।

[1]पीडिते जन्मभे मृत्युः कर्मनाशश्च कर्मणि ।
सङ्घाते बन्धुपीडा स्यात्समुदाये सुखक्षयम् ॥ २२ ॥
वैनाशिके देहनाशो मनस्तापस्तु मानसे ।
कुलदेशश्रियां नाशो जातिदेशाभिषेकभे[2] ॥ २३ ॥

जन्म नक्षत्र के पीडित होने में मृत्यु, कर्म में नाश, संजात में पीडा, समुदाय में सुख ह्रास, वैनाशिक में शरीर नाश, मानस में पश्चात्ताप और जाति, देश व अभिषेक के नक्षत्र के पीड़ित होने पर कुल देश एवं लक्ष्मी का विनाश होता है ॥२२-२३॥

दुष्टतारापवादः ज्योतिःसागरे--

दूषित ताराओं का परिहार

[3]शशिनि परिपुष्टकिरणे स्वतुङ्गभवने स्वकीयवर्गे वा ।
क्षौरादिकेऽपि कार्ये तारादोषो न दोषाय ॥ २४ ॥

ज्योतिःसागर नामक ग्रन्थ में बताया है कि जब चन्द्रमा स्पष्ट किरणों से युक्त अपनी उच्चराशि में अपने ही वर्ग में स्थित होता है तो तारा का दोष नहीं होता है। इसलिये क्षौरादिक कार्य भी ऐसी स्थिति में करना चाहिये ॥२४॥

राजमार्तण्डे—

राजमार्त्तण्ड के आधार पर

सौम्यसुहृन्निजभवने चन्द्रे तुङ्गर्क्षसंस्थे च ।
अणुतामपि सम्प्राप्ते तारादौष्ट्यं न दोषाय ॥ २५ ॥

राजमार्त्तण्ड में कहा है कि शुभ वा मित्र वा अपने घर में या तुङ्गादि में लघुता प्राप्त भी हो तो तारा का दोष नहीं होता है ॥२५॥

च्यवनः--

च्यवन ऋषि के आधार पर परिहार

यदि चेज्जन्मनक्षत्रं भौमार्कार्कितमोयुतम् ।
तस्य सर्वौषधिस्नानं गुरुविप्रसुरार्चनम् ॥ २६ ॥

च्यवन ऋषि ने बताया है कि यदि जन्म नक्षत्र मङ्गल, सूर्य, शनि या राहु से युक्त हों तो जातक को सर्वौषधि से स्नान और गुरु, ब्राह्मण, देवता का पूजन करना चाहिये ॥२६॥

---

१. ज्यो० नि० ५० पृ० २२ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ५० पृ० २३ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ५० पृ० १ श्लो० ।

वाग्भटः--

सर्वौषधि

मुरा मांसी वचा कुष्ठा शैलेय रजनीद्वयम्।
सठी चम्पकमुस्ता च सर्वौषधिगणाः स्मृताः ॥ २७॥

आचार्य वाग्भट ने कहा है कि मुरा १, मांसी २, वचा ३, कुष्ठा ४, शैलेय (चन्दन ५, दोनों हल्दी ६-७, सठी ८, चंपक ९, मुस्ता १० ये दश वस्तु मिलने पर सर्वौषधि नाम से कहा जाता है ॥२७॥

वृद्धवसिष्ठः--

वृद्ध वसिष्ठ के मत में सर्वौषधि नाम

बला च शङ्खपुष्पी च कुष्ठी चैव तथा वचा।
नागकेशरचूर्णं च सर्वौषधिगणो भृगौ ॥ २८॥

ऋषि वृद्धवसिष्ठ ने बताया है कि बला १, शंखपुष्पी २, कुण्ठी ३, वचा ४ और नागकेसर का चूर्ण ५ शुक्रवार को इनको मिलाने पर सर्वौषधि होता है ॥२८॥

छान्दोग्यपरिशिष्टे—

पुनः प्रकारान्तर से छान्दोग्य परिशिष्ट के आधार पर

कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुराशैलेयचन्दनम्।
वचा चम्पकमुस्ते च सर्वौषध्यो दश स्मृताः ॥ २९॥

छान्दोग्य परिशिष्ट में बताया गया है कि कुष्ठ १, मांसी २, हल्दी ३, आमाहल्दी ४, मुरा ५, शैलेय ६, चन्दन ७, वचा ८, चंपक ९ और मुस्ता १० ये दस सर्वौषधि नाम से प्रसिद्ध हैं ॥२९॥

तथा वसिष्ठसंहिता में भी कहा है 'कुलमांसी हरिद्रे द्वे मुरा शैलेयचन्दनम्। वचा चंपकहस्ताश्च सर्वौषध्यो दशैव हि' (४२ अ० ३४ श्लो०) ॥२९॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने
ताराकथनं नाम अष्टाविंशं प्रकरणं समाप्तम् ॥ २८॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिषवेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक सङ्ग्रह ग्रन्थ का अठ्ठाईसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥२८॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदकृता अष्टाविंशप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका समाप्तिमगात् ॥२८॥

अथ एकोनत्रिंशं लग्नप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे उन्नतीसवें प्रकरण में लग्न की प्रशंसा व प्रधानता, बारह लग्नों में करने के कार्य, लग्न का शुभाशुभत्व, षड्वर्ग का ज्ञानादि इसे बताते हैं ।

त्रैलोक्यप्रकाशे—

लग्न की प्रशंसा

लग्नं देवः प्रभुः स्वामी लग्नं ज्योतिः परं मतम् ।
लग्नं दीपो महान् लोके लग्नं तत्त्वं दिशन् गुरुः ॥ १ ॥

त्रैलोक्यप्रकाश में बताया है कि लग्न ही देवता, समर्थ स्वामी, परमज्योति और बड़ा दीपक संसार में माना गया है, क्योंकि गुरु लोगों का यही आदेश है ॥१॥

म्लैच्छेषु विस्मृतं लग्नं कलिकालप्रभावतः ।
प्रभुप्रभावमासाद्य जैनधर्मेऽवतिष्ठति ॥ २ ॥

म्लेच्छ जाति में कलियुग के प्रभाव से लग्न का ज्ञान रह नहीं गया है । और जैन धर्म में भी प्रधान माना जाता है ॥२॥

तुलानुमुख्ययन्त्राणि तिष्ठन्ति किल ताजिके ।
षड्वर्गशुद्धिमाख्याति लग्ननिश्चयमिच्छता ॥ ३ ॥

ताजिक शास्त्र में तुलानु मुख्य यन्त्र माने जाते हैं और लग्न की इच्छा करने वाले षड्वर्ग की शुद्धि ही प्रधान मानते हैं ॥३॥

नारदः

नारद ऋषि के आधार पर

त्रुटेः सहस्रभागो यो लग्नकालः स उच्यते ।
ब्रह्माऽपि तं न जानाति किं पुनः प्राकृतो जनः ॥ ४ ॥

ऋषि नारदजी ने कहा है कि त्रुटि समय का एक हजारवां हिस्सा या अंश काल लग्न का समय होता है इसे ब्रह्माजी भी जानने में असमर्थ होते हैं तो प्राकृत पुरुष किस प्रकार से जानने में समर्थ हो सकता है ॥४॥

[1]लल्लः—

लल्लाचार्य जी के आधार पर

न तिथिर्न च नक्षत्रं न योगो नैन्दवं बलम् ।
लग्नेमेव प्रशंसन्ति गर्गनारदकश्यपाः ॥ ५ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६१ पृ० १६ श्लो० ।

आचार्य लल्ल ने बताया है कि गर्ग, नारद, कश्यप ऋषियों ने तिथि–नक्षत्र व चन्द्र बल को न मानकर केवल लग्न बल की ही प्रशंसा की है ॥५॥

ज्योतिःसागरे[1]—

ज्योतिः सागर के आधार पर

लग्नं जीवो मनश्चन्द्रः शरीरं तिथिभादिकाः।
जीवे पुष्टे फलं पुष्टं नष्टे नष्टं विदुर्बुधाः ॥ ६ ॥

ज्योतिःसागर नामक ग्रन्थ में बताया है कि लग्न जीव, मन चन्द्रमा और तिथि-नक्षत्रादिक शरीर होता है। अतः जीव के पुष्ट होने पर फल भी प्रबल और जीव निर्बल होने पर या यों समझिये कि लग्न के निर्बल होने पर फल भी नहीं होता है ॥६॥

[2]भुवनदीपके—

भुवन दीपक के आधार पर लग्न बल की प्रशंसा

इन्दुः सर्वत्र बीजाऽम्भो लग्नं च कुसुमप्रभम्।
फलेन सदृशोंऽशश्च भावाः स्वादुफलं स्मृतम् ॥ ७ ॥

भुवन दीपक नामक ग्रन्थ में बताया है कि समस्त कार्यों में चन्द्रमा बीज सदृश, लग्न पुष्प के समान, नवमांश फल के तुल्य और द्वादश भाव स्वाद के समान होता है। सारांश यों समझिये कि चन्द्रमा जितने विंशोपक बल से लग्न को देखता है उतने ही बल लग्न में जानना चाहिये। अर्थात् चन्द्रमा के बली होने पर ही कार्य का बीज बलिष्ठ होता है।

इसी प्रकार लग्न के बली होने से कार्य का पुष्प, नवांश में फल और भाव बली होने में से पुनः स्वाद भी सुन्दर प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

तथा ज्यो० नि० में 'लग्ने चन्द्रबलं बीजं फलपाककरा ग्रहाः। बीजे पुष्टे फलाप्तिः स्यात्तस्माद् बीजमिहेष्यते ॥ ६४ पृ० २३ श्लो०) ॥ ७ ॥

[3]ज्योतिर्विवरणे—

ज्योतिर्विवरण के आधार पर

लग्नवीर्यं विना यत्र यत्कर्म क्रियते बुधैः।
तत्फलं विलयं याति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ ८ ॥

ज्योतिर्विवरण में कहा है कि जिस कार्यका आरम्भ निर्बल लग्न में किया जाता है वह कार्य नष्ट होता है, जैसे गरमी के समय में बरसाती नदियाँ विलीन हो जाती है ॥ ८ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६१ पृ० १३ श्लो०।
२. ५६ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ६१ पृ० १७ श्लो०।

रेणुकः—

रेणुक के आधार पर पुनः प्रशंसा

यथा जन्मलग्नाच्छुभं वाशुभं वा फलं ज्ञायते तद्वदेवं प्रकल्प्यम् ।
सदा सर्वकार्ये बुधैर्लग्नवीर्यं विचिन्त्यं विना तेन कार्यं न किञ्चित् ।। ९ ।।

आचार्य रेणुक ने बताया है कि जिस प्रकार जन्म लग्न से शुभ व अशुभ फल की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार समस्त कार्यों में लग्न के बली होने पर सिद्धि कार्य की होती है । अतः समस्त कामों में बली लग्न का ही विचार करके आदेश देना चाहिये ।। ९ ।।

श्रीपतिः—

श्रीपति के आधार पर

आदौ हि सम्पूर्णफलप्रदं स्यान्मध्ये पुनर्मध्यफलं विचिंत्यम् ।
अतीव तुच्छं फलमस्य चान्ते विनिश्चयोऽयं विदुषामभीष्टः ।। १० ।।

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि लग्न के प्रारम्भ में संपूर्ण फल की, मध्यकाल में मध्यम फल की और लग्नान्त में अल्प फल होता है, यह विद्वानों का निर्णय है ।। १० ।।

ज्यो० नि० में कहा है 'आदौ संपूर्णफलदं मध्ये मध्यफलप्रदम् ।

और भी वसिष्ठसहिता में 'सम्पूर्णफलदमादौ विलग्नमध्येऽस्य मध्यफलम् । अन्तेतु तुच्छफलं सर्वत्रैवं विचिन्तयेद्धीमान्' (२३ अ० १४ श्लो०) ।। १० ।।

तथा दैवज्ञवल्लभ में 'संपूर्णफलदं चादौ मध्ये मध्यफलप्रदम् । अन्ते तुच्छफलं लग्नं यदि वर्गोत्तमं न चेत्' (६४ पृ० १७) अन्त्ये तुच्छफलं लग्नं सर्वस्मिन्नेव मेव हि (५८ पृ० १८ श्लो०) ।।१०।।

और भी संहिता प्रदीप में 'अन्त्ये स्मृतं तुच्छ फलं विलग्नं न चेत् षडादिग्रहवीर्यं युक्तम्' (ज्यो० नि० ६४ पृ० १८ श्लो०) ।। १० ।।

अब आगे बारह राशियों के लग्न में क्या २ करना चाहिये इसे बताते हैं ।

मेष लग्न में विहित कार्य

[1]विरोधमभिषेकं च राज्ञां साहसकर्म च ।
धात्वाकरादिसम्बन्धं मेषलग्ने प्रसिद्धयति ।। ११ ।।

विरोध, अभिषेक, राजाओं के साहसी कार्य और धातु आदि खानों से सम्बन्धादि कार्य मेष में करना चाहिये ।। ११ ।।

व० सं० में कहा है 'अभिषेकनृपतीनां साहसकर्मादिवैरोधम् । आकरधातुवादाद्य-खिलं मेषोदये कार्यम् । (२३ अ० १ श्लो०) ।। ११ ।।

१. ज्यो० नि० ५७ पृ० १ श्लो० ।

वृष लग्न में विहित कार्य

[1]वृषोदये विवाहश्च ध्रुवं वेश्मप्रवेशनम् ।
कुमारीवरणं दानं क्षेत्रारम्भादि चेष्यते ॥ १२ ॥

विवाह, स्थिर, घर में प्रवेश, कुमारी का वरण, दान और गृहारम्भादि खेती सम्बन्धी काम वृष लग्न में करना चाहिये ॥ १२ ॥

व० सं० में कहा है 'स्थिरचरकार्यमखिलं विवाहमखिलं भूषणशिल्पादिकारकं वृषभे (२३ अ० २ श्लो०) ॥ १२ ॥

मिथुन लग्न में विहित कार्य

कलाविज्ञानसम्बन्धं वृषलग्नोदितं च यत् ।
विभूषणादिकं कर्म कर्तव्यं मिथुनोदये[2] ॥ १३ ॥

कला विज्ञान सम्बन्धी, वृष लग्न में कहे हुए और अलङ्कार आदि कार्य मिथुन लग्न में करना चाहिये ॥ १३ ॥

व० सं० में कहा है 'मेषवृषोक्तं कर्म गजतुरगोष्ट्रादिकं च गोकर्म । अविकलमाहिष मेषक्षितिपतिसेवादिकं मिथुने' (२३ अ ३ श्लो०) ॥ १३ ॥

कर्कलग्न में विहित कार्य

[3]वापीकूपतडागादिवारिबन्धनमोक्षणे ।
पौष्टिकं कर्म यत्किञ्चित्सर्वं सिद्ध्यति कर्किणो ॥ १४ ॥

वापी, कुआ, तालाब आदि, जल का संग्रह व विमोचन और पुष्टता सम्बन्धी समस्त काम कर्क लग्न में करना चाहिये ॥ १४ ॥

व० सं० में कहा है 'शान्तिकपौष्टिकमाङ्गलिकजलबन्धनमोक्षमखिलजलकर्म । दैविककूपतडागशिल्पोद्वाहादि कर्कटे कार्यम्' (२३ अ० ३ श्लो०) ॥ १४ ॥

सिंह लग्न में विहित कार्य

[4]वणिक्क्रियाद्यं पण्यं च कर्षणं नृपसेवनम् ।
परयोगश्च मेषोक्तं यश्च कण्ठीरवे हितम् ॥ १५ ॥

व्यवसायिक, विक्रय, क्रिया, खेती हल जोतना आदि, राजा का सेवन (सन्निध्य), दूसरे से संयोग और मेष लग्न में वर्णित कार्य सिंह लग्न में करना चाहिये ॥ १५ ॥

व० सं० में कहा है 'परयोगो नृपसेवा कृषिकर्म वणिङ्महाहवाद्याखिलम् । स्थिर-कर्माखिलवास्तुनि वेश्मशिल्पादि सिंहभे कार्यम्' (२३ अ० ५ श्लो०) ॥ १५ ॥

---

१. ज्यो० नि० ५८ पृ० २ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ५८ पृ० ३ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ५८ पृ० ४ श्लो० ।
४. ज्यो० नि० ५८ पृ० ५ श्लो० ।

कन्या लग्न में विहित कार्य

औषधं शिल्पिविज्ञानं भूषणादि चरं स्थिरम् ।
कर्त्तव्यं पौष्टिकारम्भं कन्यालग्ने प्रसिद्धयति[1] ॥ १६ ॥

औधषि, कारीगरी विज्ञान, भूषणादि, चञ्चल, स्थिर और पुष्टिता सम्बन्धी कार्य का आरम्भ कन्या लग्न में करना चाहिये ॥ १६ ॥

व० सं० में कहा है 'भूषणमङ्गलकार्यमौषधविज्ञानपुण्यशिल्पादि । उद्वाहशान्तिम पौष्टिकगजतुरगोष्ट्रादि कन्यायाम्' (२३ अ० ६ श्लो०) ॥ १६ ॥

तुला लग्न में विहित कार्य

कृषिकर्म वणिक्सेवा यात्राकर्म तुलोदये ।
प्रसिद्धयन्ति हि सर्वाणि तुलाभाण्डाश्रितानि च[2] ॥ १७ ॥

खेती सम्बन्धी, व्यापारिक सेवा, यात्रा, तुला (तराजू) और भण्डार के आदि कार्य तुला लग्न में करना चाहिये ॥ १७ ॥

व० सं० में कहा है 'कन्योक्ताखिलकार्यं तुलादिमानानि भाण्डकर्माणि । यात्रा-वास्तुविधानं तौलिनि कृषिकर्म वाणिज्यम्' (२३ अ० ७ श्लो०) ॥ १७ ॥

वृश्चिक लग्न में विहित कार्य

साहसं दारुणोग्रं च राजसेवाभिसेचनम् ।
चौर्यकर्म स्थिरारम्भाः कर्तव्या वृश्चिकोदये[3] ॥ १८ ॥

साहस सम्बन्धी, कठिन, क्रूर, राजकीय सेवा सम्बन्धी, अभिषेक, चोरी सम्बन्धी और स्थिर कार्यों को वृश्चिक लग्न में करना चाहिये ॥ १८ ॥

व० सं० में कहा है 'साहसदारुणचित्रकलेखकवास्तूग्रशास्त्रकर्माद्यम् । आहवकृषि-वाणिज्यं क्षितिपातिवादश्च वृश्चिके कार्यम्' (२३ अ० ८ श्लो०) ॥ १८ ॥

धनु लग्न में विहित कर्म

प्रस्थानपौष्टिकोद्वाहाः सवाहनपरिग्रहाः ।
चापलग्ने विधेयाः स्युः चरकर्मप्रसिद्धये[4] ॥ १९ ॥

यात्रा, पुष्टता, विवाह, वाहनों का लेना और चञ्चलता सम्बन्धी कार्य धनु लग्न में करना चाहिये ॥ १६ ॥

व० सं० कहा है 'शान्तिकपौष्टिकशिल्पिकसन्धानाश्वादिनृत्यगीताद्यम् । राजोप-करणमखिलंभूषणवास्त्वादि चापभे सेवा' (२३ अ० ९ श्लो०) ॥ १६ ॥

---

१. ज्यो० नि० ५८ पृ० ६ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ५८ पृ० ७ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ५८ पृ० ८ श्लो० ।
४. ज्यो० नि० ५८ पृ० ९ श्लो० ।

मकर लग्न में विहित कार्य

क्षेत्राश्रयाण्यम्बुयात्रा वन्धमोक्षौ च वारिणाम्।
दासीचतुष्पदोष्ट्रादि कर्तव्यं मकरोदये[1] ॥ २० ॥

घर, खेती, आश्रय, जल, यात्रा, जल का बन्धन व निष्कासन, दासता और ऊँट आदि पशु सम्बन्धी कार्य मकर लग्न में करना चाहिये ॥ २० ॥

व० सं० में कहा है 'शंबरमोचनबन्धनभूषणरत्नादि शिल्पधान्यादि। क्रयविक्रयमखिलं यद्रिपुहननोद्योगमाहवं मकरे (२३ अ० १० श्लो०) ॥ २० ॥

कुम्भ लग्न में विहित कार्य

नौचर्योदकयानं च कर्म ध्रुवचरं तथा।
बीजसङ्ग्रहणोप्ती च कर्तव्यं कलशोदये[2] ॥ २१ ॥

नाव, जल, यान, ध्रुव, चर, बीजों का संग्रह और वचन सम्बन्धी कार्य कुम्भ लग्न में करना चाहिये ॥ २१ ॥

व० सं० में कहा है 'युद्धोपकरणभूषणजलधान्यखिलाश्च गोधनाद्यं यत्। पण्यासवपुरनगरप्रवेशनं कर्म घटे लग्ने' (२३ अ० ११ श्लो०) ॥ २१ ॥

मीन लग्न में विहित कार्य

विद्यालङ्कृतिशिल्पादि कृष्यम्बुपशुकर्म च।
यात्रोद्वाहाभिषेकाद्यं कार्यं मीनोदये[3] बुधैः ॥ २२ ॥

विद्या, आभूषण, कारीगरी, खेती, जल, पशु, यात्रा, विवाह और अभिषेक आदि कार्य मीन लग्न में करना चाहिये ॥ २२ ॥

व० सं० में कहा है 'यज्जलबन्धनमोचनजलयात्रारत्नभूषणं कर्म। रथतुरगेभपशूनां कार्यं मीनोदये शिल्पम्' (२३ अ० १२ श्लो०) ॥ २२ ॥

विशेष बात

शुद्धेषु मेषाद्युदयेषु कर्मण्येतानि सिद्ध्यन्ति यथोदितानि।
क्रूरग्रहालोकनयोगदुष्टेष्वेतेषु कर्मोदितमुग्रमेव ॥ २३ ॥

पूर्वोक्त लग्नों का फल बली लग्न होने पर होता है और पाप ग्रहों से दृष्ट युक्त लग्न होने पर फल भी नष्ट होता है ॥ २३ ॥

व० सं० में कहा है 'पापयुतेक्षितरहिता मेषाद्याश्चोक्तफलाः स्युः। नो चेदुक्तफलं वै दातुं शक्ता भवन्ति न कदाचित्' (२३ अ० १३ श्लो० ॥ २३ ॥

---

१. ज्यो० नि० ५८ पृ० १० श्लो०।
२. ज्यो० नि० ५८ पृ० ११ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ५८ पृ० १२ श्लो०।

तथा ज्यो० नि० में भी 'मेषादिषु विलग्नेषु शुद्धेष्वेतत् प्रसिद्धयति। क्रूरग्रहेक्षितेपूग्रं संयुक्तेपूग्रमेव हि' ॥ २३ ॥

६ वर्गों के नाम

[1]विलग्नहोराद्रेष्काणनवांशद्वादशांशकः।
त्रिंशांशश्चेति षड्वर्गाः ससौम्यग्रहजः शुभः ॥ २४ ॥

१ विलग्न. २ होरा, ३ द्रेष्काण, ४ नवांश, ५ द्वादशांश और ६ त्रिंशांश ये ६ वर्ग होते हैं। इन्हीं को षड्वर्ग नाम से कहा जाता है। ये किसी भी राशि में शुभग्रह के होने पर शुभ होते हैं ॥ २४ ॥

अब आगे बृहज्जातक के वाक्य से राशियों के स्वामी ग्रह कौन २ होते हैं, नवांश स्वामी व द्वादशांश का ज्ञान किस प्रकार से होता है इसे बताते हैं।

बृहज्जातके[2]—

१२ राशियों के स्वामी ग्रह

क्षितिजसितज्ञचन्द्ररविसौम्यसितावनिजाः।
सुरगुरुमन्द(सौरि ?)यमगुरवश्च गृहांशकपाः ॥ २५ ॥

बृहज्जातक में कहा है कि मेष राशि का भौम, वृष का शुक्र, मिथुन का बुध, कर्क का चन्द्रमा, सिंह का सूर्य, कन्या का बुध, तुला का शुक्र, वृश्चिक का मंगल, धनु का गुरु, मकर का शनि, कुम्भ का शनि और मीन राशि का स्वामी गुरु होता है ॥ २५ ॥

विशेष—ये इन राशियों के क्यों स्वामी होते हैं इसके लिये होरारत्न नामक ग्रन्थ देखें ॥ २५ ॥

स्पष्टार्थ स्वामीचक

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
स्वामी	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	भौ.	गु.	श.	श.	गु

अब आगे नीलकण्ठी के वाक्य से होरा व द्रेष्काण और नवांश का ज्ञान किस प्रकार किया जाता है इसे बताते हैं।

नीलकण्ठः[3]—

होरा का ज्ञान

ओजे रवीन्द्वोः सम इन्दुरव्योर्होरे गृहार्धं प्रमिते विचिन्त्ये।
द्रेष्काणपाः स्वेषु नवर्क्षनाथा क्रिये(१)ण(१०)तौली(७)न्दुभतो(४)नवांशाः ॥२६॥

१. ज्यो० नि० ६० पृ० १ श्लो०।
२. अ० २ श्लो० ६।
३. ता० नी० १ अ० ४२ श्लो०।

नीलकण्ठी नामक ग्रन्थ में बताया है कि विषम राशियों में राशि के प्रथमार्ध में या-यों समझिये कि १ अंश से १५ अंश तक सूर्य की और १६ अंश से ३० अंश तक चन्द्रमा की होरा होती है। होरा १ राशि में दो होती हैं या यों समझिये कि राशि के अर्ध भाग को होरा कहते हैं।

वृहज्जातक में कहा है 'मार्तण्डेन्द्वोरयुजि समभे चन्द्रमान्वोश्च होरे' (१ अ० ११ श्लो०)॥

सारावली में भी 'रविचन्द्राविन्दुरवी विषमसमेष्वर्धराशीनाम्. (३ अ० १४ श्लो०)॥

और भी होरारत्न में 'होरेविषमेऽर्केन्द्वोः समराशौ चन्द्रतीक्ष्णांशो!' (१ अ० ५० श्लो०)॥

स्पष्टार्थं होरा सारिणी

राशि	मं.	वृ.	मि	क.	सि	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
अ. १-१५	सू.	च.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
अ १६-३०	चं.	सू.	चं.	सू.	चं	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.

द्रेष्काण स्वामियों का ज्ञान

आचार्य नीलकण्ठ ने बताया है कि प्रत्येक राशियों में प्रथम द्रेष्काण उसी राशि का, दूसरा उससे पञ्चम का और तीसरा उससे जो नवीं राशि उसका होता है। राशि के तीसरा भाग को द्रेष्काण कहा जाता है। राशि स्वामी ग्रह द्रेष्काण का स्वामी होता है।

वृहज्जातक में कहा है 'दृक्काणाः स्युः स्वभवनसुतत्रित्रिकोणाधिपानाम्' (१ अ० ११ श्लो०)॥

सारावली में भी 'स्वर्क्षसुतनवभेशाः द्रेक्काणानां क्रमात्' (३ अ० १४ श्लो०)॥

और भी होरारत्न में 'द्रेष्काणाः प्रथमपञ्चनवमानाम्' (१ अ० ५० श्लो०)॥

स्पष्टार्थ द्रेष्काण सारिणी

राशि	मेष	वृष	मि.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुम्भ	मी.
अंश १–१०	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
अंश ११–२०	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.
अंश २१–३०	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.

नवांश का ज्ञान

आचार्य नीलकण्ठ ने बताया है कि राशि के नवें भाग को नवांश कहते हैं। इसका ज्ञान मेषादि राशियों में मेष, मकर, तुला, कर्कादि से होता है। अर्थात् मेष राशि में

प्रथम नवां हिस्सा मेष का, वृष में मकर का, मिथुन में तुला का और कर्क में प्रथम नवां भाग कर्क का होता है। इसी प्रकार सिंह, धनु में मेष से, कन्या मकर में मकर से, तुला, कुम्भ में तुला से और वृश्चिक मीन में कर्क से नवांश का प्रारम्भ होता है ॥२६॥

वृहज्जातक में कहा है 'अजमृगतौलिचन्द्रभवनादिनवांशविधिः' (१ अ० ६ श्लो०) ॥२६॥

सारावली में भी 'नवभागानामजमृगघटकर्कटाद्याश्च' (३ अ० ११ श्लो०) ॥२६॥

होरारत्न में भी 'मेषकेसरिचापानां मेषाद्या नवमांशकाः। वृष–कन्या–मृगांशाश्च मकराद्या नवांशकाः॥ तुलामिथुनकुम्भानां तुलाद्या नवभागकाः। कर्कटालिझषाणाञ्च कर्कटाद्या नवांशकाः॥' (१ अ० ४८–४६ श्लो०) ॥२६॥

स्पष्टार्थ सारिणी

राशि अं. क.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
३ । २०	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.
६ । ४०	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ,	सिं.
१० । ०	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क	मि,	मी.	ध.	क.
१३ । २०	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.
१६ । ४०	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	बृ.	कुं.	वृ.
२० । ०	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि,	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.
२३ । २०	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म	तु.	क.	मे.	म.
२६ । ४०	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.
३० । ०	ध.	क.	मि,	मी.	ध.	क.	मि	मी.	ध.	क.	मि.	मी.

अब आगे आचार्य वराह मिहिर के वाक्य से त्रिंशांश के स्वामियों को बताते हैं।

वराह[1]:—

त्रिंशांश ज्ञान

कुजरविजगुरुज्ञशुक्रभागाः पवन (५) समीरण
(५) कौर्पि (८) जूक (७) लेयाः (५)।
अयुजि युजिभे विपर्ययस्थाः शशिभवनालिझषान्त्यमृक्षसन्धिः ॥२७॥

आचार्य वराह ने बताया है कि समस्त विषम राशियों में १–५ अंश तक का भौम, ६–१० का शनि, ११–१८ तक का गुरु, १६–२५ तक का बुध और २६ अंश से तीस अंश तक का स्वामी शुक्र होता है।

और सम्पूर्ण सम राशियों में १ अंश से ५ अंश तथा शुक्र, ६–१२ तक का बुध, १३–२० तक गुरु, २१–२५ तक शनि और २६ से तीस अंश का स्वामी भौम होता

१. १ अ० ७ श्लो०।

है ।। तथा कर्क, वृश्चिक और मीन का अन्त भाग ऋक्ष सन्धि नाम से कहलाता है ।। २७ ।।

सारावली में कहा है 'शरपञ्चाष्टमुनीन्द्रियमागास्त्रिशांशकास्तु । युग्मेपूत्क्रमगण्याः कुजार्किजीवज्ञशुक्राणाम्' (३ अ० १५ श्लो०) ।। २७ ।।

तथा होरारत्न में भी 'पञ्चाथ पञ्च चाष्टौ सप्त चाष्टौ पञ्च पञ्चाथ युग्मभवनेषु, भागा भार्गवशशिसुतसुरेज्यमन्दभूमिपुत्राणाम्' (१ अ० ५२–५३ श्लो०) ।। २७ ।।

स्पष्टार्थ सारिणी

विषम रात्रि त्रिशांश

विषम	५	५	८	७	५
अंश	५	१०	१८	२५	३०
ग्रह	मं.	श.	गु.	बु.	शु.
राशि	१	११	९	३	७

सम राशि त्रिशांश

सम	५	७	८	५	५
अंश	५	१२	२०	२५	३०
ग्रह	शु.	बु.	गु.	श.	मं
राशि	२	६	१२	१०	८

अब आगे श्रीपति आचार्य के वचनों से लग्न की प्रबलता व हीनता होने से किन-किन कार्यों की सिद्धि होती है, इसे बताते हैं ।।

श्रीपतिः—

वर्गे शुभे लग्नगतेऽपि सौम्ये सपौष्टिकं कर्म बुधैः प्रदिष्टम् ।
लग्नप्रपन्ने पुनरुग्रवर्गे स्यात्कर्मणः क्रूरतरस्य सिद्धिः ।। २८ ।।

आचार्य श्रीपति जी का कहना है कि शुभ वर्ग से युत और शुभग्रहों से पुष्ट लग्न में कार्य करना चाहिये । ऐसा मनीषियों का मत है तथा बली लग्न पापों से पीडित हो तो क्रूर कार्यों की सिद्धि होती है ।। २८ ।।

शुभाशुभ राशि ज्ञान

घटमिथुनकुलीरा धन्विगोमीनकन्या इह शुभभवनत्वाद्राशयः सप्त सौम्याः ।
अलिघटमृगसिंहाजाश्चपापास्पदत्वान्मुनिभिरभिहितास्ते प्रायशः क्रूरभावः ।।२९

तुला–मिथुन, कर्क, धनु, वृष, कन्या और मीन राशियों के स्वामी शुभग्रह होते हैं। इसलिये इनकी शुभ संज्ञा ।

तथा वृश्चिक, मकर, कुम्भ, मेष, सिंह के स्वामी ग्रह पाप हैं । अतः ये राशियाँ अशुभ होती हैं ।। २९ ।।

ज्यो० नि० में कहा है 'गोयुग्मकर्किकन्यान्त्य तुलाचापधराः शुभाः शुभग्रहास्पदत्वात् सहेतराः पापराशयः ।' (५८ पृ० १४ श्लो०) ।। २९ ।।

शुभाशुभता में विशेष

सौम्योग्रतैषां न खलु प्रकृत्या योगेन सा साध्वितरग्रहाणाम् ।
क्रूरोऽपि सौम्यः स शुभाश्रितः स्यात्सौम्योऽपि पापाश्रितमुग्रमेव ।। ३० ।।

राशियों में सौम्यता व उग्रता प्रकृति से नहीं होती है । उग्रता व सौम्यता ग्रहों के योगवश से ही होती है । कभी २ पापत्व होने पर भी शुभों का आश्रय मिलने पर पाप भी शुभ हो जाता है और शुभ भी पाप के आश्रय में रहने पर अशुभ ही होता है ।। ३० ।।

तथा ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'सौम्योग्रतैषां राशीनां प्रकृत्या न भवत्यसौ । योगेन सौम्यपापैश्च खेचरैर्वीक्षितेन वा । सौम्याश्रितत्वात् क्रूरोऽपि स राशिः शोभनः स्मृतः । सौम्योऽपि राशिः क्रूरः स्यात् क्रूरग्रहयुतो यदि' (५८ पृ० १५-१६ श्लो०) ।। ३० ।।

भावस्थ फल निर्णय

ग्रहासन्नावलोकाभ्यां राशेर्भावोऽनुवर्तते ।
ग्रहोत्थस्तद्विहीनोऽसौ स्वभावमुपसर्पति ।। ३१ ।।

ग्रह सान्निध्य व अवलोकन से राशिस्थ भाव का फल निर्णय करना चाहिये । और यदि इससे रहित राशि हो तो राशिस्थ स्वभाव में कुछ अल्पता आती है ।।३१।।

ज्यो० नि० में कहा है 'ग्रहयोगावलोकाभ्यां राशिर्धत्ते ग्रहोद्भवम् । फलं ताभ्यां विहीनोऽसौ स्वभावमुपसर्पति' (५८ पृ० १७२ श्लो०) ।।३१।।

प्रायः शुभा न शुभदा निधनव्यवस्था धर्मान्त्यधीनिधनकेन्द्रगताश्च पापाः ।
सर्वार्थसिद्धिषु शशी न शुभो विलग्ने सौम्यान्वितोऽपि निधनं च शुभं च लग्नम् ।। ३२ ।।

प्रायः करके शुभग्रह आठवें व बारहवें भाव में अच्छे नहीं होते हैं एवं ९ । १२ । ५ । ८ । १ । ४ । ७ । १० में पापग्रह सुन्दर फल नहीं देते हैं ।

चन्द्रमा समस्त कार्यों में लग्न में शुभ से युक्त हो तो भी यदि आठवें शुभग्रह हो तो लग्न अशुभ फलदाता होता है ।।३२।।

अब आगे वराहमिहिर के वाक्य से कौन-सी राशियाँ दिन में व रात में बलवती होती हैं । तथा पृष्ठोदयादि संज्ञा को बताते हैं ।

लघुजातके[1]—

लघुजातक के आधार पर

मेषाद्याश्चत्वारः सधन्विमकराः क्षपाबला ज्ञेयाः ।
पृष्ठोदया विमिथुनाः शिरसान्ये ह्युभयतो मीनः ।। ३३ ।।

लघुजातक में कहा है कि मेष, वृष, मिथुन कर्क, धनु व मकर राशियाँ रात्रि में और अवशिष्ट दिन में बलवती होती हैं ।

---

१. १ अ० २० श्लो० ।

मेष, कर्क वृष, धनु, मकर इनकी पृष्ठोदय तथा मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक और कुम्भ इनकी शीर्षोदय तथा मीन की उभयोदय संज्ञा होती हैं ॥३३॥

सारावली में कहा है 'नक्तं बला मिथुनकर्कमृगाजगोश्वाद्युः श्रेष्ठका हरितुलालिघटान्त्यकन्या। पृष्ठोदयाः समिथुना मिथुनं विहाय शेषाः शिरोभिरुदयन्त्युभयेन मीनः' (३ अ० २४ श्लो०) ॥३३॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में भी 'पृष्ठोद्ये वृषो मेषः कर्किचापमृगास्तथा। शेषः शीर्षोदये राशिमीनस्यादुभयोदयः। कुम्भमीनौ तथा सिंहश्चत्वारो बलिनो दिने। धनुर्मृगौ च मेषाद्याश्चत्वारस्तु निशावलाः ॥३३॥

राशियों की चतुष्पदादि संज्ञा का ज्ञान

मेषवृषधन्विसिंहाश्चतुष्पदा मकरपूर्वभागश्च।
कीटः कर्कटराशिः सरीसृपो वृश्चिकः कथितः[1] ॥ ३४ ॥

मकरस्य पश्चिमर्धं कुम्भो मीनश्च जलचराः ख्याताः।
मिथुनतुलाधरकन्या द्विपदाख्या धनुषि पूर्वभागश्च ॥ ३५ ॥

लघुजातक में कहा है कि मेष, वृष, धनु का उत्तरार्ध, सिंह और मकर के पूर्वार्ध के भाग तक की चतुष्पद, वृश्चिक की कीट व सरीसृप और मकर का उत्तरार्ध व मीन की जलचर एवं मिथुन–तुला–कुम्भ–कन्या–धनु का पूर्वार्ध की द्विपद संज्ञा होती है ॥३४–३५॥

सा० व० में कहा है कि 'नरपशुवृश्चिकजलजा यथा क्रमं प्रागादिगा बलिनः' (३ अ० २३ श्लो०) ॥३४॥

राशियों की पुरुष स्त्री, क्रूराक्रूर, चर, स्थिरादि और दिशाओं का ज्ञान

पुंस्त्री क्रूराक्रूरौ चरस्थिरद्विस्वभावसंज्ञाश्च।
अजवृषमिथुनकुलीराः पञ्चमनवमैः सहेन्द्रयाद्याः[2] ॥ ३६ ॥

लघुजातक में बताया है कि मेष आदि १२ बारह राशियाँ क्रम से पुरुष, स्त्री या यों समझिये कि मेष, पुरुष, वृष स्त्री, मिथुन पुरुष, कर्क स्त्री इत्यादि या विषम राशियाँ पुरुष और सम स्त्री राशियां होती हैं। ऐसा समझना चाहिये ॥

इसी प्रकार से क्रूर, अक्रूर तथा चर, स्थिर, द्विस्वभाव संज्ञक जानना चाहिये और अपनी राशियों से पाँचवीं व नवीं राशि के साथ या मेष, सिंह, धनु पूर्व, वृष, कन्या, मकर दक्षिण, मिथुन, तुला, कुम्भ पश्चिम और कर्क, वृश्चिक, मीन राशि उत्तर दिशा की स्वामी होती है ॥३६॥

---

१. ल० जा० १ अ० १२–१३ श्लो०।
२. ल० जा० १ अ० ७ श्लो०।

१२ भावों की व चतुरस्र संज्ञा का ज्ञान

[1]तनुधनसहजसुहृत्सुतरिपुजायामृत्युधर्मकर्माया: ।
व्यय इति लग्नाच्चतुरस्राख्येऽष्टमचतुर्थे ॥ ३७ ॥

लघुजातक में कहा है कि लग्न की तनु, २ रे की धन, ३ रे की सहज, ४ थे की सुहृत्, ५ वें की सुत, ६टें की रिपु, ७वें की जाया, ८वें की मृत्यु, ९ नवें की धर्म, १० दसवें की कर्म, ११ ग्यारहवें की लाभ और १२वें भाव की व्यय संज्ञा होती है। लग्न से चौथे व आठवें भाव की चतुरस्र संज्ञा होती है ॥३७॥

बली राशि का ज्ञान

[2]अधिपयुतो दृष्टो वा बुधजीवनिरीक्षितश्च यो राशि :
स भवति बलवान्न यदा दृष्टो युक्तोऽपि वा शेषैः ॥ ३८ ॥

जो राशि अपने स्वामी ग्रह से दृष्ट या युक्त होती है अथवा बुध, गुरु से दृष्ट, युत होती है तथा अन्य ग्रहों से दृष्ट या युक्त न हो तो बलवती होती है ॥३८॥

होरामकरन्दे—

होरा मकरन्द के आधार पर सप्तवर्गों के नाम

भवनमथ तदर्द्धं दृक्च सप्तांशकाख्यौ तदनु च नवभागो द्वादशास्त्र्यंशदंशः ।
भवति भवनमध्ये सप्तवर्गाभिधोऽयं बलमपि मुनिमुख्यैः प्रोक्तमस्यानुपूर्वम् ॥३९॥

होरा मकरन्द नामक ग्रन्थ में कहा है कि गृह,१, २ होरा, ३ द्रेष्काण, ४ सप्तमांश, ५ नवमांश, ६ द्वादशांश, ७ त्रिशांश ये सप्त वर्ग होते हैं। इनका बल भी पूर्वोक्त रीति से समझना चाहिये ॥ ३९ ॥

राजमार्तण्डे—

राजमार्तण्ड के आधार पर

शुष्कमार्द्रं दहत्येन्धो महादीप्तो यथानलः ।
तिथ्यादीनां फलं तद्वल्लग्नदोषं विनिर्दहेत् ॥ ४० ॥

राज मार्तण्ड में कहा है कि जैसे प्रचण्डअग्नि गीले, सूखे इन्धन को जला देता है उसी प्रकार लग्न का दोष समस्त तिथियों के शुभ फल को नष्ट कर देता है ॥ ४० ॥

वसिष्ठ[3]—

वसिष्ठ के आधार पर प्रशंसा

यात्रालग्नादिकेन्द्रेषु शून्येषु शुभखेचरैः ।
निष्फलं गमनं तस्य जारजातस्य पिण्डवत् ॥ ४१ ॥

---

१. ल० जा० १ अ० १५ श्लो० ।

२. ल० जा० १ अ० १४ श्लो० ।

३. व० सं० ३७ अ० ६० श्लो० ।

वसिष्ठ ऋषि ने बताया है कि यात्रादि लग्न में यदि केन्द्र स्थान शुभग्रहों से शून्य होता है तो जाने वाले की यात्रा निष्फल होती है, जैसे वर्णसंकर का शरीर होता है ॥ ४१ ॥

विशेष—वसिष्ठसंहिता में 'यात्रा लग्नस्य केन्द्रेषु' यह पाठान्तर है ॥ ४१ ॥

[1]संहिताप्रदीपे--

संहिता प्रदीप के आधार पर

प्राधान्यमत्रोदयशीतभान्वोः स्थितं द्वयोरेव जगत्प्रसिद्धम् ।
तत्रापि केचिद्बलवद्विलग्नं व्याचक्षते शैत्यकरं तथान्यैः ॥ ४२ ॥

संहिता प्रदीप नामक ग्रन्थ में बताया है कि संसार में लग्न व चन्द्र इन दोनों के बली होने पर शुभ कार्य करना चाहिये। फिर भी कुछ लोग लग्न बल को, अन्य जन चन्द्रबल की ही प्रधानता बताते हैं ॥ ४२ ॥

चन्द्रबल की प्रधानता

[2]दोषैर्महद्भिर्निहते विलग्ने हन्येत वीर्यें शिशिरत्विषोऽपि ।
चित्ते हि दोषोपहते नराणां शरीरमाप्नोति सुखं न किञ्चित् ॥ ४३ ॥

अनेक दोषों से नष्ट लग्न, बली चन्द्रमा के होने पर प्रशस्त होती है। जैसे चित्त के दोष युक्त होने पर शरीर सुख कुछ भी नहीं होता है। अतः चन्द्रमा के बल की ही प्रधानता होती है ॥ ४३ ॥

विशेष—ज्यो० नि० में शिशिरत्विषोऽपि यह पाठ है ॥ ४३ ॥

लग्न की प्रधानता

[3]यथा विलग्नं गुणवर्जितं स्यात्तदा बलीयानपि किं मृगाङ्कः ।
यतो नितान्तं गुणवानपीह दैवेच हीनोऽप्यऽतिदुर्बलः स्यात् ॥ ४४ ॥

जैसे गुणों से हीन लग्न के होने पर बली चन्द्र कुछ भी करने में असमर्थ होता है क्योंकि अधिक गुणवान् होकर भी यदि भाग्य से रहित है तो अधिक दुर्बल ही कहा जाता है। अतः लग्न बल की प्रधानता होती है ॥ ४४ ॥

विशेष—ज्यो० नि० में 'दैवेन हीनः पुरुषो न किंचित्' यह पाठ है ॥ ४४ ॥

चन्द्र का प्रधानत्व

[4]यतो हृषीकं मनसा समेतमर्थं न गृह्णाति न तेन हीनम् ।
यश्चन्द्रदोषोपहतं दिनं स्यात्तस्मिन्विलग्नादि कथं विचिन्त्यम् ॥४५॥

---

१. ज्यो० नि० ६२ पृ० २ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ६२ पृ० ४ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ६२ पृ० ३ श्लो० ।
४. ज्यो० नि० ६२ पृ० ५ श्लो० ।

क्योंकि मन से युक्त होने पर इन्द्रियाँ अर्थ का ग्रहण करने में समर्थ होती हैं, और मन के बिना इन्द्रियाँ अर्थ का ग्रहण नहीं करती है। अतः निर्बल दूषित चन्द्र होने पर लग्न का आदेश उस दिन नहीं करना चाहिये ॥ ४५ ॥

विशेष—ज्यो० नि० में 'बलेन बलीशशाङ्को बलेन हीने सति दुर्बलः स्यात्। यतो हृषीकं....यो लग्न दोषापहतो मुहूर्तस्तत्रेन्दुवीर्यादि कथं विचिन्त्यम्' यह पाठ है ॥ ४५ ॥

प्रकारान्तर

[1]आदौ हि चन्द्रस्य बलं विचिन्त्यं लग्नस्य पश्चादथ सप्तवर्गः।
किं चन्द्रवीर्येण विनेतराणि कुर्वन्ति सत्यायुषि लक्षणानि ॥४६॥

समस्त कामों में पहिले चन्द्र बल का, इसके अनन्तर लग्न और लग्न के बाद सप्तवर्ग बल का विचार करना चाहिये। क्योंकि चन्द्रबल के विना लग्न व सप्तवर्ग फल देने में असमर्थ होते हैं ॥ ४६ ॥

विशेष

[2]इत्थं विवादो विदुषां बहूनां परस्परं भिन्नमतैर्वचोभिः।
प्रधानमस्येति न वक्तुमेति शास्त्राणि विज्ञाय पुरातनानि ॥४७॥

इस प्रकार अधिक विद्वानों के आपस में भिन्न २ मत प्राप्त होते हैं। क्योंकि कोई लग्न की प्रधानता व अन्य चन्द्रबल को ही प्रधान मानते हैं। इसमें वास्तविक में कौन प्रधान है यह कहा नहीं जा सकता क्योंकि प्राचीन विद्वानों के परस्पर विरोधी वाक्य उपलब्ध होते हैं ॥ ४७ ॥

[3]प्रायेण सर्वत्र विलोकयन्ति चान्द्रं बलं गोचरतो विशुद्धम्।
लोकोक्तितश्चन्द्रबलं प्रधानं शास्त्रेषु मुख्यं खलु लग्नमेव ॥४८॥

प्रायः समस्त कार्यों में गोचर से चन्द्रबल का ही विचार करते हैं। और लोकोक्ति में भी चन्द्रबल की ही प्रधान मानते हैं किन्तु शास्त्रों में लग्न बल की प्रधानता है ॥ ४८॥

विशेष—ज्यो० नि० में 'लोकेषु यच्चन्द्र' पाठान्तर है ॥ ४८ ॥

[4]यत्रोदितं लग्नबलं प्रधानं विलोक्यमिन्दोरपि तत्र वीर्यम्।
पुष्टं फलं स्यादुभयोर्बलाप्तौ लग्नाब्जयोरन्यतमेन मध्यम् ॥४९॥

जिन शास्त्रों में लग्न बल को प्रधान बताया गया है वहाँ पर ही चन्द्रमा के बल की भी प्रधानता है। अतः लग्न व चन्द्र दोनों के बली होने पर कार्य की सिद्धि और एक के बली रहने पर मध्यम फल की प्राप्ति होती है ॥ ४९ ॥

विशेष—ज्यो० नि० में 'दुष्टं फलं स्यादुभयोरभावे' यह पाठान्तर है ॥ ४९ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६३ पृ० २ श्लो०। २. ज्यो० नि० ६३ पृ० १ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ६३ पृ० २ श्लो०। ४. ज्यो० नि० ६३ पृ० ३ श्लो०।

माण्डव्य मत

[1]अत्रापि माण्डव्यमुनेर्विशेषं प्रायेण चन्द्रस्य बलं विलोक्यम् ।
समुत्सुके कर्मणि लग्नवीर्यं तात्कालिकं चाप्यनयोरलाभे ॥५०॥

इस विवाद में भी माण्डव्य मुनिने चन्द्रबल को ही प्रधान माना है । और उत्सुकता पूर्वं कार्यं में लग्न बल तथा दोनों के अलाभ में सामयिक बल से कार्यं करना चाहिये ॥ ५० ॥

तात्कालिक बल ज्ञान

[2]सप्ताश्वि (२७) निघ्ना दिनयातनाडी षष्ट्या विहृत्याप्तफलं वियोज्यम् ।
वारे तिथौ भे च रवौ च ते स्युस्तात्कालिका वारतिथीन्दुसूर्याः ॥५१॥

इत्याद्यनुसाराल्लग्नमेव शुभाशुभदायकमतः लग्नसाधनज्ञानावश्यकत्वम् तच्च ग्रहलाघवीतो लग्नानयनं कुर्यात्। ग्रन्थविस्तारभयतो नात्रास्माभिर्निरूप्यते ।

जिस दिन जिस समय तात्कालिक बल ज्ञान अभीष्ट हो तो इष्टघटी (दिनगतघटी) को २७ से गुना करके ६० का भाग देने पर लब्धि को वार, तिथि, नक्षत्र व सूर्यं में घटाने से तात्कालिक वार, तिथि, नक्षत्र और सूर्यं होते हैं ॥ ५१ ॥

इस पूर्वोक्त से लग्न ही शुभ, अशुभ देने वाला होता है । लग्न साधन का ज्ञान यहाँ आवश्यक होने पर भी ग्रन्थ बड़ा न हो जाय इसलिये यहाँ नहीं दिया गया है । ग्रहलाघव ग्रन्थ से लग्न साधन ज्ञान जानना चाहिये ॥

लल्लः—

लल्लाचार्यं के मत से त्याज्य लग्न ज्ञान

क्रूरैर्लग्नयुतं त्याज्यं मङ्गलेष्वखिलेष्वपि ।
जन्माङ्गादष्टमं क्रूरं लग्नगं सन्त्यजेच्छुभे ॥५२॥

आचार्यं लल्ल ने बताया है कि क्रूर (पाप) ग्रहों से युक्त और जन्म लग्न से अष्टम लग्न का लग्नस्थ पापग्रह होने पर समस्त शुभ कार्यों में त्याग करना चाहिये ॥ ५२ ॥

नारदः—

नारद के आधार पर लग्नस्थ महादोष का ज्ञान

भृगुः षष्ठाह्वयो दोषो लग्नात्षष्ठगते सिते ।
उच्चगे शुभसंयुक्ते तल्लग्नं सर्वदा त्यजेत् ॥५३॥

---

१. ज्यो० नि० ६३ पृ० ४ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ६६ पृ० ५ श्लो० ।

ऋषि नारद ने कहा है कि छटें भाव में लग्न से शुक्र के होने पर महादोष होता है। इसलिये लग्न से छटें भांव में उच्च में या शुभग्रह से युक्त शुक्र हो तो लग्न का त्याग करना चाहिये ॥ ५३ ॥

कश्यपः—

कश्यप ऋषि के आधार पर त्याज्य लग्न

कुजाष्टमो महादोषो लग्नादष्टमगे कुजे।
शुभत्रययुतं लग्नं त्यजेत्तुङ्गगतं यदि ॥५४॥

ऋषि कश्यप जी ने बताया है कि लग्न से आठवें भाव में मंगल के रहने पर महादोष होता है। अतः तीन शुभ ग्रह से युत, तुङ्गस्थ होने पर भी अष्टमस्थ भौम के नाते त्याज्य होती है ॥ ५४ ॥

षडष्टेन्दुर्महादोषो लग्नादष्टमषष्ठगे ।
चन्द्रस्योच्चेऽथवा पूर्णे मृत्युकारी स मङ्गले ॥५५॥

छटें, आठवें लग्न से चन्द्र होने पर महा दोष होता है। चन्द्र पूर्ण या उच्चस्थ हो तो भी शुभकामों में मृत्यु देने वाला होता है। अतः त्याज्य माना गया है ॥ ५५ ॥

व्यासः—

व्यास जी के आधार पर त्याज्य लग्न

लग्नाधीशे नीचगे शत्रुगे वा रन्ध्रे चास्तं सङ्गते वक्रगे वा।
तल्लग्नं वै सन्त्यजेत्सर्वकार्ये कुर्यात्कार्ये चेत्तदा मृत्युभीतिः ॥५६॥

व्यास ऋषि जी ने बताया है कि लग्नेश के नीच में, शत्रु राशि में या अस्त होने पर वा लग्नेश के वक्री होने पर त्याग करना चाहिये। यदि इस प्रकार की लग्न में कोई कार्य करता है तो मरण का भय प्राप्त करता है ॥ ५६ ॥

शाकल्यसंहितायाम्—

शाकल्य संहिता के आधार पर त्याज्य

शान्तिकं पौष्टिकं विद्यायानभोजनपूर्वकम्।
जीवितेच्छुर्न कुर्वीत जातु लग्नेऽष्टमे स्वभात् ॥५७॥

शाकल्य मुनि का कहना है कि जीवन की इच्छा करने वाले जन को अपनी जन्म राशि से अष्टम राशि लग्न में शान्तिक, पौष्टिक, विद्या, यानादि कर्म भूल कर भी नहीं करना चाहिये ॥ ५७ ॥

फलप्रदीपे—

फल प्रदीप के आधार पर

जन्मस्थोऽरिगृहाधिपोऽथ मरणाधीशोऽथवा मृत्युदः
लग्नस्याधिपतिस्तथारिगृहगे वा मृत्युदो मृत्युगः।
जन्मर्क्षोदयलग्नतोऽष्टमगृहं वा द्वादशांशोदयं यात्रा-
द्येष्वखिलं धिया किल बुधैश्चिन्त्या भशुद्धिः सदा ॥५८॥

फलप्रदीप नामक ग्रन्थ में कहा है कि जन्म कालिक षष्ठेश व अष्टमेश यदि लग्नेश हो या छटें भाव में या अष्टम भाव में हो तो मृत्यु दाता होने से ऐसा लग्न त्याज्य होता है।

तथा जन्म राशि व जन्म लग्न से अष्टम राशि लग्न या लग्न में द्वादशांश हो तो लग्न त्याज्य होता है। अतः यात्रादि समस्त कार्यों में इसका विचार करना चाहिये ।। ५८ ।।

रत्नहारे—

रत्न हार के आधार पर

नीचे लग्नपतिस्तथारिगृहगः शत्रोः कटाक्षंगत
स्तद्युक्तोऽपि पराजिते रिपुगृहे युक्तेऽथ वा नैधनम् ।।५९।।

रत्न हार नामक ग्रन्थ में कहा है कि जिस लग्न का लग्नेश नीच में या शत्रु राशि में या शत्रु से दृष्ट या युक्त या पराजित या छटें भाव में या आठवें में होता है तो इस प्रकार का लग्न त्यागना चाहिये ।। ५९ ।।

गर्गः—

गर्ग के आधार पर

अंशाधिपजन्मपती लग्नपतिश्चास्तमुपगतो यस्य।
यात्रासमये मरणं तस्य भवति कतिपयाहेन ।।६०।।

आचार्य गर्ग ने बताया है कि जिस लग्न में जन्मकालीन चन्द्र, नवांशपति और लग्नेश जिसके अस्त होते हैं और इस प्रकार की लग्न में यदि यात्रा किया जाता है तो अल्प दिनों में मरने का भय प्राप्त होता है ।। ६० ।।

माण्डव्यः—

माण्डव्य ऋषि के आधार पर

लग्नेशेऽस्तङ्गते रोगो रन्ध्रे मृत्युर्व्यये व्ययः।
षष्ठे शत्रुभयं घोरं नीचे भङ्गोऽरिभे भयम् ।।६१।।

माण्डव्य ऋषि ने कहा है कि लग्नेश के अस्त होने पर रोग, अष्टम में रहने से मृत्यु, व्यय में व्यय, छटे भाव में शत्रु का डर, नीच में शरीरघात और शत्रु राशि में रहने पर शत्रु का भय होता है ।। ६१ ।।

रेणुकः—

रेणुक के आधार शुभत्व का ज्ञान

लग्नाधिपः केन्द्रगतो बलिष्ठः स्वोच्चादिवर्गे शुभवर्गसंस्थः।
करोति कर्तुर्बहुलार्थसिद्धिं विपर्ययेनैव विपर्ययं च ।।६२।।

आचार्य रेणुक का कहना है कि जिस लग्न में लग्नेश बली होकर उच्चादि वर्ग या शुभ वर्ग में स्थित होता है तो अधिक मतलब सिद्ध होते हैं। और इसके विपरीत में विपरीत फल की प्राप्ति होती है।। ६२ ॥

स्वगृहादिवर्गगः खेटो मित्रषड्वर्गगोऽथवा।
लग्नेशः कार्यसिद्ध्यै स्यादेतत्सर्वं मुनेर्मतम् ॥६३॥

यदि लग्नेश स्वराशि वर्ग या मित्र षड्वर्ग में होता है तो कार्य की सिद्धि होती है। ऐसा मुनियों का मत है ॥ ६३ ॥

चण्डेश्वरः—

चण्डेश्वर के आधार पर

ये लग्नदोषाः कुनवांशदोषा दृष्टेः कृता वृष्टिनिपातदोषाः।
लग्ने गुरुस्तान् विमलीकरोति फलं यथाम्भः कतकद्रुमस्य ।।६४।।

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि लग्न दोष, दूषित नवांश दोष, दृष्टि, वृष्टि, निपातादि ये दोष लग्न में गुरु के रहने पर विमल हो जाते हैं। जैसे जल से कमल का फल होता है ॥ ६४ ॥

वसिष्ठः--

वसिष्ठ के आधार पर दोषों का विनाश

पापोऽपि लग्नाधिपतिस्त्रिषष्ठलाभस्थितः स्थानबलाधिकश्च।
लग्नोत्थदोषान् निखिलान्निहन्ति पापानि यद्वत्परमाक्षरज्ञः ॥६५॥

वसिष्ठ ऋषि ने बताया है कि जिस समय लग्नेश होकर पापग्रह तीसरे, छटे, ग्यारहवें स्थान में होता है तो स्थान बल की अधिकता से लग्न जन्य समस्त दोषों का नाश करता है। जैसे अधिक अक्षरों का ज्ञाता या विद्वान् पापों को नष्ट कर देता है।। ६५ ।।

गुरुः—

गुरु के वचन से दोष विनाश ज्ञान

स्वोच्चे स्ववर्गे वा यातः शुभः पापोऽपि वा भवेत्।
बलवान् दोषविच्छेत्ता हरिरेको यथा गजान् ॥६६॥

बृहस्पति का कहना है कि अपने उच्च में या वर्ग में एक भी शुभ ग्रह या पाप ग्रह के होने पर बली होने से लग्न जन्म दोषों का नाश करता है। जैसे बली एक सिंह हाथियों का विनाशक होता है ।। ६६।।

अन्य योग

गुरुः सर्वगुणोपेतो लग्नकेन्द्रस्ववर्गः।
दोषाघौघविनाशाय भक्त्या शम्भोः प्रणामवत् ॥६७॥

एक भी गुरु यदि लग्न में समस्त गुणों से युक्त होकर या केन्द्र या अपने वर्ग में स्थित होता है तो दोषों के समूह को नष्ट करने वाला होता है। जैसे भक्ति विहित महादेव जी को प्रणाम करने पर दोष नष्ट हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

वसिष्ठोऽपि--

वसिष्ठ जी के आधार पर

शुक्रो दशसहस्राणि बुधो दशशतानि च।
लक्षमेकं तु दोषाणां गुरुः केन्द्रे व्यपोहति ॥६८॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि बली शुक्र केन्द्र में रहने पर दस हजार, बुध एक हजार और गुरु के केन्द्र में रहने से एक लाख दोष नष्ट हो जाते हैं ॥ ६८ ॥

न सकलगुणसंपल्लभ्यतेऽल्पैरहोभि-
र्बहुतरगुणयुक्तं योजयेन्मङ्गलेषु।
प्रभवति नहि दोषं भूरिभावे गुणानां
सलिलमिव हि वह्नौ सम्प्रदीप्तेन्धनाढ्ये ॥६९॥

यदि अल्प दिनों में समस्त गुणों से सम्पन्न लग्न की प्राप्ति न हो तो अधिक गुणों से युत शुभ कार्यों में ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि अधिक गुणों वाली लग्न के होने पर दोष की प्राप्ति नहीं होती है। क्योंकि इंधनादि से दीप्त अग्नि में जल छोड़ने से अग्नि शान्त हो जाती है ॥ ६९ ॥

श्रीपतिः—

श्रीपति जी के आधार पर

समस्तगुणसम्पदां न खलु लब्धिरल्पैर्दिनै-
र्गुणप्रचुरता तथा बहुमता च दोषाल्पता।
न भूरिगुणसञ्चये प्रभवतीह दोषोऽल्पको
प्लुदर्चिषि हुताशने सलिलबिन्दुरेको यथा ॥७०॥

आचार्य श्रीपति का कहना है कि अधिक विद्वानों के मत में गुण की बाहुल्यता तथा दोष की अल्पता रहने पर जल्दी कार्य की सिद्धि नहीं होती है या समस्त संपत्ति की लब्धि अल्पदिनों में नहीं होती है। क्योंकि अधिक गुण संग्रह से अल्प दोष होता ही नहीं है। जैसे जाज्वल्यमान अग्नि में एक जल की बूंद कुछ नहीं कर सकती है ॥७०॥

एकोऽपि हन्ति गुणलक्षमपोहः दोषः कश्चिद्गुणो न हि भवेद्यदि तद्विरोधी।
मद्यस्य बिन्दुरिह पावनपञ्चगव्यं सम्पूर्णमत्र कलशं मलिनीकरोति ॥७१॥

एक भी दोष लाख गुणों को जब ही नष्ट करता है जब कि उसका विरोधी कोई गुण न हो, जैसे पञ्चगव्य से पूर्ण कलश में एक बूंद शराब की छोड़ने पर पूरे कलश को नष्ट कर देता है ॥ ७१ ॥

संहिताप्रदीपे—

संहिता प्रदीप के आधार पर

दोषैर्विहीनमखिलैश्च गुणैः समेतं नो लभ्यते गुणशतैर्विदुषापि लग्नम् ।
तस्मादभूतगुणसंयुतमल्पदोषं देयं विलोक्यमवलोक्य मतं बहूनाम् ॥७२॥

संहिता प्रदीप नामक ग्रन्थ में बताया है कि यदि दोषों से हीन और गुणों से युक्त लग्न की प्राप्ति न होती हो तो अधिक गुण वाली लग्न का विद्वान् को ग्रहण करना चाहिये । अधिक ऋषियों के पक्ष का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि अल्प दोष वाली लग्न ग्रहण करना चाहिए ॥ ७२ ॥

गुणैः प्रभूतैः सहिते विलग्ने दोषो लघीयानफलत्वमेति ।
तुषारराशौ निहितो यदि स्याद्धुताशनः किं कुरुते विकारम् ॥७३॥

अधिक गुणों से युक्त लग्न में यदि अल्प दोष होता है तो फल देने में असमर्थ होता है क्योंकि पाले के समुदाय में अग्नि किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं करती है ॥ ७३ ॥

एकोऽपि दोषो गुणराशिहन्ता भवेद्विरोधी न परो गुणश्चेत् ।
तीर्थाम्बुपूर्णे कलशं यथैको बिन्दुः सुराया कुरुतेऽपवित्रम् ॥७४॥

एक भी दोष गुण समूहों को नष्ट उसी हालत में करता है कि जब उसका कोई विरोधी गुण नहीं होता है । जैसे तीर्थों के जल से पूर्ण घड़ा एक बूंद शराब की छोड़ने से नष्ट हो जाता है ॥ ७४ ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते
सङ्ग्रहे बृहद्वज्ञरञ्जने लग्नकथनं नाम
एकोनत्रिंशं प्रकरणं समाप्तम् ॥२९॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्वज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का उनतीसवाँ लग्न कथन नाम प्रकरण समाप्त हुआ ॥ २९ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-
मुरलीधरचतुर्वेदकृता श्रीधरी हिन्दी व्याख्या
एकोनत्रिंशत्प्रकरणस्य पूर्णा ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशं मुहूर्तप्रकरणं प्रारभ्यते।

अब आगे तीसवें प्रकरण में मुहूर्त किसे कहते हैं, वे कितने होते हैं, उनका क्या फल होता है इत्यादि विविध बातों का विचार है, उसे बताते हैं।

श्रीपतिः—

श्रीपति के आधार पर दिन व रात्रि में मुहूर्तों के नाम

रुद्राहिमित्रपितरो वसुवारिविश्वे वेधा विधिः शतमखः पुरुहूतवह्नी।
नक्तंचरश्च वरुणार्यमयोभगश्च प्रोक्ता दिने दश च पञ्च तथा मुहूर्ताः ॥ १ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि दिन में १५ मुहूर्तों के नाम क्रम से प्रथम मुहूर्त का स्वामी शिव, दूसरे का सर्प, तीसरे का मित्र, चौथे का पितर, पाँचवें का वसु, छटे का जल, सातवें का विश्वेदेवा, आठवें का ब्रह्मा, नवें का सूर्य, दशवें का इन्द्र, ग्यारहवें का पुरुहूत अग्नि, बारहवें का राक्षस, तेरहवें का वरुण, चौदहवें का अर्यमा और पन्द्रहवें मुहूर्त का स्वामी भग होता है ॥१॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'शिवसर्पमित्रपितरो वसुजलविश्वाब्जजद्रुहिणः। सुरपद्धिदैवदनुजाः शम्बरनाथार्यमाख्यभगाः (१७ अ० १ श्लो०) ॥१॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में भी 'दिवा क्षणाः स्युरुद्राहिमित्रा पितृवसूदकम्। विश्वेऽभिजिद् ब्रह्मशक्रेन्द्राग्निकोणेशपाशिनः अर्यमा भग इत्येते:' (४६ पृ० १ श्लो०) ॥१॥

और भी मुहूर्तचिन्तामणि में 'गिरिशभुजगमित्राः पित्र्यविश्वम्बुविश्वेऽभिजिदथ च विधातापीन्द्रइन्द्रानलौ च। निऋतिरुदकनाथोऽप्यर्यमाऽथो भगः स्युः क्रमशइह मुहूर्ता वासरे बाणचन्द्राः' (६ प्र० ५२ श्लो०) ॥१॥

रात के मुहूर्तों के स्वामी

निशामुहूर्ता गिरिशाजपादाहिर्बुन्ध्यपूषाश्वियमाग्नयश्च।
विधातृचन्द्रादितिजीवविष्णुस्तिग्मद्युतिस्त्वाष्ट्रसमीरणश्च ॥ २ ॥

रात्रि में प्रथम मुहूर्त का रुद्र, दूसरे का अजपाद, तीसरे का अहिर्बुध्न्य, चौथे का पूषा, पाचवें का अश्वि, छटे का यम, सातवें का अग्नि, आठवें का ब्रह्मा, नवें का चन्द्रमा, दसवें का अदिति, ग्यारहवें का गुरु, बारहवें का विष्णु, तेरहवें का सूर्य, चौदहवें का त्वाष्ट्र और पन्द्रहवें मुहूर्त का स्वामी समीरण (वायु) होता है। या ये इनके नाम होते हैं ॥२॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है कि 'रुद्राजपादेवाहिर्बुध्न्याख्यस्ततश्च पूषाख्यः। अश्वियमवह्निधातृसुधाकरास्वदितिसुरमन्त्री। हरिस्तीक्ष्णकरत्वाष्ट्रप्रभञ्जनाश्चेति पञ्चदश' (१७ अ० २–३ श्लो०) ॥२॥

ज्यो० नि० में कहा है 'रुद्रगान्धर्वयक्षेशाश्चारणो मारुतोऽनलः। रक्षोधाता तथा सौम्यः पद्मजो वाक्पतिस्तथा। पूषा हरिवायुनिर्ऋन्मुहूर्ता रात्रिसंज्ञिताः' (४६ पृ० ८ श्लो०) ॥२॥

एवं मुहूर्तचिन्तामणि में भी 'शिवोऽजपादादष्टौ स्युर्भेशा अदितिजीवकौ। विष्णवर्कत्वष्ट्रमरुतो मुहूर्तानिशि कीर्तिताः' (मु० चिं० ६ प्र० ५३ श्लो०) ॥२॥

मुहूर्त मान का ज्ञान

दिनस्य यः पञ्चदशो विभागो रात्रेस्तथा तद्धि मुहूर्तमानम्।
नक्षत्रनाथप्रमिते मुहूर्ते मौहूर्तिकास्तत्समकर्म चाहुः ॥ ३ ॥

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि दिन मान व रात्रिमान के पन्द्रहवें भाग को मुहूर्त कहते हैं। मुहूर्तशास्त्र के जानकारों का कथन है कि नक्षत्र के अभाव में नक्षत्र स्वामी के मुहूर्त में उसके समान कार्य करना चाहिये ॥३॥

नारदः—

नारद जी के आधार पर मुहूर्तमान का ज्ञान

अह्नः पञ्चदशो भागस्तथा रात्रिप्रमाणतः।
मुहूर्तमानं द्वावेव क्षणर्क्षाणि समेश्वराः ॥ ४ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि दिन के व रात के पन्द्रहवें हिस्से को मुहूर्त कहते हैं। अर्थात् १५ मुहूर्त दिन में और १५ मुहूर्त रात में होते हैं। ये क्षणवार के समान स्वामी होते हैं ॥४॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'पञ्चदशांशो दिवसे क्षणमानं तत्त्रियामायाः। नक्षत्रेश्वरसदृशे क्षणे च तन्नामधिष्ण्यं तत्' (१७ अ० ४ श्लो०) ॥४॥

तथा कश्यप ने भी कहा है 'अह्नः पञ्चदशो भागो मुहूर्तोऽथ तथा निशि' (मु० चि० ६ प्र० ५३ श्लो० पी० टी०) ॥४॥

और भी ज्योतिर्निबन्ध में 'क्षणोऽत्र दिनमानस्य रात्रेश्च शरभूलवः' (४७ पृ० ८ श्लो०) ॥४॥

वारवश दूषित मुहूर्त ज्ञान

अर्यम्णोर्के तुहिनकिरणे राक्षसब्राह्मसंज्ञौ
पित्राग्नेयौ क्षितिसुतदिने चन्द्रपुत्रोभिजिच्च।
पितृब्राह्मौ भृगुसुतदिने राक्षसाप्यौ च जीवे
भौजङ्गेशौ सवितृतनये वर्जनीयौ मुहूर्तौ ॥ ५ ॥

नारदऋषि ने कहा है कि रविवार के दिन अर्यमा, चन्द्रवार में राक्षस, ब्रह्मा, भौम में पितृ, वह्नि, बुधवार में अभिजित्, वृहस्पति में तोय, रक्ष, शुक्र में पितृ, ब्रह्म और शनिवार के दिन में ईश व सार्प होने से निषिद्ध मुहूर्त ये होते हैं ॥५॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'अर्यम्णत्वकंवारे हिमकरदिवसे राक्षसब्रह्मसंज्ञौ, पित्र्याग्नेयौ क्षणौ तौ क्षितिसुतदिवसे सौम्यवारेऽभिजिश्च । दैत्याप्यौजीववारे भृगुतनयदिने ब्राह्म-पित्र्यौ मुहूर्तौ, सार्पेशौ तिग्मरोचिप्रियसुतदिवसे वर्जनीया मुहूर्ताः' (१७ अ० ९ श्लो०) ।।५।।

और भी मुहूर्तचिन्तामणि में 'रवार्यमा ब्रह्मरक्षश्च सोमे कुजे वह्निपित्र्ये बुधे चाभिजित् स्यात् । गुरौ तोयरक्षौ भृगौ ब्राह्मपित्र्ये शनीवीशसार्पौ मुहूर्ता निषिद्धाः' (६ प्र० ५४ श्लो०) ।।५।।

पौराणिकों के आधार पर दिन के १५ मुहूर्तों के स्वामी

पौराणिका रौद्रसिताख्यमैत्राः क्षणाः स्मृताश्चारमठश्चतुर्थः ।
सवृत्तिवैराजकसंज्ञकौ च गन्धर्वनामाभिजिदष्टमः स्यात् ।। ६ ।।
रोहिणाह्वयबली विजयोन्यौ नैर्ऋतः शतमखो वरुणश्च ।
अन्तिमस्तु भगसंज्ञक उक्तो योऽष्टमः स तु भवेत्कुतुपाख्यः ।। ७ ।।

प्राचीनाचार्यों का कहना है दिन के प्रथम मुहूर्त का स्वामी १ रौद्र, दूसरे का सित, तीसरे का मैत्र, चौथे का चारमट (मठ), पाँचवें का सावित्री, छटें का वैराज, सातवें का गान्धर्व, आठवें का अभिजित्, नवें का रोहिण, दशवें का बल, ग्यारहवें का विजय, वारहवें का नैऋत, तेरहवें का इन्द्र, चोदहवें वरुण और पन्द्रहवें का नाम भग होता है ।।६–७।।

ज्योतिर्निबन्ध में इस प्रकार से है 'पौराणिका रौद्रसितमैत्रचारभटाः क्षणाः । सावित्रश्चाप्य वैराजो गान्धर्वश्चाष्टमोऽभिजित् । रोहिणो बलसंज्ञश्च विजयो नैऋतस्तथा, इन्द्रो जलेश्वरः पञ्चदशमो भगसंज्ञकः' (४६ पृ० ५–६) ।।६– .।।

रात के १५ मुहूर्तों के नाम

रौद्रो गन्धर्वनामा द्रविणपरिवृढश्चारणो वायुरग्नी रक्षो
रक्षाधाताथ सौम्यस्तदनु कमलजो वाक्पतिः पौष्णनामा ।
वैकुण्ठोऽन्यः समीरे निर्ऋतिरिति निशाचारिणोऽमी मुहूर्ताः
प्रोक्तास्त्रिःपञ्चसंख्या मुनिभिरिति पुराणार्थचिन्ताप्रवीणैः ।। ८ ।।

रात में प्रथम का रौद्र, दूसरे का गन्धर्व, तीसरे का पक्ष, चौथे का चारण, ५ वें का वायु छटे,-का अग्नि, ७ वें का राक्षस, ८ वें का ब्रह्मा, ९ वें का सौम्य, १० वें का ब्रह्मा, ११ वें का गुरु, १२ वें का पौष्ण, १३ वें का वैकुन्ठ, १४ वें का वायु और १५ वें मुहूर्त का नाम निर्ऋति होता है इन १५, १५ मुहूर्त को संज्ञाओं की प्राचीन ज्योतिष वेत्ताओं ने जानकारी दी है ।। ८ ।।

ज्योतिनिबन्ध में कहा है 'रुद्रगान्धर्वपक्षेशाश्चारुणोमारुतोऽनलः। रक्षोधाता तथा सौम्यः पद्मजो वाक्पतिस्तथा। पूषा हरिर्वायुनिर्ऋन्मुहूर्ता रात्रिसंज्ञितः' (४६ पृ० ७ श्लो०) ॥ ८ ॥

सिद्ध मुहूर्त

तै राजनामा विजयः सिताख्यः सावित्रमैत्रावभिजिद्बलश्च ।
सर्वार्थसिद्धयै गदिता मुहूर्ता मौहूर्तिकैरत्र पुराणविद्भिः ॥ ९ ॥

प्राचीन मुहूर्त शास्त्र वेत्ताओं का कहना है कि वैराज, विजय, सित, सावित्र, मैत्र अभिजित् और बलसंज्ञक मुहूर्तों में काम करने से सिद्धि होती है ॥ ९ ॥

[1]लल्लः—

लल्लाचार्यजी के आधार पर कार्यसाधक मुहूर्तों के नाम

श्वेतो मैत्रो विराजश्च सावित्रश्चाभिजित्तथा ।
बलश्च विजयश्चैव मुहूर्ताः कार्यसाधकाः ॥ १० ॥

आचार्यलल्ल ने बताया है कि श्वेत, मैत्र, विराज, सावित्र, अभिजित्, बल और विजय ये मुहूर्त कार्य की सिद्धि करने वाले होते हैं। अर्थात् ये मुहूर्त शुभ होते हैं। इनमें कार्य करना चाहिए ॥ १० ॥

[2]नारदः—

नारद जी के आधार पर कुतुप संज्ञा का ज्ञान

अष्टमो योऽभिजित्संज्ञः स एव कुतुपः स्मृतः ।
तस्मिन्काले शुभा यात्रा विना याम्यां बुधैः स्मृता ॥ ११ ॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि आठवाँ जो अभिजित् संज्ञक मुहूर्त होता है। उसकी कुतुप संज्ञा होती है। उसमें या यों समझिये कि कुतुप मुहूर्त में दक्षिण दिशा की यात्रा के बिना समस्त कार्य शुभ होते हैं ॥ ११ ॥

अभिजित में कार्य

[3]यात्रानृपाभिषेकावुद्वाहोऽन्यच्च माङ्गल्यम् ।
सर्वे शुभदं ज्ञेयं कृतं मुहूर्तेऽभिजित्संज्ञे ॥ १२ ॥

अभिजित् संज्ञा वाले मुहूर्त में यात्रा, राज्याभिषेक, विवाहादि समस्त माङ्गलिक कार्य शुभ फलदायक होते हैं ॥ १२ ॥

चण्डेश्वरः—

चण्डेश्वर के आधार पर

अभिजिद्योगे प्राप्ते भगवति मध्यंदिने दिनाधिपतौ ।
चक्रेण चक्रपाणिः सर्वान्दोषान्निषूदयति ॥ १३ ॥

---

१. ज्यो० नि० ४६ पृ० ६ श्लो० । २. ज्यो० नि० ४६ पृ० १० श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ४६ पृ० ११ श्लो० ।

आचार्य चण्डेश्वर का कहना है कि अभिजित् नामक मुहूर्त के समय में सूर्य खमध्य में होने से चक्रपाणि भगवान् अपने चक्र से समस्त दोषों का विनाश कर देते हैं। अतः शुभ होता है ॥ १३ ॥

[1]नारदः—

नारद के आधार पर अभिजित् का पुनः महत्व

विष्टिव्यतीपातकृतान् दोषानुत्पातखचरभवान् ।
मध्याह्नकृतो दिनकृत्सर्वानपनीय शुभकृत्स्यात् ॥ १४ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि भद्रा, व्यतिपात, उत्पात और ग्रहजन्य दोषों का मध्याह्न में खमध्य में सूर्य के रहने से समस्त दोषों का अपहरण होकर उक्त समय शुभ फलदायक होता है ॥ १४ ॥

गर्गः—

गर्गोक्त विजय मुहूर्त का ज्ञान व महत्व

ईषत्सन्ध्यामतिक्रान्ताः (तः ?) किंचिदुद्भिन्नतारकाः (कः ?) ।
विजयो नाम योगोऽयं सर्वकार्यार्थसाधकः ॥ १५ ॥

श्री गर्गाचार्य जी का कहना है कि कुछ सन्ध्या व्यतीत होने पर व कुछ तारागणों के उदय होने पर विजय नाम का मुहूर्त होता है। इसमें समस्त कार्य करने पर अभीष्ट फल देने वाले होते हैं ॥ १५ ॥

नक्षत्राणामलाभे तु लग्ने कर्मणि नो विधिः ।
क्षणे प्रोक्ते विधिस्तत्र मुहूर्तो बलवान् यतः ॥ १६ ॥

शुभ शुद्ध नक्षत्र की अप्राप्ति में लग्न में कार्य नहीं करना चाहिये। यदि उस दिन बली मुहूर्त की प्राप्ति हो तो उसमें शुभ काम करना चाहिये ॥ १६ ॥

श्रीपतिः—

श्रीपतिजी के आधार पर

यस्मिन् धिष्ण्ये यच्च कर्मोपदिष्टं तद्दैवत्ये तन्मुहूर्तेऽपि कार्यम् ।
दिक्शूलाद्यं चिन्तनीयं समस्तं तद्वद्दण्डः पारिघश्च क्रमेण ॥ १७ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने कहा है कि जिस नक्षत्र में जिस कार्य को करने के लिये कहा गया है, उस काम को उसके स्वामी के मुहूर्त में करना चाहिये। किन्तु दिशाशूलादि, परिघ, व दण्ड का विचार इसमें करना चाहिये ॥ १७ ॥

मुहूर्तसागरे—

मुहूर्त सागर के आधार पर

नक्षत्रलग्नादि बलं न चेत्स्यात्तदा मुहूर्तं परिकल्पनीयम् ।
प्रत्यूषकालस्त्वभिजिन्मुहूर्तो गोधूलिकं मङ्गलकृत्सदैव ॥ १८ ॥

---

१. ज्यो० नि० ४६ पृ० १२ श्लो० ।

मुहूर्त सागर नामक ग्रन्थ में कहा है कि नक्षत्र, लग्नादि बल के अभाव में उषा काल, मध्याह्न (अभिजित्) और गोधूलि काल में सदा ही शुभ कार्य करना चाहिए ॥ १८ ॥

हारीतः—

हारीत के आधार पर

सदा शुभेषु कार्येषु शुभदा मुनिभिः स्मृताः ।
उषाकालश्च मध्याह्नकालः सायन्तनः स्मृतः ॥ १९ ॥

हारीत ने बताया है कि सदा सकल माङ्गलिक कार्यों में उषःकाल, मध्याह्न और गोधूलि का समय शुभ होता है । ऐसा ऋषियों का मत है ॥ १९ ॥

उषःकाल का ज्ञान व महत्व

प्रभ्रष्टद्युतितारका स्फुटतटी प्राची भवेन्निर्मला
ईषद्रक्तविलोहितान्तधवला देवैः सदा वन्दिता ।
नो वारो न तिथिर्न चापि करणं चन्द्रे च नापेक्षते
हत्वा दोषसहस्रसङ्कटदिनं ऊषा करोत्युन्नतिम् ॥ २० ॥

जिस समय प्रातः काल में ताराओं का दीखना बन्द हो जाता है तथा पूर्व दिशा स्पष्ट निर्मल होती है और अल्प लालिमा से सुवर्ण वर्ण वाली सदा देवगणों से वन्दित होती है तो इस समय को उषः काल कहते हैं । इसमें बार, तिथि, करण नक्षत्रादि की आवश्यकता नहीं होती है । यह उक्त काल हजारों काटों से युक्त दिन को शुभ बना देता है ॥ २० ॥

मध्याह्न काल का ज्ञान व महत्व

मध्यस्थं व्योमसंस्थे स्फुरदनलनिभे केशवे चार्कबिम्बे
छाया साध्वीव कान्ता प्रचलितपुरुषे यत्रतत्पादलग्ना ।
तावत्सौरिं न विष्टि कुजकृतमशुभं नैव ऋक्षं न योगं
सन्मानारोग्यसौख्यक्षितिधनयुवतिं तत्र गन्ता लभेच्च ॥ २१ ॥

मध्याह्न के समय में सूर्य खमध्य में प्रखर किरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है । अतः चलने वाले व्यक्ति की उस समय छाया पतिव्रता की तरह पांव तक ही रहती है । इस समय में शनि-भौम नक्षत्रादि कृत दोष नहीं होता है । इसमें यात्रा करने पर सन्मान आरोग्यता, सुख, भूमि, धन और स्त्री की प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥

गोधूलि का ज्ञान व महत्व

यावत्कुङ्कुमरक्तचन्दननिभो नास्तं गतो भास्करो
यावच्चोडुगणो नभस्तलगतो नो दृश्यते रश्मिभिः ।
यावद्गोखुरघातचूर्णितरजो विस्तीर्यते चाम्बरे
तावत्सर्वजनस्य मङ्गलविधौ गोधूलिकं शस्यते ॥ २२ ॥

जब तक अस्तमन बेला में सूर्य रोली की लाल आभा से युक्त होकर अस्त नहीं होता और ताराएँ अपनी किरणों के साथ उदित नहीं होती एवं गायों के आगमन में खुरों से उड़ी हुई धूलि आकाश में दिखाई देती है, उस काल को गोधूलि काल कहते हैं। इसमें समस्त जनसमुदाय के माङ्गलिक कार्य शुभ फल देने वाले होते हैं ॥ २२ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'सूर्यात्सप्तमलग्नं यद्गोधूलिकमिति स्मृतम्। सर्वदोषहरं यद्वत् पापं गङ्गाजलं यथा। गोधूलिकं योगलग्नं भावलग्नञ्च कल्पितम्। गान्धर्वादि विवाहेषु वैश्योद्वाहेषु योजयेत्' (३२ अ० २२९–२३० श्लो०) ॥ २२ ॥

और भी बृ० सं० में 'गोयैर्यष्टयाहतानां खुरपुटदलिता या तु धूलिर्दिनान्ते, सोद्वाहे सुन्दरीणां विपुलधनसुतारोग्यसौभाग्यकर्त्री। तस्मिन्काले न चर्क्ष न च तिथिकरणं नैव लग्नं न योगः, ख्यातः पुंसां सुखार्थं शमयति दुरितान्युत्थितं, गोरजस्तु' (१०३ अ० १३ श्लो०) ॥ २२ ॥

विशेष—यह पद्य मुहूर्तचिन्तामणि ६ प्रकरण ९९ श्लोक की पीयूषधारा में भागुरिः' के नाम से भी उद्धृत है ॥ २२ ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में भी कहा है 'नास्यामृक्षं न तिथिकरणं नैव लग्नस्य चिन्ता नो वा वारो न च लवविधिर्नो मुहूर्तस्य चर्चा। नो वा योगो न मृतिभवनं नैव जामित्रदोषो गोधूलिःसा मुनिभिरुदिता सर्वकार्येषु शस्ता' (६ प्र० ६९ श्लो०) ॥ २२ ॥

लल्लाचार्य जी ने भी बताया है 'लग्नं यदा नास्ति विशुद्धमन्यद्गोधूलिकं साधु तदा वदन्ति। लग्ने विशुद्धे सति वीर्ययुक्ते गोधूलिकं नैव फलं विधत्ते। शुभाशुभयुतं सर्वं राशेर्दोषं त्वनिन्दितम्। विवाहलग्नवच्छेषं गोधूलिं प्राह भागुरिः' (मु० चि० ६ प्र० ९९ श्लो० पी० टी०) ॥ २२ ॥

अन्य भी नारद जी का कथन है 'प्राच्यानां च कलिङ्गानां मुख्यं गोधूलिकं स्मृतम्। गान्धर्वादि विवाहेषु वैश्योद्वाहे च योजयेत्। चतुर्थमभिजिल्लग्नमुदयर्क्षात्तु सप्तमम्। गोधूलिकं हि भवति सम्पत् पुत्रादिसौख्यदम्' (मु० चि० ६ प्र० ६६ श्लो० पी० टी०) ॥ २२ ॥

तथा दैवज्ञमनोहर में भी 'घटीलग्नं यदा नास्ति तदा गोधूलिकं शुभम्। शूद्रादीनां बुधाः प्राहुर्न द्विजानां कदाचन। महादोषान् परित्यज्य प्रोक्तधिष्ण्यादिकेषु च। कारयेद्गोरजो यावत्तावल्लग्नं शुभावहम्। लग्नशुद्धिर्यदा नास्ति कन्या यौवनशालिनी। तदा वै सर्ववर्णानां लग्नं गोधूलिकं स्मृतम्' (मु० चि० ६ प्र० ६९ श्लो० पी० टी०) ॥ २२ ॥

और भी भूपालवल्लभ का कथन है 'विप्रेषु घटिकालाभे दातव्यं गोरजो बुधैः। सङ्कीर्णे गोरजः शस्तं परेषु द्वितयं मतम्' (मु० चि० ६ प्र० ६९ श्लो० पी० टी०) ॥ २२ ॥

और भी ज्योतिर्निबन्ध में 'भानोः कुङ्कुमसङ्काशाद्यावत्ताराप्रकाशनम् । यावच्च गोरजो व्योम्नि तावल्लग्नं स्मृतं परैः' (१५६ पृ० १० श्लो०) ।

विशेष—ऋतु वश गोधूलि काल ज्ञान 'गोधूलिं त्रिविधां वदन्ति मुनयो नारीविवाहादिके, हेमन्ते शिशिरे प्रयाति मृदुतां पिण्डीकृते-भास्करे । ग्रीष्मेऽर्द्धास्तमिते वसन्तसमये भानौ गते दृश्यताम्, सूर्ये चास्तमुपागते भगवति प्रावृट्शरत्कालयोः' ।

गोधूलि में भी त्याग वस्तु 'कुलिकं क्रान्तिसाम्यञ्च मूर्तौ षष्ठाष्टमः शशी । पञ्च गोधूलिके त्याज्या अन्ये दोषाः शुभावहाः' ॥ २२ ॥

स्मृतिसागरे—

स्मृति सागर के आधार पर मुहूर्त की प्रशंसा

मुहूर्तात्मा स्थिरः कालः पुराणादौ प्रकीर्तितः ।
अतो मुहूर्ते कर्तव्यं विवाहाद्यं बुधैः सदा ॥ २३ ॥

स्मृतिसागर नाम के ग्रन्थ में कहा है कि पुराणादि में काल की स्थिर आत्मा मुहूर्त ही होता है । इसलिये विवाहादि शुभ मंगल कार्य मुहूर्त में ही करना चाहिये ॥ २३ ॥

वाग्भट्टे—

वाग्भट के आधार पर भी प्रशंसा

मुहूर्तः सूक्ष्मकालः स्याद्गर्गाद्याः कथिताः पुरा ।
विवाहादि शुभं कार्यं कर्तव्यं शुभहेतुभिः ॥ २४ ॥

वाग्भट में कहा है कि गर्गादि मुनियों ने सूक्ष्मकाल मुहूर्त को ही माना है । अतः शुभ की कामना करने वालों को मुहूर्त काल में ही समस्त विवाहादि शुभ काम करना चाहिये ॥ २४ ॥

अब आगे भार्गव मुहूर्त को भिन्न रीति से बताते हैं ।

अथ भार्गवमुहूर्तोऽन्यप्रकारात् । भृगुरुवाच—

नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि देवदेवं जनार्दनम् ।
अहं वररुचिर्नाम तत्त्वं भार्गवभाषितम् ॥ २५ ॥
यानि वाक्यानि शुक्रेण पृच्छते वृत्रवैरिणे ।
उक्तानि तानि लिख्यन्ते ग्रन्थादाहृत्य भार्गवात् ॥ २६ ॥

भृगु जी बोले—

मैं वररुचि नाम वाला जन समुदाय के कष्ट को दूर करने वाले देवताओं के देव को नमस्कार करके भार्गव जी के द्वारा कथित तत्त्व को बता रहा हूँ ॥ २५ ॥

जिन बातों को वृत्रवेरी (इन्द्र) ने शुक्र से पूंछा था । उनको भार्गव के ग्रन्थ से लेकर लिख रहा हूँ ॥ २६ ॥

अथ महेन्द्रः सुधर्मायामेकस्मिन्दिने भार्गवमाहूय पप्रच्छ भो भार्गव! मदीयं वनं वह्निर्दहति इति गिरं देवदूतमुखादाकर्ण्य गुरुमामन्त्रयेदमवोचत्। भगवन् गुरो! त्वया साधुरपि शोधितमुहूर्ते समारोपितं वनं जातवेदसा दह्यत इति। अथैवं पृष्ठेन वाचस्पतिनेदमुक्तम्। ब्रह्मणा तव निर्मितश्चतुर्दशभुवनात्मको रचनाविशेषोप्युपायैराक्रान्तस्तत्र किं चित्रमिति एतद्वचनं भार्गवो मदीयं नाङ्गीकुरुते। तत्र विषये दाहक्रियायाः किं निदानं ज्ञायते। अथ भार्गव आह—भगवन् शतक्रतो! संवत्सरायनर्तुमासपक्षदिवसमुहूर्तनाडिकाभिर्जगतां कार्यारंभे शुभाशुभयोः प्रोक्तः समयः स्फुटतरं किञ्चित्यतो उत्तरोत्तरं बलवान् भवति। उभयात्मकं फलमपि तत्र तत्राप्युक्तं प्रतिभासते तस्माद्वननिर्माणकार्यारम्भे नाडिकानां फलपरिज्ञाने संजाते दहनक्रियानिमित्तं सुलभमवबुध्यते। इन्द्रः पुनरब्रवीत्। तर्हि कवे तद्ब्रूहीति पुनराह। वननिर्माणसमये गुरुणा दत्तं मुहूर्तमभिजिन्नाम तत्साधु तस्य दोषाः सूक्ष्मा अपि न वेद्यन्ते एतमेतावानेव गुरोः कालो निश्चीयते न मुहूर्तप्रधानं पृथक्। तेन नाडिकायाः कार्यारम्भे नाडिकानामुपेक्षा कृता सर्वेषु कार्येषु नाडिकैव बलवती। सा नाडिका तु प्रत्येकं ग्रहादिवासरवशात् नानाविधानि शुभाशुभात्मकानि फलानि स्वस्थास्वस्थामारब्धकर्मणः पृथक् पृथक् तनोति तत्र तिथ्यर्क्षमुहूर्तादि प्रधानम्। तेषां तिथ्यर्क्षादीनामानुगुण्ये वा नाडिका स्वफलमेकेन ददाति अतस्तद्वननिर्माणसमये वारोऽङ्गारकः ऋक्षं रोहिणी तस्यां चन्द्रेणेक्षितं सर्वासां नाडीनां वासरदशात् फलदाता चन्द्र एव तस्यावस्थास्त्रिंशतयः प्रत्येकमवस्थायामेकैकघटिका भवन्ति। ताश्च ज्योत्स्ना मैत्री सन्ध्याश्चाभिधीयन्त तदा चन्द्रमावस्था कृत्तिका नाम तस्याः फलं तु यत्कर्माख्यं तदग्निशस्त्रादिभिरुपहन्यत इति। अतो वनस्यैव तस्य वह्नेर्दाहेन भवितव्यम् तस्मात्तद्दहनमुपजातमिदमेव निदानमिति मम प्रतिभाति। इन्द्रः पुनरब्रवीत्। त्वया साधूक्तमेतदेव वचनं तु मम नाङ्गीकुरुते यस्यैतस्य परिज्ञातारो धरातले जना भविष्यन्ति तथा वचनं मे भवेदिति। भार्गवः पुनरिदमाह। महेन्द्र धराजनानां हिताय नाडीतत्त्वं प्रवक्ष्यामि मया च गुरुणा च सह सप्तानां ग्रहाणां तत्तदभिधानानि वासराणि सप्त सन्ति तानि भान्वादीनि गणनीयानि एकैकवारे पुनरुदयमारभ्य पुनरुदयावधि षष्टिनाडिका मिताः स्युः। तत्र द्वैविध्यं पूर्वा त्रिंशत्परा त्रिंशदिति। पूर्वत्रिंशतो यदुदितं तद्परस्यास्त्रिंशतो भवति। ताश्चन्द्रमसोऽवस्थात्मिका नाड्यस्तु विशाखामारभ्य सप्तविंशतिभिर्नक्षत्राणामभिजिज्ज्योत्स्नामैत्रीसंध्यानामभिश्च व्यवहारणीयाः। प्रथमनाडिका विशाखा, द्वितीयनाडिकानुराधेत्यादि। पुनरपराणां त्रिंशन्नाडिकानामेव एवंविधं त्रिंशदवस्थावस्थितश्चन्द्रः प्रत्येकं वारे वारे ग्रहाणां नाड्यां नाड्यां पृथक्पृथक्फलं तद्ग्रहेभ्यः कार्याकार्यं स्वयमादाय ददाति तानि फलान्येतानि।

एक शुभ दिन में इन्द्र ने भार्गव जी को बुला कर उनसे पूंछा कि हे भार्गव जी मेरे वनको अग्नि जला रही है इस प्रकार की दूत से वाणी सुनकर वृहस्पति जी को बुलाकर उनसे कहा कि हे भगवान गुरु जी आपने सुन्दर संशोधित मुहूर्त में वन का निर्माण कराया। फिर भी इस जंगल को अग्नि जला रही। इस प्रकार इन्द्र के पूंछने पर गुरु ने कहा कि ब्रह्मा के बनाये हुए चौदह भुवनों में रचनाओं की विशेषता होने पर उपायों से वह भुवन भी जब पीडित होता है तो आपके जंगल को अग्नि नष्ट कर रही है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है यह जो आपका कहना है उसे शुक्राचार्य जी नहीं मानते हैं। वास्तव में जलन में कोई कारण अवश्य होगा ऐसा कहते हैं।

इसके अनन्तर शुक्र जी ने कहा कि हे इन्द्र भगवान् संवत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, मुहूर्त और नाडिकाओं से जगत् के शुभाशुभ का आरम्भ होता है तथा इसमें उत्तरोत्तर बली समझना चाहिये। अर्थात् संवत् से अयन-अयन से ऋतु, ऋतु से मास इत्यादि जानना चाहिये। उभयात्मक फल भी वहाँ वहाँ पर उक्त प्रकार से होता है। इसलिये वन निर्माण कार्य के आरम्भ में नाडिका का ज्ञान करने पर मालूम होता है उस समय में दहन संज्ञक ही नाडिका थी।

पुनः इन्द्र ने पूंछा कि भगवन् उसे मुझे बताइये। तब फिर भृगुजी ने कहा कि वन निर्माण के समय में यद्यपि वृहस्पति जी ने अभिजित् नामक मुहूर्त दिया था वह सुन्दर ही था। उसमें अल्प भी दोष नहीं मालूम होता है किन्तु गुरु का बताया हुआ मुहूर्त नाडिका की शुद्धि से अलग था। अर्थात् नाडिकाओं का विचार वृहस्पति जी ने नहीं किया था। और नाडिकाओं की उपेक्षा की थी। किन्तु समस्त शुभ कामों में नाडिकाओं की प्रधानता होती है। उक्त नाडिकाएँ तो सूर्यादि वार के हिसाब से अनेक प्रकार की शुभाशुभ फल देने वाली होती हैं। तथा स्वस्थ, अस्वस्थ कार्य के आरम्भ में अलग फल का विस्तार करती हैं। वहाँ पर तिथि, नक्षत्र मुहूर्त प्रधान, नक्षत्र मुहूर्त के अनुरूप वा एक २ नाडिका के तुल्य फल होता है। इसलिये वन के निर्माण काल में वार भौम, नक्षत्र रोहिणी था और उस अवस्था में चन्द्रमा की दृष्टि थी। वारादि क्रम से ही समस्त घटिका चन्द्रमा के वश से फल देने में समर्थ होती हैं। इसलिये चन्द्र ही फल दायक होता है।

उस चन्द्रमा की तीस अवस्था होती हैं। प्रत्येक अवस्था में एक एक घटी होती है। उन अवस्थाओं को ज्योत्स्ना, मैत्री, सन्ध्या आदि कहते हैं। आपके वन निर्माण के समय कृत्तिका नाम की नाडिका थी। उसका फल तो यह है कि इसमें जो कर्म किया जाता है वह अग्नि या शस्त्रादि से नष्ट होता है। इसलिये श्रीमान् के वन को वह्नि जला रही है। यही मुझे ज्ञात हो रहा है।

फिर इन्द्र ने कहा आपने सुन्दर ही कहा किन्तु इतने से मुझे संतोष नहीं है।

इसको जानने वाले इस भूमि पर उत्पन्न हों वैसे ही मेरी वाणी हो।

शुक्र जी ने पुनः कहा हे इन्द्र मैं भूमिस्थ जनों के कल्याणकारी नाडीतत्व को बता रहा हूँ। बृहस्पति जी के साथ मैं ग्रहों के नाम से सातवारों में गिना जाने से सात बार होते हैं। वे सात वार सूर्यादिक्रम से गिनना चाहिये।

एक वार के उदय से दूसरे उदय के पूर्व तक ६० घटियाँ होती हैं। उन घटिकाओं का विभाजन दो प्रकार से करते हैं। ३० पूर्व और ३० पर संज्ञक होती है। वही चन्द्रमा की ३०, ३० अवस्था होती हैं। पहले की ३० घटियों के पश्चात् पर वाली ३० घटिकाओं का उदय होता है।

नाडिकाओं का प्रारम्भ विशाखा से होता है। २७ नक्षत्रों की अभिजित् ज्योत्स्ना, मैत्री, सन्ध्या नामों से व्यवहार करना चाहिये।

प्रथम विशाखा, दूसरी अनुराधा इत्यादि गणना करना चाहिये। फिर अवशिष्ट पर संज्ञक नाडिकाओं को इसी प्रकार समझना चाहिये। इस प्रकार ३० अवस्थाओं में स्थित चन्द्रमा प्रत्येक वारों में ग्रहों (वारों) की नाडिकाओं में अलग २ फल ग्रहों से लेकर देता है। वे फल इस प्रकार से हैं। यथा —

अथ भानुवासरे—

रविवारस्थ विशाखा नाडी का फल

विशाखायां नाड्यां विवाहादौ कृते शुभं भवति ॥ १ ॥

रविवार में विशाखा की नाडी में विवाहादि करने पर शुभ फल होता है ॥ १ ॥

रविवारस्थ अनुराधा नाडी का फल

अनुराधायां लाभार्थमुद्योगे कृते लाभो भवति ॥ २ ॥

रविवार के दिन अनुराधा नाडी में लाभ की दृष्टि से उद्योग करने पर लाभ होता है ॥ २ ॥

रविवारस्थ ज्येष्ठा नाडी का फल

ज्येष्ठायां जयार्थमुद्योगे कलहोपहतं भवति ॥ ३ ॥

रविवार में ज्येष्ठा नाडी में विजय के लिए उद्योग करने पर कलह से भग्नता मिलती है ॥ ३ ॥

रविवारस्थ मूल नाडी का फल

मूले स्वहितार्थकर्मणि कृते धनं भवति ॥ ४ ॥

रविवार के दिन मूल नाडी में स्वकल्याणार्थ कार्य करने पर धन होता है ॥ ४ ॥

रविवारस्थ पूर्वाषाढा नाडी का फल

पूर्वाषाढायां वाणिज्यकर्मणि कृते धनं भवति ॥ ५ ॥

रविवार के दिन पूर्वाषाढा नाडी में व्यापार करने पर धन प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

रविवारस्थ उत्तराषाढा नाडी का फल

उत्तराषाढायां दुर्लभवस्तुप्राप्त्यर्थं कर्मणि आमोदो भवति ॥ ६ ॥

रविवार के दिन उत्तराषाढा नाडी में दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति के लिए काम करने पर प्रसन्नता होती है ॥ ६ ॥

रविवारस्थ श्रवण नाडिका का फल

श्रवणे स्त्रीकर्मणि शुभं भवति ॥ ७ ॥

रविवार के दिन श्रवण नाडी में स्त्री कर्म में शुभता होती है ॥ ७ ॥

रविवारस्थ धनिष्ठा नाडी का फल

धनिष्ठायां धान्यार्थं कर्मणि कृते अलाभः ॥ ८ ॥

रविवार के दिन धनिष्ठा नाडी में धान्य हेतु कार्य करने पर लाभ की हानि होती है ॥ ८ ॥

रविवारस्थ शतभिषा नाडी का फल

शतभिषजि यात्रायां शुभम् ॥ ९ ॥

रविवार के दिन शतभिषा नाडी में यात्रा करने पर शुभ होता है ॥ ९ ॥

रविवारस्थ पूर्वाभाद्रपद नाडी का फल

पूर्वाभाद्रपदायामभ्यवहारो हितम् ॥ १० ॥

रविवार के दिन पूर्वाभाद्र पद नाडी में अभ्यव हार शुभ होता है ॥ १० ॥

रविवारस्थ उत्तरा भाद्रपद नाडी का फल

उत्तराभाद्रपदायां शारीरकर्मणि कृते सुखमभिवृद्धिः ॥ ११ ॥

रविवार के दिन उत्तराभाद्रपद नाडी में शरीर सम्बन्धी काम करने पर सुख की वृद्धि होती है ॥ ११ ॥

रविवारस्थ रेवती नाडी का फल

रेवत्यां विजयार्थं कर्मणि कृते शत्रूणां विजयो भवति ॥ १२ ॥

रविवार के दिन रेवती नाडी में विजय हेतु काम करने पर शत्रु की जीत होती है ॥ १२ ॥

रविवारस्थ अश्विनी नाडी का फल

अश्विन्यां पश्वर्थं कर्मणि कृते तेषामभिवृद्धिः ॥ १३ ॥

रविवार के दिन अश्विनी नाडी में पशु सम्बन्धो काम करने पर पशुओं की वृद्धि होती है ॥ १३ ॥

रविवारस्थ भरणी नाडी का फल

भरण्यां पट्टबन्धे शुभम् ॥ १४ ॥

रविवार के दिन भरणी नाडी में पट्टबन्ध में शुमता होती है ॥ १४ ॥

रविवारस्थ कृत्तिका नाडी का फल

कृत्तिकायां प्रवेशकर्मणि कृते हानिः ॥ १५ ॥

रविवार के दिन कृत्तिका नाडी में प्रवेश सम्बन्धी काम करने पर हानि होती है ॥ १५ ॥

रविवारस्थ रोहिणी नाडी का फल

रोहिण्यां पुरग्रामगृहादिकर्मणि कृते शुभम् ॥ १६ ॥

रविवार के दिन रोहिणी नाडी में शहर, गांव और घर आदि का कार्य करने पर शुभ फल होता है ॥ १६ ॥

रविवारस्थ मृगशिरा नाडी का फल

मृगशीर्षे यात्रायां हानिः ॥ १७ ॥

रविवार के दिन मृगशिरा नाडी में यात्रा कार्य हानिकारक होता है ॥ १७ ॥

रविवारस्थ आर्द्रा नाडी का फल

आर्द्रायां राजदर्शनार्थं कर्मणि कृते तत्कार्यसिद्धिः ॥ १८ ॥

रविवार के दिन आर्द्रा नाडी में राजदर्शन हेतु प्रयाण करने पर उसकी सिद्धि होती है ॥ १८ ॥

रविवारस्थ पुनर्वसु नाडी का फल

पुनर्वसौ देवतादिस्थापने शुभम् ॥ १९ ॥

रविवार के दिन पुनर्वसु नाडी में देवतादि की स्थापना शुभ होती है ॥ १९ ॥

रविवारस्थ पुष्यनाडी का फल

पुष्ये कार्यारम्भे मेनामुपयाति ॥ २० ॥

रविवार के दिन पुष्य नाडी में कार्य करने पर सेना को प्राप्त करता है ॥ २० ॥

रविवारस्थ श्लेषा नाडी का फल

आश्लेषायां व्यवहारे कृते निर्धना गतिर्भवति ॥ २१ ॥

रविवार के दिन श्लेषा नाडी में व्यवहार करने पर धन हीनता होती है ॥ २१ ॥

रविवारस्थ मघा नाडी का फल

मघायां युद्धकर्मणि कृते परिभूतिर्भवति ॥ २२ ॥

रविवार के दिन मघा नाडी में युद्ध कार्य करने पर तिरस्कार होता है ॥ २२ ॥

रविवारस्थ पूर्वाफाल्गुनी नाडी का फल

पूर्वाफाल्गुन्यां मैत्रीकर्मकृते शुभम्॥ २३ ॥

रविवार के दिन पूर्वाफाल्गुनी नाडी में मित्रता करने पर शुभता होती है ॥ २३ ॥

रविवारस्थ उत्तराफाल्गुनी नाडी का फल

उत्तराफाल्गुन्यां रणकर्मणि विजयः ॥ २४ ॥

रविवार के दिन उत्तराफाल्गुनी नाडी में युद्ध करने पर विजय होती है ॥ २४ ॥

रविवारस्थ हस्त नाडी का फल

हस्तेऽन्योन्यसम्भाषणे आमोदः ॥ २५ ॥

रविवार के दिन हस्त नाडी में आपस में बातचीत करने पर प्रसन्नता होती है ॥ २५ ॥

रविवारस्थ चित्रा नाडी का फल

चित्रायां विक्रयकर्मणि कृते लाभो भवति ॥ २६ ॥

रविवार के दिन चित्रा नाडी में बेचने का काम करने पर लाभ होता है ॥ २६ ॥

रविवारस्थ स्वाती नाडी का फल

स्वात्यां सङ्गमकर्मणि कृते सन्ततिसम्पत्ती ॥ २७ ॥

रविवार के दिन स्वाती नाडी में सङ्गम कार्य करने पर सन्तान व ऐश्वर्य मिलता है ॥ २७ ॥

रविवारस्थ ज्योत्स्ना नाडी का फल

ज्योत्स्नायां शुभकर्मणि कार्यसिद्धिः ॥ २८ ॥

रविवार के दिन ज्योत्स्ना नाडी में शुभ कार्य करने पर कार्य की सिद्धि होती है ॥ २८ ॥

रविवारस्थ मैत्री नाडी का फल

मैत्र्यां यत्किञ्चित्कर्मणि कृते तद्बहुविघ्नैरुपहन्यते ॥ २९ ॥

रविवार के दिन मैत्री नाडी में जो कुछ कार्य किया जाता है। वह अधिक विघ्नों से नष्ट होता है ॥ २९ ॥

रविवारस्थ सन्ध्या नाडी का फल

सन्ध्यायां स्थावरोपयोगीनि कर्माणि कृतेऽतिसुखभाग्भवति ॥ ३० ॥

रविवार के दिन सन्ध्या नाडी में स्थिर उपयोगी काम करने पर अधिक सुख की प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥

एवं रात्रावपि ज्ञेयम्—

इसी प्रकार रात्रि की घटियों का फल समझना चाहिये।

अब आगे सोमवार की ६० घटियों के फल को बताते हैं।

अथ सोमवासरे—

सोमवार में विशाखा नाडी का फल

विशाखायां शुभकर्म कुर्यात् ॥ १ ॥

सोमवार के दिन विशाखा नाडी में शुभ काम करना चाहिये ॥ १ ॥

सोमवार में अनुराधा नाडी का फल

अनुराधायां यात्रां कुर्यात् सुदूरगोऽपि सिद्धिमुपयाति ॥ २ ॥

सोमवार के दिन अनुराधा नाडी में यात्रा करने पर अधिक दूर जाने पर भी सिद्धि की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥

सोमवार में ज्येष्ठा नाडी का फल

ज्येष्ठायां आत्मजयार्थं कर्म कुर्यात् ॥ ३ ॥

सोमवार के दिन ज्येष्ठा नाडी में अपनी विजय हेतु कार्य करना चाहिये ॥ ३ ॥

सोमवार में मूल नाडी का फल

मूले धान्यलाभार्थं कर्मं कुर्यात् ॥ ४ ॥

सोमवार के दिन मूल नाडी में धान्य लाभ हेतु कार्य करना चाहिये ॥ ४ ॥

सोमवार में पूर्वाषाढा नाडी का फल

पूर्वाषाढायां स्नानादि शारीरकर्मं कुर्यात् हितं भवति ॥ ५ ॥

सोमवार के दिन पूर्वाषाढा नाडी में स्नानादि शरीर का कार्य करने से शुभता होती है ॥ ५ ॥

सोमवार में उत्तराषाढा नाडी का फल

उत्तराषाढायां यत्किञ्चित्कर्मोक्तं तत्सफलं भवति ॥ ६ ॥

सोमवार के दिन उत्तराषाढा नाडी में जो कुछ कार्य किया जाता है वह सफल होता है ॥ ६ ॥

सोमवार में श्रवण नाडी का फल

श्रवणे कृषिकर्म कुर्यात् सिद्धयति ॥ ७ ॥

सोमवार के दिन श्रवण नाडी में खेती का कार्य करने पर सिद्ध होता है ॥ ७ ॥

सोमवार में धनिष्ठा नाडी का फल

धनिष्ठायां द्यूतकर्मणि कृते तत्फलति ॥ ८ ॥

सोमवार के दिन धनिष्ठा नाडी में जुआ खेलने पर धनागम होता है ॥ ८ ॥

सोमवार में शतभिषा नाडी का फल

शतभिषजि राज्यलाभाय कर्मं कुर्यात् सिद्धयति ॥ ९ ॥

सोमवार के दिन शतभिषा नाडी में राज्य लाभ हेतु कार्य सफल होता है ॥ ९ ॥

सोमवार में पूर्वाभाद्र पद नाडी का फल

पूर्वाभाद्रपदायां भुक्ति कुर्यात् ॥ १० ॥

सोमवार के दिन पूर्वाभाद्र पद नाडी में भुक्ति कार्य करना चाहिये ॥ १० ॥

सोमवार में उत्तराभाद्रपद नाडी का फल

उत्तराभाद्रपदायां स्त्रीसङ्गतिं कुर्यात् ॥ ११ ॥

सोमवार के दिन उत्तराभाद्र पद नाडी में स्त्री सङ्गम करना चाहिये ॥ ११ ॥

सोमवार में रेवती नाडी का फल

रेवत्यां चारुकर्म कुर्यात् तत् सिद्धयति ॥ १२ ॥

सोमवार के दिन रेवती नाडी में सुन्दर कार्य करने पर सिद्ध होता है ॥ १२ ॥

सोमवार में अश्विनी नाडी का फल

अश्विन्यां युद्धं कुर्यात् ॥ १३ ॥

सोमवार के दिन अश्विनी नाडी में युद्ध करना चाहिये ॥ १३ ॥

सोमवार में भरणी नाडी का फल

भरण्यां दुष्टकर्म कुर्यात् ॥ १४ ॥

सोमवार के दिन भरणी नाडी में दूषित काम करना चाहिये ॥ १४ ॥

सोमवार में कृत्तिका नाडी का फल

कृत्तिकायां जयार्थं कर्मणि कृते जयो भवति ॥ १५ ॥

सोमवार के दिन कृत्तिका नाडी में विजय हेतु काम करने पर विजय प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

सोमवार में रोहिणी नाडी का फल

रोहिण्यां व्याधिचिकित्साकर्म कुर्यात् ॥ १६ ॥

सोमवार के दिन रोहिणी नाडी में रोग को चिकित्सा सम्बन्धी काम करना चाहिये ॥ १६ ॥

सोमवार में मृगशिरा नाडी का फल

मृगशीर्षे पश्वर्थं कर्म कुर्यात् ॥ १७ ॥

सोमवार के दिन मृगशिरा नाडी में पशु हेतु काम करना चाहिये ॥ १७ ॥

सोमवार में आर्द्रा नाडी का फल

आर्द्रायां जयकर्म कुर्यात् ॥ १८ ॥

सोमवार के दिन आर्द्रा नाडी में विजय सम्बन्धी काम करना चाहिये ॥ १८ ॥

सोमवार में पुनर्वसु नाडी का फल

पुनर्वसौ प्रवेशकर्म कुर्वीत ॥ १९ ॥

सोमवार के दिन पुनर्वसु नाडी में प्रवेश सम्बन्धी काम करना चाहिये ॥ १६ ॥

सोमवार में पुष्य नाडी का फल

पुष्ये भुक्तं विषमप्यमृतं भवति ॥ २० ॥

सोमवार के दिन पुष्य नाडी में जहर खाने पर भी अमृत होता है ॥ २० ॥

सोमवार में श्लेषा नाडी का फल

श्लेषायामुत्सवार्थं कर्म कुर्वीत ॥ २१ ॥

सोमवार के दिन श्लेषा नाडी में उत्सव निमित्त कार्य करना चाहिये ॥ २१ ॥

सोमवार में मघा नाडी का फल

मघायां राज्यचिन्तां कुर्वीत ॥ २२ ॥

सोमवार के दिन मघा नाडी में राज्य की चिन्ता करना चाहिये ॥ २२ ॥

सोमवार में पूर्वाफाल्गुनी नाडी का फल

पूर्वाफाल्गुन्यां क्रीडाकर्मं कुर्वीत ।। २३ ।।

सोमवार के दिन पूर्वाफाल्गुनी नाडी में खेल का काम करना चाहिये ।। २३ ।।

सोमवार में उत्तराफाल्गुनी नाडी का फल

उत्तराफाल्गुन्यां विवाहकर्म कुर्वीत ।। २४ ।।

सोमवार के दिन उत्तराफाल्गुनी नाडी में विवाह सम्बन्धी काम करना चाहिये ।। २४ ।।

सोमवार में हस्त नाडी का फल

हस्ते प्रवेशकर्म कुर्वीत ।। २५ ।।

सोमवार के दिन हस्त नाडी में प्रवेश सम्बन्धी काम करना चाहिये ।। २५ ।।

सामवार में चित्रा नाडी का फल

चित्रायां सर्वकार्यारम्भे सिद्धिः ।। २६ ।।

सोमवार के दिन चित्रा नाडी में समस्त कार्य करने पर सिद्धि मिलती है ।। २६ ।।

सोमवार में स्वाती नाडी का फल

स्वात्यां वृक्षारोपणे कृते तन्नाशमुपयाति ।। २७ ।।

सोमवार के दिन स्वाती नाडी में वृक्ष लगाने पर नष्ट होता है ।। २७ ।।

सोमवार में ज्योत्स्ना नाडी का फल

ज्योत्स्नायां सेवां कुर्वीत ।। २८ ।।

सोमवार के दिन ज्योत्स्ना नाडी में सेवा कार्य करना चाहिये ।। २८ ।।

सोमवार में मैत्र नाडी का फल

मैत्र्यां विद्वेषोच्चाटनादि कर्म कुर्यात् ।। २९ ।।

सोमवार के दिन मैत्र नाडी में विरोध व उच्चाटन आदि काम करना चाहिये ।। २९ ।।

सोमवार में सन्ध्या नाडी का फल

सन्ध्यायां शुभकर्म कुर्यात् ।। ३० ।।

सोमवार के दिन सन्ध्या नाडी में शुभ काम करना चाहिये ।। ३० ।।

एवं रात्रावपि ज्ञेयम् ।

इसी प्रकार रात्रि में भी ३० घटियों का फल समझना चाहिये ।

अब आगे भौमवार की नाडियों के फल को बताते हैं ।

भौमवासरे—

भौमवासर में विशाखा नाडी का फल

विशाखायां कर्म कृते मनो दौस्थ्यम् ॥ १ ॥

मंगलवार के दिन विशाखा नाडी में काम करने पर मनमें दुःख होता है ॥ १ ॥

भौमवासर में अनुराधा नाडी का फल

अनुराधायां जयार्थं कर्म कृते जयो भवति ॥ २ ॥

मंगलवार के दिन अनुराधा नाडी में विजय हेतु काम करने पर विजय प्राप्त होता है ॥ २ ॥

भौमवासर में ज्येष्ठा नाडी का फल

ज्येष्ठायां बलसङ्गमे तत्फलति ॥ ३ ॥

मंगलवार के दिन ज्येष्ठा नाडी में बल परीक्षण में बली होता है ॥ ३ ॥

भौमवासर में मूल नाडी का फल

मूले बन्धनाख्यं कर्म कुर्वीत ॥ ४ ॥

मंगलवार के दिन मूल नाडी में बन्धन सम्बन्धी काम करना चाहिये ॥ ४ ॥

भौमवासर में पूर्वाषाढ नाडी का फल

पूर्वाषाढायां उष्ट्रलाभादिकर्म कुर्वीत ॥ ५ ॥

मंगलवार के दिन पूर्वाषाढ नाडी में ऊँट के लाभादि काम करना चाहिये ॥ ५ ॥

भौमवासर में उत्तराषाढ नाडी का फल

उत्तराषाढायां सत्सङ्गत्यै कर्म कुर्यात् ॥ ६ ॥

मंगलवार के दिन उत्तराषाढ नाडी में सज्जनों की सङ्गति के लिये काम करना चाहिये ॥ ६ ॥

भौमवासर में श्रवण नाडी का फल

श्रवणे हयार्थं कर्म कुर्यात् ॥ ७ ॥

मंगलवार के दिन श्रवण नाडी मे घोड़ा हेतु काम करना चाहिये ॥ ७ ॥

भौमवासर में धनिष्ठा नाडी का फल

धनिष्ठायां गवार्थं कर्म कुर्वीत ॥ ८ ॥

मंगलवार के दिन धनिष्ठा नाडी में गाय के निमित्त काम करना चाहिये ॥ ८ ॥

भौमवासर में शतभिषा नाडी का फल

शतभिषजि यात्रायां हानिः ॥ ९ ॥

मंगलवार के दिन शतभिषा नाडी में यात्रा करने पर हानि होती है ॥ ९ ॥

भौमवासर में पूर्वाभाद्रपद नाडी का फल

पूर्वाभाद्रपदायामुद्वाहार्थं कर्म कृते कन्यालाभो भवति ॥ १० ॥

मंगलवार के दिन पूर्वाभाद्रपद नाडी में विवाह सम्बन्धी कार्य में कन्या का लाभ होता है ॥ १० ॥

भौमवासर में उत्तराभाद्रपद नाडी का फल

उत्तराभाद्रपदायां यत्किञ्चित्कर्मणि कृते शुभम् ॥ ११ ॥

मंगलवार के दिन उत्तराभाद्रपद नाडी में विवाह सम्बन्धी कार्य में कन्या का लाभ होता है ॥ ११ ॥

भौमवासर में रेवती नाडी का फल

रेवत्यां पण्यव्यवहारे धान्यलाभः ॥ १२ ॥

मंगलवार के दिन रेवती नाडी में वाजार में जो कुछ काम किया जाता है उसमें शुभता होती है ॥ १२ ॥

भौमवासर में अश्विनी नाडी का फल

अश्विन्यां गमने कृते भीतिः स्यात् ॥ १३ ॥

मंगलवार के दिन अश्विनी नाडी में यात्रा करने पर भय होता है ॥ १३ ॥

भौमवासर में भरणी नाडी का फल

भरण्यां गमने कृते व्याघ्रचौरादिभीतिः ॥ १४ ॥

मंगलवार के दिन भरणी नाडी में यात्रा करने पर सिंह, चोर आदि से डर लगता है ॥ १४ ॥

भौमवासर में कृत्तिका नाडी का फल

कृत्तिकायां यत्किञ्चित्कर्मणि कृते तदग्निशस्त्रादिभिर्नाशमुपयाति ॥ १५ ॥

मंगलवार के दिन कृत्तिका नाडी में जो भी काम किया जाता है वह अग्नि या शस्त्रादि से नष्ट होता है ॥ १५ ॥

भौमवासर में रोहिणी नाडी का फल

रोहिण्यां यत्र कुत्रचित्प्रायो दुर्भिक्षपीडा स्यात् ॥ १६ ॥

मंगलवार के दिन रोहिणी नाडी में जहाँ कहीं प्रायः दुर्भिक्ष का दुःख होता है ॥ १६ ॥

भौमवासर में मृगशिरा नाडी का फल

मृगशीर्षे वर्षार्थं कर्म कृते वर्षाहानिः ॥ १७ ॥

मंगलवार के दिन मृगशिरा नाडी में वर्षा हेतु काम करने पर अवृष्टि होती है ॥ १७ ॥

भौमवासर में आर्द्रा नाडी का फल

आर्द्रायां यात्राकर्मणि कृते सङ्गतिनाशः ॥ १८ ॥

मंगलवार के दिन आर्द्रा नाडी में यात्रा कार्य करने पर सङ्गति का नाश होता है ॥ १८ ॥

भौमवासर में पुनर्वसु नाडी का फल

पुनर्वसावुपद्रवे तन्निवृत्त्यर्थं कर्म कुर्यात् शुभं भवति ॥ १९ ॥

मंगलवार के दिन पुनर्वसु नाडी में उपद्रव निवारण सम्बन्धी काम करने पर शुभ होता है ॥ १६ ॥

भौमवासर में पुष्य नाडी का फल

पुष्ये यत्र कुत्रचित् स्थितौ कृतायां सुवार्ताश्रवणं भवति ॥ २० ॥

मंगलवार के दिन पुष्य नाडी में जहाँ कहीं रुकने पर सुन्दर बात सुनाई देता है ॥ २० ॥

भौमवासर में श्लेषा नाडी का फल

आश्लेषायां चिन्ताकर्मणि कृते चिन्तावृद्धिः स्यात् ॥ २१ ॥

मंगलवार के दिन श्लेषा नाडी में चिन्ता कार्य में चिन्ता की वृद्धि होती है ॥२१॥

भौमवासर में मघा नाडी का फल

मघायां युद्धकर्मणि कृते फलहानिः स्यात् ॥ २२ ॥

मंगलवार के दिन मघा नाडी में युद्ध का कार्य करने पर फल का नाश होता है ॥ २२ ॥

भौमवासर में पूर्वाफाल्गुनी नाडी का फल

पूर्वाफाल्गुन्यां प्रयत्नं विना अर्थसम्भवः ॥ २३ ॥

मंगलवार के दिन पूर्वाफाल्गुनी नाडी में उद्योग के बिना धन की प्राप्ति होती है ॥ २३ ॥

भौमवासर में उत्तराफाल्गुनी नाडी का फल

उत्तराफाल्गुन्यां विजयार्थं कर्म कृते अरिपलायनं स्यात् ॥ २४ ॥

मंगलवार के दिन उत्तराफाल्गुनी नाडी में विजय हेतु काम करने पर शत्रु को भागना पड़ता है ॥२४॥

भौमवासर में हस्त नाडी का फल

हस्ते यत्किञ्चित्कर्म कृते सङ्गतिनाशः ॥ २५ ॥

मंगलवार के दिन हस्त नाडी में जो कुछ किया जाता है, उससे साथ छूटता है ॥२५॥

भौमवासर में चित्रा नाडी का फल

चित्रायां सुखार्थं कर्मं कृते अलेपनादेकान्तो भवति ॥ २६ ॥

मंगलवार के दिन चित्रा नाडी में सुख हेतु काम करने पर अलेपन से एकान्त होता है ॥२६॥

भौमवासर में स्वाती नाडी का फल

स्वात्यां रतिकर्मणि कृते अप्रीतिर्भवति ॥ २७ ॥

मंगलवार के दिन स्वाती नाडी में मैथुन काम करने पर अप्रसन्नता होती है ॥२७॥

भौमवासर में ज्योत्स्ना नाडी का फल

ज्योत्स्नायां यत्किञ्चित्कर्म कृते सौख्यम् ॥ २८ ॥

मंगलवार के दिन ज्योत्स्ना नाडी में कुछ भी काम करने पर सुख होता है ॥२८॥

भौमवासर में मैत्र नाडी का फल

मैत्र्यां शुभार्थं कर्मणि कृते मनोदौस्थ्यं न स्यात् ॥ २९ ॥

मंगलवार के दिन मैत्र नाडी में शुभ निमित्त काम करने पर मन अप्रसन्न नहीं होता है ॥२९॥

भौमवासर में सन्ध्या नाडी का फल

सन्ध्यायां रतिकर्मणि कृते अप्रीतिर्भवति ॥ ३० ॥

मंगलवार के दिन सन्ध्या नाडी में मैथुन करने पर अरुचि होती है ॥३०॥

एवं रात्रावपि ज्ञेयम्—

इसी प्रकार रात्रि की ३० नाडियों का भी फल जानना चाहिये।

अथ बुधवासरे—

अब आगे बुधवार की घटियों के फल को बताते हैं।

बुधवासर में विशाखा नाडी का फल

विशाखायां यत्र कुत्रचित्स्थितौ कृतायां दुर्वार्ताश्रवणं भवति ॥ १ ॥

बुधवार के दिन विशाखा नाडी में जहाँ कहीं रुकने पर दूषित बात सुनाई देती है ॥ १ ॥

बुधवासर में अनुराधा नाडी का ज्ञान

अनुराधायां सद्व्यवहारकर्मणि कृते कार्यभ्रंशः ॥ २ ॥

बुधवार के दिन अनुराधा नाडी में अच्छा व्यवहारिक कार्य करने पर काम नष्ट होता है ॥ २ ॥

बुधवासर में ज्येष्ठा नाडी का फल

ज्येष्ठायां रतिकर्मणि कृते प्रीतिनाशः ॥ ३ ॥

बुधवार के दिन ज्येष्ठा नाडी में रति कार्य में प्रेम नष्ट होता है ॥ ३ ॥

बुधवासर में मूल नाडी का फल

मूले चित्रकर्मणि कृते चातुर्यं स्यात् ॥ ४ ॥

बुधवार के दिन मूल नाडी मे चित्र कार्य में चतुरता होती है ॥ ४ ॥

बुधवासर में पूर्वाषाढ नाडी का फल

पूर्वाषाढायामुद्योगे कृते निष्फलम् ॥ ५ ॥

बुधवार के दिन पूर्वाषाढ नाडी में उद्योग कार्य फल से शून्य होता है ॥ ५ ॥

बुधवासर में उत्तराषाढ नाडी का फल

उत्तराषाढायां कर्मणि कृते अयत्नाद्यङ्गपीडा स्यात् ॥ ६ ॥

बुधवार के दिन उत्तराषाढ नाडी में अयत्न से काम करने पर शरीर कष्ट होता है ॥ ६ ॥

बुधवासर में श्रवण नाडी का फल

श्रवणे कर्मणि कृते यथाकथञ्चित्कलहो भवति ॥ ७ ॥

बुधवार के दिन श्रवण नाडी में कार्य करने पर जिस किसी से कलह होता है ॥७॥

बुधवासर में धनिष्ठा नाडी का फल

धनिष्ठायां उपशान्तिककर्मणि कृते तद्वादोपशमनं स्यात् ॥ ८ ॥

बुधवार के दिन धनिष्ठा नाडी में उपशान्तिक कार्य करने पर उस विघ्न का शमन होता है ॥ ८ ॥

बुधवासर में शतभिषा नाडी का फल

शतभिषजि कर्म कृते अयत्नेन मानलाभः स्यात् ॥ ९ ॥

बुधवार के दिन शतभिषा नाडी में कार्य करने से विना प्रयत्न के सम्मान होता है ॥ ६ ॥

बुधवासर में पूर्वाभाद्रपदनाडी का फल

पूर्वाभाद्रपदायां युद्धे शत्रुभङ्गः स्यात् ॥ १० ॥

बुधवार के दिन पूर्वाभाद्रपद नाडी में युद्ध करने पर शत्रु का विनाश होता है ॥१०॥

बुधवासर मे उत्तराभाद्र पद नाडी का फल

उत्तराभाद्रपदायां धनार्थे कर्म कृते धनलाभः स्यात् ॥ ११ ॥

बुधवार के दिन उत्तराभाद्रपद नाडी में धन के लिये कार्य करने पर धनागम होता है ॥ ११ ॥

बुधवासर में रेवती नाडी का फल

रेवत्यां दानकर्मणि कृते तदधिकं भवति ॥ १२ ॥

बुधवार के दिन रेवती नाडी में दान करने पर धन की वृद्धि होती है ॥ १२ ॥

बुधवासर में अश्विनी नाडी का फल

अश्विन्यां यदिष्टं करोति तत्फलति ॥ १३ ॥

बुधवार के दिन अश्विनी नाडी में जो अभीष्ट कार्य किया जाता है, वह फलीभूत होता है ॥ १३ ॥

बुधवासर में भरणी नाडी का फल

भरण्यां सेनाकर्मणि कार्यसिद्धिः ॥ १४ ॥

बुधवार के दिन भरणी नाडी में सेना कार्य में सिद्धि होती है ॥ १४ ॥

बुधवासर में कृत्तिका नाडी का फल

कृत्तिकायां प्रासादकर्मणि कृते तत्सौख्यं भवति ॥ १५ ॥

बुधवार के दिन कृत्तिका नाडी में देवता या राजा के घर सम्बन्धी काम में सुख होता है ॥ १५ ॥

बुधवासर में रोहिणी नाडी का फल

रोहिण्यां परिणयने कृते कलत्रप्रीतिः स्यात् ॥ १६ ॥

बुधवार के दिन रोहिणी नाडी में विवाह कार्य में स्त्री प्रेम होता है ॥ १६ ॥

बुधवासर में मृगशिरा नाडी का फल

मृगशीर्षे कर्म कृते अयत्नात्प्रासादलाभः ॥ १७ ॥

बुधवार के दिन मृगशिरा नाडी में काम करने पर विना उद्योग के मन्दिर या राजकीय भवन की प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥

बुधवासर में आर्द्रा नाडी का फल

आर्द्रायां दुष्टनिग्रहकर्म कृते तत्सफलं भवति ॥ १८ ॥

बुधवार के दिन आर्द्रा नाडी में दुष्ट दमन कार्य सफल होता है ॥ १८ ॥

बुधवासर में पुनर्वसु नाडी का फल

पुनर्वसौ यत्किञ्चित्कर्म कृते तल्लाभो भवति ॥ १९ ॥

बुधवार के दिन पुनर्वसु नाडी में जो कुछ काम किया जाता है, वह सिद्ध होता है ॥ १९ ॥

बुधवासर में पुष्य नाडी का फल

पुष्ये यात्रायां दुर्लभवस्तुप्राप्तिर्भवति ॥ २० ॥

बुधवार के दिन पुष्य नाडी में यात्रा करने पर अप्राप्य वस्तु प्राप्त होती है ॥ २० ॥

बुधवासर में श्लेषा नाडी का फल

आश्लेषायां युद्धकर्मणि कृते अरिविजयो भवति ॥ २१ ॥

बुधवार के दिन श्लेषा नाडो में युद्ध काम करने पर शत्रु का नाश होता है ॥२१॥

बुधवासर में मघा नाडी का फल

मघायां सङ्गमे पुत्रलाभो भवति ॥ २२ ॥

बुधवार के दिन मघा नाडा में स्त्रीसङ्ग करने पर पुत्र प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥

बुधवासर में पूर्वाफाल्गुनी नाडी का फल

पूर्वाफाल्गुन्यां राजदर्शने अरिविजयो भवति ॥ २३ ॥

बुधवार के दिन पूर्वाफाल्गुनी नाडी में राजा का दर्शन करने पर शत्रु का पराजय होता है ॥ २३ ॥

बुधवासर में उत्तराफाल्गुनी नाडी का फल

उत्तराफाल्गुन्यां केनापि संभाषणे मैत्री स्यात् ॥ २४ ॥

बुधवार के दिन उत्तराफाल्गुनी नाडी में किसी के भी साथ बात करने पर मित्रता होती है ॥ २४ ॥

बुधवासर में हस्त नाडी का फल

हस्ते व्यवहारे बलवृद्धिः ॥ २५ ॥

बुधवार के दिन हस्त नाडी में व्यवहार करने पर बल बढ़ता है ॥ २५ ॥

बुधवासर में चित्रा नाडी का फल

चित्रायां यत्किञ्चित्कर्म कृते सुखं भवति ॥ २६ ॥

बुधवार के दिन चित्रा नाडी में जो भी कार्य किया जाता है उससे सुख होता है ॥ २६ ॥

बुधवासर में स्वाती नाडी का फल

स्वात्यां वाणिज्याल्लाभः ॥ २७ ॥

बुधवार के दिन स्वाती नाडी में व्यापार से लाभ होता है ॥ २७ ॥

बुधवासर में ज्योत्स्ना नाडी का फल

ज्योत्स्नायां सुहृदागमनादतिप्रीतिः ॥ २८ ॥

बुधवार के दिन ज्योत्स्ना नाडी में मित्र के आने से अधिक स्नेह की वृद्धि होती है ॥ २८ ॥

बुधवासर में मैत्र नाडी का फल

मैत्र्यां कर्मणि तत्फलंति ॥ २९ ॥

बुधवार के दिन मैत्र नाडी में कार्य फलीभूत होता है ॥ २६ ॥

बुधवासर में सन्ध्या नाडी का फल

सन्ध्यायां वाहनादिकर्मणि तन्नाशमुपयाति ।। ३० ।।

बुधवार के दिन सन्ध्या नाडी में सवारी आदि काम करने पर उसका नाश होता है ।। ३० ।।

एवं रात्रावपि ज्ञेयम् ।

इसी प्रकार रात्रि की ३० घटियों का फल समझना चाहिये ।।

अथ गुरुवासरे—

अब आगे गुरुवार की ६० घटियों के फल को बताते है ।।

जीववार में विशाखा नाडी का फल

विशाखायां धनोद्देशकर्म कृते तस्य वृद्धिः ।। १ ।।

गुरुवार के दिन विशाखा नाडी में धन के उद्देश से किया हुआ कार्य सिद्ध होता है ।। १ ।।

जीववार में अनुराधा नाडी का फल

अनुराधायां यत्ने कृते नष्टद्रव्यसिद्धिः स्यात् ।। २ ।।

गुरुवार के दिन अनुराधा नाडी में उद्योग करने पर खोये हुए धन की प्राप्ति होती है ।। २ ।।

जीववार में ज्येष्ठा नाडी का फल

ज्येष्ठायामव्यवहारकर्मणि कृते शरीरपीडा भवति ।। ३ ।।

गुरुवार के दिन ज्येष्ठा नाडी में अव्यवहार कार्य करने पर शरीर कष्ट होता है ।। ३ ।।

जीववार में मूल नाडी का फल

मूले कर्मणि कृते केनापि सुगन्धवस्त्वानीतं भवति ।। ४ ।।

गुरुवार के दिन मूल नाडी में काम करने पर किसी सुगन्धित वस्तु का आना होता है ।। ४ ।।

जीववार में पूर्वाषाढ नाडी का फल

पूर्वाषाढायां विद्याकर्म कृते वचनप्रवीणः स्यात् ।। ५ ।।

गुरुवार के दिन पूर्वाषाढ नाडी में विद्या सम्बन्धी काम में वाणी श्रेष्ठ होती है ।। ५ ।।

जीववार में उत्तराषाढ नाडी का फल

उत्तराषाढायां कर्मणि कृते मनोदुःखं भवति ।। ६ ।।

गुरुवार के दिन उत्तराषाढ नाडी में काम करने पर मन दुःखी होता है ।। ६ ।।

जीववार में श्रवण नाडी का फल

श्रवणे उद्योगे कृते विजयः ॥ ७ ॥

गुरुवार के दिन श्रवण नाडी में उद्योग करने पर विजय होता है ॥ ७ ॥

जीववार में धनिष्ठा नाडी का फल

धनिष्ठायां सङ्ग्रामादि कृते अरिभङ्गः ॥ ८ ॥

गुरुवार के दिन धनिष्ठा नाडी में युद्धादि करने पर शत्रु का नाश होता है ॥८॥

जीववार में शतभिषा नाडी का फल

शतभिषजि वश्यादिकर्मणि तत्प्रीतिः ॥ ९ ॥

गुरुवार के दिन शतभिषा नाडी में वशीकरणादि कार्य करने पर प्रीति होती है ॥९॥

जीववार में पूर्वाभाद्रपद नाडी का फल

पूर्वाभाद्रपदायां पशुलाभार्थे व्यवहारार्थे कर्म कृते तल्लाभः ॥ १० ॥

गुरुवार के दिन पूर्वाभाद्रपद नाडी में पशु प्राप्ति या व्यवहार हेतु काम करने पर उसका लाभ होता है ॥१०॥

जीववार में उत्तराभाद्रपद नाडी का फल

उत्तराभाद्रपदायां पण्यव्यवहारे कृते धान्यलाभः ॥ ११ ॥

गुरुवार के दिन उत्तराभाद्रपद नाडी में बाजार के व्यवहारिक कार्य में धान्य का लाभ होता है ॥११॥

जीववार में रेवती नाडी का फल

रेवत्यां यात्राकर्म कृते पुनर्गते राजा भवति ॥ १२ ॥

गुरुवार के दिन रेवती नाडी में यात्रा करके पुनः यात्रा करने पर राजा होता है ॥१२॥

जीववार में अश्विनी नाडी का फल

अश्विन्यामुत्सवादि कर्म कृते सन्तोषः ॥ १३ ॥

गुरुवार के दिन अश्विनी नाडी में उत्सवादि काम करने पर संतोष होता है ॥१३॥

जीववार में भरणी नाडी का फल

भरण्यां चित्रकर्मणि कृते व्याध्युपद्रवः ॥ १४ ॥

गुरुवार के दिन भरणी नाडी में चित्र कार्य करने पर रोग होता है ॥१४॥

जीववार में कृत्तिका नाडी का फल

कृत्तिकायां कर्म कृते सुभगत्वम् ॥ १५ ॥

गुरुवार के दिन कृत्तिका नाडी में कार्य करने से अच्छा भाग्य होता है ॥१५॥

जीववार में रोहिणी नाडी का फल

रोहिण्यां गमने कार्यनाशः ॥ १६ ॥

गुरुवार के दिन रोहिणी नाडी में यात्रा करने पर कार्य का विनाश होता है ॥१६॥

जीववार में मृगशिरा नाडी का फल

मृगशीर्षे युद्धे कृते यथाकथंचिच्छस्त्रहतः स्यात् ॥ १७ ॥

गुरुवार के दिन मृगशिरा नाडी में युद्ध करने पर जिस किसी प्रकार से शस्त्र से चोट लगती है ॥१७॥

जीववार में आर्द्रा नाडी का फल

आर्द्रायां यत्किञ्चित्कर्म कृते प्रयोजनसिद्धिः ॥ १८ ॥

गुरुवार के दिन आर्द्रा नाडी में जो भी काम किया जाता है वह सिद्ध होता है ॥१८॥

जीववार में पुनर्वसु नाडी का फल

पुनर्वसौ युद्धे कृते बलक्षयः ॥ १९ ॥

गुरुवार के दिन पुनर्वसु नाडी में युद्ध करने पर पौरुष की हानि होती है ॥१९॥

जीववार में पुष्य नाडी का फल

पुष्ये यात्राकर्मणि सरथेन विनाशः ॥ २० ॥

गुरुवार के दिन पुष्य नाडी में यात्रा करने पर रथ (सवारी) के साथ नाश होता है ॥२०॥

जीववार में श्लेषा नाडी का फल

आश्लेषायां यात्राकर्म कृते श्रियः सिद्धिः ॥ २१ ॥

गुरुवार के दिन श्लेषा नाडी में यात्रा करने पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ॥२१॥

जीववार में मघा नाडी का फल

मघायां शौर्यार्थे कर्म कृते बलं भवति ॥ २२ ॥

गुरुवार के दिन मघा नाडी में पराक्रम के उद्देश्य से काम करने पर बल बढता है ॥२२॥

जीववार में पूर्वाफाल्गुनी नाडी का फल

पूर्वाफाल्गुन्यां कर्मणि कृते कुत्रापि बन्धुजनमृतिः ॥ २३ ॥

गुरुवार के दिन पूर्वाफाल्गुनी नाडी में कहीं पर भी काम करने पर बान्धव का मरण होता है ॥२३॥

जीववार में उत्तराफाल्गुनी नाडी का फल

उत्तराफाल्गुन्यां कार्यरम्भे कृते धैर्याभिधेयः ॥ २४ ॥

गुरुवार के दिन उत्तराफाल्गुनी नाडी में काम करने पर धैर्यता मिलती है ॥२४॥

जीववार में हस्तनाडी का फल

हस्ते स्नेहकृते विद्वेषः ॥ २५ ॥

गुरुवार के दिन हस्त नाडी में प्रेम करने पर शत्रुता होती है ॥२५॥

जीववार में चित्रा नाडी का फल

चित्रायां कर्मणि कृते प्रीतिर्भवति ॥ २६ ॥

गुरुवार के दिन चित्रा नाडी में काम कर करने पर स्नेह होता है ॥२६॥

जीववार में स्वाती नाडी का फल

स्वात्यां विवादकर्म कृते जयः ॥ २७ ॥

गुरुवार के दिन स्वाती नाडी में विवाद कार्य करने पर विजय प्राप्त होता है ॥२७॥

जीववार में ज्योत्स्ना नाडी का फल

ज्योत्स्नायां यात्राकृते मृतिः ॥ २८ ॥

गुरुवार के दिन ज्योत्स्ना नाडी में यात्रा करने पर मरण होता है ॥२८॥

जीववार में मैत्र नाडी का फल

मैत्र्यां भयागमनकर्म कृते तस्य भङ्गो भवति ॥ २९ ॥

गुरुवार के दिन मैत्र नाडी में भयागमन कार्य करने पर भय का नाश होता है ॥२६॥

जीववार में सन्ध्या नाडी का फल

सन्ध्यायां यात्रार्थे कर्म कृते तस्य सिद्धिर्भवति ॥ ३० ॥

गुरुवार के दिन सन्ध्या नाडी में यात्रा करने पर कार्य की सिद्धि होती है ॥२०॥

एवं रात्रावपि ज्ञेयम् ॥

इसी प्रकार रात्रि में भी ३० घटियों का फल समझना चाहिये ।

अब आगे शुक्रवार में नाड़ियों के फल को बताते हैं ।

अथ मदीयवासरे—

भृगुवासर में विशाखा नाडी का फल

विशाखायां कर्मणि कृते वनिताजनादतिसौख्यं भवति ॥ १ ॥

शुक्रवार के दिन विशाखा नाडी में काम करने पर स्त्री समुदाय से अधिक सुख मिलता है ॥ १ ॥

भृगुवासर में अनुराधा नाडी का फल

अनुराधायां द्वेषार्थं कर्म कृते सिद्धिर्भवति ॥ २ ॥

शुक्रवार के दिन अनुराधा नाडी में विद्वेष कार्य करने पर उसकी सिद्धि होती है ॥ २ ॥

भृगुवासर में ज्येष्ठा नाडी का फल

ज्येष्ठायां कर्म कृते अयत्नेनार्थप्राप्तिर्भवति ॥ ३ ॥

शुक्रवार के दिन ज्येष्ठा नाडी में कार्य करने पर उद्योग के विना धनकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

भृगुवासर में मूल नाडी का फल

मूले कर्म कृते अकस्मात्सुहृदागमः ॥ ४ ॥

शुक्रवार के दिन मूल नाडी में काम करने से अचानक मित्र का आगमन होता है ॥ ४ ॥

भृगुवासर में पूर्वाषाढ नाडी का फल

पूर्वाषाढायां वारुणसूक्तकर्म कृते उग्रवृष्टिर्भवति ॥ ५ ॥

शुक्रवार के दिन पूर्वाषाढ नाडी में वरुण सूक्त का अनुष्ठान करने पर वर्षा होती है ॥ ५ ॥

भृगुवासर में उत्तराषाढ नाडी का फल

उत्तराषाढायां सस्यार्थं कर्म कृते तस्य वृद्धिः ॥ ६ ॥

शुक्रवार के दिन उत्तराषाढ नाडी में सस्य (फल) हेतु काम करने पर उसकी वृद्धि होती है ॥ ६ ॥

भृगुवासर में श्रवण नाडी का फल

श्रवणे कर्म कृते जातरोगस्य मृतिः ॥ ७ ॥

शुक्रवार के दिन श्रवण नाडी में उत्पन्न रोग का काम करने पर मरण होता है ॥ ७ ॥

भृगुवासर में धनिष्ठा नाडी का फल

धनिष्ठायां सेनार्थं कर्मकृते सेनापतिः स्यात् ॥ ८ ॥

शुक्रवार के दिन धनिष्ठा नाडी में सेना निमित्त काम करने पर सेना का स्वामी होता है ॥ ८ ॥

भृगुवासर में शतभिषा नाडी का फल

शतभिषजि उद्योगे कृते तस्य नाशः स्यात् ॥ ९ ॥

शुक्रवार के दिन शतभिषा नाडी में उद्योग करने पर नष्ट होता है ॥ ९ ॥

भृगुवासर में पूर्वाभाद्रपद नाडी का फल

पूर्वाभाद्रपदायां वार्तामुखेन कार्यलाभो भवति ॥ १० ॥

शुक्रवार के दिन पूर्वाभाद्रपद नाडी में वार्ता के आधार पर कार्य में लाभ होता है ॥ १० ॥

भृगुवासर में उत्तराभाद्र नाडी का फल

उत्तराभाद्रपदायां कलहे कृते तदुपशमो भवति ॥ ११ ॥

शुक्रवार के दिन उत्तराभाद्रपद नाडी में कलह करने पर क्लेश का नाश होता है ॥ ११ ॥

भृगुवासर में रेवती नाडी का फल

रेवत्यामरीतिकर्म कृते तत्सिद्धिः ॥ १२ ॥

शुक्रवार के दिन रेवती नाडी में अव्यवहारिक काम करने पर उसकी सिद्धि होती है ॥ १२ ॥

भृगुवासर में अश्विनी नाडी का फल

अश्विन्यां विद्यारम्भे तल्लाभः ॥ १३ ॥

शुक्रवार के दिन अश्विनी नाडी में विद्यारम्भ करने पर विद्या की प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥

भृगुवासर में भरणी नाडी का फल

भरण्यां चिकित्साकर्मणि तत्साफल्यम् ॥ १४ ॥

शुक्रवार के दिन भरणी नाडी में चिकित्सा करने पर सफलता प्राप्त होती है ॥ १४ ॥

भृगुवासर में कृत्तिका नाडी का फल

कृत्तिकायां कर्मण्यजातरोगस्य मृतिः ॥ १५ ॥

शुक्रवार के दिन कृत्तिका नाडी में कार्य करने पर विना रोग के मरण होता है ॥ १५ ॥

भृगुवासर में रोहिणी नाडी का फल

रोहिण्यां जयार्थं कर्म कृते शत्रुभ्यो रत्नानि लाभः ॥ १६ ॥

शुक्रवार के दिन रोहिणी नाडी में जय निमित्त काम करने पर शत्रुओं से रत्नों का लाभ होता है ॥ १६ ॥

भृगुवासर में मृगशिरा नाडी का फल

मृगशीर्षे कर्म कृते फलनाशः ॥ १७ ॥

शुक्रवार के दिन मृगशिरा नाडी में काम करने पर फल का नाश होता है ॥१७॥

भृगुवासर में आर्द्रा नाडी का फल

आर्द्रायां धनुर्विद्याकर्मं कृते सिद्धिः ।। १८ ।।

शुक्रवार के दिन आर्द्रा नाडी में धनुष विद्या सम्बन्धी काम करने पर उसकी सिद्धि होती है ।। १८ ।।

भृगुवासर में पुनर्वसु नाडी का फल

पुनर्वसौ भोजनादि कर्मं कृते सौख्यहानिः ।। १९ ।।

शुक्रवार के दिन पुनर्वसु नाडी में भोजनादि काम करने पर सुख की हानि होती है ।। १९ ।।

भृगुवासर में पुष्य नाडी का फल

पुष्ये कर्मं कृते बन्ध्वाहतिर्भवति ।। २० ।।

शुक्रवार के दिन पुष्य नाडी में कार्य करने पर बान्धवों को चोट लगती है ।।२०।।

भृगुवासर में श्लेषा नाडी का फल

आश्लेषायां वाहनार्थं कर्म कृते तस्य लाभः ।। २१ ।।

शुक्रवार के दिन श्लेषा नाडी में सवारी निमित्त कार्य में सवारी मिलती है ।।२१।।

भृगुवासर में मघा नाडी का फल

मघायां सम्भाषणे प्रमोदो भवति ।। २२ ।।

शुक्रवार के दिन मघा नाडी में बातचीत करने पर प्रसन्नता होती है ।। २२ ।।

भृगुवासर में पूर्वाफाल्गुनी नाडी का फल

पूर्वाफाल्गुन्यां यत्किञ्चित्कर्म कृते उद्योगपरम्परा स्यात् ।। २३ ।।

शुक्रवार के दिन पूर्वाफाल्गुनी नाडी में जो भी कार्य किया जाता उस उद्योग की परम्परा होती है ।। २३ ।।

भृगुवासर में उत्तराफाल्गुनी नाडी का फल

उत्तराफाल्गुन्यां यात्रासङ्गमने कृते तस्यावमोदः ।। २४ ।।

शुक्रवार के दिन उत्तराफाल्गुनी नाडी में साथ में यात्रा करने पर चित्त प्रसन्न होता है ।।२४।।

भृगुवासर में हस्त नाडी का फल

हस्ते कर्मणि कृतेऽर्थनाशः ।। २५ ।।

शुक्रवार के दिन हस्त नाडी में कार्य करने पर धन का नाश होता है ।।२५।।

भृगुवासर में चित्रा नाडी का फल

चित्रायां कर्मणि कृते दुःखं भवति ।। २६ ।।

शुक्रवार के दिन चित्रा नाडी में काम करने पर दुःख होता है ।।२६।।

भृगुवासर में स्वाती नाडी का फल

स्वात्यां वैषम्योपशीलता ॥ २७ ॥

शुक्रवार के दिन स्वाती नाडी में विपरीत शालीनता होती है ॥२७॥

भृगुवासर में ज्योत्स्ना नाडी का फल

ज्योत्स्नायां सुखार्थे कृते सुखं स्यात् ॥ २८ ॥

शुक्रवार के दिन ज्योत्स्ना नाडी में सुख के लिये काम करने पर सुख मिलता है ॥२८॥

भृगुवासर में मैत्र नाडी का फल

मैत्र्यां शुभार्थे कर्म कुर्यात् ॥ २९ ॥

शुक्रवार के दिन मैत्र नाडी में शुभ निमित्तक कार्य करना चाहिये ॥२९॥

भृगुवासर में सन्ध्या नाडी का फल

सन्ध्यायां कर्मणि कृते प्रारब्धहानिः ॥ ३० ॥

शुक्रवार के दिन सन्ध्या नाडी में काम करने पर भाग्य की हानि होती है ॥३०॥

एवं रात्रावपि ज्ञेयम् ॥

इसी प्रकार रात्रि में भी ३० घटियों का फल जानना चाहिये ।

अथ शनिवासरे—

अब आगे शनिवारस्थ घटियों के फल को बताते हैं ।

शनिवारस्थ विशाखा नाडी का फल

विशाखायां कलहादि कर्म कुर्यात् ॥ १ ॥

शनिवार के दिन विशाखा नाडी में कलह आदि कार्य करना चाहिये ॥१॥

शनिवारस्थ अनुराधा नाडी का फल

अनुराधायां राजदर्शनार्थे कर्म कृते सौख्यप्राप्तिः ॥ २ ॥

शनिवार के दिन अनुराधा नाडी में राजदर्शन निमित्त कार्य करने पर सुख मिलता है ॥२॥

शनिवारस्थ ज्येष्ठा नाडी का फल

ज्येष्ठायां कर्म कृते रिपुवृद्धिः ॥ ३ ॥

शनिवार के दिन ज्येष्ठा नाडी में काम करने पर शत्रु की वृद्धि होती है ॥३॥

शनिवारस्थ मूल नाडी का फल

मूले मित्रसम्भाषणार्थे कर्म कुर्यात् ॥ ४ ॥

शनिवार के दिन मूल नाडी में मित्र से बोलने का काम करना चाहिये ॥४॥

शनिवारस्थ पूर्वाषाढ नाडी का फल

पूर्वाषाढायां विग्रहकर्मणि विजयः स्यात् ॥ ५ ॥

शनिवार के दिन पूर्वाषाढ नाडी में लड़ाई के काम में विजय होता है ॥५॥

शनिवारस्थ उत्तराषाढ नाडी का फल

उत्तराषाढायां तुरङ्गमादिलाभार्थे कर्म कुर्यात् ॥ ६ ॥

शनिवार के दिन उत्तराषाढ़ नाडी में घोड़ा आदि प्राप्ति के लिये कार्य करना चाहिये ॥६॥

शनिवारस्थ श्रवण नाडी का फल

श्रवणे गमनकर्मणि प्रमोदनाशः ॥ ७ ॥

शनिवार के दिन श्रवण नाडी में यात्रा करने पर अप्रसन्नता होती है ॥७॥

शनिवारस्थ धनिष्ठा नाडी का फल

धनिष्ठायां प्रशंसाकर्मणि तत्सिद्धिः ॥ ८ ॥

शनिवार के दिन धनिष्ठा नाडी में प्रशंसा काम में उसकी सिद्धि होती है ॥८॥

शनिवारस्थ शतभिषा नाडी का फल

शतभिषजि यत्किञ्चित् कर्म कृते अप्रियोपक्रमः ॥ ६ ॥

शनिवार के दिन शतभिषा नाडी में जो भी काम किया जाता है उससे अप्रसन्नता का उपक्रम होता है ॥६॥

शनिवारस्थ पूर्वाभाद्रपद नाडी का फल

पूर्वाभाद्रपदायां अनर्थोपशमनं कर्म कुर्यात् ॥ १० ॥

शनिवार के दिन पूर्वाभाद्रपद नाडी में अनर्थ शान्ति के लिये काम करना चाहिये ॥१०॥

शनिवारस्थ उत्तराभाद्रपद नाडी का फल

उत्तराभाद्रपदायां स्त्रीसम्भोगकर्म कुर्यात् ॥ ११ ॥

शनिवार के दिन उत्तराभाद्रपद नाडी में स्त्रीसंभोग काम करना चाहिये ॥११॥

शनिवारस्थ रेवती नाडी का फल

रेवत्यां यत्किञ्चित्कर्म कृते पुत्रहानिः ॥ १२ ॥

शनिवार के दिन रेवती नाडी में जो भी काम किया जाता है, उससे पुत्र को हानि होती है ॥१२॥

शनिवारस्थ अश्विनी नाडी का फल

अश्विन्यां बन्धुविद्वेषणे तद्विफलम् ॥ १३ ॥

शनिवार के दिन अश्विनी नाडी में बन्धु विरोधी काम में सफलता नहीं मिलती है ।।१३।।

शनिवारस्थ भरणी नाडी का फल

भरण्यां क्रियासंस्तम्भनं कर्म कुर्यात् ।। १४ ।।

शनिवार के दिन भरणी नाडी में क्रिया संस्तंभन काम करना चाहिये ।।१४।।

शनिवारस्थ कृत्तिका नाडी का फल

कृत्तिकायां प्रवृत्तिकर्म कुर्यात् ।। १५ ।।

शनिवार के दिन कृत्तिका नाडी में प्रवृत्ति कार्य करना चाहिये ।।१५।।

शनिवारस्थ रोहिणी नाडी का फल

रोहिण्यां धातुद्रव्यागमनार्थे कर्म कुर्यात् ।। १६ ।।

शनिवार के दिन रोहिणी नाडी में धातु व धनागमन कार्य करना चाहिये ।।१६।।

शनिवारस्थ मृगशिरा नाडी का फल

मृगशीर्षे यात्राकर्मणि कृते शुभम् ।। १७ ।।

शनिवार के दिन मृगशिरा नाडी में यात्रा कार्य में शुभता होती है ।।१७।।

शनिवारस्थ आर्द्रा नाडी का फल

आर्द्रायां संस्थितिकर्मणि हानिः ।। १८ ।।

शनिवार के दिन आर्द्रा नाडी में स्थिति कार्य में हानि होती है ।। १८ ।।

शनिवारस्थ पुनर्वसु नाडी का फल

पुनर्वसौ कर्म कृते श्रमबाहुल्यम् ।। १९ ।।

शनिवार के दिन पुनर्वसु नाडी में कार्य करने पर मेहनत अधिक होती है ।।१९।।

शनिवारस्थ पुष्य नाडी का फल

पुष्ये नानाविधधान्यलाभार्थं कर्म कुर्यात् ।। २० ।।

शनिवार के दिन पुष्य नाडी में अनेक धान्य लाभ के लिये कार्य करना चाहिए ।। २० ।।

शनिवारस्थ श्लेषा नाडी का फल

आश्लेषायां धनवृद्धिकर्म कृते तत्सिद्धिः ।। २१ ।।

शनिवार के दिन श्लेषा नाडी में धन वृद्धि काम करने पर धन की वृद्धि होती है ।। २१ ।।

शनिवारस्थ मघा नाडी का फल

मघायां वनितागमनार्थं कर्म कुर्यात् ।। २२ ।।

शनिवार के दिन मघा नाडी में स्त्री गमन हेतु काम करना चाहिए ॥ २२ ॥

शनिवारस्थ पूर्वाफाल्गुनी नाडी का फल

पूर्वाफाल्गुन्यां निःस्वता ॥ २३ ॥

शनिवार के दिन पूर्वाफाल्गुनी नाडी में दरिद्रता होती है ॥ २३ ॥

शनिवारस्थ उत्तराफाल्गुनी नाडी का फल

उत्तराफाल्गुन्यां वीरकर्मसिद्धिः ॥ २४ ॥

शनिवार के दिन उत्तराफाल्गुनी नाडी में पराक्रम कार्य की सिद्धि होती है ॥२४॥

शनिवारस्थ हस्त नाडी का फल

हस्ते वपुःसौख्यम् ॥ २५ ॥

शनिवार के दिन हस्त नाडी में शरीर सुख होता है ॥ २५ ॥

शनिवारस्थ चित्रा नाडी का फल

चित्रायां कर्म कृते चिन्ताश्रयता ॥ २६ ॥

शनिवार के दिन चित्रा नाडी में कार्य करने पर चिन्ता का आश्रय होता है ॥ २६ ॥

शनिवारस्थ स्वाती नाडी का फल

स्वात्यां रिपुसन्धानसिद्धिः ॥ २७ ॥

शनिवार के दिन स्वाती नाडी में शत्रु सन्धान की सिद्धि होती है ॥ २७ ॥

शनिवारस्थ ज्योत्स्ना नाडी का फल

ज्योत्स्नायां कर्म कृते मृत्युः ॥ २८ ॥

शनिवार के दिन ज्योत्स्ना नाडी में कार्य करने पर मृत्यु होती है ॥ २८ ॥

शनिवारस्थ मैत्री नाडी का फल

मैत्र्यां कर्म कृते क्रोधोपशमः ॥ २९ ॥

शनिवार के दिन मैत्री नाडी में काम करने पर क्रोध की शान्ति होती है ॥ २६ ॥

शनिवारस्थ सन्ध्या नाडी का फल

सन्ध्यायां तडागादिकार्ये सिद्धिः ॥ ३० ॥

शनिवार के दिन सन्ध्या नाडी में तालाब आदि कार्य में सिद्धि होती है ॥ ३० ॥

एवं रात्रावपि ज्ञेयम्—

इसी प्रकार रात्रि में भी ३० घटियों के फल को जानना चाहिये।

इति भार्गवमुहूर्ताः।

इस प्रकार भार्गव मुहूर्त व उनके फल पूर्ण हुए।

अथ बृहस्पतिमूहूर्ताः—

अब आगे बृहस्पति जी के मूहूर्तों को व फल को बताते हैं।

बृहस्पतिः—
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लघुहोरा यथाविधि।
अहोरात्रेषु नाडीषु प्रत्येके नामसंज्ञिके ॥ १ ॥

मैं बृहस्पति नामक दिन रात्र की प्रत्येक घटियों के नाम संज्ञारूपी फल को यथा-क्रम लघु होरा को बताता हूँ ॥ १ ॥

तत्र कर्मविधिः प्रोक्तस्तत्काललक्षणं यथा।
निशि भागक्रिया संज्ञा षष्टिनाडी यथाक्रम् ॥ २ ॥

उन लघु होराओं में जो जो कार्य करना चाहिये उनके लक्षण को तथा रात के व दिन के निभाग से ६० घटियों के फलादि को बता रहा हूँ ॥ २ ॥

गुरूक्त १ घटी की संज्ञा व कार्य

उदयात्प्रथमा नाडी सृष्टिनाडीति संज्ञिता।
सृष्टिकार्यं तदा कुर्यात् प्राच्यां कर्षणदर्शनम् ॥ ३ ॥
कलहश्चौरनाशो वा पापदृष्टिः शुभैः शुभम् ॥ ४ ॥

उदय से प्रथम नाडी सृष्टि नाडी नाम को होती है। इसमें सृष्टि कार्य और पूर्व दिशा में कर्षण हो तो दर्शन करना चाहिये और पापों से दृष्ट होने पर, कलह व चोर का नाश वा शुभ दृष्ट होने पर शुभ होता है ॥ ३-४ ॥

गुरूक्त २ घटी की संज्ञा व कार्य

द्वितीया सिद्धिनाम्नी स्यात्सिद्धिकार्याणि कारयेत्।
दक्षिणां दिशमाश्रित्य शूद्रः स्त्रो पुरुषस्तथा ॥ ५ ॥
लग्नद्रेष्काणरूपो वा विग्रहो वा विनाशनः।
कुम्भद्वीपादियानो वा पापग्रहनिरीक्षणे ॥ ६ ॥

उदय से दूसरी नाडी सिद्धि नाम की होती है। इसमें दक्षिण दिशा में स्थित होकर शूद्र, स्त्री, पुरुष हो तो सिद्धि निमित्तक काम करना चाहिए वा इस काल में लग्न में जैसा द्रेकाण पाप से दृष्ट होता है वैसा ही विग्रह या नाश या कुम्भ द्वीपादि गमन शुभ होता है ॥५-६॥

गुरूक्त ३ घटी का फल

तृतोया नाम नाशाख्या नाशकार्याणि कारयेत्।
महर्षिर्दृश्यतेऽकाशे काशकार्याणि कारयेत् ॥ ७ ॥

वल्लभैर्वा तदा पीडा चिन्ता तापोऽथ वा भवेत्।
पापग्रहदशायुक्ते शुभदृष्टेऽथ शोभनम् ॥ ८ ॥

उदय से ३ री घटी नाश संज्ञक होती है, इसमें नाश व तृण सम्बन्धी कार्य करना चाहिये। यदि यह घटी पापग्रहों से युक्त होती है तो प्रेमी जनों से कष्ट चिन्ता या संताप होता है और शुभदृष्ट होने से अच्छा फल होता है ॥ ७–८ ॥

गुरूक्त ४ घटी का फल

चतुर्थी मित्रनाम्नी स्यान्मित्रकार्याणि कारयेत्।
वारुणे मृगभावश्च यानशब्दोऽथ वा पशोः ॥ ९ ॥
मित्रसम्पच्छुभैर्दृष्टे पापादृष्टे तु तन्मृतिः।

उदय से ४ थी घटी मित्र नाम वाली होती है, इसमें मित्रता सम्बन्धी काम करना चाहिये, पश्चिम में हिरन या पशु के गमन का शब्द हो तो और शुभ ग्रह से दृष्ट रहने पर मित्र सम्पत्ति तथा पाप दृष्ट होने पर मरण होता है ॥ ९–९½ ॥

गुरूक्त ५ घटी का फल

पञ्चमी जीवनाम्नी स्यात्स्थापनादीनि कारयेत् ॥ १० ॥
आग्नेय्यां दृश्यते काष्ठं विभ्रमन्त्यः सकोपनाः।
फलमूलागतिर्वापि कलहो वा सरोगिणाम् ॥ ११ ॥
व्यवहारगतो वापि लग्नं द्रेष्काणदर्शनात्।

उदय से पाँचवीं घटी जीव नाम की होती है। इसमें स्थापना आदि कार्य करना चाहिये। यदि कार्य के समय अग्नि कोण में काठ का दर्शन हो तो क्रोध के साथ विभ्रम वा फल मूलों का आगमन या रोगियों का कलह होता है। या लग्न द्रेष्काण से व्यवहार समझना चाहिये ॥ ९½–११½ ॥

गुरूक्त ६, ७ घटी का फल

षष्ठश्च निग्रहो नाम व्यवहारादिकर्मसु ॥ १२ ॥
वायव्यां दिशमाश्रित्य घटिकापि न दृश्यते।
सप्तमो घटिकानाम्नी कीटा स्यात्कारयेत्कृषिम् ॥ १३ ॥
कृषिमूलादि दृश्येत कर्षकादीनि वा पुनः।
उत्तरां दिशमाश्रित्य धान्यभुक्तिस्तु दृश्यते ॥ १४ ॥

उदय से छटी निग्रह नाम की होती है, इसमें वायव्य कोण का आश्रय लेकर व्यवहारिक काम नहीं करना चाहिये।

उदय से ७ वीं घटी कीट नाम की होती है। इसमें खेती करना चाहिये। इसमें कृषि मूल आदि, कर्षक और उत्तर दिशा में धान्यों की भुक्ति होती है ॥ १२½–१४ ॥

गुरूक्त ८ घटी का फल

अष्टम्यां घटिकायां च यक्षा नाम्नीति कीर्तिता।
उच्चाटनक्रियां कुर्याच्छत्रुनाशाय भूमिपः ।। १५ ।।
कलहो बन्धुभिः सार्धं चौरवैरिजतो भयम्।
नैऋत्यां दिशमाश्रित्य दृश्यते स्त्री सपुत्रिका ।। १६ ।।

उदय से ८ वीं घटी यक्ष नामवाली होती है। इसमें राजा को शत्रुनाश के लिये उच्चाटन कार्य करना चाहिये। यदि नैऋत्य दिशा में पुत्री के साथ स्त्री दीखे तो बान्धवों से कलह और चोर शत्रु से भय होता है ।। १५–१६ ।।

गुरूक्त ९ घटी का फल

नवम । रिक्तिका नाम्नी नव कार्याणि कारयेत्।
घातोत्पातानि शाठ्यानि विषशस्त्रादिकानि च ।। १७ ।।
भेदाभेदविमोहानि सिद्ध्यन्त्याशुभदृष्टितः।

उदय से नवीं घटी रिक्तिका नाम की होती है। इसमें नव कार्य करना चाहिये। तथा घात, उत्पात, शठता, जहर, शस्त्रादि, भेद, अभेद, विमोहन कार्य शुभ दृष्टि होने पर सिद्ध होते हैं ।। १७–१७ $\frac{1}{2}$ ।।

गुरूक्त १० घटी का फल

दशमी व्याधिनाशा स्याच्छत्रुनाशाय कीर्तिता ।। १८ ।।
ऐशान्यां मौलिशब्दो वा निमित्तान्तरमेव च।

उदय से १० वीं घटी व्याधिनाश वाली होती है। इसमें शत्रु का विनाश होता है। तथा ईशान दिशा में मुकुट या प्रयोजनान्तर का शब्द सुनाई देता है ।। १७$\frac{1}{2}$–१८$\frac{1}{2}$ ।।

गुरूक्त ११ घटी का फल

एकादशी वसुनामा पश्वादिग्रहणं शुभम् ।। १९ ।।
वायव्यां दिशमाश्रित्य भारभृद्दृश्यते नरः।

उदय से ११ वीं घटी वसु नाम वाली होती है। इसमें पशु आदि का ग्रहण शुभ होता है तथा वायुकोण में वजन को वहन करने वाला मनुष्य दीखता है ।। १८$\frac{1}{2}$–१९$\frac{1}{2}$ ।।

गुरूक्त १२ घटी का फल

द्वादशी विप्रनाम्नी स्याद्विद्यारम्भादि कारयेत् ।। २० ।।
वारुण्यां दिशमाश्रित्य मौलिर्वा पिङ्गलारवः।

उदय से १२ वीं घटी विप्र नाम वाली होती है। इसमें विद्यारम्भादि कार्य करवाना चाहिये। तथा पश्चिम दिशा में मुकुट या दक्षिण दिशा की हथिनी का शब्द सुनाई देता है ॥ १९½-२०½ ॥

गुरूक्त १३ घटी का फल

त्रयोदशी शूद्रनाम्नी शूद्रकार्याणि कारयेत् ॥ २१ ॥
दक्षिणां दिशमाश्रित्य फलभृद्दृश्यते नरः।

उदय से १३ वीं घटी शूद्र नामवाली है। इसमें शूद्र सम्बन्धी काम करना चाहिये। तथा दक्षिण दिशा में फल लिये मनुष्य दृष्टिगोचर होता है ॥ २०½-२१½ ॥

गुरूक्त १४ घटी का फल

उपसंवेशनादीनां रागानाम्नी चतुर्दशी ॥ २२ ॥
सौम्यां च दिशमाश्रित्य हली वा दृश्यते नरः।

उदय से १४ वीं घटी राग नाम वाली होती है। इसमें उपसंवेशनादि काम करना चाहिये तथा उत्तर दिशा में हल चलाता हुआ मनुष्य दीखता है ॥२१½-२२½॥

गुरूक्त १५ घटी का फल

पञ्चदश्यभिजिन्नाम्नी सर्वाण्यस्यां तु कारयेत् ॥ २३ ॥
आग्नेय्यां दिशमाश्रित्य दृश्यते पुरुषो रवः।

उदय से १५ वीं घटी अभिजित नाम की होती है। इसमें समस्त काम करना चाहिये। तथा अग्नि कोण में मनुष्य का शब्द सुनाई पड़ता है ॥ २२½-२३½ ॥

गुरूक्त १६ घटी का फल

षोडशी घटिकानाम्नी क्रीडाकार्याणि कारयेत् ॥ २४ ॥
सौम्यां दिशं समाश्रित्य भेरीशब्दः प्रदृश्यते।

उदय से १६ वीं घटी घटिका नामवाली होती है। इसमें खेल के कार्य करना चाहिये तथा उत्तर दिशा में भेरी का शब्द सुनाई देता है ॥ २३½-२४½ ॥

गुरूक्त १७ घटी का फल

सप्तदश्यङ्गनानाम्नी कारयेदङ्गनाकृतम् ॥२५॥
वारुणीं दिशमाश्रित्य मैथुनं तत्र दृश्यते।

उदय से १७ वीं घटी अङ्गना नाम वाली होती है। इसमें स्त्री सम्बन्धी कार्य करवाना चाहिये तथा पश्चिम दिशा में मैथुन दिखाई देता है ॥२४½-२५½॥

गुरूक्त १८ घटी का फल

अष्टादशी तु हीना स्यात् हीनकार्याणि कारयेत् ॥२६॥
वायव्यां दिशमाश्रित्य ताम्बूली दृश्यते नरः।

उदय से १८ घटी हीना नाम की होती है। इसमें हीन कार्य करना चाहिये तथा वायु कोण में पान से युक्त मनुष्य होता है ॥२५½ २६½॥

गुरूक्त १९ घटी का फल

एकोनविंशा दर्शा स्याद्वाहनादीनि कारयेत् ॥२७॥
क्षिप्रकार्याणि कुर्वीत सौम्यायां भारधृक्पुमान्।

उदय से १९ वीं घटी दर्श नाम को होती है। इसमें वाहनादि कार्य करवाना चाहिये तथा उत्तर दिशा में वजन को धारण किये पुरुष को क्षिप्र काम करना चाहिये ॥२६½-२७½॥

गुरूक्त २० घटी का फल

विंशतिर्धान्यिनाम्ना स्माद्धान्यसङ्ग्रहमाचरेत् ॥२८॥
पूर्वां दिशं समाश्रित्य कुक्कुटश्चाथ शब्दयेत्।

उदय से २० वीं घटी धान्य नाम की होती है इसमें धान्यों का संग्रह करना चाहिये। तथा पूर्व दिशा में कुत्ते का शब्द शुभ होता है ॥२७½-२८½॥

गुरूक्त २१ घटी का फल

जीवनी चैकविंशा स्यात्तत्क्षेत्रं साधयेन्नरः ॥२९॥
तत्र भूमिप्रतिष्ठा स्यात्तद्रक्षा पूर्णगोचरे।
ऐशान्यां दिशमाश्रित्य काकः स्यात्स्वरदस्तथा ॥३०॥

उदय से २१ वीं घटी जीवनी संज्ञावाली होती है। इसमें जीवन क्षेत्र की साधना करना चाहिये तथा भूमि, प्रतिष्ठा व उनकी रक्षा होती है और ईशान दिशा में कौवे का शब्द सुनाई देता है ॥२८½-३०॥

गुरूक्त २२ घटी का फल

द्वाविंशद्रौद्रनाम्नी स्याद्विशेषोच्चाटनक्रिया।
आग्नेयां दिशमाश्रित्य अन्नधृक् दृश्यते नरः ॥३१॥

उदय से २२ वीं घटी रौद्र नाम का होती है। इसमें विशेष करके उच्चाटन क्रिया करना चाहिये तथा अग्निकोण में अन्नधारण किये मनुष्य दिखाई देता है ॥३१॥

गुरूक्त २३ घटी का फल

योगानाम्नी त्रयोविंशद्योगकार्याणि कारयेत्।
नैर्ऋत्यां दिशमाश्रित्य पितृकार्ये तु कारयेत् ॥३२॥

उदय से २३ वीं घटी योगा नाम की होती है। इसमें योग सम्बन्धी काम और नैॠत्य कोण में स्थित होकर पितृ कार्य कराना चाहिये ॥३२॥

गुरूक्त २४ घटी का फल

चतुर्विंशतिनाड्यां तु गजाश्वादिप्रकर्मणि ।
आरोहणानि कुर्वीत वायव्यां गमनं शुभम् ॥३३॥

उदय से २४ वीं घटी में हाथी घोड़ा आदि के और आरोहण (चढ़ने) के काम करना चाहिये तथा वायव्य कोण में यात्रा करने पर शुभ होता है ॥३३॥

गुरूक्त २५ घटी का फल

पञ्चविंशदुषा नाम्नी प्रातर्यानाशुभं भवेत् ।
नैॠत्यां दिशमाश्रित्य चक्रधारणको नरः ॥

उदय से २५ वीं घटी उषा नामवाली होती है। इसमें प्रातःकालीन गमन अशुभ होता है तथा नैॠत्य दिशा में चक्र को धारण किये मनुष्य दीखता है ॥३४॥

गुरूक्त २६ घटी का फल

षड्विंशत्पुष्पनाम्नी स्यात्पुष्पगन्धानुसेवनम् ।
सौम्यां दिशं समाश्रित्य गन्धार्थे श्रूयते भृशम् ॥३४॥

उदय से २६ वीं घटी पुष्प नाम वाली होती है। इसमें पुष्प गन्ध का सेवन करना चाहिये तथा उत्तर दिशा में गन्ध निमित्त अधिक शब्द सुनाई देता है ॥३४॥

गुरूक्त २७ घटी का फल

सप्तविंशत्क्षपानाम्नी ऐशान्यां भाण्डधारणम् ।
तत्काले नाशकार्याणि कारयेत्तद्विचक्षणः ॥३५॥

उदय से २७ वीं घटी क्षपा नाम की होती है। इसमें ईशान में भाण्ड धारण तथा विनाश कार्य करना चाहिये ॥३५॥

गुरूक्त २८ घटी का फल

अष्टाविंशन्मन्त्रनाम्नी मन्त्रादेः साधनक्रियाम् ।
नैॠतिं दिशमाश्रित्य श्रूयते वृषभस्वरः ॥३६॥

उदय से २८ वीं घटी मन्त्र नाम वाली होती है। इसमें मन्त्रादि साधन क्रिया करना चाहिये तथा नैॠत्य कोण में बैल का शब्द सुनाई देता है ॥३६॥

गुरूक्त २९ घटी का फल

एकोनत्रिंशद्या नाडी सा स्याद्वर्षिणोभिधा ।
देवकार्याणि सिद्धयन्ति ऐशान्यां गमने शुभाः ॥३७॥

उदय से २६ वीं घटी देवर्षिणी नाम वाली होती है। इसमें देव काम सिद्ध होते हैं तथा ईशान कोण् में यात्रा करने पर शुभ होता है ॥३७॥

गुरूक्त ३० घटी का फल

त्रिंशद्या चारुनाम्नी स्याच्चारुकर्मणि साधनम् ;
वारुणीं दिशमाश्रित्य जलकर्मं प्रसिद्धयति ॥३८॥

उदय से ३० वीं घटी चारु नाम की होती है। इसमें सुन्दर काम की सिद्धि व पश्चिम दिशा में जल सम्बन्धी काम करना चाहिये ॥३८॥

गुरूक्त ३१ घटी का फल

एकत्रिंशद्भगानाम्नी तोयकार्याणि कारयेत् ।
ऐन्द्रे तु पक्षिशब्दस्तु दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥३९॥

उदय से ३१ वीं घटी भगा नाम की होती है। इसमें जल सम्बन्धी काम करना चाहिये तथा पूर्व दिशा में पक्षि का शब्द दिखाई व सुनाई देता है ॥३६॥

गुरूक्त ३२ घटी का फल

द्वात्रिंशद्भ्रातृकानाम्नी पुण्यग्रहणकर्मकृत् ।
सौम्यायां विद्यते वार्ता निग्रहो मरणस्य वा ॥ ४० ॥

उदय से ३२ वीं घटी भ्रातृका नाम वाली होती है। इसमें पुण्य और ग्रहण कार्य करना चाहिये तथा उत्तर दिशा में निग्रह वा मरने की बात होवी है । ४० ॥

गुरूक्त ३३ घटी का फल

त्रयस्त्रिंशच्चरमा स्यात्क्रयविक्रयकारणम् ।
नैर्ऋतिं दिशमाश्रित्य चाक्रोशं श्रूयते भृशम् ॥ ४१ ॥

उदय से ३३ वीं घटी चरमा नाम की होती है। इसमें खरीदने बेचने का काम करना चाहिये तथा नैर्ऋत्य कोण में क्रोध का शब्द अधिक सुनाई देता है ॥ ४१ ॥

गुरूक्त ३४ घटी का फल

चतुस्त्रिंशत्पूर्णनाम्नी सर्वकार्यं तु कारयेत् ।
याम्यां तु दिशमाश्रित्य पक्षिक्रोशं च श्रूयते ॥ ४२ ॥

उदय से ३४ वीं घटी पूर्ण नाम की होती है। इसमें समस्त कार्य करवाना चाहिये और दक्षिण दिशा में पक्षियों का कोलाहल सुनाई देता है ॥ ४२ ॥

गुरूक्त ३५ घटी का फल

पञ्चत्रिंशज्जिता नाम्नी विद्याकर्म च कारयेत् ।
ऐन्द्रयां तु विद्यते वार्ता गौर्ज्याक्रोशस्य धारणम् ॥ ४३ ॥

उदय से ३५ वीं घटी जिता नाम वाली होती है। इसमें विद्या सम्बन्धी काम करना चाहिये तथा पूर्व दिशा में गाय या जीवा के आक्रोश धारण की बात होती है ॥ ४३ ॥

गुरूक्त ३६ घटी का फल

षट्त्रिंशत् केतुनामाख्या मङ्गलानि च कारयेत्।
नैर्ऋत्यां दिशमाश्रित्य दारुधारः प्रदृश्यते ॥ ४४ ॥

उदय से ३६ वीं घटी केतु नाम की होती है। इसमें माङ्गलिक कार्य करना चाहिये तथा नैऋत्य कोण में काष्ठ धारण करता दिखाई देता है ॥ ४४ ॥

गुरूक्त ३७ घटी का फल

सप्तत्रिंशद्विधानाम्ना विभागास्तत्र कारयेत्।
दिश्यैशान्यां तथाक्रोशं तत्कालं भेदकारणम् ॥ ४५ ॥

उदय से ३७ वीं घटी विधा नाम वाली होती है। इसमें विभागीय काम करना चाहिये तथा ईशान कोण में क्रोध उस समय भेद का कारण होता है ॥ ४५ ॥

गुरूक्त ३८ घटी का फल

अष्टत्रिंशत्परानाम्नी मैथुनानि च कारयेत्।
प्रतीच्यां दिशमाश्रित्य पुरुषो गर्जितः स्वयम् ॥ ४६ ॥

उदय से ३८ वीं घटी परा नामवाली होती है। इसमें मैथुन करना चाहिये तथा पश्चिम दिशा में स्वयं ही पुरुष गर्जना करता है ॥ ४६ ॥

गुरूक्त ३९ घटी का फल

ऊनचत्वारिंशाब्जनाम्नी पूजनानि च कारयेत्।
याम्यां दिशं समाश्रित्य वश्यवार्ता निदृश्यते ॥ ४७ ॥

उदय से ३६ वीं घटी अब्ज नाम की होती है। इसमें पूजनादि काम करना चाहिये तथा दक्षिण दिशा में वश्य वार्ता दिखाई देती है ॥ ४७ ॥

गुरूक्त ४० घटी का फल

चत्वारिंशद्वयो नाम्नी भरणानि च कारयेत्।
वारुण्यां विद्यते वार्ता कण्ठशब्दस्य धारणम्।

उदय से ४० वीं घटी वय नामकी होती है। इसमें भरण कार्य करना चाहिये तथा पश्चिम दिशा में कंठ शब्द के धारण की बात होती है ॥ ४८ ॥

गुरूक्त ४१ घटी का फल

एकचत्वारिंशच्छब्दनाम्नी पूजनानि च कारयेत् ॥ ४८ ॥
पूर्वां दिशं समाश्रित्य चाक्रोशं विद्यते भृशम्।

उदय से ४१ वीं घटी शब्द नाम की होती है। इसमें पूजन कार्य करना चाहिये तथा पूर्व दिशा में अत्यन्त क्रोध होता है ॥ ४८½–४९½ ॥

गुरूक्त ४२ घटी का फल

द्विचत्वारिंशज्जया नाम्नी कर्षकाणां हिता तु सा ॥ ४९ ॥
सौम्यां दिशं समाश्रित्य पुरुषो प्रज्ञधारणम् ।

उदय से ४२ वीं घटी जया नाम की होती है। इसमें खेती करने वालों का कल्याण होता है तथा उत्तर दिशा में बैठ कर मनुष्य ज्ञान या बुद्धि को धारण करता ॥ ४९½–५०½ ॥

गुरूक्त ४३ घटी का फल

त्रिचत्वारिंशद्भूतानाम्नी पुत्रोत्पादं तु कारयेत् ॥ ५० ॥
ऐशान्यां दिशमाश्रित्य कान्तशब्दस्य कारणम् ।

उदय से ४३ घटी भुता नाम वाली होती है। इसमें पुत्र पैदा करना चाहिये तथा ईशान कोण का आश्रित करने पर कान्त शब्द का पुरुष कारण होता है ॥५०½–५१½॥

गुरूक्त ४४ घटी का फल

चतुश्चत्वारिंशच्छक्रनाम्नी ज्ञानकार्यं तु कारयेत् ॥ ५१ ॥
ऐशान्यां जम्बुकारावं श्वानं वा गर्जितं नरम् ।

उदय से ४४वीं घटी शक्र नामवाली होती है। इसमें ज्ञान कार्य करना चाहिये तथा ईशान कोण में श्यार का शब्द या कुत्ता वा मनुष्य की गर्जना होती है ॥५१½–५२½॥

गुरूक्त ४५ घटी का फल

पञ्चचत्वारिंशतिर्या शिवाख्या शिवकर्मणि ॥ ५२ ॥
प्रकुर्वन्ति प्रसिद्ध्यन्ति न सिद्ध्यन्ति कृषिक्रियाः ।

उदय से ४५ वीं घटी शिव नाम की होती है। इसमें शिव सम्बन्धी काम करने पर सिद्ध होते हैं तथा खेती काम सिद्ध नहीं होता है ॥ ५२½–५३½ ॥

गुरूक्त ४६ घटी का फल

दारुनाम्नी षट्चत्वारिंशतिः काष्ठकार्यकराणि च ॥ ५३ ॥
गृहरम्भादिकं कार्यं सन्धिकर्म च कारयेत् ।

उदय से ४६ वीं घटी दारु नाम की होती है। इसमें काठ के काम करना चाहिये तथा घर का प्रारम्भ और सन्धि कार्य करना चाहिये ॥ ५३½ ५४½ ॥

गुरूक्त ४७ घटी का फल

सप्तचत्वारिंशतिस्त्रयो नाम्नी ध्यानादि कारयेन्नरः ॥ ५४ ॥
ऐशान्यां दिशमाश्रित्य सद्भावाक्रोशधारणम् ।

उदय से ४७ वीं घटी स्त्री नाम की होती है। इसमें ध्यानादि काम करना चाहिये तथा ईशान कोण का आश्रय करने पर सद्भावना होती है ॥ ५४½–५५½ ॥

गुरूक्त ४८ घटी का फल

अष्टचत्वारिंशच्चक्राख्या निद्रापातानि कारयेत् ॥ ५५ ॥
वारुण्यां दिशमाश्रित्य वायुशब्दस्य विद्यते ।

उदय से ४८ वीं घटी चक्र नाम वाली होती है। इसमें शयनादि काम करना चाहिये तथा पश्चिम दिशा में वायु का शब्द जब हो तब करना चाहिये ॥५५½-५६½॥

गुरूक्त ४९ घटी का फल

एकोनपञ्चाशच्छत्राख्या छत्रकर्माणि कारयेत् ॥ ५६ ॥
पूर्वां दिशं समाश्रित्य गोशब्दं विद्यते यदा ।

उदय से ४९ वीं घटी छत्र नाम की होती है। इसमें पूर्व दिशा में जब गाय का शब्द सुनाई दे तब छत्र कार्य करना चाहिये ॥ ५६½–५७½ ॥

गुरूक्त ५० घटी का फल

पञ्चाशत्पत्रनामाख्या सङ्ग्रहाणि च कारयेत् ॥ ५७ ॥
प्राचीं तु दिशमाश्रित्य सूरकध्वनिरेव च ।

उदय से ५० वीं घटी पत्र नाम वाली होती है। इसमें पूर्व में जब सूअर का शब्द सुनाई दे तो सङ्ग्रह का कार्य करना चाहिये ॥ ५७½–५८½ ॥

गुरूक्त ५१ घटी का फल

एकपञ्चाशत्क्रतुर्नाम्नी कन्यावस्त्रादि कारयेत् ॥ ५८ ॥
पूर्वां दिशं तथाक्रोशं पुरुषस्य प्रदृश्यते ।

उदय से ५१ वीं घटी क्रतु नाम वाली होती है। इसमें जब पूर्व दिशा में पुरुष के क्रोध युक्त वाक्य सुनाई दें तो कन्या के वस्त्रादि काम करना चाहिये ॥५८½–५९½ ॥

गुरूक्त ५२ घटी का फल

द्विपञ्चाशद् घटी ज्ञाना अक्षराणि च कारयेत् ॥ ५९ ॥
वारुण्यां दिशमाश्रित्य वह्निशब्दस्य धारणम् ।

उदय से ५२ वीं घटी ज्ञान नाम वाली होती है। इसमें पश्चिम दिशा में जब वह्नि शब्द सुनाई दे तो नहीं नष्ट होने वाले काम करना चाहिये ॥ ५९½–६०½ ॥

गुरूक्त ५३ घटी का फल

त्रिपञ्चाशत्कृषीनाम्नी हलादिग्रहणं शुभम् ॥ ६० ॥
दक्षिणां दिशमाश्रित्य गन्धर्वः श्रूयते भृशम् ।

उदय से ५३ वीं घटी कृषि नाम वाली होती है इसमें जब दक्षिण दिशा में गन्धर्व का श्रवण हो तो हलादि का ग्रहण शुभ होता है ॥ ६०½–६१½ ॥

गुरूक्त ५४ घटी का फल

चतुःपञ्चाशद्धननामाख्या अर्थसङ्ग्रहणे हिता ॥ ६१ ॥
पूर्वां दिशं समाश्रित्य श्वाघोषं कारयेत्ततः ।

उदय से ५४ वीं घटी धन नाम वाली होती है। इसमें धन का सङ्ग्रह करना शुभ होता है । तथा पूर्व दिशा में कुत्ता का शब्द कराना चाहिये ॥ ६१½–६२½ ॥

गुरूक्त ५५ घटी का फल

पञ्चपञ्चाशद्भुताख्या प्रयत्नादीनि कारयेत् ॥ ६२ ॥
आमिषं दृश्यते याम्यमश्वशब्दस्य धारणम् ।

उदय से ५५ वीं घटी भुत संज्ञा वाली होती है। इसमें दक्षिण दिशा में मांस तथा घोड़े का शब्द जब सुनाई दे तो उद्योगादि करना चाहिये ॥ ६२½–६३½ ॥

गुरूक्त ५६ घटी का फल

षट्पञ्चाशद्द्विजानाम्नी शान्तिकर्माणि कारयेत् ॥ ६३ ॥
विवाहस्येश्वरं विन्द्यान्नैऋर्त्यां ब्राह्मणस्य च ।

उदय से ५६ वीं घटी द्विज नाम वाली होती है। इसमें शान्ति कार्य करना चाहिये क्योंकि नैऋर्त्य कोण में विवाह या ब्राह्मण का ईश्वर होता है ॥ ६३½–६४½ ॥

गुरूक्त ५७ घटी का फल

सप्तपञ्चाशत्सावित्री स्नानकार्यं तु कारयेत् ॥ ६४ ॥
वारुण्यां दृश्यते विद्वान् ब्राह्मणं शिवसंयुतः ।

उदय से ५७ वीं घटी सावित्री नाम की होती है। इसमें दक्षिण दिशा में शिव से युक्त ब्राह्मण जब दिखाई दे तो स्नान कार्य करना चाहिये ॥ ६४½–६५½ ॥

गुरूक्त ५८ घटी का फल

अष्टपञ्चाशत्स्थिराख्या च सर्वाचारक्रिया भवेत् ॥ ६५ ॥
सौम्यां च दिशमाश्रित्य जनशब्दं च श्रूयते ।

उदय से ५८ वीं घटी स्थिर नामकी होती है। इसमें उत्तर दिशा में मनुष्य का जब शब्द सुनाई दे तो समस्त आचार सम्बन्धी काम करना चाहिये ॥ ६५½–६६½ ॥

गुरूक्त ५९ घटी का फल

एकोनषष्टिः सर्वनामानेककर्माणि कारयेत् ॥ ६६ ॥
याम्यायां विद्यते वार्ता गजानां भूषणस्य च ।

उदय से ५९ वीं घटी सर्वनाम वाली होती है। इसमें दक्षिण दिशा में भूषण या हाथियों की वार्ता जब विद्यमान हो तो अनेक कार्य करना चाहिये ॥ ६६½–६७½ ॥

गुरूक्त ६० घटी का फल

षष्टिर्विष्णोश्च नामाख्या वृष्टयादि सहसंयुता ॥ ६७ ॥
पूर्वां तु दिशमाश्रित्य अरिशब्दस्य धारणम् ।
एवं संज्ञानि कर्माणि तत्कर्माप्याचरेद्बुधः ॥ ६८ ॥

उदय से ६० वीं घटो विष्णु नाम की होती है। इसमें पूर्व दिशा में शत्रु का शब्द सुनाई दे तो वर्षा की संभावना होती है।

इस प्रकार पूर्वोक्त संज्ञा वाले कार्य विद्वान् को आचारण करना चाहिये ॥६७½-६८॥

विशेष बात

अष्टावाशादिना भेदै राशिभागकलादयः ।
सर्वेष्वत्र मुहूर्तेषु लक्षणान्यत्र मे शृणु ॥ ६९ ॥
मुहूर्तो नित्ययोगस्य सङ्ख्यां कृत्वा यथाविधाम् ।
संयोज्याधोर्ध्वतः स्थानचतुष्केषु क्रमादिमान् ॥ ७० ॥
अर्कादिशाक्वलीपङ्क्तिनवकश्च पृथक् पृथक् ।
सप्तभक्ते क्रमात्सर्वा अधोर्ध्वं नावशिष्यते ॥ ७१ ॥
मुष्टियुद्धं कुजश्चैव दशनाभिर्नृपाद्भयम् ।
सवासिष्ठेन चैते स्युः यत्रैवं तत्रजं भवेत् ।
मुहूर्तफलमेते स्युर्वृत्रहन्सर्वशोभनम् ॥ ७२ ॥
इति वृहस्पतिमुहूर्ताः ।

यहाँ पर सब मुहूर्तों में आठ दिशाओं के भेद से राशि कलादि के वश लक्षणों को मुझ से सुनो। नित्ययोग के मुहूर्त की संख्या को तथोक्त क्रम से जान कर ४ स्थानों में रखकर १२, १०, १८, १६ इनको तथा ऊर्ध्व व अधः स्थित संख्या को जोड़कर सात से भाग देने पर शेष ऊर्ध्व अध नहीं होता है। तथा ऐसी स्थिति में मुष्टि युद्ध कुत्सित व राजा के दांतों से भय होता है। जहाँ पर स्थित होकर ऐसा होता है, वहीं पर उक्त मुहूर्त फलीभुत होते हैं। अर्थात् उक्त मुहूर्तों में जहाँ कथित शकुन होते हैं, वहीं पर फल होता है। हे इन्द्र ये मुहूर्त सब प्रकार शुभदायी होते हैं ॥६९-७२॥

इस प्रकार गुरूक्त मुहूर्त समाप्त हुआ ॥

अथ शिवामुहूर्ताः—

अब आगे शिवा मुहूर्तों को बताते हैं। एक समय में श्री पार्वती जी ने भोलानाथ जी से प्रश्न किया कि हे प्राणनाथ, दया के सागर आपने त्रिपुर के मारने के लिये जिन मुहूर्तों को बताया था। उन्हें मुझे बताने की कृपा करें क्योंकि ये मुहूर्त शुभ फल दायक

हैं। अतः पार्वती जी को इनकी प्राप्ति हुई। वे ही मुहूर्त शिवामुहूर्त के नाम से संसार के कल्याण हेतु पार्वतीजी ने वर्णन किये थे उन्हें ग्रन्थकार बतला रहे हैं।

द्विघटि का मुहूर्त की प्रशंसा

[1]त्रिपुरहरमुहूर्तं केन दृष्टं श्रुतं वा
सकलमपि ह दृष्टं शम्भुना भूतहेतोः।
यदि शुभमशुभं वा यादृशं तादृशं वा
तदिह अपि नरेन्द्रैः सर्वदा चिन्तनीयम् ॥ १ ॥

श्री महादेव जी के द्विघटिका मुहूर्त का अवलोकन व वर्णन किसने देखा है तथा सुना है अपि तु किसी ने भी नहीं सुना है। इस मुहूर्त को प्राणियों के ऊपर दया भरी दृष्टि होने के नाते उनके मङ्गल की कामना से स्वयं ही पार्वती जी को बताया है। इसमें शुभ व अशुभ कार्य जैसा तैसा हो उसका सर्वदा चिन्तन करना चाहिये। अर्थात् करना चाहिये ॥ १ ॥

विशेष—वृहज्ज्योतिषसार में 'तदिदमपि नरेन्द्रैः' यह पाठान्तर है ॥ १ ॥

शिवालिखितमित्येतत्सर्वं ज्ञात्वा शुभाशुभम्।
तस्य सन्दर्शनादेव ज्ञायते च शुभाशुभम् ॥ २ ॥

शिवा लिखित समस्त शुभाशुभ को जानकर कार्य करना चाहिये। मुहूर्त के देखने पर ही उसके शुभाशुभ का ज्ञान किया जाता है ॥ २ ॥

विशेष—वृ० ज्यो० सा० में यह श्लोक 'शिवालिखितमित्येतत्सर्वविघ्नोपशान्तये। कदाचिच्चलते मेरुः सागराश्च महीधराः' (२२३ पृ०) ॥ २ ॥

द्विघटिका की विशेषता

[2]न तिथिर्न च नक्षत्रं न योगः करणं तथा।
न शूलं योगिनी राशिर्न च होरा तमोगुणाः ॥ ३ ॥
[3]व्यतोपाते च सङ्क्रान्तौ भद्रायामशुभे दिने।
शिवालिखितमालोक्य सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ ४ ॥

इसमें तिथि, नक्षत्र, योग, करण, दिशाशूल, योगिनी, राशि अर्थात् लग्न, काल होरा, व्यतीपात, संक्रान्ति, भद्रा और अशुभ दिनादि का विचार नहीं किया जाता है। इनकी शुभता का ज्ञान करके समस्त विघ्न प्रशमन के कार्य करना चाहिये ॥३-४॥

विशेष—वृ० ज्यो० सा० में 'न तिथिः' के द्वितीयार्द्ध में 'कुलिकं यमयोगश्च न कालं न च चन्द्रमा'; यह अधिक पाठ प्राप्त है (२२२ पृ०) ॥३-४॥

---

१. वृ० ज्यो० सा० २२२ पृ० १ श्लो०।
२. वृ० ज्यो० सा० २२२ पृ० ५ श्लो०।
३. वृ० ज्यो० सा० २२२ पृ० ६ श्लो०।

[1]तत्रादौ कथयिष्यामि मुहूर्तानि च षोडश।
गुणत्रयप्रयोगेन चालनीयान्यहर्निशम् ॥ ५ ॥

प्रथम मैं दिन रात में तीन गुणों के चालन से सोलह मुहूर्तों के नामों को बताता हूँ ॥५॥

सोलह मुहूर्तों के नाम

[2]रौद्रं श्वेतं तथा मैत्र्यं चार्वटं च चतुर्थकम्।
पञ्चमं जयदेवं च षष्ठं वैरोचनं तथा ॥ ६ ॥
[3]तुर्यादिकं सप्तमं च तथाष्टमभिजित् स्मृतम्।
रावणं नवमं प्रोक्तं दशमं वालवं तथा ॥ ७ ॥
[4]विभीषणं रुद्रसंज्ञं द्वादशं च सुनन्दनम्।
याम्यं त्रयोदशं ज्ञेयं सौम्यं ज्ञेयं चतुर्दशम् ॥ ८ ॥
[5]तिथिसंमितिकं ज्ञेयं भार्गवं सविता तथा।

१ रौद्र, २ श्वेत, ३ मैत्र, ४ चार्वट, ५ जयदेव, ६ वैरोचन, ७ तुर्यादिक (तुरदेव), ८ अभिजित्, ९ रावण, १० बालव, ११ विभीषण, १२ सुनन्दन, १३ याम्य, १४ सौम्य, १५ भार्गव और सोलहवें मुहूर्त का नाम १६ सविता होता है ॥६–८½॥

विशेष —'तुरगं सप्तमञ्चैव' 'भार्गवं तिथिसंज्ञश्च सावित्र्यं षोडशं तथा' ॥६–८½॥

षोडशमुहूर्त-चक्र

मु०	रौद्र	श्वेत	मैत्र	चार्वट	जयदेव	वैरोचन	तुरग	अभिजित्
कार्य	रौद्र कार्य	हाथी बन्धन	स्नान दानादि	स्तम्भन	सर्वकार्य-सिद्धि	राजगद्दी	शस्त्र-साधन	ग्राम प्रवेश
मु०	रावण	बालव	विभीषण	सुनन्दन	याम्य	सौम्य	भार्गव	सावित्र
का०	वैर कार्य	युद्ध कार्य	शुभ काम	यन्त्र-चालन	मारण कार्य	सभा प्रवेश	स्त्री सेवा	विद्यारम्भ

किस मुहूर्त में कौन सा काम

[1]रौद्रे रौद्रकरं कार्यं श्वेते कुञ्जरबन्धनम् ॥ ९ ॥

---

१. बृ० ज्यो० सा० २२३ पृ० ६ श्लो०।
२. बृ० ज्यो० सा० २२३ पृ० १० श्लो०।
३. बृ० ज्यो० सा० २२३ पृ० ११ श्लो०।
४. बृ० ज्यो० सा० २२४ पृ० १२ श्लो०।
५. बृ० ज्यो० सा० २२४ पृ० १३ श्लो०।
६. बृ० ज्यो० सा० २२४ पृ० १४ श्लो०।

स्नानदानादिकं मैत्रे चार्वटे स्तम्भनं भवेत् ।
जयदेवाख्ये मुहूर्तेषु सर्वार्थं कारयेद्बुधः ॥ १० ॥
अभिजिद्वै मुहूर्तेषु शस्त्राद्यं साधयेद्बुधः ।
अभिजिद्वै मुहूर्तेषु ग्रामवेशोऽपि कारयेत् ॥ ११ ॥
वैरोचने सदा राज्याभिषेको शुभदः स्मृतः ।
[1]रावणे साधयेद्वैरं युद्धकार्यं च बालवे ॥ १२ ॥

विभीषणे शुभं कार्यं नन्दने यन्त्रचालनम् ।
याम्योद्भवे मानसकर्म यच्च सौम्ये सभायामुपवेशनं च ।
स्त्रीसङ्गमं भार्गवके मुहूर्ते सावित्रिनाम्नीं प्रपठेत् सुविद्याम् ॥ १३ ॥

रौद्र नामक में घोर काम, श्वेत में हाथी बांधने का, मैत्र में नहाने व पुण्यादि का, चार्वट में स्तम्भन, जयदेव में समस्त, अभिजित् में शस्त्रादि साधन, गांव में प्रवेश भी, वैरोचन में गद्दी, रावण में शत्रुता सम्बन्धी, बालव में लड़ाई, विभीषण में शुभ, सुनन्दन में मशीनरियों का संचालन, याम्य में मानसिक, सौम्य में समिति में बैठना, भार्गव में स्त्रीगमन और सावित्र नाम के मुहूर्त में सुन्दर विद्या को पढ़ना चाहिये ॥८½–१३॥

बृ० ज्यो० सार में कहा है 'कार्यं यज्जयदेवसंज्ञकवरे सर्वार्थकं साधयेत्, तद् वैरोचनसंज्ञके प्रभवति पट्टाभिषेकं क्रमात् । ज्ञात्वैवं तुरदेवनाम्नि विदितं शस्त्रास्त्रकं साधयेत् । स्यात्कार्यमभिजिन्मुहूर्तकवरे ग्रामप्रवेशं सदा ॥ विभीषणे शुभं कार्यं यन्त्रकार्यं सुनन्दने । याम्ये भवेन्मारणकार्यमुग्रं सौम्ये सभायामुपवेशनं स्यात् । स्त्रीसेवनं भार्गवके मुहूर्ते सावित्र्यनाम्नीं प्रपठेत् सुविद्याम्' (२२४ पृ० १५-१७ श्लो०) ॥८½–१३॥

किस वार में किस मुहूर्त का प्रथमोदय ज्ञान

उदयो रौद्रमादित्ये मैत्रं सोमे मुहूर्तकम् ।
जयदेवं भौमवारेण तुरंदेवं बुधे तथा ॥ १४ ॥
रावणं गुरुवारेण विभीषणं चैव भार्गवे ।
शनौ याम्यां मुहूर्तं च घटिकाद्वयसम्मितम् ॥ १५ ॥

सूर्यवार के दिन प्रथम रौद्र का, सोम में (चन्द्र) मैत्र का, भौमवार में जयदेव का, बुध में तुरदेव का, गुरुवार में रावण का, शुक्र में विभीषण का और शनिवार के दिन याम्य मुहूर्त का प्रथम उदय होता है। और एक मुहूर्त २ घटी का होता है ॥ १४-१५ ॥

विशेष—यहाँ पर जिज्ञासा होती है कि मुहूर्त २ घटिका होता है। तथा १६ मुहूर्त दिन में और १६ मुहूर्त रात्रि में तो १६×२=३२, १६×२=३२। ३२+३२=६४ घटियाँ हुई। किन्तु एक दिन में ६० ही घटी होती हैं। यह कैसे

---

१. बृ० ज्यो० सा० २२४ पृ० १६ श्लो०।

समाधान—१ मुहूर्त २ घटिका ही होता है यह सर्वसम्मत है किन्तु यहाँ पर यह नियम लागू नहीं होता यहाँ तो दिन मान व रात्रि के षोडशांश को ही मुहूर्त माना जाता है अतः ६० घटियां हीं होती हैं ।। १४–१५ ।।

वृ० ज्यो० सा० में बताया 'उदये रौद्रमादित्ये मैत्रं सोमे प्रकीर्तितम् । जयदेवं कुजे वारे तुरदेवं बुधे स्मृतम् ।। रावणञ्च गुरौ ज्ञेयं भार्गवे च विभीषणम् । शनौ याम्यमुहूर्तंश्च दिवा रात्रि प्रयोगतः । दिनादौ यत् प्रवर्तेत रात्र्यादौ तदनन्तरम् । दिनान्ते यः समायाति तस्मादेकान्तरेण च' (२२५ पृ० १८-२०) ।। १४–१५ ।।

वार क्रम से मुहूर्तों के उदय की सारणी

रवि	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	वार
रौद्र	मैत्र	जय देव	तुर देव	रावण	विभी-षण	याम्य	मुहू० का उदय

अब आगे किस वार में किस गुण (सत्त्व, रज, तम) का प्रथम उदय होता है, इसे बताते है ।

वारों में गुणोदय ज्ञान

[1]गुरुसोमदिने सत्त्वं रजश्चाङ्गारके भृगौ ।
रवौ मन्दे बुधे चैव तमोनाडीचतुष्टयम् ।। १६ ।।

वृहस्पति तथा सोमवार में प्रथम दो मुहूर्त तक सत्त्व का, भौम व शुक्रवार में रजो गुण का और सूर्य, शनि एवं बुधवार के दिन पहिले दो मुहूर्तों में तमोगुण का उदय होता है ।। १६ ।।

वार क्रम से फल के साथ गुणोदय सारणी

वार	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
गुणो-दय	तम	सत्त्व	रज	तम	सत्त्व	रज	तम
फल	अशुभ कर्म	सिद्धि	धन सम्पत्ति	अशुभ कर्म	सिद्धि	धन सम्पत्ति	अशुभ काम

अब आगे किस मुहूर्त में कितनी रेखा या यों समझिये उक्त सोलह मुहूर्तों की पहिचान क्या होती है इसे बताते हैं ।

१. वृ० ज्यो० सा० २२५ पृ० ।

शून्यं नभः खादिभिरेव वर्णो विघ्नं धनुर्युग्मगणाधिपाद्यैः ।
श्रीविष्णुनामामृतसत्त्वसिद्धिर्मृत्युं तथा पादयमादिवर्णैः ॥ १७ ॥

रेखा ज्ञान सारिणी

अमृत	काल	विघ्न	शून्य	रेखा
सिद्धिकर	मृत्युकर	विघ्नकर	कार्य हानि	फल
श्री विष्णु अमृत सिद्धि	मृत्यु पाद यम काल	विघ्नधनुः युग्म गणाधिप	शून्य नभ ख अभ्र	संज्ञा

शून्य, नभ, ख और अभ्र ये नाम शून्य रेखा के होते हैं। धनु युग्म, गणधिप ये विघ्न रेखा के, मृत्युपाद, यम ये काल रेखा के और श्रीविष्णु व अमृत सिद्धि नाम अमृत रेखा के होते हैं ॥ १७ ॥

वृ० ज्यो० सा० में कहा है 'शून्यं नभः खादिभिरेव वर्णोविघ्नं धनुर्युग्मगणाधिपाद्यैः । मृत्युस्तथा पादयमादिवर्णैः श्रीविष्णुनामामृतसंज्ञसिद्धिः' (२२६ पृ० २४ श्लो०) ॥ १७ ॥

अमृतादि रेखाओं का स्वरूप

अमृता ऊर्ध्वरेखैका कालरेखात्रयं भवेत् ।
विघ्नमावर्तकस्तत्र शून्यं चैव यथाक्रमम् ॥ १८ ॥

एक ऊर्ध्व रेखा को अमृत, तीन ऊर्ध्व रेखा के स्वरूप को काल (मृत्यु) दो युत गोल रेखा स्वरूप को विघ्न और शून्य रेखा स्वरूप को शून्य रेखा कहते हैं ॥ १८ ॥

वृ० ज्यो० सा० में कहा है 'अमृतश्चोर्ध्वरेखैका काल रेखात्रयं भवेत् । विघ्नमावर्तकं ज्ञेयं शून्ये शून्यमिति क्रमः' (२२७ पृ० २५ श्लो०) ॥ १८ ॥

रेखाओं का फल

शून्ये नैव भवेत्कार्यं विघ्नमावर्तके भवेत् ।
कालवेला ध्रुवं मृत्युः सर्वसिद्धिस्तथामृते ॥ १९ ॥

शून्य रेखा वाले मुहूर्त में कार्य सिद्धि नहीं होता है। गोल रेखा वाले मुहूर्त में विघ्न, काल वेला मुहूर्त में मृत्यु और अमृत रेखा के मुहूर्त में समस्त कार्यों की सिद्धि होती है ॥ १६ ॥

वृ. ज्यो. सा. में विशेष 'स्यान्मृत्युः कालरेखायां' यह पाठान्तर है ॥ १६ ॥

अब आगे किस राशि का कौन-सा गुण घातक होता है इसे बताते हैं ॥१९॥

राशियों के घातक गुण

धनुःकर्कटमीनानां घातः सत्त्वो विनिर्दिशेत् ।
तुलालिवृषमेषाणां घातो रजसि निश्चितम् ।। २० ।।
कन्यामिथुनसिंहानां कुम्भस्य मकरस्य च ।
घातं तामसवेलास्तु विपरीतं शुभावहम् ।। २१ ।।

धनु, कर्क, मीन राशि का सत्त्वगुण, तुला, वृश्चिक, मेष, वृषका रजोगुण और कन्या, मिथुन, सिंह, मकर कुम्भ राशि का तमो गुणघातक होता है। इसके विपरीत अर्थात् अन्य गुण शुभ होते हैं ।। २०–२१ ।।

वृ० ज्यो० सार में कहा है 'धनुर्मीनकर्कटानां सत्त्वे घातो विनिर्दिशेत् । तुलालिवृष मेषाणां घातो रजसि निश्चितम् ।। कन्यामिथुनसिंहानां कुम्भस्य मकरस्य च । घातस्त-मसि वेलायां विपरीतं शुभावहम्' (२२७ पृ० २७-२८ श्लो०) ।।२०-२१।।

राशि स्वरूप वश मृत्यु ज्ञान

गौरे तु म्रियते सत्त्वं श्यामवर्णे रजः स्मृतम् ।
तामसं कृष्णवर्णस्य इति ज्ञेयं सदा बुधैः ।। २२ ।।

गौर वर्ण राशि संज्ञा वालों का सत्वगुण से, श्यामवर्णों का रजोगुण और काले रंग संज्ञक राशि वालों का तमो गुण से मरण होता है ।।२२।।

वृ० ज्यो० सा० में कहा है 'गौरश्च म्रियते सत्त्वे श्यामवर्णो रजो गुणे । कृष्णस्ता-मसवेलायां म्रियते नात्र संशयः' (२२८ पृ०) ।

विशेष—इस प्रकरण में राशियों के कौन से वर्ण होते हैं। यह बिना बताये ही वर्णों के आधार पर घातक गुणों को बताया गया है ।

मैं फलित विद्यानुरागियों की सुविधा के लिये किस राशि का कौन वर्ण होता है। इसे यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ ।

वृ० ज्यो० सार में कहा है 'धनुः कर्कटमीनाख्या गौरवर्णाः प्रकीर्तिताः । वृष-मेषतुलाश्चैव वृश्चिकः श्यामवर्णकः ।। मिथुनो मकरः कुम्भः कन्या सिंहश्च कृष्णकः धनु, कर्क, मीन का गौर (सफेद), मेष, तुला, वृश्चिक, का श्याम और मिथुन, मकर, कुम्भ, कन्या, सिंह राशि का काला रंग होता है ।।२२।।

प्रश्न काल में गुणों का ज्ञान

[1]तिथिप्रहरसंयुक्तं तारकावारमिश्रितम् ।
वह्निभिश्च हरेद्भागं शेषं सत्त्वं रजस्तमः ।। २३ ।।

प्रश्न के समय जो तिथि, वार, नक्षत्र, प्रहर संज्ञा हो उसे जोड़कर तीन का भाग देने से १ शेष में सत्त्व, २ में रज और ० में तमो गुण होता है ।।२३।।

---

१. वृ० ज्यो० सा० ३४० पृ० ।

विशेष—इन गुणों का फल इस प्रकार होता है। जैसे सत्त्व में तत्काल सिद्धि कार्य की, रज में विलम्ब से सिद्धि और तमो गुण में कार्य की असिद्धि होती है।

कहा है 'सिद्धिस्तात्कालिके सत्त्वे रजसा च विलम्बतः। तमसा निष्फलं कार्यं ज्ञातव्यं प्रश्नकोविदैः' (पृ० ३४०) ॥२३॥

अब आगे किन २ मासों में वारों के आधार पर इन सोलह मुहूर्तों का ज्ञान किया जाता है। इसे बताते हैं।

स्पष्टार्थ फल के साथ सोलह मुहूर्तों का चक्र

सं.	मु.ना.	फल
१	रौद्र	कठिन कार्य
२	श्वेत	कुञ्जर बन्धन
३	मैत्र	स्नानदानादि
४	चावट	स्तम्भनम्
५	जयदेव	सर्वकार्य सिद्धि
६	वैरोचन	राज गृही
७	तुरदेव	शस्त्र साधन
८	अभिजित्	ग्राम प्रवेश
६	रावण	वैर कार्य
१०	बालव	युद्ध कार्य
११	विभीषण	शुभ कार्य
१२	सुनन्दन	यन्त्र चालन
१३	याम्य	मारण काम
१४	सौम्य	सभा प्रवेश
१५	भार्गव	स्त्री सेवन
१६	सावित्र	विद्यारम्भ

मासों में मुहूर्तों का ज्ञान

माघफाल्गुनचैत्रेषु वैशाखे श्रावणे तथा।
नभस्ये मासि वाराणां मुहूर्तान्युच्यते मया ॥ २४ ॥

माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, सावन और भादों के मुहूर्तों को बताते हैं। या यों जानिये कि इन मासों में सात वारों के क्रम से दिन रात्रि में ये मुहूर्त होते हैं ॥२४॥

रविदिवा

उक्त मासों में रविवार के दिन में १६ मुहूर्तों का ज्ञान

रवौ नभः केशवविघ्नराजो गोविन्दनामा नभ आखुगामी।

उक्त माघादि मासों में रविवार के दिन में पहले मुहूर्त में शून्य रेखा, फिर तीन मुहूर्त तक अमृत रेखा, पुनः चार तक विघ्न रेखा ततः तीन मुहूर्त तक अमृत रेखा, पुनः एक में शून्य और अवशिष्टों में विघ्न रेखा होती है।

रौ.	श्वे.	मै.	चार्व.	जय.	वैरो.	तुर.	अभि.	राव.	बाल.	विभी.	सुन.	या.	सौं.	भा.	सा.
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स
०	δ	δ	δ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ර	ර	ර	०	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ

रविरात्री

उक्त मासों में रवि की रात के १६ मुहूर्त

रात्रौ नृसिंहो युगलं नभः पल्लक्ष्मीशलम्बोदररामसंज्ञौ ॥ २५ ॥

उक्त मासों में रात के समय में प्रथम तीन मुहूर्त तक अमृत रेखा, फिर दो मुहूर्त तक विघ्न रेखा, पुनः एक में शून्य, फिर एक में काल, इसके बाद तीन तक अमृत, पुनः चार तक विघ्न, फिर दो तक अमृत रेखा होती है ॥२५॥

विशेष—बृ० दै० रं० में 'रात्रौ नृसिंहो युगलं नभौ श्रीलक्ष्मीचलम्बादररामसंज्ञौ' पाठ है (२२८ पृ०) ॥२५॥

रवि.	भौ.	चार्व.	जय.	वैरी.	तुर.	अभि.	राव.	बाल.	विभी.	सुन.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.
र	र	त	त	स.	स.	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
ठ	ठ	ठ	ठठ	ठठ	०	[illegible]	ठ	ठ	ठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठ	ठ

चन्द्रदिवा

उक्त मासों में सोमवार के दिन में १६ मुहूर्त ज्ञान

सोमे हरिर्विघ्नपतिः सुरेशःशून्यं च गौरीसुतविष्णुसंज्ञौ ।

उक्त माघादि मासों में सोमवार के दिन में प्रथम दो मुहूर्त तक अमृत रेखा, फिर चार तक विघ्न रेखा, पुनः तीन मुहूर्त तक अमृत रेखा, इसके बाद एक मुहूर्त तक शून्य रेखा, इसके पश्चात् चार मुहूर्त तक विघ्न रेखा, पुनः दो मुहूर्त तक अमृत रेखा होती है ।

भौ.	चार्व.	जय.	वैरी.	तुर.	अभि.	राव.	बाल.	विभी.	सुन.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	रवि.
स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र
ठ	ठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठ	ठ	ठ	०	ठठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठ	ठ

चन्द्ररात्री

उक्त मासों में सोमवार की रात में १६ मुहूर्त

पदं निशायां खखविष्णुशून्यं युग्मञ्च नारायणविघ्ननाथौ ॥ २६ ॥

उक्त मासों में सोमवार की रात्रि में प्रथम मुहूर्त में काल रेखा, पुनः दो मुहूर्त तक

शून्य रेखा, फिर दो मुहूर्त तक अमृत रेखा, इसके बाद एक मुहूर्त में शून्य रेखा, पुनः दो मुहूर्त तक विघ्न, फिर चार तक अमृत, पुनः चार तक विघ्न रेखा होती है ॥२६॥

चर्चि.	जय.	वैरी.	तुर.	अभि.	राव.	बाल.	विभी.	सुन.	मा.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स
Ѱ	○	○	ბ	ბ	○	ꝏ	ꝏ	ბ	ბ	ბ	ბ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ

भौमदिवा

उक्त मासों में भौमवार के दिन में १६ मुहूर्तों का ज्ञान

भौमे यमौ मारमणोऽथ युग्मं युग्मं हरिश्चैव गजाननश्च ।

उक्त माघादि मासों में मङ्गलवार के दिन में पहिले दो मुहूर्तों तक काल रेखा फिर चार तक अमृत रेखा फिर चार तक विघ्न रेखा पुनः दो तक अमृत रेखा और अवशिष्ट मुहूर्तों में विघ्न रेखा होती है ।

जय.	मैत्री	तुर.	अभि.	राव.	बाल.	विभी.	सुन.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
Ѱ	Ѱ	ბ	ბ	ბ	ბ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ბ	ბ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ

भौमरात्री

उक्त मासों में भौम की रात में १६ मुहूर्त

नक्तं च युग्मं द्विपदो मुकुन्दः पादत्रयं श्रीपतिः खन्नभः श्रीः ॥ २७ ॥

उक्त मासों में रात में प्रथम दो मुहूर्त तक विघ्न, पुनः दो तक काल, फिर तीन तक अमृत, इसके बाद तीन तक काल, फिर तीन तक अमृत, पुनः दो तक शून्य, तत्पश्चात् एक तक अमृत रेखा होती है ॥ २७ ॥

तथा वृ. ज्यो. में कहा है 'भौमे यमौ मारमणोऽथयुग्मं युग्मं हरिश्चैव गजाननश्च । नक्तं च विघ्नो द्विपदं मुकुन्दः पदत्रयं श्रीपतिखन्नभश्रीः' (पृ० २२६) ॥ २७ ॥

[illegible]	तुर.	अभि.	राव.	बाल.	विभी.	सुन.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.	जय.
स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र
ꝏ	ꝏ	Ѱ	Ѱ	ბ	ბ	ბ	Ѱ	Ѱ	Ѱ	ბ	ბ	ბ	○	○	ბ

चार तक विघ्न, उक्त मासों में पुनः एक में शून्य, इसके बाद तीन तक अमृत और शेष मुहूर्तों में विघ्न रेखा होती है।

रा.	बा.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.	ज.	वै.	तु.	अ.
[illegible]	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र
ठ	ठ	ठ	ठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठठ	०	ठ	ठ	ठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठठ

गुरुरात्री

उक्त मासों में गुरुवार की रात में १६ मुहूर्त

निशायां पदं नन्दजःसूर्यसूनुर्नभो माधवश्चापमेकं हरिश्च ॥ २९ ॥

गुरुवार की रात में प्रथम एक में काल, फिर तीन में अमृत, पुनः चार में काल, तत्पश्चात् एक में शून्य, इसके बाद तीन में अमृत, फिर दो में विघ्न और शेष में अमृत रेखा होती है ॥ २९ ॥

विशेष—बृ. ज्यो. सा. में श्लोक के चौथे चरण में 'माधवश्चायमेकं हरिश्च' यह पाठान्तर है ॥ २६ ॥

बा.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.	ज.	वै.	तु.	अ.	रा.
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स
४	ठ	ठ	ठ	४	४	४	४	०	ठ	ठ	ठ	ठठ	ठठ	ठ	ठ

शुक्रदिवा

उक्त मासों में शुक्रवार के दिन में १६ मुहूर्तों का ज्ञान

शुक्रे कृष्णः स्याद्यमः खम्मुरारिर्गौपुत्रः श्रीपतिःशून्यमेकम् ।

उक्त माघादि मासों में शुक्रवार के दिन प्रथम दो मुहूर्तों में अमृत, पुनः दो में काल, फिर एक में शून्य, इसके बाद तीन में अमृत, पुनः चार में विघ्न, तत्पश्चात् तीन में अमृत और अवशेष में शून्य रेखा होती है।

वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.	ज.	वै.	तु.	अ.	रा.	बा.
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
ठ	ठ	४	४	०	ठ	ठ	ठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठ	ठ	ठ	०

शुक्रारात्री

उक्त मासों में शुक्रवार की रात में १६ मुहूर्त

नक्तंकालः कंसहा खञ्च युग्मं पादद्वन्द्वो वामनः खञ्च पादौ ॥ ३० ॥

शुक्रवार की रात में पहिले दो में काल, पुनः तीन में अमृत, तत्पश्चात् एक में शून्य, फिर दो में विघ्न, फिर दो में काल, पुनः तीन में अमृत, फिर एक में शून्य और शेष मुहूर्तों में काल रेखा होती है ॥ ३० ॥

सु·	या·	सौ·	भा·	सा·	शै·	श्वे·	मै·	चा·	ज·	वै·	तु·	अ·	रा·	बा·	वि·
स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र
४	४	δ	δ	δ	०	ಹ	ಹ	४	४	ᑦ	δ	δ	०	४	४

शनिदिवा

उक्त मासों में शनिवार के दिन में मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

शनौ पदं श्रीखनभोनभः खं नारायणं खं हरि खं हरिश्च ।

उक्त माघादि मासों में शनिवार के पहिले एक में काल, पुनः एक में अमृत, फिर चार में शून्य, तत्पश्चात् चार में अमृत, पुनः एक में शून्य फिर दो में अमृत, इसके बाद पुनः एक में शून्य और शेष में अमृत रेखा का निवास होता है ॥

या·	सौ	भा·	सा·	शै·	श्वे·	प्रे	चा·	ज	वै·	तु	अ	रा·	बा·	वि	सु·
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स·	स
४	δ	०	०	०	०	δ	δ	δ	δ	०	δ	δ	०	δ	δ

शनिरात्री

उक्त मासों में शनिवार की रात में १६ मुहूर्त

रात्री च शून्यं यम युग्म माधवो खविघ्नराजो नृहरिश्च पादौ ॥ ३१ ॥

शनिवार की रात में पहिले एक में शून्य, फिर दो में काल, पुनः तीन में अमृत, इसके बाद एक में शून्य, फिर चार में विघ्न, पुनः तीन में अमृत और अवशेष मुहूर्तों में काल रेखा होती है ॥ ३१ ॥

सौ·	भा·	सा·	शै·	श्वे·	प्रे·	चा·	ज·	वै·	तु·	अ·	रा·	बा·	वि·	सु·	या·
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
०	४	४	δ	δ	δ	०	ಹ	ಹ	ಹ	ಹ	δ	δ	δ	४	४

अन्य मासों में वारादि क्रम से मुहूर्तों का कथन

आश्विने कार्तिके मासे मार्गे पौषे यथाक्रमम् ।
सूर्याद्याश्चैव वारेषु मुहूर्तान्युच्यते बुधैः ।। ३२ ।।

आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष (अगहन) और पूस मास में सूर्यादिवार क्रम से विद्वानों द्वारा प्रतिपादित मुहूर्तों को बता रहा हूं ।। ३२ ।।

बृ. ज्यो. सा. में कहा है 'अथाश्विने कार्तिकमार्गपौषे सूर्यादिवारेषु मुहूर्तरेखा: । नामाक्षराणां वचनप्रवृत्या विचारपूर्वं विबुधैर्विचिन्त्यम्' (२३१ पृ०) ।। ३२ ।।

रविदिवा

उक्त मासों में रविवार में दिन में १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

सूर्यो नृसिहो द्विपदश्च चापो हरिर्नभः खं पदमच्युताऽङ्घ्रिः ।

कथित आश्विनादि मासों में रविवार के दिन पहिले तीन मुहूर्त तक अमृत, फिर दो तक काल, पुन: दो तक विघ्न, तत्पश्चात् दो तक अमृत, इसके बाद दो तक शून्य पुनः एक तक काल, फिर तीन तक अमृत और अवशिष्ट में काल रेखा होती है ।

रौ.	श्वे.	मै.	चा.	ज.	वै.	तु.	अ.	रा.	वा.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	स्वा.
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स
δ	δ	δ	४	४	ꝏ	ꝏ	δ	δ	०	०	४	δ	δ	δ	४

रविरात्रौ

उक्त मासों में सूर्यवार की रात में १६ मुहूर्त

रात्रौ पदं चापखमच्युतञ्च युग्मं यमौ विष्णुखसिद्धिसंज्ञौ ।। ३३ ।।

कथित मासों में रविवार की रात में प्रथम में एक स्थान में काल, पुनः दो तक विघ्न, फिर एक में शून्य, तत्पश्चात् तीन में अमृत, इसके वाद दो में विघ्न, फिर दो में काल, पुन: दो में अमृत, फिर एक में शून्य और शेष में अमृत रेखा होती है ।।३३।।

श्वे.	मै.	चा.	ज.	वै.	तु.	अ.	रा.	वा.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	स्वा.	रौ.
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
४	ꝏ	ꝏ	०	δ	δ	δ	ꝏ	ꝏ	४	४	δ	δ	०	δ	δ

चन्द्रदिवा

उक्त मासों में सोमवार के दिन में १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

सोमेऽङ्घ्रिचापं खनभो मुकुन्दो नभश्च युग्मं हरिखं हरिश्च ।

कथित आश्विनादि मासों में सोमवार के दिन में प्रथम स्थान में काल, तत्पश्चात्

दो में विघ्न, फिर दो में शून्य, पुनः तीन में अमृत, तत्पश्चात् एक में शून्य, फिर दो में विघ्न, इसके बाद दो में अमृत, फिर एक में शून्य और शेष में अमृत रेखा होती है।

मै	चा.	ज.	वै.	तु.	अ	रा.	का.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ	श्वे.
स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र
४	ꝏ	ꝏ	०	०	ठ	ठ	ठ	०	ꝏ	ꝏ	ठ	ठ	०	ठ	ठ

चन्द्ररात्रौ

उक्त मासों में सोमवार की रात में १६ मुहूर्त

पदं निशायां खयुगं मुरारिर्विनायको विष्णुनभश्च विष्णुः ॥ ३४ ॥

कथित मासों में सोमवार की रात्रि में पहिले १ मुहूर्त में काल, पुनः एक १ शून्य, फिर दो २ में विघ्न, तत्पश्चात् तीन ३ में अमृत, इसके बाद चार ४ में विघ्न, उपरान्त दो २ में अमृत, ततः एक में शून्य और शेष दो २ में अमृत रेखा होती है ॥३४॥

चा.	ज.	वै.	तु	अ.	रा.	का.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स
४	०	ꝏ	ꝏ	ठ	ठ	ठ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ठ	ठ	०	ठ	ठ

भौमदिवा

उक्त मासों में भौमवार में दिन के १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

भौमे तथेभास्यनभोऽथ विष्णुर्नभो युगं गोपतिखंगणेशः।

कथित आश्विनादि मासों में मंगलवार के दिन में प्रथम चार मुहूर्त तक विघ्न, फिर एक स्थान में शून्य, पुनः दो में अमृत, फिर एक में शून्य, पुनः दो में विघ्न, इसके बाद तीन में अमृत, फिर एक में शून्य और शेष में विघ्न रेखा होती है।

ज.	वै.	तु	अ.	रा.	का.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	०	ठ	ठ	०	ꝏ	ꝏ	ठ	ठ	ठ	०	ꝏ	ꝏ

भौमरात्रौ

उक्त मासों में भौमवार की रात में १६ मुहूर्त

नक्तं गन्जेन्द्रास्यखमच्युतं च युग्मं च शून्यं नृहरिश्च शून्यम् ॥ ३५ ॥

कथित मासों में भौमवार की रात्रि में प्रथम चार स्थान में या मुहूर्तों में विघ्न, फिर एक में शून्य, पुनः तीन में अमृत, इसके बाद दो में विघ्न, फिर एक में शून्य तत्पश्चात् तीन में अमृत और शेष में विघ्न रेखा होती है ॥ ३५ ॥

वै.	तु.	अ.	रा.	बा.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.	ज.
स	स	र	र॰	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र
ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	o	ბ	ბ	ბ	ꝏ	ꝏ	o	ბ	ბ	ბ	ꝏ	ꝏ

बुधदिवा

उक्त मासों में बुधवार के दिन में १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

बुधे धनुः श्रीपतिपादयुग्मं नारायणस्याद्गणनाथसिद्धिः ।

कथित आश्विनादि मासों में बुधवार के पहिले दो २ मुहूर्तों में विघ्न, फिर तीन ३ में अमृत, इसके बाद दो २ में काल, तत्पश्चात् ४ चार में अमृत, पुनः ४ में विघ्न और शेष १ में अमृत रेखा होती है ।

तु.	अ.	रा.	बा.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.	ज.	वै.
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स
ꝏ	ꝏ	ბ	ბ	ბ	ʬ	ʬ	ბ	ბ	ბ	ბ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ბ

बुधरात्रौ

उक्त मासों में बुधवार की रात में १६ मुहूर्त

रात्रौ तु कालौ हरिशून्यकालौ गोविन्दगौरीसुतशून्यसिद्धिः ॥ ३६ ॥

कथित मासों में बुधवार की रात में पहिले दो २ मुहूर्तों में काल, फिर दो २ में अमृत, पुनः एक १ में शून्य, तत्पश्चात् दो २ में काल, फिर तीन ३ में अमृत, पुनः चार ४ में विघ्न, तत्पश्चात् एक १ में शून्य और शेष १ में अमृत रेखा होती है ॥ ३६ ॥

अ.	रा.	बा.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.	ज.	वै.	तु.
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
ʬ	ʬ	ბ	ბ	o	ʬ	ʬ	ბ	ბ	ბ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	o	ბ

गुरुदिवा

उक्त मासों में गुरुवार के दिन में १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

गुरौ हरिःशून्ययुग्मं सुरेशःश्रीविघ्नराजं गगनं तथा श्रीः ।

कथित आश्विनादि मासों में गुरुवार के दिन में प्रथम दो २ मुहूर्तों में अमृत, पुनः एक १ में शून्य, फिर दो २ में विघ्न, तत्पश्चात् ४ चार में अमृत, इसके बाद ४ चार में विघ्न, पुनः दो में शून्य और शेष १ में अमृत होती है ।

रा.	का.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	प्र.	चा.	ज.	वै.	तु.	अ.
स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र
δ	δ	o	ꝏ	ꝏ	δ	δ	δ	δ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	o	o	δ

गुरुरात्रौ

उक्त मासों में गुरुवार की रात में १६ मुहूर्त

निश्याङ्घ्रिदैत्यारिखकार्मुकञ्च पादौ पुराणां खयुगं पुनः श्रीः ॥ ३७ ॥

कथित मासों में गुरुवार की रात में पहिले १ एक में काल, पुनः तीन ३ में अमृत फिर एक १ में शून्य, तत्पश्चात् दो २ में विघ्न, इसके बाद दो २ में काल, फिर तीन ३ में अमृत, पुनः एक १ में शून्य ततः दो २ में विघ्न शेष १ में अमृत रेखा होती है ॥ ३७ ॥

का.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	प्र.	चा.	ज.	वै.	तु.	अ.	रा.
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स
ꝏ	δ	δ	δ	o	ꝏ	ꝏ	ψ	ψ	δ	δ	δ	o	ꝏ	ꝏ	δ

शुक्रदिवा

उक्त मासों में शुक्रवार के दिन में १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

शुक्रोऽमृतश्चापमरिन्दमश्च लम्बोदरः केशवशून्यपादः ।

कथित आश्विनादि मासों में शुक्रवार के दिन में पहिले एक १ में अमृत, पुनः

दो २ में विघ्न, फिर चार ४ में अमृत, तत्पश्चात् चार ४ में विघ्न, इसके बाद तीन ३ में अमृत, ततः एक १ में शून्य और शेष १ में काल रेखा होती है।

वि.	सु.	या	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.	ज	वै.	तु	अ.	रा.	वा.
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
δ	δδ	δδ	δ	δ	δ	δ	δδ	δδ	δδ	δδ	δ	δ	δ	०	४

शुक्ररात्री

उक्त मासों में शुक्रवार की रात में १६ मुहूर्त

नक्तं युगं श्रीपतिखञ्च युग्मं नृसिंहयुग्मं गगनञ्च युग्मम् ॥ ३८ ॥

उक्त मासों में शुक्रवार की रात में प्रथम दो २ में विघ्न, फिर तीन ३ में अमृत, पुनः एक १ में शून्य, ततः दो २ में विघ्न, तत्पश्चात् तीन ३ में अमृत, इसके बाद दो २ में विघ्न, फिर एक १ में शून्य और शेष २ में रेखा विघ्न होती है ॥ ३८ ॥

सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.	ज.	वै	तु.	अ.	रा.	वा.	वि.
स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र
δδ	δδ	δ	δ	δ	०	δδ	δδ	δ	δ	δ	δδ	δδ	०	δδ	δδ

शनिदिवा

उक्त मासों में शनिवार के दिन में १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

शनी पदं श्रीनं नभो न कृष्णःखंश्रीपदं विष्णुनभो हरिःपत्।

कथित आश्विनादि मासों में शनिवार के दिन में पहिले एक १ मुहूर्त में काल, पुनः एक १ में अमृत, फिर एक १ में शून्य, ततः एक १ में अमृत, तत्पश्चात् १ में शून्य इस के बाद दो २ में अमृत, फिर एक १ में शून्य, पुनः एक १ में अमृत, फिर एक १ में काल, तत्पश्चात् दो २ में अमृत, फिर एक १ में शून्य, पुनः दो २ में अमृत और शेष १ में काल रेखा होती है।

या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.	ज.	वै.	तु.	अ.	रा.	वा	वि.	सु.
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स
४	δ	०	δ	०	δ	δ	०	δ	४	δ	δ	०	δ	δ	४

शनिरात्रौ

उक्त मासों में शनिवार की रात में १६ मुहूर्त

रात्रौ पदं खं पदनन्दसूनुर्गजाननो गोपतिशून्यपादाः ॥ ३९ ॥

कथित मासों में शनिवार की रात्रि में प्रथम १ मुहूर्त में काल, फिर एक १ में शून्य, पुनः एक १ में काल, तत्पश्चात् चार ४ में अमृत, इसके बाद चार ४ में विघ्न, फिर तीन ३ में अमृत, पुनः एक १ में शून्य और शेष में काल रेखा होती है ॥ ३९ ॥

सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	मै.	चा.	ज.	वै.	तु	अ.	रा.	बा.	वि.	सु.	या.
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
४	०	४	δ	δ	δ	δ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	δ	δ	δ	०	४

ज्येष्ठाषाढमलमासस्थमुहूर्ताश्चैव लिख्यन्ते ।

अब आगे ज्येष्ठ, आषाढ और मलमास के मुहूर्तों को क्रम से बताते हैं।

वृहज्योतिस्सार में कहा है 'ज्येष्ठे मासे तथाषाढे तथा वै मलमासकेसूर्यादि-वारे संशोध्याः क्रमशो नाममादिमे' (२३५ पृ०) ॥ ३६ ॥

रविदिवा

ज्येष्ठादि मासों में सूर्य वार में दिन के १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

अर्के शून्ये च कृष्णो युगपदखं हरिविष्णुचापञ्च शून्यम् ।

उक्त ज्येष्ठादि मासों में रविवार के दिन में पहिले दो २ मुहूर्तों में शून्य, तत्पश्चात् दो २ में अमृत, इसके बाद दो २ में विघ्न, फिर एक २ में काल, ततः एक १ में शून्य, इसके बाद चार ४ में अमृत पुनः दो २ में विघ्न, और शेष १ में विघ्न रेखा होती है।

रौ.	श्वे.	मै.	चा.	ज.	वै.	तु.	अ.	रा.	बा.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स
०	०	δ	δ	ꝏ	ꝏ	४	४	०	δ	δ	δ	δ	ꝏ	ꝏ	०

रविरात्रौ

उक्त मासों में रविवार की रात में १६ मुहूर्त

रात्रौ लक्ष्मीशयुग्मं युगलहरियुगं युग्मकृष्णं च शून्यम् ॥ ४० ॥

कथित मासों में सूर्यवार की रात में प्रथम तीन ३ मुहूर्तों में अमृत, फिर चार ४ में विघ्न, पुनः दो २ में अमृत, इसके बाद चार ४ में विघ्न, तत्पश्चात् दो २ में अमृत और शेष १ में शून्य रेखा होती है ॥ ४० ॥

श्रे·	प्रे·	चा·	ज·	वै·	तु·	अ·	रा·	बा·	दि·	सु·	या·	सौ·	भा·	श्र·	रौ·
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
ठ	ठ	ठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठ	ठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठ	ठ	०

चन्द्रदिवा

ज्येष्ठादि मासों में सोमवार के दिन में १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

सोमे चापद्वयं नो नृहरिखयुगलं पीतवासाश्च शून्यम् ।

उक्त ज्येष्ठादि मासों में चन्द्र वार के दिन में पहिले चार ४ में विघ्न, पुनः एक १ में शून्य, फिर तीन ३ में अमृत, पुनः एक १ में शून्य, उपरान्त दो २ में विघ्न, फिर चार ४ में अमृत और शेष २ में शून्य रेखा होती है ।

प्रे·	चा·	ज·	वै·	तु·	अ·	रा·	बा·	दि·	सु·	या·	सौ·	भा·	श्र·	रौ·	श्रे·
स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र
ठठ	ठठ	ठठ	ठठ	०	ठ	ठ	ठ	०	ठठ	ठठ	ठ	ठ	ठ	ठ	०

चन्द्ररात्री

उक्त मासों में सोमवार की रात में १६ मुहूर्त

चापं द्वन्द्वं निशायामजपदखमजं चापपद्मेशपादम् ॥ ४१ ॥

ज्येष्ठादि मासों में सोमवार की रात में प्रथम चार ४ में विघ्न, फिर दो २ में अमृत, इसके बाद एक १ में काल, तत्पश्चात् एक १ में शून्य, उपरान्त दो २ में अमृत, पुनः दो २ में विघ्न, फिर तीन ३ में अमृत और शेष १ में काल रेखा होती है ॥ ४१ ॥

चा·	ज·	वै·	तु·	अ·	रा·	बा·	दि·	सु·	या·	सौ·	भा·	श्र·	रौ·	श्रे·	प्रे·
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स
ठठ	ठठ	ठठ	ठठ	ठ	ठ	४	०	ठ	ठ	ठठ	ठठ	ठ	ठ	ठ	४

भौमदिवा

ज्येष्ठादि मासों में भौमवार के दिन में १६ मुहूर्तों को रेखा का ज्ञान

भौमे शून्ये च कृष्णो युगगनहरिस्त्रीणि चापानि सिद्धिः ।

उक्त ज्येष्ठादि मासों में मंगलवार के दिन प्रथम दो २ मुहूर्त में शून्य, ततः दो २ में अमृत, पुनः दो २ में विघ्न, फिर एक १ में शून्य, तत्पश्चात् दो २ में अमृत, उपरान्त छै ६ में विघ्न और शेष १ में अमृत रेखा होती है ।

ज्ये·	वै·	तु	अ·	रा·	बा·	वि·	कु·	मा·	सौ·	भा·	सा·	रौ·	श्वे·	मै·	चा
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
○	○	δ	δ	ꝏ	ꝏ	○	δ	δ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	δ

भौमरात्री

उक्त मासों में भौमवार की रात में १६ मुहूर्त

नक्तं युग्मं द्वि शून्यं युग युगलपदं श्रीखचापञ्च चक्री ॥ ४२ ॥

ज्येष्ठादि मासों में मंगलवार की रात में पहिले चार ४ में विघ्न, फिर एक १ में शून्य, पुनः चार ४ में विघ्न, तत्पश्चात् एक १ में काल, उपरान्त एक १ में अमृत, पुनः एक १ में शून्य, तत्पश्चात् दो २ में विघ्न और शेष २ मुहूर्त में अमृत रेखा होती है ॥ ४२ ॥

वै·	तु	अ·	रा	बा·	वि·	सु·	या·	सौ·	भा·	सा·	रौ·	श्वे·	मै·	चा·	ज्ये·
स	स	र·	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र
ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	○	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	Ɣ	δ	○	ꝏ	ꝏ	δ	δ

बुधदिवा

ज्येष्ठादि मासों में बुधवार के दिन में १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

सौम्ये श्रीविघ्ननाथोऽथ हरिगणपतिर्पद्मनाभश्च पादः ।

उक्त ज्येष्ठादि मासों में बुधवार के दिन में प्रथम एक १ मुहूर्त में अमृत पुनः

चार ४ में विघ्न, फिर दो २ में अमृत, तत्पश्चात् चार ४ में विघ्न, उपरान्त चार ४ में अमृत और शेष १ में काल रेखा होती है।

तु·	अ·	रा·	बा·	वि·	सु·	या·	सौ·	भा·	सा·	रौ·	श्वे·	मै·	चा·	ज·	वै·
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स
δ	δδ	δδ	δδ	δδ	δ	δ	δδ	δδ	δδ	δδ	δ	δ	δ	δ	ψ

बुधरात्री

उक्त मासों में बुधवार की रात में १६ मुहूर्त

दोषायां सिद्धि युग्मं हरिखगजमुखाः कृष्ण शून्ये च कृष्णः।

बुधवार की रात में पहिले एक १ में अमृत, फिर दो २ में विघ्न, पुनः दो २ में अमृत, तत्पश्चात् एक १ में शून्य, फिर चार ४ में विघ्न, ततः दो २ में अमृत, उपरान्त दो २ में शून्य और शेष २ में अमृत रेखा होती है॥ ४२॥

विशेष वृ. दै. रं. मे.

रात्री नखोमुकुन्दोनहिसमुरारिपुःखन्धमौशून्यविष्णुः ॥ ४३॥

अ·	रा·	बा·	वि·	सु·	या·	सौ·	भा·	सा·	रौ·	श्वे·	मै·	चा·	ज·	वै·	तु·
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
δ	δδ	δδ	δ	δ	○	δδ	δδ	δδ	δδ	δ	δ	○	○	δ	δ

गुरुदिवा

ज्येष्ठादि मासों में गुरुवार के दिन में १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

जीवे विष्णुश्च चापो गगनमजितखञ्चाङ्घ्रिपादी नृसिंहः।

उक्त ज्येष्ठादि मासों में गुरुवार के दिन में पहिले दो २ मुहूर्त में अमृत, पुनः दो २ में विघ्न, फिर एक १ में शून्य, ततः तीन ३ में अमृत, तत्पश्चात् एक १ में शून्य, ततः चार ४ में काल और शेष २ मे अमृत रेखा होती है।

रा·	बा·	वि·	सु	या·	सौ·	भा·	सा·	रौ·	श्वे·	मै·	चा·	ज·	वै·	तु·	अ·
स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र
δ	δ	δδ	δδ	○	δ	δ	δ	○	ψ	ψ	ψ	ψ	δ	δ	δ

गुरुरात्री

रात्री नोखं मुकुन्दो गगनयुगगजो विष्णुचापाङ्घ्रियुग्मम् ॥ ४४ ॥

ज्येष्ठादि मासों में गुरुवार की रात में प्रथम दो २ में शून्य, फिर तीन ३ में अमृत, पुनः एक १ में शून्य, तत्पश्चात् चार ४ में विघ्न, उपरान्त दो २ में अमृत, फिर दो २ में विघ्न और शेष २ में काल रेखा होती है ॥ ४४ ॥

का.	वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	गं.	श्वे.	प्रे.	चा.	ज.	वै.	तु.	अ.	रा.
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स.
○	○	δ	δ	δ	○	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	δ	δ	ꝏ	ꝏ	Ψ	Ψ

शुक्रदिवा

उक्त ज्येष्ठादि मासों में शुक्रवार के दिन में १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

शुक्रे युग्मंमुमुरारिर्गगनयुगगजो रामचापोऽथ पादौ ।

कथित ज्येष्ठादि मासो में शुक्रवार के दिन में पहिले दो २ मुहूर्त में विघ्न, फिर तीन ३ में अमृत, पुनः एक १ में शून्य, इसके वाद चार ४ में विघ्न, ततः दो २ में अमृत, उपरान्त दो २ में विघ्न शेष २ में काल रेखा होती है ।

वि.	सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	प्रे.	चा.	ज.	वै.	तु.	अ.	रा.	का.
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
ꝏ	ꝏ	δ	δ	δ	○	ꝏ	ꝏ	ꝏ	ꝏ	δ	δ	ꝏ	ꝏ	Ψ	Ψ

शुक्ररात्रौ

उक्त मासों में गुरुवार की रात में १६ मुहूर्त

तद्रात्रौ युग्मगोपीपतियुगगगनं श्रीपतिःखं पदे श्रीः ॥ ४५ ॥

ज्येष्ठादि मासों में शुक्रवार की रात में प्रथम दो २ में विघ्न, फिर चार ४ में अमृत, पुनः दो २ में विघ्न; ततः एक १ में शून्य ततः तीन ३ में अमृत, उपरान्त एक १ में शून्य फिर दो २ में काल और शेष १ मुहूर्त में अमृत रेखा होती है ॥४५॥

सु.	या.	सौ.	भा.	सा.	रौ.	श्वे.	प्रे.	चा.	ज.	वै.	तु.	अ.	रा.	का.	वि.
स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र
ꝏ	ꝏ	δ	δ	δ	δ	ꝏ	ꝏ	○	δ	δ	δ	○	Ψ	Ψ	δ

शनिदिवा

उक्त ज्येष्ठादि मासों में शनिवार के दिन में १६ मुहूर्तों की रेखा का ज्ञान

मन्दे श्रीयुग्मसिद्धिःखहरिहरि नभः सौरि खं सिद्धि खं वा ।

कथित ज्येष्ठादि मासों में शनिवार के दिन पहिले एक १ मुहूर्त में अमृत, फिर दो २ में विघ्न पुनः दो २ में अमृत, ततः एक १ में शून्य, उपरान्त चार ४ में अमृत, इसके बाद एक १ में शून्य, फिर दो २ में अमृत, पुनः एक १ में शून्य, फिर एक १ में अमृत और शेष १ में शून्य रेखा होती है ।

प्र.	सो.	भ्रा.	सा.	से.	शि.	ग्री.	ना.	उ.	वै.	तु.	अ.	न.	बा.	वि.	क्षु.
त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स
δ	ꝏ	ꝏ	δ	δ	o	δ	δ	δ	δ	o	δ	δ	o	δ	o

शनिरात्रौ

जेठ आदि मासों में शनि की रात में १६ मुहूर्त सारिणी

नक्तं श्रीयुग्मसिद्धिः खखयुगलहरिर्व्योमगोविन्द शून्यम् ॥ ४६ ॥

शनिवार की रात में प्रथम एक १ मुहूर्त में अमृत, फिर दो २ में विघ्न, पुनः दो २ में अमृत, तत्पश्चात् दो २ में शून्य, उपरान्त दो २ में विघ्न, ततः दो २ में अमृत, उपरान्त एक १ शून्य फिर तीन ३ में अमृत और शेष १ में शून्य रेखा होती है ॥ ४६ ॥

से.	प्रा.	का.	से.	द्वि.	अ.	ना.	उ.	बै.	तु.	अ.	रा.	ना.	वि.	क्षु.	या.
र	र	त	त	स	स	र	र	त	त	स	स	र	र	त	त
δ	ꝏ	ꝏ	δ	δ	o	o	ꝏ	ꝏ	δ	δ	o	δ	δ	δ	o

विशेष—यहां पर नाम से व वचन प्रमाण से रेखा जानना उचित प्रतीत होता है । अर्थात् रेखा के दूसरे नाम में जितने अक्षर होते हैं उतने ही मुहूर्तों में उक्त रेखा रहती है । और वचन से तात्पर्य है कि जो पहिले रेखाओं के नाम वर्णित किये हैं उनका नाम यदि श्लोक में आवे तो एक स्थान में उस रेखा को समझना चाहिए । एवं विघ्न रेखा धनुषाकृति वाली होती है अतः इसका निवास दो मुहूर्तों में होता है । क्योंकि धनुष की प्रत्यञ्चा दोनों ओर बंधी रहती है ॥ ४६ ॥

अथ जनुषि मुहूर्तफलम्—

अब आगे इन सोलह मुहूर्तों में जन्म लेने वाले का जो स्वभाव होता है, उसे बताते हैं ।

मुहूर्त जन्मवश फल

रौद्रे भवेत्क्रूरतरस्वभावः श्वेते तु गाम्भीर्ययुतो धनाढ्यः ।
मैत्राह्वये सर्वजनानुमित्रं चार्वाटके स्याच्छलछिद्रवृत्तिः ॥ १ ॥
कार्यक्षयः स्याज्जयदेवसंज्ञे वैरोचने भूतपतिः प्रभुर्वा ।
सुपंडितस्तुर्यमुहूर्तजातः स्वगेहसौख्यं लभतेऽभिजिज्जः ॥ २ ॥
हन्यात्कुलं रावणजातजन्मा स्याद्वालवेऽनेककलिप्रियश्च ।
विभीषणो भक्तिधनान्वितः स्यात्स्यान्नन्दनोत्थो वहुनन्दनो ना ॥३॥
जातिच्युतः स्यादथवाघकर्ता यमेऽथ सौम्ये धनधान्यवान् स्यात् ।
पराङ्गनासेवनकृद्भृगे स्यात्सावित्रिनाम्नीं प्रपठेत् सुविद्याम् ॥ ४ ॥

जिसका जन्म रौद्र मुहूर्त में होता है वह कठिन स्वभाव वाला, श्वेत में जातक गम्भीर स्वभावी व धनी, मैत्र में सर्वजनों का मित्र, चावर्ट में कपटी और बुराईयों का अन्वेषक, जयदेव में कार्य का नाशक, वैरोचन में भूतों का स्वामी या समर्थवान् तुरदेव में अच्छा विद्वान्, अभिजित में अपने घर में सुखी, रावण में अपने वंश का नाशक, वालव में अनेक रति क्रीडा का प्रेमी, विभीषण में भक्तिमान व धनी, नन्दन में अधिक पुत्रों से युक्त, याम्य में जाति से बहिष्कृत और पापी, सौम्य में धनी व धान्यवान्, भार्गव में दूसरों की स्त्रियों का सेवी और सावित्र नाम के मुहूर्त में जन्म लेने वाला जातक सुन्दर विद्या का अध्ययन कर्ता होता है ॥ १-४ ॥

सत्वादि में जातक का फल

यः सत्त्वजन्मा सतु धर्मकर्मा स्याद्राजसो लौकिकगीतिधर्मः ।
लोभादिना प्रोज्झितधर्मकर्मा स्यात्तामसोऽथ क्रमतो मुहूर्तः ॥ ५ ॥

जिसका सत्त्व गुण में जन्म होता है वह धार्मिक काम करने वाला, राजस में लौकिक धर्म कर्मा और तामस गुण में जन्म लेने वाला लोभ से समस्त धार्मिक कार्यों को छोड़ने वाला होता है ॥ ५ ॥

दिवारात्रावष्टमांशो वेला ।

सू दि०	सू रा०	चं दि०	चं रा०	मं दि०	मं रा०	वु दि०
उद्वेग	चर	अमृत	काल	रोग	उद्वेग	लाभ
चर	लाभ	काल	शुभ	उद्वेग	चर	अमृत
लाभ-	अमृत	शुभ	रोग	चर	लाभ	काल
अमृत	काल	रोग	उद्वेग	लाभ	अमृत	शुभ
काल	शुभ	उद्वेग	चर	अमृत	काल	राग
शुभ	रोग	चर	लाभ	काल	शुभ	उद्वेग
रोग	उद्वेग	लाभ	अमृत	शुभ	राग	चर
उद्वेग	चर	अमृत	काल	रोग	उद्वेग	लाभ

बु० रा०	वृ० दि०	वृ० रा०	शु० दि०	शु० रा०	श० दि०	श० रा०
अमृत	शुभ	राग	चर	लाभ	काल	शुभ
काल	रोग	उद्वेग	लाभ	अमृत	शुभ	रोग
शुभ	उद्वेग	चर	अमृत	काल	रोग	उद्वेग
रोग	चर	लाभ	काल	शुभ	उद्वेग	चर
उद्वेग	लाभ	अमृत	शुभ	रोग	चर	लाभ
चर	अमृत	काल	रोग	उद्वेग	लाभ	अमृत
लाभ	काल	शुभ	उद्वेग	चर	अमृत	काल
अमृत	शुभ	रोग	चर	लाभ	काल	शुभ

इति श्रीज्योतिर्विदगयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने मुहूर्तकथनं नाम त्रिंशत्तमं प्रकरणं समाप्तम् ।। ३० ।।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिषवेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का मुहूर्त कथन नामक तीसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ !

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदकृता त्रिंशत्प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ।। ३० ।।

अथ एकत्रिंशत्तमं सङ्क्रान्तिप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे इकतीसवें प्रकरण में संक्रान्ति किसे कहते हैं तथा उग्रादि नक्षत्रों में इसकी क्या संज्ञा व फल, पुण्य काल, विष्णु पदी आदि संज्ञा इत्यादि को विविध ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं ।

सङ्क्रान्तिलक्षणं[1] ज्योतिःसारे--

संक्रान्ति का लक्षण

पूर्वराशिं परित्यज्य उत्तरां याति भास्करः ।
स राशिः सङ्क्रमाख्या स्यान्मासर्त्वायनहायने ।। १ ।।

ज्योतिःसार नामक ग्रन्थ में बताया है कि पूर्व राशि का त्याग करके सूर्य जब दूसरी राशि में प्रवेश करता है तो इसे संक्रान्ति कहते हैं । यह एक मास, ऋतु, अयन, वर्ष में होती है ।

डेचण्श्वरः—

उग्रादि नक्षत्रों में संक्रान्ति की घोरादि संज्ञा का ज्ञान

उग्रर्क्षे च भवेद् घोरा क्षिप्रे ध्वाङ्क्षी प्रकीर्तिता ।
महोदरी चरे ज्ञेया मृदौ मन्दाकिनी स्मृता ।। २ ।।
ध्रुवे मन्दाथ मिश्राख्ये मिश्रा तीक्ष्णे तु राक्षसी ।
घोराद्या भानुवारादौ विज्ञेया स्मृतिवेदिभिः ।। ३ ।।

आचार्य चण्डेश्वर ने कहा है कि उग्र नक्षत्र में (पूर्वा ३, भरणी, मघा) संक्रान्ति घोरा, क्षिप्र नक्षत्रों में (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) में ध्वांक्षी, चर में (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) महोदरी, मृदु में (मृगशीर्ष, रेवती, चित्रा अनुराधा) मन्दाकिनी, ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी) में मन्दा, मिश्र (विशाखा, कृत्तिका) में मिश्रा और तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्रों (मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा) में संक्रान्ति राक्षसी नाम वाली होती है ।

तथा घोरादि संक्रान्ति सूर्यादि वार से युक्त होने पर होती है । जैसे सूर्य में घोरा सोम में ध्वांक्षी, भौम में महोदरी, बुध में मन्दाकिनी, गुरु में मन्दा, शुक्र में मिश्रा और शनिवार के दिन उक्त नक्षत्रों में राक्षसी संज्ञा वाली संक्रान्ति होती है ।। २-३ ।।

---

१. पृ० ५ श्लो० १ ।

श्रीपतिः—

श्रीपति के आधार पर वार क्रम से उक्त संक्रान्ति संज्ञा

घोरा रवौ ध्वांक्ष्यमृतद्युतौ च सङ्क्रान्तिवारे च महोदरी स्यात् ।
मन्दाकिनी ज्ञे च गुरौ च मन्दा मिश्रा भृगौ राक्षसी चार्कपुत्रे ॥४॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि रविवार में घोरा, सोम में ध्वांक्षी, भौमवार में महोदरी, बुध में मन्दाकिनी, गुरु में मन्दा, शुक्र में मिश्रा और शनिवार में संक्रान्ति राक्षसी संज्ञा वाली होती है ॥ ४ ॥

नक्षत्रवश संज्ञा

[1]उग्रक्षिप्रचरैर्मैत्रैर्ध्रुवमिश्राख्यदारुणैः ।
ऋक्षैः सङ्क्रान्तिरर्कस्य घोराद्याः क्रमशो मताः ॥ ५ ॥

उग्र, क्षिप्र, चर, मैत्र, ध्रुव, मिश्र, दारुण (तीक्ष्ण) नक्षत्रों में सूर्यादि वार क्रम से सूर्य को संक्रान्ति घोरा ध्वांक्षी आदि संज्ञक होती है ॥ ५ ॥

कश्यप ने कहा है 'घोरा ध्वांक्षी महोदर्यो मन्दा मन्दाकिनी तथा । मिश्रा राक्षसिका सूर्यसंकान्तिश्चार्कवासरात्' (प्र० मु० ३ प्र० १ श्लो० पी० टी०) ॥ ५ ॥

तथा वसिष्ठसंहिता में 'घोरोग्रर्क्षे ध्वांक्षी लघुभे महोदरी मृदुभे । मन्दाकिनी चरर्क्षे मन्दा मिश्रे च राक्षसी तीक्ष्णे' (१६ अ० ३२ श्लो०) ॥ ५ ॥

और भी देवीपुराण में मन्दा ध्रुवेषु विज्ञेया मृदौ मन्दाकिनी तथा । क्षिप्रे ध्वांक्षी विजानीयादुग्रे घोरा प्रकीर्तिता । चरैर्महोदरी ज्ञेया क्रूरैरुग्रैस्तु राक्षसी । मिश्रिता चैव विज्ञेया मिश्रैर्ऋक्षैस्तु संक्रमे' (मु० चि० म० ३ प्र० १ श्लो० पी टी०) ॥५॥

ज्योतिर्निबन्ध में भी 'सूर्ये घोरा विधौ ध्वांक्षी भौमवारे महोदरी । बुधे मन्दाकिनी ज्ञेया मन्दाख्या देवमन्त्रिणी । मिश्राभिधा कवेर्वारे राक्षसी स्यादिनात्मजे । केचिदाहुरिने ध्वाङ्क्षी घोराऽरेऽब्जे महोदरी' (९३ पृ० १–२ श्लो०) ॥ ५ ॥

अन्य भी ज्योतिःसार में 'घोरा रवौ ध्वांक्ष्यमृतद्युतौ च संक्रान्तिरारे च महोदरी स्यात् । मन्दाकिनी ज्ञे च गुरौ च मन्दा मिश्रा भृगौ राक्षसी चार्कपुत्रे' (४० पृ०) ॥५॥

फलनिर्णये—

फल का निर्णय

[2]घोरा सुखाय शूद्राणां विशां ध्वाङ्क्षी सुखप्रदा ।
महोदरी च चौराणां राज्ञां मन्दाकिनी हिता ॥ ६ ॥

---

१. मु० चि० ३ प्र० १ श्लो० पी० टी० ।
२. ज्यो० नि० ९३ पृ० ४-५ श्लो० ।

विप्राणां शुभदा मन्दा पशूनां मिश्रिका मुदे।
चाण्डालशौण्डिकादीनां सुखदा स्यात्तु राक्षसी ॥ ७ ॥

सफल स्पष्टार्थं वार नक्षत्र से संक्रान्ति नाम सारणी

वार	नक्षत्र	सं० नाम	फल
रवि	पू. फा. पू. षा., पू.भा., भ., म.,	घोरा	शूद्र सुखकारी
चन्द्र	अश्वि, पुष्प, अभि., ह	ध्वांक्षी	वैश्य सुखदात्री
भौम	स्वा., पुन, श्रव.. ध., श.,	महोदरी	चोरों को सुख देने वाली
बुध	मृ. चि. अनु. रे.	मन्दाकिनी	नृप सुखकारी
गुरु	उ.फा., उ. षा., उ. भा. रो.	मन्दा	ब्राह्मण सुखकारी
शुक्र	विशाखा, कृत्तिका	मिश्रा	पशु सुखकारी
शनि	आर्द्रा, आश्लेषा, ज्ये., मू.,	राक्षसी	अन्त्यज सुखकारी

घोरा नाम की शूद्रों को सुख देने वाली, ध्वांक्षी वैश्यों को, महोदरी चोरों को, मन्दाकिनी राजाओं को, मन्दा ब्राह्मणों को, मिश्रिका पशुओं को और चाण्डाल (शूद्र) और शराब वेचने वालों को राक्षसी नाम वाली संक्रान्ति सुख देने वाली होती है ॥ ६-७ ॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में दूसरे श्लोक के चतुर्थ चरण में 'कादिनां स्यादानन्दाय-राक्षसी' यह पाठान्तर है ॥ ६–७ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'शूद्रविट् चौरभूपद्विजगणपशुमुख्यसर्वजन्तूनाम्। शुभफलाः क्रमशस्ता नूनं संक्रान्तयस्तेषाम्' (१६ अ० ४ श्लो०) ॥ ६–७ ॥

तथा नारद कश्यप ने भी 'शूद्रतस्करवैश्यक्ष्मादेवभूपगवां क्रमात्। अनुक्तानां च सर्वेषां घोराद्याः सुखदाः स्मृताः' (मु० चि० ३ प्र० १ श्लो० पी० टी०) ॥ ६–७ ॥

मु० चि० में कहा है 'घोरार्कसंक्रमणमुग्ररवौ हि शूद्रान् ध्वाङ्क्षी विशो लघुविधौ च चरर्क्षभौमे। चौरान् महोदरयुता नृपतीन् ज्ञमैत्रे मन्दाकिनी स्थिरगुरौ सुखयेच्च मन्दा। विप्रांश्च मिश्रभृगौ तु पशूंश्च मिश्रा तीक्ष्णार्कजेऽन्त्यजसुखा खलु राक्षसी च' (३ प्र० १ श्लो०) ॥ ६–७ ॥

ज्योतिःसार में भी 'ध्वांक्षी वैश्यान् सुखयति महोदर्यलं चौरसार्थान् घोरा शूद्रानथ नरपतीनेव मन्दाकिनी च। मन्दाख्या च द्विजवरगणान् मिश्रकाख्या पशूंश्च चाण्डालान्तां प्रकृतिमखिलां राक्षसी संज्ञिता च' (४० पृ० ३ श्लो०) ॥ ६–७ ॥

मुहूर्तगणपति में भी 'सङ्क्रान्तिर्भानुवारे स्यात् घोराख्या मरणो मृगे। पूर्वात्रये च नक्षत्रे शूद्राणां सुखदा स्मृता। सोमवारेऽभिजित् पुष्याश्विनी हस्ते तथैव च। सङ्क्रान्तिः कथिता ध्वाङ्क्षी विशां सौख्यप्रदायिनी॥ श्रवणादित्रिभे स्वात्यां पुनर्वस्वौ कुजेऽहनि। या भवेत्सा तु चौराणां सौख्यदात्री महोदरी। बुधाहे या च रेवत्यां मृगे चित्रानुराधयोः। सा तु मन्दाकिनी नाम्ना नृपाणां सौख्यदायिनी। बृहस्पतौ यदा जाता रोहिण्यां चोत्तरात्रये। तदा मन्दाभिधा ज्ञेया विप्राणां हितकारिणी। भृगोर्वारे विशाखायां कृत्तिकायां च या भवेत्। सा तु मिश्रेति विख्याता पशूनां प्रीतिदायिनी। शनौ मूले तथा चार्द्रामाश्लेषा ज्येष्ठयोरपि। या भवेद्राक्षसी सा स्याद् दैत्यजानां सुखावहा' (१२ प्र० १–७ श्लो०) ॥ ६–७ ॥

काल समय के आधार पर संक्रान्ति का फल

[1]पूर्वाह्णे पीडयेद्भूपान् मध्याह्ने तु द्विजोत्तमान्।
विशोऽपराह्णेऽस्तमये शूद्रानुषसि गोपकान् ॥ ८ ॥

व्रतिनो हन्ति सन्ध्यायां पिशाचान् रजनीमुखे।
अर्द्धरात्रौ रात्रिचरान् परतो नटनर्तकान् ॥ ९ ॥

जब कि सूर्य संक्रान्ति पूर्वाह्ण में होती है तो राजाओं को, मध्याह्न में होने पर उत्तम ब्राह्मणों को, अपराह्ण में वैश्यों को, अस्त समय में शूद्रों को, उषः काल में गोपों को, सन्ध्या में व्रत करने वालों को, रात के प्रारम्भ में पिशाचों को, अर्धरात्रि में निशाचरों को और आधी रात के अनन्तर संक्रान्ति होने से नट व नाचने वालों को पीडा देने वाली होती है ॥ ८–९ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'पूर्वाह्णे नृपतिभयं मध्याह्ने हन्ति भूसुरानखिलान्। अपराह्णे वैश्यगणं शूद्रानखिलान् हि चास्तमये। रात्रिचरान्निशिसमये सन्ध्यासमये पिशाचगणान्। नटनर्तकानपरनिशि पशुपान्निखिलान्निहन्त्युषसि' (१६ अ० ८–९ श्लो०) ॥ ८–९ ॥

तथा नारदकश्यप ने भी कहा है 'पूर्वाह्णे नृपतीन् हन्ति विप्रान् मध्यदिने विशः। अपराह्णेऽस्तगे शूद्रान् प्रदोषे च पिशाचकान्। निशि रात्रिचरान्नाटयकारानपररात्रके। गोचारिणश्च सन्ध्यायां लिङ्गिनं रविसंक्रमे' (मु० चि० ३ प्र० ३ श्लो० पी० टी०) ॥ ८–९ ॥

---

१. ज्यो० नि० ९३ पृ० ६-७ श्लो०।

तथा मुहूर्तगणपति में भी 'आद्येऽह्नि त्र्यंशके राज्ञो द्वितीये हन्ति वै द्विजान् । तृतीये वैश्यकान् प्रान्त्ये सङ्क्रान्तिशूद्रवर्णकान् । प्रतियामक्रमाद्रात्रौ पिशाचान् राक्षसान्नटान् । पशुपालगणं हन्ति प्रभाते सर्वलिङ्गिनः' (१२ पृ० ८-६ श्लो० ॥ ८-६ ॥

और भी मुहूर्तचिन्तामणि में 'त्र्यंशे दिनस्य नृपतीन् प्रथमे निहन्ति मध्ये द्विजानपि विशोऽपरके च शूद्रान् । अस्ते निशा प्रहरकेषु पिशाचकादीन् नक्तं चरानपि नटान् पशुपालकांश्च । सूर्योदये सकललिङ्गिजनं च' (३ प्र० ३ श्लो०) ॥८-९॥

तथा ज्योतिःसार में भी 'पूर्वाह्णकाले नृपतिद्विजेन्द्रान् मध्ये दिने चाथ विशोऽपराह्णे । शूद्रान् रवावस्तमिते प्रदोषे पिशाचकान् रात्रिचरान्निशीथे । नटादिकांश्चापररात्रकाले प्रत्यूषकाले पशुपालकांश्च । संक्रान्तिरर्कस्य समस्तलिङ्गान् प्रभातसन्ध्यासमये निहन्ति' (४० पृ० ४-५ श्लो०) ॥८-६॥

स्पष्टार्थ सारणी

	प्रथम भा.	राजा पीडा
दिन	द्वितीयभा.	ब्राह्मण पीडा
	तृतीय भाग	वैश्य पीडा
रात	प्रथम याम	पिशाचपीडा
	द्वितीय याम	राक्षस पीडा
	तृतीय याम	नट पीडा
	चतुर्थ याम	पशुपालक पी.
	अस्तकाल	शूद्र पीडा
	उदयकाल	पाखण्डादियो

दिन रात विभाग से मेष संक्रान्ति का फल

[1]दिवा चेन्मेषसङ्क्रान्तिरनर्घकलहप्रदा ।
रात्रौ सुभिक्षमतुलं सन्ध्ययोर्वृष्टिरुत्तमा ॥ १० ॥

जब कि मेष संक्रान्ति दिन में होती है तो महर्घता व कलह रात में होने पर अधिक सुभिक्ष और सन्ध्याओं में मेष की संक्रान्ति होने से अच्छी वर्षा होती है ॥१०॥

दिन रात के आधार पर १२ संक्रान्तियों का फल

[2]मृगकर्क्यजगोमीनसङ्क्रान्तिर्निशि सौख्यदा ।
शेषेषु सप्तसु दिवा व्यत्ययादशुभं भवेत् ॥ ११ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६३ पृ० ८ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ६३ पृ० ६ श्लो० ।

जब कि रात में मकर, कर्क, मेष, वृष और मीन राशि की संक्रान्ति होती है तो सुख देने वाली होती है और अवशिष्ट ७ राशियों की दिन में होने पर सुखदायक होती है। इसके विपरीत होने पर अशुभ फल देने वाली होती है ॥११॥

तुला मेष का विशेष फल

[१]मेषं यदि (याति) दिवा सूर्यो रात्रौ तु सङ्क्रमेत्तुलाम् ।
तदा नन्दन्ति राजानो जनाश्च विविधोत्सवैः ॥ १२ ॥

जब कि मेष की संक्रान्ति दिन में और रात में तुला की संक्रान्ति होती है तो अनेक उत्सवों से राजा व जन-समुदाय आनन्दित होता है ॥१२॥

प्रकारान्तर

[२]यां तिथिं समनुप्राप्य तुलां गच्छति भास्करः ।
तस्यामेवार्कसङ्क्रान्तिर्यावन्मेषः शुभंकरः ॥ १३ ।

जब कि जिस तिथि में उदय होकर सूर्य तुला में जाता है और उसी तिथि में संक्रान्ति होती है तो मेष की संक्रान्ति तक शुभ होता है ॥ १३ ॥

[३]न्यूनातिचारे दुर्भिक्षं राष्ट्रभङ्गं जनक्षयम् ।
समसप्तगमर्केन्दौ सङ्क्रमे च महर्घता ॥ १४ ॥

न्यून व अधिक गति में संक्रान्ति होने पर अकाल, राष्ट्र भंग और जनक्षति होती है और सूर्य संक्रान्ति से सप्तम सम राशि में चन्द्रमा के होने पर महँगी होती है ॥ १४ ॥

श्रीपतिः—

विष्णुपदी आदि संक्रान्तियों की संज्ञा

हरिपदं स्थिरभे रविसङ्क्रमाद्द्वितनुभे षडशीतिमुखं भवेत् ।
उदगपायनगे मृगकर्किणौ क्रियतुलाधरयोर्विषुवत्स्मृतम् ॥ १५ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि स्थिर राशियों वृष, सिंह, वृश्चिक व कुम्भ राशि की संक्रान्ति की विष्णुपदी, द्विस्वभाव मिथुन, कन्या, धनु, मीन की षडशीति, मकर कर्क की उत्तरायन, दक्षिणायन और मेष तुला की संक्रान्ति विषुवत् संज्ञा वाली होती है ॥ १५ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'स्थिरराशिषु विष्णुपदं षडशीतिमुखं यद्युभयभे चैव । मृगकर्कटसंक्रान्ती ह्युदगयनं दक्षिणायनं चैव । अजघट संक्रान्तिद्वयं विषुवत् प्रकीर्तितं नित्यम्' (१६ प्र० १४-१५ श्लो०) ॥ १५ ॥

---

१. ज्यो० नि० ९४ पृ० १४ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ६४ पृ० १७ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ९४ पृ० १८ श्लो० ।

तथा नारद ने भी 'स्थिरभेऽर्कसंक्रान्तिर्ज्ञेया विष्णुपदाह्वया। षडशीतिमुखं ज्ञेयं द्विस्वभावेषु राशिषु। तुलाधराजयोर्ज्ञेयं विषुवं सूर्यसङ्क्रमे' (मु० चि० ३ प्र० ४ श्लो० पी० टी०)॥ १५॥

अन्य भी ज्योतिर्निबन्ध में 'स्थिरे विष्णुपदं कर्किदक्षिणायनमादितः। मृगे सौम्यायनं द्व्यङ्गे षडशीतिमुखं पुरः। घटेऽजे विषुवं' (६६ पृ० ६-७ श्लो०)॥ १५॥

एवं मुहूर्तचिन्तामणि में भी 'षडशीत्याननं चापनृयुक्कन्याझषे भवेत्। तुलाजौ विषुवं विष्णुपदं सिंहालिगोघटे' (३ प्र० ४ श्लो०)॥ १५॥

तथा मुहूर्तगणपति में 'वृश्चिके वृषभे सिंहे कुम्भे विष्णुपदी स्मृता। षडशीतिमुखा मीने कन्यामिथुनधन्विषु। प्रोक्तं याम्यायनं कर्के मकरे चोत्तरायणम्। विषुवाख्या तुले मेषे सङ्क्रान्तिः समुदाहृता' (१२ प्र० १०-११ श्लो०)॥ १५॥

विष्णुपदी आदि संक्रान्तियों में पुण्य काल का ज्ञान

[1]याम्यायने विष्णुपदे तदादौ दानाद्यनन्तं विषुवे च मध्ये।
वदन्त्यतीते षडशीतिवक्त्रे महर्षयः खल्वयने च सौम्ये॥ १६॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि दक्षिणायन व विष्णुपदी संक्रान्ति में आदि की घटियों, विषुव में मध्य में और षड़शीति व उत्तरायन में संक्रान्ति के बाद की घटी पुण्यजनक होती हैं॥ १६॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'हरिपदयाम्यत्वयने पूर्वदिनं स्नानदानयोः पुण्यम्। षडशीतिमुखे त्वयने सौम्ये पुण्यं च परदिनं निशि चेत्' (१९ अ० १६ श्लो०)॥१६॥

तथा मुहूर्तचिन्तामणि में भी 'याम्यायने विष्णुपदे चाद्या मध्यातुलाजयोः। षडशीत्यायने सौम्ये परा नाड्योऽतिपुण्यदा' (३ प्र० ८ श्लो०)॥ १६॥

गर्गः—

संक्रान्तियों में घट्यात्मक पुण्यकाल का ज्ञान

त्रिंशत्कर्कटसङ्क्रान्तौ पूर्वतः पुण्यनाडिकाः।
मकरे तूत्तराः पुण्याश्चत्वारिंशतिनाडिकाः॥ १७॥

गर्गाचार्य ने बताया है कि कर्क की संक्रान्ति में संक्रमण से पहिले की ३० घटी और मकर में संक्रान्ति के अनन्तर चालीस घटी तक पुण्य समय होता है॥ १७॥

[2]हेमाद्रौ—

हेमाद्रि के आधार पर पुण्यकाल

त्रिंशत्कर्कटके नाड्यः मकरे तु दशाधिकाः।
भविष्यत्यागमे पुण्यं अतीते चोत्तरायणे॥ १८॥

---

१. मु० चिं० ३ प्र० ८ श्लो० पी० टी०।
२. ज्यो० नि० ६६ पृ० ३ श्लो०।

हेमाद्रि में कहा है कि कर्क संक्रान्ति में पहिली ३० घटी और मकर में व्यतीत होने पर दश अधिक अर्थात् ४० घटी पुण्य का समय होता है ॥ १८ ॥

मकर में विशेष

[1]कार्मुकं च परित्यज्य मृगे याति दिवाकरः ।
प्रदोषे चार्द्धरात्रौ वा स्नानदाने परेऽहनि ॥ १९ ॥

जब धनु राशि को छोड़कर सूर्य मकर में प्रदोष या अर्धरात्रि में प्रवेश करता है तो स्नान दानादि दूसरे दिन होता है ॥ १९ ॥

प्रकारान्तर

[2]सूर्यास्तमनवेलायां यदि सौम्यायनं भवेत् ।
तदूर्ध्वं पुण्यकालः स्यात् परतश्चेत्परेऽहनि ॥ २० ॥

जब कि सूर्यास्त के समय मकर की संक्रान्ति होती है तो उसके पश्चात् की घटी में और सूर्यास्त के अनन्तर संक्रमण हो तो दूसरे दिन पुण्य काल होता है ॥ २० ॥

पुनः प्रकारान्तर

षट्त्रिंशद् घटिकाः पुण्या मृगेऽतीताः प्रकीर्तिताः ।
आद्यत्रिंशत्कुलीराःस्युः पुराणैः स्मृतिका विदुः ॥ २१ ॥

मकर संक्रान्ति में बाद की ३६ घटी में और कर्क में पूर्व की ३० घटी में पुण्य काल होता है । ऐसा प्राचीन स्मृति वेत्ताओं ने बताया है ॥ २१ ॥

[3]नाड्यः सन्निहितास्तत्र तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः ।
आसन्नं सङ्क्रमे पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः ॥ २२ ॥

संक्रान्ति में दिनार्ध के लगभग पुण्य काल होता है । संक्रान्ति क्रम से प्रत्येक की नाडी पृथक्-पृथक् दानादि में उचित होती है ॥ २२ ॥

श्रीपतिः—

श्रीपति के आधार पर

[4]कार्मुकं च परित्यज्य मृगे याति दिवाकरः ।
प्रदोषे चार्धरात्रे वा तदा भोगः परेऽहनि ॥ २३ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि धनु राशि का त्याग करके जब सूर्य प्रदोष काल में वा अर्धरात्रि में मकर राशि में प्रवेश करता है तो पुण्य काल दूसरे दिन होता है ॥ २३ ॥

कर्क का विशेष

मिथुनात्कर्कसङ्क्रान्तिर्यदि स्यादंशुमालिनः ।
प्रदोषे चार्धरात्रे वा तदा कुर्याद्गतेऽहनि ॥ २४ ॥

---

१. ज्यो० नि० ९७ पृ० ८ श्लो० । २. ज्यो० नि० ६६ पृ० ९ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ६६ पृ० ४ श्लो० । ४. ज्यो० सा० ४० पृ० ।

जब कि मिथुन से कर्क में सूर्य प्रदोष काल में या अर्धरात्रि में प्रवेश करता है तो गत दिन में अर्थात् उसी दिन पुण्य काल होता है ॥ २४ ॥

निर्णयसिन्धौ—

निर्णयसिन्धु के आधार पर

[1]भूयः प्रदोषे यदि वार्धरात्रे परेऽह्नि पुण्यं त्वथ कर्कटश्चेत् ।
प्रभातकाले यदि वा निशीथे पूर्वेऽह्नि पुण्यं त्विति माधवार्यः ॥ २५ ॥

निर्णयसिन्धु में कहा है कि मकर संक्रान्ति यदि प्रदोष में या अर्ध रात्रि में हो तो इसका पुण्य काल दूसरे दिन होता है।

जब कि कर्क का संक्रमण प्रभात या निशीथ काल में होता है तो इसका पुण्य काल पूर्व दिन में होता है। यह कथन माधव जी का है ॥ २५ ॥

वृद्धगार्ग्य ने कहा है 'यदास्तमयवेलायां मकरे याति भास्करः। प्रदोषे चार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि। अर्धरात्रे तदूर्ध्वे वा संक्रान्तौ दक्षिणायने। पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः' (मु० चि० ३ प्र० ६ श्लो० पी० टी०) ॥ २५ ॥

तथा भविष्योत्तरपुराण में भी 'कार्मुकन्तु परित्यज्य मृगं संक्रमते रविः। प्रदोषे चार्धरात्रे वा कुर्यादहनि पूर्वतः' (मु० चि० ३ प्र० ६ श्लो० पी० टी०) ॥ २५ ॥

रामः—

रामाचार्य के आधार पर संक्रान्ति के पूर्वापर की पुण्य घटी का ज्ञान

[2]याम्यायने विष्णुपदे चाद्या मध्या तुलाजयोः ।
षडशीत्यानने सौम्ये परा नाड्योऽतिपुण्यदाः ॥ २६ ॥

श्रीरामाचार्य ने मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है कि 'कर्क, वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ की संक्रान्तियों में संक्रमण काल से पहिले की १६ घटियाँ (६ घं० २४ मि०) स्नान दान में अधिक पुण्य देने वाली होती हैं। तथा तुला मेष संक्रान्तियों में मध्य की अर्थात् ८ पहिले की आठ बाद की और मिथुन कन्या, धनु, मीन तथा मकर की संक्रान्तियों में पीछे की १६ घटी पुण्यप्रद होती है ॥ २६ ॥

श्रीपतिः[3]—

श्रीपति के आधार पर समस्त संक्रमणों में गौण पुण्य काल का ज्ञान

पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः ॥ २७ ॥

जब तक सूर्य उदित नहीं होता तो पूर्व दिन ही ग्रहण करना चाहिये ॥ २७ ॥

पूर्वतोपि परतोऽपि सङ्क्रमात्पुण्यकालघटिकास्तु षोडश ।
अर्द्धरात्रिसमयादनन्तरं सङ्क्रमे परदिनं हि पुण्यदम् ॥ २८ ॥

---

१. ज्यो० नि० ९३ पृ० :

२. मु० चि० ३ प्र० ६ श्लो० पी० टी० ।

३. मु० चि० ३ प्र० ८ श्लो० ।

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि संक्रान्ति से पहिले और पीछे १६ घटी पुण्य काल होता है अर्थात् १६ घटी पहिले व १६ बाद में ३२ घटी पुण्य काल होता है। तथा आधी रात के बाद संक्रान्ति होने पर दूसरे दिन पुण्य काल होता है ॥ २८ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है 'दिनपतिसंक्रमणात्प्राक् षोडशनाडयश्च पुण्यकालः सः। परतः षोडश नाडयः सर्वत्र स्नानदानकार्येषु' (मु० चि० ३ प्र० ५ श्लो० पी० टी०) ॥ २८ ॥

मु० चि० में कहा है 'संक्रान्तिकालादुभयत्र नाडिकाः पुण्या मताः षोडशषोडशोष्णगोः' (३ प्र० ५ श्लो०) ॥ २८ ॥

विशेष—पी० टी० में ब्रह्मसिद्धान्त के मत से ३३ घटी पुण्य काल होता है। ऐसा मिलता है। यथा 'संक्रान्तेः प्राक् परस्ताच्च सार्द्धाः षोडश नाडिकाः। त्रयस्त्रिंशत् संक्रमस्थाः पुण्याः सर्वस्य नाडिकाः' (मु० चि० ३ प्र० ५ श्लो० पी० टी०)॥ २८ ॥

आधी रात में संक्रान्ति होने पर पुण्यकाल का ज्ञान

'यद्यर्धरात्र एवं स्यात्सम्पूर्णो रविसङ्क्रमः।
तदा दिनद्वयं पुण्यं स्नानदानादिकर्मसु ॥ २९ ॥

जब कि समस्त संक्रान्तियाँ आधी रात में होती हैं तो स्नान दान में पहिले व पीछे वाला दिन अर्थात् दोनों दिन पुण्य काल होता है ॥ २६ ॥

वृद्ध वसिष्ठ ने बताया है 'पूर्णे चेदर्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः। प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ' (मु० चि० ६३ प्र० ६ श्लो० पी० टी०) ॥ २६ ॥

तथा ब्रह्मसिद्धान्त में भी 'यद्यर्धरात्र एव स्यात् सम्पूर्णे संक्रमो रवेः। तदा दिनद्वयं पुण्यं स्नानदानादिकर्मसु' (मु० चि० ३ प्र० ६ श्लो० पी० टी०) ॥ २९ ॥

तथा मुहूर्तचिन्तामणि में भी 'पूर्णे निशीथे यदि संक्रमः स्याद्दिनद्वयं पुण्यम्' (३ प्र० ६ श्लो०) ॥ २९ ॥

लल्लः—

लल्लाचार्य के आधार पर पुण्य का ज्ञान

अहःसङ्क्रमणे पुण्यमहः सर्वं प्रकीर्तितम्।
रात्रौ सङ्क्रमणे पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः ॥ ३० ॥

अर्धरात्रादधस्तत्र दिनार्धस्योपरि क्रिया।
ऊर्ध्वंसङ्क्रमणे चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम् ॥ ३१ ॥

सम्पूर्णे चार्धरात्रे तु भानुः सङ्क्रमते यदा।
पुण्यकालं प्रयत्नेन प्रभाते मनुरब्रवीत् ॥ ३२ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६६ पृ० ११ श्लो०।

आचार्य लल्ल ने बताया है कि दिन में संक्रान्ति होने पर समस्त दिन पुण्यकाल होता है। और रात में होने पर आधे दिन तक स्नान दान करना चाहिए ॥ ३० ॥

आधी रात से पहिले संक्रान्ति हो तो दिनार्ध के बाद और आधी रात के पश्चात् होने पर आने वाले दिवस के उदय से दो प्रहर तक पुण्य काल होता है ॥ ३१ ॥

सम्पूर्ण आधी रात में होने पर पुण्य काल प्रभात समय में होता है। ऐसा मनु ऋषि ने बताया है ॥ ३२ ॥

विशेष—३०-३२ श्लोक ३ प्रकरण ७ श्लोक की टीका में उपलब्ध होते हैं किन्तु कुछ पाठान्तर के साथ। जैसे—अह्नि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम्। 'अर्धरात्रादधस्तास्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रिया। पूर्णे चेदर्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः। प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यम्' ॥ ३०-३२ ॥

मनुस्मृतिः—

मनुस्मृति के आधार पर रात में स्नान करना उचित

[1]ग्रहणेऽर्कस्य सङ्क्रान्तौ विवाहे पुत्रजन्मनि।
काम्यव्रते च मरणे रात्रौ स्नानार्थमुत्तमम् ॥ ३३ ॥

मनुस्मृति में बताया है कि ग्रहण, सूर्य संक्रमण, विवाह, पुत्र जन्म, काम्य व्रत और मरण काम में रात में स्नान उत्तम होता है ॥ ३३ ॥

भार्गवः—

भार्गवजी के आधार पर पुनःकथन

राहुपर्वणि विवाहकर्मणि स्थापने दिविषदां सुतोत्सवे।
सङ्क्रमे व्रतविधौ न निन्दिता स्नानदानविषये विभावरी ॥ ३४ ॥

ऋषि भार्गव ने कहा है कि ग्रहण, विवाह कार्य, देव स्थापन, पुत्रोत्सव, संक्रान्ति और व्रत कार्य में स्नान दान में रात निन्दित नहीं होती है ॥ ३४ ॥

दान महत्त्व

[2]संक्रान्त्यां यानि दत्तानि हव्यकव्यानि मानवैः।
तानि तस्य ददात्यर्कः सप्तजन्मनि निश्चितम् ॥ ३५ ॥

संक्रमण के समय में जो भी कुछ हव्य, कव्य दान किया जाता है उसे सूर्य भगवान् निश्चय से सप्त जन्मों में देते हैं ॥ ३५ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'दत्तानि यानि दानानि हव्यकव्यानि संक्रमे। अपामिव समुद्रस्य तेषामन्तो न विद्यते' ॥ ३५ ॥

---

१. ज्यो० नि० ९६ पृ० १९ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ९६ पृ० १८ श्लो०।

अथ मेषादिसङ्क्रमणे दानवस्तून्याह—

अब आगे निर्णय सिन्धु में विश्वामित्र जी के द्वारा कथित मेषादि १२ राशियों की संक्रान्ति में क्या २ दान करना चाहिये इसे बताते हैं।

विश्वामित्रो निर्णयसिन्धौ —

निर्णय सिन्धु के आधार पर मेषादि संक्रान्तियों में दान वस्तु

मेषसङ्क्रमणे भानोर्मेषदानं महाफलम्।
वृषसङ्क्रमणे दानं गवां प्रोक्तं तथैव च ॥ ३६ ॥

वस्त्रान्नयानदानानि मिथुने विहितानि तु।
घृतधेनुप्रदानं च कर्कटेऽपि विशिष्यते ॥ ३७ ॥

ससुवर्णच्छत्रदानं सिंहेऽपि विहितं तथा।
कन्याप्रवेशे वस्त्राणां वेश्मनां दानमेव च ॥ ३८ ॥

तुलाप्रवेशे धान्यानां गोरसानामपीष्टदम्।
वृश्चिके चलिते भानौ दीपदानं महाफलम् ॥ ३९ ॥

धनुःप्रवेशे वस्त्राणां यानानां च महाफलम्।
मकरप्रवेशे दारूणां दानमग्नेस्तथैव च ॥ ४० ॥

कुम्भप्रवेशे दानं तु गवामम्वुतृणस्य च।
मीनप्रवेशेऽम्लानानां मालानामपि चोत्तमम् ॥ ४१ ॥

निर्णय सिन्धु में ऋषि विश्वामित्र ने बताया है कि सूर्य के मेष संक्रमण में मेष (भेड़ा) का, वृष में गाय का, मिथुन में वस्त्र, अन्न, सवारी का, कर्क में घी व गाय का, सिंह में सोने के साथ हाथी का, कन्या में वस्त्र, तथा घर का, तुला में धान्य, गाय और रसों का, वृश्चिक में दीपक का, धनु में वस्त्र व सवारी का, मकर में वृक्ष व अग्नि या काष्ठादि का, कुम्भ में गाय व जल तृण का और मीन की संक्रान्ति में अम्लान मालाओं का दान करने पर अधिक शुभ फल होता है ॥ ३६-४१ ॥

कालविवेके—

संक्रान्ति में न नहानें का फल

[1]रविसङ्क्रमणे पुण्ये यो न स्नातीह मानवः।
सप्तजन्मान्तरे रोगी दुःखभाङ् निर्धनो भवेत् ॥ ४२ ॥

काल विवेक में बताया है कि जो संक्रान्ति समय में स्नान नहीं करता है वह सात जन्म तक रोगी, दुःखी और धन हीन होता है ॥ ४२ ॥

---

१. मु० चिं० ३ प्र० १३ श्लो० पी० टी०।

श्रीपतिः—

करणों के आधार पर सुप्त आदि संक्रान्ति का ज्ञान

[1]चतुष्पदे तैतिलनागयोश्च सुप्तो रविः सङ्क्रमणं करोति।
विष्टयां बवाख्ये च गराह्वये च सबालवाख्ये वणिजे निविष्टः ॥४३॥
किंस्तुघ्ननाम्नि शकुनावपि कौलवाख्ये
चोर्ध्वस्थितस्य खलु सङ्क्रमणं रवेः स्यात्।
धान्यार्घवृष्टिषु भवेत्क्रमशस्त्वनिष्ट-
मध्येष्टतेति मुनयः कथयन्ति पूर्वाः॥ ४४ ॥

आचार्य श्रीपति का कहना है कि चतुष्पद, तैतिल और नाग करण में सुप्त होकर रवि संक्रमण करता है। तथा भद्रा, बव, गर, बालव व वणिज में बैठकर एवं किंस्तुघ्न, शकुनि व कौलव में उर्ध्व (ऊँचा) स्थित होकर संक्रमण करता है।

सुप्त अवस्था में संक्रान्ति होने पर धान्य महँगे और अधिक वृष्टि या अनावृष्टि से हानि होती है। तथा आसीनस्थ में समता एवं ऊर्ध्वस्थिति में संक्रान्ति होने पर अभीष्टता अर्थात् इच्छानुसार अन्न पैदा होता है। ऐसा पूर्वाचार्यों का कहना है ॥ ४३–४४ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'नागचतुष्पदतैतिलकरणे सुप्तः करोति संक्रमणम्। कौलवशकुनिकिंस्तुघ्ने करणे चोर्ध्वस्थितो दिनकृत्। गरबवविष्टयां वणिजे सबालवे सततं च निविष्टः। सततं जगतां वृष्टिर्धान्यार्घत्वं विशेषतः क्षेमम्। क्रमशस्त्वनिष्टमिष्टं मध्यमरूपं भवेदतुलम्' (१९ प्र० ५–७ श्लो०) ॥ ४३–४४ ॥

नारद जी ने भी कहा है 'निविष्टो वणिजे विष्टयां बालवे च बवे गरे। कौलवे शकुनौ भानुः किंस्तुघ्ने चोर्ध्वसंस्थितः। चतुष्पादतैतिले नागे सुप्तः क्रान्ति करोति सः। धान्यार्घवृष्टिषु समं श्रेष्ठं हीनं भवेत्क्रमात्' (मु० चि० ३ प्र० १३ श्लो० पी० पी०) ॥ ४३–४४ ॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में भी 'स्यादुत्थितश्च किंस्तुघ्ने शकुनौ कौलवे रविः। संक्रान्तिस्तैतिले नागे प्रसुप्तस्य चतुष्पदे। निविष्टश्च गरे विष्टयां बवे वणिजबालवे। वृष्टयर्घादेः क्रमादिष्टमनिष्टं मध्यमं फलम्' (६४ पृ० ११–१२ श्लो०) ॥ ४३–४४ ॥

और भी मुहूर्तचिन्तामणि में 'स्यात्तैतिले नागचतुष्पदे रविः सुप्तो निविष्टस्तु गरादिपञ्चके। किंस्तुघ्न ऊर्ध्वः शकुनौ सकौलवे नेष्टः समः श्रेष्ठ इहार्घवर्षणे (३ प्र० १३ श्लो०) ॥ ४३–४४ ॥

---

१. मु० चि० ३ प्र० ११ श्लो० पी० टी०।

फलप्रदीपे—

फलप्रदीपोक्त ऊर्ध्वस्थित रवि की संक्रान्ति का फल

राज्ञां प्रजानां सौख्यं स्यात्समर्घं सस्यगोरसम् ।
नन्दते च जगत्सर्वं ऊर्ध्वसङ्क्रमणे रवेः ॥ ४५ ॥

फलप्रदीप में बताया है कि ऊर्ध्वस्थित सूर्य की संक्रान्ति में मास पर्यन्त राजा, जनता सब अन्न व गोरस की वृद्धि से सुखी होकर प्रसन्न होते हैं ॥ ४५ ॥

आसीनस्थ सूर्य संक्रान्ति का फल

धनधान्यं तथारोग्यं लोकानां सुखवर्धनम् ।
समता सर्वकार्येषु प्रविष्टे रविसङ्क्रमे ॥ ४६ ॥

जब कि आसीनस्थ रवि की संक्रान्ति होती है तो धन धान्य, नीरोगता से संसार प्रसन्न तथा समस्त कार्यों में समानता होती है ॥ ४६ ॥

सुप्त सूर्य संक्रान्ति का फल

शोकव्याधिभयं हानिचौराग्निनृपजं भयम् ।
जायते भुवि दुर्भिक्षं यदि सुप्तार्कसङ्क्रमः ॥ ४७ ॥

फलप्रदीप में कहा है कि रवि की सुप्त संक्रान्ति में १ मास तक शोक, रोग, भय, हानि, चोरी, अग्नि व राजा से संसार भयभीत होता है और दुर्भिक्ष होता है ॥ ४७ ॥

प्रयोजनाभावात्सङ्क्रान्तेर्वस्त्राभरणादिकं न लेख्यम् (लिखितम्) ।
प्रयोजन के अभाव से संक्रान्ति के वस्त्र व आभूषणों को नहीं लिखा गया है ।

नक्षत्रों के आधार पर संक्रान्ति मुहूर्त संज्ञा का ज्ञान

उत्तरात्रितयं ब्राह्मं विशाखा च पुनर्वसु ।
चत्वारिंशत्पञ्चयुक्तः सङ्क्रान्तिः स्यान्मुहूर्तकैः ॥ ४८ ॥

आर्द्राश्लेषा तथा ज्येष्ठा भरणी स्वातिवारुणम् ।
एभिः पञ्चदशी वाच्या शेषास्त्रिंशन्मुहूर्तकाः ॥ ४९ ॥

उत्तमाधममध्याख्या सङ्क्रान्तिः कथिता रवेः ।
धान्यादीनां समर्घत्वं समता च महर्घता ॥ ५० ॥

उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, पुनर्वसु में संक्रान्ति होनेपर ४५ मुहूर्त संज्ञा वाली, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, भरणी, स्वाती, शतभिषा में १५ मुहूर्त और अवशिष्टों में ३० मुहूर्त संज्ञा वाली होती है ।

४५ मुहूर्त वाली उत्तम, १५ की अधम और ३० मुहूर्त वाली सम होती है । इनमें धान्यादि भी अधिक, सम और महँगे उपलब्ध होते हैं ॥ ४८–५० ॥

ज्योति:सार में कहा है 'संक्रान्तौ मूर्तिभेदा हरपवनयमे वारुणे सार्पमैन्द्रे एषां पञ्चेन्दुसंज्ञा गुरुकरपितृभे चाग्निदस्त्रे च सौम्ये। त्वाष्ट्रे मैत्रे च मूले श्रुतिवसुवपुषां त्रीणि पूर्वा खरामैर्ब्राह्मेऽदित्ये द्विदैवे भवति शरकृतादुत्तरा त्रीणि ऋक्षम्। बाणवेदै: समर्घं स्यान् मध्यस्थं व्योमरामयो:। मूर्तौ पञ्चदशे याते दुर्भिक्षं च प्रजायते' (४३ पृ० १–२ श्लो०) ॥ ४८–५० ॥

अब आगे संक्रान्ति फलोपयोग के लिये नक्षत्रों की जघन्य, वहन्ति और सम संज्ञा को चण्डेश्वर के वाक्य से बताते हैं।

चण्डेश्वर:—

नक्षत्रों की जघन्य, वृहती, सम संज्ञा का ज्ञान

रौद्राहियाम्यानिलवारुणेन्द्रान्याहुर्जघन्यानि तथा वृहन्ति।
ध्रुवद्विदैवादितिभानि नूनं समानि शेषाणि पुनर्मुनीन्द्रै: ॥ ५१ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि आर्द्रा, आश्लेषा, भरणी, स्वाती शतभिषा, तथा ज्येष्ठा की जघन्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, विशाखा, पुनर्वसु की वृहन्ति और शेष नक्षत्रों की सम संज्ञा होती है ॥ ५१ ॥

नारदजी ने कहा है 'तारा जघन्या सार्पेन्द्रा वातार्द्रान्तिकतोयपा:। ध्रुवादितिद्विदैवत्यं वृहत्तारा: परा: समा:' (मु० चिं० ३ प्र० १० श्लो० पी० टी०) ॥ ५१ ॥

तथा वसिष्ठजी ने भी बताया है 'जघन्यधिष्ण्याणि जलेशसर्परौद्रेन्द्रयाम्यानिलदैवतानि। अध्यर्द्धधिष्ण्यान्यदितिद्विदैवस्थिराणि शेषर्क्षसमाह्वयानि' (मु० चिं० ३ प्र० १० श्लो० पी० टी० ॥ ५१ ॥

अन्य भी मुहूर्तचिन्तामणि में 'समं मृदुक्षिप्रवसुश्रवोऽग्निमघात्रिपूर्वास्त्रपभं वृहत् स्यात्। ध्रुवद्विदैवादितिभं जघन्यं सार्पाम्बुपार्द्रानिलशाक्रयाम्यम्' (३ प्र० १० श्लो०) ॥ ५१ ॥

जघन्यादि संज्ञाओं का फल

[1]वृहत्सु धान्यं कुरुते समर्घं जघन्यधिष्ण्यै: कुरुते महर्घम्।
समेषु धिष्ण्येषु समं हिमांशुर्वदन्त्यसन्दिग्धमिदं महीत: ॥ ५२ ॥

वृहन्ति संज्ञक नक्षत्रों में चन्द्रमा के रहने पर जब संक्रमण होता है तो पदार्थ सस्ते, जघन्य नक्षत्रों में महगी और सम संज्ञक नक्षत्रों में चन्द्रमा की स्थिति से संक्रान्ति होती है तो समानता, न सस्ती न महँगी होती है ॥ ५२ ॥

जघन्यादि नक्षत्रों में मुहूर्त संज्ञा व फल

[2]जघन्यभे सङ्क्रमणे मुहूर्ता: शरेन्दवो बाणकृता वृहत्सु।
खरामसङ्ख्या समभे महर्घं समर्घसाम्यं विधुदर्शनेऽपि ॥ ५३ ॥

---

१. ज्यो० नि० ९६ पृ०।

२. मु० चिं० ३ प्र० ११ श्लो०।

रामाचार्य ने मुहूर्त चिन्तामणि में बताया है कि जघन्य नक्षत्रों में संक्रान्ति होने पर १५ मुहूर्त संज्ञावाली, बृहति संज्ञकों में ४५ मुहूर्त की और सम संज्ञक नक्षत्रों में ३० मुहूर्त वाली होती है। इन अंकों से ही विदित होता है कि १५ में महंगी, ४५ में सस्ती और ३० में समानता वस्तुओं की होती है॥ ५३॥

संवित् प्रकाश में कहा है 'मुहूर्ताः पञ्चभूतुल्या जघन्यानां पराभिधाः। बृहतां पञ्चवेदास्ते समाना ते खवन्हयः। पञ्चेन्दु मुहूर्तेषु दुर्भिक्षं रविसंक्रमे। पञ्चाब्धिषु समर्घं स्यात् त्रिंशत्तु समता मता' (मु० चि० ३ प्र० ११ श्लो० पी० टी०)॥ ५३॥

गर्गः[1]

कर्क संक्रान्ति में ७ वारों के अनुसार वर्षा विंशोपक का ज्ञान

अर्कादिवारे सङ्क्रान्तौ कर्कस्याव्दविंशोपकः।
दिशो(१०) नखा(२०) गजा(८) सूर्या(१२) धृत्योष्टादश(१८) सायकाः(५) ॥५४॥

गर्गाचार्य जी ने बताया है कि सूर्यवार में कर्क संक्रान्ति होने पर वर्ष विंशोपक संख्या १० सोमवार में २०, मंगल में ८, बुध में १२, वृहस्पति में १८, शुक्र में १८ और शनिवार में कर्क की संक्रान्ति होने पर वर्ष विंशोपक ५ होता है॥ ५४॥

विशेष—विंशोपक से तात्पर्य है किस बीस या यों समझिये कि पूर्ण बली इन अंकों के आधार पर ही फल होता है॥ ५४॥

संक्रान्ति से प्रति व्यक्ति का जन्मवश शुभाशुभ फल

सङ्क्रमात्पूर्वनक्षत्रमधराख्यं वदेद्बुधः।
[2]त्रिकं षट्कं त्रिकं षट्कं त्रिकं षट्कं च विन्यसेत्॥ ५५॥
पन्था भोगो व्यथा वस्त्रं हानिश्च विपुलं धनम्।
[3]यस्य जन्मर्क्षमासादितिथौ सङ्क्रमणं भवेत्॥ ५६॥
तन्मासाभ्यन्तरे तस्य वैरं क्लेशं धनक्षयः।
तगरसरोरुहपत्रै रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः॥ ५७॥
स्नानं जन्मर्क्षगते रविसङ्क्रमणे नृणां शुभदम्।
क्षीरं वस्त्रं गुडं नवनीतं च शर्करा॥ ५८॥
पूगीफलं तिलं चाज्यं रसं च लवणं मधु।

संक्रान्ति नक्षत्र से पूर्व नक्षत्र की अधार संज्ञा होती है उससे तीन, छै, तीन, छै, तीन, छै संज्ञक नक्षत्रों में अपना जन्म नक्षत्र हो तो क्रम से अर्थात् यदि पहिले तीन नक्षत्रों में हो तो यात्रा, पुनः ६ नक्षत्रों में सुख, तत्पश्चात् तीन में हो तो थोड़ा दुःख

---

१. मु० चि० ३ प्र० १२ श्लो०।

२. ज्यो० नि० ९८ पृ० ३ श्लो० तथा मु० चि० ३ प्र० १८ श्लो० पी० टी० में दक्षिणात्य के नाम से।

३. ज्यो० सा० ४५ पृ० १ श्लो०।

फिर ६ में हो तो वस्त्र (कपड़ा) का लाभ, इसके बाद के ३ तीन में हो तो हानि और आगे के ६ नक्षत्रों में हो तो अधिक धन का लाभ उस व्यक्ति को होता है ॥५५–५५½॥

नारद जी ने कहा है 'संक्रान्तौ ग्रहणक्षंवा जन्मन्युभयपार्श्वयोः । नेष्टं त्रयं षट् शुभदं पर्यायाच्च पुनः पुनः । हानिर्वृद्धिः स्थानहानिस्तथा प्राप्तिरिति क्रमात् (मु० चि० २८ श्लो० पी० टी०) ॥ ५५–५५½ ॥

तथा मुहूर्तचिन्तामणि में भी 'संक्रन्तिधिष्ण्याधरधिष्ण्यतस्त्रिभे स्वभे निरुक्तं गमने ततोऽङ्गभे । सुखं त्रिभे पीडनमङ्गभेऽशुकं त्रिभेऽर्थहानी रसभे धनागमः' (३ प्र० १८ श्लो० ॥ ५५–५५½ ॥

और भी वसिष्ठसंहिता में 'हानिश्चेदर्कसंक्रान्तिर्जन्मपूर्वर्क्षतस्त्रिषु । अर्थलाभं तथा षट्सु शेषेऽष्वेवमुपप्लवः' (१६ अ० २७ श्लो०) ॥ ५५–५५½ ॥

जिस व्यक्ति के जन्म नक्षत्र, मास, तिथि में संक्रमण होता है तो वह मास भर विरोध, क्लेश और धन हानि से युक्त होता है । इसलिए रजनी सिद्धार्थ (सफेद सरसों) और लोध वृक्ष के पत्तों के साथ तगर के पत्तों से स्नान करने पर शुभता होती है ।

अशुभता में दूध, कपड़ा, गुड़, तिल, तेल, मक्खन, चीनी, सुपाड़ी, घी, रस, नमक और सहत का दान करने से अशुभता नष्ट होती है ॥ ५५½–५८½ ॥

अथ सङ्क्रान्तितुलादानम् ।

अब आगे संक्रान्ति में तुला दान व फल

मेषादिमीनपर्यन्तं तुलां दद्याद्विधानतः ॥ ५९ ॥

मेष से मीन तक संक्रान्तियों में विधान से तुला दान करना चाहिये ॥ ५६ ॥

आयुर्वृद्धिर्धनारोग्यनिष्पापः पुण्यवान् भवेत् ।
सङ्क्रान्तौ ग्रहणे काले पुण्याहे च विशेषतः ॥ ६० ॥

वैसे तुला दान के मुहूर्त हैं किन्तु विशेष कर संक्रान्ति, ग्रहण समय और पुण्य दिन में तुला के दान का महत्व होता है । संक्रमण में करने से आयु धन की वृद्धि, आरोग्यता और पापों का नाश होकर व्यक्ति पुण्यवान् होता है ॥ ६० ॥

तुला में स्थापित करने की वस्तु

हेमरौप्यादिमुक्तानां अन्नवस्त्रादिगोरसः ।
तिलतैलादिकानां च तुलादानसुखी भवेत् ॥ ६१ ॥

तुला में सोना, चाँदी, मोती आदि, अन्न, वस्त्र, गोरस, तिल तैलादि रखकर दान करने से सुख होता है ॥ ६१ ॥

अथ सङ्क्रान्तिकालः । स्मृतिनिर्णये—

अब आगे संक्रान्ति के समय को स्मृति निर्णय के वाक्यों से बता रहे हैं ।

संक्रमण काल व फल

यस्मिन्कालेऽर्कसंक्रान्तिर्दिवा वा यदि वा निशि।
तत्काले स्नानदानानि कृतकर्मा क्षयं भवेत् ॥ ६२॥

स्मृति निर्णय में कहा है कि दिन या रात जिस समय में संक्रान्ति हो उसी समय दानादि कार्य से अक्षयता प्राप्त होती है ॥ ६२ ॥

प्रकारान्तर

[1]निरंशः सविता यत्र तद्दिने स्नानमाचरेत्।
दानं चाप्यक्षयं प्रोक्तं रहस्यं मुनिभिः स्मृतम् ॥ ६३ ॥

जिस दिन सविता सूर्य अंश से शून्य होता है तो उसी दिन स्नान दान करने पर भी अक्षीणता होती है। ऐसा महर्षियों का कथन है ॥ ६३ ॥

अन्य प्रकार

[2]पुण्यं बहुतरं सूर्ये निरंशे मुनयो विदुः।
अंशकं प्राप्य दानादि नैव पुण्यानि भास्करे ॥ ६४ ॥

निरंश सूर्य में स्नान करने से अधिक फल की प्राप्ति होती है, और अंश में प्राप्त होने पर दानादि से पुण्य की प्राप्ति नहीं होती है ॥ ६४ ॥

पुनः प्रकारान्तर

गुरूराशौ तु सूर्यस्य प्रवेशसमयो नृणाम्।
निमेषस्यायुतांशः स्यात्सो ह्यस्माभिर्न गण्यते ॥ ६५ ॥

अधिक उदयांश राशि में संक्रान्ति का प्रवेश समय निमेष का १० सहस्रवाँ भाग होता है वह हम जानने में असमर्थ होते हैं ॥ ६५ ॥

गर्गः[3]

गर्गोक्त संक्रमण काल

सुस्थे नरे सुखासीने यावत्स्पन्दति लोचनम्।
तस्य त्रिंशत्तमो भागस्तत्परः परिकीर्तितः ॥ ६६ ॥

गर्गाचार्य जी ने बताया है कि स्वस्थ सुख से बैठे हुए मनुष्य का जितने समय में पलक नीचे आता है, उसके तीसवें भाग को तत्पर नाम से कहते हैं ॥ ६६ ॥

तत्पराच्छतमो भागस्त्रुटिरित्यभिधीयते।
त्रुटेः सहस्रभागो यः सः कालो रविसङ्क्रमः ॥ ६७ ॥

और तत्पर का १०० वाँ भाग त्रुटि संज्ञक तथा त्रुटि के १००० वें भाग को संक्रान्ति का काल समझना चाहिये ॥ ६७ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६७ पृ० १ श्लो०।

२. ज्यो० नि० ९७ पृ० २ श्लो०।

३. मु० चि० ३ प्र० ४ श्लो० पी० टी०।

तस्मिन्काले द्रवीभूतं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
ब्रह्मापि तं न जानाति किं पुनः प्राकृतो जनः ॥ ६८ ॥

उक्त संक्रमण काल में समस्त चराचर द्रवीभूत होता है इसे ब्रह्मा भी जानने में असमर्थ हैं तो साधारण जन कैसे जान सकता है ॥ ६८ ॥

तस्मान्मुनीन्द्रैः संक्रान्तेरर्वाक् षोडश नाडिकाः ।
पश्चात्षोडश सम्प्रोक्ताः स्थूलाः पुण्यतमास्तथा ॥ ६९ ॥

इसलिए श्रेष्ठ ऋषियों ने संक्रान्ति से पहिले सोलह और अनन्तर सोलह घटी स्थूल पुण्य का काल बताया है ॥ ६६ ॥

श्रीपतिः—

श्रीपति के आधार पर

यावद्भिरंशैरयनच्युतिः स्यात्तद्भोग्यकालेन दिवाकरस्य ।
च्युतिर्भवेद्विष्णुपदादिकानां रहस्यमेतन्मुनिभिः प्रदिष्टम् ॥ ७० ॥

आचार्य श्रीपति ने कहा है कि सूर्य को जितने अंशों से अयन च्युति होती है उतने ही अंशों के भोग्य काल से विष्णुपदादि संज्ञक सक्रान्तियों की च्युति होती है। अर्थात् सायन संक्रान्ति उतने अंशों से पूर्व ही होती है ॥ ७० ॥

चन्द्रवश संक्रान्ति फल

[1]यादृशेन हिमरश्मिमालिना सङ्क्रमो भवति तिग्मरोचिषः ।
साध्वसाध्वपि वशेन शीतगोस्तादृशं फलमवाप्नुयान्नरः ॥ ७१ ॥

जिस प्रकार के चन्द्रमा के रहने पर अर्थात् संक्रान्ति के समय में जिस पुरुष का जैसा शुभ वा अशुभ होता है तो उसी प्रकार से शुभ वा अशुभ मास होता है ॥ ७१ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'विधोर्बलाबलेनैतत् संक्रमेण दिवाकरः । ददाति तत्फलं नृणां तस्मिन् मासे तु गौणतः' (१९ प्र० २६ श्लो०) ॥ ७१ ॥

तथा कश्यप जी ने बताया है 'यादृशेनेन्दुना भानोः संक्रान्तिस्तादृशं फलम् । नरः प्राप्नोति तद्राशेः शीतांशोः साध्वसाधुतः' (मु० चि० ३ प्र० १९ श्लो० पी० टी०) और भी ज्योतिर्निबन्ध में यह श्लोक पृ० ६६ में पर काल विवेक के नाम से उद्धृत है ॥ ७१ ॥

और भी दीपिका में 'यादृशेन शशाङ्केन ग्रहः सञ्चरते नृणाम् । तादृशं फलमाप्नोति शुभं वा यदि वाऽशुभम्' (मु० चि० ३ प्र० १६ श्लो० पी० टी०) ॥ ७१ ॥

ताराबलादिन्दुरथेन्दुवीर्याद्दिवाकरः सङ्क्रममाण उक्तः ।
ग्रहाश्च सर्वेपि बलेन भानोर्भवन्ति शस्ता अपि सुप्रशस्ताः ॥ ७२ ॥

तारा के बली होने पर चन्द्रमा और चन्द्रमा के बल से सूर्य का संक्रमण काल और सूर्य के बली होने पर समस्त ग्रह सुप्रशस्त होते हैं ॥ ७२ ॥

---

१. ज्यो० सा० ४५ पृ० ।

ऋषि कश्यप ने बताया है 'ताराबलेन शीतांशुर्बलवांस्तद्वशाद्रविः। बली संक्रममाणस्य वशात् खेटा बलाधिकाः' (मु० चि० ३ प्र० १६ श्लो० पी टी०) ॥ ७२ ॥

चण्डेश्वरः—

संक्रमण की विशेष संज्ञा

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदा सङ्क्रमते रविः।
महाजया तु सा प्रोक्ता सप्तमी भास्करप्रिया ॥ ७३ ॥
तस्यां स्नानं हुतं दत्तं सर्वं भवति चाक्षयम्।
रविवारे विशेषेण कर्तव्यं पुण्यमादरात् ॥ ७४ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने कहा है कि शुक्ल पक्ष की सप्तमी में संक्रान्ति होने पर महाजया नाम की होती है। क्योंकि सप्तमो सूर्य को प्रिय है ॥ ७३ ॥

महाजया में स्नान, यज्ञ और दानादि विशेष कर सूर्य वार के होने पर करने से अक्षय होता है ॥ ७४ ॥

गर्गः—

गर्ग के आधार पर

[1]या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः।
पुण्यकालप्रसङ्गेन नियमश्च निगद्यते ॥ ७५ ॥

आचार्य गर्ग ने कहा है कि जो-घटी संक्रान्तियों की बताई गई हैं वे घटियां पुण्य का समय होता है। यहां पुण्य समय के प्रसङ्ग से नियम बताया गया है ॥ ७५ ॥

अब आगे संक्रान्ति में क्या-क्या नहीं करना चाहिये, इसे बताते हैं।

अथ संक्रान्तिदिने वर्ज्यम्—

संक्रमण में त्यागने के काम

सङ्क्रान्त्यां तैलसंयोगः स्त्रीसम्भोगः पलाशनम्।
दन्तधावनकाष्ठं च यः कुर्यात्पतितो भवेत् ॥ ७६ ॥

संक्रान्ति में तेल, स्त्री सम्भोग, मांस भक्षण, दांतुन (मुँह धोना) और काठ का छेदन संग्रहादि काम छोड़ देना चाहिये। जो यह काम करता है वह पतित होता है ॥ ७६ ॥

अन्यत्रापि—

अन्य जगह पर भी

दन्तधावनकाष्ठेन न शोध्याः सङ्क्रमे रदाः।
न वाच्यं परुषं छेद्यं न किंचिच्च तृणादिकम् ॥ ७७ ॥

संक्रान्ति के दिन लकड़ी से दाँतों को साफ नहीं करना चाहिये। तथा कठोर वचन नहीं बोलना व तिनके आदि को नहीं तोड़ना काटना चाहिये ॥ ७७ ॥

---

१. मु० चि० ३ प्र० ७ श्लो० पी० टी०।

न दोह्या गोमहिष्यश्च तस्मात्पूर्वे न भोजनम् ।
स्त्रीसङ्गमो न कर्तव्यो न विप्रेभ्यो विश्राणनम् ॥ ७८ ॥

संक्रमण काल में गाय, भैंस नहीं दुहना चाहिये, संक्रान्ति से पहिले भोजन नहीं करना चाहिये, स्त्री सम्भोग और ब्राह्मणों को दान नहीं देना चाहिये ॥ ७८ ॥

अथ करणे प्रत्यवायः—

पूर्वोक्त करने से विपरीतता

सूर्यसङ्क्रान्तिदिवसे यः कुर्याद्दन्तधावनम् ।
लोहकण्टकपुञ्जेन सविता तेन धर्षितः ॥ ७९ ॥

सूर्य की संक्रान्ति के दिन जो पुरुष लकड़ी से दातों को साफ करता है तो सूर्य लोहे के काटों से उसे कुरेदता है ॥ ७६ ॥

त्याज्य काम

सूर्यसङ्क्रान्तिदिवसे परुषं योऽभिभाषते ।
तेन षण्मासपर्यन्तं सविता कलहः कृतः ॥ ८० ॥

जो कि संक्रमण के समय दूषित कटु वचन बोलता है तो उसे सूर्य भगवान् ६ मास तक कलह में निमग्न बना देते हैं ॥ ८० ॥

प्रकारान्तर

सूर्यसङ्क्रान्तिदिवसे छिन्द्याद्यस्तु तृणादिकम् ।
तेन खड्गादिभिः शस्त्रैः सविता स्यात्प्रहारितः ॥ ८१ ॥

जो कि सक्रान्ति के दिन तृणादि को तोड़ता या काटता है तो सूर्य भगवान् तलवार आदि शस्त्र से उसके ऊपर प्रहार करते हैं ॥ ८१ ॥

पुनः प्रकारान्तर

सूर्यसङ्क्रान्तिदिवसे गवादिर्दुहतीह यः ।
तेन रश्मि गले वध्वा सविता कर्षितो भवेत् ॥ ८२ ॥

जो कि सूर्य की संक्रान्ति के समय गाय आदि का दुहन करता है तो सूर्य उसके गले में अपनी किरणों को बाँध कर कर्षण करते हैं ॥ ८२ ॥

पुनः वर्जित काम

सूर्यसङ्क्रान्तिसमयादर्वाक् यः कुरुतेऽशनम् ।
आषण्मासं ततस्तेन सविता स्यादुपोषितः ॥ ८३ ॥

जो कि संक्रान्ति से पूर्व भोजन करता है तो सूर्य भगवान् उसे ६ मास तक अनशन कराते हैं ॥ ८३ ॥

अन्य वर्जित काम

सूर्यसङ्क्रान्तिसमयाद्यः पुमान्काममोहितः ।
कुरुते कामिनीसङ्गं षण्ढतामुपयाति सः ॥ ८४ ॥

जो कि संक्रमण के समय काम के वशीभूत होकर स्त्री सम्भोग करता है तो नपुंसक होता है ॥ ८४ ॥

संक्रान्ति में कर्त्तव्य

सूर्यसङ्‌क्रान्तिसमयाद्ब्राह्मणं यो न भोजयेत् ।
स सप्तजन्मपर्यन्तं क्षयरोगी भविष्यति ॥ ८५ ॥

जो कि संक्रान्ति में ब्राह्मण को भोजन नहीं कराता वह सात जन्म तक क्षय रोग से पीड़ित होता है ॥ ८५ ॥

पुनः विधान

सूर्यसङ्‌क्रान्तिसमयान्न स्नानं कुरुते तिलैः ।
दद्रुपामार्शसां दोषैः पीडितः स्यादिति स्थितम् ॥ ८६ ॥

जो कि संक्रान्ति समय में तिलों से स्नान नहीं करता वह दाद, खाज और बवासीर रोगों से पीड़ित होता है ॥ ८६ ॥

अन्य त्याज्य कार्य

सूर्यसङ्‌क्रान्तिसमयान्न साष्टाङ्गं नमेद्रविम् ।
स स्याद्भवान्तरे नूनं पीडितो राजयक्ष्मणा ॥ ८७ ॥

सूर्य सक्रान्ति के समय साष्टांग सूर्य को नमस्कार नहीं करना चाहिये । जो करता है वह जन्म लेने पर राज यक्ष्मा रोग से दुःखी होता है ॥ ८७ ॥

अकरण में दुःख

सूर्यसङ्क्रान्तिसमयाद्दानं शक्त्या करोति न ।
स दरिद्रो महापापी प्रतिजन्मनि जायते ॥ ८८ ॥

जो कि संक्रान्ति में दान नहीं करता वह प्रति जन्म में बड़ा पापी व दरिद्री होता है ॥ ८८ ॥

दान का महत्त्व

सुवर्णं रजतं वापि ताम्रं वापि ददाति यः ।
इह दिव्यशरीरः स्यात्ततः स्वर्गे महीयते ॥ ८९ ॥

जो कि सोना, चाँदी, तांबा आदि का दान करता है वह संसार में दिव्य शरीर वाला और मरने पर स्वर्ग में जाता है ॥ ८९ ॥

भूल से स्नान न करने पर उपाय

सूर्यसङ्क्रान्तिसमयात्स्नानं नाज्ञानतः कृतम् ।
आदित्यहृदयं पाठ्यं सहस्त्रं तेन शुद्ध्यति ॥ ९० ॥

यदि भूल से संक्रान्ति में स्नान न हुआ हो तो आदित्य हृदय का एक हजार पाठ करवाने पर या करने पर शुद्धि होती है ॥ ९० ॥

पुनः उपाय

अज्ञानान्मैथुनाद्यं यः सङ्क्रान्तौ कुरुते यदि ।
त्रिरात्र्युपोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥ ९१ ॥

यदि अज्ञान वश संक्रान्ति में मैथुन हो जाय तो तीन रात तक उपवास करके पञ्चगव्य लेने से शुद्धि होती है ॥ ९१ ॥

उत्तरायन में विशेष दान

उत्तरे त्वयने विप्रे वस्त्रदानं महाफलम् ।
तिलपूर्णमनड्वाहं दत्त्वा रोगैः प्रमुच्यते ॥ ९२ ॥

उत्तरायन संक्रान्ति में ब्राह्मण को वस्त्र देने का अधिक फल होता है। तथा तिल से पूर्ण वैल का अर्थात् तिल का वैल दान करने से रोग की मुक्ति होती है ॥९२॥

अथ भास्वदजप्रवेशलग्नं जगल्लग्नं तस्माच्छुभाशुभज्ञानम्—

अब आगे सूर्य के मेष राशि में प्रवेश होने के समय जो लग्न होती है उसे जगत् लग्न कहते हैं। उस जगल्लग्न से संसार के शुभाशुभ फल को बताते हैं।

प्रश्नवैष्णवे—

प्रश्न वैष्णव वश

राकाकुहूशशिपभास्वदजप्रवेशः लग्नेश्वरः शुभखगैर्युतवीक्षितश्चेत् ।
तद्वत्सरे जगति सौख्यमलं प्रकुर्युः पापार्दितो गदनरेन्द्रभयं नराणाम् ॥९३॥

प्रश्न वैष्णव में कहा है कि पूर्णिमा, अमा, चन्द्र स्वामी, सूर्य का जब मेष में प्रवेश होता है उस समय जो लग्न हो उसका स्वामी अर्थात् लग्नेश व लग्न शुभ ग्रह से दृष्ट युत रहने पर उस वर्ष संसार में अधिक सुख भोक्ता मनुष्य होते हैं और जगत् लग्न व लग्नेश यदि पाप ग्रहों से युत दृष्ट होने पर मनुष्य रोग से पीड़ित तथा राजा से भय पाने वाले होते हैं ॥ ९३ ॥

प्रकारान्तर से संसार का शुभाशुभ

भानोर्मेषप्रवेशोदयभवनपतिः सग्रहः स्वोच्चसंस्थे
स्वर्क्षस्थे वापि केन्द्रे शुभगगनचरैर्दृष्टयुक्तो बलाढ्यः ।
तस्मिन्वर्षे प्रकुर्याज्जगति शुभसुखं भूरिशस्यं सुवृष्टि
क्रूरः क्रूरार्दितो वा दिशति नृपभयं कष्टमन्नं महर्घम् ॥ ९४ ॥

सूर्य के मेष में प्रवेश होने के समय जो लग्न होता है उसका स्वामी ग्रह के साथ उच्च या अपनी राशि अथवा केन्द्र में शुभ ग्रह से दृष्ट युत बलवान् हो तो संसार में सुन्दर सुख, अधिक अन्न और अच्छी वर्षा होती है।

अथवा लग्नेश पाप ग्रह से पीड़ित हो तो राजा को भय, कष्ट से अन्न और महँगी होती है ॥ ९४ ॥

पुनः प्रकारान्तर से

मेषप्रवेशोदयतः खरांशोः केन्द्रेषु पापोडुपतीत्थशाले ।
पापग्रहैर्दृष्टियुते च तस्मिन्वर्षे गदार्तिः प्रियमन्नमुर्व्याम् ॥ ९५ ॥

जब कि सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है तो उस समय जो लग्न होती है उससे केन्द्र में चन्द्रमा पापग्रह के साथ इत्यशाल योग करता हो और पाप ग्रह से दृष्ट युत होने पर उस वर्ष संसार में रोग से पीडा और अन्न प्रिय प्राणी होते हैं ॥ ९५ ॥

जगत लग्न से सस्ती महँगी का ज्ञान

लग्ने बलाढ्ये निजनाथसौम्यैर्युक्तेक्षितः केन्द्रगतैः शुभैश्च ।
सर्वं समर्घं विबलैर्विलग्ने केन्द्रेषु पापैः सकलं महर्घम् ॥ ९६ ॥

जगत लग्न के बली होने पर तथा अपने स्वामी या शुभग्रह से दृष्ट युत होकर केन्द्र में या शुभग्रह हो तो सस्ती और निर्बल लग्न और केन्द्र में पाप ग्रहों के रहने पर महँगी होती है ॥ ६६ ॥

अथ मनुष्याणां जन्मलग्नात्प्रतिवर्षं शुभाशुभज्ञानम्—

अब आगे मनुष्यों के लग्न से जगत लग्न के आधार प्रति वर्ष होने वाले शुभाशुभ को बताते हैं ।

मुकुन्दः—

स्वजन्म लग्न से शुभाशुभ प्रतिवर्ष का

जन्मोदयाद्भास्वदजप्रवेशलग्नं हि यद्भावगतं शुभान्वितम् ।
तद्भाववृद्धि प्रकरोति तस्मिन्वर्षे नृणां पापयुतं तदन्यथा ॥ ९७ ॥

आचार्य मुकुन्द ने बताया है कि अपनी जन्म लग्न से मेष प्रवेश लग्न जिस भाव में शुभ ग्रह से युक्त हो तो उस भाव की वृद्धि पुरुषों की होती है । और पाप ग्रह से युक्त होने पर उस भाव फल का ह्रास होता है ॥ ६७ ॥

स्वजन्म लग्न से प्रति भाव में जगत लग्न रहने का फल

जन्मोदये देहसुखं धनेऽर्थलाभस्तृतीये च कुटुम्बवृद्धिः ।
तुर्ये सुहृत्सौख्यमथात्मजाप्ति पुत्रेऽथ षष्ठेऽरिपराजयः स्यात् ॥ ६८ ॥

स्त्रीसौख्याप्तिर्भवति मदने मृत्युरुग्भिश्च रन्ध्रे
धर्मार्थाप्तिस्तपसि दशमे वित्तसौख्यं पदाप्तिः ।

लाभे लाभः सुखधनचयो दुःखदारिद्रचमन्त्ये
पुंसोर्मेषे प्रविशति रवौ जन्मलग्नाद्विलग्ने ॥ ९९ ॥

यदि जन्म की लग्न में जगत लग्न हो तो देह सुख, दूसरे में धन की प्राप्ति तीसरे में परिवार की वृद्धि, चौथे में मित्र सुख, पाँचवें में पुत्र प्राप्ति, छटे में शत्रु का पराजय, सातवें में स्त्री भोग सुख, आठवें में रोग से मृत्यु, नवें में धर्म का लाभ,

दशवें में धन सुख और पद की प्राप्ति, ग्यारहवें में लाभ, सुख धन की वृद्धि और जन्म लग्न से बारहवें में जगत लग्न के रहने पर दुःख व दरिद्रता होती है ॥६८-९६॥

प्रकारान्तर से जगत लग्न का फल

जन्मलग्नाद्वर्षलग्नाज्जगल्लग्नं यदा भवेत्।
अष्टमे द्वादशे वापि स वर्षो न शुभावहः ॥ १०० ॥

जन्म लग्न व वर्ष लग्न से जगत लग्न आठवें या बारहवें भाव में जिस पुरुष के होती है वह वर्ष उसके लिये शुभकारी नहीं होता है ॥ १०० ॥

नगर का शुभाशुभ

अष्टमे द्वादशे वापि भवेद्यत्पुरराशितः।
जगल्लग्नं तदा हानिस्तत्पुरस्य न संशयः ॥ १०१ ॥

जिस नगर की राशि से आठवें वा बारहवें भाव में जगत लग्न होती है तो उस नगर की हानि होती है। इसमें संशय नहीं करना चाहिये ॥ १०६ ॥

अथ वृषार्कप्रवेशलग्नाच्छारदान्नविचारः—

अब आगे वृष राशि में सूर्य के प्रवेश कालीन लग्न से शरद-ऋतु में होने वाले अन्नों के शुभाशुभ के विचार को बताते हैं।

तत्रैव—

वहीं पर ही कहा है

वृषप्रवेशे सवितुर्मृगेन्द्र (५) वृषा (२) लि (८) कुम्भो (११) पगतैः शुभग्रहैः।
पापैस्तुला (७) कर्कमृगाङ्गनास्थैः स्याच्छारदान्नस्य समृद्धिरुत्तमा ॥१०२॥

सूर्य के वृष राशि में प्रवेश कालीन लग्न से ५।२।८।११ में शुभ ग्रह और ७।४।१०।६ में पाप ग्रह हों तो शरदकालीन अन्न की अच्छी वृद्धि होती है ॥ १०२ ॥

प्रकारान्तर से फल

वृषप्रवेशे सवितुः शशीज्ययोः कुम्भालिसिंहोपगयोः सुवीर्ययोः।
शुक्रज्ञयोर्मेषनृयुग्मसंस्थयोः स्याच्छारदान्नस्य समृद्धिरीप्सिता ॥१०३॥

सूर्य के वृष प्रवेश लग्न से कुम्भ, वृश्चिक या सिंह में बली चन्द्रमा गुरु हों और शुक्र बुध, मेष या मिथुन में हों तो शरदकालीन अन्न की इच्छित वृद्धि होती है ॥ १०३ ॥

अन्न हानि योग

वृषप्रवेशे सवितुश्च सिंहवृषालिकुम्भोपगतैश्च पापैः।
वीर्यान्वितैः सौम्यखगैरवीर्यैर्जातं विनश्येत् खलु शारदान्नम् ॥ १०४ ॥

सूर्य के वृष प्रवेश समय में लग्न से सिंह, वृष, वृश्चिक, कुम्भ राशि में बलवान् पाप ग्रह और निर्बल शुभ ग्रह हों तो शरदकालीन अन्नों का विनाश होता है ॥ १०४ ॥

प्रकारान्तर से

वृषप्रवेशे सवितुर्हयाङ्गवृषालिसंस्थैरशुभग्रहेन्द्रैः ।
संशुष्यतेऽल्पं खलु जातमात्रमुत्पद्यतेऽल्पं भुवि शारदान्नम् ॥ १०५ ॥

सूर्य के वृष प्रवेश लग्न से तुला, कन्या, वृष, वृश्चिक में पाप ग्रहों के रहने पर पैदा हुए अन्न कुछ सूखते हैं और अल्प उत्पन्न होते हैं ॥ १०५ ॥

पुनः प्रकारान्तर से हानि योग

वृषप्रवेशे सवितुर्नृयुग्ममेषालिसंस्थैरशुभग्रहेन्द्रैः ।
सौम्यग्रहेन्द्रैर्न युतेक्षितश्च जातं विशुष्येत्खलु शारदान्नम् ॥ १०६ ॥

सूर्य के वृष राशि प्रवेश में लग्न से मिथुन, मेष, वृश्चिक में पाप ग्रह हों तथा शुभ ग्रहों से दृष्ट या युक्त न हों तो शरदकालीन अन्न सूखते हैं ॥ १०६ ॥

पुनः समृद्धि योग

वृषप्रवेशे तरणेश्च मीने ज्ञशुक्रयोः केन्द्रगयोः शशीज्ययोः ।
बलाढ्ययोः सद्ग्रहदृष्टयोश्च स्याच्छारदान्नस्य समृद्धिरुत्तमा ॥१०७॥

सूर्य के वृष प्रवेश लग्न से मीन में बुध-शुक्र हों और केन्द्र में बली चन्द्रमा, गुरु शुभ ग्रह से दृष्ट हों तो शरदकालीन अन्न की वृद्धि होती है ॥ १०७ ॥

अथ मिथुनार्कप्रवेशलग्नवशाद्वृष्टिविचारः—

अब आगे सूर्य के मिथुन में जाने के समय जो लग्न होती है उससे वर्षा का विचार बताते हैं ।

तत्रैव—

सूर्य के मिथुन प्रवेशकालीन लग्न से वर्षा का ज्ञान

सहस्ररश्मेर्मिथुनप्रवेशे शशाङ्कवाचस्पतिशुक्रसौम्यैः ।
मीनाश्च कन्यामिथुनस्थितैः स्यात्तदा सुवृष्टिः सकलान्नकर्त्री ॥ १०८ ॥

सूर्य के मिथुन राशि में प्रवेश करने पर जो लग्न हो उससे चन्द्रमा, गुरु, शुक्र, बुध, मीन, कन्या, मिथुन राशियों में हों तो अच्छी वर्षा से समस्त अन्नों की वृद्धि होती है ॥ १०८ ॥

प्रकारान्तर

सहस्ररश्मेर्मिथुनप्रवेशे शुक्रज्ञयोः कर्कवृषस्थयोश्च ।
चन्द्रे झपे देवगुरौ कुमार्यां विपर्ययाद्वापि तदा सुवृष्टिः ॥ १०९ ॥

सूर्य के मिथुन राशि प्रवेशकालीन लग्न से शुक्र, बुध, कर्क, वृष में हों, चन्द्रमा मीन में और गुरु कन्या में हो तो अच्छी वृष्टि अथवा इसके विपरीत से भी अच्छी वर्षा होती है ॥ १०९ ॥

लग्न से अभाव का ज्ञान

सहस्ररश्मेर्मिथुनप्रवेशे माहेयसूर्यात्मजसैंहिकेयैः ।
मीनाश्च कन्यामिथुनस्थितैश्च तदाल्पवृष्टिः प्रियमन्नमुर्व्याम् ॥ ११० ॥

सूर्य के मिथुन राशि प्रवेश लग्न से भौम, शनि, राहु ग्रह मीन, कन्या, मिथुन में स्थित हों तो अल्प वर्षा होती है तथा अन्न प्रिय होता है ॥ ११० ॥

पुनः सुन्दर वर्षा का ज्ञान

सहस्ररश्मेर्मिथुनप्रवेशे　　ज्ञशुक्रयोर्मेषनृयुग्मसंस्थयोः ।
चन्द्रेज्ययोश्चापगयोश्च पापैस्तुलालिसिंहोपगतैः सुवृष्टिः ॥ १११ ॥

सूर्य के मिथुन प्रवेशकालीन लग्न से बुध, शुक्र, मेष, मिथुन में हों तथा चन्द्रमा गुरु, धनु राशि में व पापग्रह तुला, वृश्चिक, सिंह में हों तो अच्छी वर्षा होती है ॥ १११ ॥

पुनः अल्पवृष्टि योग ज्ञान

सहस्ररश्मेर्मिथुनप्रवेशे　मन्दारयोः　कर्कवृषस्थयोश्चेत् ।
द्विदेहभस्थे दनुजो विशेषात्तदाल्पवृष्टिः प्रियमन्नमुर्व्याम् ॥ ११२ ॥

सूर्य के मिथुन राशि प्रवेशकालीन लग्न से शनि भौम कर्क वृष में, शुक्र स्विस्वभाव राशि में हो तो अन्न प्रिय जनता और थोड़ी वर्षा होती है ॥ ११२ ॥

शुभाशुभग्रहैर्मिश्रैः　फलं　मिश्रं　प्रजायते ।
सूर्ये क्रूरान् गुरुः पश्येत् तदा वृष्टिश्च मध्यमा ॥ ११३ ॥

शुभ अशुभ ग्रहों के योग से सूर्य मिश्रित और क्रूर ग्रह, गुरु से दृष्ट होने पर मध्यम वर्षा होती है ॥ ११३ ॥

अथ वृश्चिकार्कप्रवेशलग्नवशाद् ग्रैष्मिकान्नविचारः—

अब आगे वृश्चिक राशि में सूर्य के प्रवेश कालीन लग्न से गर्मी के अन्नों के शुभाशुभत्व का विवेचन करते हैं ।

तत्रैव—

वृश्चिक राशि प्रवेश लग्न से गर्मी के अन्नों का शुभाशुभ

अलिप्रवेशे सवितुश्च कुम्भे वृषालिसिंहोपगतैश्च सौम्यैः ।
पापग्रहैः कर्कमृगाजसंस्थैः स्याद् ग्रैष्मिकान्नस्य परा समृद्धिः ॥ ११४ ॥

सूर्य के वृश्चिक राशि में प्रवेश करने के समय जो लग्न हो उससे कुम्भ, वृष, वृश्चिक, सिंह राशि में शुभग्रह और पापग्रह कर्क, मकर, मेष में हों तो गर्मी के अन्नों की परमाधिक वृद्धि होती है ॥ ११४ ॥

पुनः वृद्धि योग का ज्ञान

अलिप्रवेशे सवितुः शशीज्ययोः कुम्भस्थयोः सिंहवृषस्थयोः पृथक् ।
शुक्रेणयोश्चापतुलालिसंस्थैः स्याद् ग्रैष्मिकान्नस्य समृद्धिरुत्तमा ॥ ११५ ॥

सूर्य के वृश्चिक राशि प्रवेश कालीन लग्न से कुम्भ में चन्द्रमा गुरु या सिंह वृष में अलग अलग और शुक्र शनि, धनु, तुला, वृश्चिक में स्थित हों तो गर्मी के अन्नों की अधिक वृद्धि होती है ॥ ११५ ॥

पुनः प्रकारान्तर

अलिप्रवेशे सवितुः कुमार्यो ज्ञशुक्रयोः केन्द्रगयोः शशीज्ययोः ।
बलाढ्ययोः सद्ग्रहदृष्टयोश्च स्याद् ग्रैष्मिकान्नस्य समृद्धिरुत्तमा ॥ ११६ ॥

सूर्य के वृश्चिक राशि प्रवेश कालीन लग्न से कन्या में बुध शुक्र और केन्द्र में बली शुभग्रह से दृष्ट चन्द्रमा गुरु हों तो गर्मी के अन्नों की वृद्धि होती है ॥ ११६ ॥

ग्रीष्मकालीन अन्न विनाश योग

अलिप्रवेशे तरणेर्नृयुग्मवृषस्थयोः सौरिमहीजयोश्चेत् ।
तुलाघटाश्चालिगयोर्द्वयोर्वा स्याद् ग्रैष्मिकान्नस्य नवस्य नाशः ॥ ११७ ॥

सूर्य के वृश्चिक राशि प्रवेशकालीन लग्न से मिथुन वृष में शनि भौम और तुला कुम्भ वृश्चिक में या दो में शनि भौम हों तो ग्रीष्मकालीन नवीन अन्नों का नाश होता है ॥ ११७ ॥

प्रकारान्तर

अलिप्रवेशे तपनस्य सिंहकुम्भस्थयोः सौरिमहीजयोश्च ।
राहौ वृषस्थे धटवृश्चिकस्थे वै ग्रैष्मिकान्नं भुवि शेषमेति ॥ ११८ ॥

सूर्य के वृश्चिक राशि प्रवेश कालीन लग्न से सिंह. कुम्भ में शनि, भौम और वृष, तुला या वृश्चिक में राहु हो तो अन्न का अभाव होता है ॥ ११८ ॥

पुनः प्रकारान्तर

शुभस्य दृष्टया नहि सर्वसस्यनाशो भवेत्पापखगे स्मरस्थे ।
ग्रीष्मोद्भवस्याथ शरद्भवस्य सस्यस्य जन्म प्रवदेत्सुयोगात् ॥ ११९ ॥

यदि सप्तमस्थ पापग्रह शुभग्रह से दृष्ट हो तो समस्त ग्रीष्मकालीन अन्नों का विनाश नहीं होता है । तथा शरदकालीन अन्नों की सुयोग से उत्पत्ति होती है ॥ ११९ ॥

अथवा

मेषे वृषे च मिथुने शुभदृष्टयुक्तेऽन्नं ग्रैष्मिकं सुसुलभं त्वभयं पृथिव्याम् ।
सूर्यो धनुर्मृगघटेषु च शारदान्नं कुर्यात्समर्घमशुभैः सहितो महर्घम् ॥१२०॥

मेष, वृष, मिथुन संक्रमणकालीन लग्न यदि शुभग्रह से दृष्टयुत हो तो ग्रीष्मकालीन अन्न सुलभ व भूमि में निर्भयता होती है ।

धनु, मकर, कुम्भ संक्रमणकालीन लग्न शुभग्रह से दृष्टयुत हो तो अन्न सस्ते और पापग्रह से दृष्टयुत हो तो महंगी होती है ॥ १२० ॥

पुनः प्रकारान्तर से

[1]पूर्वसङ्क्रान्तिनक्षत्रात्परसङ्क्रान्तिऋक्षकम् ।
द्वित्रिसङ्ख्या समर्घं स्याच्चतुः पञ्च महर्घता ॥ १२१ ॥

---

१. ज्यो० सा० ४४ पृ० ३२ श्लो० ।

गत मास की संक्रान्ति में जो नक्षत्र हो उससे दूसरी संक्रान्ति के नक्षत्र को गिनने पर यदि दूसरा या तीसरा नक्षत्र हो तो सस्ती और चौथा या पाँचवां नक्षत्र हो तो महंगी होती है ॥ १२१ ॥

ज्यो० नि० में कहा है—'पूर्वसंक्रान्तिनक्षत्रात्परसंक्रान्तिभं यदि । द्वित्रिसंख्या समर्घस्यात्तुर्यपञ्चमहर्घता (६८ पृ०, ७ श्लो०) ॥ १२१ ॥

पुनः प्रकारान्तर

सङ्क्रान्तिनाड्या तिथिवारऋक्षधान्याक्षरं वह्निहरेत्तु भागम् ।
एके समर्घं द्वितीये च साम्यं शून्ये महर्घं मुनयो वदन्ति ॥ १२२ ॥

संक्रान्ति घटी में तिथि, वार, नक्षत्र और धान्य के अक्षरों के अङ्कों को जोड़कर तीन का भाग देने से एक शेष में सस्ती, दो में समानता और शून्य शेष में उस अन्न की महंगी होती है ॥ १२२ ॥

विशेष—ज्योतिषसार में भी प्रकारान्तर के साथ वर्णित है 'संक्रान्तिनाडीतिथिवार ऋक्षधान्याक्षराण्यग्निविभाजितानि ।' अथवा 'संक्रान्तिनाड्यो नवमिश्रिताश्च सप्ताहताः पावकभाजिताश्च । एके समर्घं द्वितये च साम्यं शून्ये महर्घं मुनयो वदन्ति' (४४ पृ०, ४ श्लो०) अर्थात् संक्रान्ति नाडी में ६ जोड़कर सात ७ से गुना करके तीन का भाग देने पर १ शेष में सस्ती, २ में समान और शून्य ० में महंगी होती है ॥ १२२ ॥

अथ वारपरत्वेन सङ्क्रान्तिफलम्—

अब आगे वारों के वश संक्रान्ति के फल को बताते हैं ।

सूर्य, शनि, भौमवार में संक्रान्ति का फल

[1]रविरविजभौमवारे सङ्क्रान्तौ दिनकरस्य सति मासे ।
पित्तकफानिलजामयनरपतिकलहस्त्ववृष्टिश्च ॥ १२३ ॥

जब कि सूर्य की संक्रान्ति सूर्य या शनि या मंगलवार के दिन होती है तो पित्त, कफ, वायु जनित रोग, राजाओं में कलह और वर्षा का अभाव होता है ॥ १२३ ॥

विशेष—प्रकाशित वसिष्ठसंहिता में 'दिनकरस्य यन्मासे' यह पाठान्तर है ॥ १२३ ॥

बुध, गुरु, चन्द्र, शुक्रवार में संक्रान्ति का फल

[2]बुधगुरुचन्द्रसिताहे सङ्क्रान्तावनामयं नृणाम् ।
क्षितिपतिनिकरक्षेमं सस्यविवृद्धि विधर्मिणां पीडा ॥ १२४ ॥

जब कि सूर्य की संक्रान्ति बुध, गुरु या चन्द्र या शुक्रवार के दिन होती है तो मनुष्यों में रोगों का अभाव, राजा समुदाय में कल्याण, अन्न की वृद्धि और पापियों का विनाश होता है ॥ १२४ ॥

---

१. व० सं० ६ अ० १२ श्लो० ।
२. व० सं० १६ अ० २२ श्लो० ।

पौष की संक्रान्ति का फल

पौषमासस्य संक्रांती रविवारे यदा भवेत् ।
धान्यं च त्रिगुणं मौल्यं भौमवारे चतुर्गुणम् ।। १२५ ।।
त्रिगुणं शनिवारेण बुधे शुक्रे समं भवेत् ।
सुराचार्ये च सोमे च मौल्यमर्धे सुनिश्चितम् ।। १२६ ।।

जब कि पूस मास की संक्रान्ति सूर्यवार को होती है तो अन्नों के भाव तिगुने और भौमवार में चोगुने, शनिवार में तिगुने, बुध-शुक्र में सम और गुरु या सोमवार में संक्रमण होने पर आधी कीमत पर अन्नों की उपलब्धि होती है ।। १२५-१२६ ।।

वारानुसार मीन संक्रान्ति का फल

मीनसंक्रमणे सूर्यवारे वाति समीरणः ।
भौमे पीडा पशूनां च दुर्भिक्षं च शनैश्चरे ।। १२७ ।।
वृक्षपाताः प्रजापीडा मिथ्या सञ्चरते मही ।
हिंसाकामातुरा लोका यदि वृष्टिसमन्वितम् ।। १२८ ।।
सक्रान्तिर्यदि मीनस्य बुधवारे प्रजायते ।
छत्रभङ्गो महामारी रोदनं भयचिन्तया ।। १२९ ।।
संक्रान्तिः सोमवारे च प्रजानां परमं सुखम् ।
भानुभौमार्किवारेषु पापयुद्धं महर्घता ।। १३० ।।

जब कि मीन की संक्रान्ति सोमवार के दिन होती है तो वायु चलती है, भौम में पशुओं को पीडा, शनि में दुर्भिक्ष, वृक्षपात, जनता को दुःख, असत्य का बोलबाला, हिंसा, विषय भोग की प्रबलता वर्षा होने पर होती है ।।

जब कि मीन की संक्रान्ति बुधवार में होती है तो छत्रभङ्ग, महामारी, रोदन भय, चिन्ता से, सोमवार में प्रजा को सुख और सूर्य या मंगल या शनि में हो तो पाप से लड़ाई और महंगी होती है ।। १२७-१३० ।।

अथ सायनमेषार्कप्रवेशविचारः—

अब आगे वार क्रम से यवनाचार्योक्त मेष संक्रान्ति के फल को बताते हैं ।

यवनमतेन—

सूर्यवार में मेष संक्रमण का फल

रविवारे यदा स्याच्च मेषस्याप्ययनं भवेत् ।
राजा प्रसन्नतामेति. राज्यपुष्टिस्तथैव च ।। १३१ ।।
स्वकुले चास्ति स्वं राज्यं राज्यतो लाभमेव च ।
समर्घं परस्परं राज्ञामन्नाप्तिर्बहुला भवेत् ।। १३२ ।।
महर्घं चैव कार्पासमाम्राधिक्यं फलं भवेत् ।
दुग्धादि बहुलं ज्ञेयं व्यापारीणां क्वचिद्भयम् ।। १३३ ।।

गोधूमं बहुलं ज्ञेयं खर्बुजानि बहूनि च।
तिलान्नमधिकं जातं बालकं तु रुगर्दितम् ॥ १३४ ॥

अग्नेर्भयं तृणाधिक्यं सूर्यग्रहणसंभवम्।
कटेः पीडां विजानीयाद्वर्षेऽपि यवनेरितम् ॥ १३५ ॥

यवनाचार्य ने बताया है कि जब मेष की संक्रान्ति रविवार को होती है तो राजा प्रसन्न, राज्य की पुष्टि, अपने कुल में अपना राज्य, अन्य राज्य से लाभ, राज्यों में सस्ती और अधिक अन्न की प्राप्ति होती है। तथा कपास या रूई में महँगी, अधिक आम की फसल, दूध आदि की अधिकता, व्यापारियों को अल्प भय, गेहूँ व खर्बुजादि का बाहुल्य, तिलों की अधिकता, रोग ग्रस्त बालक, अग्नि भय, तृण की अधिकता, सूर्य के ग्रहण का सम्भव और कमर से पीड़ित संसार वर्ष में भी होता है ॥ १३१-१३५ ॥

सोमवार में मेष संक्रान्ति का फल

सोमे दिने मेष यदायनं भवेद्राजानको दुःखमुपैति शीघ्रम्।
वृष्टेरभूदन्नसमर्घताप्तिर्युद्धं भवेत्पश्चिमदिग्विनाशम् ॥ १३६ ॥
महाशयानां तु विनाशनं स्याद्व्यापारिणां लाभमुपैति बह्वम्।
फलन्ति वृक्षाः पशुवृद्धिमेति वृक्षा विनाशोऽग्निभयादिकं च ॥ १३७ ॥
व्ययाधिकं लाभमभूतस्वल्पमजाधिकाप्तिः सकलेऽपि वर्षे।

जब कि सोमवार के दिन मेष की संक्रान्ति होती है तो शीघ्र ही राजा लोग दुःखी, वर्षा होने से सस्ते अन्नों की प्राप्ति, पश्चिमी भाग में लड़ाई होने से विनाश, बड़े अभिप्राय वालों का नाश, व्यवसायियों को अधिक लाभ, वृक्षों में भी फलाधिक्य, पशुओं में बढ़ाव, अग्नि से वृक्षों का नाश या भय, खर्चों की वृद्धि, कम आमदनी और पुत्रों की प्राप्ति भी समस्त वर्ष में होती है ॥ १३६-१३७½ ॥

भौमवार में मेष से संक्रान्ति का फल

कुजे दिने चायनमेषराशेरभूत राजा खलु भूमिसूनुः ॥१३८॥
समर्घतामेति अकालवृष्टेः कृषेः क्वचिन्नष्टप्रजा पृथिव्याम्।
व्यापारिणां लाभमभूत राजन् परस्परं युद्धमभीप्सितं च ॥१३९॥
चतुष्पदानां रुगतो प्रपीडयात्क्वचित्क्वचिद् वृक्षफलानि उर्व्याम्।
कार्पासगोधूमतिला महर्घाः प्रयान्ति स्वल्पं खलु शीतवृष्टिः ॥१४०॥
कृषिर्विनष्टा कुसुमैव वर्षणं विरुद्धदासात्मजस्वामितातयोः।
नरा रुगार्ताः खलु चाग्निभीतिः स्वल्पं विनाशं हि भवेत्तु वृक्षान् ॥१४१॥
सूर्योपरागः सुलभाच्च भीतिः भूकम्पनं स्याद्गदितं हि वर्षे।

जब कि मंगलवार के दिन मेष की संक्रान्ति होती है तो मंगल राजा, अकाल वर्षा से खेती में समर्थता, कहीं-कहीं जनता का क्षय, व्यापारियों को लाभ, राजाओं में परस्पर में लड़ाई की इच्छा, कहीं-कहीं पशुओं को रोग से पीड़ा, कहीं-कहीं वृक्षों में फल, रूई, गेहूँ तिल के भावों में महँगी। अल्प वर्षा, खेती का विनाश, फूलों की ही वर्षा, स्वामी सेवक, पिता पुत्र में विरोध, जनता रोगी, अग्नि से भय, अल्प वृक्षों का नाश, सूर्य का ग्रहण, सुलभता से भय और भूमि हिलने का वर्ष में भय रहता है ॥ १३७½-१४१½ ॥

बुधवार में मेष संक्रान्ति का फल

बुधे दिनेष्वर्कजराशिरायनं करोति वर्षे बहुलं ह्युपद्रवम् ॥ १४२ ॥
आर्यावर्ते सौमनस्यं पृथिव्यां प्रावृट्काले वृष्टिकिञ्चिदभूत् ।
महर्घतामेति तिलोऽपि शर्करा कार्पासवस्त्राणि चतुष्पदादिकम् ॥ १४३ ॥
कणाधिकोत्पातनरस्यनैकधा उपद्रवो साधुजनस्य दुष्टतः ।
व्यापारहानिर्ग्रहणं दिवामणेराम्रादि किञ्चित्सुजनस्य रोगः ॥ १४४ ॥
आयाधिकोऽङ्गूरखर्बुजानि सुस्वादयुक्तानि धनाधिकानि ।
रोगोप्यसाध्याग्निभयं बहूनि प्रजासुखैश्वर्ययुतानि चाब्दे ॥ १४५ ॥

जब कि बुधवार के दिन मेष संक्रान्ति होती है तो उस साल में अधिक उपद्रव आर्यावर्त में सौमनस्यता, वर्षा के समय अल्प वर्षा, तिल, चीनी, कपास (रूई) वस्त्र व पशु के भावों में महँगी, आँधी रूपी उत्पात, दुष्टों से सज्जनों को पीड़ा, व्यवसाय में हानि, सूर्य ग्रहण, आम फल अल्प, सज्जनों को रोग, आमद से ज्यादा अंगूर व खरबूजा सुन्दर स्वाद से युक्त, अधिक धन, असाध्य रोग, अग्नि से भय, जनता ज्यादा, सुख व ऐश्वर्य से युक्त होती है ॥ १४१½–१४५ ॥

गुरुवार में मेष संक्रान्ति का फल

गुरोर्दिनेष्वायनमेव मेषराशेरभूद्राजपतिर्बृहस्पतिः ।
महर्घतामेति समस्तमन्नं सद्वृष्टिमुर्वी धरणीपतिर्युतः ॥ १४६ ॥
राज्यस्य कार्योद्यतमन्त्रिणोऽस्ति साधूजनोदारपशोः प्रपीडनम् ।
वर्षेष्वस्मिन्मङ्गलं चाधिकं च व्याध्याधिक्यं जातमेवास्ति सस्यम् ॥ १४७ ॥
भूयः साधुक्लेशयुक्तोऽग्निभीतिः पश्चाच्छीतोत्पातक्लेशो जनस्य ।
मार्गं चित्रं सुन्दरं लाभमत्र जातं चैवमुद्यमाद्वै मुनीन्द्राः ॥ १४८ ॥

जब कि बृहस्पति वार में मेष की संक्रान्ति होती है और राजा गुरु होता है तो समस्त अन्न महँगे, अच्छी वर्षा, राजा से युक्त भूमि, राजकीय कार्यों में दत्तचित्त सचिव, सज्जन उदार चित्त, पशुओं को पीड़ा, अधिक मांगलिक काम, पैदा हुए अन्न में रोग का प्राचुर्य, बार-बार साधुजनों को कष्ट, अग्नि से डर, पीछे ठण्ड से क्लेश,

विचित्र कार्य, और उद्यम करने पर लाभ उस वर्ष में होता है। ऐसा श्रेष्ठ मुनियों का कहना है ॥ १४६–१४८ ॥

शुक्रवार में मेष संक्रान्ति का फल

भृगोर्वारे यदा चाब्दे मेषस्याप्ययनं भवेत्।
राजा शुक्रो लाभमत्र गोधूमबहुलं भवेत् ॥ १४९ ॥
युद्धाधिक्यं शीतमत्र शत्रोर्नाशः पशोः सुखम्।
अग्निभीतिः प्रतिष्ठा स्यात्किञ्चिद्रोगी नरस्य तु ॥ १५० ॥
व्यापारिणां प्रतिष्ठा स्याद्राज्यकार्यें हि सुस्थिरम्।

जब कि शुक्रवार में मेष की संक्रान्ति होती है व राजा शुक्र होता है तो उस साल में लाभ, गेहूँ की प्रचुरता, अधिक लड़ाई, ठण्ड, शत्रु का नाश, पशुओं का सुख अग्नि से डर, प्रतिष्ठा, अल्प रोगी जनता, व्यापारियों का सम्मान और सुन्दर स्थिर राजकीय कार्य होते हैं ॥ १४६-१५०½ ॥

शनिवार में मेष संक्रान्ति का फल

अयनं स्याद्रविजे वारे मेषस्य तु यदा भवेत् ॥ १५१ ॥
राजा शनैश्चरस्तत्र पशुपीडा रुगाधिका।
पीडा त्वनेकधा चास्ति वर्षेष्वप्यखिलेषु चेति ॥ १५२ ॥

जब कि शनिवार के दिन मेष की संक्रान्ति व शनि राजा होता है तो पशु पीडा, रोग का बाहुल्य और उस वर्ष में अनेक कष्ट होते हैं ॥ १५०½–१५२ ॥

रामः—

रामदैवज्ञ के वश अवशिष्ट १० संक्रान्तियों की संज्ञा

[1]षडशीत्याननं चापनृयुक् कन्याझषे भवेत्।
तुलाजौ विषुवं विष्णुपदं सिंहालिगोघटे ॥ १५३ ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है कि धनु, मिथुन, कन्या व मीन संक्रान्तियों की षडशीति मुख, तुला, मेष की विषु व और सिंह, वृश्चिक, वृष, कुम्भ की विष्णुपद संज्ञा होती है ॥ १५३ ॥

अथ महाविषुवति मेषसंक्रान्तिचक्रम्—

अब आगे विषुव में मेष संक्रान्ति चक्र को बताते हैं।

मूर्ध्नि सप्त मुखे त्रीणि हृदये पञ्च विन्यसेत्।
त्रितयं हस्तपादेषु महाविषुभतः क्रमात् ॥ १५४ ॥
मस्तके भूपतेः सौख्यं वदने पटुता भवेत्।
हृदये च धनाध्यक्षोऽर्थप्राप्तिर्दक्षिणे करे ॥ १५५ ॥

---

१. मु० चिं० ३ प्र० ४ श्लो०।

वामे करे महादुःखं सुखं पादे च दक्षिणे।
भ्रमणं वामपादे च कथितं विषुवत्फलम् ॥ १५६ ॥

जिस नक्षत्र में मेष की संक्रान्ति हो उससे सात नक्षत्र तक मस्तक पर, पुनः तीन मुख में, फिर ५ पाँच हृदय में और तीन-तीन नक्षत्र हाथों में व पैरों में न्यास करना चाहिये। तथा अपना नक्षत्र देखना चाहिये कि किस अवयव में है।

उसका फल इस प्रकार से होता है। जैसे मस्तक में हो तो राजा से सुख, मुख में चतुरता, हृदय में धनाध्यक्षता, दक्षिण हाथ में धन का लाभ, बायें हाथ में अधिक दुःख, दायें पैर में सुख और बायें पैर में होने पर पर्यटन उस वर्ष होता है॥ १५४-१५६ ॥

स्पष्टार्थ सफल चक्र

स्थान	मस्तक	मुख	हृदय	द० हाथ	उ० हाथ	द० पैर	वा० पैर
न० सं०	७	३	५	३	३	३	२
फल	राजा से सुख,	चतुरता,	धनाध्यक्षता	धनागम	दुःखाधिक्य	सुख	पर्यटन

अथ विष्णुपदीचक्रम्—

सफल विष्णुपदी चक्र ज्ञान

ऋक्षे संक्रमणे यत्र विष्णुपद्यां मुखे तु तत्।
चत्वारि दक्षिणे बाहौ त्रीणि त्रीणि पदद्वये॥ १५७ ॥
चत्वारि वामबाहौ तु हृदये पञ्च निर्दिशेत्।
अक्ष्णोर्द्वयं द्वयं योज्यं मूर्ध्नि द्वौ चैकतो गुदे॥ १५८ ॥
रोगो भोगस्तथा मानं बन्धनं लाभमेव च।
ऐश्वर्यं राजपूजा च अपमृत्युरिति क्रमात्॥ १५९ ॥

जिस नक्षत्र में विष्णुपदी संज्ञक संक्रान्ति होती है उससे ४ चार नक्षत्र तक मुख में, बाद ३ तीन दक्षिण हाथ में, पुनः ३ तीन-तीन दोनों पैरों में फिर ४ चार बायें हाथ में, उसके बाद ५ हृदय में, फिर २ दो आखों में, २ माथे पर और १ गुह्य में नक्षत्र का न्यास करना चाहिये॥

इनका फल इस प्रकार होता है। जब कि जन्म नक्षत्र मुख में हो तो रोग, दायें हाथ में भोग, पैरों में सम्मान, वायें हाथ में बन्धन, हृदय में लाभ, नेत्रों में ऐश्वर्य, मस्तक में राजा से सम्मान और गुह्य स्थान में होने पर अपमृत्यु होती है॥ १५७-१५९ ॥

स्पष्टार्थ सफल विष्णुपदी चक्र

मुख	दा० हाथ	दा० पैर	वा० पैर	वा० हाथ	हृदय	नेत्र	मस्तक	गुह्य
४	३	३	३	४	५	२	२	१
रोग	भोग	सन्मान	सन्मान	बन्धन	लाभ	ऐश्वर्य	राजसन्मान	अपमृत्यु

अथ षडशीतिचक्रम् —

सफल षडशीति चक्र ज्ञान

मुखे चैकं करे वेदाः पादयुग्मे द्वयं द्वयम् ।
क्रोडे बाणस्तथा वेदाः करे सव्येतरेऽपि च ॥ १६० ॥
द्वयं द्वयं तथा नेत्रे मस्तके त्रितयं तथा ।
द्वयं चैव तथा गुह्ये षडशीत्यां रवौ स्थिते ॥ १६१ ॥
मुखे दुःखं करे लाभं पादयोर्भ्रमणं हृदि ।
कान्ता स्याद्बन्धनं वामे हस्ते स्यात्स्वोयभे नृणाम् ॥ १६२ ॥
सन्मानं नेत्रयोश्चैव अपमानश्च मस्तके ।
गुह्ये चैव भवेन्मृत्युः षडशीतिफलं श्रुतिः ॥ १६३ ॥

जिस नक्षत्र में विष्णुपदी संक्रान्ति होती है उससे १ नक्षत्र मुख में, फिर ४ हाथों में, इसके पश्चात् २+२=४ पैरों में, पुनः ५ हृदय में, फिर ४ बायें हाथ में दो-दो २+२=४ नेत्रों में, ३ तीन मस्तक पर और २ नक्षत्र गुह्य स्थल में स्थापित करके देखने से यदि अपना नक्षत्र मुख में हो तो दुःख, हाथ में लाभ, पैरों में घूमना, हृदय में स्त्री सुख, वाम हस्त में बन्धन, नेत्रों में सम्मान, मस्तक में अपमान और अपना नक्षत्र गुह्य स्थान में हो तो मृत्यु होती है ॥ १६०-१६३ ॥

स्पष्टार्थ सफल षडशीति चक्र

स्थान	मुख	दा० हाथ	पैर	हृदय	वा० हाथ	नेत्र	मस्तक	गुह्य
न० सं०	१	४	४	५	४	४	३	२
फल	दुःख	लाभ	पर्यटन	स्त्रीसुख	बन्धन	सन्मान	अपमान	मृत्यु

अथ दक्षिणायनसंक्रान्तिचक्रम्—

सफल दक्षिणायन संक्रान्ति चक्र

शीर्षे त्रीणि मुखे त्रीणि हृदये पञ्च हस्तयोः ।
अष्टौ पादद्वयेऽप्यष्टौ दक्षिणायनभः क्रमात् ॥ १६४ ॥
शीर्षे मानं मुखे विद्या हृदये वित्तसंक्षयः ।
प्रवासः स्यात्करे वामे भिक्षालाभश्च दक्षिणे ।
निष्फलं वामपादे च किञ्चिल्लाभश्च दक्षिणे ॥ १६५ ॥

जिस नक्षत्र में दक्षिणायन संक्रान्ति होती है तो उससे ३ तीन नक्षत्र माथे में ३ तीन मुख में, ५ पांच हृदय में ८ हाथों में, ८ दोनों पैरों में स्थापित करके देखने से यदि अपना नक्षत्र मस्तक में, हो तो सम्मान, मुख में विद्या, हृदय में धन क्षति, बायें हाथ में प्रवास, दक्षिण हाथ में भिक्षा से लाभ, वामपाद में निष्फल और दक्षिण पैर में अपना नक्षत्र हो तो थोड़ा लाभ होता है ॥ १६४-१६५ ॥

स्पष्टार्थ सफल दक्षिणायन सं० चक्र

स्थान	मस्तक	मुख	हृदय	वा० हाथ	दा० हाथ	वा० पैर	दा० पैर
न० सं०	३	३	५	४	४	४	४
फल	सन्मान	विद्या	धनक्षय	प्रवास	भिक्षालाभ	निष्फल	अल्पलाभ

अथ तुलाफलविषुवति संक्रान्तिचक्रम्—

सफल तुला संक्रान्ति चक्र

षण् मूर्ध्नि वदने पञ्च चत्वारि हृदये यथा।
त्रितयं करपादेषु फलं विषुभतः क्रमात् ॥ १६६ ॥
मानं मूर्ध्नि मुखे वैरं हृदये दुःखसत्त्वतः।
दोः पदोर्दक्षयोर्भोगः त्रासश्च वामयोः स्वभे ॥ १६७ ॥

जिस नक्षत्र में तुला संक्रान्ति होती है उससे ६ नक्षत्र मस्तक में, ५ मुख में, ४ हृदय में, तीन २ हाथ पैरों में स्थापित करके देखने से यदि मस्तक में अपना नक्षत्र हो तो सम्मान, मुख में शत्रुता, हृदय में जीव से दुःख, दक्षिण हाथ पैर में भोग और बायें हाथ पैरों में हो तो कष्ट होता है ॥ १६६-१६७ ॥

स्पष्टार्थ सफल तुला सं० चक्र

स्थान	मस्तक	मुख	हृदय	दा०हा०पै०	वा०हा०पै०
न० सं०	६	५	४	६	६
फल	सन्मान	शत्रु	दुःख	भोग	कष्ट

अथोत्तरायणमकरसंक्रान्तिचक्रम्—

सफल मकर संक्रान्ति चक्र

शीर्षे पञ्च मुखे त्रीणि हस्तयोश्च त्रयं त्रयम्।
हृदि पञ्च शशी नाभौ गुदे च पादयोः समाः।
उत्तरायणभाज्ज्ञेयं स्वनक्षत्रस्थितेः फलम् ॥ १६८ ॥

शीर्षेऽर्थलाभं वदने सुखानि दक्षे करेऽर्थो हृदये च सौख्यम्।
नाभौ सुखं वामकरेऽर्थनाशो गुह्ये भयं वामपदे प्रवासः ॥ १६९ ॥

जिस नक्षत्र में मकर की संक्रान्ति होती है उससे ५ नक्षत्र मस्तक में ३ तीन मुख में, ३ तीन-तीन हाथों में, ५ हृदय में, १ नाभि में, १ गुदा में और ६ दोनों पैरों में स्थापित करके देखने से यदि अपना नक्षत्र मस्तक में हो तो धनागम, मुख में सुख, दक्षिण हाथ में धन, हृदय में सुख, नाभि में सुख, बायें हाथ में धन का नाश, गुह्य स्थल में भय और बायें पैर में अपना नक्षत्र हो तो प्रवास होता है ॥ १६८-१६६ ॥

स्पष्टार्थं सफल मकर सं० चक्र

स्थान	मस्तक	मुख	दा० हा०	वा० हा०	हृदय	नाभि	गुदा	पैर
न० सं०	५	३	३	३	५	१	१	६
फल	धनागम	सुख	धन	धननाश	सुख	सुख	भय	प्रवास

गतवर्ष से आगे के वर्ष में संक्रान्ति ज्ञानार्थं क्षेपक

वारे रूपं तिथौ रुद्रनाड्यां पञ्चदशैव तु।
जीर्णपत्रप्रमाणेन ज्ञायते सूर्यसङ्क्रमे।
एकत्रिंशत्पले दद्यादब्दे अब्दे सदैव हि ॥ १७० ॥

प्राचीन पत्राओं के प्रमाण से जाना जाता है कि गत संक्रान्ति वार में १, तिथी में ११, घटी में १५ और पलों में ३१ जोड़ने से आगे २ वर्ष की संक्रान्ति के वार तिथि घटी होते हैं ॥ १७० ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का संक्रान्ति प्रकरण वाला इकतीसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ।

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे
वृहद्दैवज्ञरञ्जने एकत्रिंशत्तमं सङ्क्रान्तिप्रकरणं
समाप्तम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधरचतुर्वेदविहिता एकत्रिंशत्प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशत्तमं गोचरप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे बत्तीसवें प्रकरण में गोचरीय ग्रहों के विचार को बताते हैं ।

अपनी जन्मराशि से तत्कालीन ग्रह कौन-सा शुभ व अशुभ होता है । इस प्रकार का शुभाशुभ विवेचन जिसमें होता है, उसे गोचरीय विचार कहते हैं ।

तत्रादौ ईश्वरग्रहयोरभेद उक्तः । लोमशसंहितायाम्—

प्रथम प्रकरण में ईश्वर और ग्रह में अभेद या यों समझिये कि ग्रह ही परमेश्वर होता है । इसे लोमश संहिता के वाक्यों से बताते हैं ।

मुनिरुवाच—

लोमश संहिता के आधार ग्रह व ईश्वर में अभेद का ज्ञान

रामः कृष्णश्च भो विप्र नृसिंहो सूकरस्तथा ।
एते पूर्णावताराश्च ह्यन्ये जीवांशका मता ।। १ ।।

आचार्य लोमश ने अपने संहिता ग्रन्थ में बताया है कि हे विप्र राम, कृष्ण, नृसिंह और वराह ये ४ अवतार पूर्ण हैं । या यों समझिये कि इन चारों में पूर्ण परमात्मा का अंश है । और इनसे भिन्न जो अवतार बताये हैं, उनमें जीवांश भी मिला हुआ है ।। १ ।।

अवताराण्यनेकानि अजस्य परमात्मनः ।
जीवानां कर्मफलदो ग्रहरूपो जनार्दनः ।। २ ।।

अजन्मा परमेश्वर के अनेक अवतार हैं । उन अवतारों में प्राणियों का स्वकृत कर्मफल दाता सूर्यादि ग्रहस्वरूप जनार्दन नामक अवतार है ।। २ ।।

दैत्यानां बलनाशाय देवानां बलवृद्धये ।
धर्मसंस्थापनार्थाय ग्रहा जाता इमे क्रमात् ।। ३ ।।

दैत्यों के या यों समझिये कि दूसरे का बुरा चाहने वालों के बल नाश करने तथा देवों या परोपकारी सज्जनों के बल बढ़ाने और धर्म स्थापना के लिये उन्हीं सूर्यादि ग्रहों से शुभप्रद अवतार हुए हैं ।। ३ ।।

गीता में भी कहा है 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थाय ।। ३ ।।

ग्रहानुसार अवतार का ज्ञान

रामावतारः सूर्यस्य चन्द्रस्य यदुनायकः ।
नृसिंहो भूमिपुत्रस्य बौद्धः सोमसुतस्य च ।। ४ ।।

वामनो विबुधेज्यस्य भार्गवो भार्गवस्य च।
कूर्मो भास्करपुत्रस्य सैंहिकेयस्य सूकरः ॥ ५ ॥
केतोर्मीनावतारश्च ये चान्ये तेऽपि खेटजाः।
परमात्मांशमधिकं येषु ते खेचराभिधाः ॥ ६ ॥

सूर्य से राम का, चन्द्रमा से कृष्ण का, भौम से नृसिंह का, बुध से बुद्ध का, गुरु से वामन का, शुक्र से परशुराम का, शनि से कूर्म (कच्छप) का, राहु से वराह और केतु से मीन का अवतार हुआ है। इनसे अतिरिक्त भी अवतार ग्रहों से हुए हैं। जिनमें अधिक परमात्मा के अंश हैं वे खेचर अर्थात् देव कहलाते हैं ॥ ४-६ ॥

जीवांशमधिकं येषु जीवास्ते वै प्रकीर्तिताः।
सूर्यादिभ्यो ग्रहेभ्यश्च परमात्मांशनिःसृतः ॥ ७ ॥

जिनमें अधिक जीवांश हैं वे जीव कहलाते हैं। सूर्यादि ग्रहों से ही अधिक परमात्मांश निकल कर पूर्णावतार होते हैं ॥ ७ ॥

विशेष—ग्रन्थ में १-७ श्लोक लोमश संहिता के नाम से उद्धृत हैं। तथापि ये अल्प पाठान्तर पर वृहत्पाराशर ग्रन्थ की दूसरी अध्याय में १-७ तक उपलब्ध होते हैं।

'जीवांशकान्वि 'ग्रहाज्जाता शुभाः क्रमात्' परात्मांशोऽधि' ॥ १-७ ॥

सूर्यारुणसंवादे—

ग्रहों का फलद होना न होने का ज्ञान

ग्रहाणां फलकर्तृत्वमस्ति नो वेति संशयः।
केचिद्वदन्ति तेषां तु कर्मसूचकतामिति ॥ ८ ॥

सूर्यारुण संवाद में बताया है कि ग्रहों में फल देने की शक्ति है या नहीं इसमें सन्देह है। क्योंकि किन्हीं आचार्यों ने कहा है कि ग्रह पूर्वार्जित की सूचना मात्र देते हैं ॥ ८ ॥

तथा च—

अन्य भी

प्राक्कर्मसूचकखगाः कथमेषु भुक्तिः प्राक्कर्मभोगशमनाय हि भोगमूचुः।
केचित्तथा दुरितहृज्जगदीशभक्तिः किन्नो ग्रहाभिगत एव स एव विष्णुः ॥९॥

और भी पूर्व में उपार्जित शुभाशुभ की सूचना देने वाले ग्रह होते हैं तो इनमें भोग करने की शक्ति नहीं है। पहिले में उपार्जित भोग के विनाश के लिये ही इनसे भुक्ति मात्र ही कहा है ॥

किसी का कथन है कि ये ग्रह दुरित (पाप) का हरण करके जगदीश की भक्ति देते हैं तो भक्तिस्वरूप ग्रह होने पर निश्चय करने से ज्ञात होता है कि ग्रह ही विष्णु भगवान् हैं। क्योंकि भक्ति स्वरूप ही विष्णु हैं ॥ ९ ॥

तथा च शाङ्गंधरः—

शाङ्गंधर के आधार पर

देवताग्रहरूपेण मनुष्याणां शुभाशुभम् ।
फलं प्रागर्जितं यच्च तद्ददाति स्वकीयकम् ॥ १० ॥

शाङ्गंधर ने बताया है कि देवता ग्रहों का स्वरूप बनाकर मनुष्यों के पूर्वार्जित स्वकीय शुभाशुम फल को देते हैं ॥ १० ॥

लल्लोऽपि—

लल्लाचार्य के आधार पर

सकलमपि धिष्ण्यमण्डलमवनिनिबद्धं विनिर्मितं धात्रा ।
तत्र ग्रहा ग्रहेष्वपि शुभाशुभं सर्वजन्तूनाम् ॥ ११ ॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि समस्त नक्षत्र मण्डल भूमि से बाँध कर ब्रह्मा जी ने बनाया है । उसमें ग्रह-ग्रह की दशा में जीवों को शुभाशुभ फल को देते हैं ॥ ११ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठ के आधार पर

ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहा राज्यं हरन्ति च ।
ग्रहैस्तु व्यापितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १२ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि ग्रह राज्य दायक व विनाशक होते हैं । और समस्त चराचर ग्रहों से ही व्याप्त है ॥ १२ ॥

बृहस्पतिरपि—

बृहस्पति जी के आधार पर

ग्रहाधीनं जगत्सर्वं ग्रहाधीना नरा वराः ।
कालज्ञानं ग्रहाधीनं ग्रहा कर्मफलप्रदाः ॥ १३ ॥

बृहस्पति जी का कहना है कि यह समस्त संसार ग्रहों के आधीन है तथा मनुष्य भी ग्रहों के आधीन है और समय का ज्ञान भी ग्रहाधीन होता है । इसलिये कर्म फल को देने वाले ग्रह होते हैं ॥ १३ ॥

सृष्टिरक्षणसंहाराः सर्वे चापि ग्रहानुगाः ।
कर्मणः फलदातारः सूचकाश्च ग्रहाः सदा ॥ १४ ॥

उत्पत्ति, पालन, विनाश भी ग्रहों के पीछे चलते हैं । अतः फलदाता और सूचना देने वाले ग्रह होते हैं ॥ १४ ॥

दुष्करं भवसंयोगकाले दुःस्थानमाययुः ।
तत्फलानन्वयायेवं तदा पूज्यतमा ग्रहाः ॥ १५ ॥

संसार में संयोग समय में दूषित स्थानों पर आने पर दुष्कर होते हैं और फलों को वंश में भी देने वाले होते हैं । इसलिये ग्रहों की पूजा होती है ॥ १६ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर

[1]उच्छ्रयपतनानि नृणां खचराधीनानि विशेषतो यस्मात् ।
अखिलानामपि लोकानां वृद्धिस्तस्माद्ग्रहाश्च पूज्यतमाः ॥ १६ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि उन्नति, अवनति विशेष कर मनुष्यों की ग्रहों के आधीन होती है तथा समस्त संसार की वृद्धि होती है । इसलिए इनकी पूजा की जाती है ।

[2]गोचरबलचिन्तायां ये न विदन्ति यथाक्रमं चेति ।
गोचरबलानभिज्ञास्त्वति लोके यान्ति हास्यतां सुजनैः ॥ १७ ॥

गोचर बल विचार में जो लोग अच्छी रीति से इसे नहीं जानते वे सज्जन गोचर बल के अज्ञान से संसार में हँसी के पात्र होते हैं ॥ १७ ॥

शुभकर्मणि सर्वत्र ग्रहाणां गोचरं फलम् ।
पूर्वैरुक्तं यतोऽस्माभिरुच्यते ग्रहगोचरम् ॥ १८ ॥

समस्त शुभ कार्यों में गोचर का विचार करना पूर्वाचार्यों ने बताया है । अतः मैं भी अब ग्रह गोचर को बताता हूँ ॥ १८ ॥

अथ ग्रहाणां नामकथनम् । यादवः—

अब आगे यादव आचार्य के वचन से ग्रहों के नाम बताते हैं ।

ग्रहों के नाम

रविविधुक्षितिजा बुधवाक्पती भृगुशनी च तमः शिखिनो ग्रहाः ।
न च सदा भ्रमणाद्भगणो नृणां ददति धातुसमं फलमुक्तवत् ॥ १९ ॥

आचार्य यादव ने बताया है कि सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये ग्रहों के नाम होते हैं । राशिचक्र के घूमने से सदा धातु के तुल्य फल ग्रह मनुष्यों को नहीं देते हैं ॥ १९ ॥

कश्यपः—

ऋषि कश्यप के वचन से राहु की ग्रहों में गणना

छिन्नोऽपि विष्णुचक्रेण सुधामयशिरा(र?)स्तमः ।
केशवस्य वरेणासौ तथापि ग्रहतां गतः ॥ २० ॥

ऋषि कश्यप ने कहा है कि विष्णु भगवान् के चक्र से मस्तक कटने पर भी जब राहु नहीं मरा तो भगवान् के वरदान से यह ग्रहों में गिना जाने लगा है ॥ २० ॥

---

१. व० सं० १८ अ० २० श्लो० ।
२. व० सं० १८ अ० ६ श्लो० ।

नारदोऽपि—

नारद के आधार पर

अमृतास्वादनाद्राहुः शिरश्छिन्नोऽपि सोऽमृतः।
विष्णुना तेन चक्रेण तथापि ग्रहतां गतः॥ २१॥

ऋषि नारद जी ने भी बताया है कि अमृत को पीने पर ही विष्णु भगवान् के चक्र से माथा अलग होने पर उन्हीं के आशीर्वाद से अमृत राहु ग्रहत्व को प्राप्त हुआ है॥ २१॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'प्रच्छन्नामररूपं धृत्वा राहुः सुधाप्रधानेऽभूत्। हरिरपि निखिलं ज्ञात्वाच्छिनत्ति चक्रेण तच्छीर्षम्। अमृतमयत्वान्नत्वा हरिं शिर उवाच विस्मिति सदसि। दातव्या ग्रहसमता गतोऽस्मि मां रक्ष तव शरणम्। दत्त्वाष्टमग्रहत्वम्' (अ० १-२ श्लो०)॥ २१॥

तथा वाराह संहिता में भी 'अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम्। प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके' (५ अ० १ श्लो०)॥ २१॥

अथ ग्रहाणां संज्ञाः। [1]बृहज्जातके—

अब आगे बृहजातक में बताई हुई ग्रहों की संज्ञा को बताते हैं।

बृहज्जाकोक्त ग्रहों के संज्ञान्तर के साथ नाम

हेलिः सूर्यश्चन्दमा शीतरश्मिर्हेम्नाविज्ज्ञो बोधनश्चन्द्रपुत्रः।
आरो वक्रः क्रूरदृक्चावनेयः कोणो मन्दः सूर्यपुत्रोऽसितश्च॥ २२॥
[2]जीवोऽङ्गिराः सुरगुरुर्वचसां पतीज्यौ शुक्रो भृगुर्भृगुसुतः सित आस्फुजिच्च।
राहुस्तमो सुरगुरुश्च शिखी च केतुः पर्यायमन्यमुपलभ्य वदेच्च लोकात्॥२३॥

आचार्य वराहमिहिर ने अपने ग्रन्थ में बताया है कि सूर्य का नाम हेलि, चन्द्र का शीतरश्मि, बुध का इन्दु पुत्र, हेम्ना, वित् बोधन, मंगल का आर, क्रूरदृक्, आवनेय, शनि का कोण, मन्द, सूर्यपुत्र, असित, गुरु का जीव, अंगिरा, सुरगुरु, वाचस्पति, ईज्य, शुक्र का भृगु सुत, सित व आस्फुजित्, राहु का तम, गुरु, असुर और केतु का नाम शिखी होता है। इस प्रकार और संज्ञा शास्त्रान्तर से समझ कर कहना चाहिये॥ २२-२३॥

शुक्रजातक में कहा है 'सूर्योभानुस्तथादित्यो रविः प्रभाकरस्तथा। दिनेशस्तमोहन्ता च दिनकर्ता दिवामणिः॥ शीतगुश्चन्द्रमा सोमो रजनीपतिरेव च। शीतरश्मिर्निशानाथः शशी च कुमुदिनीपतिः॥ आरो वक्रो महीसूनु रुधिरो रक्त एव च। अङ्गारक इति ख्यातः क्रूरदृक् क्रूरकृत्तथा॥ सौम्यो ज्ञोऽत्र बुधश्चेति सोमजो बोधनस्तथा। एते सौम्यस्य पर्यायाः कुमारश्च प्रभासुतः॥ गुरुर्जीवोदेवमन्त्री देवतानां पुरोहितः। दैवेज्यअङ्गिरा-

१. व० सं० २ अ० २ श्लो०।
२. बृ० जा० २ अ० ३ लो०।

सुनुः बृहस्पति इति स्मृतः ।। शुक्रोभृगुर्भृगुसुत आस्फुजिच्च सितस्तथा । उशना दैत्यपूज्यश्च कामः कविरिति स्मृतः ।। कोणो मन्दः शनिः कृष्णः सूर्यपुत्रो यमस्तथा । पङ्गुः शनैश्चरः सौरिः कालछायासुतोऽसितः । राहुस्तमोऽसुरोऽगुश्च स्वर्भानुश्च विधुन्तुदः । धाता सैंहिकेयश्च भुजङ्गो भुजगस्तथा ।। शिखीकेतुर्ध्वजो धूम्रो मृत्युपुत्रोऽनिलस्तथा' (हो० र० १ अ० ५८ पृ०) ।। २२–२३ ।।

तथा सर्वार्थचिन्तामणि में भी 'सूर्योहेलिर्भानुमान् दीप्तरश्मिश्चण्डांशुः स्याद्भास्करोऽहस्करश्च । अब्जः सोमश्चन्द्रमाः शीतरश्मिः शीतांशुः स्यात् ग्लौमृगाङ्कः कलेशः । आरोवक्रश्चावनेयः कुजः स्याद् भौमः क्रूरोलोहिताङ्गोऽथ पापी । विज्ञः सौम्यो बोधनश्चन्द्रपुत्रश्चान्द्रिः शान्तः श्यामगात्रोऽतिदीर्घः । जीवोऽङ्गिरा देवगुरुः प्रशान्तो वाचांपतीज्यस्त्रिदिवेशबन्द्याः । भृगूशने भार्गवसूनवोऽच्छकाणः कविर्दैत्यगुरुः सितश्च । छायात्मजः पङ्गुयमार्कपुत्राः कोणोऽसितः सौरिशनी च नीलः । क्रूरः कृशाङ्गः कपिलाक्षिदीर्घौ तमोऽसुरश्चेत्यगुसैंहिकेयौ । स्वर्भानु राहू च विधुन्तुदो स्यात् केतुः शिखीस्याद् ध्वजनामधेयः' (१ अ० २४–२८½ श्लो०) ।। २२–२३ ।।

अथ सौम्यपापविवेकः ।

अब आगे कौन-सा ग्रह पाप व शुभ होता है । इसे बताते हैं ।

शुभ पापग्रहों का ज्ञान

अर्द्धोनेन्द्वर्कसीराराः पापज्ञस्तद्युतो परे ।
शुभाः पापौ तमःकेतू विष्णुधर्मोत्तरोदितौ ।। २४ ।।

ग्रह कौंसिल में आधे से अल्प चन्द्र (क्षीण), सूर्य, शनि, मंगल और इनके साथ बुध रहने पर पापग्रह और अवशिष्ट शुभ ग्रह होते हैं । तथा विष्णु धर्मोत्तर में राहु व केतु को पाप ग्रह कहा गया है ।। २४ ।।

बृ० जा० में कहा है 'क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापाबुधस्तैर्युतः' (२ अ० ५ श्लो०) ।। २४ ।।

तथा बृहत्पाराशर में भी 'तत्रार्कशनिभूपुत्राः क्षीणेन्दुराहुकेतवः । क्रूराः शेषग्रहाः सौम्याः क्रूरः क्रूरयुतो बुधः' (३ अ० ११ श्लो०) ।। २४ ।।

एवं सारावली में 'गुरुबुधशुक्राः सौम्याः सौरिकुजार्कास्तु निगदिताः पापाः । शशिजोऽशुभसंयुक्तः क्षीणश्च निशाकरः पापः' (४ अ० ९ श्लो०) ।। २४ ।।

और भी होरारत्न में 'क्रूरग्रहाः कुजदिवाकर सूर्यसूनुक्षीणेन्दवः शशिसुतः सहितस्तु तैःस्यात् । पूर्णेन्दुजीवभृगुजाः शुभसंज्ञिताः स्युस्तैः संयुतस्तुहिनरश्मिसुतोऽपि सौम्यः' (१ अ० १६ श्लो०) ।। २४ ।।

क्रूरा वक्रा महाक्रूराः सौम्या वक्रा महाशुभाः ।
सहजाः स्युः स्वभावस्थाः सौम्याः क्रूराश्च शीघ्रगाः ।। २५ ।।

क्रूर ग्रह वक्री होने पर अधिक पापी और शुभ ग्रह वक्री होने पर शुभी होते हैं। इस प्रकार न होने पर शुभ पाप ग्रह अपना शुभ पाप फल प्रदान करते हैं ।।२५।।

अथ पुरुषाधिपकथनम् ।

स्त्री पुरुषादि संज्ञक ग्रह ज्ञान

पुंसां सूर्यारवागीशौ (शा ?) योषितां चन्द्रभार्गवौ ।
क्लीबानां बुधमन्दौ च पतयः परिकीर्तिताः ।। २६ ।।

सूर्य, भौम, गुरु पुरुषों के, स्त्रियों के चन्द्र शुक्र और बुध शनि नपुंसकों के स्वामी होते हैं। या यों समझिये कि इनकी ये संज्ञा होती हैं ।। २५ ।।

वृ० पा० में कहा है 'क्लीबौ द्वौ सौम्यसौरी च युवतीन्दुभृगू द्विज । नराः शेषाश्च विज्ञेया भानुभौमौ गुरुस्तथा' (३ अ० १६ श्लो०) ।। २६ ।।

तथा वृहज्जातक में भी 'बुध सूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ शशिशुक्रौ युवती नराश्च शेषाः' (२ अ० ६ श्लो०) ।। २३ ।।

एवं सारावली में 'स्त्रीणां चन्द्रसुतौ नपुंसकपती सोमात्मजार्कात्मजौ, पुंसां जीवदिवाकरक्षितिसुता विप्रस्य शुक्रोऽङ्गिरा' (४ अ० १४ श्लो०) ।। २६ ।।

अथ ग्रहाणां स्वामिनः । श्रीपतिः—

अब आगे ग्रहों के स्वामी वा देवता या प्रत्यधिदेवता कौन-कौन होते हैं। इसे श्रीपति के वाक्य से बताते हैं।

सूर्यादितः शिवशिवागुहविष्णुकेन्द्रकालाः क्रमेण पतयः कथिता ग्रहाणाम् ।
वह्न्यम्बुभूमिहरिशक्रशचीविरिञ्च्यस्तेषां पुनर्मुनिवरैः प्रतिदेवताश्च ।।२७।।

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि शिव (महादेव) शिवा (पार्वती) गुह (कार्तिकेय) विष्णु, क (ब्रह्मा) इन्द्र और काल सूर्यादि क्रम से देवता होते हैं। या यों समझिये कि सूर्य का महादेव, चन्द्र का पार्वती, भौम का कार्तिकेय, बुध का विष्णु, गुरु का ब्रह्मा, शुक्र का इन्द्र और शनि का देवता (स्वामी) काल होता है। और सूर्यादि क्रम से ही या यों समझिये कि सूर्य का अग्नि, चन्द्रमा का जल, भौम का भूमि, बुध का विष्णु, गुरु का इन्द्र, शुक्र का इन्द्राणी और शनि का ब्रह्मा अधिदेवता होता है ।। २७ ।।

वृ० पा० में कहा है 'वन्ह्यम्बुशिखिजाविष्णु विडौजः शचिकाः क्रमात्' (३ अ० १८ श्लो०) ।। २७ ।।

तथा वृ० जा० में 'वन्ह्यम्ब्वग्निजकेशवेन्द्रशचिकाः सूर्यादिनाथाः क्रमात्' (२ अ० ५ श्लो०) ।। २७ ।।

और भी सारावली में 'पावकजलगुहकेशवशक्रशचीवेधसः पतयः' (४ अ० १२ श्लो०) ।। २७ ।।

एवं यवनाचार्य जी ने भी 'देवाग्रहाणांजलवह्निविष्णुप्रजापतिस्कन्दमहेन्द्रदेव्यः । वृ० जा २ अ० ५ श्लो० भट्टो० टी० तथा होरारत्न ६४ पृ०) ।। २७ ।।

राहु-केतु के स्वामी

राहोरधिपतिः कालः प्रत्यधीशो भुजङ्गमः ।
तथा केतोश्चित्रगुप्तः स्वयम्भू ऋषिभिः स्मृतः ॥ २८ ॥

राहु का काल देवता व अधिदेवता सर्प और केतु का चित्रगुप्त देवता और स्वयंभू ब्रह्मा अधिदेवता होता है ॥ २८ ॥

अथ ग्रहाणां वाहनानि । ब्रह्मगुप्तः—

अब आगे ग्रहों के वाहन कौन-कौन होते हैं इसे ब्रह्मगुप्त के वाक्य से बताते हैं ।

ग्रहवाहन का ज्ञान

सिंहाश्वकी कर्कमृगौ च मेषो नरो मयूरो वृषभस्तु सैरभः ।
छागो महाजश्च वदन्ति तज्ज्ञाः सूर्यादिकानामिति वाहनानि ॥२९॥

आचार्य ब्रह्मगुप्त ने बताया है कि सूर्य का सिंह व घोड़ा, चन्द्र का केकड़ा व हिरन, मंगल का भेड़ा, बुध का मनुष्य, गुरु का मोर, शुक्र का बैल, शनि का भैंसा, राहु का बकरा और केतु का वाहन (सवारी) बड़ा बकरा होता है ॥ २९ ॥

अथ ग्रहाणां गृहम् । वृद्धयवनजातके—

अब आगे ग्रहों के घर को वृद्धयवन जातक के वाक्य से बताते हैं ।

इदं जगत्स्थावरजङ्गमाख्यं सर्वं रवीन्द्वात्मकमाहुराद्याः ।
तस्योद्भवोऽत्रापचयश्च दृष्टो भूमण्डलेष्येव तदात्मकं तत् ॥ ३० ॥

वृद्ध यवन जातक में बताया है कि यह समस्त स्थावर जंगमात्मक संसार सूर्य-चन्द्रात्मक ही है । ऐसा पूर्वाचार्यों का कहना है । सूर्य चन्द्रमा के दर्शन से ही उद्भव और ह्रास इस भूमि का होता है ॥ ३० ॥

राशि मण्डल का विभाग व राशि स्वामी

तस्यार्धमाद्यं विहितं मघादि सार्पान्तिचान्द्रं विहितं परार्धम् ।
क्रमेण सूर्यः प्रददौ ग्रहाणां व्यस्तेन ताराधिपतिस्तथैव ॥ ३१ ॥

बुधस्य शुक्रस्य धरासुतस्य वृहस्पतेर्भास्करनन्दनस्य ।
द्वे द्वे गृहे तेषु यथानुरूपं फलं विधेयं निपुणं विदग्धैः ॥ ३२ ॥

उस भचक्र का आधा पहिला भाग मघादि या सिंहादि से आधा अर्थात् सिंह से मकर तक और आश्लेषा या कर्क से उलटा ६ राशि तक गिनने पर दूसरा भाग होता है । प्रथम का सूर्य और द्वितीय का चन्द्रमा स्वामी कहा गया है । इन्हीं दोनों ने क्रम व उत्क्रम से तारा ग्रहों को एक २ राशि देकर सिद्ध कर दिया है कि बुध, शुक्र, गुरु व शनि दो २ राशि के स्वामी होते हैं ॥ ३१–३२ ॥

कालीदासोऽपि—

कालीदास के आधार पर

पञ्चाननाख्यो हि यथेभचक्रे पञ्चाननाख्यो हि तथा भचक्रे।
एनं हरिः पालयितुं क्षमोऽस्य कृतं तदित्येतदगारमाद्यैः ॥ ३३ ॥

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है कि जैसे हाथियों में सिंह वैसे ही राशि चक्र में भी नाम से ही सिंह राशि बली होती है। इसको सूर्य ही पालने में समर्थ हो सकता है अतः सूर्य ने अपना कब्जा यों किया कि ग्रह परिषद् में सूर्य को राजा माना है ॥३३॥

राशि चक्रार्ध के स्वामियों का ज्ञान

सिंहादिचक्रार्धपती रविः स्याद्विलोमकीटादिभखण्डपोऽब्जः।
पतङ्गधाम्ना सविधं तमीशः स्थातुं कुलीरं त्वकरोह(द?)गारम् ॥३४॥

सिंह से ६ राशियों का सूर्य और कर्क से विपरीत ६ राशियों का स्वामी चन्द्र होता है। क्योंकि सूर्य के पास रहने की इच्छा से कर्क को अपना घर बनाया है ॥३४॥

उच्चोच्चमार्गे चरतां ग्रहाणां बुधाननानां भवनोरिनेन्दौ।
प्रतिष्ठितान्पालयतः पुराणैर्द्विजैरथोकांसि यथा क्रमेण ॥ ३५ ॥

सूर्य चन्द्र से उच्च-उच्च कक्षा में रहने के कारण बुधादि को दो राशियाँ क्रम से प्रदान की हैं। क्योंकि सूर्य से ऊपरी कक्षा में भौम है तथा चन्द्र से बुध शुक्र हैं और इनसे सूर्य ऊपर की कक्षा में है। 'कहा है' मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः' ॥ ३५ ॥

अथैवं गतिकारणं संचारैर्ग्रहाणां भौमादीनां फलितैक्यगतिरष्टभेदात्मिकेत्याह। सूर्यसिद्धान्ते—

अब आगे भौमादि ग्रहों के सञ्चरण से ग्रहों की ८ आठ प्रकार की गति होती है इसे सूर्य सिद्धान्त के वाक्य से बताते हैं।

८ आठ प्रकार की गतियों का ज्ञान

[1]वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा।
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः ॥ ३६ ॥

सूर्यसिद्धान्त में बताया है कि १ वक्रा, २ अनुवक्रा ३ कुटिला, ४ मंदा, ५ मंदतरा, ६ समा, ७ शीघ्रतरा और ८ शीघ्रा ये तारा ग्रहों की गति होती हैं ॥ ३६ ॥

विशेष—प्रकाशित सूर्यसिद्धान्त में 'वक्राऽतिवक्रा विकला' यह पाठान्तर उचित प्रतीत होता है क्योंकि वक्र व कुटिल एकार्थक है ॥ ३६ ॥

वस्तुतः ५ पाँच प्रकार की गति

[2]तथाशीघ्रा शीघ्राख्या मन्दा मन्दतरा समा।
ऋज्वीति पञ्चधा ज्ञेया या वक्रा सानुवक्रगा ॥ ३७ ॥

---

१. २ अ० १२ श्लो०।
२. २ अ० १३ श्लो०।

सूर्यसिद्धान्त में बताया है कि शीघ्रा, मन्दा, समा, ऋज्वी, और वक्रा नाम की पाँच ही गति होती हैं। क्योंकि शीघ्रा शीघ्रतरा की व मन्दतरा मन्दा की और अतिवक्रा वक्रा गति की समान ही गति होती है ॥ ३७ ॥

अथाष्टधा गतिकारणम् । होरानुभवदर्पणे—

अब आगे आठ प्रकार की गतियों को होरानुभवदर्पण के वाक्य से बताते हैं।

आठ प्रकार की गति कारण

अर्कयुक्तश्चोदयः स्याद्वितीये शीघ्रगो भवेत् ।
रवेस्तृतीये समता गतिमन्दा चतुर्थके ॥ ३८ ॥
पञ्चमेऽप्यथवा षष्ठे किञ्चिद्वक्रा च वक्रता ।
सप्तमाष्टमयोरर्कादतिवक्रा गतिर्भवेत् ॥ ३९ ॥
नवमे दशमे भानोः खेटानां कुटिला गतिः ।
एकादशे द्वादशे च शीघ्रा शीघ्रतरा क्रमात् ।
रविसंयुतखेटस्य गतिरस्ताह्वया भवेत् ॥ ४० ॥

होरानुभवदर्पण में कहा है कि सूर्य से युक्त ग्रह रहने पर उदय गति, दूसरी राशि में सूर्य से ग्रह होने पर शीघ्रा, तीसरी में समा, चौथी में मन्दा, पाचवीं छठी में कुछ वक्र या वक्रा, सातवीं आठवीं में अतिवक्रा, नवीं दशवीं में कुटिला और सूर्य से ग्यारहवीं बारहवीं राशि में ग्रह के रहने पर शीघ्रा अतिशीघ्रा गति होती है। तथा सूर्य के साथ रहने पर अस्ता गति होती है ॥ ३८–४० ॥

अथ ग्रहणामन्तश्चर्यालक्षणम् । महानिबन्धे—

अब आगे ग्रहों की अन्तश्चर्या के लक्षण को या यों समझिये कि काल पुरुष के आत्मादि ग्रह कौन २ होते हैं। इसे महानिबन्ध के वाक्य से बताते हैं।

आत्मादि ग्रह ज्ञान

आत्मा रविः शीतकरश्च चेतः सत्त्वं धराजः शशिजश्च वाणी ।
ज्ञानं सुखं चन्द्रगुरुर्मदश्च शुक्रः शनिः कालनरस्य दुःखम् ॥४१॥

महानिबन्ध में कहा गया है कि कालपुरुष की आत्मा सूर्य, चित्त चन्द्रमा, बल भौम, बुध वाणी, ज्ञान सुख गुरु, मद शुक्र और शनि दुःख होता है ॥ ४१ ॥

बृ. पा. में कहा है 'सर्वात्मा च दिवानाथो मनः कुमुदबान्धवः । सत्त्वं कुजो बुधैः प्रोक्तो बुधो वाणी प्रदायकः' (३ अ० १२–१३ श्लो०) ॥ ४१ ॥

बृहज्जातक में भी बताया है 'कालात्मा दिनकृन्मनस्तुहिनगुः सत्त्वं कुजो ज्ञो वचो, जीवो ज्ञानसुखे सितश्च मदनो दुखं दिनेशात्मजः' (२ अ० १ श्लो०) ॥ ४१ ॥

और भी सारावली में 'आत्मा रविः शीतकरस्तु चेतः सत्त्वं धराजः शशिजोऽथ वाणी । ज्ञानं सुखं शुक्रगुरू मदश्च राहुः शनिः कालनरस्य दुःखम्' (४ अ० १ श्लो०) ॥ ४१ ॥

अथाङ्गविभागः। महानिबन्धे—

अब आगे काल पुरुष के किस शरीर अवयव में कौन सा ग्रह होता है इसे महानिबन्ध के वाक्य से बताते हैं।

काल पुरुष के शरीरावयवों में ग्रह न्यास

शिरःप्रदेशे वदने दिनेशो वक्षःस्थले चापि गले कलावान्।
पृष्ठोदरे भूतनयश्च पीडां करोति सौम्यश्चरणे च पाणौ॥ ४२॥
कटिप्रदेशे जघने च जीवः कविश्च गुह्यस्थलमुष्कयुग्मे।
जानूरुदेशे नलिनीशसूनुश्चारेण वा जन्मनि चिन्तनीयम्॥ ४३॥

महानिबन्ध में कहा है कि काल पुरुष के मस्तक व मुख में सूर्य, वक्षस्थल व गले में चन्द्रमा, पीठ व पेट में भौम, हाथ व पाँव में बुध, कमर और जंघा में गुरु, गुह्यस्थान व अण्डकोश में शुक्र और पीडरी व घुटना में शनि को स्थापित करके संचार वश वा जन्म में शुभाशुभ उन अंगों का जानना चाहिये॥ ४२-४३॥

कस्मिन् कार्ये केषां ग्रहाणां बलं ग्राह्यम्—

अब आगे किस कार्य में किस ग्रह का बल विचार करना चाहिये इसे बताते हैं।

कार्यवश ग्रहबल का ज्ञान

उद्वाहे चोत्सवे जीवः सूर्यो भूपालदर्शने।
संग्रामे धरणीपुत्रो विद्याभ्यासे बुधो बली॥ ४४॥
यात्रायां भार्गवः प्रोक्तो दीक्षायां च शनैश्चरः।
चन्द्रमा सर्वकार्येषु प्रशस्तो गृह्यते बुधैः॥ ४५॥

विवाह व उत्सव में गुरु का, राजदर्शन में सूर्य का, युद्ध में भौम का, विद्या के अभ्यास में बुध का, यात्रा में शुक्र का, दीक्षा (मन्त्र ग्रहण) में शनि और समस्त कार्यों में चन्द्रमा का बल देखना चाहिये॥ ४४-४५॥

वसिष्ठ ने कहा है 'राजालोकनसमये रविरार्यः करतलग्रहे सुबली। रणसमये धरणिसुतः प्रयाणसमये सितोऽतिबली॥ दीक्षणसमयेऽर्कसुतः शशितनयो ज्ञानशिल्पविधौ निखिलेष्वपि कार्येषु च चन्द्रबलं मुख्यमखिलं नृणाम्' (मु. चि. ३ प्र० १६ श्लो०पी०टी०)॥ ४४-४५॥

गर्गोऽपि—

गर्ग के आधार पर भी

[1]रविर्नृपविलोकने सुरगुरुर्विवाहोत्सवे
रणे धरणिनन्दनो भृगुसुतः प्रयाणे बली।
शनिश्च खलु दीक्षणे निखिलशास्त्रबोधे बुधः
शशी सकलकर्मसु ध्रुवमुदाहृतं सूरिभिः॥ ४६॥

---

१. मु० चि० ३ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।

गर्गाचार्य का कहना है कि राजदर्शन में सूर्य का, विवाह, उत्सव में गुरु का, लड़ाई में मंगल का, यात्रा में शुक्र का, दीक्षा में शनि का और चन्द्रमा का समस्त कार्यों में बल विचार करना चाहिये ।। ४६ ।।

ग्रहों की पृष्ठोदय, मस्तकोदय संज्ञा

अर्कोऽङ्गारकमन्दास्तु सम्यक्पृष्ठोदयाः स्मृताः ।
राहुजीवभृगुज्ञास्तु ग्रहाः स्युर्मस्तकोदयाः ॥ ४७ ॥

सूर्य, मंगल, शनि की पृष्ठोदय और राहु, गुरु, शुक्र, बुध की मस्तकोदय संज्ञा होती है ॥ ४७ ॥

अथ ग्रहाणामवस्था--

अब आगे ग्रहों की स्तनपान बाल्यादि अवस्था को बताते है ।

ग्रहों की अवस्था

वयांसि तेषां स्तनपानबाल्यकिशोरका यौवनमध्यवृद्धाः ।
अतीव वृद्धा इति चन्द्रभौमज्ञशुक्रजीवार्कशनैश्चराणाम् ॥ ४८ ॥

चन्द्रमा की स्तनपान, भौम की बाल्य, बुध की किशोर, शुक्र की यौवन, गुरु की मध्य, सूर्य की वृद्ध और शनि की अतिवृद्ध अवस्था होती है ॥ ४८ ॥

त्रैलोक्यप्रकाशे --

त्रैलोक्य प्रकाश के आधार पर अवस्था

बुधः शिशुर्युवा भौमः शुक्रेन्दू मध्यमौ परे ।
वृद्धो बुधो विधुर्बालो बालिका स्त्री प्रकीर्तिता ॥ ४९ ॥

त्रैलोक्य प्रकाश में बताया है कि बुध की शिशु, भौम की युवा, शुक्र चन्द्र की मध्य अवशिष्टों की वृद्ध अवस्था होती है । बुध की बाल और चन्द्रमा की बालिका, स्त्री संज्ञा होती है ।। ४९ ।।

अथ कालबलिनः--

अब आगे कौन सा ग्रह किस समय में बलवान् होता है । इसे बताते हैं ।

ग्रहों का समय बल

प्रातःकाले जीवबुधौ मध्याह्ने कुजभास्करौ ।
अपराह्णे चन्द्रसितौ सन्ध्याकाले तमःशनी ॥ ५० ॥

प्रातः काल में गुरु, बुध, मध्याह्न में, मंगल, सूर्य, अपराह्न में, चन्द्रमा, शुक्र, सन्ध्या समय में राहु शनि बली होते हैं ।। ५० ।।

अथ ग्रहधातुमाह--

ग्रहों की धातु संज्ञा

भौमार्कौ पित्तमाख्यातौ श्लेष्मकौ चन्द्रभार्गवौ ।
समधातू गुरुबुधौ ग्रहाः शेषास्तु वातिकाः ॥ ५१ ॥

मंगल, सूर्य की पित्त, चन्द्र, शुक्र की कफ, गुरु बुध की सम और अवशिष्ट ग्रहों की वायु धातु होती है ॥ ५१ ॥

ग्रहों की कट्वादि संज्ञा का ज्ञान

कटुकौ कुजमादित्यौ क्षाराम्लौ चन्द्रभार्गवौ ।
बुधः कषायिको जीवो मधुस्तिक्तौ तमःशनी ॥ ५२ ॥

मंगल, सूर्य की कटु (कड़वी) चन्द्र, शुक्र की नमकीन खट्टा, बुध की कसैला, गुरु की मधुर (मीठी) और राहु व शनि की तीत (तीखा) संज्ञा होती है ॥ ५२ ॥

ग्रहों की द्विपदादिसंज्ञा

द्विपदौ भार्गवगुरू भूपुत्रार्कौ चतुष्पदौ ।
पक्षिणौ बुधसौरी च चन्द्रराहू सरीसृपौ ॥ ५३ ॥

शुक्र, गुरु की द्विपद, मंगल, सूर्य की चतुष्पद, बुध शनि की पक्षी और चन्द्र राहु की सरीसृप (सर्प) संज्ञा होती है ॥ ५३ ॥

ग्रहों की ब्राह्मणादि संज्ञा

विप्रौ शुक्रगुरू क्षत्रं कुजार्कौ शूद्र इन्दुजः ।
इन्दुर्वैश्यः स्मृतो म्लेच्छौ सैंहिकेयशनैश्चरौ ॥ ५४ ॥

शुक्र, गुरु की ब्राह्मण, मंगल सूर्य की क्षत्रिय, बुध की शूद्र, चन्द्रमा की वनिया और राहु शनि की म्लेच्छ संज्ञा होती है ॥ ५४ ॥

अथ ग्रहाणां वर्णानाह—

ग्रहों के वर्णों का ज्ञान

भौमो रक्तो गुरुः पीतो बुधो नीलः शशी सितः ।
कविः शुभ्रो रविर्गौरः कृष्णो राहुः शनिः पुनः ॥ ५५ ॥

भौम का लाल, गुरु का पीला, बुध का नीला, चन्द्र का सफेद, शुक्र का शुभ्र, रवि का गौर और राहु शनि का काला रङ्ग होता है ॥ ५५ ॥

बृ. जा. में कहा है 'रक्तः श्यामो भास्करो गौर इन्दुर्नात्युच्चाङ्गो रक्त गौरश्च वक्रः दूर्वाश्यामो ज्ञो गुरुर्गौरगात्रः श्यामः शुक्रो भास्करिः कृष्णदेहः' (२ अ० ४ श्लो०) ॥ ५५ ॥

ग्रहों की नृपादि संज्ञा

रवी राजा शशी राज्ञी मङ्गलो मण्डलाधिपः ।
ज्ञः कुमारो गुरुर्मन्त्री सितो नेता परो भृती ॥ ५६ ॥

सूर्य की राजा, चन्द्रमा की राजपत्नी, मंगल की मण्डलेश्वर, बुध की कुमार, गुरु की सचिव, शुक्र की नेता और शनि सेवक (नौकर) संज्ञा होती है ॥ ५६ ॥

सूर्य जातक में कहा है 'अहं राजा शशी राज्ञी नेता भूमिसुतः खगः । सौम्यः कुमारो मन्त्री च गुरुस्तद्वल्लभा भृगुः । प्रेष्यस्तथैव सम्प्रोक्तः सर्वदा तनुजो मम । (हो० र० ६१ पृ० १२ श्लो०) ॥ ५६ ॥

विशेष--अन्य जातक ग्रन्थों में प्रायः सूर्य चन्द्र को राजा और गुरु शुक्र को मन्त्री बताया गया है।

यथा बृ० पा० में 'रविचन्द्रौ तु राजानौ' (२ अ० ३ श्लो०)। हो० र० में 'राजा रविः शशिधरश्च, 'सचिवौ सितेज्यौ' (हो० र० ६० पृ० ११ श्लो०)। शम्भु होरा प्रकाश में 'नृपौ रवीन्दू, सन्मन्त्रिणौ देवगुरूशनाख्यौ' (२ अ० ३ श्लो०)। तथा सर्वार्थचिन्तामणि में भी 'दिनेशचन्द्रौ नरपालमुख्यौ' शुक्रेज्यपूज्यौ सचिवौ' इत्यादि ॥ ५६ ॥

अथ स्नाय्वादिस्वामित्वमाह—

ग्रहों के स्नाय्वादि प्रभुत्व का ज्ञान

स्नायुसत्त्वगुल्ममज्जासुखानां स्वामिनौ शशिभास्करौ।
शोणिताधिपतिर्भौमः शुक्रस्याधिपतिर्भृगुः ॥ ५७ ॥

बुधश्चैतन्यवुद्धीनां जीवो जीवाधिपो भवेत्।
मनसश्चन्द्रमाः स्वामी भवेदेषां वपुःस्थितिः ॥ ५८ ॥

नस, वल, बायीं कोख में होने वाले मांस पिण्ड, मांस व सुख के स्वामी चन्द्र, सूर्य, खून का भौम, वीर्य का शुक्र, चैतन्यता व वुद्धि का वुध, जीव आत्मा का गुरु, मन का चन्द्रमा स्वामी होता है। या यों समझिये कि कालपुरुष के देह में इनकी स्थिति है ॥ ५७-५८ ॥

ग्रहों की ऊर्ध्वादि दृष्टि का ज्ञान

ऊर्ध्वदृष्टी कुजादित्यावधोदृष्टी तमःशनी।
तिर्यग् दृष्टी भृगुवुधौ चन्द्रजीवौ समेक्षणौ ॥ ५९ ॥

मंगल; सूर्य की ऊर्ध्व, राहु, शनि की नीचे, शुक्र, वुध की तिरछी और चन्द्रमा व गुरु की समदृष्टि होती है ॥ ५९ ॥

अथ ग्रहाणां राशिभोगः—

अब आगे ग्रहों के राशि भोग का या यों समझिये कि प्रत्येक ग्रह एक राशि का कितने समय में भोग करता है वा संचरण करता है। इसे कर्ण प्रकाश के वाक्य से बताते हैं।

कर्णप्रकाशे—

ग्रहों का राशि भोग

सौरी सुन्दरि सार्द्धमब्दयुगलं वर्षं समासं गुरु
राहुर्मासदशाष्टकं तु कथितं मासं सपक्षं कुजः।
सूर्यः शुक्रवुधास्त्रयोऽपि कथिता मासैकतुल्या ग्रहा—
श्चन्द्रः पादयुतं दिनद्वयमिति प्रोक्तेति राशिस्थितिः ॥ ६० ॥

कर्ण प्रकाश में कहा है कि हे सुन्दरी शनि एक राशि का ढाई वर्ष में, गुरु एक वर्ष में, राहु दस मास में, मंगल डेढ़ मास में, सूर्य, बुध, शुक्र एक मास में और चन्द्रमा सवा दो दिन में एक राशि का भोग करता है ।। ६० ।।

अथ ग्रहाणां वेधस्थानमाह—

श्रीपतिः—

वेध व ग्रहों के शुभ स्थान

[1]सर्वे लाभगृहस्थितास्त्रिखरिपुष्वर्को मृगार्की त्रिषट्
प्राप्तौत्र्याद्यखमन्मथारिषु शशी खास्तारिवर्ज्यं भृगुः ।
धीधर्मास्तधनेषु वाक्पतिररिस्वाष्टाम्बुखस्थो बुधः
श्रेष्ठो जन्मगृहादिगोचरविधौ विद्धो न चेत्स्याद्ग्रहैः ।। ६१ ।।

समस्त ग्रह ग्यारहवें में, सूर्य तीन ३, दस १०, ६ में, भौम शनि ३, ६ में चन्द्रमा ३।१।१०।७।६ में, शुक्र १०।७।६ को छोड़कर शेष में, गुरु ५।६।७।२ में, बुध ६।२।८।४।१० में, अपनी राशि से शुभ होता है । यदि अन्य ग्रहों से वेधित न हो तो शुभ होता है ।। ६१ ।।

सूर्य के शुभ व वेध स्थान

लाभविक्रमखशत्रुषु स्थितः शोभतो निगदितो दिवाकरः ।
खेचरैः सुततपोजलान्त्यगैर्व्यार्किभिर्यदि न विध्यते तदा ।। ६२ ।।

जन्म राशि से सूर्य ११।३।१०।६ में शुभ होता है यदि शनि को छोड़ कर ५।६।४।१२ में स्थित ग्रहों से विद्ध न होने पर होता है ।। ६२ ।।

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'त्रिषडेकादशमे सूर्यः शुभदोग्रहैर्नविद्धश्चेत् । नवरिःफात्मजलग्नैः स्वबलोपेतैर्विसूर्यसुतैः' (१८ अ० २ श्लो०) ।। ६२ ।।

तथा नारद जी ने भी कहा है 'शुभोऽर्कोजन्मतस्त्र्यायदशषट्सु न विध्यते । जन्मतो नवपञ्चाम्बुव्ययगैर्व्यार्किभिर्ग्रहैः' (ज्यो० नि० ५१ पृ० ५ श्लो०) ।

चन्द्र के शुभ व वेध स्थान

द्यूनजन्मरिपुलाभखत्रिगश्चन्द्रमाः शुभफलप्रदस्तदा ।
स्वात्मजान्त्यमृतिबन्धुधर्मगैर्विध्यते न विबुधैर्यदि ग्रहैः ।। ६३ ।।

जन्म राशि से ७।१।६।११।१०।३ में चन्द्रमा, यदि २।५।१२।८।४।६ में स्थित बुध के बिना ग्रहों से वेधित न हो तो शुभफलदायी होता है ।। ६३ ।।

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'भवदशमाद्यकलत्रत्रिषट्षु निशाकरोऽत्रबली । नैधनजलधीष्वर्थनवान्त्यगतैर्विबुधखेचरैर्न हतः' (१८ अ० ३ श्लो०) ।। ६३ ।।

तथा नारद जी ने भी कहा है 'विध्यते जन्मतो नेन्दुर्द्यूनाद्यायतुंदिक्त्रिषु । स्वेष्वष्टान्त्याम्बुधर्मस्थैर्विबुधैर्जन्मतः शुभः' (ज्यो० नि० ५१ पृ० ६ श्लो०)।। ६३ ।।

---

१. मु० चिं० ४ प्र० १–३ श्लो० पी० टी० ।

भौम शनि के शुभ व विद्ध स्थान

विक्रमायरिपुगः शुभः कुजः स्यात्तदान्त्यसुतधर्मगैः खगैः ।
चेन्न विद्ध इनसूनुरप्यसौ किन्तु धर्मघृणिना न विध्यते ॥ ६४ ॥

अपनी राशि से ३।११।६ में यदि १२।५।९ में स्थित ग्रहों से वेधित भौम न हो तो शुभ एवं इन्हीं स्थानों में शनि. सूर्य को छोड़कर अन्य ग्रहों से विद्ध न हो तो शुभ होता है ॥ ६४ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'त्रिषडेकादशसहितो धरासुतः कामधर्मसुतसंस्थैः । दिनकरतनयोऽपि शुभो न विद्धयते खचरैर्विनोष्णकरैः' (१६ अ० ४ श्लो०) ॥ ६४ ॥

तथा नारद जी ने भी 'त्र्यायारिषु कुजः श्रेष्ठो जन्मराशेर्न विध्यते । अन्त्येष्वङ्क-ग्रहैः सौरिरपि सूर्येण सम्मतः' (ज्यो० नि० ५१ पृ० ७ श्लो०) ॥ ६४ ॥

बुध के शुभ व विद्धस्थान

स्वाम्बुशत्रुमृतिखायगः शुभो ज्ञस्तदा न खलु विध्यते तदा ।
आत्मजत्रितयआद्यनैधनप्रान्त्यगैर्विविधुभिर्नभश्चरैः ॥ ६५ ॥

अपनी राशि से २।४।६।८।१०।११ में बुध यदि ५।३।१।८।९।१२ में स्थित चन्द्रमा को छोड़कर अन्य ग्रहों से विद्ध न हो शुभ होता है ॥ ६५ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'दशमैकादशनिधनस्वबन्धुशत्रुस्थितः शुभः शशिजः । निधनान्त्यप्रथमात्मजतृतीयस्थैर्विनेन्दुखेचरैर्नहतः' (१८ अ० ५ श्लो०) ॥

तथा नारद जी ने भी 'ज्ञः खाब्ध्यर्यष्टखायेषु जन्मतश्चेन्न विध्यते । धीत्र्यङ्काष्टान्त्य-खेटैर्हि जन्मतो वीक्षितः शुभः' (ज्यो० नि० ५१ पृ० ८ श्लो०) ॥

गुरु के शुभ व विद्ध स्थान

स्वायधर्मतनयद्युनस्थितो नायकपुरोहितः शुभः ।
रिःफरन्ध्रखजलत्रिगैर्यदा विध्यते गगनचारिभिर्न हि ॥ ६६ ॥

अपनी राशि से २।११।९।५।७ में गुरु यदि १२।८।१०।४।३ में स्थित ग्रहों से विद्ध न हो तो शुभ फल होता है ॥ ६६ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'पञ्चमनवमायधनस्मरगः शुभदो गुरुर्न विद्धश्चेत् । गृहकर्माष्टान्त्यत्रिस्थितखेचरैर्नास्तमितैः' (१८ अ० ६ श्लो०) ॥ ६६ ॥

तथा नारद जी ने भी 'जन्मतः स्वायगोऽङ्ग्यस्तेष्वन्त्याष्टखजलत्रिगैः । जन्म राशेर्गुरुश्रेष्ठो ग्रहैर्यदि न विध्यते' (ज्यो० नि० ५१ पृ० ९ श्लो०) ॥ ६६ ॥

शुक्र के शुभ व विद्ध स्थान

आसुताष्टमतपोव्ययायगो विद्ध आस्फुजिदशोभनः स्मृतः ।
नैधनास्ततनुकर्मधर्मधीलाभवैरिसहजस्थखेचरैः ॥ ६७ ॥

अपनी राशि से १।२।३।४।५।८।६।११।१२ में शुक्र यदि ८।७।१।१०।६।५।११।६।३ में स्थित ग्रहों से विद्ध न हो तो शुभ होता है ॥ ६७ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'आसुतनिधनाङ्कान्त्यमवगृहगतः शुक्रः शुभदो न हतः। वसुमदनाद्यखधर्मसुतारिसहजायगैर्न विद्धस्तैः (१८ अ० ७ श्लो०) ॥ ६७ ॥

तथा नारद जी ने भी 'जन्मभादासुताष्टाङ्कान्त्यायेष्विष्टो न विध्यते। जन्मभान्मृत्युसप्ताद्यखाङ्केष्वायरिपुत्रिगैः' (ज्यो. नि. ५१ पृ० १० श्लो०) ॥ ६७ ॥

वेध में विशेष

एवमत्र खचरव्यधान्विताः स्वं फलं नहि दिशन्ति गोचरे।
वामवेधविधिना त्वशोभना अप्यमी शुभफलं दिशत्यलम् ॥ ६८ ॥

इस प्रकार यहाँ अर्थात् गोचर विचार में ग्रहों से वेधित होने पर शुभ फल नहीं होता है। तथा वामवेध होने पर अशुभ भी शुभ फलदायक होता है ॥ ६८ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'वेधसमन्वितखचरा नृणां न दिशन्ति सत्फलं किञ्चित्। व्यत्ययवेधविधानाद्दिशन्त्यशुभा शुभफलं सततम्' (१८ अ० ८ श्लो०) ॥ ६८ ॥

[1]वैद्यनाथः--

वाम वेध ज्ञान

जन्मभाद्गणयेच्चन्द्रो जन्मभाद्वेधको (कं) ग्रहः (हं)।
वामवेधः स विज्ञेयः कथितः शौनकादिभिः ॥ ६९ ॥

अपनी जन्म राशि से चन्द्र राशि तक तथा जन्म राशि से वेधित ग्रह यह वाम वेध संज्ञा वाला होता है, ऐसा शौनकादि मुनियों का कहना है ॥ ६६ ॥

विशेष—ज्यो. नि. में 'सतु वेध क्रमो युक्तो कथि' यह पाठान्तर है ॥ ६६ ॥

ज्योतिष्प्रकाश में कहा है 'गणयेज्जन्मभाच्चन्द्रं जन्मधिष्ण्याच्च तारकम्। जन्मराशेः यद्याङ्काद्वा गणयेद् वेधकं ग्रहम्' (५१ पृ० २ श्लो०) ॥ ६९ ॥

लल्लः---

लल्लाचार्य के आधार पर वाम वेध

यस्मिन् राशौ गताः खेटाः खेटराशेर्गता ग्रहाः।
वामवेधः स विज्ञेयो ग्रहः शुभफलो मतः ॥ ७० ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि जिस राशि में ग्रह हों और ग्रह राशि से पीछे वाली राशि में स्थित ग्रह से वेध हो तो यह वाम वेध शुभ फलद होता है ॥ ७० ।

श्रीपतिस्तु--

श्रीपति के आधार पर

ये वदन्ति खचरव्यधक्रमं नो ग्रहक्रमविदो हि गोचरे।
ते मृषा वचनभाषिणो जना यान्ति हास्यमपकीर्तिलाञ्छिताः ॥ ७१ ॥

---

१. ज्यो० नि० ५१ पृ० ४ श्लो०।

आचार्य श्रीपति का कहना है कि जो ग्रह क्रम वेत्ता भी गोचर विमर्श में ग्रह वेध को नहीं कहते हैं अर्थात् नहीं जानते हैं वे असत्य बोलने वाले दिल्लगी के पात्र और अपयश से दूषित होते हैं ।। ७१ ।।

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'गोचरबलचिन्तायां ये न विदन्ति यथाक्रमं चेति। गोचरबलानभिज्ञा लोके यान्ति हास्यतां सुजनाः' (१८ अ० ९ श्लो०) ।। ७१ ।।

नारदः--

नारद जी के आचार प्रशंसा

[1]न ददाति शुभं किञ्चिद्गोचरे वेधसंस्थितः ।
तस्माद्वेधं विचार्याथ कथ्यते तच्छुभाशुभम् ।। ७२ ।।

ऋषि नारद ने बतलाया है कि वेध से युक्त ग्रह गोचर में थोड़ा भी फल नहीं देता है। इसलिये वेध का विचार करके ही शुभाशुभ फल कहना चाहिये ।। ७२ ।।

वामवेधविधानेन शोभनस्त्वशुभोऽपि वा ।
अतस्तान् द्विविधान् वेधान् विचार्याथ वदेत्फलम्[2] ।। ७३ ।।

वाम वेध विधान से अशुभ भी शुभ होता है। इसलिये दोनों प्रकार के वेधों का विचार करके अच्छा बुरा फल कहना चाहिये ।। ७३ ।।

गोचर अज्ञान से फल

[3]अज्ञात्वा विविधान् वेधान् यो ग्रहज्ञः फलं वदेत् ।
स मृषावचनाभाषी हास्यं याति नरैः सदा ।। ७४ ।।

जो ग्रह वेत्ता दो प्रकार के वेधों को न विचार कर फलादेश करता है उसकी वाणी झूठी होती है और मनुष्यों में दिल्लगी का पात्र होता है ।। ७४ ।।

विशेष

[4]सौम्येक्षितेऽनिष्टफलः शुभः स्यात्पापवीक्षितः ।
निष्फलौ तौ ग्रहौ स्वेन शत्रुणा यौ निरीक्षितौ ।। ७५ ।।

शुभ ग्रह से दृष्ट अनिष्ट फल भी शुभ और पाप ग्रह से दृष्ट शुभ भी अशुभ फल दायक होता है। और शुभाशुभ यदि अपने शत्रु ग्रह से दृष्ट हों तो निष्फल होते हैं। अर्थात् फल की प्राप्ति नहीं होती है ।। ७५ ।।

---

१. ज्यो० नि० ५२ पृ० १३ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ५२ पृ० १४ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ५२ पृ० १५ श्लो० ।
४. ज्यो० नि० ५२ पृ० १६ श्लो० ।

पुनः विशेष

[1]नीचराशौ गतो यश्च शत्रोः क्षेत्रगतोऽपि वा।
शुभाशुभफलं नैव दद्यादस्तङ्गतोपि वा ॥ ७६ ॥

नीच राशिस्थ व शत्रु राशि में स्थित और अस्त हुआ ग्रह अपना फल नहीं देने वाला होता है ॥ ७६ ॥

विशेष—ज्यो० नि० में 'नीचराशिगतः स्वस्य शत्रो' यह पाठान्तर है ॥ ७६ ॥

श्रीपतिरपि—

श्रीपति जी के आधार पर भी

असद्ग्रहः सौम्यनिरीक्षितश्च शुभप्रदः स्यादशुभेक्षितो यः।
तौ निष्फलौ द्वावपि खेचरेन्द्रौ यः शत्रुणा स्वेन निरीक्षितश्च ॥७७॥

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि अशुभ ग्रह शुभ से दृष्ट होने पर शुभ और शुभ ग्रह पाप से दृष्ट होने पर अशुभ तथा उक्त शुभाशुभ अपने शत्रु से दृष्ट होने पर फल से हीन होते हैं ॥ ७७ ॥

प्रकारान्तर

स्वनीचगेऽस्तगेऽपि वा रिपोर्गृहे स्थिते ग्रहे।
वृथा फलं प्रकीर्तितं समस्तमेव सूरिभिः ॥ ७८ ॥

अपनी नीच व शत्रु राशि और अस्त में रहने पर ग्रह कुछ भी फल नहीं देता है। यह समस्त महर्षियों ने बताया है ॥ ७८ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'अशुभेक्षितः कष्टफलः शुभेक्षितः सत्फलः खचरः। शत्रुविलोकनसहिताः सर्वे ते निष्फलाः खचराः'। नीचगता रिपुविजिता रव्यभिभूताः स्वशत्रुगेहस्थाः। भुजगा इव मन्त्रहता न भवन्ति कार्यक्षमा लग्ने। (१८ अ० १०-११२ श्लो०) ॥ ७८ ॥

राशि विभाग से ग्रहों का फल

राशिप्रवेशे सूर्यारौ मध्ये शुक्रबृहस्पती।
प्रान्त्यस्थौ शनिशीतांशू फलदः सर्वदा बुधः ॥ ७९ ॥

सूर्य, मंगल राशि में प्रवेश के समय, शुक्र गुरु राशि के बीच में, शनि चन्द्र अन्त्य में और बुध सब समय फल देने वाला होता है ॥ ७९ ॥

ज्योतिःप्रकाशे—

ज्योतिः प्रकाश के आधार पर प्रकारान्तर

[2]प्रवेशकाले भौमार्कौ शुक्रेज्यौ राशिमध्यगौ।
निर्गच्छन्तौ शनीन्दू च सर्वदा फलदो बुधः ॥ ८० ॥

---

१. ज्यो० नि० ५२ पृ० १७ श्लो०।
२. ज्यो० नि० ५२ पृ० २४ श्लो०।

ज्योतिः प्रकाश में कहा है कि राशि में प्रवेश होने पर मंगल, सूर्य, शुक्र गुरु बीच में, राशि से निकलते समय शनि, चन्द्रमा तथा बुध सब समय में फलदायी होता है ॥ ८० ॥

वशिष्ठसंहिता में कहा है 'भवनादिगतौ फलदौ रविभौमौ मध्यगौ च गुरुशुक्रौ। अन्त्यगतौ शनिशशिनौ सदैव फलदः शशाङ्कसुतः। (१८ अ० १५ श्लो०) ॥ ८० ॥

ग्रहों को पूर्वराशिस्थ फल की दिन संख्या

रविर्दिनं पञ्च कुजस्तथाष्टौ बुधे द्वयं त्रीणि दिनानि शुक्रः।
मासं गुरुर्मासचतुष्कमैर्निर्गन्तव्यराशौ फलदा भवन्ति ॥ ८१ ॥

राशि में प्रवेश करने पर सूर्य पहले पाँच दिन पूर्व राशि का, इसी प्रकार भौम आठ दिन, बुध दो दिल, शुक्र तीन दिन, गुरु एक मास तक, शनि चार मास तक पूर्व राशि का फल देता है ॥ ८१ ॥

लल्लोऽपि—

लल्लाचार्य जी के आधार पर भी

सूर्यारसौम्यास्फुजितोऽक्षनागसप्तद्विघस्रान्विधुरग्निनाडी ।
तमोयमेज्यास्त्रिरसाश्विमासान् गन्तव्यराशेः फलदाः पुरस्तात् ॥८२॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि सूर्य, मंगल, बुध, शुक्र ५, ८, ७, २ दिन तक पूर्व राशि का चन्द्रमा ३ घटी, राहु, शनि, गुरु ३ । ६ । २ मास तक पूर्व राशि जन्य फल देते हैं ॥ ८२ ॥

ज्योतिःसागरे—

ज्योतिः सागर के आधार पर

[1]भानुर्ददाति गन्तव्यराशौ पञ्चदिनं फलम् ।
चन्द्रो नाडीत्रयं भौमो दिनान्यष्टौ बुधो द्वयम् ॥ ८३ ॥
[2]सार्धमासं गुरुः शुक्रश्चतुर्दिनमथार्कजः ।
मासषट्कं फलं राहुः केतुर्मासत्रयं तथा ॥ ८४ ॥

ज्योतिः सागर में कहा है कि सूर्य पांच दिन, चन्द्रमा तीन घटी, मंगल आठ दिन' बुध दो दिन, डेढ़ मास गुरु, शुक्र चार दिन और शनि ६ मास, राहु केतु तीन मास तक पहली राशि का फल देते है ॥ ८३–८४ ॥

तथा रत्नकोश में भी 'पक्षं दशाहं च तथा त्रिपक्षं मासत्रिभागं खलु मासषट्कम् । भौमादिखेटास्त्वतिचारवक्रा दद्युः फलं पूर्वगृहे यदुक्तम् । त्रयोदशार्किः क्षितिजश्च सप्त द्व्यहं बुधः पञ्चदिनानि शुक्रः । वक्री गुरुः पूर्वफलप्रदः स्यादेकादशाहानि गुरुर्वराहः । मासं शनीज्यौ कुजभार्गवौ तु पक्षं दशाहानि च सोमसूनुः । ददाति वक्री फलमाद्यराशेः केषाञ्चिदेवं न मतं बहूनाम्' (ज्यो० नि० ५२ पृ० २८–३० श्लो० ॥ ८३–८४ ॥

---

१. ज्यो० नि० ५२ पृ० २६ श्लो० । २. ज्यो० नि० ५२ पृ० २७ श्लो० ।

मुहूर्तकल्पद्रुमे—

मुहूर्त कल्पद्रुम के आधार पर

मेषादिद्वादशं राशिं यत्र जीवो हि तिष्ठति ।
पूर्वराशिफलं प्रोक्तं अष्टाविंशतिवासराः ॥ ८५ ॥

मुहूर्त कल्पद्रुम नामक ग्रन्थ में बताया है कि मेषादि बारह राशियों में जिस राशि में गुरु स्थित होता है उस प्रवेश से २८ दिन तक पूर्व राशि का फल होता है ॥ ८५ ॥

रत्नकोशे—

रत्नकोश के आधार पर

[1]विलोमगत्या यदि वातिगत्या प्रयाति यो राशिमतीत्य शेषम् ।
हित्वा तदीयं गगनेचरोऽसौ दद्यात् फलं पूर्वगृहे यदुक्तम् ॥८६॥

[2]वक्रातिचारेण गृहान्तरेऽपि स्थितो ग्रहः पूर्वफलो यदि स्यात् ।
देशान्तरं कार्यवशाद्गतोऽपि स्वदेशधर्मं न जहाति मर्त्यः ॥८७॥

[3]यावन्ति या वक्रगतो दिनानि भवेत्स वक्रो यदि वातिचारे ।
दशांशतुल्यानि फलानि तेषां दद्यात्फलं पूर्वगृहे यदुक्तम् ॥८८॥

रत्नकोश में बताया है कि वक्री व अतिचारी ग्रह जिस राशि के अवशिष्ट अंश को छोड़कर वक्र वा अतिचारी होता है तो पूर्व राशि का ही फल देता है ॥ ८६ ॥

वक्र वा अतिचार वश ग्रह दूसरी राशि में जाने पर भी पहिली राशि का फल देता है । क्योंकि कार्यवश परदेश जाने पर भी मनुष्य अपने देश धर्म का त्याग नहीं करता है ॥ ८७ ॥

जितने दिन तक ग्रह वक्र वा अतिचारी होता है उसके दशांश तुल्य दिन तक पूर्व राशि का फल देता है ॥ ८८ ॥

गर्गोऽपि—

गर्गाचार्य के आधार पर भी

भौमादीनां ग्रहाणां हि पञ्चानामपि नित्यशः ।
अतिचारे च वक्रे च पूर्वराशिफलं वदेत् ॥ ८९ ॥

आचार्य गर्ग का कहना है कि भौमादि पांच ग्रहों का भी अतिचारी व वक्री होने पर भी नित्य पूर्व राशि का फल होता है ॥ ८९ ॥

---

१. ज्यो० नि० ५२ पृ० ३१ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ५२ पृ० ३३ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ५२ पृ० ३२ श्लो० ।

संहितासारे—

संहिता सार के आधार पर भी

यस्मिन्गृहे स्थितो दोपस्तत्रोद्योतं करोति वै।
एवं ग्रहोऽपि यत्र स्यात्तत्रैव फलदः स्मृतः॥ ९०॥

चारातिचारवक्रेण यो यत्रावस्थितो ग्रहः।
स तद्राशिफलं दद्याद्गोचरे फलसाधने॥ ९१॥

वसिष्ठमाण्डव्यपराशरात्रिगर्गाङ्गिराव्यासकुलस्य वाक्यम्।
वक्रातिचारे सुरराजमन्त्री यत्रागतस्तत्र फलं ददाति॥ ९२॥

अतिचारे च वक्रे च ग्रहाणान्तर्गतं फलम्।
बृहस्पतेस्तु तन्नास्ति पूर्वराशिफलप्रदम्॥ ९३॥

संहिता सार में कहा है कि जिस घर में दीपक रहता है तो प्रकाश भी उसी घर में होता है इसलिये जिस राशि में ग्रह की स्थिति होती है उसी राशि का फल ग्रह देता है॥ ९०॥

संचरण वश अर्थात् वक्री वा अतिचारी होने पर ग्रह जिस राशि में रहता है तो गोचर फल साधन में उसी राशि का फल होता है॥ ९१॥

वसिष्ठ, माण्डव्य, पराशर, अत्रि, गर्ग, अंगिरा और व्यास मुनियों का कहना है कि वक्री वा अतिचारी होने पर गुरु जिस राशि में रहता है तो उसी का फल देता है॥ ६२॥

अतिचारी वा वक्री होने पर ग्रहों का अन्तर्गत फल बृहस्पति को छोड़ कर पूर्व राशि का ही होता है॥ ६३॥

फलसङ्ग्रहे—

फल संग्रह के आधार पर

द्विजन्मनि पञ्चमसप्तगाश्चतुरष्टमद्वादशधर्मयुताः।
धनधान्यप्राणहिरण्यहरा रविराहुशनैश्चरभूमिसुताः॥ ९४॥

द्वादशदशमचतुर्थे जन्मनि षष्ठाष्टगे तृतीये च।
व्याधिर्विदेशगमनं मित्रविरोधं सुरगुरुः कुरुते॥ ९५॥

तृतीयैकादशे षष्ठे शन्यर्ककुजराहवः।
चत्वारस्तस्य राज्यं वा शरीरे सौख्यमादिशेत्॥ ९६॥

फल संग्रह में कहा है कि २।१।५।७ में स्थित ग्रह यदि ४।८।१२।९ में स्थित गुरु, सूर्य, राहु, शनि, भौम ग्रहों से युक्त हों तो धन, धान्य, प्राण व सुवर्ण के हर्ता होते हैं॥ ६४॥

१२।१०।४।१।६।८।३ में यदि गुरु स्थित होता है तो रोग, विदेश गमन और विरोध होता है ॥ ६५ ॥

३।११।६ राशि में शनि, सूर्य, मंगल व राहु होने पर चारों राज्य दाता वा शरीर सुखदाता होवे हैं ॥ ९६ ॥

साढ़े साती शनि का ज्ञान

द्वादशे जन्मगे राशौ द्वितीये च शनैश्चरः।
सार्द्धानि सप्तवर्षाणि तदा दुःखैर्युतो भवेत् ॥ ९७ ॥

अपनी राशि से १२।१।२ में शनि होने पर मनुष्य को साढ़े सात वर्ष तक दुःखों से युक्त करने वाला होता है ॥ ९७ ॥

अथ गोचरे पृथक्फलानि—

अब आगे अपनी राशि से गोचर में सूर्यादि ग्रह के फल को अलग-अलग बताते हैं।

लल्लः—

स्वराशि से सूर्य का १२ राशियों में फल

[1]स्थानं जन्मनि नाशयेद्दिनकरः कुर्याद्द्वितीये भयं
दुश्चिक्ये श्रियमातनोति हिबुके मानक्षयं यच्छति।
दैन्यं पञ्चमगः करोति रिपुहा षष्ठेऽर्थहा सप्तमे
पीडामष्टमगः करोति पुरुषं कान्तिक्षयं धर्मगः ॥ ९८ ॥
[2]कर्मसिद्धिजनकस्तु कर्मगो वित्तलाभकृदथायसंस्थितः।
द्रव्यहानिजनिता महापदां यच्छति व्ययगतो दिवाकरः ॥ ९९ ॥

लल्लाचार्य जी ने बताया है कि अपनी राशि में गोचरीय सूर्य के रहने पर स्थान का नाश, स्वराशि से दूसरी राशि में सूर्य के होने पर भय, तीसरी में धन की प्राप्ति, चौथी में सम्मान का ह्रास, पाँचवीं में दीनता, छटी में शत्रु का नाश, सातवीं में पत्नी का नाश, आठवीं में पीड़ा, नवीं में चेष्टा का विनाश, दसवीं में कार्य की सिद्धि, ग्यारहवीं में धनागम और बारहवीं में सूर्य के संचार वश धन का नाश और अधिक विपत्ति होती है ॥ ९८–९९ ॥

ज्योतिषसार में कहा है 'सूर्यस्थानविनाशं भयं श्रियं मानहानिमथ दैन्यम्। विजयं मार्गाक्रमणं सुकृतं हन्ति सिद्धिमायमथ हानिम्' (९८ पृ०) ॥ ६८–६६ ॥

तथा मुहूर्तगणपति में भी 'गमो हानिर्धनं रोगो दैन्यं सौख्यं गती रुजः। पापं सौख्यं धर्मपीडे फलं भानोः स्वजन्मभात्' (१३ प्र० १ श्लो०) ॥ ९८–६६ ॥

---

१. मु० चि० ४ प्र० १–४ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० ५३ पृ० १ श्लो०।
२. मु० चि० ४ प्र० १–४ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० ५३ पृ० २ श्लो०।

अथ रविफलम्--

वाराहीये--

बृहत्संहिता के आधार पर १२ राशियों में सूर्य का फल

[1]जन्मन्यायासदोकः (कः ?) क्षपयति विभवान्कोष्ठरोगाध्वदाता
वित्तभ्रंशं द्वितीये दिशति नच सुखं वञ्चनांदृग्रुजं च।
स्थानप्राप्तिं तृतीये धननिचयमुदा कल्पकृच्चारिहन्ता
रोगान् धत्ते चतुर्थे जनयति च मुहुः स्रग्धरा भोगविघ्नम् ॥१००॥

वराहमिहिर ने बताया है कि यदि सूर्य अपनी राशि में हो तो उपद्रव, धन का नाश, पेट में रोग और भ्रमण, द्वितीय में धन का नाश, दुःख, ठगी, समस्त कार्यों का विनाश और नेत्र रोग, तीसरी में स्थान का लाभ, धन समूह से युक्त, आनन्द युत व शत्रु का नाश और अपनी राशि से चौथी राशि में गोचरीय सूर्य के होने पर रोग, माला को धारण करने वाली स्त्री का उपभोग और बार-बार विघ्न उत्पन्न होता है ॥ १०० ॥

स्वराशि से ५।६।७।८ राशिगत सूर्य का फल

[2]पीडाः स्युः पञ्चमस्थे सवितरि बहुशो रोगारिजनिताः
षष्ठेऽर्को हन्ति रोगान् क्षपयति च रिपूञ्छोकांश्च नुदति।
अध्वानं सप्तमस्थो जठरगदभयं दैन्यं च कुरुते
रुक्त्रासौ चाष्टमस्थे भवति सुवदना न स्वापि वनिता ॥ १०१ ॥

अपनी राशि से यदि सूर्य पञ्चम राशि में हो तो रोग, शत्रु जन्य अधिक प्रकार की पीड़ा, छटी में रोग, शत्रु व शोक का नाश, सप्तम में मार्ग भ्रमण, पेट के रोग का भय और आठवीं राशि में गोचरीय सूर्य के होने पर रोग, भय तथा अपनी स्त्री सुन्दर रीति से बातचीत नहीं करती है ॥ १०१ ॥

स्वराशि से ९।१०।११।१२ राशिगत सूर्य का फल

रवावापद्दैन्यं रुगिति नवमे विभवमपि विरोधा
जयप्राप्नोत्युग्रं दशमगृहगे कर्मसिद्धि क्रमेण।
जय स्थानं मानं विभवमपि चैकादशे रोगनाशं
सुवृत्तानां चेष्टा भवति सफला द्वादशे नेतरेषाम्[3] ॥ १०२ ॥

बृहत्संहिता में बताया है कि अपनी राशि से नवीं राशि में सूर्य के होने पर आपत्ति, दीनता व धन के प्रयोग आदि से विघ्न, दशवीं में कठिनाई से विजय व कार्य की सिद्धि, ग्यारहवीं में विजय, स्थान लाभ, पूजा और रोग का नाश तथा

---

१. बृ० सं० १०३ अ० ५ श्लो०।

२, बृ० सं० १०३ अ० ६ श्लो०।

३. बृ० सं० १०३ अ० ७ श्लो०।

बारहवीं राशि में सूर्य के होने पर सुन्दर स्वभाव वालों को क्रिया फलवती होती है और दुर्जनों के कार्य नष्ट होते हैं ॥ १०२ ॥

विशेष--प्रकाशित बृ० सं० में 'नवमे वित्तचेष्टाविरोधो' यह पाठान्तर है ॥१०२॥

यवनेश्वर ने कहा है 'हृद्रोगशोकाध्वविवाहदैन्यक्रोधक्षयव्याधिमयार्तिदोषान्। स्थाने शशाङ्कस्य रविः करोति व्यर्थश्रमोद्वेगमपि द्वितीये। तृतीयसंस्थो धनमानधर्मस्थानासनप्रीतिसुखप्रदोऽर्कः। चतुर्थगस्तु क्षतजप्रवृत्तिज्वरामयोद्भेद विवादकारी। नृपावमर्दात्मजबन्धुशोकव्याधिप्रदः पञ्चमसंस्थितोऽर्कः। आरोग्यसौख्यारि विनाशहर्षख्यातिक्रियासिद्धिकरश्च षष्ठः। जामित्रसंस्थो रुधिरप्रवृत्तिज्वरक्लमाजीर्णविषाध्वकारी। सूर्योऽष्टमे स्त्रीसुतबन्धुदुःखव्याधिप्रदोपद्रवमृत्युकृत् स्यात्। दैन्यस्थिति भ्रंशगुरुस्वबन्धुप्रद्वेषकृत् स्यान्नवमाश्रितोऽर्कः। मेषूरणस्थो द्विचतुष्पदस्त्रिहिरण्यरौप्याम्बरलाभकर्ता। एकादशे स्थानयशः प्रहर्षमिष्टाशनारोग्यसुखप्रदोऽर्कः। स्थाने निरुक्ते शशिनो विधिज्ञैः क्रियाफलाघातकृदन्त्यराशौ' (बृ० सं० १८४ अ० ४ श्लो० भट्टो०) ॥ १०२ ॥

अथ रविचक्रम्--

अब आगे फल के साथ सूर्य चक्र न्यास को श्रीपति के वाक्य से बताते हैं।

श्रीपतिः--

सूर्यचक्र न्यास

मूर्ध्नि त्रीणि मुखे त्रीणि स्कन्धे बाहुकरद्वये।
वक्षः पञ्चैकनाभौ च गुह्यैकं जानुनोर्द्वयम् ॥ १०३ ॥
चरणे द्वे षट्कऋक्षाणि सूर्यभाद्गणयेत्क्रमात् ॥ १०४ ॥
मूर्ध्नि श्रीवदने तु मिष्टमशनं स्कन्धे धनं स्वामिता
बाह्वोर्बाहुबलं तथा करयुगे चौर्यं हृदि स्वं बहु।
नाभ्यामल्पतरेण रुष्यति परं स्त्रीसङ्गमो गुह्यके
जानुस्थे रविभे विदेशगमनं पादे मितं जीवनम् ॥ १०५ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि सूर्य के नक्षत्र से ३ तीन नक्षत्र मस्तक में, पुनः ३ मुख में, २ कन्धा में, २ बाहों में, २ कपोल में, ५ हृदय में, १ नाभि में, १ गुह्य स्थल में, २ घुटनों में और दोनों पाँवों पर ६ नक्षत्रों का न्यास करके देखना चाहिये कि यदि मस्तक व मुख में जन्म नक्षत्र हो तो मीठा भोजन, कन्धे में हो तो धनागम व प्रभुत्व, बाहों में भुजबल, कपोल में चौर्यता, हृदय में अधिक धन, नाभि में थोड़े कार्य से क्रोध, गुह्य में स्त्री संगम, घुटनों में विदेश गमन और पाँवों में जन्म नक्षत्र हो तो अल्प जीवनचर्या होती है ॥ १०३–१०५ ॥

तथा ज्योतिःसागर में कहा है 'त्रीन्वक्रस्याननाशं त्रिभिः शिरसि भयं दक्षिणाङ्घ्रे त्रिरोगं पञ्च श्री दक्षहस्ते त्रितयमपि सदा वामपादे विनाशम्। हस्ते श्री पञ्चवामे त्रिकटिधनमयं कुक्षियुग्मेऽर्थलाभं जन्माद्येकस्य मानां फलमितिषु शुभदं चाङ्ग-सूर्यस्य चक्रम् ॥ १०३–१०५ ॥

स्पष्टार्थ सारणी

न० सं०	३	३	२	२	२
स्थान	मस्तक	मुख	कन्धा	हाथ	कपोल
फल	मधुर भोजन	मीठा भोजन	धनागम	भुजबल	चौर्यता
न० सं०	५	१	१	२	६
स्थान	हृदय	नाभि	गुह्य	घुटना	पैर
फल	अधिक धन	अल्पकार्य से क्रोध	स्त्रीभोग	परदेश गमन	अल्प जीवन

लल्लः—

लल्लाचार्य के आधार पर सूर्य चक्र न्यास

यस्मिन्नृक्षे भवेत्सूर्यस्तत्रादौ त्रीणि मस्तके।
त्रीणि वक्त्रे प्रदातव्या एकैकं स्कन्धयोर्द्वयोः ॥ १०६ ॥

एकैकं बाहुयुग्मे तु एकैकं तु करद्वयोः।
हृदये पञ्च ऋक्षाणि नाभावेकं विनिर्दिशेत् ॥ १०७ ॥
गुह्ये चैकं प्रदातव्यं एकैकं जानुयुग्मके।
शेषाणि षट्ऋक्षाणि पादयोर्विनियोजयेत् ॥ १०८ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि जिस नक्षत्र में सूर्य हो उससे ३ तीन नक्षत्र तक मस्तक पर, इसके बाद ३ मुख पर, एक-एक २ दोनों कन्धा पर, एक २ बाहों २ में, एक २ दोनों घुटना पर और अवशिष्ट ६ नक्षत्रों का पैरों में न्यास करना चाहिये ॥ १०६–१०८ ॥

सूर्य चक्र का फल

मस्तके राजसन्मानं मुखे मिष्टान्नभोजनम्।
स्कन्धे स्कन्धधरो ज्ञेयो स्थानभ्रंशो भुजे भवेत् ॥ १०९ ॥
हस्तयोस्तस्करो धूर्तो लक्ष्मीवान्हृदये स्मृतः।
नाभौ सन्तोषवान्धीरो गुह्ये स्यात्पारदारिकः।
जान्वोर्विदेशगमनं अल्पायुः पादयोर्भवेत् ॥ ११० ॥

यदि अपना नक्षत्र माथे पर हो तो राजकीय सन्मान, मुख में मीठा भोजन, स्कन्ध में भार वहन, भुज में पदच्युति, हाथ में चोरी व धूर्तता, हृदय में धनागम,

नाभि में सन्तोष व धीरता, गुह्य में पर स्त्री गमन, घुटनों में विदेश गमन और पैरों में होने पर अल्पायु होता है ॥ १०९–११० ॥

सफल स्पष्टार्थ सूर्य चक्र सारिणी

सू०न०सं०	३	३	२	२	२	५	१	१	२	६
स्थान	मस्तक	मुख	स्कन्ध	बाहु	कपोल	छाती	नाभि	गुह्य	घुटना	पैर
फल	राजकीय सन्मान	मीठा भोजन	भार वाहन	पद-च्युति		धना-गम	संतोष धीरता	परस्त्री गमन	विदेश गमन	अल्पायु

अथ चन्द्रफलम्––

लल्ल:––

स्वराशि से बारह राशियों में गोचरीय चन्द्र का फल

[1]जन्मन्यन्नं दिशतु हिमगुर्वित्तनाशं द्वितीये
दद्याद्द्रव्यं सहजभवने कुक्षिरोगं चतुर्थे ।
कार्यभ्रंशं तनयगृहगे वित्तलाभं च षष्ठे
द्यूने द्रव्यं युवतिसहिते मृत्युसंस्थेऽल्पमृत्युः ॥ १११ ॥
[2]नृपभयं कुरुते नवमः शशी दशमधामगतस्तु महत्सुखम् ।
विविधमायगतः कुरुते धनं व्ययगतश्च रुजश्च धनक्षयम् ॥ ११२ ॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि स्वराशि में चन्द्रमा होने पर अन्नादि दाता, दूसरी में धन का नाश, तीसरी में धनागम, चौथी में पेट रोग, पांचवीं में कार्य का नाशक, छठी में धन दाता, सातवीं में स्त्री व धन, आठवीं में अल्प मृत्यु, नवीं में राजा का भय, दशवीं में अधिक सुखकारी, ग्यारहवीं में अनेक रीति से धन दाता और अपनी राशि से बारहवीं राशि में चन्द्रमा के होने पर रोग और धन का क्षय करने वाला होता है ॥ १११-११२ ॥

ज्यो० सा० में कहा है 'चन्द्रोऽन्नं च धनं सौख्यं रोगं कार्यक्षतिं श्रियम् । श्रियं मृत्युं नृपभयं सुखमायव्ययौ क्रमात्' (६८ पृ०) ॥ १११-११२ ॥

मुहूर्तगणपति में भी 'पुष्टिर्वित्तं श्रियो रोगः सुखं लाभो धनं रुजः । मानं सौख्यं श्रियः पीडा चन्द्रस्यैतत् फलं क्रमात्' (१३ प्र० २२ श्लो०) ॥ १११–११२ ॥

और भी ज्योतिः सागर में 'अन्नं नाशं सुखं रोगं हानिं लाभं धनं भृतिः । भयं सौख्यं धनं रोगं क्रमाच्छशिफलप्रदः' ॥ १११–११२ ॥

---

१. मु० चि० ४ प्र० १–४ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० ५३ पृ० ।
२. मु० चि० ४ प्र० १–४ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० ५३ पृ० ।

वाराहसंहितायाम्--

वाराहसंहिता के आधार १।२।३४ राशि में चन्द्र का फल

शशी जन्मन्यन्नप्रवरशयनाच्छादनकरो
द्वितीये मानार्थौ ग्लपयति सविघ्नश्च भवति।
तृतीये वस्त्रस्त्रीधननिचयसौख्यानि लभते
चतुर्थेऽविश्वासः शिखरिणभुजङ्गेन सदृशः[1] ॥ ११३ ॥

वराह मिहिराचार्य ने बताया है कि यदि गोचरीय चन्द्रमा जन्म की राशि में हो तो अन्न, उत्तम शय्या और वस्त्र को देने वाला, दूसरी में पूजा व धन का नाश व विघ्न करता, तीसरी में वस्त्र, धन, विजय और सुखकारी, चौथी में पर्वत पर सर्प की तरह सब पर अविश्वास करने वाला होता है ॥ ११३ ॥

स्वराशि से ५।६।७।८ राशि में चन्द्र का फल

[2]दैन्यं व्याधिं शुचमपि शशी पञ्चमे मार्गविघ्नं
षष्ठे वित्तं जनयति सुखं शत्रुरोगक्षयं च।
यानं मानं शयनमशनं सप्तमे वित्तलाभं
मन्दाक्रान्ति फणिनि हिमगौ चाष्टमे भीर्नरस्य ॥ ११४ ॥

अपनी राशि से यदि चन्द्रमा पाँचवीं राशि में हो तो दीनता, रोग, शोक व मार्ग में विघ्नकर्ता, छठी में धन सुख को पैदा करने वाला व शत्रु रोग का नाशक, सातवीं में वाहन. पूजा, शय्या, भोजन और धन का दायक, आठवीं राशि में होने पर विना प्रयत्न ग्रहण किया हुआ सर्प किस को भय नहीं करता है अर्थात् सबको भय करता है उसी तरह अष्टमस्थितचन्द्र भी सबको भय करने वाला होता है ॥ ११४ ॥

स्वराशि से ९।१०।११।१२ राशि में गोचरीय चन्द्र का फल

[3]नवमगृहगो बन्धोद्वेगं श्रमोदररोग-
कृद्दशमभवने चाज्ञाकर्मप्रसिद्धकरः शशी।
उपचयसुहृत्संयोगार्थप्रमोदमुपान्त्यगो
वृषभचरितान् दोषानन्ते करोति हि स व्ययान् ॥ ११५ ॥

अपनी राशि से यदि चन्द्रमा नवीं राशि में हो तो बन्धन, उद्वेग, खेद और उदर रोग करने वाला, दशवीं में प्रभुता व कार्य सिद्धि कर्ता, ग्यारहवीं में धन वृद्धि करने वाला, मित्र के साथ समागम और धन का प्रमोद करने वाला और बारहवीं राशि में चन्द्रमा होने पर धन क्षति, बैल के सींग, खुर आदि से पीड़ा करने वाला होता है ॥ ११५ ॥

---

१. बृ० सं० १०३ अ० ८ श्लो०।
२. बृ० सं० १०३ अ० ९ श्लो०।
३. बृ० सं० १०३ अ० १० श्लो०

यवनेश्वर ने कहा है 'स्वस्थानगो भोजनगन्धमाल्यनारी सुहृद्वस्त्रप्रदः खलु स्यात्। चन्द्रो द्वितीयर्क्षगतस्तु तस्माद् बहुव्ययायासविवादकारी। तृतीयगो वस्त्रहिरण्ययोषित् सुहृद्यशो भोजनदो हिमांशुः। स्वबन्धुपीडाधननाशजानि कुर्वीत दुःखानि चतुर्थसंस्थः। धनक्षयाजीर्णरुगब्वदैन्यविक्षोभकृत् पञ्चमगः शशाङ्कः। क्षत्रुक्षयारोग्यसुखार्थसिद्धि स्निग्धागमप्रीतिकरश्च षष्ठः। जामित्रगः स्त्रीजनबन्धुशय्याहिरण्यभोज्याम्बरदः शशाङ्कः। क्षुद्व्याधिचिन्ताकलहार्थनाशो मृत्युक्षयोपद्रवदोऽष्टमस्थः। धनक्षयारिव्ययमानभङ्गरोगादिकारी नवमः शशाङ्कः। मेपूरणस्थो बहुमानहर्षचेष्टाफलौदार्यं विरोधकारी। एकादशः स्निग्धविवाहशय्यास्त्रीभोजनप्राप्तिमुखार्थकारी। निशाकरो द्वादशगस्तु दैन्यमालस्यमीर्ष्यापचयं च कुर्यात्' (बृ० सं० १८४ अ० १० श्लो० पी० टी०) ॥ ११५॥

अथ चन्द्रचक्रम्--

अब आगे चन्द्रचक्र न्यास को गर्गाचार्य जी के वाक्य से बताते हैं।

गर्गः--

चन्द्रचक्र का न्यास

एकं मुखे भषट् शीर्षे त्रीणि दक्षिणहस्तके।
हृदि षट् वामहस्ते त्रिः कुक्षौ षट् पादयोर्द्वयम् ॥ १६ ॥

ऋषि गर्ग ने बताया है कि जिस राशि में चन्द्रमा हो अर्थात् जिस नक्षत्र में गोचरीय चन्द्रमा हो उससे १ नक्षत्र मुख में, पुनः ६ माथे पर, ३ दाहिने हाथ पर, फिर ६ छाँती पर, ३ बायें हाथ में, पेट में ६ और २ नक्षत्र दोनों पैरों में स्थापित करने से चन्द्र चक्र होता है ॥ ११६ ॥

चन्द्रचक्र का फल

वदने हरते द्रव्यं शीर्षे राज्यादिलाभदम्।
हानिस्तु दक्षिणे हस्ते हृदये स्त्रीसमागमः ॥ ११७ ॥
वामहस्ते रोगभयं कुक्षौ सौख्यं जयं तथा।
पादौ हानिर्भ्रमश्चैव चन्द्रचक्रफलं स्मृतम् ॥ ११८ ॥

यदि अपना नक्षत्र मुख हो तो धन का नाश माथे पर हो तो राज्यादि लाभदाहिने हाथ में हानि, छाती पर स्त्री सम्भोग. वाम हाथ पर रोग का डर, पेट में हो तो सुख व विजय और अपना नक्षत्र पैरों में हो तो हानि व भ्रम होता है ॥ ११७-११८ ॥

स्पष्टार्थ सफल चन्द्रचक्र सारिणी गर्ग के आधार पर

चं०नं०सं०	१	६	३	६	३	३	६
स्थान	मुख	मस्तक	द० हाथ	छाती	वा०हाथ	उदर	पैर
फल	धननाश	राज्यलाभ	हानि	स्त्रीसंभोग	रोग भय	सुखविजय	हानिभ्रम

लल्लः—

लल्लाचार्य जी के आधार पर चन्द्र चक्र

षण्मुखे षट् पृष्ठे च षड् बाह्वोर्गुह्यके त्रयः ।
त्रीणि पादौ त्रीणि कण्ठे कर्तव्यं गणकोत्तमैः ॥ ११९ ॥
राकादिनस्थनक्षत्राद्गणकैर्गणयेत्सदा ।
यावच्च जन्मनक्षत्रं फलं ज्ञेयं क्रमेण च ॥ १२० ॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि पूर्णिमा के नक्षत्र से ६ नक्षत्र तक मुख में, पुनः ६ पीठ पर, फिर ६ हाथों में, ३ गुह्यस्थान में, ३ पैरों, ३ गले में स्थापित करके अपने जन्म नक्षत्र को देखना चाहिये कि किस अंग में है ॥ ११९-१२० ॥

चन्द्र चक्र का फल

मुखे स्वस्थानहानिः स्याद्धनलाभो हि पृष्ठके ।
हस्तद्वयेऽर्थलाभः स्याद्गुह्ये च स्त्रीसुखं भवेत् ॥ १२१ ॥
पादाभ्यां भ्रमणं देशे कण्ठे सर्वसुखी भवेत् ॥ १२२ ॥

यदि मुख में हो तो अपने स्थान का नाश, पीठ में हो तो धन लाभ, दोनों हाथों में धनागम, गुह्य स्थल में स्त्री सुख, पैरों भ्रमण और गले में होने पर सब प्रकार का सुख होता है ॥ १२१-१२२ ॥

स्पष्टार्थ सफल चन्द्र चक्र सारिणी लल्लाचार्य के आधार पर

पू० न०	६	६	६	३	३	३
स्थान	मुख	पीठ	हाथ	गुह्य स्थान	पैर	गला
फल	स्थान नाश	धनागम	धन लाभ	स्त्री सुख	भ्रमण	सब सुख

ज्योतिःसागर में कहा है 'शीतांशू जन्मधिष्ण्ये शिरसि बहुधनं पञ्चकं नेत्रयोश्च लाभं वक्त्रे भयं द्वे धनमपि च करौ त्रीणि संस्थे च पीडा । षट् पादयुग्मे धनकटि युगलं लाभपञ्चोदरस्थे मृत्युर्गुह्ये द्वयं च क्रमपरिगणितं यत्र शीतांशुधिष्ण्ये' ॥ १२२ ॥

अथ भौमफलम् —

अब आगे स्वराशि से गोचरीय भौम के फल को बताते हैं ।

स्वराशि से १।२।३।४।५।६।७ राशि में गोचरीय भौम का फल

[1]प्रथमगृहगः क्षोणीसूनुः करोत्यरिजं भयं
क्षपयति धनं वित्तस्थाने तृतीयगतोऽर्थदः ।
अरिभयकरः पाताले द्रव्यं क्षिणोति च पञ्चमे
रिपुगृहगतः कुर्याद्विजं (त्तं ?) रुजं मदनस्थितः ॥ १२३ ॥

---

१. मु० चिं० ४ प्र० १-४ श्लो० पी० टी० ।

यदि अपनी राशि में गोचरीय भौम हो तो शत्रु से भय, दूसरी में धन का क्षय, तीसरी में धनागम, चौथी में शत्रु से भय कर्ता, पाचवीं में धन का ह्रास, छठी में धनागम और सातवीं राशि में अपनी राशि से गोचरीय भौम होने पर रोग होता है ॥ १२३ ॥

स्वराशि से ८।९।१०।११।१२ राशि में गोचरीय भौम का फल

[1]जनयति निधनस्थः शत्रुबाधा धराजो
दिशति नवमसंस्थः कायपीडामतीव।
शुभमपि दशमस्थो लाभगो भूरिलाभं
व्ययभवनगतोऽसौ व्याधिमर्थस्य नाशम् ॥ १२४ ॥

जब कि अपनी राशि से आठवीं राशि में मंगल होता है तो शत्रु से बाधा, नवीं में अधिक देह कष्ट, दशवीं में शुभता, ग्यारहवीं में अधिक लाभ और बारहवीं राशि में गोचरीय भौम होने पर व्याधि और धन का विनाश होता है ॥ १२४ ॥

ज्यो० सा० में कहा है 'भौमोऽरिभीतिं घननाशमर्थं भयं तथार्क्षं क्षतिमर्थलाभम्। धनात्ययं शत्रुभयं च पीडां शोकं धनं हानिमनुक्रमेण' (९८ पृ०) ॥ १२४ ॥

मुहूर्त गणपति में कहा है 'भीतिर्हानिः श्रियो वैरं रुग्लाभौ कार्श्यमेव च। भयं रोगं सुखं शोको लाभो हानिश्च भूसुते' (१३ प्र० ३२ श्लो०) ॥ १२४ ॥

और भी ज्योतिः सागर में 'भयं हानिं धनं वैरं सुखं लाभं धनं क्षयम्। पापं सौख्यं धनं हानिं भौमोऽस्तु जन्मतःफलम्' ॥ १२४ ॥

अब आगे वाराही संहिता के वाक्य से गोचरीय भौम के फल को बताते हैं।

वाराहीये—

स्वराशि में व राशि से २ राशि में गोचरीय मंगल का फल

[2]कुजेऽभिघातः प्रथमे द्वितीये नरेन्द्रपीडा कलहादिदोषैः।
भृशं च पित्तानलरोगचोरैः कृपेन्द्रवज्रप्रतिमोऽपि यः स्यात् ॥ १२५ ॥

आचार्य वाराह ने बताया है कि जब जन्म राशि में भौम होता है तो उपद्रव और द्वितीय राशि में हो तो राज पीड़ा, कलह, शत्रु दोष, धातु दोष, अग्नि चोर, रोग इन सबों से इन्द्र के वज्र के तुल्य कठोर मनुष्य को भी अतिशय अभिघात होता है ॥ १२५ ॥

विशेष—प्रकाशित बृ० सं० में 'योगैरुपेन्द्रवज्रप्रति·····' यह पाठान्तर है ॥१२५॥

यवनेश्वर ने कहा है 'नृपानलव्यालविषाग्निशस्त्रव्याव्यर्थनाशी क्षयभृङ्गकारी। भौमः शशिस्थानगतो द्वितीये त्वनर्थसूर्याभिषवञ्चनाकृत्' (बृ० सं० १८४ अ० १८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १२५ ॥

---

१. मु० चिं० ४ प्र० १–४ श्लो० पी० टी०।
२. बृ० सं० १०३ अ० ११ श्लो०।

स्वराशि से ३ री राशि में गोचरीय भौम का फल

[1]तृतीयगश्चोरकुमारकेभ्यो भौमः सकाशात्फलमादधाति।
प्रदीप्तिमाज्ञां धनमौर्णिकानि धात्वाकराख्याति किलापराणि ॥ १२६ ॥

जब स्वराशि से तीसरी राशि में भौम होता है तो चोर, कुमारों (आठ वर्ष अवस्था वाले) के द्वारा फल, दीप्ति आदेश, धन, ऊनी वस्त्र, स्नान से उत्पन्न द्रव्य और अन्य द्रव्यों का भी लाभ होता है ॥ १२६ ॥

वृद्धयवन ने कहा है 'ऐश्वर्यमानद्युतिहर्षकारी तृतीयसंस्थोऽन्नसुवर्णदश्च' (वृ० सं० १८४ अ० १८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १२६ ॥

स्वराशि से चौथी राशि में भौम का फल

[2]भवति धरणिजे चतुर्थगे ज्वरजरठगदासृगुद्भवः।
कुपुरुषजनिताच्च सङ्गमात्प्रसभमपि करोति चाशुभम् ॥ १२७ ॥

जब स्वराशि से चौथी राशि में मंगल होता है तो ज्वर, उदर रोग, रक्त विकार और निन्दित मनुष्य के साथ समागम से दृढ़तापूर्वक अशुभ होता है ॥ १२७ ॥

वृ० य० ने कहा है 'चतुर्थगस्तूदररुग्जरासृक्प्रवृत्तिनिर्वेदकरो धराजः (वृ० सं० १८४ अ० १८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १२७ ॥

स्वराशि से पाँचवी राशि में भौम का फल

[3]रिपुगदकोपभयानि पञ्चमे तनयकृताश्च शुचो महीसुते।
द्युतिरपि नास्य चिरं भवेत्स्थिरा शिरसि कपेरिव मालनीकृता ॥ १२८ ॥

जब स्वराशि से पाँचवीं राशि में सूर्य होता है तो शत्रु, रोग, क्रोध, भय और पुत्र के द्वारा शोक होता है। तथा जिस तरह वानर के मस्तक पर मालती पुष्प अधिक देर तक स्थिर नहीं रहता है, उसी तरह मनुष्य की कान्ति बहुत देर तक स्थिर नहीं रहती है ॥ १२८ ॥

विशेष—प्रकाशित वृ० सं० 'मालती यथा' यह पाठान्तर है ॥ १२८ ॥

वृ० य० ने कहा है 'सुतार्थनाशक्षतवैरमोषव्याधिप्रदः पञ्चमराशिसंस्थः' (वृ० सं० १८४ अ० १८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १२८ ॥

स्वराशि से छठी राशि में भौम का फल

[4]रिपुभयकलहैर्विवर्जितः सकनकविद्रुमताम्रकागमः।
रिपुभवनगते महीसुते किमपरवक्रविकारमीक्षते ॥ १२९ ॥

---

१. वृ० सं० १०३ अ० १२ श्लो०।
२. वृ० सं० १०३ अ० १३ श्लो०।
३. वृ० सं० १०३ अ० १४ श्लो०।
४. वृ० सं० १०३ अ० १५ श्लो०।

जब स्वराशि से छठी राशि में मंगल होता है तो शत्रु भय व कलह से शून्य, सुवर्ण, मूंगा व तांबे का लाभ मनुष्य को होता है। तथा उसको क्या दूसरे मनुष्य का मुख विकार देखना पड़ता है अपितु नहीं ॥ १२९ ॥

वृ० य० ने कहा है 'षष्ठे कुजेऽरिक्षयमानहर्षप्रख्यापनारोग्यसमृद्धिकारी' (वृ० सं० १८४ अ० १८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १२९ ॥

स्वराशि से ७।८।९ राशि में भौम का फल

[1]कलत्रकलहाक्षिरुग्जठररोगकृत्सप्तमे
क्षरत्क्षतजरूक्षितः क्षपितवित्तमानोऽष्टमे।
कुजे नवमसंस्थिते परिभवार्थनाशादिभि-
विलम्बितगतिर्भवत्यबलदेहधातुक्रमैः ॥ १३० ॥

जब स्वराशि से सातवीं राशि में मंगल होता है तो स्त्री से लड़ाई, नेत्र रोग, उदर रोग, आठवीं में निकलते हुए खून से विवर्ण देह धन व मान का विनाश और नवीं राशि में गोचरीय मंगल होने पर पराभव, धन नाश आदि से शरीर में दुर्बलता और धातु क्षय से मन्द गति वाला होता है ॥ १३० ॥

वृ० य० ने कहा है 'जामित्रसंस्थो धनमित्रनाशक्लेशोदराक्ष्मामयरोगकृत् स्यात्। शस्त्रक्षताक्षेमसुवर्णनाशखेदाध्वकारो नवमो महीजः। भौमेऽष्टमे रुग् विष शत्रुशस्त्र क्षतक्षयोपद्रवदैन्यकारी' (वृ० सं० १८४ अ० १८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १३० ॥

स्वराशि से १०।११ राशि में गोचरीय भौम का फल

[2]दशमगृहगते समं महीजे विविधधनाप्तिरुपान्त्यगे जयश्च।
जनपदमुपरि स्थितश्च भुङ्क्ते वनमिव षट्चरणसुपुष्पिताग्रम् ॥ १३१ ॥

जब अपनी राशि से दशवीं राशि में मंगल होता है कि तो मध्यम फल और ग्यारहवीं राशि में मंगल होने पर अनेक प्रकार से धनागमन व विजय होता है तथा पुष्पित अग्रभाग वाले वृक्षों से युत वन में भ्रमर की तरह लोगों में प्रधान होकर भोग करता है ॥ १३१ ॥

वृद्धयवन ने कहा है 'मेपूरणे व्याध्यरिशस्त्रचौरव्रणार्तिकृत् सिद्धिकरश्च पश्चात्. मानात्मजाज्ञाक्षितिताम्रहेमद्युतिप्रदो रुद्रपदेऽरिजिच्च' (वृ० सं० १८४ अ० १८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १३१ ॥

स्वराशि से १२ वीं राशि में भौम का फल

[3]नानाव्ययैर्द्वादशगे महीसुते सन्ताप्यतेऽनर्थशतैश्च मानवः।
स्त्रीकोपपित्तैश्च सनेत्रवेदनैर्योपीन्द्रवंशाभिजनेन गर्वितः ॥ १३२ ॥

---

१. वृ० सं० १०३ अ० १५ श्लो०।

२. वृ० सं० १०३ अ० १७ श्लो०।

३. वृ० सं० १०३ अ० १८ श्लो०।

जब अपनी राशि से बारहवीं राशि में भौम होता है तो मनुष्य इन्द्र के वश में उत्पत्ति के गर्व से युत होने पर भी अनेक प्रकार के खर्च व उपद्रव, स्त्री के ऊपर क्रोध, पित्त रोग व नेत्र रोगों से पीड़ित होता है। अर्थात् श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होकर भी अनेक व्ययों से दुःखित होता है ॥ १३२ ॥

वृद्धयवन ने कहा है 'स्त्रीविग्रहोद्वेजनपादरोगस्वजनावभङ्गश्रमदः कुजोऽन्त्ये' (वृ० सं० १८४ अ० १८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १३२ ॥

आचार्य श्रीपति ने कहा है 'करोति जन्मन्यरिज भयं कुजो धनेऽर्थनाशं सहजे धनं ध्रुवम्। सुखेऽरिभीर्ति तनयेऽर्थसंक्षयं रिपौ स्वर्लब्धि धनविप्लवं स्मरे। भयं सहृच्छत्रुकृतं गृहेऽष्टमे शरीरपीडा नवमे पदे शुचम्। अनेकशो लाभगृहे धनागमं व्यये धराजः कुरुते धनक्षयम्' (ज्यो० नि० ५३ पृ० ६–७ श्लो०) ॥ १३२ ॥

अथ भौमचक्रम्—

लल्लोऽपि—

लल्लोक्त भौम चक्र न्यास

यस्मिन्नृक्षे भवेद्भौमः ततस्त्रीणि मुखे न्यसेत्।
नेत्रे त्रीणि त्रीणि शीर्षे बाह्वोर्द्वौ चापि संन्यसेत् ॥ १३३ ॥
कण्ठे द्वे हृदये पञ्च गुह्ये त्रीणि चतुष्पदे।

आचार्य लल्ल ने बताया है कि जिस नक्षत्र में भौम हो उससे ३ नक्षत्र तक मुख में, फिर ३ नेत्र में पुनः ३ मस्तक पर, २, २ बाहु में, २ कण्ठ में, ५ छाती पर, ३ गुह्य में और चार ४ नक्षत्रों को पैरों में स्थापित करना चाहिये ॥ १३३–१३३½ ॥

भौम चक्र न्यास का फल

मुखे रोगो धनं नेत्रे यशो मूर्ध्नि धनं हृदि ॥ १३४ ॥
कण्ठे हिक्का स्त्रियो गुह्ये पादे देशान्तरभ्रमः।
वामबाह्वौ भवेद्रोगो दक्षिणे शोकमेव च।
भौमभादात्मभं यावद्गणनीयमनुक्रमात् ॥ १३५ ॥

लल्लाचार्य जी ने कहा है कि पूर्वोक्त चक्र में अपना नक्षत्र यदि मुख में हो तो रोग नेत्र में धन, मस्तक पर यश, छाती पर धन, कण्ठ में हिचकी, गुह्य में स्त्री भोग, पैरों में देशान्तर का पर्यटन, वाम बाहु में रोग और दाहिनी भुजा में शोक भौम के नक्षत्र से अपना नक्षत्र होने पर होता है ॥ १३३½–१३५ ॥

सफल लल्लोक्त भौम चक्र सारणी

भौ० न०	३	३	३	२	२	२	५	३	४
स्थान	मुख	नेत्र	मस्तक	द० हा०	वा हा०	कंठ	छाती	गुह्य	पैर
फल	रोग	धन	यश	शोक	रोग	हिचकी	धन	स्त्रीभोग	पर्यटन देशान्तर

ज्योतिः सागर में कहा है 'जन्मर्क्षादियुगौ शिरस्यविनतो दुःखं सुखं चाध्वयः दक्षे पाणि तृतीयलाभचरणौ षट्कं प्रवासागमे । वामे त्रीणि करे भयं च मरणं रामासने संस्थिते लाभेद्वे हृदयं सुखं च त्रितयं नेत्रे कुजाङ्गे फलम् ॥ १२५ ॥

गर्गस्तु—

सफल गर्गोक्त भौम चक्र

भौमर्क्षात्त्रितयं मुखे शिरसि वा चत्वारि बाह्वोश्चतुः
कण्ठे द्वौ हृदये च पञ्च गदितं गुह्ये त्रयं निर्दिशेत् ।
षट्पादद्वितयेऽथ मिष्टमशनं चास्ये तु राज्यं शिरे
हिक्का कण्ठगते धनं हृदि गते स्त्रीसङ्गमं गुह्यके ॥ १३६ ॥
वामे हस्ते रोगमृत्युर्दक्षिणे तु जयं शुभम् ।
देशान्तरे गतिः पादे भौमचक्रे फलं वदेत् ॥ १३७ ॥

गर्गाचार्य जी कहना है कि भौम के नक्षत्र से तीन नक्षत्र तक मुख में, बाद चार मस्तक में, पुनः ४ बाहु में, २ गले में, ५ छाती पर, ३ गुह्य में और ६ नक्षत्रों को दोनों पैरों में स्थापित करके देखने पर यदि अपना नक्षत्र मुख में हो तो मीठा भोजन, मस्तक पर राज्य, गले में हिचकी, छाती पर धनागमन, गुह्य में स्त्री संगम, बायें हाथ में रोग, दाहिने हाथ में शुभ विजय और पैरों में अपना नक्षत्र हो तो देशान्तर का भ्रमण होता है ॥ १३६–१३७ ॥

सफल गर्गोक्त चक्र सारणी

भौ० न०	३	४	२	२	२	५	३	६
स्थान	मुख	मस्तक	हा. वा.	दा. हा.	गला	छाती	गुह्य	पैर
फल	मीठा भोजन	राज्य	रोग	शुभ विजय	हिचकी	धनागम	स्त्री संभोग	भ्रमण देशान्तर

अथ बुधफलम्—

अपनी राशि से १।२।३।४।५।६।७ राशि में गोचरीय बुध का फल

[1]बुधः प्रथमधामगो दिशति बन्धमर्थं धने
धनं रिपुभयान्वितं सहजगश्चतुर्थेऽर्थदः ।
अनिर्वृतिकरो भवेत्तनयगोऽरिगः स्थानदः
करोति मदनस्थितो बहुविधां शरीरापदाम् ॥ १३८ ॥

जब स्वराशि में बुध होता है तो बन्धन, अर्थ, स्वराशि से दूसरी राशि में हो तो धन, तीसरी में शत्रु भय, चौथी में धनागमन, पाँचवी में निवर्तन से रहित, छठी में

१. मु० चिं० ४ प्र० १–४ श्लो० पी० टी० ।

पद लाभ और सातवीं राशि में होने पर अनेक प्रकार की शरीर पीड़ा देने वाला होता है ॥ १३८ ॥

विशेष—पीयूष धारा में 'शरीर व्यायम्' यह पाठान्तर है ॥ १३८ ॥

अपनी राशि से ८।९।१०।११।१२ राशि में बुध का फल

[1]अष्टमे शशिसुतो धनवृद्धिं धर्मगस्तु महतीं धनपीडाम् ।
कर्मगः सुखमुपान्त्यगतोऽर्थं द्वादशे भवति वित्तविनाशम् ॥ १३९ ॥

जब स्वराशि से आठवीं राशि में बुध होता है तो धन की वृद्धि, नवीं में बड़ी शरीर पीड़ा, दशवीं में सुख, ग्यारहवीं में धनागम और बारहीं राशि में बुध के होने पर धन का नाश होता है ॥ १३९ ॥

विशेष—प्रकाशित पीयूषधारा टीका में 'कर्मगः सुखमर्थगतोऽथ द्वादशे भवति वित्तविनाशः' यह पाठान्तर है ॥ १३९ ॥

ज्यो० सा० में कहा है 'बुधस्तु बन्धं धनमन्यमीतिं धनं रुजं स्थानमथोऽथ पीडाम् । अर्थं रुजं सौख्यमथार्थलाममर्थक्षतिं जन्मगृहात् करोति' (६८ पृ०) ॥ १३९ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा 'बन्धोर्लाभो भयंवित्तं शोको लक्ष्मी क्षयो धनम् । रोगो भोगः सुखं बाधा फलं चैतद्बुधस्य तु' (१३ प्र० ४ श्लो०) ॥ १३९ ॥

अब आगे वराहोक्त बुध के १२ राशियों में गोचरीय फल को बताते हैं ।

वाराहस्तु—

जन्म राशिगत बुध का फल

[2]दुष्टवाक्यपिशुनाहितभेदैर्बान्धवैः सकलहश्च हृतस्वः ।
जन्मगे शशिसुते पथि गच्छन् स्वागतेऽपि कुशलं न शृणोति ॥ १४० ॥

बृहत्संहिता में बताया है कि जब बुध अपनी राशि में होता है तो मनुष्य कठोर वाक्य, चुगलखोरी, शत्रुता व बान्धवों के पारस्परिक भेद से नष्ट धन वाला होता है और उसके शुभागमन में भी कुशल बात कोई नहीं सुनता है ॥ १४० ॥

यवननेश्वर ने कहा है 'स्थाने शशाङ्कस्य शशाङ्कसूनुः सौभाग्यविद्या मति मानहर्ता' (बृ० सं० १८४ अ० २५ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १४० ॥

अपनी राशि से २।३ राशि में बुध का फल

[3]परिभवो धनगते धनलब्धिः सहजगे शशिसुते सुहृदाप्तिः ।
नृपतिशत्रुभयशङ्कितचित्तो द्रुतपदं व्रजति दुश्चरितैः स्वैः ॥ १४१ ॥

---

१. मु. चिं. ४ प्र. १–४ श्लो० पी. टी. ।
२. बृ. सं. १०३ अ० १९ श्लो० ।
३. बृ. सं. १०३ अ० २० श्लो० ।

जब अपनी राशि से दूसरी राशि में बुध होता है तो अनादर व धन का लाभ और तीसरी राशि में बुध के होने पर मित्र का लाभ करने वाला, राजा व शत्रु के भय से शंकित होकर अपने दुश्चरित्रों के कारण भागने वाला होता है ॥ १४१ ॥

यवनेश्वर ने कहा 'द्वितीयसंस्थस्त्वपवादशोकस्वैरक्रियामन्वति दैन्यकारी। तृतीयगो बन्धुविरोधरोधव्यापत्तिकर्ता द्रविणस्य सौम्यः' (बृ० सं० १८४ अ० २४ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १४१ ॥

अपनी राशि से ४।५ राशि में बुध का फल

[1]चतुर्थगे स्वजनकुटुम्बवृद्धयो धनागमो भवति च शीतरश्मिजे।
सुतस्थिते तनयकलत्रविग्रहे निषेवते नच रुचिरामपि स्त्रियम् ॥ १४२ ॥

जब अपनी राशि से चौथी राशि में बुध होता है तो अपने जन व बान्धवों की वृद्धि और धन की प्राप्ति होती है। पञ्चम राशि में बुध के होने पर पुत्र व स्त्री से कलह और अपने उद्वेग के कारण सुन्दरी स्त्री का भी उपभोग नहीं होता है ॥१४२॥

यवनेश्वर ने कहा है 'चतुर्थगो मानगुणप्रशंसा प्रमोदयोषिद्धनलाभकारी। नैष्ठान्यमुद्वेगमनर्थचर्यां कुर्याद् बुधः पञ्चमगोऽरतंच' (बृ० सं० १८४ अ० २४ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १४२ ॥

स्वराशि से ६।७।८। राशि में बुध का फल

[2]सौभाग्यं विजयमथोन्नतिं च षष्ठे वैकल्यं कलहमतीव सप्तमे ज्ञः।
मृत्युस्थे सुतजयवस्त्रवित्तलाभं नैपुण्यं भवति मतिप्रहर्षिणीयम् ॥ १४३ ॥

जब अपनी राशि से छठी राशि में बुध होता है तो सुन्दर भाग्य, विजय व उन्नति, सातवीं में विवर्णता वा विकलता व कलह और आठवीं राशि में बुध के होने पर विजय, पुत्र, वस्त्र धनागम तथा हर्षित करने वाली बुद्धि व निपुणता होती है ॥ १४३ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'षष्ठे विवृद्धिं मनसः प्रहर्षमुत्साहलाभोपचयं करोति। जामित्रगश्चान्द्रिरनिष्टमार्गं सन्तापदैन्यादरुचिरोऽधिकारी। स्यादष्टमस्थो विविधोपकारी बुद्धिप्रसादस्थितिसौख्यकारी' (बृ० सं० १८४ अ० २४ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १४३ ॥

स्वराशि से ९।१० राशि में बुध का फल

[3]विघ्नकरो नवमः शशिपुत्रः कर्मगतो रिपुहा धनदश्च।
सप्रमदं शयनं च विधत्ते तद्गृहदोऽथ कथास्तरणं च ॥ १४४ ॥

जब अपनी राशि से नवीं राशि में बुध होता है तो विघ्न करने वाला और दशवीं में होने पर शत्रु नाशक, धन दाता, स्त्री, शय्या, स्त्री के सोने का सुन्दर घर, ऐतिहासिक वार्ता और सुन्दर बिछौना देने वाला होता है ॥ १४४ ॥

---

१. बृ. सं. १०३ अ० २१ श्लो०। २. बृ. सं. १०३ अ० २२ श्लो०।
३. बृ. सं. १०३ अ० २३ श्लो०।

यवनेश्वर ने कहा है 'भङ्गापवादाध्वपरिश्रमान्तरायापकारी नवमर्क्षसंस्थः। क्रिया प्रसिद्धि दशमेऽर्थलाभं विस्रब्धमानं च बुधो ददाति' (वृ० स० १८४ अ० २४ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १४४ ॥

स्वराशि से ११।१२ राशि में बुध का फल

[1]धनसुखसुतयोषिन्मित्रवाह्याप्तितुष्टि-
स्तुहिनकिरणपुत्रे लाभगे मृष्टवाक्यः।
रिपुपरिभवरोगैः पीडितो द्वादशस्थे
न सहति परिभोक्तुं मालिनीयोगसौख्यम् ॥ १४५ ॥

जब अपनी राशि से ग्यारहवीं राशि में बुध होता है तो धन, पुत्र, सुख स्त्री, मित्र तथा वाहन की प्राप्ति कर्त्ता, सन्तुष्ट और मीठा बोलने वाला और बारहवीं राशि में बुध के होने पर मनुष्य शत्रु, अनादुख रोग से दुःखी तथा माला धारण करने वाली स्त्री के संगम का सुख भोगने के लिये असमर्थ होता है ॥ १४५ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'एकादशे मानचतुष्पदस्त्रीचिन्तार्थसौभाग्यविनोदकर्त्ता। बुधोऽन्त्यराशौ विचरंश्च कुर्यादुद्वेजनं कार्यपरिश्रमञ्च' (वृ० स० १८४ अ० २४ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १४५ ॥

आचार्य श्रीपति ने भी कहा है 'वन्धं बुधो दिशति जन्मगतोऽर्थगोऽर्थं दुश्चिक्यगो रिपुभयं जलगो धनाप्तिम्। धीस्थो वपुर्विलयतां स्थितिदो रिपुस्थः पीडां परां कुसुमकार्मुकधामसंस्थः। अष्टमे शशिसुते धनलब्धिर्धर्मगे च महती तनुपीडा। कर्मगे सुखमुपान्त्यगतेऽर्थो द्वादशे भवति वित्तविनाशः' (ज्यो० नि० ५३ पृ० ८–९ श्लो०) ॥ १४५ ॥

अब आगे लल्लाचर्य के बताये हुए पुरुषाकार बुध चक्र को फल के साथ बताते हैं।

अथ वुधचक्रम्

लल्लः—

सफल लल्लोक्त बुध चक्र न्यास

वुधचक्रं प्रवक्ष्यामि पुरुषाकारमुत्तमम्।
त्रीणि शीर्षे च धिष्ण्यानि विद्याप्राप्ति करोति वै ॥ १४६ ॥
मुखे त्रीणि वलप्राप्तिर्वामपादे चतुष्टयम्।
चत्वारि दक्षिणे हस्ते सुखवृद्धि च लाभदः ॥ १४७ ॥
हृदये पञ्च लाभाय द्वयं गुह्ये तु रोगदम्।
त्रीणि दक्षिणपदे च त्रीणि स्युर्वामपादके ॥ १४८ ॥
स्थानभ्रंशो रुजा पीडा कलहः स्वजनैः सह।
देहस्थवुधमाहात्म्यं कथितं पूर्वसूरिभिः ॥ १४९ ॥

---

१. वृ. सं. १०३ अ० २४ श्लो०।

आचार्य लल्ल ने कहा है कि बुध जिस नक्षत्र में हो उससे तीन नक्षत्र तक मस्तक पर विद्या की प्राप्ति, पुनः ४ चार तक वायें हाथ पर, ४ दाहिने हाथ में सुख की वृद्धि व लाभ, फिर ५ छाती पर लाभदायक, दो गुह्य में रोग देने वाले, ३ दाहिने पैर में और ३ वायें पैर में स्थान नष्टकर्त्ता, रोग, पीडा और वान्धवों से कलह कराने वाले होते हैं। यह बुध के देहस्थ नक्षत्रों का फल प्राचीन विद्वानों ने वताया है ॥१४६-१४९॥

ज्योतिःसागर में कहा है 'शिरसि त्रीणि राज्यं स्याद् वक्त्रेकंबन्धलाभदम्। नेत्रे द्वे प्रतिलाभं च नाभिश्रीपश्चकं तथा। पादौ षट्कं प्रवासं च वामे वेदकरे व्ययम्। चत्वारो दक्षिणे हस्ते धनलाभं करोति च गुह्यस्थाने द्वयं ऋक्षं बन्धनं मरणं ध्रुवम्। बुधस्य चक्रमित्याहुर्जन्म ऋक्षादि गण्यति' ॥ १४९ ॥

सफल लल्लोक्त बुध चक्र सारिणी

बु० न०	३	३	४	४	५	२	३	३
स्थान	मस्तक	मुख	वा० हाथ	दा० हाथ	छाती	गुह्य	दा० पैर	वा० पैर
फल	विद्याप्ति	बलाप्ति	सुख वृद्धि	लाभ	लाभ	रोग	स्थान कष्ट	वन्धु कलह

अब आगे अपनी राशि से १२ राशियों में गुरु के फल को बताते हैं।

अथ गुरुफलम्

[1]भयं जन्मन्यर्थो जनयति धने चार्थमतुलं,
तृतीयेऽङ्गक्लेशं दिशति च चतुर्थेऽर्थविलयम्।
सुखं पुत्रस्थाने रुजमपि च कुर्यादरिगृहे,
धनस्याप्तिं द्यूने धननिचयनाशं च निधने ॥ १५० ॥

[2]धर्मगतो धनवृद्धिकरः स्यात्प्रीतिहरो दशमेऽमरपूज्यः।
स्थानधनानि ददाति स चाये द्वादशगस्तनुमानसपीडाम् ॥ १५१ ॥

जब अपनी राशि में गुरु होता है तो भय, दूसरी में प्रचुर अगणनीय वा धन लाभ तीसरी में शारीरिक कष्ट, चौथी में धन का अभाव, पाचवीं में सुख, छठी में रोग, सातवीं में पूजनीय वा प्रेम का हरण, आठवीं में संग्रहीत धन का नाश, नवीं में धन वृद्धि, दशवीं में प्रेम का हरण, ग्यारहवीं में पद व को प्राप्ति और बारहवीं राशि में गोचरीय गुरु के होने पर मानसिक पीड़ा होती है ॥ १५०—१५१ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'भीर्वृत्तं रुग्व्ययो लाभः शोकः सौख्यं रुजस्तथा। मानो दैन्यं धनं रोगः फलं चैतद्बृहस्पतेः' (१३ प्र० ५ श्लो०) ॥ १५०—१५१ ॥

१. मु॰ चिं. ४ प्र० १—४ श्लो० पी. टी.।
२. मु. चिं. ४ प्र० १—४ श्लो० पी. टी.।

तथा ज्योतिः सागर में भी 'मयं द्रव्यं तथा क्लेशं हानिं सौख्यं शुभं धनम्‌। नाशं वृद्धि गदं लाभं पीडां कुर्यात्‌ क्रमाद्‌बुधः' ॥ १५०-१५१ ॥

ज्योतिषसार में कहा है 'गुरुर्भयं धनं क्लेशं धननाशं सुखं शुचम्‌। मानं रोगं सुखं दैन्यं लाभं पीडां च जन्मभात्‌' (६८ पृ०)। १५०-१५१ ॥

विशेष—पीयूषधारा टीका में 'द्यूने पूजा' 'वित्तहरो दशमे' यह पाठान्तर है ॥ १५०-१५१ ॥

अब आगे वराह के वचनों से गुरु के गोचरीय फल को बताते हैं।

वाराहीसंहितायाम्‌—

अपनी राशि व दूसरी राशि में गुरु का फल

[1]जीवे जन्मन्यपगतधनधीः स्थानभ्रष्टो वहुकलहयुतः।
प्राप्यार्थेऽर्थान्‌ मुनिरपि कुरुते कान्तास्याब्जे भ्रमरविलसितम्‌ ॥ १५२ ॥

आचार्य वराह ने कहा है कि अपनी राशि में गुरु के होने पर धन व बुद्धि का विनाश पद से च्युत और अनेक प्रकार के विरोध एवं अपनी राशि से दूसरी राशि में जब गुरु होता है तो धन लाभ करके शत्रुहीन होकर या मुनि भी स्त्री के मुख कमल पर भौरे की भाँति विलास करता है ॥ १५२ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'मोहार्थनाशस्थितिमानभङ्गग्रामाध्वरुग्‌जातिविरोधवैरान्‌। गुरुः शशिस्थानगतः करोति स्थानात्मजाज्ञाधनदो द्वितीये' (बृ० सं० १८४ अ० ३१ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १५२ ॥

अपनी राशि से ३।४ राशि में गुरु का फल

[2]स्थानभ्रंशात्कार्यविघाताच्च
तृतीयेऽनेकैः क्लेशैर्वन्धुजनोत्थैश्च चतुर्थे।
जीवे शान्ति पीडितचित्तश्च स विंदेन्नैव
ग्रामे नापि वने मत्तमयूरे ॥ १५३ ॥

जब कि अपनी राशि से तीसरी राशि में गुरु होता है तो स्थान व कर्मों के नष्ट होने से दुःख और चौथी में अनेक कलह व बान्धवों से दुःखी होने के कारण न गाँव में न मतवाले मोरों से युक्त वन में शान्ति मिलती है ॥ १५३ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'गुरुस्तृतीये स्वजनार्थनाशक्रिया वधाध्वश्रमवञ्चनाकृत्‌। विमानसेष्टापचयापवादबन्धुक्षयोद्वेगकरश्चतुर्थे' (बृ० सं० १८४ अ० ३१ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १५३ ॥

---

१. बृ. सं० १०३ अ० २५ श्लो०।
२. बृ. सं. १०३ अ० २६ श्लो०।

अपनी राशि से ५ वीं राशि में गुरु का फल

[1]जनयति च तनयभवनमुपगतः
परिजनशुभसुतकरितुरगवृषान् ।
सकनकपुरगृहयुवतिवसनकृन्मणि-
गुणनिकरकृदपि विबुधगुरुः ॥ १५४ ॥

जब अपनी राशि से पाँचवीं राशि में गुरु होता है तो परिजन, धर्मादि पुत्र, हाथी, घोड़ा, बैल, सुवर्ण, नगर, घर, स्त्री, वस्त्र और मणि समुदाय का लाभ होता है ॥ १५४ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'भृत्याम्बरस्थानसुवर्णमानपुत्रप्रदः पञ्चमगोऽरिजिच्च' (बृ० सं० १८४ अ० ३१ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १५४ ॥

स्वराशि से छठी में गुरु का फल

[2]न सखीवदनं तिलकोज्वलं न भवनं शिखिकोकिलनादितम् ।
हरिणप्लुतशावविचित्रितं रिपुगते मनसः सुखदं गुरौ ॥ १५५ ॥

जब स्वराशि से छठी राशि में गुरु होता है तो घर में सखी का मुख तिलक से उज्वल नहीं होता तथा मयूर व कोकिलों से शब्दायमान, हरिणों के कूदने फाँदने से व उनके पुत्रों से युक्त वन भी मन को सुख देने वाला नहीं होता है ॥ १५५ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'षष्ठे गुरुर्बन्धुविवादवैरत्रासप्रचेष्टाफल हानिकारी' (बृ० सं० १८४ अ० ३१ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १५५ ॥

स्वराशि से सातवीं राशि में गुरु का फल

[3]त्रिदशगुरुः शयनं रतिभोगं धनमशनं कुसुमान्युपवाह्यम् ।
जनयति सप्तमराशिमुपेतो ललितपदां च गिरं धिषणां च ॥ १५६ ॥

जब अपनी राशि से सातवीं राशि में गुरु होता है तो शय्या, सुरत, भोग, धन, भोजन, सवारी, ललित पद वाणी और बुद्धि होती है ॥ १५६ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'जामित्रगः स्त्रीवसनान्नपानसौमुख्यसुस्फीतकलाढ्यकर्ता' (बृ० सं० १८४ अ० ३१ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १५६ ॥

स्वराशि से ८।९ में गुरु का फल

[4]बन्धं व्याधिं चाष्टमे शोकमुग्रं
मार्गक्लेशं मृत्युतुल्यांश्च रोगान् ।
नैपुण्याज्ञा पुत्रकर्मार्थसिद्धिं
धर्मे जीवः शालिनीनां च लाभः ॥ १५७ ॥

---

१. बृ, सं. १०३ अ० २७ श्लो० । २. बृ. सं. १०३ अ० २८ श्लो० ।
३. बृ. सं. १०३ अ० २९ श्लो० । ४. बृ. सं १०३ अ० ३० श्लो० ।

जब अपनी राशि से आठवीं राशि में गुरु होता है तो बन्धन, पीड़ा, कठोरता, शोक, रास्ते में क्लेश व मृत्यु समान रोग से कष्ट और नवीं राशि में होने पर समस्त कामों में चतुरता, आदेश, पुत्र, कार्य व मतलब की सिद्धि और धान्य से युक्त भूमि का लाभ होता है ॥ १५७ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'जीवोऽष्टमस्थो वधभङ्गबन्धव्याधिश्रमानर्थविवादकारी। करोति जीवो नवमेसुतस्त्रीभूस्थानमानार्थसमृद्धिमग्र्याम्' (बृ० सं० १८४ अ० ३१ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १५७ ॥

स्वराशि से १०।११।१२ राशि में गुरु का फल

'स्थानकल्पधनहा दशमर्क्षगस्तत्प्रदो भवति लाभगो गुरुः।
द्वादशे ध्वनिविलोमदुःखभाग्याति यद्यपि नरो रथोद्धतः ॥ १५८ ॥

जब अपनी राशि से दशवीं राशि में गुरु होता है तो स्थान, आरोग्य व धन का नाश, ग्यारहवीं में स्थान, आरोग्य व धन का दाता और बारहवीं राशि में गुरु होता है तो रथारूढ भी मार्ग में कुपथ गमन के कारण दुःख पाने वाला होता है ॥१५८॥

यवनेश्वर ने कहा है 'मेषूरणस्थोऽक्षिरुगिष्टहानिश्लेष्मामयायाससुतान्तकारी। एकादशे भूमवनात्मजस्त्रोहिरण्यधान्याम्बरवाहनानाम्। दाता गुरुर्द्वादशगोऽथ चन्द्राद्विदेशचर्याश्रमशोककारी' (बृ० सं० १८४ अ० ३१ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १५८ ॥

श्रीपतिजी ने भी कहा है 'गुरुर्भयं जन्मगृहे ददाति धने धनं क्लेशमयं तृतीये। सुखेऽर्थनाशं तनये सुखानि रिपौ शुचं भूपतिमानमस्ते। जीवोऽष्टमे मृत्युसमानरोगं सुखानि धर्मे दशमेऽतिदैन्यम्। धनाम्बरस्थानकलाब्धिमाये तनोश्च पीडां वितनोति रिष्फे' (ज्यो० नि० ५४ पृ० १०–११) ॥ १५८ ॥

अथ गुरुचक्रम्

गर्गोऽपि—

सफल गुरु चक्र का न्यास

शीर्षे चत्वारि राज्यं युगपरिगणितं सव्यहस्ते च लक्ष्मीः
कण्ठे चैकं विभूतिर्मदनशरमितं वक्षसि प्रीतिलाभम्।
षड्भिः पीडाङ्घ्रियुग्मे जलधिपरिमितं वामहस्ते च मृत्यु-
र्नेत्रोभौ त्रीणि दद्यान्नृपतिसमसुखं वाक्पतेश्चक्रमेतत् ॥ १५९ ॥

गर्गाचार्य ने बताया है कि गुरु के नक्षत्र से चार ४ नक्षत्र तक मस्तक पर यदि अपना नक्षत्र हो तो राज्य की प्राप्ति, पुनः ४ चार तक दाहिने हाथ में धनागम,

---

१. बृ. सं. १०३ अ० ३१ श्लो०।

फिर १ एक गले में ऐश्वर्य लाभ, पुनः ५ नक्षत्र हो तो परकाम व प्रेम का लाभ, पुनः ६ दोनों पाँवों में पीड़ा, ४ वायें हाथ में मृत्यु और तीन ३ दोनों आँखों में अपना नक्षत्र हो तो राजा के समान सुख होता है ।। १५६ ।।

सफल गर्गोक्त गुरुचक्र सारिणी

गु० न०	४	४	१	५	६	४	३
स्थान	मस्तक	दा० हाथ	गला	छाती	पैर	बा० हाथ	नेत्र
फल	राज्य प्राप्ति	धनागम	ऐश्वर्य	काम प्रेम (ग)	पीड़ा	मृत्यु	राज्य सम्मान

ज्योतिः सागर में कहा है 'शीर्षे चत्वारि राज्यं युगपरिगणितं दक्षिणे हस्तलक्ष्मीरेकं कण्ठे विभूतिस्तदनु शरमितं वक्षसि प्रीतिलाभम् । पादौर्वेषड्देहपीडा चतुरमपि सदा वाम हस्ते च मृत्युर्गुंह्यस्थे त्रीणि संस्थे नृपतिसमसुखं जीवऋक्षा क्रमेण ।। १५९ ।।

अब आगे १२ राशियों में स्वराशि से शुक्र के गोचरीय फल को आचार्य श्रीपति जी के वाक्य से बताते हैं ।

अथ शुक्रफलम्

श्रीपतिः—

स्वराशि से १२ राशियों में शुक्र का फल

जन्मन्यरिक्षयकरो भृगुजोऽर्थदोऽर्थे दुश्चिक्यगः सुखकरो धनदश्चतुर्थे[1] ।
स्यात्पुत्रिकृत्तनयगोऽरिगतोऽरिवृद्धि शोकप्रदो मदनगो निधनेऽर्थदाता ।। १६० ।।
[2]जनयति विविधाम्बराणि धर्मे न सुखकरो दशमस्थितस्तु शुक्रः ।
धननिचयकरः स लाभसंस्थो व्ययभवने च गतोऽपि द्रव्यनाशम् ।। १६१ ।।

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि स्वराशि में शुक्र के होने पर शत्रु नाश, दूसरी राशि में धनागम, तीसरी में सुख, चौथी में धन प्राप्ति, पाँचवीं में पुत्री दाता, छठी में शत्रु की वृद्धि करने वाला, सातवीं में शोक दाता, आठवीं में धन दाता, नवीं में अनेक वस्त्र लाभ, दशवीं में सुख हीनता, ग्यारहवीं में धन संग्रह कर्ता और बारहवीं राशि में जब शुक्र होता है तो धन का विनाश कर्ता होता है ।। १६०–१६१ ।।

ज्यो० सा० में कहा है 'कविः शत्रुनाशं धनं सौख्यमर्थं सुताप्तिं रिपो साध्वसं शोकमर्थम् । बृहद्वस्त्रलाभं विपत्तिं धनाप्तिं धनार्तिं तनोत्यात्मनो जन्मराशेः' (६८ पृ०) ।

अब आगे वाराही संहिता के वचनों से शुक्र के गोचरीय फल को बताते हैं ।

---

१. मु. चि. ४ प्र० १–४ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० ५४ पृ० ।
२. मु. चि. ४ प्र० १–४ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० ५३ पृ० ।

वाराहीये—

जन्म राशि में शुक्र का फल

[1]प्रथमगृहोपगो भृगुसुतः स्मरोपकरणैः
सुरभिमनोज्ञगन्धकुसुमाम्बरैरुपचयम् ।
शयनगृहासनाशनयुतः स चानुकुरुते
समदविलासिनी मुखसरोजषट्चरणताम् ॥ १६२ ॥

आचार्य वराह ने कहा है कि जब जन्म राशि में शुक्र होता है तो कामदेव के उपकरणों (शय्या, अलङ्कार, आच्छादन, गीत, वाद्यादि नृत्य) से चित्त प्रसन्न, सुगन्ध द्रव्य पुष्प वस्त्र से लाभ; शय्या घर; आसन व भोजनों से युत मनुष्य को शराब से मतवाली विलासिनी स्त्री के मुख कमल पर भौरे का अनुभव कराता है ॥१६२॥

यवनेश्वर ने कहा है 'हिरण्यनारीरजतार्थविद्यासुताम्बरस्थानचतुष्पदानाम्' (बृ० सं० १८४ अ० ३८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १६२ ॥

स्वराशि से २ री राशि में शुक्र का फल

[2]शुक्रे द्वितीयगृहगे प्रसवार्थधान्यभूपालसन्नतिकुटुम्बहितान्यवाप्य ।
संसेवते कुसुमरत्नविभूषितश्च कामो वसन्ततिलकद्युतिमूर्धजोऽपि ॥ १६३ ॥

जब कि अपनी राशि से दूसरी राशि में शुक्र होता है तो सन्तान, धन, धान्य, राजप्रियता और बान्धवों से शुभ कामों को प्राप्त करके पुष्प व रत्नों से सुशोभित होकर वसन्ततिलका वृक्ष के पुष्प समान अधिक सफेद बाल होने पर भी कामदेव की सेवा कराने वाला होता है ॥ १६३ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'लाभं शशिस्थानमुपेत्य शुक्रः कुर्याद् द्वितीयो तु वराङ्गनाप्तिम्' (बृ० सं० १८४ अ० श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १६३ ॥

स्वराशि से ३।४ राशि में शुक्र का फल

[3]आज्ञार्थमानास्पदभूतिवस्त्रशत्रुक्षयान्दैत्यगुरुस्तृतीये ।
धत्ते चतुर्थश्च सुहृत्समाजमुपेंद्रवज्रप्रतिमां च शक्तिम् ॥ १६४ ॥

जब कि अपनी राशि से ३ राशि में शुक्र होता है तो प्रभुत्व, धन, मान, स्थान, समृद्धि, वस्त्र और शत्रु का नाश और चौथी में मित्रों से समागम, शिव, इन्द्र और वज्र के तुल्य बल देने वाला होता है ॥ १६४ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'मित्रान्नवस्त्रात्मजमानहर्षं स्थानाङ्गनारोग्यकरस्तृतीये । शुक्रश्चतुर्थे धनपत्निपुत्रमित्रेष्टभोज्याम्बरगन्धदः स्यात्' (बृ० सं० १८४ अ० ३८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १६४ ॥

---

१. बृ. सं. १०३ अ० ३२ श्लो० ।
२. बृ. सं. १०३ अ० ३३ श्लो० ।
३. बृ. सं. १०३ अ० ३४ श्लो० ।

स्वराशि से ५ वीं राशि में शुक्र का फल

[१]जनयति शुक्रः पञ्चमसंस्थो गुरुपरितोषं बन्धुजनाप्तिम्।
सुतधनलब्धिं मित्रसहायान् नवसिततत्त्वं चारिबलेषु ॥ १६५ ॥

जब कि शुक्र अपनी राशि से पाँचवीं राशि में होता है तो अधिक सन्तोष, बन्धुओं की प्राप्ति, पुत्र व धन का लाभ और शत्रु की सेना में अनवस्थिति होती है ॥ १६५ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'सुहृत्सुतोद्भूतिगुणप्रवृत्तिख्यातिप्रदः पञ्चमगोऽर्थदश्च' (वृ० सं० १ ४ अ० ३८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १६५ ॥

स्वराशि से ६।७।८ राशि में शुक्र का फल

[२]षष्ठो भृगुः परिभवरोगतापदः स्त्रीहेतुकं जनयति सप्तमोऽशुभम्।
यातोऽष्टमं भवनपरिच्छदप्रदो लक्ष्मीवतीमुपनयति स्त्रियं च सः ॥ १६६॥

जब कि अपनी राशि से छठी राशि में शुक्र होता है तो अनादर, रोग व संताप, सातवीं में स्त्री के कारण अशुभता और आठवीं राशि में शुक्र के होने पर घर व वस्त्र लाभ और लक्ष्मीवती स्त्री की प्राप्ति होती है ॥ १६६ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'षष्ठे भृगुर्दैन्यविवाहरोगद्वेषोद्भवान् मानवधांश्च कुर्यात्। स्त्रीसौख्यविख्यापनमानहर्षं प्रियागमाच्छादनदोऽष्टमस्थः। जामित्रसंस्थो भृगुजस्तृषाध्व-स्त्रीहेतुकोद्वेगकुमित्रदः स्यात्' (वृ० सं० १८४ अ० ३८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥१६६॥

स्वराशि से ९।१० राशिमें शुक्र का फल

[३]नवमे तु धर्मवनितासुखभाग्भृगुजेऽर्थवस्त्रनिचयश्च भवेत्।
दशमेऽवमानकलहान् नियमात्प्रमिताक्षराण्यपि वदन् च लभते ॥ १६७॥

जब कि अपनी राशि से नवीं राशि में शुक्र होता है तो धर्म, स्त्री व सुख का भोग तथा धन वस्त्रों से युक्त और दशवीं राशि में शुक्र के होने पर परमित भाषण से भी अपमान और कलह का लाभ होता है ॥ १६७ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'सुहृद्गुरुस्त्रीधनधर्मविद्यायशोगुणाप्तिं नवमर्क्षसंस्थः। करोति शुक्रो दशमे सबन्धुसम्प्रीतिचेष्टाफलमानविघ्नान्' (वृ० सं० १८४ अ० ३८ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १६७ ॥

स्वराशि से ११।१२ राशि में शुक्र का फल

[४]उपान्त्यगो भृगोः सुतः सुहृद्धनान्नगन्धदो
धनाम्बरागमोऽन्त्यगे स्थिरस्तु नाम्बरागमः ॥ १६८ ॥

---

१. बृ. सं. १०३ अ० ३५ श्लो० ।
२. बृ. सं. १०३ अ० ३६ श्लो० ।
३. बृ. सं. १०३ अ० ३७ श्लो० ।
४. बृ. सं. १०३ अ० ३८ श्लो० ।

जब कि अपनी राशि से ग्यारहवीं राशि में शुक्र होता है तो मित्र, धन, अन्न, सुगन्ध द्रव्य का लाभ और बारहवीं राशि में शुक्र के होने पर धन, वस्त्र का लाभ किन्तु वस्त्र का स्थिर लाभ नहीं होता है ।। १६८ ।।

यवनेश्वर ने कहा है 'एकादशे स्त्रीशयनान्नपानभूषारतिस्वेहगृहार्थकारी । भृग्वात्मजो द्वादशगस्तु चन्द्राद्भोग्यप्रदो वस्त्रविनाशकृच्च' (वृ० सं० १८४ अ० ३८ श्लो० भट्टो० टी०) ।। १६८ ।।

अब आगे शुक्रचक्र न्यास को फल के साथ बतलाते हैं ।

अथ शुक्रचक्रम्

श्रीपतिः—

सफल शुक्र चक्र न्यास

चत्वारि मस्तके राज्यं कण्ठे चत्वारि भूषणम् ।
हृदये पञ्च सौभाग्यं गुह्ये त्रीणि रिपोर्भयम् ।। १६९ ।।
जङ्घायां पञ्च मिष्टान्नं पादयोः षट् सुखं धनम् ।
शुक्रस्य पुरुषाकारे फलं प्रोक्तं विचक्षणैः ।। १७० ।।

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि शुक्र के नक्षत्र ये ४ नक्षत्र तक मस्तक में अपना नक्षत्र हो तो राज्य पुनः ४ कण्ठ में अलंकार प्राप्ति, फिर ५ छाती में सुन्दर भाग्य, पुनः ३ गुह्य में शत्रु का भय, इसके बाद ५ जँघा में मधुर भोजन लाभ और अन्तिम ६ पैरों में अपना नक्षत्र हो तो सुख व धनागम होता है । यह विद्वानों ने शुक्र के पुरुषाकार चक्र का फल बताया है ।। १६९–७० ।।

सफल शुक्र चक्र सारिणी श्रीपति के आधार पर

शु० न०	४	४	५	३	५	६
स्थान	मस्तक	कण्ठ	छाती	गुह्य	जँघा	पैर
फल	राज्य	भूषण लब्धि	सुन्दर भाग्य	शत्रुभय	मधुर भोजन	सुख, धनागम

अब आगे पुरुषाकृति शुक्र के सफल चक्र न्यास को लल्लाचार्यजी के आधार पर बताते हैं ।

लल्लः—

ललोक्त सफल शुक्रचक्र न्यास

शुक्रचक्रं प्रवक्ष्यामि नररूपेण संस्थितम् ।
धननाशो मुखे त्रीणि पञ्च शीर्षे च लाभदः ।। १६१ ।।
त्रीण्येव दक्षिणे पादे हानिः क्लेशकरः स्मृतः ।
तत्फलं वामपादे च त्रीणि धिष्ण्यानि विन्यसेत् ।। १७२ ।।
हृदये पञ्चभिः सौख्यं करयोश्च चतुश्चतुः ।
मित्रपुत्रसुखप्राप्ति करोति भृगुजो ध्रुवम् ।। १७३ ।।

आचार्य लल्ल ने बताया है कि शुक्र के नक्षत्र से ३ नक्षत्र तक मुख में अपना नक्षत्र हो तो धन का नाश, पुनः ५ नक्षत्र माथे में लाभ, फिर तीन ३ दाहिने पैर में हानि, क्लेश और ३ नक्षत्र बांयें पैर में भी यही फल, तत्पश्चात् ५ नक्षत्र छाती पर सुख, ४, ४ दोनों हाथों में मित्र, पुत्र और सुख की प्राप्ति होती है ॥ १७१-१७३ ॥

सफल लल्लोक्त शुक्रचक्र सारिणी

शु० न०	३	५	३	३	५	८
स्थान	मुख	मस्तक	द० पैर	वा० पैर	छाती	दोनों हाथ
फल	धननाश	लाभ	हानि, क्लेश	हानि, कलह	सुख	मित्र, पुत्र, सुखकी प्राप्ति

अब आगे १२ राशियों में शनि के गोचरीय फल को बताते हैं।

अथ शनिफलम्

१२ राशियों में शनि का फल

[1]चित्तभ्रंशं दिनकरसुतो जन्मराशिं प्रपन्नो,
वित्ते संस्थो धनहरणकृद्वित्तलाभं तृतीये।
पाताले शत्रुवृद्धिं सुतभवनगतः पुत्रभृत्यार्थनाशं,
षष्ठस्थानेऽर्थलाभं जनयति मदने दोषसङ्घार्तिमार्किः ॥ १७४ ॥

[2]शरीरपीडां निधने च धर्मे धनक्षयं कर्मणि दौर्मनस्यम्।
उपान्त्यगो वित्तमनर्थमन्त्यं शनिर्ददातीत्थमिदं हि गोचरे ॥ १७५ ॥

जब कि अपनी राशि में शनि होता है तो चित्त का नाश, दूसरी राशि में धन हरणकर्ता, तीसरी में धनलाभ, चौथी में शत्रु वृद्धि, पाँचवीं में पुत्र, नौकर व धन का विनाश, छठी में धनलाभ, सातवीं में दोषसमूहों से पीड़ा, आठवीं में देहकष्ट, नवीं में धनक्षय, दशवीं में दुर्मनता (दुःखी मन), ग्यारहवीं में धन और बारहवीं राशि में शनि के होने पर अनर्थ होता है ॥ १७४-१७५ ॥

ज्यो० सा० में कहा है 'शनिः सर्वनाशार्थनाशौ विधत्ते धनं शत्रुवृद्धिं सुतादेः प्रवृद्धिम्। श्रियं दोषसन्धिं रिपुं द्रव्य ॥ १७४-१७५ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'भीतिः शोकः श्रियो दुःखं हानिसौख्यं भयं रुजः। पापं शोको धनं कष्टं शनेरेतत् फलं क्रमात्' (१३ प्र० ७२ श्लो०) ॥ १७४-१७५ ॥

तथा ज्योतिः सागर में भी 'आधिं व्याधिं श्रियं वैरं नाशं लाभं कलिं कृतिम्। क्षयं दुःखं धनं रोगं क्रमात् सौरिफलप्रदः' ॥ १७४-१७५ ॥

---

१. मु. चि. ४ प्र० १-४ श्लो० पी० टी०।
२. मु. चि. ४ प्र० १-४ श्लो० पी० टी।

विशेष—पी० टी० में 'वित्तभ्रंशं रुगाप्ति दिनकरतनये जन्म राशि प्रपन्ने वित्तक्लेशं द्वितीये धनहरणकृति वित्तलाभं तृतीये।.........मदने दोषसङ्घातमार्किः' यह पाठान्तर है।

तथा ज्योतिर्निबन्ध में 'सर्वभ्रंशं विधत्ते दिनकरतनयो जन्मराशि प्रपन्नो' (५४ पृ० १४ श्लो०) में यह पाठान्तर है ॥ १७४-१७५ ॥

अब आगे वराह के वचनों से १२ राशियों में शनि के फल को बताते हैं।

वाराहस्तु—

अपनी राशि में शनि का फल

[1]प्रथमे रविजे विषवह्निहतः स्वजनैर्वियुतः कृतवन्धुवधः।
परदेशमुपेत्य सुहृद्भवनो विसुखार्तसुतोटकदीनमुखः ॥ १७६॥

आचार्य वाराह ने बताया है कि जब अपनी राशि में शनि होता है तो जहर अग्नि से पीड़ा, बन्धु हीनता, बान्धवों का वध, परदेश वास, मित्र व घर धन, पुत्र से रहित, पर्यटन और दीन मुख मनुष्य का होता है ॥ १७६ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'बन्धाध्वशस्त्रानिलरुग्विषार्ति विलम्बनस्त्रीसुतवित्तनाशम्' (बृ. सं. १८४ अ० ४५ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १७६ ॥

स्वराशि से दूसरी राशि में शनि का फल

[2]चारवशाद्द्वितीयगृहगे　　रवितनये
रूपसुखापवर्जिततनुर्विगतमदबलः　　।
अन्यगुणैः कृतं वसुचयं तदपि खलु
भवत्यधिवंशपत्रपतितं न बहु न चचिरम् ॥ १७७ ॥

जब कि अपनी राशि से दूसरी राशि में शनि होता है तो स्वरूप व सुख से हीन देहवाला, अभिमान शून्य, बल हीन, अन्य विद्या आदि गुणों से धन एकत्रित करने पर भी वंश के पत्ते पर पतित जल बिन्दु की तरह अपर्याप्त और चिर काल तक नहीं ठहरने वाला होता है ॥ १७७ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'स्थाने विधत्ते शशिनोऽर्कपुत्रस्ततो व्ययासायकरो द्वितीये' (बृ. सं. १८४ अ० ४५ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १७७ ॥

स्वराशि से तीसरी राशि में शनि का फल

[3]सूर्यसुते तृतीयगृहगे धनानि लभते.
दासपरिच्छदोष्ट्रमहिषाश्वकुञ्जरखरान्।
सद्मविभूतिसौख्यममितगदव्युपरमं,
भीरुरपि प्रशास्त्यधिरिपूंश्च वीरललितैः ॥ १७८ ॥

---

१. बृ. सं. १०३ अ० ३९ श्लो०। २. बृ. सं. १०३ अ० ४० श्लो०।
३. बृ. सं. १०३ अ० ४१ श्लो०।

जब कि अपनी राशि से तीसरी राशि में शनि होता है तो धन, नौकर, परिवार, ऊँट, भैंस, घोड़ा हाथी, गदहा, घर, ऐश्वर्य, अतिसुख और नीरोगता होती है। एवं भययुक्त होने पर भी वीर मित्रों के द्वारा प्रबल शत्रु को भी अपने वश में करने वाला होता है ॥ १७८ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'तृतीयगोऽरिक्षयमानहर्षसौभाग्यवह्वागमहोऽर्कसूनुः' (बृ. सं. १८४ अ० ४५ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १७८ ॥

स्वराशि से चौथी राशि में शनि का फल

[1]चतुर्थे गृहं सूर्यपुत्रेऽभ्युपेते सुहृद्वित्तभार्यादिभिर्विप्रयुक्तः ।
भवत्यस्य सर्वत्र चासाधुदुष्टं भुजङ्गप्रयातानुकारं च चित्तम् ॥ १७९ ॥

जब कि अपनी राशि से चौथी राशि में शनि होता है तो मित्र, धन, स्त्री से हीन, सब जगह चित्त में असज्जनता, दुर्जन व सर्प गमन का अनुकरण करने वाला अत्यन्त कुटिल मनुष्य होता है ॥ १७९ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'चतुर्थगो बन्धुवधावमानच्छायाविघाताध्वभयार्तिकारी' (बृ. सं. १८४ अ० ४५ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १७९ ॥

स्वराशि से ५।६ राशि में शनि का फल

[2]सुतधनपरिहीनः पञ्चमस्थे प्रचुरकलहयुक्तश्चार्कपुत्रे ।
विनिहतरिपुरोगः षष्ठयाते पिबति च वनितास्यं श्रीपुटोष्ठम् ॥ १८० ॥

जब कि अपनी राशि से पाँचवीं राशि में शनि होता है तो पुत्र, धन से हीन, कलह से युत और छठी राशि में शनि के होने पर शत्रु हीन, नीरोग, सुन्दर ओष्ठों से युत स्त्री के मुख का पान कर्ता मनुष्य होता है ॥ १८० ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'स्थितिक्रियारम्भसुतार्थनाशस्वबन्धुविद्वेषविवाहकारी । शनैश्चरः पञ्चमगोऽथ षष्ठे शत्रुक्षयामोदसुतार्थदाता' (बृ. सं. १८४ अ० ४५ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १८० ॥

स्वराशि से ७।८।९ राशि में शनि का फल

[3]गच्छत्यध्वानं सप्तमे चाष्टमे च हीनः स्त्रीपुत्रैः सूर्यजे दीनचेष्टः ।
तद्वद्धर्मस्थे वैरहृद्रोगबन्धैर्धर्मोऽप्युच्छिद्येद्वैश्वदेवीक्रियाद्याः ॥ १८१ ॥

जब कि अपनी राशि से सातवीं वा आठवीं राशि में शनि होता है तो भ्रमण, स्त्री, पुत्र से हीन व हीन चेष्टा से युक्त और नवीं राशि में होने पर ७।८ गत फल तथा द्वेष और हृदय रोग के कारण वैश्वदेवी क्रिया नष्ट होती है ॥ १८१ ॥

---

१. बृ० सं० १०३ अ० ४२ श्लो० ।
२. बृ० सं० १०३ अ० ४३ श्लो० ।
३. बृ० सं० १०३ अ० ४४ श्लो० ।

यवनेश्वर ने कहा है 'छाया विघातश्रमगुह्यरोगस्त्रीमित्रनाशान्वकृदर्कसूनुः। जामित्र-संस्थेऽष्टमगोऽथ शोकक्षुद्बन्धुभृत्यव्यसनार्तिकारी। व्याध्यध्ववैरश्रमवित्तनाशक्षुत्क्लेशदः स्यान्नवमर्क्षसंस्थः' (वृ. सं. १८४ अ० ४५ श्लो० भट्टो० टी०)॥ १८१ ॥

स्वराशि से १०।११।१२ राशि में शनि का फल

'कर्मप्राप्तिर्दशमेऽर्थक्षयश्च विद्याकीर्त्योः परिहानिश्च सौरे।
तैक्ष्ण्यं लाभे परयोषार्थलाभश्चान्त्ये प्राप्नोत्यपि शोकोर्मिमालाम् ॥ १८२ ॥

जब कि अपनी राशि से दशवीं राशि में शनि होता है तो कर्म का लाभ तथा धन, विद्या कीर्ति का नाश, ग्यारहवीं में कठोर स्वभाव, दूसरी स्त्री व धन का लाभ और बारहवीं राशि में शनि के होने पर शोक तरङ्गों की माला प्राप्त होती है ॥ १८२ ॥

यवनेश्वर ने कहा है 'ऐश्वर्यचेष्टा फलसंचयघ्नो मेषूरणे व्याध्यपकीर्तिकृच्च। यशः परस्त्रीधनभृत्यलाभक्रियासमृद्धिस्थितिमानदस्तु। एकादशे द्वादशगस्तु चेष्टानैपुण्यकीर्तिद्युतिमानहर्ता' (वृ. सं. १८४ अ० ४५ श्लो० भट्टो० टी)॥ १८२ ॥

अथ शनिपादः—

अब आगे शनि के सुवर्णादि पादों को चूणामणि के वाक्य से बताते हैं।

विशेषोऽयं चूडामणौ —
जन्मे रसे रुद्रसुवर्णपादे द्विपञ्चनन्दा रजतं शुभं च।
त्रिसप्तदिक् ताम्रपदं वदन्ति वेदाष्टरिःफे खलु लोहपादम् ॥ १८३ ॥

जिस समय शनि का संक्रमण होता है उस समय जन्म का चन्द्रमा १।६।११ राशि में होने पर सोने का पाद, २।५।९ में शुभ चादी का, ३।७।१० में तांमे का और ४।८।१२ वीं में चन्द्रमा के होने पर लोह पाद होता है ॥ १८३ ॥

ज्योतिषसार में फल के साथ बताया है कि 'जन्माङ्गरुद्रेन्दुसुवर्णपादं द्विपञ्चनन्दे रजतस्य पादमृत्रि''''। लौहे मृत्युविनाशाय सर्वं सौख्यं च काञ्चने। ताम्रे तु समता ज्ञेया शुभं राजतके तथा' (३१४ पृ०)॥ १८३ ॥

अथ शनिवाहनम्—

अब आगे शनि के वाहनों को बताते हैं।

जन्मर्क्षाद्वृष्टिनक्षत्रसङ्ख्यानन्दैर्विभाजयेत्।
शेषाङ्कैर्वाहनं ज्ञेयं यस्मिन्नुक्तं शुभाशुभम् ॥ १८४ ।

जन्म के नक्षत्र से वृष्टि नक्षत्र तक जो संख्या हो उसमें नव का भाग देने पर शेष वश शुभाशुभ वाहन होते हैं ॥ १८४ ॥

१ कादि शेष में क्रम से वाहनों के नाम

गर्दभस्तु हयो हस्ती मेषजम्बुकसिंहकाः।
काको मयूरो हंसश्च नवैते वाहनाः स्मृताः ॥ १८५ ॥

---

१. वृ० सं० १०३ अ० ४५ श्लो०।

[1]तिथिवारं च नक्षत्रं नामाक्षरसमन्वितम् ।
नवभिस्तु हरेद्भागं शेषं वाहनमुच्यते ।। १८६ ।।

१ में गदहा, २ में घोड़ा, ३ में हाथी, ४ में बकरा, ५ में स्यार, ६ में सिंह, ७ में कौआ, ८ में मयूर और शून्य शेष में हंस, ये नव सवारी शनि की होती हैं ।। १८५ ।।

जिस तिथि, नक्षत्र, वार में शनि की संक्रान्ति हो उस तिथ्यादि संख्या में अपने नाम के अक्षरों की संख्या को जोड़कर ९ का भाग देने पर क्रम से १ शेष में गदहा, २ में घोड़ा, ३ में हाथी, ४ में बकरा, ५ में स्यार, ६ में सिंह, ७ में कौआ, ८ में मोर और शून्य में हंस वाहन होता है ।। १८६ ।।

वाहन वश फल

गर्दभो वाजिनो हस्ती मेषो जम्बुकसिंहयोः ।
काको मयूरो हंसश्च नवैते शनिवाहनाः ।। १८७ ।।
गर्दभे च महादुःखं वाजिने सुखसम्पदा ।
हस्ती मिष्टान्नभोक्तव्यं मेषो विमुखजायते ।। १८८ ।।
जम्बुके मरणं ज्ञेयं मयूरार्थसुखप्रदम् ।
हंसाच्च लभते लाभं वाहनानां फलं त्विदम् ।। १८९ ।।

जब गदहा वाहन होता है तो बड़ा दुःख, घोड़ा में सुख सम्पत्ति लाभ, हाथी में मीठा भोजन, मेष में विमुखता, स्यार में मरण, मोर में सुख प्राप्ति और हंस वाहन होने पर लाभ होता है । ये नौ प्रकार के होते हैं ।। १८७–१८६ ।।

ज्योतिष सार में कहा है 'गर्दभोऽश्वश्च हस्ती च मेषः सिंहश्च जम्बुकः । काको मयूरो हंसश्च नवैते शनिवाहकाः । गर्दभे मानभङ्गश्च धनलाभश्च घोटके । सर्वसिद्धिर्गजे चैव मेषश्चेद्रोगदायकः । जम्बुके च भवेद्युद्धं सिंहे शत्रुविनाशनम् काको हि मरणायैव मयूरो धनलाभदः । हंसके सर्वसिद्धिश्च वाहनस्य फलं शनेः' (१०० पृ०) ।। १८७-१८६ ।।

और भी बृ० ज्यो० सा० में कहा है 'येषां जन्मनि तारकादि गणयेत् सूर्यात्मजो भावधि, चन्द्राङ्कं सहितं पुनस्त्रिगुणितं पश्चाद्युगैर्भाजितम् । शेषे कुञ्जरवाजिनोत्तमरथः स्याद् वाहनं शैबिका' ।। १८७–१८६ ।।

अन्य प्रकार से 'मन्दर्क्षाच्छशिवेदतर्कविशिखाऽव्ययग्निद्विपक्षक्रमाच्छागोऽश्वो भषणो गजो हयरिपुर्हंसो वृषो वायसः । हानिर्वैरिजयो भ्रमोधनचयो मानाल्पता भूपता सौख्यं रोगचयो नरर्क्षवशतो मन्दस्य वाहा अमी' (३१२ पृ०) ।। १८७–१८६ ।।

और भी वहीं पर 'ऋक्षे शनिर्यत्र नरस्य ऋक्षः माघादिमासैर्मुनिभिर्विभक्तः । एके च शुण्डी द्वौ जम्बुकश्च त्रयेऽपि चाश्वश्च चतुर्थश्वानः । सिंहश्शरः षष्ठ च गर्दभश्च मृगोः

१. ज्यो० सा० ९९ पृ० ।

परः सप्त शनैर्हि वाहनाः। गजश्च लभते लक्ष्मीं जम्बुके बुद्धिनाशनम्। अश्वश्च कनकप्राप्तिः श्वानश्चौरो गृहे गृहे। सिंहे च जायते सिद्धिर्गर्दभे हानिरेव च। मृगे च प्राणसंदेहो वाहनानां फलं दिशेत्' (३१३ पृ०) १८७-१८९ ॥

श्रीपतिः—

श्रीपति जी के वाक्य से सफल शनि चक्र ज्ञान

एवं मन्दर्क्षमास्ये सुखमथ युगलं व्याधिकृद्गुह्यसंस्थं
युग्मं दृष्ट्योरभीष्टं वितरति शिरसि त्रीणि साम्राज्यदानि।
पञ्चारोग्याय कुक्षेर्जलधिपरिमितिर्वामपाणौ षडङ्घ्रि-
र्दुःखं क्लेशोपलब्धौ जलधिमिति करे दक्षिणे मङ्गलोत्थैः॥ १९०॥

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि शनि के नक्षत्र को मुख में स्थापित करने से वही अपना नक्षत्र हो तो १ सुख, इसके बाद २ गुह्य में रोग, पुनः २ नक्षत्र आँखों में इष्ट की सिद्धि, फिर तीन माथे पर राज्य पद की प्राप्ति, पुनः ५ पेट में नीरोगता, ४ वायें हाथ में दुःख, पुनः ६ नक्षत्र पैरों में कलह की प्राप्ति और ४ दाहिने हाथ में अपना नक्षत्र हो तो शुभ होता है॥ १६०॥

सफल शनि चक्र सारिणी श्रीपति के आधार पर

श० न०	१	२	२	३	५	४	६	४
स्थान	मुख	गुह्य	नेत्र	मस्तक	उदर	वा० हाथ	पैर	द० हाथ
फल	सुख	रोग	इष्ट सिद्धि	राज्यपद प्राप्ति	नीरोगता	दुःख	कलह	सुख

अथ शनिचक्रम्—

अब आगे लल्लाचार्य के कहे हुए शनि चक्र को फल के साथ बताते हैं।

लल्लोऽपि—

शनिगति ज्ञान

मुखाद्गुह्ये ततो नेत्रे शीर्षे वामकरे हृदि।
वामाङ्घ्रौ दक्षिणे पादे दक्षहस्ते शनिर्गतिः॥ १९१॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि मुख से गुह्य, गुह्य से नेत्र तब मस्तक, वामहाथ, छाती, वाम पैर, दाहिना पैर और दाहिने हाथ में आगे वर्णित हिसाब से क्रम बार नक्षत्रों का न्यास करना चाहिये॥ १६१॥

सफल शनिचक्र का न्यास

वक्रे सन्तापमेकं प्रचुरतरधनं दक्षिणे हस्तविद्यात्
पादौ दद्याच्च षड्भिः परवदनवशं वामहस्ते च मृत्युः।

पञ्चोरस्यैव धार्यं बहुधनसुखदं त्रीणि शीर्षे च राज्यं
नेत्रे युग्मे द्वयोर्वा गुदयुगलमृतिः सौरिचक्रे प्रदिष्टम् ।। १९२ ।।

लल्लाचार्य ने बताया है कि शनि के नक्षत्र से १ नक्षत्र मुख में अपना नक्षत्र हो तो संताप, इसके बाद ६ दाहिने हाथ में, अधिक धनागम, ६ पैरों में दूसरे के मुख के वशीभूत, ५ वायें हाथ में मृत्यु, ५ छाती में अधिक धन सुख लाभ, ३ मस्तक में राज्य, २ आँखों में या २ गुह्य स्थल में अपना नक्षत्र हो तो मरण होता है ।। १९२ ।।

सफल लल्लोक्त शनि चक्र सारिणी

श० न०	१	६	६	५	५	३	२	या २
स्थान	मुख	द० हाथ	पैर	वा० हाथ	छाती	मस्तक	नेत्र	गुह्यस्थल
फल	संताप	अधिक धनागम	परमुख वश्यता	मृत्यु	अधिक धन,सुख लाभ	राज्य	मरण	मरण

अन्योऽपि—

अन्य प्रकार से भी शनि चक्र न्यास

यस्मिन् शनिश्चरति वक्रगतं ततश्च चत्वारि दक्षिणकरेऽङ्घ्रियुगे भषट्कम् ।
चत्वारि वामकरगोप्युदरे च पञ्च मूर्ध्नि त्रयं नयनयोर्द्वितयं गुदे च ।।१९३।।

जिस नक्षत्र में शनि हो उस १ को मुख में, इसके बाद ४ दाहिने हाथ में, पुनः दोनों पैरों में ६ नक्षत्र, फिर चार ४ वांयें हाथ में, ५ पेट में, ३ मस्तक में, २ नेत्र और २ गुह्य में स्थापित करना चाहिए ।। १९३ ।।

सफल अन्योक्त शनि चक्र सारिणी

श० न०	१	४	६	४	५	३	२	२
स्थान	मुख	द० हाथ	पैर	वा० हाथ	उदर	मस्तक	नेत्र	गुह्य
फल	रोग	लाभ	पर्यटन	धनाल्पता	लाभ	सुन्दर भाग्य	मरण	मरण

इसका फल

रोगो लाभं तथाध्वानमध्नं लाभमेव च ।
सौभाग्यमल्पमृत्युश्च शनेः प्रोक्तं क्रमात्फलम् ।। १९४ ।।

मुख में रोग, दाहिने हाथ में लाभ, पैरों में पर्यटन, वायें हाथ में धन की कमी पेट में लाभ, मस्तक में सुन्दर भाग्य और नेत्र व गुह्य में अपना नक्षत्र हो तो अल्प-मृत्यु होती है ।। १९४ ।।

अथ राहुफलम्—

अब आगे राहु केतु के १२ राशियों में गोचरीय फल को श्रीपति जी के वाक्य से बताते हैं ।

श्रीपतिः—

१२ राशियों में गोचरीय राहु केतु का फल

[1]राहुर्जन्मगतो भयं च कलहं सौभाग्यमानक्षयं
चित्तभ्रंशमहत्सुखं नृपभयं चार्थक्षयं यच्छति।
सन्तापं कलहं च वित्तमधिकं शीघ्रं विनाशं नृणां
केतुस्तत्फलमेव राशिषु वदेच्छंसन्ति गर्गादयः ॥ १९५ ॥

जब कि राहु जन्म राशि में होता है तो भय, दूसरी में कलह, तीसरी में सौभाग्य, चौथी में मान का क्षय, पाँचवीं में चित्त भ्रंश, छठी में बड़ा सुख, सातवीं में राजभय, आठवीं में धनक्षय, नवीं स्वराशि में सन्ताप, दसवीं में कलह, ग्यारहवीं में अधिक धन और अपनी राशि में राहु वा केतु होता है तो जल्दी विनाश होता है ॥ १९५ ॥

ज्योतिष्प्रकाश में कहा है 'हानिं नैस्व्यं धनं रोगं शोकं वित्तं कलिं व्यसुम्। पापं वैरं सुखं हानिं राहुः कुर्यात् स्वजन्मभात्' ज्यो० नि० ५४ पृ० ॥ १९५ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'हानिर्व्ययो धनं वैरं शोको वित्तं विपद्रुजः। पापं वैरं सुखं हानी राहुकेत्वोः फलं क्रमात्' (१३ प्र० ८ श्लो०) ॥ १९५ ॥

और भी ज्योतिषसार में 'राहुर्हानिं तथा नैःस्वं धनं वैरं शुचं श्रियम्। कलिं वस्तुं च दुरितं वैरं सौख्यशुचं क्रमात्' (९८ पृ०) ॥ १९५ ॥

अथ राहुचक्रम्—

अब आगे सारोद्धार के वाक्य से फल के साथ राहु चक्र के न्यास को बताते हैं।

सारोद्धारे—

सफल राहु चक्र न्यास

यस्मिन्नृक्षे भवेद्राहुस्तत्राद्याः सप्त पादयोः।
दक्षिणे तु भुजे पञ्च शिरसि त्रीणि दापयेत् ॥ १९६ ॥
द्वे ऋक्षे हृदये न्यस्य मुखे चैकं न्यसेद्बुधः।
पञ्च वामकरे ज्ञेये ऋक्षमेकं तु नाभिषु ॥ १९७ ॥
तथा च त्रीणि गुह्येषु राहुचक्रे महाफलम्।
धनहानिर्भवेत्पादे सन्तापं दक्षिणे करे ॥ १९८ ॥
शीर्षे शत्रुजयं विद्यात् हृदये दुर्जनप्रियम्।
मुखे दुर्जनसंहारं मृत्युर्वामकरे भवेत् ॥ १९९ ॥
गुह्ये तु सर्वनाशाय विचार्यैवं फलं वदेत् ॥ २०० ॥

जिस नक्षत्र में राहु हो उससे ७ नक्षत्र तक पैरों में, ५ दाहिने हाथ में, फिर तीन माथे पर, पुनः २ छाती पर, १ मुख में, ५ बायें हाथ में, १ नाभि में और ३

---

१. मु० चिं० ४ प्र० १-४ श्लो० पी० टी०।

नक्षत्र गुह्य स्थान में स्थापित करके देखने पर अपना नक्षत्र यदि पैरों में हो तो धन हानि, दाहिने हाथ में सन्ताप, मस्तक पर शत्रु परास्त, छाती में दुष्टों से प्रेम, मुख में दुष्टों का नाश, वायें हाथ में मृत्यु और गुह्य में होने पर समस्त का विनाश होता है ।। १६६-२०० ।।

सफल राहु चक्र सारिणी सारोद्धार के आधार पर

रा० न०	७	५	३	२	१	५	१	३
स्थान	पैर	दा० हाथ	मस्तक	छाती	मुख	वा० हाथ	नाभि	गुह्य
फल	धन हानि	सन्ताप	शत्रु परास्त	दुष्ट प्रेम	दुष्ट नाश	मरण		सर्वनाश

गर्गोऽपि--

गर्ग के आधार पर भी सफल राहु चक्र न्यास

वक्त्रे त्रीणि विधुन्तुदो गदभयं चत्वारि कण्ठे धनं
नेत्रे द्वौ सुखदोऽपि राज्यसुखदं पञ्चर्क्षकं मस्तके ।
रोगी मृत्युभयं द्वयं तु करयोश्चत्वारि पादद्वये
चत्वार्येव सुखं हृदि त्रिनिधनं गुह्ये द्वयं बन्धनम् ।। २०१ ।।

गर्गाचार्य ने बताया है कि राहु जिस नक्षत्र में हो उससे ३ नक्षत्र तक मुख में अपना नक्षत्र हो तो रोग का डर, पुनः चार ४ कण्ठ में धन, २ आखों में सुखाप्ति, फिर ५ मस्तक पर राज्य सुख का लाभ, पुनः ४ हाथों में रोग व ४ दोनों पैरों में मृत्यु भय, ४ छाती पर सुख और दो २ गुह्य स्थान में अपना नक्षत्र हो तो निधन बन्धन होता है ।। २०१ ।।

गर्गोक्त सफल राहु चक्र सारिणी

रा० न०	३	४	२	५	४	४	४	२
स्थान	मुख	कंठ	नेत्र	मस्तक	हाथ	पैर	छाती	गुह्य
फल	रोग भय	धन	सुखाप्ति	राज्य सुख लाभ	रोग	मृत्यु भय	सुख	निधन

अथ केतुफलम्--

श्रीपतिः—

स्वराशि से १२ राशियों में केतु का फल

रोगं वैरं सुखं भीतिःशुचं वित्तं गतिं गदम् ।
पापं शोकगदं वैरं जन्मभात्कुरुते शिखी ।
यस्मिन्नृक्षे स्थितः केतुस्तदादि फलमादिशेत् ।। २०२ ।।

आचार्य श्रीपति ने कहा है कि जब जन्म राशि में केतु होता है तो रोग, दूसरी में विरोध, तीसरी में सुख, चौथी में भय, पाँचवी में पवित्रता, छठी में धन, सातवीं में गति, आठवीं में पाप, नवीं में रोग, दसवीं में शोक, ग्यारहवीं में रोग और १२ वीं में केतु के होने पर वैर या शत्रुता का बढ़ाव होता है ॥ २०२ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'रोगं वैरं सुखं भीतिं शुचं वित्तं गतिं गदम् । पापं शोकं यशो वैरं जन्मभात् कुरुते शिखी' (५४ पृ० १७ श्लो०) ॥ २०२ ॥

तथा ज्योतिषसार में भी 'केतुः क्रमाद्रुजं वैरं सुखं भीतिं शुचं धनम् । गतिं गदं दुष्कृतिं च शोकं कीर्तिं च शत्रुताम्' (९८ पृ० १० श्लो०) ॥ २०२ ॥

अथ केतुचक्रम—

सफल केतु चक्र न्यास

नेत्रे द्वौ रोगशोकाय पञ्चास्ये लाभदायकः ॥ २०३ ॥
शीर्षे त्रीणि च धिष्ण्यानि राजसन्मानदायकः ।
चत्वारि करयोः केतुर्यशो लाभसुखप्रदः ॥ २०४ ॥
पादौ चत्वारि धिष्ण्यानि भ्रमणोद्वेगकारकः ।
हृदये पञ्च धिष्ण्यानि कलहं स्वजनैः सह ॥ २०५ ॥
कुक्षौ चत्वारि भानीह भयरोगमृतिप्रदः ।
गोचरे यो ग्रहोऽनिष्टस्तस्य चक्रफलं शुभम् ।
यदि स्यात्समता ज्ञेया शुभे द्वे द्वे शुभं वदेत् ॥ २०६ ॥

जिस नक्षत्र में केतु हो उससे दो २ नक्षत्र तक आँखों में अपना नक्षत्र हो तो रोग, शोक पुनः ५ तक मुख में लाभ, फिर ३ मस्तक पर राजकीय सन्मान दाता, फिर ४ तक हाथ में यश लाभ, सुख की प्राप्ति, ४ तक पैरों में भ्रमण व उद्वेग, पुनः ५ तक छाती पर अपने आदमियों से कलह इसके बाद ४ तक पेट में अपना नक्षत्र हो तो भय, रोग और मरण होता है। जब कि गोचर में ग्रह अनिष्ट कारक होता है तो उसमें चक्र के आधार पर शुभ की प्राप्ति होने पर शुभता आ जाती है। ग्रह परम शुद्ध चक्र व गोचर इनसे शुद्ध होने पर ही शुभ होता है ॥ २०३–२०६ ॥

सफल केतु चक्र सारिणी

के० न०	२	५	३	४	४	५	४
स्थान	नेत्र	मुख	मस्तक	हाथ	पैर	छाती	उदर
फल	रोग शोक	लाभ	राज सम्मान	यश लाभ सुख	भ्रमण उद्वेग	कलह	भय, रोग मरण

अथ ग्रहाणां दोषशान्त्यर्थंस्नानौषधयः ।

अब आगे ग्रह दोष निवृत्ति के लिये औषधियों से स्नान करना बताते हैं।

श्रीपतिः—

सूर्य दोष निवृत्ति के लिये औषधि स्नान

[1]मनः शिलैलासुरदारुकुङ्कुमैरुशीरज्येष्ठीमधुपद्मकान्वितैः ।
सताम्रपुष्पैर्विषमस्थिते रवौ शुभावहं स्नानमुदाहृतं बुधैः ॥ २०७ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि यदि गोचरीय सूर्य खराब हो तो मनसिल, बड़ी लाइची, देवदारु, कुङ्कुम (केसर) खस, ज्येष्ठी या बड़ी मक्खी का सहत, कमल और लाल पुष्पों से स्नान करने पर विषम रवि शुभ होता है । ऐसा प्राचीन विद्वानों का कहना है ॥ २०७ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'एलाषष्ठीमधूशीरताम्रपुष्पाब्जकुङ्कुमैः । स्नानं मनःशिलादेवदारुमी रवितुष्टये' (१३ प्र० ४४ श्लो०) ॥ २०७ ॥

चन्द्र दोष निवृत्यर्थ औषधि स्नान

[2]पञ्चगव्यगजदानमिश्रितैः शङ्खशुक्तिकुमुदस्फटिकैश्च ।
शीतरश्मिकृतवैकृतहन्ति स्नानमेतदुदितं नृपतीनाम् ॥ २०८ ॥

जब कि गोचरीय चन्द्र दोषी हो तो पंचगव्य में हाथी का मद मिला कर, शंख, सीप, श्वेत कमल या किसी स्फटिक से स्नान करने पर राजाओं का चन्द्र दोष नष्ट होता है ॥ २०८ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'पञ्चगव्ये तु दन्ताम्बुशंखस्फटिकमौक्तिकैः । कुमुदैः मिश्रितं स्नानं चन्द्रदोषापनुत्तये' (१३ प्र० ४५ श्लो०) ॥ २०८ ॥

भौम दोष निवृत्यर्थ औषधि स्नान

[3]बिल्वचन्दनबलारुणपुष्पैर्हिङ्गुलूकफलिनीबकुलैश्च ।
स्नानमद्भिरिह मांसियुताभिर्भौमदोषविनिवारणमाहुः ॥ २०९ ॥

जब कि गोचरीय भौम दूषित होता है तो बेल, चन्दन, बला ओषधि, लाल फूल, इंगुर, इन्द्रपुष्पी, मोलसरी को जल में गेर कर और जटामासी मिला कर नहाने से भौम का दूषित फल नष्ट होता है ॥ २०९ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'हिंगूलबिल्बफलनी मांसी बकुलचन्दनो । रक्तपुष्पैर्बला-मिश्रः स्नानं भौमार्तिनुत्तये' (१३ प्र० ४६ श्लो०) ॥ २०९ ॥

बुध दोष निवृत्यर्थ स्नान औषधि

[4]गोमयाक्षतफलैः सरोचनैः क्षौद्रशुक्तिभवमूलहेमभिः ।
स्नानमुक्तमिदमत्र भूभृतां बोधनाशुभनिवारणं बुधैः ॥ २१० ॥

---

१. ज्यो० नि० ५४ पृ० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।
२. ज्यो० नि० ५४ पृ० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।
३. ज्यो० नि० ५४ पृ० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।
४. ज्यो० नि० ५५ पृ० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।

जब कि गोचरीय बुध अनिष्ट कर्ता हो तो गोबर, चन्दन चावल, फल चन्दन, सहत, सीप, भव मूल और सुवर्ण से स्नान करने पर बुध की अशुभता नष्ट होती है ॥ २१० ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'गोमयाक्षतमुक्ताभी रोचनामधु हेमभिः। फलमूलैर्युतं स्नानं बोधनार्तिविनाशनम्' (१३ प्र० ४७ श्लो०) ॥ २१० ॥

गुरु दोष निवृत्यर्थं स्नान औषधि

[1]मालतीकुसुमशुभ्रसर्षपैः पल्लवैश्च मदयन्तिकोद्रवैः।
मिश्रमम्बुमधुकेन च स्फुटं वैकृतं गुरुकृतं निकृन्ततिः॥ २११ ॥

जब कि गोचरीय गुरु अशुभ हो तो मिश्र बन्धु, सहत, बड़ी लाइची, मनसिल को' पानी में छोड़ कर नहाने से उसकी अशुभता का परिहार होता है ॥ २११ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'मालतीकुसुमैः श्वेतसर्षपक्षौद्रसंयुतैः। पल्लवैर्मदयन्त्या च स्नायाद् गुरुमुदे ततः' (१३ प्र० ४८ श्लो०) ॥ २११ ॥

शुक्र दोष निवृत्यर्थं स्नान औषधि

[2]एलया च शिलया समन्वितैर्वारिभिः सकलमूलकुंकुमैः।
स्नानतो भृगुसुतोपपादितं दुःखमेति विलयं न संशयः॥ २१२ ॥

जब कि गोचरीय शुक्र अशुम होता है तो बड़ी इलाइची, मनसिल, फल, मूल, केसर, जल में छोड़कर स्नान करने से शुक्र का अशुभत्व नष्ट होता है ॥ २१२ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'फलामनः=शिला मूलफलकुङ्कुमवारिभिः। स्नानं शुक्र कृतां बाधां नाशयत्येव भूभुजाम्' (१३ प्र० ४९ श्लो०) ॥ २१२ ॥

शनि दोष निवृत्यर्थं स्नान औषधि

[3]असित तिलाञ्जनलोध्रबलाभिः शतकुसुमाघनलाजयुताभिः।
रवितनये कथितं विषमस्थे दुरितहृदाप्लवनं मुनिमुख्यैः॥ २१३ ॥

जब कि गोचरीय शनि अशुभ होता है तो काला तिल, अञ्जन, लोध, बला, सौंफ, धान के लावा को पानी में छोड़ कर स्नान करने से शनि का दोष विलीन होता है ॥ २१३ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'बलाञ्जनैः कृष्णतिलैर्लोध्रेण मिश्रितैरपि। शतपुष्पान्वितैः स्नायान्मन्दबाधापनुत्तये' (१३ प्र० ५० श्लो०) ॥ २१३ ॥

रा. दो. नि. स्नान औषधि

विन्यस्य माहिषं शृङ्गं हरितालं मनःशिलाम्।
गुग्गुलं चाम्बुसंयुक्तं स्नानं राहुप्रशान्तये॥ २१४ ॥

---

१. ज्यो० नि० ५५ पृ० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।
२. ज्यो० नि० ५५ पृ० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।
३. ज्यो० नि० ५५ पृ० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।

भैसे का सींग बनाकर, हरिताल, मनसिल गूगुल पानी में छोड़ कर स्नान करने पर राहु का दोष दूर होता है ।। २१४ ।।

राहु केतु दोष निवृत्यर्थ स्नान औषधि

[१]लोध्रदर्भतिलपत्रजमुस्ताहस्तिदानमृगनाभिपयोभिः ।
स्नानमुक्तमिदमध्यमराहोः साजमूत्रमिदमेव च केतोः ।। २१५ ।।

जब कि गोचरीय राहु अनिष्ट हो तो लोध्र, कुश, तिलका पत्ता, मुस्ता, हाथी का मद जल, हिरन की नाभि को पानी में मिला कर और केतु अनिष्ट हो तो राहु की वस्तुओं में बकरे का मूत मिला कर स्नान करने से बुरा फल नष्ट होता है ।।२१५।।

ज्योतिष्प्रकाशे—

ज्योतिष्प्रकाशोक्त समस्त पीडा निवारणार्थं स्नान औषधि

[२]सिद्धार्थलोध्ररजनाद्वयभद्रमुस्ता चान्द्रं रजः सफलिनीसुरुमाविमिश्रैः ।
स्नानं कुरुष्व ग्रहदोषनिवारणार्थं सर्वे ग्रहा दिनकरप्रमुखाः शुभाः स्युः ।।२१६।।
[३]सदोषधैर्यान्ति गदो विनाशं यथान्यथा दुःखभयानि मन्त्रैः ।
तथोदितस्नानविधानतापि ग्रहाशुभं नाशमुपेत्यवश्यम् ।। २१७ ।।

ज्योतिष्प्रकाश में कहा है कि सिद्धार्थ, लोध्र, रजनीद्वय, भद्र मुस्ता, चान्द्र रज, फलिनी और सुरुमा को मिलाकर पानी में छोड़कर स्नान करने से समस्त गोचरीय अशुभ ग्रह शुभ हो जाते हैं ।। २१६ ।।

वैसे ही मन्त्र से भय जैसे सदा औषधि सेवन से रोग का नाश होता है तथा असेवन से दुःख होता है उसी प्रकार उक्त औषधियों से स्नान करने पर अवश्य ही ग्रह का अशुभत्व दूर होता है ।। २१७ ।।

तदन्यः—

अन्य प्रकार से

[४]लाजाकुट्टबलामिश्रं प्रियङ्गुघनसर्षपः ।
देवदारुहरिद्राभिः पुंखालोध्रेण संयुतः ।। २१८ ।।
[५]वारिभिः स्नानमुक्तं हि प्रोक्तं दानपुरस्सरम् ।
एतत्सामान्यतः सर्वं ग्रहपीडोपशान्तये ।। २१९ ।।
[६]यथा सिद्धौषधै रोगा नश्येयुर्मन्त्रतो भयम् ।
तथा स्नानविधानेन ग्रहदोषः प्रणश्यति ।। २२० ।।

---

१. ज्यो० नि० ५५ पृ० तथा मु० चि० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चि० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।
३. ज्यो० नि० ५५ पृ० ।
४. मु० ग० १३ प्र० ५१ श्लो० ।
५. मु० ग० १३ प्र० ५२ श्लो० ।
६. मु० ग० १३ प्र० ५३ श्लो० ।

लावा, कुटकी, बला, ककुनी, मोटी सरसों, देवदारु, हल्दी, बाण का निचला, हिस्सा और लोध्र पानी में छोड़कर प्रथम दान देकर स्नान करने पर सर्व ग्रहों का दूषित फल नष्ट होता है ॥ २१८–२१९ ॥

जिस प्रकार सिद्ध औषधि से रोग व मन्त्रों से भय दूर होता है उसी प्रकार औषधियों से नहाने पर ग्रह दोष नष्ट होता है ॥ २२० ॥

अथ सूर्यादीनां दानानि ।

अब आगे दूषित ग्रह होने पर क्या २ दान करना चाहिये, इसे ज्योतिर्निवन्ध के आधार पर पृथक २ ग्रहों की दान वस्तुओं को बताते हैं ॥

ज्योतिर्निवन्धे—

सूर्य की दान वस्तु

[1]कौसुम्भवस्त्रं गुडहेमताम्रं माणिक्यगोधूमहिरण्यपद्मम् ।
सवत्सगोदानमिति प्रणीतं दुष्टाय सूर्याय मसूरिकाश्च ॥ २२१ ॥

ज्योतिर्निवन्ध में कहा है कि सूर्य अशुभ हो तो कौसुम्भ वस्त्र, गुड, सुवर्ण, तांवा, माणिक्य, गेहूँ, मसूर, सोने का कमल और सवत्सा (वछड़े के साथ) गाय का दान करने पर सूर्य का अशुभत्व नष्ट होता है ॥ २२१ ॥

विशेष—प्रकाशित ज्योतिर्निवन्ध में 'गोधूम हिरण्यपद्मं' 'सूर्याय वदन्ति नूनम्' यह पाठान्तर है ॥ २२१ ॥

ज्योतिषसार में कहा है 'माणिक्यगोधूमसवत्सधेनुः कौसुम्भवासो गुडहेमताम्रम् । आरक्तकं चन्दनमम्बुजं च वदन्ति दानं हि विरोचनाय' (१०२ पृ० १ श्लो०) ॥२६१॥

तथा मुहूर्तगणपति में कहा है 'माणिक्यधेनुगोधूमा हेमताम्रगुडोऽम्बुजम् । चन्दनं चामरं रक्तं देयं भास्वन्मुदे नृपैः' (१३ प्र० ३५ श्लो०) ॥ २२१ ॥

चन्द्रमा की दान वस्तु

[2]घृतकलशं सितवस्त्रं दधिशंखमौक्तिकं सुवर्णं च ।
रजतं च शङ्खं दद्याच्चन्द्रारिष्टोपशान्तये ॥ २२२ ॥

जब चन्द्रमा दूषित हो तो घी का घड़ा, सफेद वस्त्र, दही, शंख का मोती, सोना, चांदी और शङ्ख का दान चन्द्र अरिष्ट शान्ति के लिए करना चाहिये ॥ २२२ ॥

विशेष—प्रकाशित ज्योतिर्निबंन्ध में 'युगस्थवृषभं' 'रजतं च संप्रदद्याच्चन्द्रारिष्टोपशान्तये' (२२५ पृ०) ॥ २२२ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'मुक्ता रौप्यं सितं ताम्रं शङ्खं वंशस्थतन्दुलान् । कर्पूरं गोयुगं दद्याद् रत्नं कुम्भं विधोर्मुदे' (१३ प्र० ३६ श्लो०) ॥ २२२ ॥

१. ज्यो० नि० ५५ पृ० २४ श्लो० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।
२. ज्यो० नि० ५५ पृ० ५२ श्लो० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।

और भी ज्योतिषसार में 'सद्वंशपात्रस्थिततन्दुलांश्च कर्पूरमुक्ता फलशुभ्रवस्त्रम्। युगोपवीतं वृषभं च रौप्यं चन्द्राय दद्याद्घृतपूर्णकुम्भम्' (१०२ पृ०) ॥ २२२ ॥

मंगल के दान पदार्थ

[1]प्रवालगोधूममसूरिकाश्च वृषश्च ताम्रः करवीरपुष्पम्।
आरक्तवस्त्रं गुडहेमताम्रं दुष्टाय भौमाय सचन्दनं वा ॥ २२३ ॥

भौम के दूषित होने पर मूंगा, गेहूँ, मसूर, बैल, लाल कनेर के फूल, लाल कपड़ा, गुड़, सुवर्ण वा चन्दन के साथ ताम्र का दान करने से भौम का दोष दूर होता है ॥ २२३ ॥

विशेष – प्रकाशित ज्यो० नि० में 'आरक्तवस्त्रं गुडहेमदानं प्रवालगोधूममसूरिकश्च। वृषः सुताम्रः करवीरपुष्पं दुष्टाय भौमाय वदन्ति दानम्' (५५ पृ०) ॥ २२३ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'प्रवाल हेमगोधूमान् रक्तं वासोऽरुणं वृषम्। करवीरं गुडं ताम्रं मसूरान् भौमतुष्टये' (१३ प्र० ३७ श्लो०) ॥ २२३ ॥

तथा ज्योतिषसार में भी 'प्रवालगोधूममसूरिकाश्च वृषोऽरुणश्चापि गुडः सुवर्णम्। आरक्तवस्त्रं करवीरपुष्पं ताम्रं च भौमाय वदन्ति दानम्' (१०२ पृ० ॥ २२३ ॥

बुध के दान पदार्थ

[2]नीलं वस्त्रं मुद्गदानं बुधाय रत्नं दद्याद्दासिका हेम सर्पिः।
कांस्यं दन्तः कुञ्जरस्याथ मेषो रौप्यं सर्वं पुष्पजात्यादिकं च ॥ २२४ ॥

बुध के दोषी होने पर नीला वस्त्र, मूँग, रत्न, दासी, सोना, घी, कांसा, हाथी का दाँत, बकरा, चाँदी और समस्त पुष्पों का दान करने से दोष समाप्त होता है ॥ २२४ ॥

विशेष—प्रकाशित ज्यो० नि० में 'रत्नं पाचिर्दासिका हेम' यह पाठान्तर है ॥ २२४ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'कांस्यं नीलाम्बरं हेमं गजदन्तं गरुत्मकम्। मुद्गाज्यं स्वर्णकापुष्पं दद्यात् प्रीत्यै बुधस्य च' (१३ प्र० ३८ श्लो०) ॥ २२४ ॥

तथा ज्योतिषसार में भी 'वृषं च नीलं कलधौतकांस्यंमुद्गाज्यगारुत्मकसर्वपुष्पम्। दासी च दन्तो द्विरदस्य नूनं वदन्ति दानं विधुनन्दाय' (१०२ पृ०) ॥ २२४ ॥

गुरु के दान पदार्थ

[3]अश्वः सुवर्णं शुभपीतवस्त्रं सपीतधान्यं लवणं च पुष्पम्।
सशर्करं तद्रजनीप्रयुक्तं दुष्टाय शान्त्यै गुरवे प्रणीतम् ॥ २२५ ॥

---

१. ज्यो० नि० ५५ पृ० २६ श्लो० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।
२. ज्यो० नि० ५५ पृ० २७ श्लो० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।
३. ज्यो० नि० ५६ पृ० २८ श्लो० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।

गुरु के अशुम होने पर घोड़ा, सोना, शुभ पीला कपड़ा, पीले धान्य, नमक, पीत पुष्प और चीनी का रात्रि में दान करने से अशुमता का नाश होता है ॥ २२५ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'हरिद्रा स्वः सिता हेमपीतं धान्यं तथाम्बरम् । लवणं पुष्परागश्च देयो वाचस्पतेर्मुदे' (१३ प्र० ३६ श्लो०) ॥ २२५ ॥

तथा ज्योतिषसार में भी 'शर्करा च रजनीतुरङ्गमः पीतधान्यमपि पीतमम्बरम् । पुष्परागलवणे च काञ्चनं प्रीतये सुरगुरोः प्रदीयताम्' (१०२ पृ०) ॥ २२५ ॥

शुक्र के दान पदार्थ

[1]चित्रवस्त्रमिह दानवार्चिते दुष्टगे मुनिवरैः परिणीतम् ।
तन्दुलं घृतसुवर्णरूपकं वज्रके परिमलो धवलोऽश्वः ॥ २२६ ॥

शुक्र के दूषित होने पर चित्रित कपड़ा, चावल, घी, सोना, चाँदी, हीरा, कुंकुम और सफेद घोड़ा के दान से अशुमता दूर होती है ॥ २२६ ॥

विशेष—प्रकाशित ज्यो० नि० में 'परिमला शबला गौः' यह पाठान्तर है ॥२२६॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'धेनुश्चित्राम्बरं चाज्यं श्वेताश्वो हेमतन्दुलाः । सुगन्धी रजतं वस्त्रं प्रदेयं प्रीतये भृगोः' (१३ प्र० ४०.०) ॥ २२६ ॥

तथा ज्योतिषसार में भी 'चित्राम्बरं शुभ्रतुरङ्गमश्च धेनुश्च वज्रं रजतं सुवर्णम् । सतन्दुलानुत्तमगन्धयुक्तान् वदन्ति दानं भृगुनन्दाय' (१०२ प्र०) ॥ २२६ ॥

शनि के दान पदार्थ

[2]नीलकं महिषी वस्त्रं कृष्णं लोहं सदक्षिणम् ।
तैलमाषकुलित्थाश्च शनिरिष्टप्रशान्तये ॥ २२७ ॥

शनि के अशोमन होने पर नीला वस्त्र, भैंस, दक्षिणा के साथ काला लोहा, तेल, तिल, उड़द और कुलथी का दान करने से शनि की अशोमनता दूर होती है ॥ २२७ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'तिलतैलं तथा माषानिन्द्रनीलसिताम्बरम् । कृष्णां गां महिषी दानं स्वर्णं दद्यात् शनेर्मुदे' (१३ प्र० ४१२ श्लो०) ॥ २२७ ॥

तथा ज्योतिषसार में भी 'माषाश्च तैलं विमलेन्द्रनीलं तिला कुलित्था महिषी च लोहम् । कृष्णा च धेनुः प्रवन्ति नूनं दुष्टाय दानं रविनन्दाय' (१०२ प्र०) ॥ २२७ ॥

राहु के दान पदार्थ

[3]राहोर्दानं बुधैर्मेषो गोमेदं शस्त्रकम्वलम् ।
सौवर्णं नागरूपं च सतिलं ताम्रभाजनम् ॥ २२८ ॥

---

१. ज्यो० नि० ५६ पृ० २९ श्लो० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।
२. ज्यो० नि० ५६ पृ० ३० श्लो० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।
३. ज्यो० नि० ५६ पृ० ३१ श्लो० तथा मु० चिं० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।

राहु के दूषित होने पर बकरा, गोमेद, शस्त्र, कम्बल, सोने का सर्प और तांबे के बर्तन में तिल भरकर देने से दोष नष्ट होता है ।। २२८ ।।

मुहूर्तगणपति में कहा है 'गोमेदं तुरगं खड्गं नीलवस्त्रं च कम्बलम् । स्वर्णं तैलं तिलान् दद्यात् सैंहिकेयमुदे नृपः (१३ प्र० ४२ श्लो०) ।। २२८ ।।

तथा ज्योतिषसार में भी 'गोमेदरत्नं च तुरङ्गमश्च सुनीलचैलामलकम्बलञ्च । तिलाश्च तैलं खलु लोहमिश्रं स्वर्भानवे दानमिदं वदन्ति' (१०२) ।। २२८ ।।

सुन्दर केतु के दान पदार्थ

'केतोर्वैदूर्यममलं तैलं मृगमदस्तथा ।
ऊर्णा तिलाश्च धान्येकं महाजःक्लेशशान्तये ।। २२९ ।।

केतु के अशुभ होने पर लहसुनिया, तिल, तेल, हिरन का मद, ऊन, एक धान्य और बड़ा बकरा दान करने से अशुभता नष्ट होती है ।। २२६ ।।

विशेष—प्रकाशित ज्यो० नि० में 'केतौ वैदूर्यकं शस्त्रं' 'ऊर्णां तिलैश्च संयुक्तां दद्यात् क्लेशापनुत्तये' (५६ पृ०) ।। २२६ ।।

मुहूर्तगणपति में कहा है 'कस्तूरी कम्बलं शस्त्रं छागं वैदूर्यकाञ्चनम् । तिलास्तैलं महीपालैः प्रदेयं केतुतुष्टये' (१३ प्र० ४३०) ।। २२६ ।।

तथा ज्योतिषसार में भी 'वैदूर्यरत्नं सतिलं च तैलं सुकम्बलश्चापि मदो मृगस्य । शस्त्रं च केतोः परितोषहेतोश्छागस्य दानं कथितं मुनीन्द्रैः' (१०२ पृ० ६ श्लो०) ।। २२६ ।।

अब आगे अमृतकुम्भ ग्रन्थ में बताये हुए ग्रहों के दान पदार्थों को सूर्यादिग्रह क्रम से बताते हैं ।।

अमृतकुम्भग्रन्थे—

अमृत कुम्भोक्त सूर्य की दान वस्तु

वस्त्रं धेनुः पाटला तोयकुंभः कांस्यं पात्रं वाज्यपूर्णं रथश्च ।
व्रीहीद्राज्या हेममाणिक्यमेतद्दानं प्रोक्तं प्रीतये भास्करस्य ।। २३० ।।

अमृत कुम्भ ग्रन्थ में कहा है कि सूर्य के शुभ न होने पर वस्त्र, सफेदी से युक्त लाल रङ्ग की गाय, जल का घड़ा, कांसे का पात्र या घी से पूर्ण, रथ, धान्य, सुवर्ण, मानिक का दान करने से शुभता होती है ।। २३० ।।

अमृत कुम्भोक्त चन्द्रदान वस्तु

शङ्खो रौप्यमयः शशी च कलशो दुग्धप्रपूर्णस्तथा
स्थाली काँस्यमयी च मौक्तिकफलं श्रीखण्डकं तन्दुलाः ।
कर्पूरं च सिताम्बरं च कुमुदं त्वाज्यादिका स्फाटिकं
त्वेला चेक्षुरिदं सदा निगदितं दानं शशिप्रीतये ।। २३१ ।।

---

१. ज्यो० नि० ५६ पृ० ३२ श्लो० तथा मु० चि० ४ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।

अमृतकुम्भ ग्रन्थ में कहा है कि चन्द्रमा के अशुभ होने पर चाँदी का शंख, दूध से भरा कलश, काँसे की थारी, मोती, मिश्री के समान सफेद अच्छे चावल, कपूर, सफेद वस्त्र, वज्रादि स्फटिक, बड़ी लाइची, चीनी का दान करने से अशुभत्व विलीन होता है ॥ २३१ ॥

अमृत कुम्भोक्त भौम की दान वस्तु

रक्तोऽनड्वान् विद्रुमं रक्तवस्त्रं रक्तं धान्यं ताम्रपात्रं गुडश्च ।
लाक्षा रक्तं चन्दनं चाज्यकुम्भं पूगान्येतद्दानमुक्तं कुजस्य ॥२३२॥

अमृतकुम्भ ग्रन्थ में कहा है कि मंगल के अनिष्ट होने पर लाल बैल, मूँगा, लाल कपड़ा, लाल धान्य, (मसूर की दाल), तांबे का पात्र, गुड़, लाख, लाल चन्दन, घी का कलश और सुपारी का दान करने पर अनिष्ट भाग जाता है ॥ २३२ ॥

अमृत कुम्भोक्त बुध की दान वस्तु

शोणं वस्त्रं नीलवस्त्रं च धान्यं नीलं रक्तं हेमगोरोचनं च ।
नारङ्गीनि स्वस्वकाले फलानि चैतद्दानं प्रीतये स्याद्बुधस्य ॥२३३॥

अमृतकुम्भ में कहा कि बुध के अशुभकारी होने पर लाल वस्त्र, नीला वस्त्र, नीला धान्य, लाल सोना, चन्दन, नारङ्गी आदि स्वसमय में उपलब्ध फल का दान करने से अशुभता नष्ट होती है ॥ २३३ ॥

अमृतकुम्भोक्त गुरु की दान वस्तु

पीतं दुकूलमथ कम्बलकं च पीतं
धान्यं हिरण्यहरितालहरिद्रकाश्च ।
जम्बीरकं त्वपि च पीतफलानि वंश-
पात्रं त्विदं ननु बृहस्पतिदानमुक्तम् ॥ २३४ ॥

अमृतकुम्भ ग्रन्थ में कहा है कि गुरु के अशुभ होने पर पीला वस्त्र, पीला कम्बल, पीला धान्य, सोना, हरताल, हल्दी, नीबू का दान करने से अशुभता दूर हो जाती है ॥ २३४ ॥

अमृतकुम्भोक्त शुक्र की दान वस्तु

अश्वः श्वेतः श्वेतधान्यं च वस्त्रं श्वेतं रूप्यं बीजपूरं फलं च ।
कर्पूरं च श्वेतगन्धं च पुष्पं शुक्रस्योक्तं प्रीतये दानमेतत् ॥ २३५ ॥

अमृतकुम्भ ग्रन्थ में बताया है कि शुक्र के शुभ न होने पर सफेद घोड़ा, सफेद वस्त्र, चावल, चाँदी, विजौरा, कपूर, सफेद गन्ध, सफेद फल का दान करने से शुभ हो जाता है ॥ २३५ ॥

अमृतकुम्भोक्त शनि की दान वस्तु

कृष्णां धेनुं वृषभमपि तिलानञ्जनं तैलकुम्भं
कृष्णं रत्नं त्रपु च महिषी कृष्णधान्याम्बराणि ।

तीव्रं द्रव्यं समरिचलवङ्गादिकं गुग्गुलञ्च
दद्याल्लोहं फलमपि शनिप्रीतये चोक्तमेतत् ॥ २३६ ॥

अमृतकुम्भ ग्रन्थ में बताया है कि शनि के अशुभ होने पर काली गाय, काला बैल, काले तिल, तेल का कलश, काला रत्न, रांगा, भैंस, तीखे पदार्थ, मिर्च, लोंग आदि से युक्त, गुगुल, लोहा का दान करने पर अशुभता नष्ट हो जाती है ॥ २३६ ॥

अमृतकुम्भोक्त राहु की दान वस्तु

शूर्पं खड्गसुवर्णनागसहितं धान्यैः फलैः सप्तभिः
कूष्माण्डं तिलतन्दुलाश्च लवणं कस्तूरिकां सर्षपान् ।
नालीकेरमुपानहौ शुभमणिं गोमेदकं शय्यकां
दद्याच्छीशककृष्णधान्यवसनं राहुग्रहप्रीतये ॥ २३७ ॥

अमृतकुम्भ ग्रन्थ में बताया है कि राहु के अशुभ होने पर सूप, खड्ग, सोने का सर्प, सात अन्न व फल, पेठा, तिल, चावल, नमक, कस्तूरी, सरसों, नारियल, जूता, गोमेद, शय्या, शीशा, काले धान्य व कपड़ा का दान करने से दोष नष्ट होता है ॥ २३७ ॥

अमृतकुम्भोक्त केतु की दान वस्तु

मेषश्च चित्रवसनं त्वथ माषदाली
वैदूर्यरत्नमपि कर्बुरकम्बलश्च ।
कार्पासदाडिमफलानि सुगन्धतैल-
मैरण्डकाश्च कथितं त्विति केतुदानम् ॥ २३८ ॥

अमृतकुम्भ ग्रन्थ में कहा है कि केतु के अनिष्ट होने पर बकरा, २–३ रङ्गों से रञ्जित वस्त्र, उड़द की दाल, लहसुनिया रत्न, चितकबरा बकरा, कम्बल, रुई, नारङ्गी फल, सुगन्धित तेल व अण्डी का तेल दान करने से अशुभता नहीं होती है ॥ २३८ ॥

अथ दानकालः—

अब आगे किस समय अनिष्ट ग्रह का दान करना चाहिये इसे बृहस्पति जी के वचन से बताते हैं ।

बृहस्पतिः—

दान समय का ज्ञान

यमभे कुजवारस्थे चतुर्दश्यष्टमीयुते ।
कृष्णे पापोदये कुर्याद्दुष्टगृहविवर्जनम् ॥ २३९ ॥
सूर्यादिकानां यद्दानं जपहोमार्चनादिकम् ।
तेषां वारे प्रकुर्वीत सन्तुष्टास्ते भवन्ति हि ॥ २४० ॥

ऋषि बृहस्पति ने बताया है कि भरणी नक्षत्र, मंगलवार, चौदस या अष्टमी तिथि कृष्ण पक्ष, पाप ग्रह की लग्न में, दूषित ग्रह का विसर्जन करना चाहिये ॥२३९॥

सूर्यादि ग्रहों का जो कि दान, जप, विशेष होम पूजनादि कार्य है उसे उन्हीं के बार में करना चाहिए। अर्थात् सूर्य अनिष्ट हो तो रविवार, चन्द्र हो तो सोमवार, भौम अनिष्ट हो तो मंगलवार में इत्यादि, दानादि करने से वे प्रसन्न होते हैं ॥२४०॥

अथ मुद्रिकाः—

अब आगे गोचरीय अनिष्ट ग्रह शान्ति के लिये मुद्रिका (अँगूठी) प्रत्येक ग्रह के लिये किस-किस रत्न की धारण करना चाहिए, इसे बताते हैं।

श्रीपतिः—

अनिष्ट ग्रहों की अँगूठी

माणिक्यं तरणेः सुजात्यममलं मुक्ताफलं शीतगो-
र्माहेयस्य च विद्रुमं मरकतं सौम्यस्य गारुत्मतम्।
देवेज्यस्य च पुष्पराजमसुराचार्यस्य वज्रं शने-
र्नीलं निर्मलमन्ययोश्च गदिते गोमेदवैदूर्यके ॥ २४१ ॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि सूर्य अशुभ हो तो मानिक की, चन्द्रमा हो तो सुन्दर जाति के निर्मल मोती की, मंगल हो तो मूँगा की, बुध हो तो मरकत मणि या पन्ना की, गुरु हो तो पुखराज की, शुक्र हो तो हीरा की, शनि हो तो निर्मल, नीलम की, राहु हो तो गोमेद की और केतु अशुभ हो तो लहसुनिया की अँगूठी धारण करने से अनिष्ट दूर होता है ॥२४१॥

ऋषि कश्यप ने कहा है 'सूर्यादीनां च सन्तुष्टयै माणिक्यं मौक्तिकं तथा। सुविद्रुमं मारकतं पुष्परागं च वज्रकम्। नीलगोमेदवैदूर्यं धार्यं स्वस्वग्रहक्रमात्' (मु० चि० ४ प्र० १० श्लो० पी० टी०) ॥२४१॥

तथा मुहूर्तचिन्तामणि में भी 'माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि गारुत्मकं पुष्पकवज्र-नीलम्। गोमेदवैदूर्यकमर्कतः स्यू रत्नान्यथो' (४ प्र० १० श्लो०) ॥२४१॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'माणिक्यं तरणेर्प्राच्यां वज्रं भृगोर्विधोः। आग्नेय्यां मौक्तिकं याम्यां प्रवालं मङ्गलस्य च। गोमेदं राक्षसे राहोः पश्चिमे नीलकं शनेः। वायौ वैदूर्यकं केतोरुदीच्यां पुष्पकं गुरोः। गारुत्मकं तथैशान्यां सोमपुत्रस्य तुष्टये' (१३ प्र० ५६-५८ श्लो०) ॥२४१॥

स्मृतिः—

स्मृति के आधार पर अँगूठी

तारताम्रसुवर्णानामर्कषोडशखेन्दुभिः।
त्रिभिस्तु वेष्टिता मुद्रा तीव्रदारिद्र्यनाशिनी ॥ २४२ ॥

स्मृति में कहा है कि १२ भाग चाँदी, सोलह १६ ताँबा और १० भाग सोने से (वेष्टित) निर्मित अंगूठी धारण करने से जल्दी दरिद्रता का नाश होता है ॥२४२॥

अथ त्रिशक्तिमुद्रिका:—

प्रकारान्तर से मुद्रिका धारण

धार्यं तुष्ट्यै विद्रुमं भौमभान्वो रौप्यं शुक्रेन्दोश्च हेमेन्दुजस्य ।
मुक्ता सूरेर्लोहमर्कात्मजस्य लाजावर्तः कीर्तितः शेषयोश्च ॥२४३॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि यदि उक्त रत्न धारण करने में समर्थता न हो तो भौम सूर्य के अनिष्ट होने पर मूँगा, शुक्र चन्द्र हों तो चाँदी, बुध हो तो सोना गुरु हो तो मोती, शनि हो तो लोहा और राहु केतु अनिष्ट कारक हों तो लाजावर्त धारण करना चाहिए ॥२४३॥

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है 'ज्ञस्यमुदे सुवर्णम् । धार्यं लाजावर्तकं राहुकेत्वो रौप्यं शुक्रेन्द्वोश्च युक्ता गुरोस्तु । लौहं मन्दस्यारभान्वोः प्रवालं' (४ प्र० ११ श्लो०) ॥२४३॥

विशेष—पी० धा० टीका में बताया है कि आर्थिक परेशानी हो तो औषधियों की जड धारण करने से अनिष्ट ग्रह का परिहार हो जाता है । यथा–मूले धार्यं त्रिशूल्या सवितरि त्रिगुणक्षीरिकामूलमिन्दो जिह्वाहेर्भूमिपुत्रे रजनिकरसुते वृद्धवारोश्च मूलम् । भार्ङ्गी जीवेऽथ शुक्रे भवति शुभकरं सिंहपुच्छस्य मूलं विच्छोलं चार्कपुत्रे तमसि मलयजं केतुदोषेऽश्वगन्धम्' (मु० चि० ४ प्र० ११ श्लो० पी० टी०) ॥

सारांश—सूर्य में बेल, चन्द्र में क्षीरिणी, भौम में नागजिह्वा, बुध में विधार, गुरु में भार्ङ्गी, शुक्र में सिंहपुच्छ (घोट, चरिवार मध्य देश में प्रसिद्ध) शनि में विच्छोल, राहु में मलय चन्दन और केतु में अश्वगन्ध की जड धारण करना चाहिए ॥२४३॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'शुक्रेन्द्वो रजतं चैव विद्रुमं भानुभौमयोः । ज्ञस्य हेमं शनेर्लोहं गुरोर्मुक्ताफलं नरः । प्रीतये धारयेदङ्गे लाजावर्तं ततोऽन्ययोः' (१३ प्र० ५४–५५ श्लो०) ॥२४३॥

ग्रहों की दक्षिणा

धेनुः शङ्खोऽरुणरुचिवृषः काञ्चनं पीतवस्त्रं
श्वेतश्चाश्वः सुरभिरसिता कृष्णलोहं महाजः ।
सूर्यादीनां मुनिभिरुदिता दक्षिणास्तु ग्रहाणां
स्नानैर्दानैर्हवनबलिभिस्तत्र तुष्यन्ति यस्मात् ॥ २४४ ॥

सूर्य की गाय, चन्द्रमा की शंख, मंगल की लाल बैल, बुध की सुवर्ण, गुरु की पीला वस्त्र, शुक्र की सफेद घोड़ा, शनि की काली गाय, राहु की काला लोहा और केतु की दक्षिणा बड़ा बकरा होता है ऐसा मुनियों ने बताया है । ग्रहों के अनिष्ट होने पर औषधि स्नान, दान, हवन, बलिदान से सब ग्रह प्रसन्न होते हैं ॥२४४॥

अथ ग्रहस्थापनम्—

अब आगे नवग्रह स्थापन विधि को स्मृति रत्नावलि के वाक्य से बताते हैं।

स्मृतिरत्नावल्याम्—

ग्रह स्थापन

मध्ये तु भास्करं विद्याच्छशिनं पूर्वदक्षिणे।
दक्षिणे लोहितं विद्याद्बुधमीशानकोणके ॥ २४५ ॥
गुरुमुत्तरतः स्थाप्यं पूर्वस्यां दिशि भार्गवः।
पश्चिमे तु शनिः स्थाप्यो राहुर्दक्षिणपश्चिमे ॥ २४६ ॥
पश्चिमोत्तरतः केतुर्ग्रहाणां स्थापनं स्मृतम् ॥ २४७ ॥
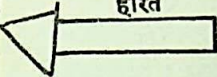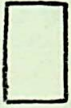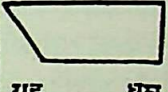
स्मृति रत्नावली में कहा है कि बीच में सूर्य, पूर्व दक्षिण कोण में चन्द्रमा, दक्षिण में मंगल, ईशान कोण में बुध, उत्तर में गुरु, पूर्व में शुक्र, पश्चिम में शनि, दक्षिण पश्चिम में राहु और उत्तर पश्चिम कोण में केतु की स्थापना करना चाहिए ॥२४५॥

पूर्व

उत्तर | दक्षिण

बुध हरित	शुक्र श्वेत	चन्द्र श्वेत
पीत गुरु	सूर्य रक्त	भौम रक्त
केतु चित्र	शनि कृष्ण	राहू धूम्र

पश्चिम

ग्रन्थान्तर में कहा है 'मध्ये स्थाप्यो रवी रक्तः सोमः श्वेतोऽग्निकोणके। दक्षिणेऽङ्गारको रक्तः पीत ईशानके बुधः। बृहस्पतिरुदक् पीतः शुक्रः श्वेतस्तु पूर्वके। पश्चिमे तु शनिः कृष्णो राहुः कालश्च नैर्ऋते। वायव्ये केतवो धूम्र एतच्च ग्रहवर्णकम्' ॥ २४७ ॥

अथ सूर्यादीनां यन्त्राण्यरिष्टनाशनाय धार्याणि—

अब आगे अरिष्ट दूर करने के लिये सूर्यादि ग्रहों के यन्त्रों को धारण किस रीति से करना चाहिये या समझिये कि उनके चक्रों को यन्त्र चिन्तामणि के वाक्य से बताते हैं।

यन्त्रचिन्तामणौ—

सूर्य यन्त्र ज्ञान

रसेन्दुनागा नगबाणरामा युग्माङ्कवेदा नवकोष्ठमध्ये।
विलिख्य धार्यं गदनाशनाय वदन्ति गर्गादिमहामुनीन्द्राः ॥ २४८॥

गर्गादि बड़े ऋषियों का कहना है कि सूर्य के अनिष्ट होने पर उसका दूरीकरण करने के लिये नव कोष्टकों को बनाकर ऊपर के तीन कोष्टकों में ६।१।८ मध्य में ७।५।३ और नीचे वालों में २।६।४ अंक लिखकर धारण करना चाहिए ॥२४८॥

चन्द्र यन्त्र ज्ञान

नगद्विनन्दा गजषट्समुद्रा शिवाक्षदिग्बाण विलिख्य कोष्ठे।
चन्द्रकृतारिष्टविनाशयनाय धार्यं मनुष्यैः शशियन्त्रमीरितम् ॥२४९।

चन्द्रकृत अरिष्ट दूर करने के लिये प्रथम पंक्ति में ७।२।९ मध्य में ८।६।४ नीचे वाली में ३।१०।५ लिख कर धारण करना चाहिए ॥२४६॥

भौम यन्त्र ज्ञान

गजाग्निदिश्याथ नवाद्रिवाणा पातालरुद्रारस संविलेख्या।
भौमस्य यन्त्रं क्रमतो विधार्यमनिष्टनाशं प्रवदन्ति गर्गाः ॥ २५०॥

स्पष्टार्थं रवियन्त्रम् १५			स्पष्टार्थं चन्द्रयन्त्रम् १८			स्पष्टार्थं भौमयन्त्रम् २१		
६	१	८	७	२	९	८	३	१०
७	५	३	८	६	४	९	७	५
२	९	४	३	१०	५	४	११	६

गर्गादि का मुनियों का कहना है कि भौम के दोष दूर करने के लिये प्रथम ३ कोष्ठकों में ८।३।१० बीच में ६।७।५ और नीचे ४।११।६ लिखकर धारण करना चाहिए ॥२५०॥

बुध यन्त्र ज्ञान

नवाब्धिरुद्रा दिङ्नागषष्ठा बाणार्कसप्ता नवकोष्ठयन्त्रे।
विलिख्य धार्यं गदनाशहेतवे वदन्ति यन्त्रं शशिजस्य धीराः ॥२५१॥

पंडितों ने बताया है कि बुध अरिष्ट दूर करने के लिये ऊपर की पंक्ति में ६।४।११ बीच में १०।८।६ नीचे की में ५।१२।७ लिखकर पहिनना चाहिए ॥२५१॥

गुरु यन्त्र ज्ञान

दिग्बाणसूर्या शिवनन्दसप्ता षड्विश्वनागाः क्रमतोऽङ्ककोष्ठे ।
विलिख्य धार्यं गुरुयन्त्रमीरितं रुजाविनाशाय वदन्ति तद्वुधाः ॥२५२॥

विद्वानों का कहना है कि गुरु के दोष दूर करने के लिये ऊपर की पंक्ति में १०।५।१२ बीच में ११।९।७ नीचे में ६।१३।८ लिखकर धारण करना चाहिये ॥२५२॥

शुक्र यन्त्र ज्ञान

रुद्राङ्कविश्वा रविदिग्गजाख्या नगामनुश्चाङ्कक्रमाद्विलेख्या ।
भृगोः कृतारिष्टनिवारणाय धार्यं हि यन्त्रं मुनिना प्रकीर्तितम् ॥ २५३ ॥

शुक्र कृत अरिष्ट नाश के लिये पहली पंक्ति में ११।६।१३ बीच में १२।१०।८ नीचे में ७।१४।९ अंक लिख कर धारण करने से दोष दूर हो जाता है ॥२५३॥

स्पष्टार्थं वुधयन्त्रम् २४			स्पष्टार्थं गुरुयन्त्रम् २७			स्पष्टार्थं शुक्रयन्त्रम् ३०		
९	४	११	१०	५	१२	११	६	१३
१०	८	६	११	९	७	१२	१०	८
५	१२	७	६	१३	८	७	१४	९

शनि यन्त्र ज्ञान

अर्काद्रिमन्वास्मररुद्रअङ्कानागाख्य तिथ्या दश मन्दयन्त्रम्
विलिख्य भूर्जोपरिधार्यंविद्वच्छनेः कृतारिष्टनिवारणाय ॥ २५४ ॥

शनि कृत उपद्रवादि शमन के लिए पहली पंक्ति में १२।७।१४ बीच में १३।११।९ नीचे की में ८।१५।१० भोजपत्र पर लिखकर धारण करने से दोष दूर भाग जाता है ॥२५४॥

राहु यन्त्र ज्ञान

विश्वाष्टतिथ्या मनुसूर्यदिश्या खगामहीन्द्रैकदशाङ्ककोष्ठे ।
विलिख्य यन्त्रं सततं विधार्यं राहोः कृतारिष्टनिवारणाय ॥ २५५ ॥

विद्वानों का कहना है कि राहु की अरिष्टता शान्ति के लिये पहली पंक्ति में १३।८।१५ बीच में १४।१२।१० और नीचे की में ९।१६।११ लिखकर पहिनने से दोष दूर भाग जाता है ॥ २५५ ॥

केतु यन्त्र ज्ञान

मनुखेचरभूपातिथि विश्व शिवा दिग्सप्तादशसूर्यमिता ।
क्रमतो विलिखेन्नवकोष्ठमिते परिधार्यं नरादुःखनाशकराः ॥ २५६ ॥

केतु के लिये पहली पंक्ति में १४।९।१६ बीच में १५।१३।११ और नीचे की पंक्ति में १०।१७।११ लिखकर धारण करने से अरिष्ट दूर होता है ॥२५६॥

स्पष्टार्थं शनियन्त्रम् ३३			स्पष्टार्थं राहुयन्त्रम् ३६			स्पष्टार्थं केतोर्यन्त्रम् ३९		
१२	७	१४	१३	८	१५	१४	९	१६
१३	११	९	१४	१२	१०	१५	१३	११
८	१५	१०	९	१६	११	१०	१७	१२

अब आगे ग्रह दोष निवृत्ति के उनके वैदिक मन्त्रों को बताते हैं।

ग्रहाणां मन्त्राः—

तथा ग्रह दोषनिवारणाय वैदिकमन्त्रैर्जपेत्।
संहिता यजुर्वेदे आकृष्णेनेति रविमन्त्रम्[1]।
इमं देवा असपन इति चन्द्रमन्त्रम्[2]।
अग्निर्मूर्द्धादिवेति भौममन्त्रम्[3]।
उद्बुध्यस्वाग्ने इत्यादि बुधमन्त्रम्[4]।
बृहस्पते अतियदर्यो इत्यादि बृहस्पतिमन्त्रम्[5]।
अन्नात्परिस्नुतो इत्यादि भृगुमन्त्रम्[6]।
शन्नोदेवीति शनिमन्त्रम्[7]।
कयानश्चित्रेति राहुमन्त्रम्[8]।
केतुं कृण्वन्नेति केतुमन्त्रम्[9]।

---

१. ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यंश्च हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्'।

२. ॐ इमन्दिवाऽअसपत्न ᳕ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठयाय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एषवोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां ᳕ राजा स्वाहा'।

३. ॐ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्। अपा ᳕ रेताᳲसि जिन्वति।

४. ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते स ᳕ सृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत।

५. ॐ बृहस्पतेऽअतियदर्योऽअर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्र ᳕।

६. ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसः ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान ᳕ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु।

७. ॐ शन्नो देवीरभीष्टयऽआपो भवन्तु पीतये। शंय्योरभिस्रवन्तु नः'।

८. कयानश्चित्रऽआभुव दूतीसदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता।

९. ॐ केतुं कृण्वन्न केतवे पेशो मर्य्याऽअपेशसे। समुषद्भिरजायथाः'।

अथ जपस्थानमाह

जप स्थान ज्ञान

शुचिस्थाने स्वगृहे जलाशये देवालये वा शूचिर्भूत्वा विधिवज्जपं कुर्यात्कारयेद्वा।

पवित्र स्थान में अपने घर में, जलाशय के समीप वा देवता के मन्दिर में पवित्र होकर विधि पूर्वक जप करने से या कराने से ग्रह पीड़ा दूर हो जाती है, ऐसा स्मृति ग्रन्थ में बताया है।

तदुक्तं स्मृतौ—

स्मृति के आधार पर जप स्थान

गृहे त्वेकगुणं जाप्यं नद्यां तु द्विगुणं स्मृतम्।
गवां गोष्ठे दशगुणं अग्न्यागारे शताधिकम्॥ २५७॥
तीर्थादिषु सहस्रं स्यादनन्तं विष्णुसन्निधौ॥ इति॥ २५८॥

स्मृतिग्रन्थ में कहा है कि घर में एक गुना, नदी में दुगुना, गायों के खिरक में दस गुना, अग्नि घर में सौगुने से ज्यादा, तीर्थ में हजार गुना और विष्णु भगवान् की मूर्ति के पास बैठकर जप करने से अनन्त फल होता है॥ २५७–२५८॥

ग्रहाणां समिधम्।

तदनन्तरं दशांशहोमः समिधतः कर्तव्यः।

इसके बाद जप का दशांश हवन समिधाओं से करना चाहिये। अर्थात् जिस ग्रह का जितनी संख्या में जप हुआ हो उसका दशवाँ हिस्सा करके उसके तुल्य ग्रह की समिधा से होम करना चाहिए।

श्रीपतिः—

श्रीपति के आधार पर ग्रहों की समिधा

अर्कादृब्राम्हमहीरुहात्खदिरतोऽपामार्गतः पिप्पला-
दार्द्रौदुम्बरशाखिनोप्यथ शमी दूर्वाकुशेभ्यः क्रमात्।
सूर्यादिग्रहमण्डलस्य समिधो होमाय कार्या वुधैः
सुस्निग्धाः सरलास्त्वचावनिमिताः प्रादेशमात्रा स्थिताः॥ २५९॥

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि सूर्य की मदार की लकड़ी, चन्द्रमा की पलाश; मंगल की खैर, बुध की चिचिढा, गुरु की पीपल, शुक्र की गूलर, शनि की शमी (छोंकरा), राहु की दूर्वा और केतु की कुशा की समिधा, सरल, स्निग्धडाल सहित प्रादेश मात्र होम के लिये विद्वान् को ग्रहण करना चाहिये॥ २५६॥

ग्रन्थान्तर में कहा है 'अर्कः पलाशः खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पलः। उदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात्'॥ २५६॥

ज्योतिष की महत्ता

ज्योतिश्शास्त्राज्ज्ञायते कालमानं तस्माद्यज्ञस्तेन तुष्यन्ति देवाः।
तुष्टा देवा साधयन्तीप्सितार्थं तस्मात्तज्ज्ञा यत्नतः पूजनीयाः॥ २६०॥

काल की इयत्ता या मिति ज्योतिष शास्त्र से जानी जाती है और यज्ञ किसी समय विशेष में होता है एवं यज्ञ से देवगण प्रसन्न होते हैं। उनकी प्रसन्नता से अभीष्ट की सिद्धि होती है। अतः उसके जानने वाले की यत्न से पूजा करनी चाहिए॥२६०॥

बृहस्पतिः—

बृहस्पति के आधार पर

यज्ञाशक्तौ च सर्वेषां ग्रहाणां स्वस्वमन्त्रकैः।
जपेद्वा विप्रमुख्यैस्तु दत्त्वाम्नायोक्तदक्षिणाम्॥ २६१॥
अशक्तौ तु जपाद्यादि दानरूपेण दक्षिणाम्।
तदभावे तदा मन्त्रैस्तर्पयेद्वा पृथक् पृथक्॥ २६२॥

गुरु बृहस्पति ने बताया है कि यदि यज्ञ करने की सामर्थ्य न हो तो उनके मन्त्रों का तत्संख्या समान जप और जप की भी शक्ति न हो तो दान रूप में द्रव्य तथा दक्षिणा देने का भी अभाव हो तो तर्पण करना चाहिए॥ २६१–२६२॥

श्रीपतिः—

सांवत्सरे वेदविदां गणेषु सर्वत्र दानग्रहणे प्रदिष्टः।

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि वेद वेदाङ्ग वेत्ताओं के समुदाय में सब जगह दान ग्रहण में ज्योतिषी श्रेष्ठ होता है॥

दानविशेषः—

तत्रापि दानेषु नवग्रहाणामतिप्रशस्तो न च कश्चिदन्यः॥ २६३॥

दानो में भी विशेष प्रशस्त दान नहीं अपि तु कुछ अन्य दान करना चाहिए॥२६३॥

ग्रहों के दान

[1]भानुस्ताम्बूलदानादपहरति नृणां वैकृतं वासरोक्तं
सोमः श्रीखण्डदानादवनितनुभवो भोजनात्पुष्पदानात्।
सौम्यः शक्रस्य मन्त्री हरिहरनमनाद्भार्गवः शुक्लवस्त्रै-
स्तैलस्नानात्प्रभाते दिनकरतनयो ब्रह्मनत्यापरौ च॥२६४॥

सूर्य अशुभ हो तो पान, सोम हो तो श्रीखण्ड (चन्दन) भौम हो तो भोजन कराना, बुध हो तो फूल, गुरु हो तो हरिहर को नमन, शुक्र हो तो सफेद वस्त्र, शनि हो तो तेल के दान से और राहु केतु अनिष्ट कारक हों तो ब्राह्मण या ब्रह्म को नमस्कार करने से गोचरीय अनिष्ट समाप्त हो जाता है।॥ २६४॥

---

१. मु. चि. ४ प्र० १६ श्लो० पी. टी. तथा ज्यो. सा. १०१ पृ०।

अब आगे किस ग्रह के दोष को कौन ग्रह नष्ट करता है, इसे बताते हैं।

प्रत्येकग्रहाणां दोषहरणम्

तदन्यः—
राहुदोषं बुधो हन्यादुभयोस्तु शनैश्चरः।
त्रयाणां भूमिजो हन्ति चतुर्णां दानवार्चितः॥ २६५॥
पञ्चानां देवमन्त्री च षण्णां दोषं तु चन्द्रमाः।
सप्तदोषं रविर्हन्याद्विशेषादुत्तरायणे॥ २६६॥

अन्यत्र कहा है कि राहु के दोष को बुध और दोनों दोष को शनि बली होने पर, तीनों के दोष को मंगल, चारों के दोष को शुक्र, पाचों के दोष को गुरु, छहों के दोष चन्द्रमा और सातों के दोष को विशेष कर उत्तरायन में सूर्य दूर करता है॥२६५-६६॥

अब आगे ग्रहजन्य अरिष्ट को भगाने के लिए विशेष उपाय बताते हैं।

ग्रहकृतारिष्टनिवारणाय विशेषोपायः

विशेष उपाय

[१]देवब्राह्मणवन्दनाद्गुरुवचःसंपादनात्प्रत्यहं
साधूनामभिभाषणाच्छ्रुतिरवश्रेयस्कथाकर्णनात्।
होमादध्वरदर्शनाच्छुचिमनोभावाज्जपाद्दानतो
नो कुर्वन्ति कदाचिदेव पुरुषस्यैवं ग्रहापीडनम्॥ २६७॥

देवता व ब्राह्मणों की वन्दना से, प्रतिदिन गुरु आज्ञा पालन करने से, सज्जनों के भाषण से, वेद व कथा सुनने से, होम से, यज्ञ दर्शन से, पवित्र मन की भावना से, जप से और दान से ग्रहोत्थ आपत्ति विलीन हो जाती हैं॥ २६७॥

मुहूर्तगणपति में कहा है—'पालनाद्गुरुवाक्यानां देवब्राह्मणवन्दनात्। वेदादिश्रवणाद्वापि साधूनामपि भाषणात्॥ मनः शुद्धेर्जपाद्दानाद्धोमादध्वरदर्शनात्। नो कुर्वन्ति ग्रहाः पीडां दुष्टस्थानस्थिता अपि' (१३ प्र० ५९-६० श्लो०)॥ २६७॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनविरचिते सङ्ग्रहे वृहद्दैवज्ञरञ्जने द्वात्रिंशं गोचरप्रकरणं समाप्तम्॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रंथ का बत्तीसवां गोचर प्रकरण समाप्त हुआ॥ ३२॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भावताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृताद्विवन्हिमितगोचरप्रकरणस्य श्रीधरी भाषा समाप्ता॥ ३२॥

---

१. ज्यो. सा. १०१ पृ०।

अथ त्रयस्त्रिंशं ग्रहणप्रकरणं प्रारभ्यते

अब आगे तैंतीसवें ग्रहण प्रकरण में विविध प्रकार से ग्रहण को बताते हैं।

तन्निर्णयलक्षणम्—

विशेष ग्रहण निर्णय लक्षण

द्विर्द्वादशेऽपि यामित्रे समराशिगतेऽथवा।
तथा षट्काष्टकराहुग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः ॥ १ ॥

सूर्य या चन्द्रमा से दूसरे, बारहवें, सातवें, छटे या आठवें वा तुल्य राशि में राहु के रहने पर पादवेध का विचार करके ग्रहण का संभवासंभव जानना चाहिए ॥ १ ॥

अस्यार्थः—

सूर्याच्चन्द्राद्वा द्विर्द्वादशे यामित्रे सप्तमषष्ठाष्टके वा तुल्यराशौ वा राहुर्भवति तदा पादवेधं विचार्य ग्रहणसंभवासंभवौ बोद्धव्यौ। यदा पादचतुष्टयान्तरितो राहुर्भवति तदा चन्द्रस्य स्वल्पं ग्रहणं भवति। सूर्यस्य न भवति। पादत्रयाच्चन्द्रस्याधिकं सूर्यस्य स्वल्पं ग्रहणं भवति पादद्वयाच्चन्द्रस्य सर्वग्रासः। सूर्यस्यार्द्धाधिकखण्डग्रहणमिति ज्ञातव्यम्। एकस्मिन्पादे सूर्यस्य सर्वग्रासो बोद्धव्यः। चन्द्रस्य खग्रासः।

जब कि राहु चार पाद के अन्तर पर होता है तो चन्द्र का अल्प और सूर्य का ग्रहण नहीं होता है। ३ पाद के अन्तर पर होने से चन्द्रमा का अधिक और सूर्य का अल्प, दो पाद के अन्तर पर राहु के होने से चन्द्र का सर्वग्रास व सूर्य का आधे से ज्यादा और एक ही पाद में राहु के होने पर सूर्य का सर्वग्रास तथा चन्द्रमा का खग्रास ग्रहण होता है

ज्योतिःसारे— .

ज्योतिः सार के आधार पर चन्द्र सूर्य ग्रहण प्रवृत्ति

[1]भानोः पञ्चदशे ऋक्षे चन्द्रमा यदि तिष्ठति।
पौर्णमास्यां निशाशेषे चन्द्रग्रहणमादिशेत् ॥ २ ॥

ज्योतिःसार में बताया है कि सूर्य के नक्षत्र से पन्द्रहवें नक्षत्र में जब चन्द्रमा होता है तो पूर्णिमा के दिन अल्प रात बचने पर चन्द्रमा का ग्रहण होता है ॥ २ ॥

---

१. ४६ पृ०।

प्रकारान्तर

[1]शिवोनं ग्रहनक्षत्रात्षोडशं यदि सूर्यभम् ।
अमावास्या दिवाशेषे सूर्यग्रहणमादिशेत् ॥ ३ ॥

चन्द्र नक्षत्र से सूर्य नक्षत्र तक गिनकर ११ घटाने पर सोलहवाँ सूर्य नक्षत्र हो तो अमावस्या में थोड़ा दिन बचने पर सूर्य का ग्रहण होता है ॥ ३ ॥

विश्वरूपे—

ग्रहण पुण्य समय

[2]दिवा चन्द्रग्रहो रात्रौ सूर्यपर्वं न पुण्यजम् ।
सन्धिस्थं पुण्यदं ज्ञेयं यावद्दर्शनगोचरम् ॥ ४ ॥

विश्वरूप ने कहा है कि दिन में चन्द्रमा का और रात में सूर्य का ग्रहण होने पर पुण्य प्रद नहीं होता है । दिन रात की सन्धि में जब तक यह दीखता है जब तक पुण्य होता है ॥ ४ ॥

तदुक्तं निगमे—

निगम के आधार पर विशेष

[3]सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहो यदि ।
तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचित् ॥ ५ ॥

निगम में कहा है कि रात में सूर्य और दिन में चन्द्रमा का ग्रहण हो तो उसमें स्नान तथा दान कभी नहीं करना चाहिए ॥ ५ ॥

[4]तादृशे ग्रहणे दृष्टेऽपि दौस्थ्यं नास्तीत्यपि सूच्यते ।
मेघाच्छन्ने ग्रहे स्नानाद्यधिकारो न विद्यते ।
इति यत्कीर्तितं तच्च निर्मूलत्वादुपेक्षितम् ॥ ६ ॥

उक्त प्रकार के ग्रहण में अर्थात् रात में सूर्य व दिन में चन्द्र ग्रहण अनिष्टकारी होने पर भी दूषित फल की प्राप्ति नहीं होती है । तथा बादलों से ढके हुए ग्रहण में स्नानादि का अधिकार नहीं होता है । ऐसा कथन निर्मूल होने से त्यागने योग्य है ॥६॥

मेघाछन्न में स्नानादि

[5]यथा वृक्षादिभिरछन्ने स्नानाद्यं क्रियते ग्रहे ।
घनैराच्छादिते तद्वत् स्नानाद्यं नैव बाधकम् ॥ ७ ॥

जिस प्रकार वृक्ष की ओट में होने पर ग्रहण में स्नानादि होता है उसी प्रकार बादलों के ढकने पर भी स्नान, दानादि विरोध नहीं करते हैं ॥ ७ ॥

---

१. ज्यो. सा. ४६ पृ० ।
२. मु. चि. ४ प्र० ६ श्लो० पी.टी. तथा ज्यो. नि. ८४ पृ० ।
३. मु. चि. ४ प्र० ६ श्लो० पी.टी. ।
४. ज्यो. नि. ८४ पृ० ।
५. ज्यो. नि. ८४ पृ० ।

[1]स्पर्शमुक्तिनिमित्तं तु स्नानं च गणितागमः।
काले कुर्वीत सूर्येन्द्वोर्मेघच्छादितयोर्ग्रहे ॥ ८ ॥

स्पर्श व मोक्ष निमित्तक स्नान तो गणित से प्राप्त समय में मेघ से ढके हुए सूर्य या चन्द्र में करना चाहिए ॥ ८ ॥

मोक्ष स्नान

[2]यावन्मुक्तं रवेर्बिम्बं विधोर्वापि न दृश्यते।
तावन्न क्रियते स्नानं मौक्तिकं मनुरब्रवीत् ॥ ९ ॥

ऋषि मनु ने बताया है कि जब तक सूर्य, चन्द्र के बिम्ब अपने स्वरूप में न आ जांय तब तक मोक्ष जन्य स्नान नहीं करना चाहिए ॥ ९ ॥

ग्रस्तोदित ग्रस्तास्त में

[3]ग्रस्तोदिते ग्रहे ग्रस्तं दृष्ट्वा स्नानं समाचरेत्।
ग्रस्तास्ते मौक्तिकस्नानं मुक्तं दृष्ट्वा रविं विधुम् ॥ १० ॥

ग्रस्तोदित ग्रहण में ग्रस्त को देखकर स्नान और ग्रस्तास्त बिम्ब (सूर्य, चन्द्र) के होने पर बिम्ब का अवलोकन करके स्नान करना चाहिए ॥ १० ॥

स्नान जपादि क्रिया

[4]स्पर्शे स्नानं जपं कुर्यान्मध्ये होमं सुरार्चनम्।
मुच्यमाने सदा दानं विमुक्तौ स्नानमाचरेत् ॥ ११ ॥

जब ग्रहण का प्रारम्भ हो तो स्नान जप, मध्यकाल में होम (हवन) देव पूजा और ग्रहण का मोक्ष समीप में होने पर दान तथा पूर्ण मोक्ष होने पर स्नान करना चाहिए ॥ ११ ॥

गर्गोऽपि—

गर्ग के आधार पर भी

[5]स्पर्शे स्नानं भवेद्धोमो ग्रस्तयोर्मुच्यमानयोः।
दानं स्यान्मुक्तये स्नानं ग्रहे चन्द्रार्कयोर्विधिः ॥ १२ ॥

गर्गाचार्य जी ने बताया है कि स्पर्श काल में स्नान, ग्रसित होने पर हवन, मोक्ष की तरफ होने पर दान और मोक्ष होने पर स्नान करना चाहिए ॥ १२ ॥

---

१. ज्यो. नि. ८४ पृ०।
२. ज्यो. नि. ८४ पृ०।
३. ज्यो. नि. ८४ पृ०।
४. ज्यो. नि. ८७ पृ० १ श्लो०।
५. ज्यो० नि० ८५ पृ०।

स्नान न करने पर अस्पृश्य

[1]मुक्तौ यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके।
स सूतकी भवेत्तावद्यावत्स्यादपरो ग्रहः॥ १३॥

जो कि पुरुष ग्रहण का मोक्ष होने पर स्नान नहीं करता है वह जब तक दूसरा ग्रहण नहीं आता है तब तक सूतकी (अस्पृश्य) होता है॥ १३॥

ग्रहणे भोजननिषेधः—

ग्रहण में भोजन का निषेध

चन्द्रग्रहे त्रियामार्वाक् सूर्ये यामचतुष्टयम्।
अन्नपानादिकं वर्ज्यं बालवृद्धातुरैर्विना॥ १४॥

चन्द्र ग्रहण में ३ याम (प्रहर) पूर्व और सूर्य ग्रहण में ४ चार प्रहर पहिले से अन्नादि का ग्रहण, बाल, बूढ़े व रोगियों को छोड़ कर नहीं करना चाहिए॥ १४॥

[2]सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात्पूर्वे यामचतुष्टयम्।
चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् वृद्धबालातुरैर्विना॥ १५॥

सूर्य ग्रहण के समय में चार प्रहर पहिले और चन्द्र ग्रहण में ग्रहण के समय से ३ तीन प्रहर पहिले से बालक, बुढ़े व रोगी को छोड़कर भोजन नहीं करना चाहिए॥ १५॥

विवाहे च तथा श्राद्धे राहुग्रस्ते निशाकरे।
महानिशं च भोक्तव्यमन्यथा पतितो भवेत्॥ १६॥

विवाह, श्राद्ध, चन्द्र ग्रहण के अवसर पर अधिक रात्रि में भी खाना चाहिए। अन्य समय अधिक रात्रि बीतने पर भोजन नहीं करना चाहिए। करने से पतित होता है॥ १६॥

सेवासूर्योदये—

सेवासूर्योदय के आधार पर

[3]नाद्याच्चतुस्त्रीन्प्राक् यामान् रवीन्दुग्रहयामयोः।
ग्रहकाले च नाश्नीयात् स्नात्वाश्नीयाच्च मुक्तयोः॥ १७॥

सेवासूर्योदय में कहा है कि सूर्य ग्रहण में ४ प्रहर पूर्व और चन्द्र ग्रहण में ३ प्रहर पहिले भोजन का त्याग करना चाहिए। और मोक्ष होने पर स्नान करके भोजन करना चाहिए॥ १७॥

---

१. ज्यो० नि० ८५ पृ०।
२. ज्यो० नि० ८५ पृ०।
३. ज्यो० नि० ८५ पृ०।

[1]ग्रस्तास्तेऽन्यदिने दृष्ट्वाऽश्नीयाद्वृद्धातुरं विना।
वेधो वृद्धातुरस्त्र्यर्भपुत्रिणां यामयुग्मकम् ।। १८ ।।

यदि ग्रस्तास्त ग्रहण हो तो दूसरे दिन देखकर वृद्ध व रोगी को छोड़कर भोजन करना चाहिए। वृद्ध, रोगी, स्त्री, अल्प अवस्था पुत्र वाली के लिए २ प्रहर तक ही वेध होता है ।। १८ ।।

[2]न सूतकादि दोषोऽत्र दानहोमजपादिषु।
ग्रस्ते स्नायादुदक्यापि तीर्थादुद्धृतवारिणा ।। १९ ।।

दान, जप. होम के लिए ग्रहण में सूतक नहीं बाधक होता है। स्पर्श होने पर ऋतुमती को भी तीर्थ से निकले हुए पानी से स्नान करना चाहिए ।। १६ ।।

मन्वर्थमुक्तावल्याम्—

मन्वर्थ मुक्तावली के आधार पर

[3]अन्नं पक्वमिह त्याज्यं स्नानं सवसनं ग्रहे।
वारितक्रारनालादि तिलैर्दर्भैर्न दुष्यते ।। २० ।।

मन्वर्थ मुक्तावली में बताया है कि पका हुआ अन्न का त्याग ग्रहण में, वस्त्रों के साथ स्नान, पानी, मठा, काञ्जी आदि में तिल व कुश छोड़ने से दूषित नहीं होते हैं ।। २० ।।

धर्मदर्पणे—

धर्मदर्पण के आधार पर

[4]आरनालं पयस्तक्रं दधिस्नेहाज्यपाचितम्।
मणिकस्थोदकं चैव न दुष्येद्राहुसूतके ।। २१ ।।

धर्मदर्पण में कहा है कि कांजी, दूध, मठा, दही, तेल घी से पका हुआ, मणिस्थ जल, राहु के सूतक में दूषित नहीं होता है ।। २१ ।।

[5]सूतकेऽपि च सम्प्राप्ते यदि स्याद्राहुसूतकम्।
न सूतकं भवेत्तावद्यावद्राहुर्न मुञ्चति ।। २२ ।।

सूतक प्राप्ति में यदि राहु सूतक है तो जब तक राहु, सूर्य या चन्द्र को छोड़ता नहीं है तब तक सूतक नहीं होता है ।। २२ ।।

---

१. ज्यो० नि० ८५ पृ०।
२. ज्यो० नि० ८५ पृ०।
३. ज्यो० नि० ८५ पृ०।
४. ज्यो० नि० ८५ पृ०।
५. ज्यो० नि० ८५ पृ०।

ग्रहणदानप्रशंसा—

दानखण्डे—

ग्रहण में दान की प्रशंसा दानखण्डोक्त

[१]सर्वं भूमिसमं दानं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः।
सर्वं गङ्गासमं तोयं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ २३ ॥

दान खण्ड में कहा है कि ग्रहण में समस्त दान भूमि दान तुल्य, समस्त ब्राह्मण ब्रह्म के समान और सूर्य चन्द्र के ग्रहण में समस्त जल गंगा जल के बराबर होता है ॥ २३ ॥

विशेष

[२]इन्दोर्लक्षगुणं पुण्यं रवेर्दशगुणं तु तत्।
गङ्गादि तीर्थसम्प्राप्तौ प्रोक्तं कोटिगुणं भवेत् ॥ २४ ॥

चन्द्रमा का लाख गुना और सूर्य का १० लाख गुना एवं गंगादि की प्राप्ति यदि इसमें हो तो करोड़ गुना पुण्य होता है ॥ २४ ॥

ग्रहण में उत्तम स्नान स्थान

[३]गङ्गायां पुण्यतीर्थे वा ग्रहणे स्नानमुत्तमम्।
कूपे वाप्यां तडागे वा तथैवोद्धृतवारिणा ॥ २५ ॥

ग्रहण में गंगा या पुण्य तीर्थ में स्नान उत्तम वा कुआ वापी तालाव अथवा हाथ से निकाले हुए जल से होता है ॥ २५ ॥

शङ्खः—

शङ्ख के आधार पर

वापीकूपतडागेषु गिरिप्रस्रवणेषु च।
नद्यां नदे देवखाते सरसीषूद्धृताम्बुषु ॥ २६ ॥

आचार्य शङ्ख ने बताया है कि वापी, कुआ, तालाब पर्वत के झरना, नदी, समुद्र, देव तालाब और तालाब आदि से लाये हुए जल से ग्रहण में स्नान करना चाहिए ॥ २६ ॥

मार्कण्डेयः—

मार्कण्डेय के आधार पर

भूमिस्थमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम्।
ततो हि सारसं पुण्यं ततः पुण्यं नदीजलम् ॥ २७ ॥

---

१. ज्यो० नि० ९१ पृ०।
२. ज्यो० नि० ९१ पृ०।
३. ज्यो० नि० ९१ पृ०।

तीर्थतोयं ततः पुण्यं महानद्यां च यामुनम् ।
ततस्ततोऽपि गगाम्बु पुण्यं गङ्गाब्धिसङ्गमम् ॥ २८ ॥

ऋषि मार्कण्डेय ने बताया है कि आनीत से भूमिस्थ, भूमिस्थ से झरना, झरना से सरोवर, सरोवर से नदी का जल, नदी से तीर्थ जल, तीर्थ जल से यमुना जल, यमुना के जल से गंगा और गंगा जल से समुद्र संगम का जल विशेष पुण्य देने वाला होता है ॥ २७–२८ ॥

मत्स्यपुराणे—

मत्स्यपुराण के आधार पर

दशजन्मकृतं पापं गङ्गासागरसङ्गमे ।
जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं समुपार्जितम् ॥ २९ ॥
तत्तन्नश्येत्सन्निहत्यां राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ३० ॥

मत्स्यपुराण में बताया है कि गंगा समुद्र के संगम में स्नान से दस जन्म का किया हुआ पाप और हजारों जन्म में समुपार्जित पाप सूर्य चन्द्र ग्रहण में गंगा सागर संगम में स्नान करने से नष्ट होते हैं ॥ २९–३० ॥

व्यासः—

व्यास जी आधार पर

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव योऽवगाहेत जाह्नवीम् ।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु किमर्थमटते महीम् ॥ ३१ ॥

व्यास जी ने बताया है कि जो मनुष्य सूर्य चन्द्र ग्रहण में गंगा स्नान करता है वह समस्त तीर्थ स्नान का फल प्राप्त करता है फिर किस लिये भूमि पर घूमता है ॥ ३१ ॥

मत्स्यपुराणे—

मत्स्यपुराण के आधार पर

गङ्गा कनखले पुण्या प्रयागं पुष्करं गयाम् ।
कुरुक्षेत्रं तथा पुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥ ३२ ॥

मत्स्यपुराण में वर्णित है कि कनखल (हरिद्वार) में गंगा पुण्य दातृ और प्रयाग पुष्कर, गया, कुरुक्षेत्र में ग्रहण स्नान पुण्यदायक होता है ॥ ३२ ॥

व्याघ्रः—

व्याघ्र के आधार पर गर्म जल निषेध

रविवारेऽर्कसङ्क्रान्तौ ग्रहणेषु शशिक्षये ।
व्रतेषु चैव षष्ठीषु न स्नायादुष्णवारिणा ॥ ३३ ॥

आचार्य व्याघ्र ने बताया है कि सूर्यवार, सूर्य संक्रान्ति, ग्रहण, अमावास्या और छठ आदि व्रतों में गरम जल से स्नान नहीं करना चाहिए ॥ ३३ ॥

निबन्धसारेऽपि—

निबन्धसार में भी गरम जल स्नान निषेध

दर्शे पातेऽर्कसङ्क्रान्तौ उपाकर्मण्युपप्लवे।
न स्नायादुष्णतोयेन नास्पृशं स्पर्शयेत्तथा॥ ३४॥

निबन्ध सार में कहा है कि अमावस्या, पात, सूर्य संक्रान्ति, उपाकर्म, उपप्लव (ग्रहण) में गरम जल से स्नान नहीं करना और अस्पृश्य का स्पर्श नहीं करना चाहिए॥ ३४॥

पीडित के लिये गरम जल से स्नान का विधान

आदित्यकिरणैः पूतं पुनः पूतं तु वह्निना।
अतो व्याध्यातुरः स्नायात् ग्रहणेऽप्युष्णवारिणा॥ ३५॥

प्रथम सूर्य की किरणों से पवित्र फिर आंच से पवित्र जल से, रोग पीडित व्यक्ति को ग्रहण में स्नान करना चाहिए॥ ३५॥

शीतमुष्णोदकात्पुण्यं अपारक्यं परोदकात्।
उष्णोदकेऽपि च स्नायात् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥ ३६॥
उष्णोदकस्नानं आतुरविषयम्।

वैसे गरम जल से ठंडा जल पुण्य दायी होता है जैसे नदी के जल से समुद्र का जल फिर भी ग्रहण में गरम जल से स्नान करना चाहिए॥ ३६॥

यहाँ गरम जल का विधान रोगी या वृद्ध के लिये किया गया है॥

हारीतस्मृतौ—

हारीतस्मृति के आधार पर

[1]सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने।
सचैलं तु भवेत् स्नानं शृतमन्नं विवर्जयेत्॥ ३७॥

हारीत स्मृति में बताया है कि समस्त वर्णों को ही राहु के दर्शन में सूतक होने से वस्त्रों के साथ स्नान करने पर तथा पके हुए अन्न का त्याग करने से ही पुण्य होता है॥ ३७॥

जाबालः—

जाबाल ऋषि के आधार पर विशेष

चक्षुरोगी शिरोरोगी कर्णरोगी कफात्मकः।
कण्ठस्नानं प्रकुर्वीत शिरस्नानं समं हि तत्॥ ३८॥

जाबाल ऋषि ने बताया है कि आँख का मरीज, मस्तक, कान, कफ का रोगी कंठ तक ही स्नान करने पर मस्तक का फल प्राप्त करता है॥ ३८॥

---

१. ज्यो० नि० ९१ पृ० १ श्लो०।

[1]षट्त्रिशन्मते—

षट्त्रिशत् मत से

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने।
स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत श्रृतमन्नं विवर्जयेत् ॥ ३९ ॥

षट्त्रिशत् मत में कहा है कि सब वर्णों को राहु के दर्शन में सूतक होता है अतः पके हुए अन्न का त्याग कर स्नान करने पर ही कार्य करना चाहिए ॥ ३६ ॥

[2]स्मृतिरत्नावल्याम्—

स्मृतिरत्नावली के आधार पर

अन्त्येष्ट्यां शवचाण्डालस्पर्शने खरकाकयोः।
राहुग्रस्ते विमुक्ते वा कुर्यात्स्नानममन्त्रकम् ॥ ४० ॥

स्मृति रत्नावली में कहा है कि अन्त्येष्टि (शवयात्रा) वा शव चांडाल स्पर्श, गदहा, कौआ के स्पर्श, राहु से ग्रसित और विमुक्त में विना मन्त्र के स्नान करना चाहिए ॥ ४० ॥

जाबालिः—

जाबालि जी के आधार पर

[3]सङ्क्रान्तौ पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कलाः।
चन्द्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरः ॥ ४१ ॥

ऋषि जाबालि ने बताया है कि संक्रान्ति में तो १६, १६ घड़ी पूर्वापर पुण्य और ग्रहण में तो जब तक प्रत्यक्ष उपलब्ध हो तब तक पुण्य होता है ॥ ४१ ॥

वृद्धवसिष्ठः—

वृद्धवसिष्ठ जी के आधार पर

[4]ग्रहणे सङ्क्रमे चैव न स्नायाद्यदि मानवः।
सप्तजन्मनि कुष्ठी स्याद्दुःखभागी न संशयः ॥ ४२ ॥

वृद्ध वसिष्ठ जी ने बताया है कि ग्रहण, संक्रान्ति में जो स्नान नहीं करता है वह सात जन्म तक कोढी व दुःखी निःसंदेह मनुष्य होता है ॥ ४२ ॥

लिङ्गपुराणेऽपि—

लिङ्ग पुराण के आधार पर

[5]चन्द्रसूर्यग्रहे स्नायात्सूतके मृतकेऽपि च।
अस्नायी मृत्युमाप्नोति स्नायी पापं न विन्दति ॥ ४३ ॥

---

१. ज्यो० नि० ९१ पृ०।
२. मु० चिं० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी०।
३. मु० चिं० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी०।
४. मु० चिं० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी०।
५. मु० चिं० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी०।

लिङ्ग पुराण में बताया है कि सूर्य चन्द्र के ग्रहण में और मृतक में भी स्नान करना चाहिए। और जो स्नान नहीं करता वह मृत्यु प्राप्त कर्ता एवं स्नायी पाप नाशक होता है ॥ ४३ ॥

रात में स्नान विधान

ग्रहणोद्वाहसङ्क्रान्तिव्यापत्तिप्रसवेषु च।
स्नानं नैमित्तिकं कार्यं रात्रावपि न दुष्यति ॥ ४४ ॥

ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति, विपत्ति, प्रसव में स्नान नैमित्तिक होता है। अतः रात्रि में भी करने पर दोष नहीं होता है ॥ ४४ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर

पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा सङ्क्रमणे रवेः।
राहोश्च दर्शने कार्यं प्रशस्तं नान्यथा निशि ॥ ४५ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि पुत्र की उत्पत्ति, यज्ञ, सूर्य संक्रान्ति, और सूर्य चन्द्र के ग्रहण में रात में भी स्नान करना चाहिए। इसके विपरीत स्नान वर्जित है ॥ ४५ ॥

शङ्खायनः—

शंखायन के आधार पर

दिवा यदाहृतं तोयं कृत्वा स्वर्णयुतं तु तत्।
रात्रिस्नाने तु सम्प्राप्ते स्नायादनलसन्निधौ ॥ ४६ ॥

ऋषि शंखायन ने बताया है कि दिन में गृहीत सोने से युत जल, रात का स्नान प्राप्त होने पर अग्नि के साक्षी में स्नान उस जल से करना चाहिए ॥ ४६ ॥

पराशरः—

पराशर जी के आधार पर

खलयज्ञे विवाहे तु सङ्क्रान्तौ ग्रहणे तथा।
शर्वर्यां दानमस्त्येव नान्यत्र तु विधीयते ॥ ४७ ॥

ऋषि पराशर जी ने बताया है कि दुष्ट यज्ञ, विवाह, संक्रान्ति, ग्रहण में रात में दान का विधान है। इसके विपरीत में रात्रि में दान का निषेध होता है ॥ ४७ ॥

मरुतो वसवो रुद्राः आदित्याश्चाथ देवताः।
सर्वे सोमेन लीयन्ते तस्माद्दानं तु सङ्ग्रहे ॥ ४८ ॥

मरुत, वसु, रुद्र, सूर्य देवता चन्द्रमा से विलीन होते हैं अतः इनके संग्रह में दान करना चाहिए ॥ ४८ ॥

निबन्धसारे—

निबन्ध सार के आधार पर

[1]आदित्येहनि सङ्क्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान् गृही ॥ ४९ ॥

निबन्ध सार में बताया है कि सूर्यवार, संक्रान्ति, सूर्य चन्द्र ग्रहण में पारण और उपवास पुत्र से युत गृहस्थ को नहीं करना चाहिए ॥ ४६ ॥

अशुचे रजस्वलायाःस्नानम्—

अब आगे अपवित्र रजस्वला के ग्रहण स्नान को बताते हैं ।

ऋतुमती का स्नान

स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला ।
पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥ ५० ॥

जब कि ग्रहण में रजस्वला स्त्री होती है तो नैमित्तिक स्नान प्राप्त होने पर पात्रान्तरित जल से स्नान करके रजस्वला को व्रत का आचरण करना चाहिए ॥ ५० ॥

सिक्तमात्रा भवेदद्भिः साङ्गोपाङ्गा कथञ्चन ।
न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासांश्च धारयेत् ॥ ५१ ॥

यदि अभिषिक्त जल से साङ्गोपाङ्ग गीली रजस्वला हो जाय तो वस्त्रों को निचोड़ना तथा दूसरे वस्त्र धारण नहीं करना चाहिए ॥ ५१ ॥

पाञ्चभौतिकस्नानम्—

अब आगे पाँच भौतिक स्नान विधि पराशर के वाक्य से बताते हैं ।

पराशरः—

पराशरोक्त पाञ्च भौतिक स्नान

आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ।
आग्नेयं भस्मना स्नानं वारुण्यमवगाहनम् ॥ ५२ ॥
आपोहिष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ।
यत्तु सातपवर्षेण तत्स्नानं दिव्यमुच्यते ॥ ५३ ॥

ऋषि पराशर ने बताया है कि आग्नेय, वारुण, ब्राह्म, वायव्य और दिव्य स्नान पाञ्च भौतिक होता है । भस्म (राख) से आग्नेय, नदी में वारुण, आपोहिष्ठा इस मन्त्र से ब्राह्म, गाय की धूलि से वायव्य और सातपवर्ष से दिव्य स्नान होता है ॥ ५२–५३ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६१ पृ० ।

स्मृतिरत्नावल्याम्—

स्मृतिरत्नावली के आधार पर

[1]ग्रहपर्युषितं चान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।
पीत्वा तथोदकं विप्रः पश्चात्कृच्छ्रं समाचरेत्॥ ५४॥

स्मृतिरत्नावली में कहा है कि ग्रहण में रखे हुए अन्न को खाने पर चान्द्रायण और धरे हुए पानी को पीने पर कृच्छ्र दान करना चाहिए॥ ५४॥

पराशरः—

पराशर के आधार पर

[2]नवश्राद्धे च यच्छेषं ग्रहपर्युषितं तथा।
दम्पत्योर्भुक्तशेषं च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ ५५॥

नवीन श्राद्ध का अवशिष्ट, ग्रहण में रखा हुआ और स्त्री पुरुष के भोजन का बचा हुआ खाने पर चान्द्रायण करना चाहिए॥ ५५॥

सङ्ग्रहे—

संग्रह ग्रन्थ के आधार पर

[3]चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु स्नानं दानं सुरार्चनम्।
न करोति पितुः श्राद्धं स नरः पतितो भवेत्॥ ५६॥

संग्रह ग्रन्थ में कहा है कि जो कि सूर्य चन्द्र ग्रहण में स्नान दान, देवपूजन और पिता का श्राद्ध नहीं करता है वह पतित होता है॥ ५६॥

विष्णुस्मृतौ—

विष्णुस्मृति के आधार पर

सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने।
अकुर्वाणस्तु तच्छ्राद्धं पङ्के गौरिव सीदति॥ ५७॥
सर्वेषां स्वेन जीवनेन जलेनापीत्यर्थः। अकिञ्चनविषयम्

विष्णु स्मृति में बताया है कि ग्रहण में समस्त लोगों को अपने जीवन मात्र से जल से भी श्राद्ध करना चाहिए। न करने से जैसे कीचड़ में गाय दुःख पाती है उसी प्रकार दुःख होता है॥ ५७॥

---

१. ज्यो० नि० ६१ पृ०।
२. ज्यो० नि० ९१ पृ०।
३. ज्यो० नि० ६१ पृ०।

शातातपः—

शातातप के आधार पर

सैंहिकेयो यदार्केन्दू ग्रसते पर्वसन्धिसु ।
गजच्छायेति सा ज्ञेया पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ ५८ ॥

शातातप में कहा है कि जब अमा, पूर्णिमा की सन्धि में राहु, सूर्य, चन्द्रमा को ग्रसित करता है तो गजच्छाया होती है । इसमें श्राद्ध करने से अक्षय पुण्य होता है ॥ ५८ ॥

वायुपुराणे—

वायु पुराण के आधार पर

घृतेन भोजयेद्विप्रान् घृतं भूमौ समुत्सृजेत् ।
ग्रहणाख्ये गजच्छाये कृत्वा श्राद्धं न शोचति ॥ ५९ ॥

वायु पुराण में कहा है कि ग्रहण की गजच्छाया में घी से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए और भूमि में घी छोड़ना चाहिए एवं श्राद्ध करके नहीं सोचना चाहिए ॥ ५९ ॥

ऋष्यशृङ्गः—

ऋष्यशृङ्ग के आधार पर

राहुग्रस्ते विधौ सूर्ये यस्तु श्राद्धं प्रकल्पयेत् ।
तेनैव सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे ॥ ६० ॥

महर्षि ऋष्यशृङ्ग ने बताया है कि सूर्य, चन्द्र ग्रहण में जो श्राद्ध करता है उसी को हाथों से ब्राह्मणों को दी हुई भूमि कहते हैं ॥ ६० ॥

मत्स्यपुराणे—

मत्स्यपुराण के आधार पर

चन्द्रसूर्यग्रहे चैव मरणे पुत्रजन्मनि ।
मलमासेऽपि देयं स्याद्दत्तमक्षयकारकम् ॥ ६१ ॥

मत्स्यपुराण में कहा है कि सूर्य, चन्द्र ग्रहण में, पुत्र जन्म में और अधिक मास में दान करने से अक्षीण पुण्य प्राप्त होता है ॥ ६१ ॥

चूडामणियोगः अर्कपुराणे ।

अब आगे सूर्यपुराण के वाक्य से चूडामणि योग को बताते हैं ।

चूडामणि योग

सूर्यग्रहः सूर्यवारे यदा स्यात्पाण्डुनन्दन ।
चूडामणिरिति ख्यातं सोमे सोमग्रहस्तथा ॥ ६२ ॥

अर्कपुराण में बताया है कि जब सूर्यवार में सूर्य ग्रहण और सोमवार में चन्द्र ग्रहण होता है तो हे पाण्डपुत्र चूडामणि योग होता है ॥ ६२ ॥

उक्त योग का महत्व

अन्यवारे यदा भानोरिन्दोर्वा ग्रहणं भवेत् ।
तत्फलं कोटिगुणितं ज्ञेयं चूडामणौ ग्रहे ॥ ६३ ॥

दूसरे वार में जब सूर्य चन्द्रग्रहण होते हैं तो उसमें जो फल होता है उससे करोड़ गुना फल चूडामणि ग्रहण में स्नान दानादि का होता है ।। ६३ ।।

ग्रहणे दानफलम्—

अब आगे ग्रहण में क्या-क्या दान करना चाहिए तथा इसका फल क्या होता है इसे महाभारत के आधार पर बताते हैं ।

महाभारते—

महाभारत के आधार पर ग्रहण में दान वस्तु

भूमिर्ग्रामः सुवर्णं च धान्यं च यद्यदीप्सितम् ।
तत्सर्वं ग्रहणे देयमात्मनः श्रेयमिच्छता ॥ ६४ ॥

महाभारत में कहा है कि भूमि, गाँव, सोना, धान्य और अभीप्सित समस्त वस्तुओं का अपनी आत्मा के कल्याण चाहने वालों को दान करना चाहिए ॥६४॥

दानखण्डे—

दान खण्ड के आधार पर दान

गोदानात्सूर्यलोकं व्रजति शिवपुरं धेनुपुत्रस्य दाना-
दैश्वर्यं हेमदानात्सकलवसुमतीनायको नागदानात् ।
वैकुण्ठं चाश्वदानाद् व्रजति हि मनुजो नागदो ब्रह्मलोकं
भूदानाद्भूपतित्वं सकलसुखयुतो जायते चान्नदानात् ॥ ६५ ॥

दान खण्ड में बताया है कि गाय के दान से सूर्यलोक प्राप्ति, बैल के दान से शिवलोक की, सुवर्ण दान से ऐश्वर्यता की, सर्प के दान से भूमि शासक (राष्ट्रपति), घोड़े के दान से वैकुण्ठ लोक की, सर्प से ब्रह्मलोक की, भूमि दान से राजपद की और ग्रहण में अन्न दान से समस्त सुख की प्राप्ति होती है ॥६५॥

दाननिर्णये—

दान निर्णय के आधार पर विविध दान फल

वश्यार्थी चन्दनं दद्यात् सुगन्धिद्रव्यमेव च ।
रौप्यदानात्सुरूपत्वं वस्त्रदानान्महद्यशः ॥ ६६ ॥
अन्नदानात्समृद्धिः स्याद्गोदानादीप्सितं फलम् ।
शिवलोके सुखं चैव वृषदानात्तथा धनम् ॥ ६७ ॥
फलदानात्सुतप्राप्तिर्घृतं सौभाग्यवर्द्धनम् ।
लवणं दुर्जनान्हन्ति सुवर्णं सर्वकामदम् ॥ ६८ ॥
भूदानाद्भूपतित्वं च गजदानात्तथैव च ।
अश्वदानात्स्वर्गसुखमारोग्यार्थे स्वमौषधम् ॥ ६९ ॥

दान निर्णय में बताया है कि वशीकरण के लिए चन्दन का और सुगन्धि युक्त पदार्थ का, चाँदी के दान से सुन्दर स्वरूप का, वस्त्र दान से बड़े यश की, अन्न दान से संपन्नता, गोदान से अभीष्ट फल का, घोड़े के दान से शिवलोक में सुख व धन, फल दान से पुत्र प्राप्ति, घी के दान से सौभाग्य की वृद्धि, नमक दान से शत्रु नाश, सोने के दान से समस्त अभीष्ट सिद्धि, भूमि दान से तथा हाथी के दान से भूमि के स्वामित्व की प्राप्ति, घोड़े के दान से स्वर्ग सुख और नीरोगता के लिए धन का दान ग्रहण में करना चाहिए ॥६६–६९॥

अथ ग्रहणे चतुर्विंशद्वर्ज्यम् –

अब आगे ग्रहण में २४ कार्य नहीं करने चाहिए इसे चिन्तामणि के वाक्यों से बताते हैं।

चिन्तामणौ—

ग्रहण में २४ त्याग

[1]छेद्यं न पत्रं तृणदारुपुष्पं कार्यं न केशाम्वरपीडनं च।
दन्ता न शोध्या पुरुषं न वाच्यं भोज्यं च वर्ज्यं मदनो न सेव्यः ॥ ७० ॥

[2]वाह्यं न वाजी द्विरदादि किञ्चिद्दोह्यं न गावो महिषीसमाजम्।
यात्रां न कुर्याच्छियनं च तद्वद् ग्रहे निशाभर्तुरहर्पतेश्च ॥ ७१ ॥

चिन्तामणि में बताया है कि १ पत्ते को छेदित नहीं करना तथा २ तिनका, ३ काठ, ४ पुष्प नहीं तोड़ना, ५ बाल व ६ वस्त्रों का पीडन, ७ दाँत सफाई, ८ कठोर वाणी, ९ भोजन का त्याग, १० मैथुन, ११ घोड़ा, १२ हाथी आदि पर सवारी, १३ गाय १४ भैंस नही दुहना, १५ यात्रा नहीं करना, १६ शयन नहीं करना चाहिए ॥७०–७१॥

इनका फल

निद्रायां जायते अन्धः विण्मूत्रे ग्रामसूकरः।
मैथुने च भवेत्कुष्ठी वधूर्वन्ध्या द्विभोजने ॥ ७२ ॥

ग्रहण में शयन करने पर अंधत्व, टट्टी पेशाब से गाँव का सूअर, मैथुन से कोढ और भोजन से स्त्री वन्ध्या होती है ॥७२॥

अथ शुभाशुभग्रहणमाह। वसिष्ठः—

अब आगे शुभाशुभ ग्रहण को वसिष्ठ के आधार पर बताते हैं।

---

१. ज्यो. नि. ९१ पृ० ८ श्लो०।

२. ज्यो. नि. ९१ पृ० ९ श्लो०।

शुभाशुभ ग्रहण

[1]यस्यैव जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ ।
तस्य व्याधिभयं घोरं जन्मराशौ धनक्षयः ।। ७३ ।।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि जिसके जन्म नक्षत्र पर सूर्य चन्द्रमा का ग्रहण होता है तो उसको रोग का भय और धनक्षय होता है ।।७३।।

भार्गवीये—

भार्गवीय के आधार पर

[2]यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपयुज्यते ।
राज्यनाशं सुहृन्नाशं मरणं चात्र निर्दिशेत् ।। ७४ ।।

भार्गवीय में बताया है कि जिसके राज्य के नक्षत्र पर ग्रहण होता है तो उसके राज्य व मित्र का नाश और मरण होता है ।।७४।।

राज्यस्य नक्षत्रे राज्याभिषेकनक्षत्रे ।

यहाँ राज्य नक्षत्र से राजाभिषेक नक्षत्र ग्रहण करना चाहिए ।

वराहः—

वराह के आधार पर

अभिभवति, सैंहिकेयः चन्द्रार्कौ यस्य जन्मनक्षत्रे ।
तस्यान्तकारिभयं लक्ष्मीनाशो मनस्तापः ।। ७५ ।।

आचार्य वराह ने बताया है कि जिसके जन्म नक्षत्र में ग्रहण होता है उसे अंतकारी भय, धन नाश व मन संताप होता है ।।७५।।

[3]होरायां गृह्यते यस्य नक्षत्रेऽथो दिवाकरः ।
प्राणसंदेहमाप्नोति अथवा मरणमृच्छति ।। ७६ ।।

जिसकी राशि या नक्षत्र में जब सूर्य ग्रहण होता है तो उसके प्राणों का संदेह अथवा मृत्यु का भय होता है ।।७६।।

अन्यः—

अन्य के आधार पर

जन्मभे जन्मराशौ च भवेद्ग्रहणसंभवः ।
तस्योद्वेगप्रवासं च भयं मृत्युरुपद्रवम् ।। ७७ ।।

जिसकी राशि वा नक्षत्र में ग्रहण होता है तो उसको उद्वेग, प्रवास, भय, मरण और उपद्रव होता है ।।७७।।

---

१. व. सं. ३६ अ० १ श्लो० ।
२. मु. चि. ४ प्र० ६ श्लो० पी. टी. ।
३. ज्यो. नि. ८७ पृ० ।

अष्टधा मृत्युः—

अष्टधा मृत्यु ज्ञान

यथा दुःखं भयं लज्जा रोगः शोकस्तथैव च।
मरणं चापमानं च मृत्युरष्टविधः स्मृतः।
इति पञ्चस्वरायाम् ॥ ७८ ॥

पंचस्वरा में बताया है कि जैसे १ दुःख, २ भय, ३ लज्जा, ४ रोग, ५ शोक, ६ मरण, ७ अपमान मृत्यु ये आठ प्रकार की मृत्यु होती हैं ॥ ७८ ॥

हारीतः—

हारीत के आधार पर

[1]ग्रहणं जन्मनक्षत्रे जायते चन्द्रसूर्ययोः।
यस्य तस्याशुभं हानि वैरं रोगः पराभवः ॥ ७८ ॥

ऋषि हारीत ने बताया है कि जिसके जन्म नक्षत्र में सूर्य का ग्रहण होता है तो उसे हानि, शत्रुता, रोग और तिरस्कार मिलता है ॥७६॥

सङ्ग्रहे—

संग्रह के आधार पर

यस्मिन् राशौ तपनशशिनोः सिंहिकासूनुमर्दः
तद्राश्यानां भवति नियतं ग्रामपुंसां विनाशः।
तस्माच्छान्ति मुनिभिरुदिता तत्पटालोकपूर्वं
कुर्याद्दानादिभिरिह नृणां नाशमायात्यरिष्टम् ॥ ८० ॥

संग्रह ग्रन्थ में कहा है कि जिस राशि में सूर्य चन्द्रमा का ग्रहण होता है तो उस राशि वाले व्यक्तियों को निश्चय ही गाँव, जन का नाश होता है। इस लिये उस क्षति को न होने देने के लिये ऋषियों ने शान्ति, दानादि करने को कहा है। इसके विधि पूर्वक अनुष्ठान से अरिष्ट दूर होता है ॥८०॥

अब आगे रामदैवज्ञकृत मुहूर्त चिन्तामणि ग्रन्थ के आधार पर अपने नक्षत्र या राशि में तथा १२ राशियों में सूर्य चन्द्र ग्रहण के फल को दानादि के साथ बताते है।

उक्तञ्च रामः—

मुहूर्तचिन्तामणि के आधार पर

[2]जन्मर्क्षे निधनं ग्रहे जनिभतो घातः क्षतिः श्रीर्व्यथा
चिन्तासौख्यकलत्रदौस्थ्यमृतयः स्युर्माननाशः सुखम्।
लाभोपाय इति क्रमात्तदशुभध्वस्त्यै जपः स्वर्णगो-
दानं शान्तिरथो ग्रहं त्वशुभदं नो वीक्ष्यमाहुः परे ॥ ८१ ॥

---

१. ज्यो. नि. ९१ पृ. ४ श्लो०।

२. मु. चि. ४ प्र० ६ श्लो०।

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि जिसके जन्म नक्षत्र में ग्रहण होता है तो उसकी आयु में संकट आता है।

यदि जन्म राशि में ग्रहण हो तो शरीर पीडा, दूसरी में क्षति धन नाश, तीसरी में धन लाभ, चौथी में शरीर पीड़ा, पाँचवीं में पुत्रादि चिन्ता, छटी में सुख, सातवीं में पत्नी मरण, आठवीं में मरण, नवीं में सन्मान विनाश, दशवी में सुख, ग्यारहवीं में लाभ और बारहवीं राशि में ग्रहण होने पर मृत्यु या द्रव्यनाश होता है।

उस अशुभ फल नाश के लिये गायत्री का जप, सुवर्ण व गाय का दान, शान्ति कर्म करना चाहिए। इससे अरिष्ट का नाश होता है ॥८१॥

दैवज्ञमनोहरेपि—

दैवज्ञ मनोहर के आधार पर भी

[1]घातं हानिमथ श्रियं जननभाद्ध्वस्ति च चिन्तां क्रमात्
सौख्यं दारवियोजनं च कुरुते व्याधिं च मानक्षयम्।
सिद्धिं लाभमपायमर्कशशिनोः षण्मासमध्यग्रहे
दुष्टं सुष्ठुतरं ददाति च फलं गर्गादिभिः कीर्तितम् ॥ ८२ ॥

दैवज्ञ मनोहर नामक ग्रन्थ में कहा है कि जन्म राशि में ग्रहण हो तो घात, दूसरी में हानि, तीसरी में धनागम, चौथी में ध्वंस, पाँचवीं में पुत्र चिन्ता, छटी में सुख, सातवीं में स्त्री वियोग, आठवीं में रोग, नवीं में सन्मान नाश, दशवीं में सिद्धि, ग्यारहवीं में लाभ और बारहवीं में ग्रहण होने पर अपाय विश्लेष होता है।

गर्गादि मुनियों ने यह भी निर्देश दिया है कि ६ मास में जब दूसरा ग्रहण होता है तो पहिले का दूषित फल शुभ होता है ॥८२॥

लल्लस्तु—

लल्लाचार्य के आधार पर

[2]ग्रासात्तृतीयेऽष्टमगश्चतुर्थस्तथाऽयसंख्याशुभदः स्वराशिः।
सुताङ्कदिक्द्वादशगश्च मध्या तथाधमश्चाद्यरिपुद्विसप्त ॥ ८३ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि जिस राशि में ग्रहण हो उससे ३।८।४।११ में स्व-राशि हो तो शुभ ५।६।१०।१२ में स्व-राशि हो तो मध्यम और १।६।२।७ में अपनी राशि हो तो दूषित फल का ग्रहण होता है ॥८३॥

दैवज्ञ मनोहर में कहा है 'ग्रासात्तृतीयाष्टमगश्चतुर्थस्तथायसंस्थः शुभदः स्वराशिः। नवांशधीसप्तमगश्च मध्ये पूज्यो द्विषट्को दशमायसंस्थः' (मु० चि० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी०) ॥८३॥

---

१. मु० चि० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी०।
२. मु० चि० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी०।

तथा ज्योतिषसार में भी 'ग्रासात्तृतीयोऽष्टमगश्चतुर्थस्तथायसंस्थः शुभदः स्वराशिः। ग्रासाद्रविः पञ्चनवर्तुमध्यस्ततोऽधमोक्ताश्च बुधैश्च शेषाः' (४७ पृ०) ॥८३॥

गर्गोऽपि—

गर्गाचार्य के आधार पर

शुभाष्टायचतुस्त्रीणि मध्योन्त्येषुनवास्तगः ।
निन्द्योरीदशपक्षेकं ग्रासाद्राशिं वदेद्बुधः ॥ ८४ ॥

गर्गाचार्य ने बताया है कि ग्रहण राशि से अपनी राशि ८।११।४।३ वीं हो तो शुभ, १२।५।९।७ वीं हो तो मध्यम और स्वराशि से यदि ६।२।१०।१ वीं हो तो ग्रहण का फल दूषित होता है ।।८४।।

ज्योतिषसार में स्वराशि से फल बताया है 'त्रिषट्दशायोपगतं नराणां शुभप्रदं स्याद् ग्रहणं रवीन्द्वोः । द्विसप्तनदेषु च मध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं मुनयो वदन्ति' (४६ पृ०) तथा (मु० चि० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी०) ।।८४।।

पैतामहसिद्धान्ते—

पैतामह सिद्धान्त के आधार पर

[1]सर्वैः पट्टस्थितं वीक्ष्यं खस्थं तैलाम्बुदर्पणे ।
ग्रहणं गुर्विणी जातु न पश्येत्तु पटं विना ॥ ८५ ॥

पैतामह सिद्धान्त में बताया है कि सब लोग काठ के पीढ़ा (आसन) पर स्थित होकर आकाशस्थ बिम्ब को तेल, पानी या दर्पण से ग्रहण को देखते हैं किन्तु गर्भिणी स्त्री को कदापि नहीं देखना चाहिए, यदि देखे तो वस्त्र की ओट करके देखने में आपत्ति नहीं है ।।८५।।

अब आगे ग्रस्त बिम्ब के अस्त होने पर क्या करना चाहिए, इसे विष्णुधर्मोत्तर के आधार पर बताते हैं ।

ग्रस्तास्ते विष्णुधर्मोत्तरे—

विष्णुधर्मोत्तर के आधार पर ग्रस्तास्त में विशेष

[2]अहोरात्रं न भोक्तव्यं सूर्यचन्द्रग्रहो यदा ।
मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम् ॥ ८६ ॥

विष्णुधर्मोत्तर ग्रन्थ में कहा है कि यदि ग्रास के साथ सूर्य, चन्द्र बिम्बका अस्त हो तो एक दिन रात भोजन नहीं करना चाहिए । दूसरे दिन बिम्ब के दर्शन करने के बाद स्नान भोजनादि करना चाहिए ॥ ८६ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६२ श्लो० ११ श्लो० ।
२. मु० चि० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी० ।

ग्रस्तास्तविषये—

भृगुः—

ग्रस्तास्त में भृगु जी का कथन

[१]ग्रस्तगौ वास्तमानं तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि ।
तयोः परेद्युरुदये स्नात्वाभ्यवहरेन्नरः ॥ ८७ ॥

ऋषि भृगु जी ने कहा है कि यदि ग्रास के साथ सूर्य चन्द्रमा का अस्त हो जाय तो दूसरे दिन बिम्ब का दर्शन करके समस्त व्यवहार करना चाहिए ॥ ८७ ॥

विशेष

ग्रस्ते चास्तगते त्विन्दौ ज्ञात्वा मुक्तावधारयेत् ।
स्नानहोमादिकं कार्यं भुञ्जीतेन्दूदये पुनः ॥ ८८ ॥

यदि ग्रस्त बिम्ब का अस्त हो तो उसके मोक्ष काल में जपादि को समाप्त कर दूसरे दिन उदित बिम्ब को देखकर भोजनादि करना चाहिए ॥ ८८ ॥

पुनः विशेष

मेघमालादिदोषेण यदि मुक्तिर्न दृश्यते ।
आकलय्य ततः कालं स्नात्वा भुञ्जीत वाग्यतः ॥ ८९ ॥

यदि बादलों के कारण बिम्ब शुद्ध का अवलोकन न हो तो अर्थात् मुक्त बिम्ब देखने में कठिनाई हो तो मोक्ष के समय के आधार पर स्नान भोजनादि करना चाहिए ॥ ८९ ॥

अथ दुष्टग्रहं स्नानार्थमौषधमाह--

अब आगे दूषित ग्रहण होने पर औषधियों से स्नान करने को बताते हैं ।

भृगुः--

दूषित ग्रहण नाशक औषधि स्नान

दुर्वाङ्कुरोशीरसमाशिलाजित्सिद्धार्थसर्वौंषधिदारुलोध्रैः ।
स्नानं विदध्याद्ग्रहणे रवीन्द्वोः पीडाहरं राशिगते शुभे चेत् ॥९०॥

ऋषि भृगु का कहना है कि अनिष्ट ग्रहण होने पर दूर्वा, खस, शिलाजीत सिद्धार्थ, सर्वौषधि, दारु लोध्र से स्नान करने पर राशि जन्म अरिष्ट फल नष्ट होता है ॥ ९० ॥

वस्त्रपट्टे लिखेन्मन्त्रं रवे राहोस्तमो विधोः ।
वेदोक्तं च ततो वस्त्रमाच्छाद्य स्नानमाचरेत् ॥ ९१ ॥

वस्त्र के आसन पर वेदोक्त राहु, सूर्य चन्द्र के मन्त्रों को लिखकर वस्त्र से आच्छादित करके स्नान करना चाहिए ॥ ९१ ॥

---

३. मु० चि० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी० ।

[1]सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं ताम्रभाजनम् ।
सदक्षिणं सवस्त्रं च श्रोत्रियाय निवेदयेत् ॥ ९२ ॥

सोने का सांप, तामे का वर्त्तन उसमें तिल, दक्षिणा और वस्त्र श्रोत्रिय ब्राह्मण को देना चाहिए ॥ ९२ ॥

दुष्टग्रहणे दानम्--

अब आगे दूषित ग्रहण में क्या देना चाहिए इसे बताते हैं।

दूषित ग्रहण में दान

[2]सौवर्णं राजतं वापि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तितः ।
उपरागोद्भवक्लेशच्छिदे विप्राय कल्पयेत् ॥ ९३ ॥

स्वराशि से दूषित राशि में ग्रहण होने पर अपनी शक्ति के अनुसार सोने का या चाँदी का बिम्ब समान सर्प बनाकर ब्राह्मण को देने से अनिष्ट ग्रहण का दोष दूर होता है ॥ ९३ ॥

दानमन्त्रः—

दान का मन्त्र

[3]तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन ।
हेमनागप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव ॥ ९४ ॥

हे अन्धकारमय, बड़ी आकृति वाले, सूर्य चन्द्र के मर्दन कर्ता इस सुवर्ण के सर्प दान से मेरे लिये शान्ति प्रदान करने वाले बनो ॥ ६४ ॥

स्कन्दपुराणे--

स्कन्दपुराण के आधार पर

[4]गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं विशेषतः ।
ग्रहणे क्लेशनाशाय दैवज्ञाय निवेदयेत् ॥ ९५ ॥

स्कन्दपुराण में कहा है कि गाय, भूमि, सोना विशेषकर, ग्रहण के दुष्ट फल दूर करने के लिए ज्योतिषी ब्राह्मण को देना चाहिए ॥ ६५ ॥

यस्यैव जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ ।
इति यत्पूर्वं लिखितम् ।
द्रव्यमन्त्रविधानेन तस्य दोषापनुत्तये ॥ ९६ ॥

पहिले जो बताया है कि जिसके जन्म नक्षत्र में सूर्य, चन्द्रमा ग्रसित होते हैं उसकी शान्ति के लिए ही पदार्थ, मन्त्र का विधान किया गया है ॥ ९६ ॥

---

१. मु० चिं० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० ६१ पृ० ।
२. मु० चिं० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० ९१ पृ० ।
३. मु० चिं० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० ९१ पृ० ।
४. मु० चिं० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० ६१ पृ० ।

चण्डेश्वरः—

चण्डेश्वर के आधार पर

दधिमधुरसयुक्तं चन्द्रमानानुमानं
रजतकृतशशाङ्कं कांस्यपात्रान्तरस्थम् ।
दधिमधुघृतपूर्णं ताम्रपात्रान्तरस्थं
कनकरचितसूर्यं सूर्यबिम्बानुमानम् ॥ ९७ ॥
सितकुसुमसहस्रैः पूजयेदिन्दुबिम्बं
हरति दुरितसङ्घं पर्वकाले शशाङ्कः ।
अरुणकुसुमवस्त्रैः पूजयेत्सूर्यबिम्बं
हरति सकलदोषं सर्वदा तिग्मरोचिः ॥ ९८ ॥

चण्डेश्वर ने बताया है कि दही, शहद, रस, चन्द्रमा के प्रमाण के अनुमान से चांदी के चन्द्रमा को कांसे के पात्र में रखकर पुनः ढक कर और सूर्य के अनुमान से सोने का सूर्य बिम्ब बना कर, दधि, शहद, घृत से पूर्ण पात्र में बिम्ब को रखकर पुनः तांबे के पात्र से ढक कर चन्द्रमा का सफेद एक हजार फूलों से और सूर्य का लाल पुष्प व वस्त्रों से पर्वकाल में पूजन करने पर ग्रहण जन्य अरिष्ट नष्ट होता है ॥ ९७–९८ ॥

दुष्टग्रहणे शान्तिः—

दूषित ग्रहण में शान्ति

स्थापयेच्चतुरः कुम्भान् ब्राह्मणान्सागरानिति ।
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ॥ ९९ ॥
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ।
पञ्चगव्ये च कुम्भेषु शुद्धमुक्ताफलानि च ॥ १०० ॥
रोचनापद्मशङ्खौ च पञ्चरत्नसमन्वितम् ।
षष्ठिकं चन्दनं श्वेतं तीर्थवारि च पल्लवान् ॥ १०१ ॥
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः ॥ १०२ ॥

प्रथम चार ब्रह्म घटों की स्थापना करके उनमें चार समुद्रों की भावना करे । हाथी, घोड़ा, रथ, टीला, संगम, तालाब, गोशाला और राजद्वार की मिट्टी मंगाकर कलशों में छोड़नी चाहिए और पंचगव्य, शुद्ध मोती, रोचना, कमल, शंख, पंचरत्न, षष्ठिक, सफेद चन्दन, तीर्थ जल और पल्लवों को घड़ों में छोड़कर कहना चाहिए कि दुष्कृत को नष्ट करने वाले समस्त समुद्र, तीर्थ, नदियां, मेघ, नद आकर मेरे अनिष्ट को दूर करें ॥ ९९–१०२ ॥

तिलहोमं व्याहृतिभिः सहस्रं चाष्टसंयुतम् ।
एवं कृत्वा प्रयत्नेन स्नानकर्म समारभेत् ।
आमन्त्र्य नवभिर्मन्त्रैः कुम्भान् सङ्कल्पपूर्वकम् ॥ १०३ ॥

फिर व्याहृति से एक हजार आठ आहुति तिल से हवन करके नीचे लिखे नव मन्त्रों से कलशों का आमन्त्रण करके स्नान कार्य करना चाहिए ॥ १०३ ॥

दुष्टग्रहणे स्तोत्रम्—

दूषित ग्रहण में स्तुति

[1]योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रयत्नतः ।
सहस्रनयनः शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ १०४ ॥

पुनः कहना चाहिए कि देवताओं में जो कि प्रयत्न से वज्र धारण करने वाले, एक हजार आँखों से युक्त इन्द्र देवता हैं, वे हमारे अनिष्ट को दूर करें ॥ १०४ ॥

चतुःशृङ्गः सप्तहस्तः त्रिपादो मेषवाहनः ।
अग्निश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ १०५ ॥

चार सींग, सात हाथ, तीन पैर वाला बकरे पर सवार जो अग्नि है वह चन्द्र ग्रहण के दूषित फल को दूर करने में समर्थ हो ॥ १०५ ॥

[2]यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः ।
यमश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ १०६ ॥

जो कि संसार के लोगों के कर्मों का साक्षी, धर्म, भैंसा पर सवार यमराज है वह ग्रहण जन्य व्याधि को दूर करें ॥ १०६ ॥

[3]रक्षोगणाधिपः साक्षात्प्रलयानलसन्निभः ।
खड्गचर्मातिकायश्च रक्षःपीडां व्यपोहतु ॥ १०७ ॥

जो कि राक्षस समुदाय का स्वामी, साक्षात् प्रलय की अग्नि के समान दीप्ति वाला, खड्ग व चर्म नामक आयुधों से युक्त विशाल देह वाला देव है वह राक्षस कृत पीड़ाओं को दूर करे ॥ १०७ ॥

नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः ।
वरुणोम्बुपतिः साक्षाद्ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ १०८ ॥

---

१. मु० चि० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी० 'त्यानां प्रभुर्मतः सहस्रनयनश्चन्द्र....' पाठान्तर है ।
२. मु० चि० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी० 'यमश्चन्द्रोपरागस्य' पाठान्तर है ।
३. मु० चि० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी० 'खड्गव्यग्रोऽति...' पाठान्तर है ।

जो कि सर्प, पाश को धारण करने वाला, सदा मगर पर सवार, जलों का स्वामी वरुण देव है वह ग्रहण की पीड़ा को दूर करे ॥ १०८ ॥

[1]प्राणरूपो हि लोकानां चारुकृष्णमृगप्रियः ।
वायुश्चन्द्रोपरागोत्थग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ १०९ ॥

जो कि संसार का प्राण स्वरूप, सुन्दर काले हिरनों का प्रेमी वायु देवता है वह चन्द्र ग्रहण जनित दुःख को दूर करे ॥ १०९ ॥

[2]योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः ।
चन्द्रोपरागकलुषं धनदोऽत्र व्यपोहतु ॥ ११० ॥

जो कि खजानों का स्वामी, खड्ग, शूल और गदा को धारण करने वाला कुवेर देवता है वह मेरे ग्रहण जन्य दुःख को दूर करके धन देने वाला बने ॥ ११० ॥

[3]योऽसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ।
चन्द्रोपरागजां पीडां स नाशयतु शङ्करः ॥ १११ ॥

जो कि इन्दु धारी, पिनाकी, वैल पर सवार शंकर नामक देवता है वह मेरे चन्द्र ग्रहण के दोष को दूर करे ॥ १११ ॥

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्मार्कविष्णुयुक्तानि तानि पापं दहन्तु मे ॥ ११२ ॥

तीनों लोक में जितने स्थावर और अस्थिर प्राणी हैं वे ब्रह्मा, सूर्य, विष्णु से युक्त होकर मेरे पापों को दूर करें ॥ ११२ ॥

एवमामन्त्रितैः कुम्भैरभिषिक्तो गुणान्वितः ।
ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च शुद्धमाल्यानुलेपनैः ॥ ११३ ॥

पूजयेद्वस्त्रगोदानैर्ब्राह्मणानिष्टदेवताः ।
एतेनैव ततो मन्त्रान्विलिख्य कनकान्वितान् ॥ ११४ ॥

वस्त्रे पट्टे तथा भूर्जे पञ्चरत्नसमन्वितान् ।
यजमानस्य शिरसि निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः ॥ ११५ ॥

इन ६ मन्त्रों से ऋक्, यजुः, सामवेद के मन्त्रों से कलशों के जल से अभिषिक्त होने पर गुणों से युक्त होकर शुद्ध माला, चन्दन, वस्त्र, गोदान आदि से ब्राह्मणों और इष्ट देवताओं का पूजन करना चाहिए ।

---

१. मु० चि० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी० 'वायुकृष्णम्.....' 'चन्द्रोपरागस्य पीडामत्र' पाठान्तर है ।
२. मु० चि० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी० 'चन्द्रोपरागकलुषान् पीडां चापि' पाठ है ।
३. मु० चि० ४ प्र० ६ श्लो० पी० टी० 'चन्द्रोपरागपापानि नाशयत्वथ' पाठ है ।

इन्हीं ९ मन्त्रों को सुवर्ण से वस्त्र या पीढ़ा या भोज पत्र पर लिख कर पञ्चरत्न मिलाकर यजमान के मस्तक पर ब्राह्मणों को रखना चाहिए ॥ ११३–११५ ॥

ततोऽतिवाहयेद्वेलामुपरागानुगामिनीम् ।
प्राङ्मुखं पूजयित्वा तु नत्वा चाभीष्टदेवताम् ॥ ११६ ॥
चन्द्रग्रहे निवृत्ते तु कृतशौचात्ममङ्गलम् ।
कृतस्नातश्च तत्सर्वं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ११७ ॥
अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत् ।
न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न च बन्धुधनक्षयः ॥ ११८ ॥

इसके बाद भी ग्रहण के समय को बिताकर पूर्व मुख होकर अपने इष्ट देवता का पूजन नमस्कार करके चन्द्र ग्रहण के निवृत्त होने पर स्नान दानादि से पवित्र होकर उस सब सामान को ब्राह्मण के लिये देना चाहिए ।

इस विधान से जो ग्रहण स्नान करता है उसका ग्रहण जनित अरिष्ट दूर होता है और बान्धव व धन का अपचय नहीं होता है ॥ ११६–११८ ॥

सूर्य में विशेष

सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत् ।
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वापि मानवः ॥ ११९ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वत्र सुखभाग्भवेत् ॥ १२० ॥

सूर्य ग्रहण में पूर्वोक्त सब मन्त्रों में सूर्य का नाम जोड़ना चाहिए । जो इस स्तोत्र का प्रतिदिन श्रवण करता है या सुनाता है वह समस्त पापों से रहित होकर सुख भोगने वाला होता है ॥ ११९–१२० ॥

स्मृतिनिर्णये—

स्मृति निर्णय के आधार पर

सूर्यग्रहे रवेर्जाप्यं दानं कुर्याद्यथाविधि ।
चन्द्रग्रहे तु तज्जाप्यं राहुदानं तथा जपः ॥ १२१ ॥

स्मृति निर्णय में कहा है कि सूर्य ग्रहण में सूर्य का जप व दान और चन्द्र ग्रहण में चन्द्र तथा राहु का जप व दान करना चाहिए ॥ १२१ ॥

ग्रहणात्पूर्वापरदिवसाः शुभे त्याज्याः—

अब आगे ग्रहण से पहिले व पश्चात् कितने दिन तक शुभ काम नहीं करना चाहिए, इसे वसिष्ठ के वाक्य से बताते हैं ।

वसिष्ठः—

ग्रहण के पूर्वापर में त्याज्य दिवस

ग्रहे रवीन्द्वोरवनिप्रकम्पे केतूदयोल्कापतनादिदोषे ।
वर्जेद्दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञाः त्रयोदशाहानि वदन्ति केचित् ॥ १२२ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि सूर्य-चन्द्र ग्रहण में, धरती हिलने में, केतु के उदय में, उल्कापात में, किसी के मत से १० दस दिन और अन्य आचार्यों के मत से १३ तेरह दिन तक पूर्वापर शुभ कार्य नहीं करना चाहिए ॥ १२२ ॥

नारदः—

नारद जी के आधार पर

एकरात्रिं परित्यज्य कुर्यात्पाणिग्रहं गृही।
प्रयाणे सप्तरात्रं च त्रिरात्रं व्रतबन्धने ॥ १२३ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि गृहस्थ को एक दिन के बाद विवाह, सात दिन के पश्चात् यात्रा और तीन दिन के बाद जनेऊ करना चाहिए ॥ १२३ ॥

सर्वग्रासे तु सप्ताहमर्धग्रासे दिनत्रयम्।
द्वित्रिएकाङ्गुलग्रासे दिनमेकं तु वर्जयेत् ॥ १२४ ॥

सर्व ग्रास में सात दिन, आधे ग्रास में तीन दिन और २, ३, १ अंगुल ग्रास में एक दिन का त्याग करना चाहिए ॥ १२४ ॥

अङ्गिरोऽपि—

अङ्गिरा ऋषि के आधार पर भी

सर्वग्रासे तु सप्ताहमर्धग्रासे दिनत्रयम्।
त्रिद्व्येकाङ्गुलतो ग्रासे दिनमेकं तु वर्जयेत् ॥ १२५ ॥

अङ्गिरा ऋषि ने बताया है कि समस्त ग्रास में सात दिन, आधे में तीन दिन और ३।२।१ अंगुल ग्रास में एक दिन का शुभ काम में त्याग करना चाहिए ॥ १२५ ॥

हारीतः—

हारीत के आधार पर

एकरात्रिं त्रिरात्रं च सप्तरात्रं तथैव च।
विवाहव्रतयात्रासु वर्जयेद्राहुदर्शनात् ॥ १२६ ॥

ऋषि हारीत जी ने कहा है कि राहुदर्शन से एक, तीन, सात दिन का क्रम से विवाह, जनेऊ और यात्रा में त्याग करना चाहिए ॥ १२६ ॥

निबन्धसारे—

निबन्ध सार के आधार पर

राहुदर्शनदिनाद्दिनत्रयं वर्जनीयमिति गर्गसम्मतम्।
पञ्च सप्त च वसिष्ठनारदौ त्रिचतुः खलु दिनानि शोभने ॥ १२७ ॥

निबन्धसार में बताया है कि राहु दर्शन से तीन दिन तक शुभ कार्य नहीं करना चाहिए, यह गर्ग जी का कहना है तथा वसिष्ठ जी के मत में ५।७ दिन और नारद के मत में ३।४ दिन शुभ कार्य में छोड़ने चाहिए ॥ १२७ ॥

त्रिविक्रमः--

त्रिविक्रम के आधार

सप्ताहानि त्यजेत् ग्रासात् इति ।

आचार्य त्रिविक्रम का कहना है कि ग्रास से ७ दिन तक शुभ कार्य नहीं करना चाहिए ।

दैवज्ञवल्लभे--

दैवज्ञवल्लभ के आधार पर

अनिष्टे त्रिविधोत्पाते सिंहिकासूनुदर्शने ।
सप्तरात्रं न कुर्वीत यात्रोद्वाहादि मङ्गलम् ।। १२८ ।।

दैवज्ञवल्लभ में बताया है कि अनिष्ट में, तीनों (दिव्य, आन्तरिक्ष, भौम) उत्पात में तथा ग्रहण के पश्चात् ७ सात दिन तक यात्रा विवाहादि मंगल काम नहीं करना चाहिए ।। १२८ ।।

सेवासूर्योदये--

सेवासूर्योदय के आधार पर

त्रयोदश्यास्तु माङ्गल्ये दिनानि नवकं त्यजेत् ।
खण्डग्रहे ग्रहदिनं तथा पूर्वं परं दिनम् ।। १२९ ।।

सेवा सूर्योदय में बताया है कि मंगल काम में पूर्ण ग्रहण में त्रयोदशी से ही ६ दिन, खण्ड ग्रहण में १ दिन पूर्व व पश्चात् त्यागना चाहिए ।। १२९ ।।

[1]नारदः--

नारद जी के आधार पर

ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वं पश्चाद्ग्रस्तोदये तथा ।
खण्डग्रासे तु त्रिदिनं निःशेषे सप्त सप्त च ।। १३० ।।

ऋषि नारद ने कहा है कि ग्रस्तास्त में तीन दिन पहिले और ग्रस्तोदय में तीन दिन पीछे, खण्ड ग्रास में तीन दिन, सर्वग्रास ग्रहण होने पर सात दिन पहिले, ७ दिन बाद तक शुभ काम नहीं करना चाहिए ।। १३० ।।

कश्यपः[2]--

कश्यप जी के आधार पर

ग्रस्तोदये परो दोषो ग्रस्तास्तेऽर्वाक् शशीनयोः ।
द्युनिशार्द्धे भयं स्यात्तु खण्डे खण्डव्यवस्थयोः ।। १३१ ।।

---

१. मु० चिं० १ प्र० ३३ श्लो० पी० टी० में गुरु के नाम से है ।

२. मु० चिं० १ प्र० ३३ श्लो० पी० टी० में 'द्युनिशार्धेतूभयं स्यात् खण्डख....यह पाठ है ।

ऋषि कश्यप ने बताया है कि ग्रस्तोदय में बाद में दोष होता है और ग्रस्तास्त में पहिले तथा खण्ड ग्रहण व खण्ड व्यवस्था में उसी दिन दोष होता है ॥ १३१ ॥

ज्योतिःप्रकाशे—

ज्योतिष्प्रकाश के आधार पर

खग्राससर्वपादोनखण्डार्ध्याल्पे तु वासराः ।
राजाश्वेष्वब्धिरामाब्जा नेष्टा प्रोक्ता दलं ग्रहे ॥ १३२ ॥

ज्योतिष्प्रकाश में कहा है कि खग्रास, सर्वग्रास, पादोन ग्रास, खण्ड और अर्धा और अल्प, ग्रहण में क्रम से १६, ७, ५।४।३।१ दिन शुभ काम में त्यागना चाहिए ॥ १३२ ॥

तत्त्वविवेके—

तत्त्वविवेक के आधार पर

प्रागेकाहस्त्र्यहं पश्चात् तद्दिनं ग्रहणस्य च ।
त्यजेद्गत्यन्तराभावे सर्वग्रासेऽपि कर्मणाम् ॥ १३३ ॥

तत्त्वविवेक में कहा है कि गत्यन्तराभाव व सर्वग्रास में ग्रहण के पूर्व एक दिन, बाद में तीन दिन, एक ग्रहण वाला दिन शुभकार्यों में त्यागना चाहिए ॥ १३३ ॥

अथ ग्रहणफलम्—

एक ही मास में चन्द्र सूर्य दोनों ग्रहण होने का फल

यद्येकस्मिन्मासे ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षितिपाः ।
स्वबलक्षोभी संक्षयमायान्त्यतिकोशशस्त्रकोपश्च[1] ॥ १३४ ॥

जब एक ही मास में सूर्य और चन्द्र दोनों का ग्रहण होता है तो राजाओं की अपनी सेना में हलचल मच जाने से कोश और शस्त्र नाश होता है ॥ १३४ ॥

कश्यप ऋषि ने भी कहा है 'चन्द्रार्कयोरेकमासे ग्रहणं न प्रशस्यते । परस्परं वधं कुर्युः स्वबलक्षुभिता नृपाः' (बृ० सं० ५ अ० २६ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १३४ ॥

विशेष—प्रकाशित बृ० सं० में 'सङ्क्षयमायान्त्यतिशस्त्रकोपश्च' स्वबलक्षोभैः' यह पाठान्तर है ॥ १३४ ॥

ग्रस्तोदित ग्रस्तास्त सूर्य चन्द्र का फल

[2]ग्रस्तावुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ ।
सर्वग्रस्तदुर्भिक्ष्यमरणकरौ पापसंदृष्टौ ॥ १३५ ॥

जब कि ग्रस्त चन्द्र सूर्य का उदय या अस्त होता है तो क्रम से शारदीय धान्य और राजा का विनाश होता है । अर्थात् ग्रस्त चन्द्र का उदय या अस्त हो तो शारदीय

१. बृ० सं० ५ अ० २६ श्लो० ।   २. बृ० सं० ५ अ० २७ श्लो० ।

धान्यों का और ग्रस्त सूर्य के उदय अस्त में राजा का विनाश होता है। सर्वग्रस्त चन्द्र सूर्य यदि पाप ग्रह से दृष्ट हों तो दुर्भिक्ष व मरण को देने वाले होते हैं ॥१३५॥

गर्ग ने कहा है 'उद्गच्छति गृहीतश्चेदस्तं वा यदि गच्छति। शारदं तु तदा सस्यं जातं जातं विपद्यते ॥ ग्रैष्मेण तत्र जीवन्ति नरा मूलफलेन वा। भयदुर्भिक्ष रोगैश्च तदा संपीड्यते जगत्' (वृ० सं० ५ अ० २६ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १३५ ॥

ऋषि पुत्र ने कहा है कि 'यावतोंऽशान् ग्रसित्वेन्दोरुदयत्यस्तमेति वा। तावतोंऽशान् पृथिव्यास्तु तम एव विनाशयेत्। 'उदयेऽस्तमये वापि सूर्यस्य ग्रहणं भवेत्। तदा नृपभयं विन्द्यात् परचक्रस्य चागमम्' (वृ० सं० ५ अ० २७ श्लो० भट्टो० टी०) ॥१३५॥

चन्द्र ग्रहण के अनन्तर सूर्य ग्रहण का फल

[1]सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद्ग्रहोऽर्कस्य।
तत्रानयोः (यः ?) प्रजानां दम्पत्योर्वैरमन्योन्यम् ॥ १३६ ॥

जब कि चन्द्र ग्रहण के १५ पन्द्रह दिन बाद सूर्य ग्रहण होता है तो प्रजाओं में अनीति और स्त्री पुरुषों में परस्पर द्वेष उत्पन्न होता है ॥ १३६ ॥

सूर्य ग्रहण के बाद चन्द्र ग्रहण का फल

[2]अर्कग्रहात्तु शशिनो ग्रहणं दृश्यते ततो विप्राः।
नैकक्रतुफलमतो भवन्ति मुदिता प्रजाश्चैव ॥ १३७ ॥

जब कि सूर्य ग्रहण के १५ पन्द्रह दिन पीछे चन्द्र ग्रहण होता है तो ब्राह्मण गण अनेक यज्ञ फल को भोगने वाले और प्रजागण प्रसन्न होते हैं ॥ १३७ ॥

संहितासिद्धान्ते—

संहिता सिद्धान्त के आधार पर

दशैव ग्रासभेदास्युर्मोक्षभेदास्तथा दश।
न शक्ता वदितुं देवाः किं पुनस्तं नराधमाः ॥ १३८ ॥

संहिता सिद्धान्त में कहा है कि ग्रास के दस और मोक्ष के भी दस भेद होते हैं उन्हें देवता भी नहीं जानते हैं तो अधम मनुष्य कैसे जान सकता है ॥ १३८ ॥

अब आगे ग्रहण के सात दिन पीछे होने वाले उत्पातों को वाराही संहिता के आधार पर बताते हैं।

---

१. वृ० सं० ५ अ० ९७ श्लो०।

२. वृ० सं० ५ अ० ९८ श्लो०।

ग्रहण के बाद सात दिन के अन्दर उत्पातों का फल

वाराहीये--

[1]मुक्ते सप्ताहान्तः पांसुनिपातोऽन्नसंक्षयं कुरुते।
नीहारे रोगभयं भूकम्पः प्रवरनृ (प) मृत्युः ॥ १३९ ॥

[2]उल्कामन्त्रिविनाशं नानावर्णाघनाश्च भयमतुलम्।
स्तनितं गर्भविपत्ति विद्युन्नृपदंष्ट्रिपरिपीडाम् ॥ १४० ॥

[3]परिवेषो रुक्पीडां दिग्दाहो नृपभयं च साग्निभयम्।
रूक्षो वायुः प्रबलश्चौरसमुत्थं भयं धत्ते ॥ १४१ ॥

[4]निर्घातः सुरचापं दण्डश्च क्षुद्भयं सपरचक्रम्।
ग्रहयुद्धे नृपयुद्धं केतुश्च तदैव संदृष्टः ॥ १४२ ॥

[5]अविकृतसलिलनिपाते सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम्।
यश्चाशुभं ग्रहणजं तत्सर्वं नाशमुपयाति ॥ १४३ ॥

आचार्य वराह मिहिर ने बताया है कि ग्रहण से मोक्ष के बाद सात दिन के भीतर यदि धूलि की वर्षा हो तो अन्न का नाश, पाला पड़े तो रोग का भय, भूमि हिले तो प्रधान राजा का मरण, उल्का पात हो तो मंत्री का नाश, नाना रंगों के बादल दीखें तो घोर भय, गर्जना हो तो गर्भ का नाश, बिजली गिरने पर राजा, सर्प, सूअर आदि को पीड़ा, परिवेष हो तो रोग व पीड़ा, दिग्दाह हो तो राजा व अग्नि का भय, कठोर हवा चले तो चोर का भय, निर्घात—इन्द्र धनुष या दण्ड (सूर्य किरण, मेघ व वायु का संघात) हो तो दुर्भिक्ष, परराष्ट्र भय, ग्रह युद्ध या केतु दर्शन हो तो राजाओं में लड़ाई और निर्मल जल की वर्षा हो तो सात दिन में सुभिक्ष तथा ग्रहण में उत्पन्न अशुभ फल का नाश होता है ॥ १३९–१४३ ॥

समास संहिता में कहा है 'परुषपवनाभ्रगर्जितविद्युत्परिवेषभूप्रकम्पाद्याः। सप्ताहान्तर्न शुभा ग्रहणनिवृत्तौ शुभा वृष्टिः' (वृ. ५ अ० ९२ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ १३६–१४३ ॥

वृद्धगर्गाचार्य जी ने भी कहा है 'अथेन्दुग्रहनिर्मुक्ते सप्ताहान्तर्भवेद्यदि। पांशुवर्षोऽन्ननाशः स्यान्नीहारो रोगवृद्धये॥ नृपनाशाय भूकम्प उल्कामन्त्रिविपत्तये। रोगाय परिवेषः स्याद्भयायैवाभ्रसम्प्लवः॥ विद्युद्गर्भविनाशाय दिग्दाहोऽग्निविवृद्धये। निर्घातेन्द्रधनुर्दण्डा दुर्भिक्षाय भयाय च॥ पवनः प्रबलो रूक्षश्चोरोपद्रवसूचकः। सर्वोपद्रवनाशः स्यात्

---

१. वृ० सं० ५ अ० ९२ श्लो०। २. वृ० सं० ५ अ० ९३ श्लो०।
३. वृ० सं० ५ अ० ९४ श्लो०। ४. वृ० सं० ५ अ० ९५ श्लो०।
५. वृ० सं० ५ अ० ९६ श्लो०।

सम्यक् वृष्टिर्भवेद्यदि ।। यद्राहुचरितं प्रोक्तं चन्द्रग्रहणसूचकम् । तदेव सकलं सूर्ये वेदितव्यं शुभाशुभम्' (बृ. सं० ५ अ० ६२ श्लो० भट्टो० टी०)।। १३६-१४३ ।।

सं० १६५४ से सं० १६६३ तक ग्रहण सूची

संवत्	मास	तिथि	ग्रहण	स्पर्शघटी	मोक्षघटी
१९५४	पौषशुक्ल	१५ चन्द्रे	चन्द्रस्पर्श	५४।२९	५८।१९
	माघकृष्ण	३० शनौ	सूर्यस्पर्श	१३।५१	२०।२६
१९५५	आषाढ	१५ रवौ	चन्द्रस्पर्श	५०।०	५८।२२
	मार्गशिर	१५ भौमे	चन्द्रस्पर्श	४८।२८	५७।१२
१९५६	ज्येष्ठशुक्ल	१५ भृगौ	चन्द्रस्पर्श	३१।५८	३५।३१
	मार्गशिर	१५ शनौ	चन्द्रस्पर्श	५३।४०	५७।२६
११५८	चैत्रकृष्ण	३०	सूर्यस्पर्श	७।३२	१२।२७
१९५९	चैत्रशुक्ल	१५ भौमे	चन्द्रस्पर्श	४०।२२	४२।४८
१९६०	चैत्रशुक्ल	१५ शनौ		५५।२३	२।४५
	आषाढ	१५ शुक्रे		३१।२	३९।१०
१९६१	मार्गशिर	१५ रवौ	चन्द्र	४०।३९	४६।५९
१९६२	श्रावण	१५	चन्द्र	२७।०	३०।११
१९६३	कार्तिक	३०	सूर्यस्पर्श	९।३६	१४।४
	मार्गशिर	१५ भौमे	चन्द्रस्पर्श	२५।२४	३०।२४
१९६५	मार्गशुक्ल	१५ शुक्रे	चन्द्र	४८।२०	५१।३०
१९६६	ज्येष्ठशुक्ल	१५ शुक्रे	चन्द्र	५९।३	७।४३
१९६७	कार्तिकशुक्ल	१५ शुक्रे		५३।३७	५६।३७
१९६८	कार्तिक	३०	सूर्य	५१।२६	८।५०
१९६९	चैत्रशुक्ल	१४ सोमे	चन्द्र	५१।१९	५६।०
	चैत्रकृष्ण	३० वुधे	सूर्य	२९।०	३३।३१
१९७०	भाद्रपद	१५	चन्द्र	२४।९	३२।५९
	फाल्गुन	१५			
१९७१	भाद्रपदकृष्ण	३० भृगौ	सूर्य	३०।३८	३५।२८
	भाद्रपदशुक्ल	१५ भृगौ	चन्द्र	२५।१	३३।१६
१९७४	आषाढ	१५ शुक्रे	चन्द्र	४२।५५	५९।२९
१९७७	वैशाखशुक्ल	१५	चन्द्र	५८।३	६।४७
	आषाढ	१५ वुधे	चन्द्र	३२।९	
१९७८	आश्विन	१५ रवौ		४९।३१	५७।४९
१९७९	आश्विन	३० गुरौ	सूर्य	५।५	१०।११

संवत्	मास	तिथि	ग्रहण	स्पर्शघटी	मोक्षघटी
१९८०	माघशुक्ल	१५ बुधे	चन्द्र	३२।३८	४१।४८
१९८१	श्रावण	१५ शुक्रे	चन्द्र	४६।४५	५५।ख
	माघशुक्ल	१५ रवौ	चन्द्र	४६।१	५१।३६
१९८२	श्रावणशुक्ल	१५ भौमे	चन्द्र	दृष्टिर्नास्ति	
	माघकृष्ण	३० गुरौ	सूर्य	१२।१७	१५।३३
१९८५	ज्येष्ठकृष्ण	३० गुरौ	चन्द्र	१६।३७	२१।२१
१९८६	वैशाखकृष्ण	३० गुरौ	सूर्यग्रहणसंभव		
१९८८	चैत्रशुक्ल	१५	चन्द्रग्रह	४४।३	५३।०
	भाद्रपदशुक्ल	१५	चन्द्र	४०।०	४९।०
	फाल्गुन	१५	चन्द्र	१५।	२३
१९८९	भाद्रपद	१५ बुधे	चन्द्र	५०।४४	५३।०
१९९०	भाद्रपदकृष्ण	३० सोमे	सूर्य	७।०	१४।३४
१९९१	आषाढशुक्ल	१५	चन्द्र	२७।०	३५।०
	पौषशुक्ल	१५	चन्द्र	२९।	३७।ख
१९९२	पौषशुक्ल	१५ बुधे	चन्द्र	३५।४३	४४।०
१९९३	आषाढकृष्ण	३०	सूर्य	९।४८	१४।०
	आषाढशुक्ल	१५	चन्द्र	४०।८	४३।२

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनविरचिते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने त्रयस्त्रिशं ग्रहणकथनप्रकरणं समाप्तम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिष वेत्ता पं० गयादत्त जी पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का तैंतीसवाँ ग्रहण कथन नामक प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधर-चतुर्वेदकृता त्रयस्त्रिशत्प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्णा ॥ ३३ ॥

अथ चतुस्त्रिंशं लुप्तसंवत्सरनिर्णयप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे चौंतीसवें प्रकरण में लुप्त संवत् के निर्णय को अतिचार के साथ बताते हैं ।

लुप्त संवत्सर—गुरु सामान्यतया १ राशि में १३ मास तक संचरण करता है। किन्तु अतिचारी होने पर उससे पहिले ही भुक्त करके दूसरी राशि में पहुँच कर पुनः वक्री होकर उस राशि में लौट कर जब नहीं आता है तो वह वर्ष लुप्त संवत्सर के नाम से पुकारा जाता है ।

अतिचार—मध्यम गति का उल्लंघन करके जब ग्रह नियत काल से पूर्व ही अग्रिम राशि में संक्रमण करता है तो अतिचारी कहलाता है। यह भी एक दोष होता है। उसकी उपस्थिति में कितने दिनों का त्याग शुभ काम में करना चाहिए इस सबको विविध ग्रन्थों के आधार पर इसमें बताया गया है ।

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर

सहजां गतिमासाद्य यद्यतीचारगो गुरुः ।
अवशिष्टं पूर्वराशिं न प्रत्यायात्युपभुक्तये ।। १ ।।
कुम्भाच्चतुष्केतरगोऽतिचारी न पूर्वराशिं गुरुरेति वक्री ।
तदा विलुप्ताब्द इहातिनिन्द्यः सोमोद्भवाजह्नुभवान्तराले ।। २ ।।
अन्तर्भाव्योपभुक्तांशवक्रानन्तरितस्तथा ।
मासैर्द्वादशभिर्लुप्तसंवत्सर इतीरितः ।। ३ ।।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि यदि मार्गी गुरु अतिचार वश दूसरी राशि में कुम्भ मीन, मेष, वृष राशि को छोड़कर जाता है तथा पहुँच कर वक्री होकर पहिली राशि में अतिचारी अंशों का भोग नहीं करता है तो वह संवत् लुप्त वर्ष के नाम से गंगा व रेवा नदी के मध्य में होता है। यह अधिक निन्दनीय है एवं अन्तर्भावी अंशों को वक्री होकर न भोगने से १२ मास का लुप्त वर्ष होता है ।। १–३ ।।

गर्गः—

गर्ग के आधार पर

समं व्रजन्देवगुरुर्यदैव भवेदतीचारगतिप्रयुक्तः ।
तदा हि लुप्ताब्द इति प्रदिष्टः स्वसंहितायां च पितामहेन ।। ४ ।।

गर्गाचार्य जी ने बताया है कि जब गुरु समान गति से संचरण करता हुआ अतिचारी होता है तो लुप्त संवत् होता है। ऐसा पितामह (ब्रह्मा) ने अपनी संहिता में वर्णन किया है ।। ४ ।।

व्यवहार समुच्चय में कहा है 'अतिचारगतो जीवस्तं राशिं नैति चेत्पुनः। लुप्त-संवत्सरो ज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु' (मु० चि० १ प्र० ५३ श्लो० पी० टी०) ॥ ४ ॥

शौनकः—

शौनक जी के आधार पर

[1]मासान्दशैकान्दशकान्प्रभुज्य राशेर्यदा राशिमुपैति जीवः।
भुङ्क्ते न पूर्वं च पुनस्तदानीं न लुप्तसंवत्सरमाहुरार्याः ॥ ५ ॥

ऋषि शौनक ने बताया है कि १० या ११ मासों में गुरु जब एक राशि का भोग कर दूसरी राशि में जाकर पुनः पूर्व राशि भोग न करे तो लुप्त संवत् नहीं होता है ॥ ५ ॥

च्यवन ने कहा है 'मासान् दशैकादश वा प्रभुज्य राशेर्यदा राशिमुपैति जीवः। भुङ्क्ते न पूर्वं च पुनस्तथापि न लुप्तसंवत्सरमाहुरार्या' (मु० चि० १ प्र० ५३ श्लो० पी० टी०) ॥ ५ ॥

कश्यपः—

कश्यपजी के आधार पर

यदि भवेदतिचारगतिर्गुरुर्न पुनरेति निजप्रथमस्थितिम्।
भवति लुप्तसमा झषकुम्भयोर्वृषभवृश्चिकयोर्यदि न स्थितिः ॥ ६ ॥

ऋषि कश्यपजी ने बताया है मीन, कुम्भ, वृष और वृश्चिक राशि को छोड़कर जब गुरुअतिचारी होकर पूर्व राशि में नहीं आता है तो लुप्त संवत् होता है ॥ ६ ॥

मुहूर्त गणपति में कहा है 'देवपूज्योऽतिचारेण दशमासात् पुरा यदि। राश्यन्तरगते भूयो ऋते कुम्भचतुष्टयात् ॥ प्राग्राशिर्यदिनो याति लुप्तसंवत्सरस्तदा। गंगानर्मदयोर्मध्ये देशः सोऽत्यन्तनिन्दितः' (१५ अ० ६४–६५ श्लो०) ॥ ६ ॥

भृगुः—

भृगु जी के आधार पर

धने मीने वृषे कुम्भे यद्यतीचारगो गुरुः।
न तत्र काललोपः स्यादित्याह गालवो मुनिः ॥ ७ ॥

ऋषि भृगु जी ने कहा है कि धनु, मीन, वृष, कुम्भ राशि में गुरु जब अतिचारी होता है तो उसमें काल का लोप नहीं होता, ऐसा गालव ऋषि का वाक्य है ॥ ७ ॥

गर्गः—

गर्ग जी के आधार पर

स्वकं भवनमासाद्य यद्यतीचारगो गुरुः।
न तत्र काललोपः स्यादित्याह भगवान्यमः ॥ ८ ॥

---

१. मु० चि० १ प्र० ५३ श्लो० पी० टी०।

ऋषि गर्ग जी ने बताया है कि अपने घर (धनु, मीन) में आकर जब गुरु अतिचारी होकर पहिली राशि में नहीं आता है तो काल का लोप न होने से दोष नहीं होता है ऐसा भगवान् यम का वाक्य है ।। ८ ।।

व्यासः—

व्यास जी के आधार पर

यदातिचारं सुरराजमन्त्री करोति गोवृश्चिकमीनसंस्थः ।
नायात्यसौ यद्यपि पूर्वराशिं शुभाय पाणिग्रहणं वसिष्ठः ।। ९ ।।

व्यास जी ने कहा है कि वृष, वृश्चिक, मीन राशि में जब गुरु अतिचारी होकर पूर्व राशि में नहीं भी आता है तो दोष न होने से विवाहादि शुभ कर्म करना चाहिए ।। ९ ।।

पराशरः—

पराशर जी के आधार पर

दशमासानन्तरमहानि कतिचिद्गुरुर्यदा भुङ्क्ते ।
यद्यनायात्पूर्वर्क्षे तदा लुप्तसंवत्सरः प्रोक्तः ।। १० ।।

ऋषि पराशर ने बताया है कि दस १० मास व कुछ दिन जब गुरु किसी राशि का भोग करके अतिचार वश दूसरी राशि में जाकर लौटता नहीं तो लुप्त संवत्सर होता है ।। १० ।।

मनुः—

मनु जी के आधार पर

अतिचारगतो जीवो दशमासात्परं यदि ।
दिनानि कतिचिद्भुङ्क्ते न तदा लुप्तवत्सरः ।। ११ ।।

ऋषि मनु ने बताया है कि जब गुरु १० मास व कुछ दिन एक राशि का भोग करके दूसरी राशि में जाता है तो लुप्त संवत् नहीं होता है ।। ११ ।।

मुहूर्ततत्त्वे—

मुहूर्ततत्त्व के आधार पर

एकस्मिन्वत्सरे जीवः स्पृशेद्राशित्रयं यदि ।
लुप्तसंवत्सरो नाम निन्दितः सर्वकर्मसु ।। १२ ।।

मुहूर्त तत्त्व में बताया है कि जब गुरु एक वर्ष में तीन राशियों का स्पर्श करता है तो लुप्त संवत् होता है । इसका समस्त शुभ कामों में त्याग करना चाहिए ।। १२ ।।

यशोधरतन्त्रे—

यशोधर तन्त्र के आधार पर

एकस्मिन् रविवर्षे गौरववर्षद्वयावसानं चेत् ।
त्र्यब्दस्पृशमेनमेव विलुप्तसंवत्सरं प्राहुः ।। १३ ।।

यशोधरा तन्त्र में कहा है कि जब एक सौर वर्ष में दो गुरु वर्षों का अन्त होता है। इसलिये तीन राशि का स्पर्श होने से लुप्त संवत्सर होता है ॥ १३ ॥

अन्यः—

अन्य के आधार पर

[1]अतिचारगतो जीवस्तं राशिं नैव चेत्पुनः।
लुप्तसंवत्सरो ज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥ १४ ॥

अन्यों का कहना है कि जब गुरु अतिचारी होकर पुनः पूर्व राशि में नहीं आता है तो लुप्त संवत् होता है। यह समस्त कामों में निन्दित वर्ष होता है ॥ १४ ॥

अयमपि दोषो यद्देशे वृहस्पतिमानेन व्यवहारस्तद्देशविषयः।

यह दोष भी जिस देश में गुरुमान से संवत् का प्रचलन होता है वहीं पर निषिद्ध माना गया है ॥

तथा चोक्तम्—

गुरु मान संवत् चलने के स्थान

नर्मदोत्तरभागे तु वार्हस्पत्येन वत्सरः।
तस्यास्तु दक्षिणे भागे सौरमानेन वर्तते ॥ १५ ॥

नर्मदानदी के उत्तर भाग में गुरु मान से संवत् का और उसके दक्षिण भाग में सौर मान से संवत् का प्रचलन होता है ॥ १५ ॥

दोष के स्थान

लुप्तसंवत्सरदोषस्तु पयोष्णीनर्मदातटात्।
नान्यदेशेष्विति प्राहुर्वसिष्ठात्रिपराशराः ॥ १६ ॥

पयोष्णी व नर्मदा के तटवर्ती स्थानों पर लुप्त संवत् दोष होता है और अन्य देशों में नहीं ऐसा वसिष्ठ, अत्रि, पराशर का वाक्य है ॥ १६ ॥

अन्यत्रापि—

अन्य के आधार पर भी

गर्गात्रिमाण्डव्यपराशराद्या भृग्वङ्गिरःशौनककश्यपाद्याः।
लुप्ताब्ददोषं प्रवदन्ति मध्ये सोमोद्भवायाः सुरनिम्नगायाः ॥ १७ ॥

अन्य गर्ग, अत्रि, माण्डव्य, पराशर, भृगु, अङ्गिरा, शौनक, कश्यप आदि ऋषियों का कहना है कि नर्मदा व गङ्गा के मध्यवर्ती देशों में इसका (लुप्त संवत्) दोष होता है ॥ १७ ॥

---

१. मु० चि० २ प्र० ५३ श्लो० पी० टी०।

[1]रामाचार्योऽपि—

रामदैवज्ञ के आधार पर

गोजान्त्यकुम्भेतरराशिचारगे नो पूर्वराशिं गुरुरेति वक्रितः।
तदा विलुप्ताब्द इहातिनिन्दितः शुभेषु रेवासुरनिम्नगान्तरे ॥ १८ ॥

श्री रामदैवज्ञ ने अपने मुहूर्त चिंतामणि नामक ग्रन्थ में बताया है कि मेष, वृष, कुम्भ, मीन राशियों के अतिरिक्त आठ राशियों में अतिचारी गुरु वक्री होकर पहिले की राशि में नहीं आता है तो लुप्त संवत्सर दोष होता है। गंगा और रेवा नदी के बीच देशों में लुप्त संवत्सर दोष होता है ।। १८ ॥

गुरु ने बताया है 'मेषे वृषे झषे कुम्भे यद्यतीचारगे गुरौ। न तत्र कालदोषः स्यादित्याह भगवान् यमः' (मु० चिं० १ प्र० ५३ श्लो० पी० टी०) ॥ १८ ॥

तथा ज्योतिर्विदाभरण में कहा है 'मार्गी पुरोषा गदितोग्रधन्वनो द्विराशिचारं कुरुते यदा तदा। लुप्ता शरत् सापि निपादिक चरेच्चतुष्टयं मङ्गलसाधनी भवेत्. (मु० सि० १ अ० ५७ श्लो० टी० सु० त०) ॥ १८ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनविरचिते सङ्ग्रहे
बृहद्दैवज्ञरञ्जने चतुस्त्रिंशं लुप्तसंवत्सर-
निर्णयप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का चौंतीसवां लुप्तसंवत्सर निर्णय प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता श्रीधरी हिन्दी टीका चतुस्त्रिंशत् प्रकरणस्य बृहद्दैवज्ञरञ्जननामकसङ्ग्रह-ग्रन्थस्य पूर्तिमगात् ॥ ३४ ॥

---

१. मु० चिं० १ प्र० ५३ श्लो०।

अथ पञ्चत्रिंशं अकालवृष्टिप्रकरणं प्रारभ्यते

अब आगे पैंतीसवें प्रकरण में अकालवृष्टि कब होती है, इसके होने पर क्या-क्या काम नहीं करना चाहिए इत्यादि को अनेक ग्रन्थों के वाक्य से बताते हैं।

वसिष्ठः[1]—

वसिष्ठजी के आधार पर

अकालवृष्टिप्रभवस्तु दोषः करोति मृत्युं वरकन्ययोश्च।
करोति मृत्युं शुभकार्यकर्तुः त्रातुर्यथा सर्वगुणास्त्वशक्ताः ॥ १ ॥
तं वन्धवर्गाविषवह्निदग्धा अकालवृष्टिप्रभवः स दोषः।
सीतावियोगप्रभवः सुदीर्घः कोपो यथा दाथरथेर्दशास्यम् ॥ २ ॥

विशेष—यहाँ इन दोनों पद्यों का पाठ ठीक नहीं है तथा अर्थ भी स्पष्ट नहीं होता है वसिष्ठ संहिता में ठीक पाठ इस प्रकार है—

अकालवृष्टिप्रभवः स दोषः करोति मृत्युं शुभकार्यकर्तुः।
त्रातुं यथा सर्वगुणास्त्वशक्तास्तं बन्धुवर्गा विषवह्निदग्धम् ॥
अकालवृष्टिप्रभवः सदोषः करोति मृत्युं वरकन्ययोश्च।
सीतावियोगप्रभवः सुदीर्घः कोपो यथा दाशरथेर्दशास्यम् ॥

अर्थ—अकालवृष्टि का दोष शुभ कार्यकर्ता की मृत्यु करता है जैसे जहर वा अग्नि से जले हुए जन की समस्त गुणों से सम्पन्न भी वान्धव वर्ग रक्षा करने में असमर्थ होते हैं।

अकालवृष्टि जन्य दोष विवाह में वर-कन्या का भी मरण करने वाला होता है जैसे राम का सीता के वियोग से उत्पन्न क्रोध रावण का वध कर्ता हुआ था ॥ १-२ ॥

अन्य अकालवृष्टि दोष

अकालवृष्टिनीहारपरिवेषशरासनाः।
लत्तापातादयो दोषाः शुभकार्यविनाशदाः ॥ ३ ॥

असमय की वर्षा, पाला, मण्डल, इन्द्रधनुष, लत्ता, पात आदि दोष शुभ काम को नष्ट करने वाले होते हैं ॥ ३ ॥

---

१. व० सं० ३२ अ० ८८-८९ श्लो०।

कृत्यचिन्तामणौ—

कृत्यचिन्तामणि के आधार पर

मार्गान्मासात्प्रभृतिमुनयो व्यासवाल्मीकिगर्गा-
श्चैत्रं यावत्प्रवर्षणविधौ नेतिकालं वदन्ति।
नाडीस्त्याज्या: सुरगुरुमुनिर्वातवृष्टेरकालो
मासावेतौ न शुभफलदौ पौषमाघौ न शेषा: ॥ ४॥

कृत्यचिन्तामणि में कहा है—व्यास, वाल्मीकि, गर्ग ऋषि ने बताया है कि अगहन से चैत्र तक वर्षा का समय नहीं होता है। सुरगुरु ऋषि ने अकाल वर्षा के बाद शुभ कर्म के लिये कुछ नाडी त्याज्य बताई हैं। वायु और वर्षा से विशेष कर पूस, माघ में अनिष्ट होता है शेषों में नहीं होता ॥ ४ ॥

दैवज्ञवल्लभे—

दैवज्ञ वल्लभ के आधार पर

पौषादि चतुरो मासा: प्रोक्ता वृष्टिस्त्वकालजा।
व्रतं यात्रादिकं तत्र वर्जयेत्सप्तवासरान् ॥ ५॥

दैवज्ञ वल्लभ नामक ग्रन्थ में बताया है कि पूस से चार मास तक (पूस, माघ, फाल्गुन, चैत्र) वर्षा होने पर असमय वर्षा कहलाती है। इसके होने पर सात दिन तक, जनेऊ, यात्रादि शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ ५ ॥

विशेष बात

पौषे दिनत्रयं वर्ज्यं माघे चैव दिनद्वयम्।
फाल्गुने दिनमेकं तु चैत्रे तु घटिकात्रयम् ॥ ६॥

पूस में वर्षा होने पर तीन दिन के, माघ में दो दिन के, फाल्गुन में एक दिन के और चैत्र में तीन घटी के बाद शुभ काम करना चाहिए ॥ ६ ॥

श्रीपति:—

श्रीपतिजी के आधार पर

सौदामिनीवर्षणगर्जितेषु नाकालजेषु प्रवसेन्नरेंद्र:।
आसप्तरात्रादुत दर्शनेषु दिव्यान्तरिक्षक्षितिजेषु चैवम् ॥ ७॥

आचार्य श्रीपति ने कहा है कि बिजली, वर्षा, गर्जना, त्रिविध उत्पात, असमय में होने पर सात दिन के पश्चात् शुभ काम करना चाहिए ॥ ७ ॥

शौनक:—

शौनक जी के आधार पर

पौषादिमासेषु चतुर्षु वृष्टिस्त्वकालजा स्यान्न हि तत्र यात्राम्।
कुर्यान्नृपश्चेत्कुरुतेऽतिमोहात्प्रवर्तते शत्रुपराभिभूत: ॥ ८॥

ऋषि शौनकजी ने बताया है कि पौषादि चार मासों में वर्षा होने पर असामयिकी वर्षा कहलाती है। राजा को इसमें यात्रा नहीं करनी चाहिए। यदि मोहवश वह शत्रु पर चढ़ाई कर दे तो शत्रु से पराजित होकर वापिस आता है ॥ ८ ॥

गर्गः—

गर्गजी के आधार पर

पौषादि मासचत्वारि वृष्टिः प्रोक्ता त्वकालजा।
तत्र यात्रा व्रतारम्भं वर्जयेत्सप्त वासरान् ॥ ९ ॥

गर्गजी ने बताया है कि पूस, माघ, फाल्गुन, चैत में वर्षा, अकालजा होती है। इसमें अर्थात् इसके होने पर सात दिन के अनन्तर यात्रा, जनेऊ आदि करना चाहिए ॥ ६ ॥

माण्डव्यः—

माण्डव्यजी के आधार पर

तावत्प्रयाणादिषु भूपतीनामकालवृष्टिः प्रकरोति दोषम्।
यावद्भवेत्सञ्चरतां जनानां तथा पशूनां चरणाङ्किता भूः ॥ १० ॥

ऋषि माण्डव्यजी ने बताया है कि राजाओं की यात्रा आदि में अकालवृष्टि का दोष तब तक रहता है जब तक मनुष्य तथा पशुओं के चलने पर उनके पैर के चिह्न भूमि में दिखाई दें ॥ १० ॥

चण्डेश्वरः—

चण्डेश्वरजी के आधार पर

वृष्टिः करोति दोषं तावन्नाकालसम्भवा राज्ञः।
यावन्न भवति याने नरपशुचरणाङ्किता वसुधा ॥ ११ ॥

आचार्य चण्डेश्वरजी ने बताया है कि राजा के लिए असामयिकी वर्षा का दोष तब तक नहीं होता है कि जब तक मनुष्य और पशुओं के चलने पर उसके पैर अंकित न हों ॥ ११ ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते
सङ्ग्रहे वृहद्दैवज्ञरञ्जने पञ्चत्रिंशं अकालवृष्टि-
प्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञ रञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का अकालवृष्टि नामक पैंतीसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधर-चतुर्वेदकृता पञ्चत्रिंशत्प्रकरणस्य वृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ३५ ॥

अथ षट्त्रिंशं त्याज्यप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे ३६ वें प्रकरण में शुभकार्यों में क्या होने पर शुभ का त्याग करना चाहिए, इसे विविध ग्रन्थों के आधार पर बताते हैं ।

ज्योतिष्प्रकाशे—

ज्योतिष प्रकाश के आधार पर

[1]जन्माधिपविलग्नेशचन्द्रभार्गवमन्त्रिणाम् ।
विरश्मित्वं जन्ममासो जन्मभे जन्मवासरः ॥ १ ॥
[2]दुर्निमित्तं मनोभङ्गं क्षयमासाधिमासकौ ।
मृतजातकयोश्चैव सूतकं ग्रहणस्य च ॥ २ ॥
[3]ज्वरोत्पत्तिरजोमातृपित्रोः क्षयदिनं तथा ।
गण्डान्तत्रितयः कालः सन्धिर्भस्य तिथेस्तनोः ॥ ३ ॥
[4]क्रान्तिपातो व्यतीपातो वैधृतिः परिघार्द्धकम् ।
भानोः सङ्क्रान्तिभोगश्च कुलिकं चार्द्धयामकम् ॥ ४ ॥
[5]क्रूरैर्मुक्तं युतं भोग्यं सराहुशिखिधूमितम् ।
धिष्ण्यं ग्रहणगं पापैर्विद्धं सौम्यैस्तु पादतः ॥ ५ ॥
[6]वृष्टिः क्रूरयुतं लग्नं लग्नेशो रिपुमृत्युगः ।
जन्मतो नैधनेशस्तु लग्नेशो निधनोपगः ॥ ६ ॥
[7]जन्मभाज्जन्मलग्नाद्वा लग्नलग्नेशकाष्टकौ ।
पापयोर्मध्यलग्नेन्दुः क्षीणेन्दुः कुनवांशकः ॥ ७ ॥
[8]क्रूरवारे पापहोरा दुष्टयोगग्रहोद्भवः ।
तिथिवृद्धिक्षयौ भानां नाडिका विषसंज्ञिकाः ॥ ८ ॥
वर्षायनर्तुमासानां सन्धिर्वृष्टिरकालजा ।
होलाष्टसङ्ग्रहो दोषः दशा गोचररिष्टजा ॥ ९ ॥
रिक्तातिथिर्दग्धदिनं तथोत्पन्नदिनर्क्षकम् ।
लत्तैकार्गलचण्डास्त्रकालवेला च पञ्चकम् ॥ १० ॥

---

१. ज्यो० नि० ६७ पृ० १ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० ६७ पृ० २ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ६७ पृ० ३ श्लो० ।
४. ज्यो० नि० ६७ पृ० ४ श्लो० ।
५. ज्यो० नि० ६७ पृ० ५ श्लो० ।
६. ज्यो० नि० ६७ पृ० ६ श्लो० ।
७. ज्यो० नि० ६७ पृ० ७ श्लो० ।
८. ज्यो० नि० ६७ पृ० ८ श्लो० ।

मृत्युयोगोपग्रहश्च यामित्रांशोऽष्टषड्विधः ।
षड्वर्गः पापखेटानां भृगुः षष्ठः कुजोऽष्टमः ॥ ११ ॥
[1]एते दोषाः समाख्याताः शुभकर्मणि गर्हिताः ।

ज्योतिष प्रकाश में कहा है कि राशीश, लग्नेश, चन्द्र, भृगु, गुरु के अस्त होने पर जन्म मास, जन्म नक्षत्र, जन्म वार, दुर्निमित्त, क्षय, अधिक मास, जन्म-मरण सूतक तथा ग्रहण सूतक, ज्वर. रज, माता पिता का श्राद्ध दिन, तीनों गण्डान्त, नक्षत्र-तिथि-लग्न का सन्धिकाल, क्रान्तिपात, व्यतीपात, वैधृति, परिघार्द्ध, सूर्य का संक्रमण भोग, कुलिक, अर्धयाम, क्रूर ग्रह से मुक्त, भोग्य, राहु-केतु से युत, ग्रहणगत नक्षत्र, पाप से विद्ध होने पर, पूर्ण वृष्टि और शुभ विद्ध होने पर, चरण रीत्या वर्षा, पाप से युत लग्न, लग्नेश ६ या ८ में, राशि से अष्टमेश ६ । ८ में, लग्नेश ८ में, जन्मराशि या लग्न से लग्न लग्नेश अष्टम में, पाप के मध्य में लग्न, चन्द्रमा, क्षीण चन्द्रमा, पाप ग्रह का नवांश, क्रूर ग्रह का वार, पाप होरा, दुष्ट योग ग्रहजन्य. तिथि क्षय-वृद्धि, विष संज्ञक नक्षत्रों की घटी, वर्ष, अयन, ऋतु, मास की सन्धि, असामयिक वर्षा, होलिकाष्टक, संग्रह दोष, अरिष्टज दशा, रिक्ता तिथि, दग्ध दिन, जन्म दिन, नक्षत्र, लत्ता, एकार्गल, चण्डास्त्र, कालवेला, पंचक, मृत्युयोग, उपग्रह, जामित्र, षडष्टक, षड्वर्ग में पाप ग्रह, छठे शुक्र, आठवें मंगल ये दोष कहे जाते हैं । इन्हें शुभ काम में त्यागना चाहिये ॥ १–११½ ॥

दोष होने पर कार्य नाम से फल

एते दोषा विवाहे तु वैधव्यं भङ्गमाहवे ॥ १२ ॥
[2]विद्यारम्भे च मूर्खत्वं यात्रायां निष्फलं स्मृतम् ।
[3]व्रते च कर्मवाह्यत्वं रोगं च क्षौरकर्मणि ॥ १३ ॥

नवान्नप्राशने मान्द्यं गृहारम्भे सुखक्षयम् ।
[4]दैन्यं गृहप्रवेशे तु वन्ध्यात्वं गर्भशोधने ॥ १४ ॥

कृषिकर्मणि वैफल्यं ग्रामकार्ये नृपो परः ।
[5]राज्यनाशं प्रतिष्ठायामग्न्याधानेऽग्निनाशनम् ॥ १५ ॥

पट्टाभिषेके दारिद्र्यं हानिर्वाणिज्यकर्मणि ।
[6]विरोधः स्वामिसेवायां हरणं च विभूषणे ॥ १६ ॥

दारिद्र्यं मरणं हानिः सर्वकार्ये विदुर्बुधाः ॥ १७ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६७ पृ० ६ श्लो० । २. ज्यो० नि० ६९ पृ० ५ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ६६ पृ० ६ श्लो० । ४. ज्यो० नि० ६६ पृ० ७ श्लो० ।
५. ज्यो० नि० ६६ पृ० ८ श्लो० । ६. ज्यो० नि० ६६ पृ० ६ श्लो० ।

ये उक्त दोष यदि विवाह में होते हैं तो कन्या का वैधव्य, युद्ध में पराजय, विद्यारम्भ में मूर्खता, यात्रा में अभीष्ट की असिद्धि, जनेऊ में कर्म से बाह्यता. क्षौर में रोग, नवीन अन्न ग्रहण में मन्दाग्निता, गृहारम्भ में सुख का नाश, गृह प्रवेश में हीनता, सीमन्त पुंसवन में वन्ध्यापन, खेती में फलहीनता, ग्राम कार्य में परवश्यता, प्रतिष्ठा में राज्य नाश, अग्न्याधान में अग्नि का नाश, पट्टाभिषेक में दरिद्रता, व्यापार में हानि, नौकरी में विरोध, अलङ्कार में हरण भय. और दरिद्रता, मरण, समस्त शुभ कामों में हानि होती है. ऐसा विद्वानों ने बताया है ॥ ११½–१७ ॥

अथ पृथक् फलम्—

अब आगे वहीं पर लिखित अलग अलग फल को बताते हैं।

तत्रैव—

जन्माधिपादि के अस्त, बाल्य, वृद्धत्व में फल

जन्माधिपविलग्नेशचन्द्रभार्गवमन्त्रिणाम् ।
अस्ते बाल्ये च वृद्धे च शुभकर्ता विनश्यति ॥ १८ ॥

राशीश, लग्नेश, चन्द्र, शुक्र, गुरु के अस्त, बाल्य, वृद्ध काल में कोई शुभ कार्य करता है तो उसका मरण होता है ॥ १८ ॥

जन्म नक्षत्र-तिथि-मास-लग्न में फल

जन्मर्क्षे सुखहानिः स्यात्कलिर्जन्मतिथावपि ।
जन्ममासे भयं घोरं जन्मलग्नं शुभावहम् ॥ १६ ॥

जन्म नक्षत्र में शुभ कार्य करने पर सुख का नाश, जन्मतिथि में कलह, जन्म मास में घनघोर भय और जन्म लग्न में शुभ होता है ॥ १९ ॥

दुर्निमित्त, मनोभंग, क्षय, अधिक मास में फल

दुर्निमित्ते मृतिं विन्द्यात् मनोभङ्गमसिद्धिता ।
गात्रभङ्गः क्षये मासे विग्रहस्त्वधिमासके ॥ २० ॥

दुर्निमित्त दोष में शुभ कार्य करने पर मरण, मनोभंग में असिद्धि, क्षय मास में शरीर भङ्गता और अधिक मास में लड़ाई होती है ॥ २० ॥

ग्रहण-जन्म-मरण सूतक में फल

शुभकर्मकृतो मृत्युर्मृतिजातकसूतके ।
हानिर्मृत्युभयं कर्तुः सूतके ग्रहणस्य च ॥ २१ ॥

मरण या जातक के सूतक में शुभ कार्य करने पर कर्ता की मृत्यु और ग्रहण के सूतक में शुभ काम करने पर हानि या मृत्यु भय होता है ॥ २१ ॥

रजोत्पत्ति व माता-पिता श्राद्ध में फल

रजोत्पत्तौ मृतिं विन्द्याद्रोगं पित्रोः क्षयेऽहनि ॥ २२ ॥

स्त्री के मासिक धर्म में शुभ काम करने पर मरण और माता-पिता के श्राद्ध दिन में करने पर रोग होता है ॥ २२ ॥

अब आगे कश्यप संहिता के आधार पर अलग अलग दोषों में कार्य करने के फल को बताते हैं।

कश्यपसंहितायाम्—

वर्ष-अयन-मास-ऋतु-तिथि-नक्षत्र सन्धि में फल

[1]वत्सरायनमासर्तुसन्धिर्दैन्यप्रदः शुभे ।
तिथिसन्धौ मनस्तापो धिष्ण्यसन्धौ महद्भयम् ॥ २३ ॥

कश्यप संहिता में बताया है कि वर्ष-अयन-मास-ऋतु सन्धि में शुभ काम करने पर दैन्यता, तिथि सन्धि में मन में दुःख और नक्षत्र सन्धि में अधिक भय होता है ॥ २३ ॥

योग-लग्न-सन्धि और त्रिविध गण्डान्त में फल

[2]योगसन्धौ भ्रमस्तीव्रो लग्नसन्धौ सुखक्षयः ।
तिथिलग्नभगण्डान्ते कार्यनाशक्षतिर्मृतिः ॥ २४ ॥

योग सन्धि में शुभ काम करने पर तीव्र भ्रम, लग्न सन्धि में सुख का विनाश, तिथि गण्डान्त में कार्य का विनाश, लग्न गण्डान्त में क्षति तथा नक्षत्र गण्डान्त में मरण होता है ॥ २४ ॥

क्रान्तिसाम्य-व्यतीपात-वैधृति-परिघार्ध में फल

क्रान्तिसाम्ये मृतिः कर्तुर्व्यतीपाते कुलक्षयः ।
[3]वैधृतौ जीवहानिः स्यात्परिघार्द्धे च रोगदम् ॥ २५ ॥

क्रान्ति साम्य दोष में शुभ काम करने से कर्ता का मरण, व्यतीपात में कुल का नाश, वैधृति में जीवहानि और परिघार्ध दोष में रोग होता है ॥ २५ ॥

सूर्य संक्रान्ति-कुलिक-यमघंट में फल

अर्कसङ्क्रान्तिभागेषु मृत्युरेव न संशयः ।
कुलिके मरणं विन्द्याद्यमघण्टेऽर्थनाशनम् ॥ २६ ॥

सूर्य संक्रमण में शुभ कार्य करने पर निःसन्देह मृत्यु, कुलिक में मरण और यमघंट दोष में शुभ काम करने पर धन का नाश होता है ॥ २६ ॥

यामार्ध-कालवेला-धूमित-दग्ध नक्षत्र में फल

यामार्द्धे कार्यहानिः स्यात्कालवेलाभयं मृतिः ।
धूमिते भे भवेद्व्याधिः दग्धे कार्यं न सिद्ध्यति ॥ २७ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६८ पृ० ४ श्लो० । २. ज्यो० नि० ६८ पृ० ५ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० ६८ पृ० १२ श्लो० ।

यामार्द्ध दोष में शुभ काम करने पर कार्य का नाश, कालवेला में भय, मृत्यु, धूमित नक्षत्र में व्याधि और दग्ध नक्षत्र में शुभ आचरण से कार्य की असिद्धि होती है ॥ २७ ॥

ज्वलित-विद्ध नक्षत्र, भद्रा, ग्रहण नक्षत्र में फल

[1]ज्वलिते मृत्युरेव स्याद्विद्धे विघ्नं समादिशेत् ।
विष्टयां भ्रंशो भवेन्नूनं ग्रहणर्क्षे पराभवः ॥ २८ ॥

ज्वलित नक्षत्र में शुभ काम करने पर मृत्यु, विद्ध नक्षत्र में विघ्न, भद्रा में अवश्य भ्रंशता और ग्रहण के नक्षत्र में तिरस्कार होता है ॥ २८ ॥

लग्न-अष्टम-चतुर्थ-व्यय में पाप का फल

[2]लग्ने क्रूरयुते नाशो चाष्टमे च तनोः क्षयः ।
चतुर्थे जायते वैरं जन्माङ्गात् व्ययगे व्ययम् ॥ २९ ॥

लग्न पाप से युत होने पर शुभ कर्म करने से नाश, अष्टम में शरीर का क्षय, चतुर्थ में शत्रुता और बारहवें पाप ग्रह होने पर शुभ कार्य करने से व्यय होता है ॥ २९ ॥

अष्टम-लग्न में पाप व षष्ठस्थ लग्नेश का फल

जन्मन्यष्टमगः क्रूरो मृत्युदो यदि लग्नगः ।
षष्ठे लग्नाधिपो नूनं स्वयमेव रिपुर्भवेत् ॥ ३० ॥

अष्टम व लग्न में पाप ग्रह होने पर शुभ काम करने से मृत्यु और लग्नेश छठे में होने पर शुभ कर्म करने से स्वयं सब का शत्रु होता है ॥ ३० ॥

अष्टम-व्ययस्थ पाप व पाप कर्तरी-समांश में फल

अष्टमो मृत्युदश्चैव व्ययगो व्ययकारकः ।
विघ्नं स्यात्पापकर्तर्यां समांशे मरणं ध्रुवम् ॥ ३१ ॥

अष्टम में पाप ग्रह होने पर मरण, व्ययस्थ में अधिक व्यय. पाप कर्तरी में विघ्न और समनवांश में निश्चय मृत्यु होती है ॥ ३१ ॥

क्षीणचन्द्र, कुत्सित नवांश, क्रूरवार व होरा में फल

क्षीणेन्दौ दीर्घरोगः स्यात्कुनवांशे तथैव च ।
क्रूरवारे महाक्रोधं क्रूरहोरा विरोधिनी ॥ ३२ ॥

क्षीणचन्द्रमा में लम्बी बीमारी, कुत्सित नवांश में भी वही, पाप वार में अधिक क्रोध और पाप की होरा में विरोध होता है ॥ ३२ ॥

तिथि नक्षत्र वार जन्य दुष्ट योग-कुमूहूर्त, कुहू में फल

मिथ्याभिदूषणं दुष्टयोगे तिथिभवारजे ।
कुमुहूर्ते त्वनिष्टं स्यात्कुहूर्विघ्नकरी स्मृता ॥ ३३ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६८ पृ० १० श्लो० ।   २. ज्यो० नि० ६८ पृ० १४ श्लो० ।

तिथि-नक्षत्र-वारजनित दुष्टयोग में शुभारम्भ करने पर झूठा आरोप, कुमुहूर्त में अनिष्ट और कुहू में शुभ काम करने पर विघ्न होता है ॥ ३३ ॥

तिथि वृद्धि क्षय-विष नाडी-अकालवृष्टि में फल

तिथिवृद्धिक्षये हानिर्विषनाड्यां विषाद्भयम् ।
अकालवृष्टिदोषश्च रोगशोकभयप्रदः ॥ ३४ ॥

तिथि के घटने-बढ़ने पर हानि, विषघटी में जहर से भय और अकालीन वर्षा में शुभ कर्म करने पर रोग-शोक और भय होता है ॥ ३४ ॥

होलाष्टक-संग्रह-गोचर-दशा अरिष्ट में

होलाष्टके विपत्तिः स्यात् सङ्ग्रहे दीर्घरोगकृत् ।
व्यसनं गोचरारिष्टे दशारिष्टे च बन्धनम् ॥ ३५ ॥

होलाष्टक में शुभ काम करने पर विपत्ति, संग्रह दोष में लम्बी बीमारी और गोचर व दशा अरिष्ट में शुभ कर्म करने से बन्धन (जेल) होता है ॥ ३५ ॥

रिक्ता तिथि-दग्ध तिथि, उत्पातीय नक्षत्र में फल

रिक्तायाम् च तिथौ कार्यकर्तुः कार्यं न सिद्ध्यति ।
दग्धे दग्धं भवेत्कार्यमुत्पातर्क्षमनिष्टदम् ॥ ३६ ॥

रिक्ता तिथि में शुभारम्भ करने पर कर्ता के कार्य की असिद्धि. दग्ध में दग्धता और उत्पात के नक्षत्र में शुभ कार्य करने से अनिष्ट होता है ॥ ३६ ॥

लत्ता-पंचक-चण्डायुध-एकार्गल में फल

[1]लत्तायां वाहनात्पातः पञ्चके भयरोगकृत् ।
चण्डायुधेऽसृजं दुःखं वैरमेकार्गले कलिः ॥ ३७ ॥

लत्ता दोष में शुभ काम करने पर सवारी से गिरना, पंचक में भय व रोग, चण्डायुध में रुधिर, दुःख वैर और एकार्गल दोष में शुभ काम करने पर कलह होता है ॥ ३७ ॥

मृत्यु योग-उपग्रह यामित्रादि दोष में फल

मृत्युयोगे भवेन्मृत्युस्तथैवोपग्रहे मृतिः ।
यामित्रादिषु दोषेषु वैरं चाप्यनपत्यता ॥ ३८ ॥

मृत्यु योग दोष में शुभ काम करने पर मरण, उपग्रह में मृत्यु और यामित्रादि दोषों में शुभ काम करने पर शत्रुता व संतान हीनता होती है ॥ ३८ ॥

अन्य स्थिति में फल

लग्नादष्टमषष्ठस्थो मृत्युकारी न संशयः ।
षड्वर्गे पापखेटानां भृगौ षष्ठे कुजेऽष्टमे ।
कार्यसिद्धौ महाविघ्नं भवेत्तत्र न संशयः ॥ ३९ ॥

---

१. ज्यो. नि. ६८ पृ० ८ श्लो० ।

लग्न से छठे, आठवें पाप ग्रह होने पर शुभारम्भ होने से अवश्य मरण, पाप ग्रहों के षड्वर्ग में, छठे शुक्र, अष्टमस्थ भौम में निःसन्देह काम की सिद्धि में बड़े विघ्न होते हैं ॥ ३९ ॥

ब्रह्मर्षिसंहितायाम्—

ब्रह्मर्षि संहिता के आधार पर दोष

[१]परिवेषं दिग्धूमं दिग्दाहं दुर्दिनं च नीहारम् ।
निर्घातं ग्रहयुद्धं प्रतिमास्वेददर्शनं महीकम्पम् ॥ ४० ॥
[२]रात्रौ सुरेन्द्रचापं सन्ध्यायामार्सनं शिवारावम् ।
उल्कापतनं दिवसे देशादेर्नाशनं जगदुः ॥ ४१ ॥

ब्रह्मर्षि संहिता में बताया है कि मण्डल, दिग्धूम, दिग्दाह, दुर्दिन, कुहरा, निर्घात, ग्रह युद्ध, मूर्ति से पसीना आना, भूचलन, रात में इन्द्र धनुष, सन्ध्याकाल में जोर-जोर से सियारों का बोलना, दिन में उल्का पात होने पर देशादि का नाश होता है ॥४०-४१॥

नारदः—

नारद जी के आधार पर

[३]पञ्चाङ्गशुद्धिरहितो दोषस्त्वाद्यः प्रकीर्तितः ।
उदयास्तशुद्धिरहितो द्वितीयः सूर्यसङ्क्रमः ॥ ४२ ॥
[४]तृतीयः पापषड्वर्गो भृगुः षष्ठः कुजोऽष्टमः ।
गण्डान्तकर्तरीरिःफषट्केन्दुश्च सङ्ग्रहः ॥ ४३ ॥
[५]दम्पत्योरष्टमं लग्नं राशिर्विषघटी तथा ।
दुर्मुहूर्तो वारदोषो खार्जूरिकसमाङ्घ्रिभे ॥ ४४ ॥
[६]ग्रहणोत्पातभं क्रूरविद्धर्क्षे क्रूरसंयुतम् ।
कुनवांशो महापातो वैधृतिश्चैकविंशतिः ॥ ४५ ॥
एते प्रोक्ता महादोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः ।
यदि मोहात्कृतं कर्म तदा विघ्नं भवेद्ध्रुवम् ॥ ४६ ॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि प्रथम पञ्चाङ्ग शुद्धि रहित दोष, दूसरा उदयास्त-शुद्धि रहित, तीसरा पापों का षड्वर्ग, षष्ठस्थ शुक्र, अष्टम में भौम, गण्डान्त, कर्तरी, १२।६ में चन्द्र संग्रह दोष, वर कन्या का अष्टम लग्न व राशि, विष घटी,

---

१. ज्यो. नि. ६८ पृ० १९ श्लो० । २. ज्यो. नि. ६८ पृ० २० श्लो० ।
३. ज्यो. नि. ६६ पृ० १ श्लो० । ४. ज्यो. नि. ६६ पृ० २ श्लो० ।
५. ज्यो. नि. ६९ पृ० ३ श्लो० ।
६. ज्यो. नि. ६६ पृ० ४ श्लो० । तथा ज्यो. सा. १२५ पृ० ।

दुर्मुहूर्त, वारदोष, खार्जूर, क्रान्ति साम्य, ग्रहण व उत्पात का नक्षत्र, क्रूर ग्रह से विद्ध व युत नक्षत्र, कुत्सित नवांश, वैधृति और इक्कीसवाँ नक्षत्र ये सब महादोष होते हैं। इनका शुभ काम में त्याग करना चाहिये। यदि कोई मोह वश शुभ कार्य करता भी है तो अवश्य ही अधिक विघ्न होते हैं ॥ ४२-४६ ॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने षट्त्रिंशं त्याज्यप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का छत्तीसवां त्याज्य नाम वाला प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ३७ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता षट्त्रिंशत्प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका समाप्तिमगात् ॥ ३६ ॥

अथ सप्तत्रिंशं वर्ज्यकालप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे सैंतीसवें प्रकरण में वर्ज्य समय को विविध ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं।

शौनकः—

शौनकजी के आधार पर

गुर्वादित्ये व्यतीपाते वक्रातीचारगे गुरौ ।
नष्टे शशिनि शुक्रे वा बालवृद्धेऽथ वा गुरौ ॥ १ ॥
पौषे चैत्रेऽथ वर्षासु शयनाधिकमासके ।
केतूद्गमे निरंशेऽर्के सिंहस्थे देवमन्त्रिणि ॥ २ ॥
विवाहव्रतयात्रादि पुरहर्म्यगृहादिकम् ।
क्षौरविद्योपविद्यां च यत्नतः परिवर्जयेत् ॥ ३ ॥

ऋषि शौनकजी ने बताया है कि गुर्वादित्य, व्यतीपात, वक्र व गुरु के अतिचार, क्षीणचन्द्र, शुक्र गुरु का बालत्व-वार्द्धक्य, पूस, चैत, वर्षा, देवशयन, अधिकमास, केतु उदय, संक्रमण तथा सिंहस्थ गुरु में विवाह, यज्ञोपवीत, यात्रादि, नगर, महल, घर, क्षौर, विद्या और उपविद्याओं का त्याग करना चाहिए ॥ १–३ ॥

उल्कादि पतन में त्याज्य दिन

उल्कापातेन्द्रचापप्रबलघनरजो धूमनिर्घातविद्युद्-
वृष्टिप्रत्यर्कदोषादिषु सकलबुधैस्त्याज्यमेवैकरात्रम् ।
दुःस्वप्ने दुर्निमित्ते ह्यशुभफलदृशो दुर्मनो भ्रान्तबुद्धौ
चौले मौञ्जीनिबन्धे परिणयनविधौ सर्वदा त्याज्यमेव ॥ ४ ॥

उल्का पतन, इन्द्रधनुष, प्रबल मेघ या जोर की आंधी, धूम, निर्घात, बिजली, वर्षा, प्रत्यर्क दोषादि में समस्त पण्डितों ने एक दिन का त्याग बताया है। दुःस्वप्न, दुर्निमित्त, पाप से दृष्ट, दुर्मन और भ्रमित बुद्धि होने पर चौल, जनेऊ, विवाह कभी नहीं करना चाहिए ॥ ४ ॥

गर्गः—

गर्गाचार्य के आधार पर

दिग्दाहे दिनमेकं तु ग्रहे सप्तदिनानि तु ।
भूकम्पे च समुत्पन्ने त्र्यहमेव तु वर्जयेत् ॥ ५ ॥

गर्गाचार्य ने बताया है कि दिग्दाह में एक दिन, ग्रहण में सात दिन और भूकम्प होने पर तीन दिन का त्याग करना चाहिए ॥ ५ ॥

अन्य

उल्कापाते त्रिदिवसं धूमे पञ्च दिनानि तु ।
वज्रपाते चैकदिनं वर्जयेत्सर्वकर्मसु ॥ ६ ॥

उल्का पतन में तीन दिन, धूमित में पांच दिन और बिजली गिरने पर एक दिन समस्त कामों में छोड़ना चाहिए ॥ ६ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठजी के आधार पर

[1]सवैधृतिर्विष्टिरथाष्टमेन्दुः सपातयोगः परिघार्द्धमाद्यम् ।
तिस्रोऽष्टकाश्चोक्तनिसर्गदोषाः सर्वत्र वर्ज्याः खलु मङ्गलेषु ॥ ७ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि वैधृति, भद्रा, व्यतीपात, परिघार्ध का पहिला हिस्सा और ३८ उक्त दोषों का मङ्गल कार्य में सर्वदा त्याग करना चाहिए ॥ ७ ॥

भास्करादिषु योगेषु ये मुहूर्ताश्च निन्दिताः ।
विवाहादिषु तैः वर्ज्या अपि लक्षगुणैर्युताः ॥ ८ ॥

भास्करादि योगों में जो निन्दित मुहूर्त हैं विवाहादि शुभ कामों में उनका लाख गुणों से युक्त होने पर भी त्याग करना चाहिए ॥ ८ ॥

[2]दोषो महापात इति प्रसिद्धः सवैधृतो हन्ति वधूवरं च ।
तं रक्षितुं लग्नगुणास्त्वशक्ताः स्वबान्धवास्तेऽशनितोपघातात् ॥ ९ ॥

वैधृति के साथ महापात नामक दोष वधू वर का नाश करता है । उसकी रक्षा करने में लग्न के गुण ऐसे ही समर्थ नहीं होते हैं जैसे व्रजप्रहार से घायल को बचाने में उसके वान्धव ।

बृहस्पतिसंहितायाम्—

बृहस्पति संहिता के आधार पर

दिग्दाहे वा महादारुपतने वाम्बुवर्षणे ।
उल्कापाते महापाते महाशनिनिपातने ॥ १० ॥
अनभ्रेऽशनिपाते च भूकम्पपरिवेष्टयोः ।
ग्रामोपान्ते शिवाशब्दे दुर्निमित्ते न शोभनम् ॥ ११ ॥

बृहस्पति संहिता में बताया है कि दिग्दाह, महावृक्ष का पतन, वर्षा, उल्का पतन, महापात, बज्र गिरने पर, विना मेघ के बिजली पतन, भूकम्प, मण्डल, गांव के पास सियारों का रोना और दुर्निमित्त में शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ १०-११ ॥

प्रकारान्तर

केतवो यत्र दृश्यन्ते सधूमा वा पृथक् द्वयोः ।
ग्रहाणां ग्रहणे चैव वर्जयेद्दिनसप्तकम् ॥ १२ ॥

---

१. व० सं० ३२ अ० १९ श्लो० ।　　२. व० सं० ३२ अ० ३ श्लो० ।

जिस स्थान पर धूम के साथ या विना धूम के केतु का उदय होता है तथा सूर्य चन्द्रमा का ग्रहण होता है तो वहाँ पर सात दिन तक शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ १२ ॥

प्रकारान्तर

युद्धे ग्रहाणामन्योन्यं निर्घाते वा कुकम्पने ।
महोत्पातयुते काले सप्तरात्रं शुभं त्यजेत् ॥ १३ ॥

ग्रहों के पारस्परिक युद्ध, निर्घात, भूकम्प और महापात युक्त काल में सात दिन तक शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ १३ ॥

पुनः त्याग

नृपो वा नृपमन्त्री वा दैवज्ञो वा महान्मृतः ।
पुरोहितोऽथ वा विद्वान् भिषग्वा नृपसेवकः ॥ १४ ॥
यज्वा वा वेदविद्वान् वा यतिर्वा संयतेन्द्रियः ।
यत्र देशे मृतो ग्रामे सप्ताहं वर्जयेच्छुभान् ॥ १५ ॥

जिस देश में या गाँव में राजा, राज सचिव, ज्योतिषी, महापुरुष, पुरोहित, पंडित, वैद्य, राजसेवक, हवन कर्ता, वेद का विद्वान्, संन्यासी अथवा जितेन्द्रिय का मरण होता है, वहां सात दिन तक शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ १४-१५ ॥

अथ मासे शून्यराशयः—

अब आगे मास में शून्य तिथियों को ज्ञानमञ्जरी के वाक्यों से बताते हैं ।

ज्ञानमञ्जर्याम्—

ज्ञानमञ्जरी के आधार पर मास में शून्य तिथि ज्ञान

द्वितीया धनमीनेषु चतुर्थी वृषकुम्भयोः ।
मेषकर्कटयोः षष्ठी कन्यामिथुनगाष्टमी ॥ १६ ॥
दशमी वृश्चिके सिंहे द्वादशी मकरे तुले ।
एताश्च तिथयो दग्धा वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ १७ ॥
विवाहे म्रियते कन्या यात्रायां मरणं ध्रुवम् ।
कृषिकर्मणि शून्यत्वं तिथौ दग्धे फलं वदेत् ॥ १८ ॥

ज्ञानमञ्जरी में कहा है कि पौष-चैत में द्वितीया, जेठ, फागुन में चतुर्थी, वैशाख-सावन में षष्ठी, क्वार-आषाढ में अष्टमी, अगहन-भादो में दशमी, माघ-कार्तिक में द्वादशी ये तिथियाँ दग्ध होती हैं । शुभ काम में इनका प्रयत्न से त्याग करना चाहिए इनमें विवाह करने पर कन्या की मृत्यु, यात्रा में अवश्य मरण और खेती के काम में शून्यता होती है । यह दग्धा तिथि का फल कहे ॥ १६–१८ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठ के आधार पर

[1]एकान्तरा दिनकरे तिथयो द्वितीया पूर्वाद्धनुःशफरयोर्वृषकुम्भयोश्च।
कर्काजयोश्च मिथुनावलयोर्मृगेन्द्रकौर्प्योस्तुलामकरयोश्च भवन्ति दग्धाः ॥१९॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि धनु मीन के सूर्य में द्वितीया, वृष कुम्भ में चतुर्थी, कर्क मेष में षष्ठी, मिथुन कन्या में अष्टमी, सिंह वृश्चिक के सूर्य में दशमी, तुला मकर के सूर्य में द्वादशी तिथि एकान्तर से दग्धा होती है ॥ १९ ॥

बृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर

जीवर्क्षौ द्वौ द्वितीयायां चतुर्थ्यां घटतावुरी।
षष्ठ्यामालेयमेषौ च वुधक्षेत्रेऽष्टमीयुते ॥ २० ॥
कौर्पिसिंहौ दशम्यां च द्वादश्यां मृगजीवभौ।
इमे मृत्युप्रदा योगा लग्ने तिथिषु शोभने ॥ २१ ॥

बृहस्पति जी ने बताया है कि धनु, मीन के सूर्य में द्वितीया, कुम्भ वृष में चतुर्थी, कर्क मेष में षष्ठी, मिथुन कन्या में अष्टमी, सिंह वृश्चिक में दशमी और तुला-मकर में द्वादशी तिथि दग्धा होती है। ये योग तिथि में या इष्ट लग्न में हों तो मरण होता है ॥ २०-२१ ॥

वसिष्ठः—

दग्ध तिथियों में कार्य का फल वसिष्ठजी के आधार पर

मासदग्धासु तिथिषु कृतं यन्मङ्गलादिकम्।
तत्सर्वं नाशमायाति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ २२ ॥
अस्यापवादमाह बृहस्पतिः।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि मास दग्ध तिथियों में जो मांगलिक काम करता है, उसका ऐसे विनाश होता है जैसे गर्मी में बरसाती नदी नष्ट हो जाती हैं ॥ २२ ॥

बृहस्पति ने इसका अपवाद कहा है।

अथ पक्षछिद्रास्तिथयः—

ज्योतिषचिन्तामणौ—

ज्योतिष चिन्तामणि के आधार पर पक्षछिद्र तिथि ज्ञान

[2]तिथिस्तु युग्मा खलु पक्षरन्ध्रं भवेद्द्वितीयां दशमीं च हित्वा।
ईशश्च तासां विषमा वरिष्ठा स्मृता मुनीन्द्रैर्नवमीं विहाय ॥ २३ ॥

ज्योतिष चिन्तामणि में बताया है कि दोनों पक्षों की सम तिथियां द्वितीया व दशमी को छोड़कर पक्षरन्ध्र होती हैं तथा नवमी को त्यागकर अवशिष्ट विषम तिथियाँ श्रेष्ठ होती हैं ॥ २३ ॥

---

१. ज्यो. नि. ३६ पृ० २५ श्लो०।   २. ज्यो. नि. ३६ पृ० २६ श्लो०।

राशिवश अशुभ तिथियाँ

[1]आद्याश्चतस्रः क्रियपूर्वकानां मेषाच्चतुर्णामिह पञ्चमी स्यात्।
परापरेषां परतस्तथैव सक्रूरराशेरशुभा तिथिः स्यात्॥ २४॥

मेष, वृष, मिथुन, कर्क इनकी क्रम से प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और चारों की पञ्चमी तिथि तथा सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, राशि की षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी क्रम से व सिंहादि चारों की दशमी तिथि और धनु, मकर, कुम्भ, मीन राशियों की क्रम से एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं धनु आदि चारों की पूर्णिमा व अमा तिथि अशुभ होती है। क्रूर राशि की तिथि भी अशुभ होती है॥ २४॥

मुहूर्तगणपति में बताया है 'मेषादीनां चतुर्णां हि चतस्रः प्रतिपन्मुखाः। तिथयस्तच्चतुष्कस्य पञ्चमी परिकीर्तिता। सिंहकन्यातुलालीनां षष्ठ्यादितिथयः क्रमात्। दशम्येतच्चतुष्कस्य तथा चैकादशीमुखाः। चतस्रो धनुरादीनामेतेषां पूर्णिमाप्यमा। पापयुक्तस्य राशेर्या तिथिः सा न शुभावहा'॥ (१ प्र० १७-१६ श्लो०)॥ २४॥

स्पष्टार्थं चक्र

मे०	वृ०	मि०	क०	सिं०	क०	तु०	वृ०	ध०	म०	कु०	मी०	राशि
१	२	३	४	६	७	८	९	११	१२	१३	१४	तिथि
५	५	५	५	१०	१०	१०	१०	१५	१५	१५	१५	तिथि
								३०	३०	३०	३०	

वसिष्ठः —

वसिष्ठजी के आधार पर पक्षरन्ध्र तिथि

[2]चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा।
षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षरन्ध्राह्वया इमे॥ २५॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि चौदस, चौथ, नवमी, षष्ठी और द्वादशी तिथि दोनों पक्षों की पक्षरन्ध्र तिथियाँ होती हैं॥ २५॥

[3]क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः।
भूता ५ ष्ट ८ मनु १४ तत्त्व-२५ अंक ९ दश १० शेषाः सुशोभनाः॥२६॥

इन पक्षरन्ध्र तिथियों में क्रम से ५।८।१४।२५।९।१० घटियों का त्याग करना चाहिये। शेष घटियाँ शुभ होती हैं॥ २६॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'चतुर्थीरसवस्वङ्कद्वादशी शक्रसंमिता। तिथयः पक्षरन्ध्राख्यास्त्याजाः सर्वेषु कर्मसु। एतासु वसुनन्देन्द्रतत्त्वदिक्शरसम्मिताः। हेयाः स्युर्गदिता नाड्यः क्रमाच्छेषास्तु शोभनाः' (१ प्र० १५-१६ श्लो०)॥ २६॥

---

१. ज्यो. नि. ३६ पृ० २७ श्लो०। २. व० सं० ४२ अ० ३५ श्लो०।
३. व० सं० ४२ अ० ३६ श्लो०।

स्पष्टार्थ चक्र

४	६	८	९	१२	१४
८	६	१४	२५	१०	५

[1]दोषनाडीषु यत्कर्म शुभं सर्वं विनश्यति ॥ २७ ॥

दोषयुक्त घड़ी में शुभ आचरण करने पर समस्त कार्य नष्ट होता है ॥ २७ ।

वृहस्पतिः—

बृहस्पतिजी के आधार पर

चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा ।
षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्रा च गोचरे ॥ २८ ॥

वृहस्पतिजी ने बताया है कि दोनों पक्षों की चौदस, चौथ, अष्टमी, नवमी, षष्ठी और द्वादशी तिथि पक्षछिद्र तिथि होती है ॥ २८ ॥

पक्षच्छिद्राह्वयेष्वेव तिथिष्वेते च नाडिकाः ।
क्रमात्तिथ्यादि नो इष्टा शुभकार्येषु वर्जिताः ॥ २९ ॥

पक्षछिद्र तिथियों में क्रम कथित घटियां इष्ट नहीं होती हैं । अर्थात् शुभ काम में उक्त घटी मात्र निषिद्ध होती हैं ॥ २९ ॥

पक्षछिद्रोक्तनाडीषु शुभं सर्वं विवर्जयेत् ।
भूताङ्कमनुतत्त्वाङ्कदशशेषाः सुशोभनाः ॥ ३० ॥

इन पक्षछिद्र नाडियों में समस्त शुभ काम नहीं करना चाहिये । इन तिथियों में क्रम से ५।६।१४।२५।६।१० ये नाडियां दूषित होती हैं । अवशिष्ट शुभ होती हैं ॥ ३० ॥

नारदजी ने बताया है 'अष्टमी द्वादशी षष्ठी चतुर्थी च चतुर्दशी । तिथयः पक्षरन्ध्राख्या दुष्टास्ता अतिनिन्दिताः ॥ चतुर्थमनुरन्ध्राङ्कतत्त्वसंज्ञास्तु नाडिकाः' (ज्यो० नि० ३५ पृ० १६–१७ श्लो०) ॥ ३० ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है 'वेदाङ्गाष्टनवार्केन्द्रपक्षरन्ध्रतिथौ त्यजेत् । वस्वङ्कमनुतत्त्वाशा शरा नाडीः पराः शुभाः' (१ प्र० ३६ श्लो०) ॥ ३० ॥

विशेष—ऋषि कश्यपजी ने सब में १० घटी का ही त्याग साधारणता से बताया है । यथा 'अष्टमी द्वादशी षष्ठी पक्षरन्ध्रास्तु तासु च । मङ्गले सर्वदा त्याज्या नूनं हि दश नाडिकाः' (मु० चि० १ प्र० ३६ श्लो० पी० टी०) ॥ ३० ॥

अथ मासे शून्यनक्षत्राणि—

अब आगे किस महीने में कौन सा नक्षत्र शून्य होता है, बताते हैं ।

---

१. व० सं० ४२ अ० ३७ श्लो० ।

वृहस्पतिः—

बृहस्पतिजी के आधार पर मास में शून्य नक्षत्र

रोहिणी चाश्विनी चैत्रे शून्यभे परिकीर्तिते।
वैशाखे त्वाष्ट्रवायव्यौ वैश्वतिष्यस्तु शून्यभौ ॥ ३१ ॥
मासि ज्येष्ठे तथादित्य आषाढे भगवासवौ।
श्रावणे वैश्वपूर्वे द्वे नभस्ये पौष्णवारुणे ॥ ३२ ॥
अजैकपादिषे नेष्टो पौष्णेन्द्वग्निभयाः परे।
सहे विशाखा मैत्रं च त्र्युत्तराभाद्रपादसत् ॥ ३३ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि चैत में रोहिणी-अश्विनी, वैशाख में चित्रा-स्वाती, जेठ में उत्तराषाढ़, पुष्य, पुनर्वसु; आषाढ़ में पूर्वाफाल्गुनी-धनिष्ठा; सावन में उत्तराषाढ़-श्रवण, भादों में शतभिषा-रेवती; आश्विन में पूर्वाभाद्रपद, कार्तिक में रेवती-मृगशिरा, कृत्तिका, अगहन में विशाखा, अनुराधा, तीनों उत्तरा असत् नक्षत्र होते हैं ॥ ३१–३३ ॥

विशेष—आशय पूर्ण न होने से आगे इसे समझें ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'अश्विनी रोहिणी चैत्रे चित्रा स्वाती च माधवे। ज्येष्ठे पुष्योत्तराषाढे च धनिष्ठाकमिमे शुचौ। श्रावणे श्रवणोपाख्ये पूर्वाभाद्रपदाश्विने। रेवती शतभे भाद्रे कार्तिके कृत्तिका मघा। मार्गे चित्रा विशाखा च पौषे त्वार्द्राश्विनीकराः। फाल्गुने भरणी ज्येष्ठा माघे मूलं श्रवस्तथा। एतानि मासशून्यानि भानि प्रोक्तानि कोविदैः' (= प्र० ५६-५८ श्लो०) ॥ ३१-३३ ॥

राम—

रामदैवज्ञ के आधार पर मास शून्य नक्षत्र

[1]कदास्रभे त्वाष्ट्रवायू विश्वेज्यौ भगवासवौ।
वैश्वश्रुती पाशिपौष्णे अजपादग्निपित्र्यभे ॥ ३४ ॥
[2]त्वाष्ट्रद्वीशौ शिवाश्वर्का श्रुतिमूले यमेन्द्रभे।
चैत्रादिमासे शून्याख्यास्तारा वित्तविनाशदाः ॥ ३५ ॥

श्री रामदैवज्ञ ने अपने मुहूर्तचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में बताया है कि चैत में रोहिणी-अश्विनी, वैशाख में चित्रा-स्वाती, जेठ में उत्तराषाढ़-पुष्य, आषाढ़ में पूर्वाफाल्गुनी-धनिष्ठा, सावन में उत्तराषाढ़-श्रवण, भादों में शतभिषा-रेवती, क्वार में पूर्वाभाद्रपद, कार्तिक में कृत्तिका-मघा, अगहन में चित्रा-विशाखा, पौष में आर्द्रा, अश्विनी, माघ में श्रवण-मूल और फागुन में भरणी, ज्येष्ठा ये नक्षत्र शून्य होते हैं ॥ ३४-३५ ॥

---

१. मु० चिं० १ प्र० १४ श्लो०। २. मु० चिं० १ प्र० १५ श्लो०।

वसिष्ठ संहिता में कहा है 'अश्विनी रोहिणी चैत्रे शून्यभे परिकीर्तिते। चित्रा स्वाती च वैशाखे ज्येष्ठे विश्वेज्यतारके। मगवासवमाषाढे श्रावणे हरिविश्वभे। नमस्ये वारुणान्त्यक्षमजपादश्वयुज्यपि। कार्तिके पितृवह्न्यृक्षे मार्गे चित्रा द्विदैवते। पौषे दस्रकरार्द्राः स्युर्माघे मूलं च विष्णुभम्। तपस्ये शक्रभरणी शून्यमान्याहुरग्रजाः' (२४ अ० ७४-७७ श्लो०) ॥ ३४-३५ ॥

अस्यापवादः—

अब आगे इसके अपवाद में या यों समझिये कि उक्त दोष रहने पर किस प्रकार की स्थिति से दोष का दूरी करण होता है, इसे बताते हैं।

बृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर

मासशून्याह्वया तारा राशयो वा विषाह्वयाः।
स्वामिजीवबुधैर्दृष्टा युक्ता वा नैव दोषदाः ॥ ३६ ॥

गुरु बृहस्पति जी ने बताया है कि मास शून्य नक्षत्र व राशि और विष नाडी का दोष स्वामी या शुभग्रह से दृष्ट या युक्त होने से नहीं होता है ॥ ३६ ॥

केन्द्रत्रिकोणयोः सौम्ये बलवांश्च स्ववर्गगः।
मासशून्यकृतं दोषं राशिशून्यांश्च नाशयेत् ॥ ३७ ॥

जब कि केन्द्र या त्रिकोण में अपने वर्ग में बली शुभ ग्रह होता है तो मास शून्य व राशि शून्य दोष नहीं होता है ॥ ३७ ॥

अथ तिथिवारयोगे योगाः—

अब आगे तिथि वार के योग से ग्रहों की उत्पत्ति के योग को बताते हैं।

ग्रह उत्पत्ति, तिथि, वार योग ज्ञान

सप्तम्यां भास्करो जातश्चतुर्दश्यां निशाकरः।
दशम्यां मङ्गलो जातो द्वादश्यां तु बुधस्तथा ॥ ३८ ॥

एकादश्यां गुरुर्जातो नवम्यां भार्गवस्तथा।
अष्टम्यां तु शनिर्जातो पूर्णिमायां तमस्तथा ॥ ३९ ॥

दर्शे जातस्तथा केतुः त्याज्या जन्मतिथिः शुभे ॥ ४० ॥

सप्तमी तिथि को सूर्य, चौदस में चन्द्रमा, दशमी में मंगल, द्वादशी में बुध, एकादशी में गुरु, नवमी में शुक्र, अष्टमी में शनि, पूर्णिमा में राहु और अमावस्या के दिन केतु उत्पन्न हुआ है। शुभ काम में सदा जन्म की तिथि ग्रहण नहीं करनी चाहिए ॥ ३८-४० ॥

अथ दग्धाःतिथयः—

दग्ध तिथि ज्ञान

पञ्चम्यङ्गारके चैव द्वितीया भार्गवे तथा।
तृतीया बुधवारे तु चतुर्थी च बृहस्पतौ ॥ ४१ ॥
पञ्चमी शनिवारे च चन्द्रवारे त्रयोदशी।
पञ्चदश्यर्कवारे तु तिथिदग्धाः प्रकीर्तिताः ॥ ४२ ॥

भौमवार में पञ्चमी, शुक्रवार में द्वितीया, बुधवार में तृतीया, गुरु में चौथ, शनि में पञ्चमी, सोमवार में तेरस और रविवार में पूर्णिमा होने पर दग्ध होती है ॥ ४१-४२ ॥

बृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर दग्ध तिथि

पञ्चमी भूमिपुत्रेण तृतीया भृगुसूनुना।
द्वितीया राजपुत्रेण षष्ठीविबुधमन्त्रिणा ॥ ४३ ॥
नवमी सूर्यपुत्रेण चन्द्रेणैकादशी युता।
सवित्रा द्वादशी युक्ता प्रोक्ता दग्धदिना इमे ॥ ४४ ॥

गुरु बृहस्पति ने बताया है कि भौमवार में पञ्चमी, शुक्र में तृतीया, बुध में द्वितीया, गुरु में षष्ठी, शनि में नवमी, सोम में एकादशी और सूर्यवार में द्वादशी तिथि दग्ध होती है ॥ ४३-४४ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'द्वादश्यर्के विधौ रुद्रा भौमे पञ्च बुधेऽग्नयः। गुरौ षष्ठयष्टमी शुक्रे दग्धाख्या नवमी शनौ' (८ प्र० २२ श्लो०) ॥ ४३-४४ ॥

कार्यवश फल

दद्युर्विवाहे वैधव्यं यात्रायां मृत्युमेव च।
अग्निदाहं गृहारम्भे प्रवेशे स्वामिनो मृतिः ॥ ४५ ॥

दग्ध तिथियों में विवाह करने पर वैधव्यता, यात्रा में मरण, घर बनाने में अग्नि दाह और गृह प्रवेश करने पर स्वामी की मृत्यु होती है ॥ ४५ ॥

पुनः प्रकारान्तर से

मासरुद्रादिशोऽङ्काष्टसप्तषट्तिथयस्तथा।
दग्धयोगा इमे ख्यातास्तिथयः सूर्यवारगाः ॥ ४६ ॥

सूर्य वार में अमा, सोमवार में एकादशी, मंगलवार में दशमी, बुधवार में नवमी, गुरु में अष्टमी, शुक्र में सप्तमी और शनिवार में षष्ठी तिथि मास दग्ध होती है ॥ ४६ ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा 'सूर्येशपञ्चाग्निरसाष्टनन्दा (दग्धा) सूर्यादिवारे तिथयो भवन्ति' (१ प्र० ८ श्लो०) ॥ ४६ ॥

तथा नारद जी ने भी 'एकादशी चेन्दुवारे द्वादशी चार्कवासरे। षष्ठी बृहस्पतेर्वारे तृतीया बुधवासरे। अष्टमी शुक्रवारे च नवमी शनिवासरे। पञ्चमी भौमवारे च दग्धयोगाः प्रकीर्तिता' (मु० चि० १ प्र० ८ श्लो० पी० टी०) ॥ ४६ ॥

और भी वसिष्ठ संहिता में 'द्वादश्येकादशीनागगौरीस्कन्दवसुष्वपि। नवम्यां दग्धयोगाख्या भानुवारादितः क्रमात्' (४२ अ० ८ श्लो०) ॥ ४६ ॥

श्रीपतिस्तु—

श्रीपति जी के आधार पर क्रचक योग

तिथेश्च वारस्य च यत्र सङ्ख्ययोस्त्रयोदशस्युर्मिलने कृते सति।
स्मृतः स योगः क्रकचाभिधानको विवर्जनीयः खलु कर्मसु ध्रुवम् ॥ ४७ ॥

जिस मुहूर्त में तिथि व वार संख्या का योग तेरह होता है तो यह क्रचक नाम का योग होता है। इसका शुभ कामों में यत्न से फल की इच्छा वालों को त्याग करना चाहिए ॥ ४७ ॥

नारद जी ने बताया है 'त्रयोदशस्युर्मिलने संख्यायास्तिथिवारयोः। क्रकचो नाम योगोऽयं मङ्गलेष्वतिगर्हितः' (मु० चि० १ प्र० ६ श्लो० पी० टी०) ॥ ४७ ॥

तथा मुहूर्तचिन्तामणि में भी 'षष्ठ्यादितिथयो मन्दाद् विलोमं' (१ प्र० ६ श्लो०) ॥ ४७ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'शनौ षष्ठी भृगौ सप्ताष्टमी जीवे बुधे नव। कुजे दश विधौ रुद्राः क्रकचो द्वादशी रवौ' (८ प्र० २४ श्लो०) ॥ ४७ ॥

रत्नमालायाम्—

संवर्त नामक योग

सप्तम्यां दिनकरवासरो यदा स्यात्
वारश्चेत्प्रतिपदि चेन्दुनन्दनस्य।
संवर्तो मुनिभिरुदीरितः स योगः
सन्त्याज्यः शुभफलकाङ्क्षिभिः प्रयत्नात् ॥ ४८ ॥

रत्नमाला में बताया है जब कि सप्तमी में सूर्य वार और प्रतिपदा में बुधवार हो तो ऋषियों ने उसे संवर्त नामक अशुभ योग बताया है। शुभ फल चाहने वालों को यह योग सदा त्याग देना चाहिये ॥ ४८ ॥

नारद जी ने बताया है 'सप्तम्यामर्कवारश्चेत्प्रतिपत् सौम्यवासरे। संवर्तयोगो विज्ञेयः शुभकर्मविनाशकृत्' (मु० चि० १ प्र० ६ श्लो० पी० टी०) ॥ ४८ ॥

मु० चि० में भी 'प्रतिपद्बुधे, सप्तम्यर्कं' (मु० चि० १ प्र० ६ श्लो०) ॥ ४८ ॥

तथा मुहूर्तगणपति में भी 'प्रतिपज्ज्ञे रवौ सप्त संवर्तो योग ईरितः। दग्धादींस्तिथिवारोत्थांस्त्यजेद्योगान् शुभे सदा' (८ प्र० २५ श्लो०) ॥ ४८ ॥

त्रिविक्रमः—

त्रिविक्रम के आधार पर सिद्ध योग

शुक्रे नन्दा बुधे भद्रा जया भौमे प्रकीर्तिता।
शनौ रिक्ता गुरौ पूर्णा सिद्धियोगाः प्रकीर्तिताः ॥ ४९ ॥

आचार्य त्रिविक्रम ने बताया है कि शुक्रवार में नन्दा (१।६।११) तिथियों में, बुधवार में भद्रा (२।७।१२) में, भौमवार में जया (३।८।१३) में, शनि में रिक्ता (४।६।१४) में और गुरुवार में पूर्णा (५।१०।१५) तिथियों के होने पर सिद्ध योग होता है ॥ ४९ ॥

बृहस्पतिः—

बृहस्पतिजी के आधार पर

नन्दा भृगौ सोमसुते च भद्रा
भौमे जया सूर्यसुते च रिक्ता।
पूर्णा गुरौ पञ्चसु पञ्चसिद्धा
शुभावहाः शोभनकर्मणीष्टाः ॥ ५० ॥

गुरु बृहस्पति ने बताया है कि शुक्रवार में नन्दा तिथि के होने पर, बुधवार में भद्रा, मङ्गल में जया, शनि में रिक्ता और गुरुवार में पूर्णा तिथियों के होने पर सिद्ध योग होता है। इसलिए शुभ कर्म में उक्त योग होने पर शुभता ही होती है ॥ ५० ॥

कश्यप ऋषि ने बताया है—नन्दा तिथिः शुक्रवारे सौम्ये भद्रा कुजे जया। रिक्ता मन्दे गुरोर्वारे पूर्णा सिद्धाह्वया तिथिः (मु. चि. २ प्र. ४ श्लो. पी. टी.) ॥ ५० ॥

तथा वसिष्ठ संहिता में भी—शुक्रज्ञकुजमन्देज्यवारा नन्दादिषु क्रमात्। सिद्धा तिथिः सिद्धिदा स्यात् सर्वकालेषु सर्वदा (४१ अ. ४४ श्लो.) ॥ ५० ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है—'नन्दा भृगौ बुधे भद्रा मन्दे रिक्ता कुजे जया। गुरौ पूर्णाऽखिले कार्ये सिद्धियोगाः शुभावहाः' (८ प्र. १ श्लो.) ॥ ५० ॥

शुभ अमृत योग

[1]आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः।
जया ज्ञस्य गुरौ रिक्ता पूर्णार्की चामृताः शुभाः ॥ ५१ ॥

सूर्य व मङ्गलवार में नन्दा तिथि के होने पर, शुक्र व सोम में भद्रा, बुधवार में जया, गुरु में रिक्ता और शनिवार में पूर्णा तिथि के होने पर शुभकारी अमृत योग होता है ॥ ५१ ॥

मुहूर्त गणपति में कहा है—'नन्दा भद्रा तथा नन्दा जया रिक्ताथ भद्रिका। पूर्णा सूर्यादिवारेषु वशिष्ठादि मताच्छुभा' (८ प्र. २ श्लो.) ॥ ५१ ॥

---

१. मु० चि० १ प्र० ५ श्लो० पी० टी०।

हुताशन योग

'षष्ठ्यादितिथयः सप्त चन्द्रवारादिभिर्युताः ।
क्रमात्पक्षद्वयोपेताः सप्तयोगा हुताशनाः ।। ५२ ।।

षष्ठी तिथि से द्वादशी तिथि तक सोमवारादि से युक्त होने पर दोनों पक्षों में ये सात अर्थात् सोमवार में छठ, भौम में सप्तमी, बुध में अष्टमी, गुरु में नवमी, शुक्र में दशमी, शनि में एकादशी और रविवार में द्वादशी तिथि के होने पर दोनों पक्षों में सात हुताशन योग होते हैं ।। ५२ ।।

वसिष्ठ संहिता में कहा है—'सप्त षष्ठचादि तिथयः सोमवारादिभिर्युताः । अग्निजिह्वाः सप्तयोगा मङ्गले कुलनाशदाः' (४२ अ. १४ श्लो.) ।। ५२ ।।

हुताशन योग में काम करने का फल

अग्नियोगे कृतं सर्वं कुले विश्वं विनाशनम् ।
यथाग्नौ पतितास्तोयबिन्दवो महतीत्यमी ।। ५३ ।।

अग्नियोग में कार्य करने पर कुल में सब का विनाश होता है । जैसे अग्नि में पानी की बूंद गिरने पर नष्ट हो जाती हैं ।। ५३ ।।

मुहूर्तगणपति में कहा है—'द्वादश्यर्के विधौ षष्ठी भौमे सप्ताष्टमी बुधे । दश शुक्रे शनौ रुद्राः गुरौ नवहुताशनः' (८ प्र. २१ श्लो.) ।। ५३ ।।

विष योग

षष्ठी च सप्तमी चैव अष्टमी नवमी तथा ।
द्वादश्येकादशी युक्ता त्रयोदश्यर्कतो विषः ।। ५४ ।।

६।७।८।९।११।१२।१३ तिथियों में क्रम से सूर्य, चन्द्र, भौमादि सातवार हों तो विष योग होता है ।। ५४ ।।

मुहूर्त गणपति में कहा है—'चतुर्थ्यर्के विधौ षष्ठी द्वितीया ज्ञेऽष्टमी गुरौ । नवशुक्रे विषाख्या च सप्तमी कुजनन्दयोः' (८ प्र. २३ श्लो. ।। ५४ ।।

मुहूर्तचिन्तामणि में—वेदाङ्गसप्ताश्विगजाङ्कशैलाः सूर्यादिवारे गदिता विषाख्याः' (१ प्र. ८ श्लो.) ।। ५४ ।।

बृहस्पति जी ने कहा है—'षष्ठी शशाङ्के नवमी च शुक्रे बुधे द्वितीया तपने चतुर्थी । जीवेऽष्टमी सौरिकुजेऽह्नि सप्तमी योगा विषाख्याः कुलनाशनाः स्युः' (मु० चि० १ प्र० ८ श्लो० पी० टी०) ।। ५४ ।।

और भी वसिष्ठ संहिता में—'कुजार्क्योः सप्तमी षष्ठी चन्द्रे भानौ चतुर्थिका । द्वितीयाज्ञेऽष्टमी जीवे नवमी शुक्रवासरे ।' (४२ अ० ११ श्लो०) ।। ५४ ।।

---

१. मु० चि० १ प्र० ८ श्लो० पी० टी० ।

त्रिविक्रमः—

त्रिविक्रमजी के आधार पर मृत्यु योग

नन्दा भौमे भृगौ भद्रा बुधवारे जया यदा।
गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा मृत्युयोगाः प्रकीर्तिताः ॥ ५५ ॥

अथ तिथिभोत्थाः कुयोगाः—

आचार्य त्रिविक्रम ने बताया है कि भौमवार में नन्दा तिथि, शुक्र में भद्रा, बुध में जया, गुरु में रिक्ता और शनिवार में पूर्णा तिथि के होने पर मृत्युयोग होता है ॥५५॥

बृहस्पतिः—

बृहस्पति के आधार पर तिथि नक्षत्र योग से कुयोग ज्ञान

प्रतिपत्पूर्वषाढायां पञ्चमी कृत्तिका तथा।
पूर्वभाद्रपदाष्टम्यां दशम्यां रोहिणी तथा ॥ ५६ ॥
द्वादश्यां सार्पनक्षत्रावर्यम्णा च त्रयोदशी।
नक्षत्रलुञ्छिरित्येते देवानामपि नाशनाः ॥ ५७ ॥

बृहस्पति जी ने बताया है कि प्रतिपदा में पूर्वाषाढा, पञ्चमी में कृत्तिका, अष्टमी में पूर्वा भाद्रपदा, दशमी में रोहिणी, द्वादशी में श्लेषा मघा, तेरस में चित्रा होने पर नक्षत्र-लुंछि योग होता है। यह देवताओं का भी संहार करने वाला होता है ॥ ५६-५७ ॥

रामः—

रामदैवज्ञ के आधार पर तिथि नक्षत्र योग दोष ज्ञान

[1]तथा निन्द्यं शुभे सार्पं द्वादश्यां वैश्वमादिभे।
अनुराधा द्वितीयायां पञ्चम्यां पितृभं तथा ॥ ५८ ॥
[2]त्र्युत्तराश्च तृतीयायामेकादश्यां च रोहिणी।
स्वातिचित्रे त्रयोदश्यां सप्तम्यां हस्तराक्षसे ॥ ५९ ॥
[3]नवम्यां कृत्तिकाष्टम्यां पूर्वषाढयां च रोहिणी ॥ ६० ॥

श्रीरामदैवज्ञ ने अपने मुहूर्त चिन्तामणि ग्रन्थ में बताया है कि द्वादशी तिथि में श्लेषा, प्रतिपदा में उत्तराषाढा, द्वितीया में अनुराधा, पञ्चमी में मघा, तृतीया में तीनों उत्तरा, एकादशी में रोहिणी, तेरस में स्वाती चित्रा, सप्तमी में मूल, नवमी में कृत्तिका, अष्टमी में पूर्वा भाद्र पद और षष्ठी तिथि में रोहिणी नक्षत्र होने पर निन्द्य योग शुभ कामों में वर्जित होता है ॥ ५८-६० ॥

चतुर्भुज मिश्र निबन्ध में लल्ल का वचन कहा है 'द्वितीयया चानुराधा त्र्युत्तराश्च तृतीयया। पञ्चमी च मघायुक्ता चित्रा स्वात्या त्रयोदशी। एषु कार्यं कृतं चेत्स्यात्

---

१. मु० चिं० १ प्र० ११ श्लो०। २. मु० चिं० १ प्र० १२ श्लो०।
३. मु० चिं० १ प्र० १३ श्लो०।

षण्मासान्मरणं ध्रुवम् । प्रतिपद्युत्तराषाढा नवम्यां कृत्तिका यदि । पूर्वाभाद्रपदाष्टम्यामेकादश्यां च रोहिणी । द्वादश्यां च यदाश्लेषा त्रयोदश्यां मघा यदि' (मु० चि० १ प्र० १२ श्लो० पी० टी०) ।। ५८-६० ।।

वसिष्ठ संहिता में भी कहा है 'प्रतिपद्यम्बुनक्षत्रे पञ्चम्यां वह्निभे सति । अष्टम्यामजपाद्धिष्ण्ये दशम्यां ब्रह्मभे यदि । द्वादश्यां सार्पनक्षत्रे त्रयोदश्यर्यमर्क्षयोः । नक्षत्रलाञ्छितो योगो देवानामपि नाशदः' (४२ अ० ३३-३४ श्लो०) ।। ५८-६० ।।

अथ भवारजा योगाः—

अब आगे नक्षत्र व वार के योग से ग्रहों के जन्म के नक्षत्र को आचार्य चण्डेश्वर के वाक्य से बता रहे हैं ।

चण्डेश्वरः—

ग्रहों के जन्म

आदित्यस्तु विशाखायां चन्द्रस्याग्नेयसंज्ञके ।
पूर्वाषाढा कुजे प्रोक्ता बुधे तु श्रवणः स्मृतः ।। ६१ ।।
जीवस्तु पूर्वफाल्गुन्यां पुष्ये शुक्रः प्रकीर्तितः ।
रेवती तु शनेर्ज्ञेया राहोस्तु भरणी स्मृता ।। ६२ ।।
केतोः सार्पं तथा प्रोक्तं ग्रहाणां जन्मभानि तु ।
जन्मतिथौ तु जन्मर्क्षे शुभकर्म विवर्जयेत् ।। ६३ ।।

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि विशाखा में सूर्य, कृत्तिका में चन्द्रमा का, पूर्वाषाढा में भौम, श्रवण में बुध, पूर्वा फाल्गुनी में गुरु, पुष्य में शुक्र, रेवती में शनि, भरणी में राहु और आश्लेषा में केतु का जन्म हुआ था । ग्रहों के इन जन्मतिथि-जन्म नक्षत्रों में शुभ काम का त्याग करना चाहिए ।। ६१–६३ ।।

ज्योतिर्निबन्धे —

ज्योतिर्निबन्ध के आधार पर ग्रह जन्म नक्षत्र

याम्यचित्रोत्तराषाढा धनिष्ठोत्तरफाल्गुनी ।
ऐन्द्रपौष्येऽर्कवारादिष्वर्कादिग्रहजन्मभम् ।। ६४ ।।

ज्योतिर्निबन्ध में बताया है कि भरणी, चित्रा, उत्तराषाढ, धनिष्ठा, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा और पुष्य नक्षत्र सूर्यादि वार क्रम से राहु तक ग्रहों के जन्म नक्षत्र होते हैं ।। ६४ ।।

वसिष्ठः—

वशिष्ठ जी के आधार पर ग्रह जन्म नक्षत्र

[1]भरणी चित्रविश्वर्क्षवसुभोत्तरफाल्गुनी ।
ज्येष्ठा च रेवती चैव जन्मर्क्षं भानुतः क्रमात् ।। ६५ ।।

---

१. व० सं० ४२ अ० ९ श्लो० ।

ऋषि वशिष्ठ जी ने बताया है कि भरणी १, चित्रा २, उत्तराषाढ ३, धनिष्ठा ४, उत्तराफाल्गुनी ५, ज्येष्ठा ६ और रेवती ७ नक्षत्र सूर्यादि वारों के क्रम से जन्म नक्षत्र होते हैं ॥ ६५ ॥

[1]अस्मिन् योगे कृतं यच्च शुभकर्म विनश्यति ।
तस्माद्योगो ह्ययं त्याज्यो मङ्गलेषु च सर्वदा ॥ ६६ ॥

उस उक्त योग में किया हुआ शुभ काम नष्ट होता है। इसलिये इस उक्त योग को सर्वदा मंगल कामों में त्यागना चाहिए ॥ ६६ ॥

बृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर

विशाखार्कस्य जन्मर्क्षं तारानाथस्य कृत्तिका ।
वैष्णवं भूमिजस्याहुर्धनिष्ठा चन्द्रजस्य तु ॥ ६७ ॥
शुक्रस्य जन्मभं तिष्यं गुरोरुत्तरफाल्गुनी ।
शनेस्तु रेवती जन्म राहोर्जन्माश्विनी भवेत् ॥ ६८ ॥
शुभग्रहाणां जन्मर्क्षे शुभकर्म शुभावहम् ।
पापग्रहाणां जन्मर्क्षे शुभं वाप्यशुभं भवेत् ॥ ६९ ॥

बृहस्पति जी ने बताया है कि सूर्य का विशाखा जन्म नक्षत्र है, चन्द्रमा का कृत्तिका, भौम का श्रवण, बुध का धनिष्ठा, गुरु का उत्तरा फाल्गुनी, शुक्र का पुष्य, शनि का रेवती और राहु का जन्म नक्षत्र अश्विनी होता है।

शुभ ग्रहों के जन्म नक्षत्र में शुभ काम अच्छा फल और पाप ग्रहों के जन्म नक्षत्र में शुभ फल भी अशुभ फल दाता होता है ॥ ६७–६९ ॥

व्यवहारसारे—

व्यवहार सार के आधार पर

हस्ते सूर्यश्चन्द्रमा रोहिणीषु भौमे मूले सोमदेवे बुधश्च ।
भाग्ये जीवो वैष्णवे भार्गवश्च पित्र्ये शौरिः कीर्तितश्चामृताख्यः ॥ ७० ॥

व्यवहार सार में कहा है कि हस्त में सूर्य, रोहिणी में चन्द्रमा, मूल में भौम, बुध में मृगशिरा, गुरु में उत्तरा फाल्गुनी, शुक्र में श्रवण, शनि में मघा का योग होने से अमृत नामक योग होता है ॥ ७० ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'अर्के हस्तो मृगश्चन्द्रे गुरौ पुष्योऽश्विनी कुजे। अनुराधा बुधे शुक्रे रेवती रोहिणी शनौ' (८ प्र० ३ श्लो०) ॥ ७० ॥

चण्डेश्वरः—

चण्डेश्वर के आधार पर

सावित्रं बार्हस्पत्यं च नैर्ऋतं च रवेर्दिने ।
अमृतं नाम योगोऽयं सर्वकार्यार्थसाधकः ॥ ७१ ॥

---

१. व० सं० ४२ अ० १० श्लो० ।

आचार्य चण्डेश्वर जी ने बताया है कि पुनर्वसु, पुष्य, मूल में सूर्य वार के होने पर अमृत नामक योग होता है। यह समस्त कार्य में साधक होता है ॥ ७१ ॥

यदि वृष्टिर्व्यतीपातो दिनं चाप्यशुभं भवेत्।
नश्यत्यमृतयोगेन तमः सूर्योदये यथा ॥ ७२ ॥

इस उक्त योग के होने पर यदि भद्रा या व्यतीपात अशुभ योग हो तो उनका नाश होता है ॥ ७२ ॥

वार वश शुभ योग ज्ञान

[1]मूलं रवौ पुष्यकरेतराणि वेधामृगाङ्कः श्रवणश्च सोमे।
कृशानुपुष्योत्तरभानि भौमे बुधेऽनुराधा वरुणः कृशानुः ॥ ७३ ॥
[2]बृहस्पतौ पुष्यपुनर्वसू च भगोश्विनी च श्रवणं च शुक्रे।
शनैश्चरे स्वातिपितामहोक्ते योगाः किलैते शुभदायिनः स्युः ॥ ७४ ॥

भीम पराक्रम में बताया है कि रविवार में मूल, पुष्य, हस्त, सोमवार में रोहणी, मृगशिरा, श्रवण, भौम में कृत्तिका, पुष्य, उत्तरात्रय, बुध में अनुराधा, शतभिषा, कृत्तिका, गुरु में पुनर्वसु, पुष्य, शुक्र में पूर्वा फाल्गुनी, अश्विनी, श्रवण नक्षत्र, और शनिवार में स्वाती नक्षत्र होने पर ब्रह्मा के बताये हुए शुभ योग होते हैं ॥ ७३-७४ ॥

मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है 'सूर्येऽर्कमूलोत्तरपुष्यदास्रं चन्द्रे श्रुतिब्राह्मशशीज्य-मैत्रम्। भौमेष्वहिर्बुध्न्यकृशानुसार्पं ज्ञे ब्राह्ममैत्रार्ककृशानुचान्द्रम्' (१ प्र० २८ श्लो०) ॥ ७३-७४ ॥

वृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर शुभ योग

श्रोत्रपुनर्वसू मूलं भाग्यभोत्तरभाद्रपात्।
स्वाती च कृत्तिका चार्कात् शुभयोगाः शुभावहाः ॥ ७५ ॥

गुरु वृहस्पति जी ने बताया है कि श्रवण, पुनर्वसु, मूल, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा भाद्र-पदा, स्वाती, कृत्तिका नक्षत्रों में क्रम से सूर्यादि वार हों तो शुभ योग शुभ फलदाता होते हैं ॥ ७५ ॥

अथ यमघण्टः—

यमघंटकयोग ज्ञान

मघार्द्रा च विशाखा च मूलं स्वाती च रोहिणी।
पूर्वाषाढा च भान्वादौ योगोऽयं यमघण्टकः ॥ ७६ ॥

---

१. मु० चिं० १ प्र० २८ श्लो० पी० टी०।
२. मु० चिं० १ प्र० २८ श्लो० पी० टी०।

मघा, आर्द्रा, विशाखा, मूल, स्वाती, रोहिणी और पूर्वाषाढा नक्षत्र में क्रम से सूर्यादिवार के होने पर अर्थात् रविवार में मघा, सोम में आर्द्रा, मंगल में विशाखा इत्यादि होने से यमघंटक योग होता है ॥ ७६ ॥

श्रीपतिः—

श्रीपतिजी के आधार पर यमघंटक योग ज्ञान

मघा विशाखा आर्द्रा च मूलमृक्षं च कृत्तिका ।
रोहिणीहस्तमेतेषु यमघण्टार्कतः क्रमात् ॥ ७७ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि मघा, विशाखा, आर्द्रा, मूल, कृत्तिका, रोहिणी और हस्त नक्षत्र में क्रम से सूर्यादिवार होने पर यमघंट योग होता है ॥ ७७ ॥

तथा मुहूर्तचिन्तामणि में 'मघाविशाखाशिवमूलवह्निः ब्राह्मं करोऽर्काद्यमघंटकाश्च' (१ प्र० ६ श्लो०) ॥ ७७ ॥

अन्य भी दैवज्ञमनोहर में 'मघाविशाखाहयार्द्रा च मूलमृक्षं च कृत्तिका । रोहिणी हस्त इत्येवं यमघण्टाः क्रमाद्रवेः' (मु० चिं० १ प्र० ९ श्लो० पी० टी०) ॥ ७७ ॥

मूहूर्तगणपति में कहा है 'अर्के मघा विशाखेन्दौ ज्ञे मूलं कृत्तिका गुरौ । आर्द्रा भौमे शनौ हस्तो रोहिणी भृगुवासरे ॥ यमघण्टाख्ययोगोऽयं सर्वकार्यविनाशकः । (८ प्र० २८-२९ श्लो०) ॥ ७७ ॥

जगन्मोहने—

जगन्मोहन के आधार पर यमदंष्ट्रा योगज्ञान

विवर्जयेत्सूर्यमघा च ज्येष्ठा सोमे च मूलं च तथा विशाखा ।
भौमे भरण्यामपि कृत्तिका च बुधेऽश्विनी चोत्तरफाल्गुनी च ॥ ७८ ॥
जीवे च सौम्यर्क्षमघार्यमा च सोमाङ्गना स्वाति तथा भृगौ च ।
हस्ते च चित्रा च तथैव मन्दे यमस्य दंष्ट्रा कथिता प्रवर्यैः ॥ ७९ ॥

नात्र यात्रा प्रकर्तव्या यात्रान्तरमथापि वा ।
यमघण्टस्तु योगोऽयमनर्हः सर्वकर्मसु ॥ ८० ॥

यमघण्टे कृतं कार्यं कर्तुः प्राणहरं ध्रुवम् ।
तथैव यमदंष्ट्रायां शीघ्रं दुष्टफलप्रदम् ॥ ८१ ॥

जगन्मोहन नामक ग्रन्थ में बताया है कि सूर्यवार में मघा, ज्येष्ठा, चन्द्र में मूल, विशाखा, मंगल में भरणी, कृत्तिका, बुध में अश्विनी, उत्तराफाल्गुनी, गुरु में सौम्य मृगशिरा मघा, उत्तराफाल्गुनी, शुक्र में सोमाङ्गना, स्वाती और शनिवार में हस्त, चित्रा नक्षत्र होने पर यमदंष्ट्रा योग में शीघ्र ही अशुभ फल होता है ॥ ७८-८१ ॥

बृहस्पतिः—

बृहस्पतिजी के आधार पर

अश्विचित्रोत्तराषाढा श्रविष्ठोत्तरफाल्गुनी ।
ज्येष्ठा च रेवती चैव सूर्यादिसहिताः क्रमात् ॥ ८२ ॥

गुरु बृहस्पति ने बताया है कि अश्विनी, चित्रा, उत्तराषाढा, श्रवण, उत्तरा फाल्गुनी, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्र में सूर्यादिवार क्रम से होने पर अशुभ योग होता है ॥ ८२ ॥

इस योग का कार्यवश फल

विवाहे विधवा चैव यात्रायां मरणं ध्रुवम् ।
विद्यारम्भेषु मूकत्वं कृष्यारम्भे तु निष्फलम् ॥ ८३ ॥
नवान्नभोजने व्याधिर्मृतिर्बालान्नभोजने ।
क्षुरकर्मणि पञ्चत्वं प्रतिष्ठायां जगद्भयम् ॥ ८४ ॥
द्वितीये जन्मनि व्रात्यं गृहसंवेशने मृतिः ।
ग्रामादिनगरारम्भे राज्यराष्ट्रविनाशनम् ॥ ८५ ॥

उक्त योग में विवाह होने पर स्त्री विधवा, यात्रा में निश्चित मरण, विद्यारम्भ में मूकत्व, खेती का आरम्भ करने पर फल में हीनता, नवान्न प्राशन में रोग, बालान्न भोजन में मृत्यु, क्षौर में मृत्यु, प्रतिष्ठा में सांसारिक भय, यज्ञोपवीत संस्कार में व्रात्य, गृह प्रवेश में मरण, गाँव, नगर के आरम्भ में राज्य व राष्ट्र का विनाश होता है ॥ ८३–८५ ॥

महाविनाशकारी योग

मघायां दिनकृद्वार विशाखा चेन्दुवारगः ।
आर्द्रायामारवारश्च बुधवारश्च नैर्ऋते ॥ ८६ ॥
वारुणेन गुरोर्वारं सितवारेण रोहिणी ।
आषाढाश्चार्किवारेण महानाशकरास्त्वमी ॥ ८७ ॥

रविवार में मघा, सोम में विशाखा, मंगल में आर्द्रा, बुध में मूल, गुरु में शतभिषा, शुक्र में रोहिणी और शनिवार में आषाढा नक्षत्र होने पर महानाशकर योग होता है ॥ ८६–८७ ॥

आनन्दादियोगाः—

श्रीपतिः—

श्रीपतिजी के उक्त आनन्दादि २८ योगों के नाम

आनन्दः कालदण्डो धूम्राख्योऽथ प्रजापतिः सौम्यः ।
ध्वांक्षो ध्वजनामा च श्रीवत्सो वज्रमुद्गरो छत्रम् ॥ ८८ ॥

मैत्रो मानसनामा पद्माख्यो लुम्बकस्तथोत्पातः।
मृत्युः काणः सिद्धिः शुभामृतौ मुसलमथ गदाख्यश्च ॥ ८९ ॥

मातङ्गराक्षसचरस्थिरप्रवर्द्धमाना इमे योगाः।
अष्टाविंशति सङ्ख्या निजसंज्ञासदृशफलदाः स्युः ॥ ९० ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि १ आनन्द, २ कालदण्ड, ३ धूम्र, ४ प्रजापति, ५ सौम्य, ६ ध्वांक्ष, ७ ध्वज, ८ श्रीवत्स, ९ वज्र, १० मुद्गर, ११ छत्र, १२ मैत्र, १३ मानस, १४ पद्म, १५ लुम्बक, १६ उत्पात, १७ मृत्यु, १८ काण, १९ सिद्धि, २० शुभ, २१ अमृत, २२ मुसल, २३ गद, २४ मातङ्ग, २५ राक्षस, २६ चर, २७ स्थिर और २८ वां प्रवर्द्धमान नाम का योग होता है। ये योग नाम के सदृश ही फल प्रदान करते हैं ॥ ९० ॥

नारद जी ने कहा है कि 'आनन्दः कालदण्डोऽथ धूम्रो धाता शुभाह्वयः। ध्वांक्षो ध्वजाख्यः श्रीवत्सवज्रमुद्गरछत्रकाः ॥ मित्रमानसपद्माख्यलुम्बकोत्पातमृत्यवः। काणः सिद्धिः शुभामृतमुसलातङ्ककुञ्जराः ॥ राक्षसाख्यश्चरस्थैर्यवर्धमानाः क्रमादमी। योगाः स्वसंज्ञाफलदास्त्वष्टाविंशतिसंख्यकाः' (मु० चिं० १ प्र० २३-२४ श्लो० पी० टी०) ॥९०॥

तथा मुहूर्तचिंतामणि में 'आनन्दाख्यः कालदण्डश्च धूम्रो धाता सौम्यो ध्वांक्षकेतू क्रमेण। श्रीवत्साख्यो वज्रकं मुद्गरश्च छत्रं मित्रं मानसं पद्मलुम्बौ। उत्पातमृत्यू किल काणसिद्धिः शुभोऽमृताख्यो मुसलो गदश्च। मातङ्गरक्षश्चरसुस्थिराख्यप्रवर्धमाना। फलदाः स्वनाम्ना (१ प्र० २३–२४ श्लो०) ॥ ९० ॥

आनन्दादि योगों का ज्ञान

सूर्येऽश्विभात्तुहिनरोचिषि सौम्यधिष्ण्यात्सार्पाच्च भूमितनये च बुधे च हस्तात्।
मैत्राद्गुरौ भृगुसुते खलु वैश्वदेवाच्छायासुते वरुणभात्क्रमशःस्युरेते ॥ ९१ ॥

अस्य फलम्—

अभीष्ट दिन में यदि रविवार हो तो अश्विनी दिन नक्षत्र तक गिनने पर जो संख्या हो उसके तुल्य योग, इसी प्रकार सोमवार में मृगशिरा से, मङ्गल में श्लेषा से, बुध में हस्त से, गुरु में अनुराधा से, शुक्र में उत्तराषाढ से और शनिवार में शतभिषा से अभीष्ट दिन के नक्षत्र तक जो संख्या हो उसके समान आनन्दादि योग होता है ॥ ९१ ॥

मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है 'दास्रादर्के मृगादिन्दौ सार्पाद् भौमेकराद् बुधे। मैत्राद् गुरौ भृगौ वैश्याद् गण्यामन्दे च वारुणात्' (१ प्र० २५ श्लो०) ॥ ९१ ॥

तथा नारद ने कहा है 'रविवारक्रमादेते दास्रभादिन्दुभाद्विधौ। सार्पाद् भौमे बुधे हस्तान्मैत्रभाद्देवमन्त्रिणि। वैश्वदेवाद् भृगुसुते वारुणाद् भास्करात्मजे' (मु० चि० १ प्र० २५ श्लो० पी० टी०) ॥ ९१ ॥

तथा मुहूर्तगणपति में कहा है 'भानुवारेऽश्विनक्षत्रात्साभिजित्कैश्च सर्वभैः । भवन्ति क्रमशो योगा अष्टाविंशति सङ्ख्यकाः । मृगादारभ्य रात्रीशे श्लेषान्तं कुजवासरे । हस्तो बुधेऽनुराधायां गुरुवारे तथैव । उत्तराषाढतः शुक्रे शततारादितः शनौ' (८ प्र० १२-१४ श्लो०) ॥ ९१ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठजी के आधार पर आनन्दादि योगों का फल

आनन्दे च भवेत्सिद्धिः कालदण्डे मृतिर्भवेत् ।
धूम्राख्ये प्रीतिसंयुक्ता प्राजापत्ये च संपदा ॥ ९२ ॥

सौम्ये तु सुखसंप्राप्तिः ध्वांक्षे धनसमागमः ।
ध्वजनाम्नि तु सन्मानं श्रीवत्से पुत्रसंपदा ॥ ९३ ॥

वज्राख्ये चाल्पमृत्युश्च मुद्गरे च धनक्षयम् ।
छत्रे च राजसन्मानं मैत्रे पुष्टिकरं भवेत् ॥ ९४ ॥

मानसे सुखसंपत्तिः पद्माख्ये सुखसंपदा ।
लुम्बके धनहानिश्च उत्पाते क्लेश एव च ॥ ९५ ॥

मृत्यौ च मरणप्राप्तिः काले कालभयं भवेत् ।
सिद्धे सर्वत्र सिद्धिश्च शुभे कल्याणमेव च ॥ ९६ ॥

अमृते राज्यसिद्धिश्च मुसले हानिरेव च ।
गदाख्ये च भयं विन्द्यात् मातङ्गे कुलवर्धनम् ॥ ९७ ॥

राक्षसे च महत्कष्टं चरे कार्यंचरं स्मृतम् ।
स्थिरे कार्यस्थिरत्वं स्यात्प्रवर्द्धे वर्द्धते फलम् ॥ ९८ ॥

अथ मृत्युयोगाः—

ऋषि वसिष्ठजी ने बताया है कि आनन्द में काम सिद्धि, कालदण्ड में मृत्यु, धूम्र में प्रेम संयोग, प्राजापत्य में सम्पत्ति, सौम्य में सुख की प्राप्ति, ध्वांक्ष में धनागम, ध्वज में सन्मान, श्रीवत्स में पुत्र संपत्ति, वज्र में अल्प मृत्यु, मुद्गर में धनक्षय, छत्र में राजकीय सन्मान, मैत्र में पुष्टि, मानस में सुख-संपत्ति, पद्म में सुख-संपत्ति, लुम्बक में धन हानि, उत्पात में क्लेश, मृत्यु में मरण, काल में कालभय, सिद्ध में सिद्धि, शुभ में कल्याण, अमृत में राज्य सिद्धि, मुसल में हानि, गद में भय, मातङ्ग में कुल की वृद्धि, राक्षस में बड़ा कष्ट, चर में कार्य चञ्चल, स्थिर में कार्य की स्थिरता और प्रवर्धमान नामक योग में कार्य करने पर वृद्धि होती है ॥ ९२-९८ ॥

बृहस्पतिः—

बृहस्पतिजी के आधार पर मृत्यु योग

दिनकरदिनमैत्रं सोमवारे च वैश्वं
शतभिषजि धराजश्चाश्विनी चन्द्रसूनौ।
सुरगुरुदिनसौम्यं सार्पभं शुक्रवारे
रविसुतदिनहस्तं मृत्युयोगं वदन्ति ॥ ९९ ॥

गुरु बृहस्पति जी ने बताया है कि रविवार में अनुराधा, सोम में उत्तराषाढा, मंगल में शतभिषा, बुध में अश्विनी, गुरु में मृगशिरा, शुक्र में श्लेषा और शनिवार में हस्त नक्षत्र होने पर मृत्यु योग होता है ॥ ९९ ॥

वसिष्ठ संहिता में कहा है 'मित्रविश्वाम्बुवाय्विन्दुसार्पसूर्याख्यतारकाः। मृत्युयोगाः मृत्युकराः सूर्यवारादिषु क्रमात्' (४२ अ० २ श्लो०) ॥ ९९ ॥

तथा मुहूर्तगणपति में भी 'अनुराधा रवौ सोमे उत्तराषाढसंज्ञका। बुधेऽश्विनी भृगौ जीवे शुक्रेऽश्लेषा शनौ करः। भौमे शतभिषक् चायं मृत्युयोगोऽर्थनाशकः' (८ प्र० ३० श्लो०) ॥ ९९ ॥

राजमार्तण्डे—

राजमार्तण्ड के आधार पर उत्पातादि सिद्ध योग

विशाखाद्या चतुष्कं च सूर्यवारादिषु क्रमात्।
उत्पातमृत्युकाणाख्याः सिद्धाः स्युस्तिथयः क्रमात् ॥ १०० ॥

राजमार्तण्ड नामक ग्रन्थ में बताया है कि सूर्यादि वारों में क्रम से विशाखादि चार २ नक्षत्रों से उत्पात, मृत्यु, काण और सिद्ध योग होते हैं। अर्थात् सूर्यवार में विशाखा के होने पर उत्पात, अनुराधा होने पर मृत्यु, ज्येष्ठा के रहने पर काण और मूल के होने पर सिद्धयोग और सोमवार में पूर्वाषाढा के होने पर उत्पात, उत्तराषाढा होने पर मृत्यु, श्रवण होने पर काण और धनिष्ठा होने पर सिद्ध योग होता है। इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए ॥ १०० ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'क्रमाच्चतुष्टये भानां विशाखातो रवेर्दिने। पूर्वाषाढाभिधा चन्द्रे धनिष्ठातः कुजेऽहनि। रेवत्याश्च बुधे ज्ञेया रोहिणीतो बृहस्पतौ। पुष्याच्छुक्रे तथा मन्देउत्पातश्च भवन्त्यमी। योगाश्चत्वार उत्पातमृत्युकाणाख्य सिद्धयः' (८ प्र० १५-१७ श्लो०) ॥ १०० ॥

पीयूषधारा टीका में बताया है 'विशाखादि चतुर्वर्गमर्कवारादिषु क्रमात्। उत्पातमृत्युकाणाख्या योगाश्चामृतसंयुताः' (१ प्र० ३० श्लो०) ॥ १०० ॥

वसिष्ठ संहिता में भी 'द्विदैवजलवस्वन्त्य ब्रह्मोज्यार्यमतारकाः । उत्पातयोगा विज्ञेया भानुवारादिषु क्रमात् । मैत्रविश्वाम्बुवाय्विन्दु सार्पसूर्याख्यतारकाः । मृत्युयोगा मृत्युकराः सूर्यवारादिषु क्रमात् । ब्रह्मोज्यार्यमवैशाखहरिवस्वन्त्यभेषु च । नन्दायामर्कवारादिष्वन्धयोगाः प्रकीर्तिताः । रुद्रसार्पाम्बुनैर्ऋत्यपितृमार्ग्याग्निभेषु च । भद्रातिथौ काणयोगाः सूर्यवारादिषु क्रमात्' (४२ अ० १-४ श्लो०) ॥ १०० ॥

और भी मुहूर्तचिन्तामणि में 'द्वीशात्तोयाद्वासवात् पौष्णभाच्च ब्राह्मात् (पुष्यादर्यमर्क्षाद्युगर्क्षैः स्यादुत्पातो मृत्युकाणौ च सिद्धिर्वारेऽर्काद्येतत्फलं नाम तुल्यम्' (१ प्र० ३० श्लो०) ॥ १०० ॥

वृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर प्रवास, मरण, व्याधि, सिद्ध योग

इन्द्राग्न्यादिचतुर्वर्गा अर्कवारादिसंयुताः ।
क्रमात्प्रवासमरणव्याधिसिद्धास्तु संज्ञकाः ॥ १०१ ॥

गुरु बृहस्पति जी ने बताया है कि विशाखादि चार २ नक्षत्रों के क्रम से सूर्यादि वारों में प्रवास, मरण, व्याधि और सिद्ध योग होते हैं ॥ १०१ ॥

स्पष्टार्थ उत्पातादि योग सारिणी

वार	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उत्पात	विशाखा	पू० षा०	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ० फा०
मृत्यु	अनुराधा	उ० षा०	शतभिषा	अश्विनी	मृ० शि०	श्लेषा	हस्त
काण	ज्येष्ठा	अभि०	पू० भा०	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
सिद्ध	मूल	श्रवण	उ० भा०	कृत्तिका	पुनर्वसु	पू० फा०	स्वाती

स्पष्टार्थ प्रवासादि योग सारिणी

वार	सू०	चं०	मं०	बु०	गु०	शु०	श०
प्रवास	विशा०	पू० षा०	धनि०	रेव०	रोहि०	पुष्य	उ० फा०
मरण	अनु०	उ० षा०	शतभि०	अश्वि०	मृ०शि०	श्लेषा	हस्त
व्याधि	ज्येष्ठा	अभि०	पू० भा०	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा
सिद्ध	मूल	श्रवण	उ० भा०	कृति०	पुन०	पू० फा०	स्वाती

वसिष्ठः—

वसिष्ठ ऋषि के आधार पर क्रकच योग

याम्यचित्रोत्तराषाढा मूलार्द्रा पुष्यरेवती ।
अर्कादौ क्रकचो योगस्त्रिदशैरपि गर्हितः ॥ १०२ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि भरणी, चित्रा, उत्तराषाढ़ा, मूल, आर्द्रा, पुष्य, रेवती नक्षत्रों में क्रम से सूर्यादि वार हों तो क्रकच नामक निन्द्य योग होता है। यह देवताओं से भी निन्दित है। अर्थात् देवता भी इसकी निन्दा करते हैं ॥ १०२ ॥

अब आगे प्रत्येक वार में अलग अलग कई नक्षत्रों के योग से शुभ कामों में वर्जित योगों को बताते हैं ॥

सूर्यवार में वर्जित नक्षत्र

ऐन्द्रं चान्द्रं तथा पैत्रं विशाखा याम्यमेव च।
अनुराधां गते सूर्ये वारे वर्ज्याः शुभा सदा ॥ १०३ ॥

सूर्यवार में ज्येष्ठा, मृगशिरा, मघा, विशाखा, भरणी, अनुराधा के होने पर शुभ कर्म नहीं करना चाहिये ॥ १०३ ॥

वसिष्ठ संहिता में कहा है 'द्विदैवमित्रचान्द्रेन्द्रवह्निसार्पभतारकाः। रविवारेण संयुक्ता वर्जनीयाः प्रयत्नतः' (४२ अ० ४० श्लो०) ॥ १०३ ॥

सोमवार में वर्जित नक्षत्र

सविशाखा मघा ज्ञेया आषाढद्वयमैत्रकम्।
सोमवारेण संयुक्ता सर्वशोभननाशना ॥ १०४ ॥

सोमवार को विशाखा, मघा, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा और अनुराधा नक्षत्र हो तो शुभ काम करने पर वह नष्ट होता है ॥ १०४ ॥

वसिष्ठ संहिता में, कहा है 'आषाढद्वयवह्न्योज्यद्विदैवपितृतारकाः। सोमवारेण संयुक्ताः शुभकर्मविनाशदाः' (४२ अ० ४१ श्लो०) ॥ १०४ ॥

भौमवार में वर्जित नक्षत्र

भौमे चार्द्रा धनिष्ठा च पूर्वाभाद्रपदाह्वयाः।
शतभिषक्चोत्तराषाढा सर्वकर्मसु वर्जयेत् ॥ १०५ ॥

भौमवार में आर्द्रा, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपदा, शतभिषा, उत्तराषाढ़ा के होने पर कोई भी शुभ काम नहीं करना चाहिये ॥ १०५ ॥

वसिष्ठ संहिता में कहा है 'ज्येष्ठाजपादश्रवणधनिष्ठार्द्रा हि तोयपः। भौमवारेण संयुक्ताः सर्वमंगलनाशदाः' (४२ अ० ४२ श्लो०) ॥ १०५ ॥

बुधवार में वर्जित नक्षत्र

बुधेन मूलं पौष्णं च भरणीमश्विनीं तथा।
अजैकपाच्छ्रविष्ठां च सर्वकर्मसु वर्जयेत् ॥ १०६ ॥

बुधवार में मूल, रेवती, भरणी, अश्विनी, पूर्वाभाद्रपदा, धनिष्ठा के होने पर कोई भी शुभ काम नहीं करना चाहिये ॥ १०६ ॥

वसिष्ठ संहिता में कहा है 'अश्विनीभरणीमूलपौष्णवस्वार्द्रतारकाः। बुधवारेण संयुक्ताः सर्वशोभननाशदाः' (४२ अ० ४३ श्लो०) ॥ १०६ ॥

गुरुवार में वर्जित नक्षत्र

बृहस्पतिदिने त्वाष्ट्रं चान्द्रं चोत्तरफाल्गुनी।
रोहिणी वारुणं चैव सर्वकर्मसु वर्जयेत् ॥ १०७ ॥

गुरुवार में रेवती, मृगशिरा, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, शतभिषा में कोई भी शुभ कार्य नहीं करना चाहिये ॥ १०७ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'अर्यमारोहिणीत्वाष्ट्रधातृचन्द्राख्यतारकाः। गुरुवारेण संयुक्ताः शोभने निधनप्रदाः' (४२ अ० ४४ श्लो०) ॥ १०७ ॥

शुक्रवार में वर्जित नक्षत्र

विशाखासार्पमैत्राणि धनिष्ठा तिष्यरोहिणी।
चित्रा च पितृदैवत्यं शुक्रवारेण वर्जयेत् ॥ १०८ ॥

शुक्रवार में विशाखा, आश्लेषा, अनुराधा, धनिष्ठा, पुष्य, रोहिणी, मघा के होने पर मंगल काम नहीं करना चाहिये ॥ १०८ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'सार्पद्विदैवमित्रेन्दुरोहिणीपितृतारकाः। शुक्रवारेण संयुक्ताः वर्जनीयाश्च मङ्गले' (४२ अ० ४५ श्लो०) ॥ १०८ ॥

शनिवार में वर्जित नक्षत्र

पुनर्वसुस्तथाचार्यो रेवत्युत्तरफाल्गुनी।
सावित्रं श्रवणं चापि मन्दवारेण वर्जयेत् ॥ १०९ ॥

शनिवार में पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, उत्तराफाल्गुनी, सावित्र और श्रवण नक्षत्र होने पर शुभ काम नहीं करना चाहिये ॥ १०९ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'उत्तराफाल्गुनी पौष्यभेज्यादित्यार्कवैष्णवाः। शनिवारेण संयुक्ताः सर्वशोभनगर्हिताः' (४२ अ० ४६ श्लो०) ॥ १०९ ॥

वर्जनीय हालाहलोपम योग

पैत्रमैत्राश्विदेवेज्यविशाखावसुदेवता।
यद्यर्कवारसंयुक्ता दोषा हालाहलोपमाः ॥ ११० ॥

मघा, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य, विशाखा और धनिष्ठा नक्षत्र जब रविवार में होता है तो हालाहलोपम दोष होता है ॥ ११० ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'द्विदैवधातृवह्न्यर्कवसुदेवतपैतृकाः। अर्कवारेण संयुक्ताः हालाहलविषोपमाः' (४२ अ० ५५ श्लो०) ॥ ११० ॥

वर्जनीय कालकूटोपम योग

त्रीण्युत्तराणि चित्रा च विशाखा इन्दुवारगाः।
कालकूटोपमा दोषाः शुभकर्मविनाशनाः ॥ १११ ॥

तीनों उत्तरा, चित्रा, विशाखा नक्षत्र में जब सोमवार होता है तो शुभ कार्य नाशक कालकूटोपम दोष होता है ॥ १११ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'उत्तरात्रयचित्राख्यद्विदैवाह्वयतारकाः। सोमवारेण संयुक्ताः कालकूटविषोपमाः' (४२ अ० ५६ श्लो०) ॥ १११ ॥

हालाहलोपम दोष

विशाखा शततारार्द्रा विश्वे चैवारवारगाः।
महादोषा भवन्त्येते गुणा हालाहलोपमाः ॥ ११२ ॥

विशाखा, शतभिषा, आर्द्रा, उत्तराषाढा, नक्षत्र जब मंगलवार में होता है तो हालाहलोपम महादोष होता है ॥ ११२ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'शतताराद्विदैवार्द्रा उत्तराषाढतारकाः। आरारेण च संयुक्ता गुणघ्ना विषसंज्ञकाः' (४२ अ० ५७ श्लो०) ॥ ११२ ॥

अन्य बुधवार जन्य दोष

पूर्वादित्रितयं मूलवसुभं बुधवारगम्।
दोषानेव वदन्त्येते सदा गुणविघस्मराः ॥ ११३ ॥

बुधवार में जब पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, मूल, धनिष्ठा नक्षत्र होता है तो गुणनाशक महादोष होता है ॥ ११३ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'अश्विनीभरणीवह्निवसुमूलाद्यतारकाः। बुधवारेण संयुक्ता दोषाः सर्वाह्वयास्त्वमी' (४२ अ० ५८ श्लो०) ॥ ११३ ॥

अन्य गुरुवार जन्य दोष

ताराचतुष्कभाग्प्रेज्या वारुणा यमतारका।
गुरुवारयुता षड्भिः दोषा लोकजिघांसवः ॥ ११४ ॥

गुरुवार में जब पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, शतभिषा, भरणी इन ६ नक्षत्रों में से कोई एक होता है तो संसार को नष्ट करने वाला दोष होता है ॥ ११४ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'भचतुष्कं वह्निधिष्ण्याद्वरुणार्यमतारकाः। गुरुवारेण संयुक्ता दोषा मंगलनाशदाः' (४२ अ० ५९ श्लो०) ॥ ११४ ॥

शुक्रवार जन्य दोष

शाक्रेन्द्राग्निमघाश्लेषा रोहिण्युशनवारगाः।
महादोषास्तथा ह्येते महागुणविनाशनाः ॥ ११५ ॥

शुक्रवार में जब विशाखा, मघा, श्लेषा, रोहिणी नक्षत्र होता है तो अधिक गुणों का विनाशक बड़ा दोष होता है ॥ ११५ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'शक्रसार्पमघावह्निद्विदैवालुब्धतारकाः। शुक्रवारेण सयुक्ता महादोषाह्वयास्त्वमी' (४२ अ० ६० श्लो०) ॥ ११५ ॥

शनिवार जन्य दोष

पुष्यादित्यर्यमाहस्तविश्वायाषाढतारकाः ।
शनिवारयुताः सर्वदोषा गुणविमर्दकाः ॥ ११६ ॥

शनिवार में जब पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, उत्तराषाढा, पूर्वाषाढा होता है तो अधिक गुणों का नाशक बड़ा दोष होता है ॥ ११६ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'अर्यमादितिपौष्णार्कविश्वाषाढाख्यतारकाः । शनिवारेण संयुक्ता दोषा गुणविमर्दनाः' (४२ अ० ६१ श्लो०) ॥ ११६ ॥

अमृत सिद्धि योग ज्ञान

हस्ते रवौ शशधरे च मृगोत्तमाङ्गं भौमाश्विनी बुधदिने च तथानुराधा ।
पुष्ये गुरौ भृगुसुतेऽपि च पौष्णधिष्ण्यं रोहिण्यथार्कतनयेऽमृतसिद्धियोगाः ॥११७॥

जब कि सूर्य वार में हस्त, सोम में मृगशिरा, भौम में अश्विनी, बुध में अनुराधा, गुरु में पुष्य, शुक्र में रेवती और शनिवार में रोहिणी नक्षत्र होता है तो अमृत सिद्धि योग होता है ॥ ११७ ॥

नारद जी ने कहा है 'हस्तर्क्षं सूर्यवारेन्दाविन्दुभं प्रथमं कुजे । सौम्ये मित्रभमाचार्ये पुष्यं पौष्णं भृगोः सुते । रोहिणी मन्दवारे तु सिद्धियोगाह्वया अमी' (मु० चि० १ प्र० २० श्लो० पी० टी०) ॥ ११७ ॥

अमृत सिद्धि योग का कार्य विशेष में त्याग

भौमाश्विनीं प्रवेशे च प्रयाणे शनिरोहिणी ।
गुरुपुष्यं विवाहेषु प्राणिनां मरणं ध्रुवम् ॥ ११८ ॥

गृह प्रवेश में भौम-अश्विनी, यात्रा में शनि-रोहिणी और विवाह में गुरु-पुष्य योग होने पर मरण अवश्य होता है ॥ ११८ ॥

राजमार्तण्ड में कहा है 'भौमाश्विनीं प्रवेशे च प्रयाणे शनिरोहिणीम् । गुरुपुष्यं विवाहे च सर्वथा परिवर्जयेत्' (मु० चि० १ प्र० २२ श्लो० पी० टी०) ॥ ११८ ॥

तथा मुहूर्तचिन्तामणि में भी 'गृहप्रवेशे यात्रायां विवाहे च यथाक्रमम् । भौमाश्विनीं शनौ ब्राह्मं गुरौ पुष्यं विवर्जयेत्' (१ प्र० २२ श्लो०) ॥ ११८ ॥

राजमार्तण्डे—

राजमार्तण्ड के आधार पर दोषापवाद

एकोऽप्यमृतयोगोऽयं सकलं दोषसञ्चयम् ।
विनाशयति घर्मांशावुदिते तिमिरं यथा ॥ ११९ ॥

राजमार्तण्ड में कहा है कि एक भी अमृत योग होने पर समग्र दोष समूह का नाश करता है । जैसे सूर्य के उदित होने पर अन्धकार नष्ट होता है ॥ ११९ ॥

यदि विष्टिव्यतीपातं दिनं वाप्यशुभं भवेत् ।
हन्यतेऽमृतयोगेन भास्करेण तमो यथा ॥ १२० ॥

यदि विष्टि वा व्यतीपात योग हो वा अशुभ भी दिन हो और अमृत योग हो तो अशुभ योग का नाश होता है। जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार का नाश होता है ॥ १२० ॥

एषूक्तदोषयोगेषु वारेशे बलवर्जिते।
न दोषायैव दोषाः स्युः शुभकर्म न शोभनम् ॥ १२१ ॥

इन उक्त दोष योगों में यदि वारेश बल वर्जित हो तो दोष योग केवल दोष के लिये ही नहीं होते हैं। अनिष्ट कारक भी होते हैं अतः इनमें शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ १२१ ॥

प्रकारान्तर

वारेशे बलसंयुक्ते स्वर्क्षे बलसमन्विते।
नक्षत्रेशदृशायुक्ते निष्फलं प्रोक्तवद्भवेत् ॥ १२२ ॥

वारेश बली अपनी राशि में बली चन्द्र से दृष्ट हो तो दोष योग निष्फल होता है ॥ १२२ ॥

पुनः प्रकारान्तर

वारेशे बलसंयुक्ते नक्षत्रेशदृशा युते।
यद्यप्युक्ताः शुभा योगा न दद्युः स्वान् फलान्निशि ॥ १२३ ॥

वारेश बली चन्द्र से दृष्ट या युत हो तो भी उक्त शुभ योग अपना फल रात्रि में नहीं देते हैं ॥ १२३ ॥

अथ तिथिवारर्क्षाणां शुभाशुभयोगाः

अब आगे तिथि, नक्षत्र, वार के योग से शुभाशुभ योगों को वसिष्ठ ऋषि के वचन से बताते हैं।

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर तिथि वार, नक्षत्र योग

रवौ च पंचमी हस्ते द्वितीया सौम्यसोमयोः।
भौमाश्विनी च सप्तम्यामनुराधा बुधाष्टमी ॥ १२४ ॥
तृतीया गुरुपुष्येषु पूर्णिमा भृगुरेवती।
द्वादशी शनिरोहिण्यां विषयोगाः प्रकीर्तिताः ॥ १२५ ॥

वसिष्ठ जी ने बताया है कि रविवार पञ्चमी हस्त में, सोमवार मृगशिरा द्वितीया में, भौमवार सप्तमी अश्विनी में, बुधवार अष्टमी, अनुराधा में, गुरुवार पुष्य तृतीया में, शुक्रवार पूर्णिमा रेवती में और शनिवार द्वादशी रोहिणी का योग होने पर विष योग होता है ॥ १२४–१२५ ॥

विवाहे विधवा नारी व्याजदाता न लभ्यते।
अमृते विषमित्याहुर्वसिष्ठात्रिपराशराः ॥ १२६ ॥

अमृत योग में भी यदि विषयोग पड़ जाय तो उसमें विवाह करने पर स्त्री विधवा होती है और ऋण देने पर वह वसूल नहीं होता ऐसा वसिष्ठ, अत्रि, पराशर बताये हैं ॥ १२६ ॥

दैवज्ञ मनोहर में कहा है 'आदित्ये पञ्चमीहस्तौ सोमे षष्ठी च चन्द्रमम् । भौमाश्विन्यौ च सप्तम्यामनुराधां बुधाष्टमीम् । गुरुपुष्यं नवम्यां च दशम्यां भृगुरेवतीम् । एकादश्यां शनिब्राह्मो विषयोगाः प्रकीर्तिताः' (मु० चि० १ प्र० २०-२१ श्लो० पी० टी०) ॥१२६॥

और भी 'अर्के हस्तं पञ्चमीं च सोमे षष्ठीं च चन्द्रमम् । अश्विनीं सप्तमीं सोमे बुधे मैत्रं तथाष्टमीम् । गुरौ पुष्यं च नवमीं रेवतीं दशमीं भृगौ । एकादशीं शनौ ब्राह्मं वर्जयेत् सर्वदा बुधः' (मु० चि० १ प्र० २०-२१ श्लो० पी० टी०) ॥ १२६ ॥

मु० चि० में कहा है 'वर्जयेत्सर्वकार्येषु हस्तार्कं पञ्चमी तिथौ । भौमाश्विनीं च सप्तम्यां षष्ठयां चन्द्रैन्दवं तथा । बुधानुराधामष्टम्यां दशम्यां भृगुरेवतीम् । नवम्यां गुरुपुष्यं चैकादश्यां शनिरोहिणीम्' (१ प्र० २०-२१ श्लो०) ॥ १२६ ॥

बृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर सफल हालाहलोपम योग

अर्काग्न्योः पञ्चमी युक्ता षष्ठी श्रवणभार्गवे ।
बुधे तु सप्तमी याम्यं शनौ पौष्णाष्टमी युता १२७ ॥
सोमे द्वितीया चित्रा च कुजे पूर्णेन्दुरोहिणी ।
गुरौ त्रयोदशी मैत्रं विषा हालाहलोपमाः ॥ १२८ ॥

गुरु बृहस्पति जी ने बताया है कि सूर्यवार कृत्तिका पञ्चमी, शुक्रवार श्रवण षष्ठी, बुधवार भरणी सप्तमी, शनि रेवती अष्टमी, सोमवार चित्रा द्वितीया, भौमवार पूर्णिमा रोहिणी और गुरुवार अनुराधा तेरस का योग होने पर हालाहलोपम योग होता है ॥ १२७-१२८ ॥

एतेषु विषयोगेषु न कुर्याच्छोभनान्बुधः ।
शस्त्रभारादि कुर्वीत शापव्रतसमाप्तिकान् ॥ १२९ ॥

इन उक्त विष योगों में बुद्धिमान् को शुभ काम नहीं करना चाहिए और शस्त्र, भार, शाप, व्रत समाप्ति ये काम करने चाहिए ॥ १२९ ॥

वसिष्ठः —

वसिष्ठ जी के आधार पर हालाहल योग

[1]अर्कवाराग्निपञ्चम्योः सोमे चित्राद्वितीययोः ।
कुजे पूर्णेन्दुरोहिण्यां सप्तमीयाम्ययोर्बुधः ॥ १३० ॥
[2]गुरौ मित्रत्रयोदश्यां षष्ठीश्रवणयोः सिते ।
पौष्णाष्टम्योः शनावेते योगा हालाहलाह्वयाः ॥ १३१ ॥

---

१. व० सं० ४२ अ० ३० श्लो० । २. व० सं० ४२ अ० ३१ श्लो० ।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि सूर्यवार कृत्तिका पंचमी तिथि, सोमवार चित्रा द्वितीया, भौमवार रोहिणी पूर्णिमा, बुधवार भरणी सप्तमी, गुरुवार अनुराधा तेरस, शुक्रवार श्रवण षष्ठी और शनिवार रेवती अष्टमी का योग होने पर हालाहल नामक योग होता है ॥ १३०-१३१ ॥

'एषु योगेषु कर्तव्यः शत्रूच्चाटनमारणम् ।
विवाहादिषु कार्येषु-निश्चितं निधनप्रदम् ॥ १३२ ॥

इन उक्त योगों में शत्रु का उच्चाटन, मारण कर्म करना चाहिये और विवाहादि कामों में निश्चय ही निधन होता है ॥ १३२ ॥

ज्योतिषचिन्तामणौ—

ज्योतिष चिन्तामणि के आधार पर सिद्धि योग

आदित्ये चाष्टमी हस्तो द्वितीया चोत्तरात्रयम् ।
मूलं पुष्यं धनिष्ठा च सिद्धियोगाः प्रकीर्तिताः ॥ १३३ ॥

ज्योतिष चिन्तामणि में बताया है कि सूर्यवार में अष्टमी, हस्त, द्वितीया, तीनों उत्तरा, मूल, पुष्य, धनिष्ठा का योग होने सिद्ध योग होता है ॥ १३३ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'हस्तोत्तरात्रयं मूलं धनिष्ठारेवतीद्वयम् । पुष्यप्रतिपदष्टम्यौ नवमी च शुभा रवौ' (४७ पृ० ११ श्लो०) ॥ १३३ ॥

सूर्यवार में द्वादशी, चतुर्दशी तिथि नक्षत्र योग से विरुद्ध योग

सूर्ये विशाखा भरणी द्वादशी च चतुर्दशी ।
अनुराधा मघा ज्येष्ठा विरुद्धा सप्तमी सदा ॥ १३४ ॥

सूर्यवार में विशाखा, भरणी, द्वादशी, चतुर्दशी या सप्तमी, अनुराधा, मघा, ज्येष्ठा का संयोग हो तो विरुद्ध होता है ॥ १३४ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'भरणी भास्करे हेया विशाखात्रितयं मघा । सप्तमी द्वादशी षष्ठ्येकादशी च चतुर्दशी' (४७ पृ० १२ श्लो०) ॥ १३४ ॥

सोमवार में नवमी, दशमी तिथि नक्षत्र योग से सिद्ध योग

सोमे च नवमी पुष्यं श्रवणं रोहिणी मृगः ।
दशमी च सदा मैत्रं सिद्धियोगाः प्रकीर्तिताः ॥ १३५ ॥

सोमवार में नवमी तिथि पुष्य, श्रवण, रोहिणी, मृगशिरा या दशमी अनुराधा का संयोग होने से सिद्धि योग होता है ॥ १३५ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'द्वितीया नवमी पुष्यः श्रवणो रोहिणी मृगः । अनुराधा शुभा ज्ञेया दिने कुमुदिनीपतेः' (४७ पृ० १३ श्लो०) ॥ १३५ ॥

---

१. व० सं० ४२ अ० ३२ श्लो० ।

सोमवार में तिथि नक्षत्र संयोग से अशुभ योग

चन्द्रे चित्रोत्तराषाढा पूर्वाषाढविशाखयोः।
एकादश्यां त्रयोदश्यां षष्ठीं यत्नेन वर्जयेत् ॥ १३६ ॥

सोमवार में चित्रा, उत्तराषाढ़, पूर्वाषाढ़, विशाखा, एकादशी, तेरस, षष्ठी के संयोग से अशुभ योग होता है। इसे यत्न से त्यागना चाहिये ॥ १३६ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'आषाढाद्वितयं चित्रा विशाखा न शुभा भवेत्। सप्तम्येकादशी सोमे द्वादशी च त्रयोदशी' (४७ पृ० १४ श्लो०) ॥ १३६ ॥

भौमवार में तिथि नक्षत्र संयोग से शुभ योग

भौमे षष्ठी तृतीया च अष्टमी च त्रयोदशी।
मूलाश्विनी मृगाश्लेषा सिद्धा उत्तरभाद्रपात् ॥ १३७ ॥

मंगलवार में षष्ठी, तृतीया, अष्टमी, तेरस, मूल, अश्विनी, मृगशिरा और आश्लेषा का योग होने पर सिद्ध योग होता है ॥ १३७ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'रेवती मूलमाश्लेषोत्तराभद्राऽश्विनी मृगः। त्रयोदश्यष्टमी षष्ठी तृतीयाऽभिमता कुजे' (४७ पृ० १५ श्लो०) ॥ १३७ ॥

भौमवार में तिथि नक्षत्र संयोग से अशुभ योग

कुजे चार्द्रा धनिष्ठा च द्वितीया पूर्वभाद्रपात्।
शततारोत्तराषाढा दशमी च विवर्जयेत् ॥ १३८ ॥

भौमवार में आर्द्रा, धनिष्ठा, द्वितीया, पूर्वाभाद्रपद, शतभिषा, उत्तराषाढ़ा, दशमी के संयोग से अशुभ त्याज्य योग होता है ॥ १३८ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'वर्जयेदुत्तराषाढां धनिष्ठात्रितयं कुजे। आर्द्रां प्रतिपदं चैकादशीं च दशमीं तथा' (४७ पृ० १६ श्लो०) ॥ १३८ ॥

बुधवार में तिथि नक्षत्र संयोग से शुभ योग

वुधवारे द्वितीया च सप्तमी द्वादशी पुनः।
मृगोऽनुराधा पुष्यं च सिद्धा कृत्तिकरोहिणी ॥ १३९ ॥

वुधवार में द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी, मृगशिरा, अनुराधा, पुष्य, कृत्तिका और रोहिणी का योग हो तो सिद्ध योग शुभ होता है ॥ १३६ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'श्रवणो रोहिणो पुष्योऽनुराधामृगकृत्तिकाः। द्वितीया द्वादशी सप्तम्यपि सिद्धिप्रदा वुधे' (४७ पृ० १७ श्लो०) ॥ १३६ ॥

बुधवार में तिथि नक्षत्र संयोग से अशुभ योग

बुधे धनिष्ठाभरणी अश्विनीमूलसंयुताः।
तृतोया नवमी चैव प्रतिपद्रेवती त्यजेत् ॥ १४० ॥

बुधवार में धनिष्ठा, भरणी, अश्विनी, मूल, रेवती, तृतीया नवमी का संयोग हो तो अशुभ त्यागने योग्य योग होता है ॥ १४० ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'न शुभाय बुधे मूलधनिष्ठारेवतीत्रयम् । तिथयः सचतुर्दश्यः प्रतिपन्नवमी जया' (४७ पृ० १८ श्लो०) ॥ १४० ॥

गुरुवार में तिथि नक्षत्र संयोग से सिद्धि योग

गुरौ च दशपञ्चम्यां पूर्णिमायां विशाखयोः ।
पौष्णाश्विन्यनुराधासु सिद्धिः पुष्ये पुनर्वसौ ॥ १४१ ॥

गुरुवार में दशमी, पंचमी, पूर्णिमा, विशाखा, अनुराधा, रेवती, अश्विनी, पुष्य पुनर्वसु का योग हो तो सिद्धियोग होता है ॥ १४१ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'अदितेर्भं विशाखा च रेवतीद्वितयं करः । भाग्यमैत्रेज्यभं पूर्णैकादशी च गुरौ शुभा' (४७ पृ० २६ श्लो०) ॥ १४१ ॥

गुरुवार में तिथि नक्षत्र संयोग से अशुभ योग

जीवेऽष्टमी चतुर्थी च आर्द्रा चोत्तरफाल्गुनी ।
रोहिणी शतभिषा षष्ठी कृत्तिका मृगवर्जिता ॥ १४२ ॥

गुरुवार में जब अष्टमी, चतुर्थी, आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, शतभिषा, कृत्तिका, मृगशिरा का योग हो तो अशुभ व त्याज्य होता है ॥ १४२ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'कृत्तिकोत्तरफाल्गुन्यौ रोहिणीत्रयमष्टमी । षष्ठी शतभिषग्भद्रा चतुर्थीचाशुभा गुरौ' (४७ पृ० २० श्लो०) ॥ १४२ ॥

शुक्रवार में तिथि नक्षत्र संयोग से सिद्धि योग

शुक्रे प्रतिपदा षष्ठी ह्येकादशी त्रयोदशी ।
अश्विनी रेवती पूफा श्रुतिचित्रादितिः शुभाः ॥ १४३ ॥

शुक्रवार में प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, त्रयोदशी, अश्विनी, रेवती, पूर्वाफाल्गुनी, श्रवण, चित्रा, पुनर्वसु का योग होने पर शुभ योग होता है ॥ १४३ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'पुनर्वसुश्च सावित्रं वैश्वं पौष्णद्वयं तथा । शुभा त्रयोदशी नन्दाऽनुराधाभाग्यभं भृगौ' (४७ पृ० २१ श्लो०) ॥ १४३ ॥

शुक्रवार में तिथि नक्षत्र संयोग से त्याज्य योग

भार्गवे रोहिणी ज्येष्ठा द्वितीयासप्तमीषु च ।
पुष्याश्लेषा मघा चैव सर्वकर्मणि वर्जिता ॥ १४४ ॥

शुक्रवार में रोहिणी, ज्येष्ठा, पुष्य, श्लेषा, मघा, द्वितीया, सप्तमी का योग होनेपर त्याज्य योग होता है ॥ १४४ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'पुष्यादित्रितयं ज्येष्ठा रोहिणी शुक्रवासरे । द्वितीया सप्तमी रिक्ता तृतीया नेष्टदा सदा' (४७ पृ० २२ श्लो०) ॥ १४४ ॥

शनिवार में तिथि नक्षत्र संयोग से सिद्धि योग

शनौ चतुर्थी नवमी चतुर्दश्यां च रोहिणी।
श्रवणं च मघा स्वाती सिद्धिदा पूर्वफाल्गुनी ॥ १४५ ॥

शनिवार में चतुर्थी, नवमी, चौदस, रोहिणी, श्रवण, मघा, स्वाती, पूर्वाफाल्गुनी का योग होने पर सिद्धि योग होता है ॥ १४५ ॥

ज्योतिर्निवन्ध में कहा है 'पूर्वाफाल्गुनीरोहिण्यो स्वातीशतमिषङ्मघा । श्रवणश्चाष्टमी रिक्ता तिथिः स्यात्सिद्धये शनौ' (४७ पृ० २३ श्लो०) ॥ १४५ ॥

शनिवार में तिथि नक्षत्र संयोग से अशुभ योग

सौरे हस्तोत्तराषाढा रेवती चैव सप्तमी।
षष्ठी चोत्तरफाल्गुन्यां पूर्वाषाढां विवर्जयेत् ॥ १४६ ॥

शनिवार में हस्त, उत्तराषाढा, रेवती, सप्तमी, षष्ठी, उत्तरा फाल्गुनी, पूर्वाषाढा का संयोग होने पर अशुम योग होता है ॥ १४६ ॥

ज्योतिर्निवन्ध में कहा है 'रेवतीमुत्तराषाढामुत्तराफाल्गुनीत्रयम् । षष्ठीं च सप्तमीं पूर्णां मन्दवारे विवर्जयेत्' (४७ पृ० २४ श्लो०) ॥ १४६ ॥

अब आगे बृहस्पति जी के वाक्य से वार क्रम से सुधा योगों को वताते हैं।

बृहस्पतिः—

सूर्यवार में नक्षत्र संयोगवश सुधा योग

बार्हस्पत्यं च सावित्रं नैरृत्यं सूर्यवारगम्।
सर्वेषु शुभकार्येषु सुभगाः स्युः शुभावहाः ॥ १४७ ॥

गुरु बृहस्पति ने बताया है कि सूर्यवार में पुष्य, सावित्र, मूल नक्षत्र हो तो समस्त शुभ कामों में शुभ फलदायक योग होता है ॥ १४७ ॥

सोमवार में नक्षत्र संयोगवश सुधा योग

चित्राश्रवणसौम्याः स्युर्यदि शीतांशुवारगाः।
एते चापि सुधायोगाः सर्वशोभनशोभनाः ॥ १४८ ॥

सोमवार में चित्रा, श्रवण, मृगशिरा का योग हो तो समस्त शुभ काम में शुभ सुधा योग होता है ॥ १४८ ॥

भौमवार में नक्षत्र तिथि संयोगवश सुधा योग

भाद्रपदाश्विनी चैव रोहिणी चोत्तरास्त्रयः।
कुजवारेण संयुक्ताः सुधायोगो दिवौकसाम् ॥ १४९ ॥

भौमवार में पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, रोहिणी, तीनों उत्तरा का योग हो तो देवताओं का सुधा योग होता है ॥ १४९ ॥

बुधवार में नक्षत्र संयोगवश सुधा योग

वैश्वाग्निमित्रनक्षत्रा बुधवारसमायुता: ।
पञ्चमी सप्तमी युक्ता सुधायोगा: प्रकीर्तिता: ।। १५० ।।

बुधवार में उत्तराषाढा, कृत्तिका, अनुराधा, पञ्चमी, सप्तमी का योग हो तो सुधा योग होता है ।। १५० ।।

गुरुवार में तिथि नक्षत्र संयोगवश सुधा योग

पूर्वाषाढापुनर्वस्वौ रेवती सहिता यदि ।
गुरोर्वारे सुधायोगस्त्रयोदश्या समायुत: ।। १५१ ।।

गुरुवार में पूर्वाषाढा, पुनर्वसु, रेवती, तेरस का संयोग हो तो सुधा योग होता है ।। १५१ ।।

शुक्रवार में तिथि नक्षत्र संयोगवश सुधा योग

स्वातीशतभिषाभाग्यै: सहिता यदि नन्दया ।
शुक्रवार: सुधायोग: सर्वकर्मणि दोषहा ।। १५२ ।।

शुक्रवार में स्वाती, शतभिषा, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र और नन्दा तिथि का योग हो तो समस्त शुभ कामों में दोष का नाशक सुधा योग होता है ।। १५२ ।।

शनिवार में तिथि नक्षत्र संयोगवश सुधा योग

रोहिणी वसुवायव्या: शनिवारसमायुता: ।
भद्रया सहिता योगा: शुभाख्या: शुभवृद्धिदा: ।। १५३ ।।

शनिवार में रोहिणी, धनिष्ठा, वायव्य नक्षत्र और भद्रा तिथि हो तो शुभ नामक शुभ कार्य की वृद्धि करने वाला योग होता है ।। १५३ ।।

उक्त योगों के कार्यवश फल

एषु योगेषु सर्वेषु विवाहे शोभना: प्रजा: ।
दीर्घमाङ्गल्यसंपत्तिर्मोदते पुत्रवृद्धिभि: ।। १५४ ।।
यात्रायामिष्टसिद्धि: स्याद्बललाभैर्जयैरपि ।
विद्यारम्भे तु पाण्डित्यं चतुर्वर्गफलायति: ।। १५५ ।।
कृष्यारम्भे महाधान्यं धनपोन्तरयत्नत: ।
द्वितीये जन्मनि प्राज्ञो यज्ञकर्मविशारद: ।। १५६ ।।
नवान्नभोजने ज्ञानी दीर्घायु: शास्त्रपारग: ।
चूडाकर्मणि दीर्घायुर्नीरोग: श्रीपतिर्भवेत् ।। १५७ ।।

उन समस्त सुधा योगों में विवाह करने पर सुन्दर सन्तान और अटूट सम्पत्ति एवं पुत्रों की वृद्धि से प्रसन्नता, यात्रा में अभोष्ट की सिद्धि, बललाभ और विजय भी, विद्यारम्भ करने पर पाण्डित्य और भविष्यकाल में चतुर्वर्ग फल, खेती का आरम्भ करने पर अधिक अन्न होने से, बिना प्रयत्न के धनी हो जायगा, यज्ञोपवीत संस्कार करने पर विद्वान्

तथा कार्य में चतुर, नवान्न भोजन करने पर ज्ञानी, चिरायु, शास्त्र पारङ्गामी और उक्त योगों में चूडाकर्म करने से दीर्घायु, नीरोगता और लक्ष्मी का आधिपत्य होता है ।। १५४-१५७ ।।

श्रीपतिः—

श्रीपतिजी के आधार पर अशुभ योगों का देशभेद से परिहार

विरुद्धयोगास्तिथिवारजाता नक्षत्रवारप्रभवाश्च ये च ।
हूणेषु वङ्गेषु खशेषु वर्ज्याः शेषेषु देशेषु न ते निषिद्धाः ।। १५८ ।।

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि तिथिवार के योग से, नक्षत्र, वार योग से उक्त अशुभ योगों का हूण, बंगाल और खश देशों में ही त्याग करना चाहिए। अवशिष्ट देशों में कुयोग निन्दित नहीं होता है ।। १५८ ।।

रामः—

मुहूर्त चिन्तामणि के आधार पर

[1]कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्था भवारजाः ।
हूणवङ्गखशेष्वेव वर्ज्यास्त्रितयजास्तथा ।। १५९ ।।

रामदैवज्ञ ने कहा है कि तिथि और वार से, तिथि और नक्षत्र से, नक्षत्र और वार से, तिथिवारनक्षत्र इन तीनों से उत्पन्न कुयोगों का त्याग हूण, बंग और खश देशों में करना चाहिए ।। १५६ ।।

नारदजी ने कहा है 'तिथिवारोद्भवा नेष्टा योगा वारर्क्षसम्भवाः । हूणवङ्ग-खशेभ्योऽन्यदेशेष्वेते शुभप्रदाः' (मु० चिं० १ प्र० ३१ श्लो० पी० टी०) ।। १५६ ।।

मुहूर्त गणपति में कहा है 'तिथिवारोद्भवान् योगान् दुष्टाख्यांश्च भवारजान् । तिथि-भोत्थांस्त्रितयजान् हूणे वङ्गे खशे त्यजेत्' (८ प्र० ६४ श्लो०) ।। १५६ ।।

कालिदासः—

कालिदास जी के आधार पर

तिथिवारभवा भवारजाः किल योगाश्च शुभाशुभाह्वयाः ।
विषयेष्वखिलक्रियाविधावखिलेष्वत्र विलोकनोचिताः ।। १६० ।।

ज्योतिर्विदाभरण में बताया है कि तिथि वार जन्य और नक्षत्र वार जन्य शुभ अशुभ योग सभी कर्मों के विषय में सभी देशों में देखने चाहिये ।। १६० ।।

श्रीपतिः—

श्रीपति के आधार पर वारों में त्याज्य प्रहरार्ध (अर्धयाम) मंगल

मनीषिणोर्द्धप्रहरा द्वितीयमारभ्य सर्वेष्वपि मङ्गलेषु ।
भौमोशनःसूर्यबुधार्किचन्द्रसुरेज्यवारेषु विवर्जयन्ति ।। १६१ ।।

---

१. मु० चिं० १ प्र० ३१ श्लो० ।

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि मंगल, शुक्र, सूर्य, बुध, शनि, चन्द्र और गुरुवारों में क्रम से २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ अर्धयाम सभी शुभ कार्यों में त्याज्य होते हैं। अर्थात् मंगल वार में दूसरे याम का शुक्र में तीसरे का सूर्य में चौथे का बुध में पाँचवाँ इत्यादि निषिद्ध होता है ॥ १६१ ॥

त्रिविक्रमः —

त्रिविक्रम जी के आधार पर

अर्द्धयामो द्वितीयादि दिने त्याज्यः सदा बुधैः ।
भौमभार्गवभानुज्ञशनीन्दुगुरुवासरे ॥ १६२ ॥

आचार्य त्रिविक्रम ने बताया है कि भौम, शुक्र, सूर्य, बुध, शनि, सोम और गुरुवार में क्रम से २।३।४।५।६।७।८ वाँ अर्धयाम त्याज्य होता है ॥ १६२ ॥

वर्जनीय कला योग

त्याज्योऽर्द्धयामो वेदाद्रिद्विपञ्चाष्टत्रिषष्ठगाः ।
अष्टत्रिषट्भूवेदाद्रिदस्रकालश्च भास्करात् ॥ १६३ ॥

सूर्य वारादि क्रम से ४।७।२।५।८।३।६ प्रहर का आधा त्याज्य होता है। और ८।३।६।१।४।७ वीं कालवेला त्याज्य होती है ॥ १६३ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'अर्धयामाः परित्याज्या वेदसप्तद्विपञ्चमाः। अष्टत्रिषष्ठसंख्याकाः क्रमतो रविवासरात्' (८ प्र० ३७ श्लो०) ॥ १६३ ॥

तथा ज्यो० नि० में भी 'वेदाद्रिद्विशराष्टाग्निरसा यामार्धकाः क्रमात्। आदित्यादौ शुभे त्याज्या दिवैव न तु निश्यपि' (७५ पृ०) ॥ १६३ ॥

वर्जनीय काल कला

आद्या बुधे सूर्यसुते द्वितीया सोमे तृतीया च गुरौ चतुर्थी ।
षष्ठी कुजे सप्तमिका च शुक्रे सूर्येऽष्टमी कालकला विवर्ज्या ॥ १६४ ॥

बुध में प्रथम याम का दूसरा अर्ध भाग, शनि में दूसरे याम का अन्त्यार्ध, चन्द्र वार में तीसरे का, गुरु में चौथे का, मंगल में छठे का, शुक्र में सातवें का और शनि में दूसरे याम की काल कला का त्याग करना चाहिये ॥ १६४ ॥

अथ कुलिकः—

अब आगे कुलिक आदि को बताते हैं।

कुलिक मुहूर्त ज्ञान

[1]मन्वर्कदिग्वस्वतुवेदपक्षैरर्कान्मुहूर्तैः कुलिका भवन्ति ।
दिवा निरेकैरथ यामिनीषु ते गर्हिताः कर्मसु शोभनेषु ॥ १६५ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० २३ श्लो० पी० टी० ।

सूर्यवार में १४ चौदहवां, सोम में बारहवां १२, भौम वार में १० दसवां, बुधवार में ८ आठवां, गुरुवार में ६ छठा, शुक्र में ४ चौथा और शनिवार में दूसरा २ मुहूर्त कुलिक एक कम करने पर होता है। यह रात्रि में समस्त कार्यों में निन्दित माना गया है ॥ १६५ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'मन्वर्कदशनागर्तुवेदनेत्रमिताः क्षणाः। कुलिकास्तेरवेर्वाराव् क्रमतः कष्टका बुधात्' (८ प्र० ३८ श्लो०)

तथा ज्योतिष सार में 'सूर्याद्यामदलं दिवैव निगमाद्यश्वीषुनागत्रिषट्सङ्ख्याङ्कं कुलिक दिवेन्द्ररविदिङ्नागर्तुवेदद्विकम्। व्येकं तन्निशि षोडशांशमपरे (१२९ पृ०) ॥ १६५ ॥

और भी ज्योतिर्निबन्ध में 'मार्तण्डोदयतः स्मृता दिनपतेर्यामार्धनाथा ग्रहामार्तण्डात्मजभोगउत्तरलवस्तज्ज्ञैः शुभे कर्मणि। त्याज्योऽसौ कुलिकोऽथ सूर्यदिवसादन्यैश्च शक्रार्कदिग्वस्वङ्काब्धियमैः स्मृताः कुरहितै रात्रौ तु तिथ्यंशकैः' (४७ पृ०) ॥ १६५ ॥

तथा मुहूर्तचिन्तामणि में भी 'शक्रार्कदिग्वसुरसाब्ध्यश्विनः कुलिका रवेः। रात्रौ निरेकास्तिथ्यंशाः शनौ चान्त्योऽपि निन्दितः' (६ प्र० ६५ श्लो०) ॥ १६५ ॥

दूसरी में दिन रात में प्रथम मुहूर्त

[1]दिवा द्वितीयः कुलिकोऽर्कजाते रात्रौ प्रविष्टे प्रथमे मुहूर्ते।
रात्रेस्तथा पञ्चदशे विभागे एवं विवर्ज्यं कुलिकत्रयं च ॥ १६६ ॥

दिन में सूर्योदय के बाद द्वितीय मुहूर्त, रात्रि में रात्रिप्रवेश का प्रथम मुहूर्त और रात्रि के पन्द्रहवें भाग में इन तीनों कुलिकों को त्यागना चाहिए ॥ १६६ ॥

विशेष—पी० धा० टी० में 'रात्रौ प्रदिष्टः प्रथमः स एव' पाठान्तर है ॥ १६६ ॥

वारादि क्रम से अर्धप्रहर कुलिकादि का ज्ञान

रवौ युगासप्तमत्र्यष्टकेषु सोमे मुनी अङ्ककरा च रामा।
द्विपञ्चरूपा रसमङ्गलेषु बाणायुगा सप्त बुधे च रूपा ॥ १६७ ॥
गुरौ वसू राम रसा च वेदा सन्ध्याकरा बाणमुनिश्च शुक्रे।
शनौ रसारूपयुगा च हस्ते स्युश्चार्द्धयामकुलिककण्टककालवेला: ॥१६८॥

अथार्द्धप्रहरकुलिककण्टककालवेला

सू०	चं०	मं०	बु०	बृ०	शु०	श०	वाराः
४	७	२	५	८	३	६	अर्धप्रहर०
७	६	५	४	३	२	१	कुलिक०
३	२	१	७	६	५	४	कंटक०
८	३	६	१	४	७	२	कालवेला०

१. मु० चिं० ६ प्र० ६३ श्लो० पी० टी० |

सूर्य वार में ४।७।३।८, सोम में ७।६।२।३, भौमवार में २।५।१।६, बुध में ५।४।७।१, गुरुवार में ८।३।६।४ शुक्र में ३।२।५।७ और शनिवार में ६।१।४।२ संख्यक अर्धप्रहर क्रम से कुलिक कण्क कालवेला होता है ॥ १६७-१६८ ॥

कुलिकयामार्द्धापवादः—

कुलिक अर्धयाम का परिहार

[1]वारेशे सबले चन्द्रे बलाढ्ये लग्नगे शुभे।
कुलिकोदयोत्थदोषस्तु विनश्यति न संशयः ॥ १६९ ॥

जब कि वारेश व चन्द्रमा बली और लग्न में शुभ ग्रह होता है तो निश्चय ही कुलिक दोष का विनाश होतः है ॥ १६६ ॥

[2]वाराधीशे बलोपेते विधौ वा बलसंयुते।
अर्द्धप्रहरसम्भूतो दोषो नैवात्र विद्यते ॥ १७० ॥

जब कि वारेश व चन्द्र बलवान् होता है तो अर्धयाम जन्य दोष नहीं होता है ॥ १७० ॥

[3]अर्द्धप्रहरपूर्वार्धं मध्यं तु यमघण्टके।
कुलिकान्त्यघटी त्याज्या शेषेषु शुभमाचरेत् ॥ १७१ ॥

अर्ध प्रहर की पूर्वार्ध की यमघंट की, मध्यम की और कुलिक की अन्त की घटी त्याज्य होती है ॥ १७१ ॥

त्रिविक्रमः—

त्रिविक्रम जी के आधार पर कुलिक का ज्ञान

मन्वर्कदशवस्वङ्कवेदपक्षार्कतः क्रमात्।
क्रमेण कुलिका वर्ज्या दिवा व्येकेषु रात्रिषु ॥ १७२ ॥

आचार्य त्रिविक्रम ने बताया है कि रविवार में चौदहवें मुहूर्त में, सोम में बारहवें में, मंगल में दसवें, बुध में आठवें, गुरु में छठे, शुक्र में चौथे और शनिवार में दूसरे मुहूर्त में दिन में कुलिक वर्ज्य हैं व रात में एक २ घटाकर अर्थात् १३।११।६ आदि मुहूर्तों में कुलिक होता है ॥ १७२ ॥

विशेष—दिन या रात्रि में इष्ट होने पर दिनमान, रात्रिमान में ८ का भाग देकर एक खण्ड का ज्ञान करके अभीष्ट वार से तथा रात्रि में अभीष्ट वार से पञ्चम वार से शनिवार तक गिनने पर कुलिक होता है। एवं दिन पति से सात वार होते हैं। इसलिये आठवें अंश का स्वामी नहीं है। इसलिए कुलिक को व्येक कहा है। प्राचीन

---

१. ज्यो० नि० ७५ पृ०। २. ज्यो० नि० ७५ पृ०।
३. ज्यो० नि० ७५ पृ०।

चार्यों ने इसे गुलिक के नाम से बताया है। यथा--दिवसानष्टधा भक्त्वा वारेशाद् गणयेत् क्रमात्। अष्टमोंऽशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः ॥ १७२॥

उपकुलिकम्—

सूर्यादि वारों में उपकुलिक का ज्ञान

पञ्चवेदगुणाद्र्येकसप्ताङ्गप्रहरार्धकाः ।
उपकुलिकाश्च विज्ञेया रविवारात्क्रमादमी ॥ १७३ ॥

सूर्यवार में पाँचवा सोम में चौथा, मंगल में तीसरा, वुध में सातवाँ, गुरु में पहिला, शुक्र में सातवाँ और शनिवार में आठवाँ प्रहरार्ध उपकुलिक होता है ॥१७३॥

सूर्यादिवारों में कंटक कालवेला का ज्ञान

कण्टककालौ यामार्द्धौ ज्ञेयौ ।
गुणद्विचन्द्रसप्ताङ्गशरवेदास्तु कण्टकाः।
कालस्तु वसुरामाङ्गभूवेदा मुनिपक्षकाः ॥ १७४ ॥

कंटक, काल यामार्द्ध होते हैं। सूर्यवार में तीसरा, सोम में दूसरा, भौम में पहिला, बुधवार में सातवाँ, गुरु में छठा, शुक्र में पाँचवाँ और शनिवार में चौथा यामार्द्ध कंटक होता है और काल तो सूर्यादि वारक्रम से ८।७।६।१।४।७।२ इन यामार्द्धों में होता है ॥ १७४ ॥

कुलिकादि का ज्ञान

वाराद्द्विगुणिते मन्दे भौमे ज्ञे सुरपूजिते।
कुलिकः कण्टकः कालवेला स्याद्यमघण्टकः ॥ १७५ ॥

अभीष्टवार से शनि तक गिनकर दूना करने पर कुलिक, भौम तक गिनकर दो से गुना करने पर कंटक, बुध तक गिनने पर कालवेला और गुरु तक गणना करके दूना करने यमघंट योग उस संख्या तुल्य मुहूर्त में होता है ॥ १७५ ॥

मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है 'कुलिकः कालवेला च यमघण्टश्च कण्टकः। वाराद् द्विघ्ने क्रमान्मन्दे बुधेजीवे कुजेक्षणः' (१ प्र० ३७ श्लो०) ॥ १७५ ॥

अन्य वाक्य से

यमघण्टकः उपकुलिकः ।
उपकुलिकं गुरुस्थाने भौमस्थाने च कण्टकम् ।
कुलिशं शनिविज्ञेयं वारमादौ गुणेद्बुधः ॥ १७६ ॥

यमघण्ट उपकुलिक होता है। अभीष्टवार से गुरु तक यमघण्ट, भौम तक कंटक, और शनि तक गिनने पर कुलिश होता है ॥ १७६ ॥

कुलिकादियोगाः—

वसिष्ठः—

कुलिकादि की महादोषता वसिष्ठजी के आधार पर

[1]यामार्धो यमघण्टकः कुलिक इत्येते च वारोद्भवा
दोषा लग्नतदंशसौम्यखचराः प्रोद्भूतसर्वान् गुणान् ।
विघ्नन्त्येव सदा शरीरमखिलं दोषत्रयं प्रोत्कटा-
श्चान्योन्यान्गुणसञ्चयानपि महायामार्धतुल्यानपि ॥ १७७ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि यामार्ध, यमघण्ट और कुलिक वार से उत्पन्न दोष लग्न या नवांश में शुभ ग्रह होने पर कार्य व देह का तथा अन्य भी गुण समुदाय का सदा विनाश करते हैं ॥ १७७ ॥

अथैषां फलानि—

अब आगे इनके क्रम से फलों को बताते हैं ।

वसिष्ठः—

वसिष्ठ के आधार पर कुलिकादि का फल

[2]कुलिके मरणं विन्द्याद्यमघण्टेऽर्थनाशनम् ।
यामार्द्धे कार्यनाशः स्यात्कालवेला भयप्रदाः ॥ १७८ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि कुलिक दोष में काम करने पर मृत्यु, यमघण्ट में धन नाश, यामार्ध में काम का नाश और कालवेला दोष में शुभ काम करने पर भय होता है ॥ १७८ ॥

गर्गः—

गर्ग के आधार पर कुलिकादि फल

[3]निधनं प्रहरार्द्धे तु निःसत्वं यमघंटके ।
कुलिके सर्वनाशः स्याद्रात्रावेते न दोषदाः ॥ १७९ ॥

आचार्य गर्ग ने कहा है कि प्रहरार्ध दोष में मृत्यु, यमघण्ट में दरिद्रता, कुलिक में सब का नाश होता है । कुलिकादि का दोष रात में नहीं होता है ॥ १७९ ॥

यमघण्टादि योगों में त्याज्य घटी

[4]यमघंटे त्यजेदष्टौ मृत्यौ द्वादश नाडिकाः ।
अन्येषां दुष्टयोगानां मध्याह्नात्परतः शुभम् ॥ १८० ॥

---

१. व० सं० ३२ अ० ७२ श्लो० । २, ज्यो० नि० ६७ पृ० ।

३. मु. चि. १ प्र० ३४ श्लो० पी० टी० में वसिष्ठ के नाम से उद्धृत है। व० सं० ३७ अ० ७७ श्लो० ।

४. ज्यो. नि. ४९ पृ० १२ श्लो० ।

यमघण्ट योग में आठ घटी और मृत्यु योग में बारह घटी का त्याग करना चाहिए तथा अन्य दूषित योगों में मध्याह्न के बाद शुभता होती है ।। १८० ।।

उत्पातादि योगों में शुभता

[1]उत्पाते यमघंटे च काणे क्रकचके तथा ।
तिथौ दग्धे च पापे च प्राक् यामात्परतः शुभम् ।। १८१ ।।

उत्पात, यमघण्ट, काण, क्रकच, दग्ध तिथि और पाप योग में पहिले प्रहर को छोड़ कर आगे के यामों में शुभता होती है ।। १८१ ।।

दुष्ट योगों का कार्यविशेष में त्याग

अयोगेषु च सर्वेषु यात्रामेव विवर्जयेत् ।
विवाहादि न कुर्वीत गर्गादीनामिदं वचः ।। १८२ ।।

समस्त दूषित योगों का यात्रा व विवाह में त्याग करना चाहिए । ऐसा गर्गादिकों का कहना है ।। १८२ ।।

अथ दुष्टमुहूर्ताः—

अब आगे दुष्ट मुहूर्तों को बताते हैं ।

वारादि क्रम से दूषित मुहूर्तों का ज्ञान

[2]अर्यम्णोर्के तुहिनकिरणे राक्षसब्राह्मसंज्ञौ
पित्राग्नेयौ क्षितिसुतदिने चन्द्रपुत्रेभिजिच्च ।
पितृब्राह्मौ भृगुसुतदिने राक्षसाख्यौ च जीवे
भौजंगेऽशौ सवितृतनये वर्जनीयौ मुहूर्तौ ।। १८३ ।।

रविवार के दिन अर्यमा, सोमवार में ब्रह्म और रक्ष, भौम में वह्नि और पितृ, बुध में अभिजित्, गुरुवार में तोय व रक्ष, शुक्रवार में ब्रह्म व पितृ और शनिवार के दिन ईश और सार्प मुहूर्त का शुभ कामों में त्याग करना चाहिए ।। १८३ ।।

नारद जी ने कहा है 'अर्यमाराक्षसौ ब्राह्मौ पित्र्याग्नेयौ तथाभिजित् । रक्षः सार्पौ ब्राह्मपित्र्यौ भौजङ्गेशाविनादिषु' (मु० चि० ६ प्र० ५४ श्लो० पी० टी०) ।। १८३ ।।

तथा मुहूर्त चिन्तामणि में भी 'रवावर्यमा ब्रह्मरक्षश्च सोमे कुजे वह्निपित्र्ये बुधे चाभिजित्स्यात् । गुरौ तोयरक्षौ भृगौ ब्राह्मपित्र्ये शनावीशसार्पौ मुहूर्त्ता निषिद्धाः' (६१ प्र० ५४ श्लो०) ।। १८३ ।।

तथा मुहूर्त गणपति में कहा है 'अर्यमा भानुमद्वारे चन्द्रेऽह्नि विधिराक्षसौ । पित्र्याग्नी कुजवारे तु चन्द्रपुत्रे तथाभिजित् । पित्र्यब्राह्मौ भृगोर्वारे रक्षःसर्पौ गुरोर्दिने रौद्रसार्पौ शनेरह्नि त्याज्याश्चैते मुहूर्तकाः' (४ प्र० ८५-८६ श्लो०) ।। १८३ ।।

---

१. ज्यो. नि. ४८ पृ० ७ श्लो० ।　　२. ज्यो. नि. ४६ पृ० ४ श्लो० ।

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर निषिद्ध मुहूर्त

[1]अर्यम्णो भानुवारे शशधरदिवसे राक्षसब्राह्मसंज्ञौ
पित्र्याग्नेयौ कुजाहे शशिसुतदिवसे योभिजित्संज्ञकश्च ।
जीवौ यौ राक्षसाख्यौ भृगुसुतदिवसे ब्राह्मपैत्रावहीशौ
शौरावेते विवर्ज्यास्त्वथ च निधनदा मङ्गले दुर्मुहूर्ताः ।। १८४ ।।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि रविवार के दिन अर्यमा, सोमवार के दिन राक्षस व ब्राह्म, मंगल के दिन पित्र्य व आग्नेय, बुध के दिन अभिजित्, गुरुवार के दिन राक्षसद्वय, शुक्रवार के दिन ब्राह्म, पैत्र और शनिवार के दिन सार्प मुहूर्त का त्याग करना चाहिए। क्योंकि ये दुर्मुहूर्त मंगल कामों में मरणप्रद होते हैं ।। १८४ ।।

अथ वारविषघटी—

अब आगे वारों में विषघटियों को वृद्ध गर्ग के वचन से बताते हैं ।

बृद्धगर्गः—

वृद्ध गर्ग के आधार पर वारों में विषघटी

[2]विंशच्चतुर्द्वादशदिक्च शैला बाणाश्च तत्वानि यथाक्रमेण ।
सूर्यादिवारेष भवत्यनन्तरं नाडीविषाख्यं घटिकाचतुष्टयम् ।। १८५ ।।

वृद्धगर्गजी ने बताया है कि सूर्यवार में बीस २० घटी के बाद, सोम में चार ४ के, मंगल में १२ बारह के, बुध में १० दस के, गुरु में सात ७ के, शुक्र में ५ पांच के और शनिवार में २५ पच्चीस घटी के अनन्तर ४ चार घटी विषसंज्ञक होती हैं ।। १८५ ।।

बृहज्ज्योतिषसार में बताया है 'नखा २० यमा २ र्क १२ दिक् १०, सप्त ७ बाण ५ तत्त्व २५ मिताः क्रमात् । आभ्यो नाडीचतुष्कं च विषं तद्रविवासरात्' (५० पृ०) ।। १८५ ।।

दैवज्ञ मनोहर में कहा है 'नखा द्वयं द्वादश दिक् च शैला बाणाश्च तत्त्वानि यथा क्रमेण । सूर्यादिवारेषु परं चतस्रो नाड्यो विषं स्यात् खलु वर्जनीयम्' (मु. चिं. ४७ श्लो० पी. टी.) ।। १८५ ।।

स्पष्टार्थ वारविषघटी सारणी

सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	वार
२०	२	१२	१०	७	५	२५	घटीसे-आगे
४	४	४	४	४	४	४	तक

१. व० सं० ३२ अ० ६२ श्लो० ।   २. ज्यो. नि. ७४ पृ० ६ श्लो० ।

अथ तिथिविषघटी—

अन्यत्र भी मुहूर्त गणपति में कहा है 'नखयुग्माकं दिक् सप्त बाणतत्त्वमिताः क्रमात् । आभ्योघटीचतुष्कं च विषं तद्रविवासरात्' (१५ प्र० १९२ श्लो० ॥ १८५ ॥

अब आगे तिथियों में विष घटियों को वसिष्ठ जी के वाक्य से बताते हैं ।

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर तिथि में विषघटी का ज्ञान

[1]तिथीषु नागाद्रिगिरीषु वारिधिर्गजाद्रिदिक् पावकविश्वासर्पाः ।
मुनीभसंख्या प्रतिपत्तिथेः क्रमात्परं विषं स्याद्घटिकाचतुष्टयम् ॥१८६॥

ऋषिवसिष्ठ ने कहा है कि प्रतिपदादि तिथियों में क्रम से अर्थात् प्रतिपदा में १५, द्वितीया में ५, तृतीया में ७, चौथ में १४, पंचमी में ७, षष्ठी में ५, सप्तमी में ४, अष्टमी में ८, नवमी में ७ दशमी में १०, एकादशी में ३, द्वादशी में १३, तेरस में ८, चौदस में ७ और अमा में ८ घटी के पश्चात् ४ घटी तक विषघटियाँ होती हैं ॥ १८६ ॥

बृहज्ज्योतिषसार में कहा है 'तिथि १५ बाणा ५ ष्ट ८ सप्ता ७ ङ्ग ६ पञ्च ५ वेदा ४ ष्ट ८ भूधराः ७। दिग् १० वन्ह्य ३ कं १२ मनु १४ नंग ७ वसवो ८ घटिताः क्रमात् ॥ आभ्यो घटी चतुष्कं च ४ विषं प्रतिपदादितः' (५१ पृ०) ॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में 'तिथीषुनागाद्रि' 'प्रथमतिथेः क्रमात्' पाठान्तर मिलता है यह पद्य मुहूर्त गणपति में १५ प्र० १९१–१९२ वाँ है (७४ पृ०) ॥ १८६ ॥

स्पष्टार्थचक्र

तिथि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५।३०
अनन्तर	१५	५	७	१४	७	५	४	८	७	१०	३	१३	८	७	८
तक विषघटी	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४

अथ नक्षत्रविषघटी—

सकल नक्षत्रों में विषघटी का ज्ञान

[2]खाक्षाजिनास्त्रिंशदतः खवेदाः शक्राकुदस्रा खगुणा नखाश्च ।
दंताखरामाकरजाः पुराणा क्ष्मावाहवो विंशतिरब्धिचन्द्राः ॥ १८७ ॥

[3]इन्द्रास्तु काष्ठा मनवः षडक्षा वेदाश्विनो व्योमभुजा दशाश्च ।
नागेन्दवो भूपतयोऽब्धिदस्रा व्योमाग्नयो दस्रमुखर्क्षकाणाम् ॥ १८८ ॥

---

१. ज्यो. नि. ७४ पृ० ८ श्लो० तथा मु. चिं. ६ प्र० ३७ श्लो० पी० टी० ।
२. व० सं० ३२ अ० ७८ श्लो० ।　　३. व० सं० ३२ अ० ७९ श्लो० ।

[1]आभ्यः परस्माद्विषनाडिकाख्यास्त्याज्याश्चतस्रः खलु शोभनेषु।
विषाख्यनाडीषु कृतं शुभं यद्विनाशमायात्यचिरेण सर्वम्॥ १८९॥

[2]कुर्वन्ति नाशं विषमाडिकास्ता लग्नाश्रितानां सगुणान् विशेषान्।
जन्तून् यथा कुष्ठभगन्दरार्शव्याघातशूलक्षयवातरोगाः॥ १९०॥

ऋषि नारद ने कहा है अश्विनी में ५०, भरणी में २४, कृत्तिका में ३०, रोहिणी में ४०, मृगशिरा में १४. आर्द्रा में २१, पुनर्वसु में ३०, पुष्य में २०, श्लेषा में ३२, मघा में २०, पू. फा. में २०, उत्तरा फा० में १८, हस्त में २१, चित्रा में २०, स्वाती में १४, विशाखा में १४, अनुराधा में १०, ज्येष्ठा में १४, मूल में ५६, पू. षा. में २४, उ. षा. में २०, श्रवण में १०, धनिष्ठा में १०, शतभिषा में १८, पू. भा. में १६, उ. भा. में १४ और रेवती में ३० तीस घटी के बाद ४ घटी का त्याग शुभ कामों में करना चाहिए। इन विष नाडियों में शुभ काम करने पर जल्दी नष्ट होता है॥

ये विषघटी लग्न के समस्त गुणों का नाश करती हैं। जैसे मनुष्य को कोढ, भगन्दर, मिर्गी, शूल, क्षय और वायु जन्य रोग नष्ट कर देते हैं॥ १८७–१९०॥

नारद जी ने कहा है 'खमार्गणा ५० वेदयक्षाः २४ खरामा ३० व्योमसागराः ४०। वार्धिचन्द्रा १४ सूर्यदस्रा २१ खरामा ३० व्योमबाहवः २०॥ द्विरामाः ३२ खाग्नयः ३० शून्यदस्राः २० कुञ्जरभूमयः १८। रूपपक्षा २१ व्योमदस्रा २० वेदचन्द्रा १४ श्चतुर्दश १४॥ शून्यचन्द्रा १० वेदचन्द्राः १४ षडक्षा ५६ वेदबाहवः। २४। शून्यदस्राः २० शून्यचन्द्रा १० पूर्णचन्द्रा १० गजेन्दवः १८ तर्कचन्द्रा १६ वेदपक्षाः १४ खरामा ३० श्चाश्विमात क्रमात्॥ आभ्यः पराः स्युर्घटिकाश्चतस्रो विषसंज्ञिताः' (ज्यो० नि० ७४ पृ०) १८७–१९०॥

ऋषि कश्यप ने बताया है 'वियद्बाणा, वेददस्राः खरामा व्योमसागराः। वेदचन्द्राश्चन्द्रदस्राः खरामा व्योमबाहवः॥ नेत्राग्नयो व्योमगुणाः शून्यदस्रा गजेन्दवः। क्ष्माबाहवो वियद्दस्राः शक्राश्चन्द्राः खभूमयः। वेदचन्द्रास्तर्कबाणा वेददस्रा खबाहवः। व्योमेन्दवो व्योमचन्द्रा धृतयस्तर्कभूमयः। वेदाश्विनः खरामाः स्युर्दास्रर्क्षाद्घटिका क्रमात्। आभ्यः परस्तात्क्रमशश्चतस्रो विषनाडिकाः' (मु. चि. ६ प्र० ४७–४९ श्लो० पी. टी.)॥ १८७-१९०॥

तथा मुहूर्तचिन्तामणि में 'खरामतोऽन्त्यादितिवह्निपित्र्यभे खवेदतः के रदतश्च सार्पभे। खबाणतोऽश्वे धृतितोर्यमाम्बपे कृतेर्भगत्वाष्ट्रमविश्वजीवभे। मनोद्विदैवानिलसौम्यशाक्रभे कुपक्षतः शैवकरेष्टितोऽजभे। युगाश्वितोऽवुध्न्यमतोययाम्यभे खचन्द्रतो मित्रमवासवश्रुतो। मूलेऽङ्गबाणाद्विषनाडिकाः कृता वर्ज्याः शुभेऽथो विषनाडिका ध्रुवाः' (६ प्र० ४७–४९ श्लो०)॥ १८७ १९०॥

---

१. व० सं० ३२ अ० ८० श्लो०। २. व० सं० ३२ अ० ८१ श्लो०।

और भी मुहूर्तगणपति में 'खबाणाश्च जिनास्त्रिंशत् खवेदा मनवः क्रमात् । स्वर्गास्त्रिशन्नखा दन्ताः खरामा विंशतिर्धृतिः । भूनेत्राः खयमाः शक्राः रुद्राः काष्ठाश्चतुर्दश । षट्पञ्चाशज्जिनाश्चैकविंशतिः ककुभो दिशः ॥ धृतिर्भूपा जिनास्त्रिंशदश्विमाद् घटिकाः स्मृताः । आभ्यश्चतुष्टय त्याज्यं घटिकानां विषाभिधम्' (१५ प्र० १८७-१८९) ॥ १८७-१९० ॥

स्पष्टार्थ सारिणी

नक्षत्र	अश्वि.	भर.	कृ.	रोहि.	मृ. शि.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	श्लेषा
घटी के	५०	२४	३०	४०	१४	२१	३०	२०	३२
पश्चात् तक	४	४	४	४	४	४	४	४	४
नक्षत्र	मघा	पू.फा.	उ.फा.	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशा.	अनु.	ज्येष्ठा
घटी के	३०	२०	१८	२१	२०	१४	१४	१०	१४
बाद तक	४	४	४	४	४	४	४	४	४
नक्षत्र	मूल	पू.षा.	उ.षा.	श्रव.	धनि.	शतभि.	पू.भा.	उ.भा.	रेवती
घटी के	५६	२४	२०	१०	१०	१८	१६	१४	३०
अनन्तर तक	४	४	४	४	४	४	४	४	४

नारदः—

विष नाडियों में विवाहादि का त्याग

[1]विवाहव्रतचूडासु गृहारम्भप्रवेशयोः ।
यात्रादिशुभकार्येषु विघ्नता(दा)विषनाडिकाः ॥ १९१ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि विवाह, यज्ञोपवीत, चूडा, घर का आरम्भ व प्रवेश, यात्रादि शुभ कार्यों में विष नाडिका विघ्न उपस्थित करने वाली होती है ॥१९१॥

[2]यात्राविवाहादिषु मङ्गलेषु सर्वेषु नूनं विषनाडिकाश्च ।
कुर्वन्ति कर्तुर्मरणं हि शीघ्रं कृतप्रमाणायुष एव धात्रा ॥ १९२ ॥

यात्रा विवाहादि समस्त शुभ कार्यों में विषघटी अवश्य ही शुभ कर्त्ता का मरण करने वाली होती हैं, चाहे उसकी आयु का प्रमाण ब्रह्माजी ने कितना ही किया हो ॥१९२॥

अथास्य भङ्गः—

विष घटियों का परिहार

[3]विषनाड्युत्थितं दोषं हंति सौम्यर्क्षगः शशी ।
मित्रदृष्टोथवा स्वोयवर्गस्थो लग्नगोऽपि वा ॥ १९३ ॥

---

१. मु. चिं. ६ प्र० ४७ श्लो० पी० टी० । २. ज्यो. नि. ७४ पृ० १४ श्लो० ।
३. ज्यो. नि. ७४ पृ० ।

जब कि शुभग्रह की राशि में चन्द्रमा मित्रग्रह से दृष्ट अथवा अपने वर्ग में लग्न में हो तो विष नाडी जन्य दोष का विनाश करता है ॥१९३॥

प्रकारान्तर से परिहार

[1]चन्द्रो विषघटीदोषं हन्ति केन्द्रत्रिकोणगः।
लग्नं विना शुभैर्दृष्टं केन्द्रे वा लग्नपस्तथा ॥ १९४ ॥

जबकि चन्द्रमा लग्न को छोड़कर केन्द्र या त्रिकोण में स्थित शुभग्रह से दृष्ट हो अथवा केन्द्र में लग्नेश हो तो विष घटी का दोष नष्ट करने वाला होता है ॥१९४॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'कोणास्त्वब्धिनभःसस्थः सुहृत्सौम्यास्थितोऽपिवा। सद्राशौ वा विधुः स्वांशे लग्ने वा केन्द्रकोणगः। निहन्यादखिलं दोषं विषनाडी समुद्भवम्' (१५ प्र० १६३–१९५) ॥१६४॥

अथ कालहोराकथनम्—

अब आगे काल होरा ज्ञान को श्रीपति जी के आधार पर बतलाते हैं। अर्थात् किसी कार्य का सम्पादन मुहूर्तों में कथित वारों में शुभ न बन सके या यों समझिये कि मुहूर्त में वार अशुभ हो तो उस वार में शुभ वार की कालहोरा में करना चाहिये। एक क्षण वार सूर्योदय से १–१ घटे का होता है।

श्रीपतिः—

श्रीपतिजी के वाक्य से अभीष्ट समय में कालहोरा का ज्ञान

[2]वारप्रवृत्तेर्घटिका द्विनिघ्ना कालाख्यहोरापतयः शराप्ताः।
दिनाधिपाद्या रविशुक्रसौम्यशशांकसौरेज्यकुजाः क्रमेण ॥ १९५ ॥

आचार्य श्रीपति जो ने बताया है वार प्रवृत्ति-समय से या सूर्योदय से अभीष्ट समय तक की घड़ियों को दो २ से गुणाकर गुणनफल को दो जगह स्थापित करना चाहिए। एक स्थान पर ५ पांच का भाग देकर शेष को दूसरी जगह पर स्थापित द्विगुणित इष्ट घटी में घटाकर शेष में १ एक जोड़ देने से इष्टवार में अभीष्ट कालहोरा होती हैं। ये दिन स्वामो से सूर्यादिवारों में होती हैं। सूर्यवार में प्रथम सूर्य की, दूसरी शुक्र की, तीसरी बुध की, चौथी चन्द्रमा की, पांचवीं शनि की, छठी गुरु की और सातवीं शनि की पुनः सूर्य को होती हैं। इस क्रम से गणना करने पर प्रत्येक बार में प्रथम उसी की ही कालहोरा है। वार सात होते हैं, इसे उक्त घटाने से जो शेष हों उसमें सात का भाग देकर समझना चाहिए ॥१६५॥

उदाहरण—सं० २००४, मा० शी० शु० १५ मंगलवार इष्ट १ व० कल्पना किया। अतः १२।० × २ = २४।० ÷ ५ = ४ ल० शेष = ४ को २४ में घटाने से २४ − ४ = २०, यह ७ से अधिक है अतः २० ÷ ७ = ल० २, शेष = ६ यह गत होरा हुई, इसमें १ जोड़ने से ६ + १ = ७ वीं होरा हुई। अतः मंगलवार में सातवीं होरा गुरु की हुई ॥१६५॥

---

१. ज्यो.नि. ७४ पृ०। २. मु. चिं. १ प्र० ५५ श्लो० पी० टी०।

मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है 'वारादेर्घटिका द्विघ्ना साक्षहृच्छेषवर्जिताः। सैका तष्टा नगैकालहोरेशा दिनपाः क्रमात्' (१प्र० ५५ श्लो०) ॥१६५॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'वारप्रवृत्तेर्घटिका दिनेशात्कालाख्यहोरापतयः क्रमेण। सार्द्धेन नाडीद्वितयेन षष्ठः षष्ठश्च षष्ठश्च पुनः पुनश्च (१४ अ० १२ श्लो०) ॥१६५॥

विशेष—यहाँ दो से गुणा करके ५ पांच का भाग देने से ये होती हैं, इसमें वासना यह है कि ६० घटी में यदि २४ होरा मिलती हैं तो १ घटी में क्या $\frac{२४ \times १}{६०}$ इसमें बारह का अपवर्तन देने से $\frac{२}{५}$ होता है। इसलिये दो से गुणाकर पांच का भाग देने से ये होती हैं ॥१६५॥

केशवः—

आचार्य केशव के आधार पर

द्विघ्नेष्टनाडीशरलब्धितो वा वारप्रवेशादपि कालहोरा।
संख्योक्तवत्तास्वपि यद्युभाभ्यां क्रूरः कुवर्गश्च ददाति दोषः ॥ १९६ ॥

आचार्य केशव जी ने बताया है कि सूर्योदय व वार प्रवेश समय से इष्टघटी तक के काल को अर्थात् इष्टघटी को २ से गुणा कर पाँच का भाग देने से शेष तुल्य कालहोरा होती है। यदि उक्तवत् क्रिया करने से दोनों प्रकार के क्रूरता और पाप वर्ग का योग हो तो दोषता होती है ॥ १९६ ॥

आर्ष्टिषेणि जी ने भी 'वारप्रवृत्तेर्या याता नाड्यः सूर्योदयादपि। द्विघ्नाः पञ्चहृता होराः स्ववारात्पूर्ववत् क्रमात्' (ज्यो० नि० ३७ पृ०) ॥१९६॥

स्पष्टार्थ सारिणी

का.हो. संख्या	सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	गुरु	शु.	श.	का हो. संख्या	सू.	सो.	भो.	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१	सू.	सो.	मंग.	बु.	गु.	शु.	श,	१३	गु.	शु.	श.	सू.	सो.	मंग.	बु.
१	शु.	श.	सू.	सो.	मं.	बु.	गु.	१४	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	सू.	सो.
३	बु.	गु.	शु.	श.	सू.	सो.	मं.	१५	सू.	सो.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
४	सो.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	सू.	१६	शु,	श.	सू.	सो.	मं.	बु.	गु.
५	श.	सू.	सो.	मंग.	बु.	गु.	शु.	१७	बु.	गु.	शु.	श.	सू.	सो.	मंग.
६	गु.	शु.	श.	सू.	चं.	मं.	बु.	१८	सो.	मं.	बु,	गु.	शु.	श.	सू.
७	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	सू.	चं.	१९	श.	सू.	सो.	मं.	बु.	गु.	शु.
८	सू.	सो.	मंग.	बुध	गु.	शु.	श.	२०	गु.	शु.	सू.	सो.	मं.	बु.	गु.
९	शु.	श.	सू.	सो.	मं.	बु.	गु.	२१	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	सू.	सो.
१०	बु.	गु.	शु.	श.	सू.	सो.	मं.	२२	सू.	सो,	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
११	सो.	मं.	बुध	गुरु	शु	श.	सू.	२३	शु.	श.	सु.	सो.	मं.	बु.	गु.
१२	श.	सू,	सोम	मंग.	बु.	गु.	शु.	२४	बु.	गु.	शु.	श.	सू.	चं.	मंग.

गर्गः—

गर्गजी के आधार पर

[1]क्रूरवारे क्रूरहोरा न शस्ता इति मङ्गले।
नातिदुष्टा शुभे वारे रात्रौ स्वल्पफलप्रदाः ।। १९७ ।।

आचार्य गर्गजी ने बताया है कि पापग्रह के वार में पापग्रह की होरा शुभ कामों में शुभ नहीं होती है और शुभग्रह के वार में पाप की कालहोरा अत्यन्त खराब नहीं होती है ।।१९७।।

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृतसंग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने सप्तत्रिंशं वर्ज्यकालप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमाद् ज्योतिर्वित् पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का सैंतीसवाँ वर्ज्यकाल प्रकरण समाप्त हुआ ।। ३७ ।।

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज
मुरलीधरचतुर्वेदकृता सप्तत्रिंशत्प्रकरणस्य श्रीधरी
हिन्दीटीका पूर्णा ।। ३७ ।।

---

१. ज्यो. नि. ७७ पृ० ।

अथाष्टत्रिंशं अपवादप्रकरणं प्रारभ्यते

अब आगे अड़तीसवें प्रकरण में उक्त दोषों का प्रभाव किस परिस्थिति में नहीं होता इसे बताते हैं।

वृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर

अथातः संप्रवक्ष्यामि दोषाणामपवादतः।
कालस्य शोभनत्वेन शास्त्रार्थस्य च पालनम् ॥ १ ॥

वृहस्पति जी ने बताया है कि मैं काल की शुभता होने से दोषों का विनाश करने वाले, शास्त्रार्थ के पालक वाक्यों को कहता हूँ ॥ १ ॥

गुणानामपवादोऽस्ति दोषाणामेव शान्तिना।
प्रायश्चित्ताद्यथा दोषे स्वाचारे नैव चोदिताः ॥ २ ॥

दोषों की शान्ति से उनका परिहार तो हो जाता है परन्तु वे गुण नहीं होते जैसे पाप करके उसका प्रायश्चित्त करना आचार में नहीं गिना जाता ॥ २ ॥

एवमेतेषु सर्वेषु दोषेपूक्तबलेषु च।
अपवादान्प्रवक्ष्यामि निमित्तेषु विशेषतः ॥ ३ ॥

इस प्रकार पूर्वोक्त बल वाले सभी दोषों के विषय निमित्त होने पर उनके अपवादों को कहूँगा ॥ ३ ॥

माण्डव्यः—

माण्डव्य जी के आधार पर

[1]दोषाणां च गुणानां च तारतम्यं विचार्यते।
बलाबलविभागेन पश्चात्कालं समादिशेत् ॥ ४ ॥

ऋषि माण्डव्य ने बताया है कि बल व निर्बलता के आधार पर गुण और दोषों का तारतम्य से विचार करके पीछे समय का आदेश करना चाहिए ॥ ४ ॥

गुणो वा यदि वा दोषो दुर्बलो नष्टतां व्रजेत्।
स एव पुनरुत्कृष्टवीर्यवान्स फलप्रदः ॥ ५ ॥

गुण हो या दोष निर्बल होने पर नष्ट हो जाता है और वही पुनः उत्कृष्ट बली होकर फलदाता होता है ॥ ५ ॥

---

१. ज्यो. नि. ६९ पृ० ४ श्लो०।

बृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर

दोषाश्च गदिताः सर्वे गुणेभ्यो बह्वः कलौ ।
तथापि दोषा नश्यन्ति स्वापवादैर्गुणैरपि ।। ६ ।।

बृहस्पति जी ने बताया है कि कलियुग में गुणों से अधिक दोष होते है। तो भी उनके अपवादों और गुणों से भी दोष नष्ट हो जाते हैं ।। ६ ।।

जीवः सर्वबलोपेतो लग्नकेन्द्रगतो यदि ।
तेजस्वी सर्वदोषाणां हन्ता लग्ने विशेषतः ।। ७ ।।

गुरु समस्त बलों से युक्त होकर लग्न या केन्द्र में जब होता है तो समस्त दोषों का नाश करता है, किन्तु लग्नस्थ विशेष कर शीघ्र दोष का नाशक होता है ।। ७ ।।

प्रकारान्तर

तथैव शुक्रचांद्री च बलवन्तौ प्रकाशितौ ।
रश्मिमन्तौ स्ववर्गस्थौ विशेषाद्दोषनाशनौ ।। ८ ।।

उसी प्रकार शुक्र, बुध बली होकर प्रकाशित रश्मियों से युक्त हों तथा अपने वर्ग में विशेषकर हों तो दोष नाश करने वाले होते हैं ।। ८ ।।

अन्य प्रकारान्तर

यदा शुभग्रहः केन्द्रे भवेच्च शुभवीक्षितः ।
त्रिषडेकादशे पापास्तदा पापोदयोऽपि सत् ।। ९ ।।

जब कि शुभग्रह केन्द्र में शुभ से दृष्ट हो, पापग्रह ३।६।११ में हों तो लग्नस्थ पापग्रह भी शुभ होता है ।। ९ ।।

पुनः प्रकारान्तर

यदातिबलवान्सौम्यचन्द्रावन्योन्यवीक्षितौ ।
न चेल्लग्नांशके क्रूरस्तदा पापोदयोपि सत् ।। १० ।।

जबकि अधिक बली बुध, चन्द्रमा आपस में दृष्ट हों और लग्न में पाप नवांश न हो तो लग्न में पापग्रह शुभ होता है ।। १० ।।

पुनः प्रकारान्तर

जीवशुक्रौ यदा केन्द्रे परस्परमुपागतौ ।
नवांशमण्डले चक्रे सर्वदोषविनाशनौ ।। ११ ।।

जबकि नवांश चक्र में गुरु शुक्र केन्द्र में एक स्थान में हों तो समस्त दोषों का नाश होता है ।। ११ ।।

पुनः प्रकारान्तर

यदा सर्वे ग्रहा लग्नादावक्षांशगतास्तदा ।
दोषा नाशं ययुः सर्वे यथादित्योदये तमः ।। १२ ।।

जब कि समस्त ग्रह लग्नादि की राशियों के नवांश में होते हैं तो समस्त दोष ऐसे विलीन हो जाते हैं जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट होता है ॥ १२ ॥

पुनः प्रकारान्तर

यदा जीवस्थितांशर्क्षाद्भवराश्यंशगः सितः ।
तदा दोषा ययुर्नाशं यथा रामेण राक्षसाः ॥ १३ ॥

जब कि गुरुस्थ नवांश से ११ ग्यारहवीं राशि के नवांश में शुक्र होता है तो सकल दोषों का नाश होता है जैसे रामचन्द्र जी के द्वारा राक्षसों का नाश हुआ था ॥ १३ ॥

पुनः प्रकारान्तर

गुरुस्थितांशराशेर्वा भवराश्यंशगो बुधः ।
यदा तदा ययुर्दोषा नाशं पात्रेषु दानवत् ॥ १४ ॥

जब कि गुरु स्थित नवांश से ग्यारहवें राशि के नवांश में बुध होता है तो समस्त दोषों का विनाश होता है जैसे कुपात्रों को दिया हुआ दान नष्ट होता है ॥ १४ ॥

पुनः प्रकारान्तर

शुक्रस्थितांशकर्क्षात्तु भवराश्यंशगो बुधः ।
तदा दोषा लयं यान्ति दुर्ग्रामार्जितवित्तवत् ॥ १५ ॥

जब कि शुक्रस्थित नवांश से ग्यारहवीं राशि के नवांश में बुध होता है तो समस्त दोष विलीन होते हैं, जैसे कुग्राम से कमाई हुई सम्पत्ति नष्ट हो जाती है ॥ १५ ॥

पुनः प्रकारान्तर

बुधस्थितांशराशेस्तु भवराश्यंशगे विधौ ।
तदा दोषा ययुर्नाशं पापा वा भववन्दनात् ॥ १६ ॥

जब कि बुधस्थित राशि नवांश से ग्यारहवीं राशि के नवांश में चन्द्रमा होता है तो दोषों का नाश होता है, जैसे शिवजो को प्रणाम करने पर पापों का नाश होता है ॥ १६ ॥

पुनः प्रकारान्तर

यदा बुधोदयांशर्क्षादायराश्यंशगः सितः ।
तदा दोषा शमं यान्ति यथा रोगा भिषग्वरैः ॥ १७ ॥

जब कि बुधस्थ राशि नवांश से ग्यारहवीं राशि के नवांश में शुक्र होता है तो दोष शान्त होते हैं जैसे अच्छे वैद्य की दवा से रोग नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

पुनः प्रकारान्तर

लग्नांशराशेर्नवपञ्चमर्क्षनवांशगा जीवसितेन्दुजाः स्युः ।
यदा तदा दोषगणाः प्रयान्ति नाशं यथा देवगणेऽसुरौघाः ॥ १८ ॥

जब कि लग्नस्थ राशि नवांश से नवम, पञ्चम राशि के नवांश में गुरु, शुक्र, बुध होते हैं तो दोष समूह का नाश होता है। जैसे देवताओं के द्वारा राक्षस समूह का नाश होता है ॥ १८ ॥

पुनः प्रकारान्तर

यदा शशाङ्कादगुरुराहितार्चिः केन्द्रत्रिकोणेषु समस्तवीर्यः।
तदा ययुर्नाशमुदग्रवीर्या दोषा यथा हालहलो हरेण ॥ १९ ॥

जब कि चन्द्रमा से बली गुरु, मंगल, सूर्य, केन्द्र या त्रिकोण में होते हैं तो बड़े से बड़े दोष नष्ट होते हैं। जैसे महादेव जी ने विष नष्ट किया था ॥ १९ ॥

पुनः प्रकारान्तर

जीवांशकर्क्षाद्यदि केन्द्रसंस्थः निशाकरो वास्य सुतोथ वापि।
तदाधिगच्छन्ति विनाशमुग्रा दोषा यथाब्जा हिमसन्निपाते ॥ २० ॥

जब कि गुरु की नवांशस्थ राशि से केन्द्र में चन्द्रमा अथवा बुध होता है तो उत्कट दोष का भी नाश होता है। जैसे पाला पड़ने से कमल का नाश होता है ॥ २० ॥

पुनः प्रकारान्तर

देवेज्ययुक्तांशकभाद्विलग्नं यावद्भवेत्तावति राशिगेऽर्कः।
दोषास्तदा स्युर्विलयं सभार्या यथानधीताः पुरुषास्तथैव ॥ २१ ॥

गुरु राशिस्थ नवांश राशि से लग्न तक की राशि में सूर्य के होने पर समस्त दोषों का नाश होता है। जैसे मूर्ख स्त्री-पुरुषों का नाश होता है ॥ २१ ॥

पुनः प्रकारान्तर

यथा(दा)विलग्नांशगतोपि जीवः शुक्रांशराजा सकला बलाढ्या।
तदा लयं यान्ति बलौघदोषा यथा गजौघं हरिसन्निधाने ॥ २२ ॥

जब कि लग्नस्थ नवांश में गुरु और शुक्र के नवांश में परिपूर्ण चन्द्रमा हो तो समस्त दोषों का नाश होता है जैसे सिंह के सम्मुख हाथी समूह का नाश होता है ॥ २२ ॥

पुनः प्रकारान्तर

शशाङ्कयुक्ताः सक्तोपि वा यदा गुरुज्ञशुक्राः स्युरयुग्मभागगाः।
यदा तदा दोषगणाः प्रयान्ति ते नाशं यथा ब्रह्मविदर्थसंगात् ॥ २३ ॥

जब कि गुरु, बुध, शुक्र, चन्द्रमा से युक्त या अयुक्त विषम राशियों के नवांश में होते हैं तो दाषों का नाश होता है। जैसे ज्ञानी व्यक्ति द्रव्य पाने पर नष्ट हो जाता है ॥ २३ ॥

अन्य दोष विनाशक योग

शशांकलग्नांशगताः प्रयान्ति गुरुज्ञशुक्रा यदि लग्नभागे।
यदा तदा दोषगणाः प्रयान्ति ते नाशं यथा ब्रह्मविदर्थसङ्गात् ॥२४॥

जब कि चन्द्रस्थ राशि नवांश में स्थित गुरु, बुध, शुक्र लग्न के नवांश में गमन कर रहे हों तो दोषों का नाश होता है। जैसे ब्रह्मवेत्ता का ज्ञान द्रव्य पाने पर नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥

अन्य दोषविनाशक योग

शशाङ्कयुक्तांशकराशिकेन्द्रे शुभग्रहाः स्युर्बलरश्मियुक्ताः।
तदा लयं यात्यतिदोषसङ्घं प्रतिग्रहेणैव यथा द्विजत्वम् ॥२५॥

जब कि चन्द्र से युक्त नवांश राशि केन्द्र में बलों से युक्त शुभ ग्रह हों तो दोषों का नाश होता है। जैसे प्रतिग्रह से ब्राह्मणत्व का नाश होता है ॥ २५ ॥

पुनः प्रकारान्तर

यदा शशाङ्कोपचये त्रिकोणगः शुभग्रहः सौम्यनिरीक्षितो बली।
तदा गुणैर्दोषगणो विनश्यति यथा महादानगणस्य बाहुजः ॥२६॥

जब कि चन्द्रमा से उपचय, त्रिकोण में बली शुभग्रह, शुभ ग्रह से दृष्ट होता है तो दोषों का नाश होता है। जैसे महादान लेने पर क्षत्रिय का नाश होता है ॥ २६ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृतसंग्रहे वृहद्दैवज्ञरञ्जने
अष्टत्रिंशं अपवादप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का अपवाद प्रकरण नाम वाला अड़तीसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ३८ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधरचतुर्वेदकृत, वृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य अष्टत्रिंशत् प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ ३८ ॥

अथ एकोनचत्वारिंशं सन्धिप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे उनतालीसवें प्रकरण में सन्धि क्या होती है, इसका लक्षण, और ये कितने प्रकार की होती हैं । इसे विविध ग्रन्थों के आधार पर बताते हैं ।

तत्रादावब्दसन्धिः सोऽब्दस्त्रिधा—

उक्तं च बृहस्पतिसंहितायाम्—

गुरु संहिता के आधार पर वर्ष भेद

पहले इसमें अब्दसन्धि बताते हैं और वह शब्द तीन प्रकार का होता है । बृहस्पति संहिता में कहा है ।

[1]प्राकृतोब्दो गुरोरब्दः सौराब्दास्त्रिविधाः स्मृताः ।
तेषामादौ तथान्त्ये च त्र्यहं वै वर्जयेच्छुभे[2] ॥ १ ॥

बृहस्पतिसंहिता में कहा है कि प्राकृत वर्ष गुरु संचार वश होता है । सौर वर्ष तीन प्रकार का होता है । उन वर्षादि का प्रारम्भ होने पर तथा समाप्ति के प्रथम तीन-तीन दिन शुभ कामों में त्यागने चाहिए ॥ १ ॥

अथ प्राकृताब्दलक्षणम्—

प्राकृत वर्ष लक्षण

इन्दोर्द्वादशमासेन प्राकृताब्दः प्रकीर्तितः ।
चैत्रे सिते प्रथमयामादौ तस्यादिरुच्यते ॥ २ ॥

चन्द्रमा के द्वादश मासों से प्राकृत अब्द होता है । यह चान्द्र वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिप्रदा के प्रथम प्रहर से प्रारम्भ होकर चैत्र कृष्ण अमावास्या तक होता है । या यों समझिये कि चन्द्रमा के १२ द्वादश भगण भोग काल ही उक्त मास होता है ॥ २ ॥

गुरोरब्दस्तु तत्रैव ।

वहीं पर गुरु वर्ष लक्षण

यथा गुरूदयो भानोर्गुरोरब्दस्तथातिगः । वर्षसन्धिः ।

जबकि मेषादि से मेषान्त तक गुरु एक राशि में संचार करता है उस काल को गुरु वर्ष कहते हैं ।

वर्ष सन्धि को बताते हैं ।

सूर्यसिद्धान्त के आधार पर सौर वर्ष लक्षण

सौराब्दलक्षणं सूर्यसिद्धान्ते—सङ्क्रात्या सौर उच्यते ।

---

१. ज्यो० नि० ७८ पृ० ।   २. शूमान् दै० र० में है ।

सूर्यसिद्धान्त में बताया है कि सूर्य का एक राशि भोग काल १ मास और १२ मास सूर्य के भोग तुल्य काल का सौर वर्ष होता है। मुहूर्तगणपति में कहा है 'सौरः सङ्क्रमणाद्रवेः' (१ प्र० ३० श्लो०)॥

[1]वसिष्ठसंहितायाम्—

वसिष्ठ संहिता के आधार पर त्रिविध वर्ष ज्ञान

अब्दास्तु त्रिविधा जीवसौरचन्द्राह्वयाः सदा।
तेषामादौ तथा चान्ते त्रिदिनं वर्जयेच्छुभे॥ ३॥
इति दोषनिरूपणाध्याये।

वसिष्ठ संहिता में बताया है कि गुरु, सूर्य, चन्द्र ये तीन प्रकार के वर्ष होते हैं। इनके प्रारम्भ व समाप्ति में तीन दिन शुभ कामों में त्यागना चाहिए॥ ३॥

ऐसा दोषनिरूपण अध्याय में है॥

बृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर

एषु सर्वेषु कालेषु बहूनां दोषसङ्क्रमात्।
विषतुल्या भवन्त्येते कालास्तेषु शुभं त्यजेत्॥ ४॥

परन्तु यस्मिन्देशे बृहस्पतिमानेन व्यवहारस्तद्देशे बार्हस्पत्याब्दसन्धिस्त्याज्यः यत्र सौरमानेन तत्र सौराब्दसन्धिः।

बृहस्पति जी ने कहा है कि उक्त इन समस्त समयों में अधिक दोषों का संग्रह होने से ये काल जहर के समान होते हैं। इसलिये सदा शुभ कामों में इनका त्याग करना चाहिए॥ ४॥

किन्तु जिस देश में गुरु मान से वर्ष का व्यवहार होता है वहीं पर गुरु वर्ष सन्धि का त्याग करना चाहिए। और जिस देश में सौर से व्यवहार होता हो वहाँ सौर वर्ष सन्धि का त्याग करना चाहिए।

अस्य नियमाः।

इसके नियम

नर्मदोत्तरगोले तु बार्हस्पत्येन वत्सरः।
तस्यास्तु दक्षिणे भागे सौरमानेन वर्तते॥ ५॥

अत्रास्मिन् देशे विवाहादौ स्मृतः सौर इति तेनात्र वाक्यात्सौरमानेनैव विवाहोपनयनादिके गृह्यते। सौराब्दादिसन्धिस्त्याज्यः प्राकृतोब्दस्तु लोके कालान्तरादिव्यवहारो दृश्यते।

---

१. ४२ अ० ६१ श्लो०।

बताया है कि नर्मदा नदी के उत्तर गोल में गुरु वर्ष से और दक्षिण भू भाग में सौर मान से व्यवहार होता है ॥ ५ ॥

इस देश में विवाहादि में सौर से व्यवहार होने के नाते सौर मान से ही विवाहादि मंगल काम होता है। इसलिये सौर वर्ष सन्धि का ही त्याग करना चाहिये। प्राकृत वर्ष तो संसार में कालान्तरादि व्यवहार में प्रचलित होता है।

माण्डव्यः—

माण्डव्य जी के आधार पर

वर्षान्ते पक्षमेकं तु मासान्ते तु दिनत्रयम्।
पक्षान्ते दिनमेकं तु वर्जयेच्छुभकर्मणि ॥ ६ ॥

श्रीमाण्डव्य ऋषि ने बताया है कि वर्ष के अन्त में एक पक्ष (१५ दि०) का, मासकी समाप्ति में तीन दिन और पक्ष की समाप्ति में एक दिन का शुभ कामों में त्याग करना चाहिए ॥ ६ ॥

वसिष्ठसंहितायाम्—

वसिष्ठ संहिता के आधार पर

मासान्ते त्रिदिनं दोषमब्दान्ते पक्षमेव च। इति विवाहप्रकरणे।

पुनः—

[1]सौराब्दान्ते त्यजेत्पक्षं चान्द्रे तु नवमं त्यजेत्।
सावनान्तेष्टमं त्याज्यं नाक्षत्रे पौष्णभात्त्रयम् ॥ ७ ॥

वसिष्ठ संहिता में बताया है कि मास के अन्त में तीन दिन दोष और वर्ष के अन्त में १५ दिन दोष होता है। यह विवाह प्रकरण में है।

मुहूर्तगणपति में कहा है 'दिनमेकं तु मासान्ते नक्षत्रान्ते घटीद्वयम्। घटीमेकां तु तिथ्यन्ते लग्नान्ते घटिकार्द्धकम्' (४ प्र० ८ श्लो०) ॥

सौर वर्ष के पश्चात् २५ दिन और चान्द्र वर्ष में नौ दिन, सावन वर्ष में ८ दिन तथा नाक्षत्र वर्ष मेंरे वती के अन्त में तीन दिन का त्याग करना चाहिए ॥७॥

[2]गुरुः—

गुरु के आधार पर

घटिकाद्वयमृक्षान्ते मासान्ते तु दिनत्रयम्।
वर्षान्ते वर्जयेत्पक्षं ग्रहणे दिनसप्तकम् ॥ ८ ॥

वृहस्पति ने बताया है कि नक्षत्र के अन्त होने पर २ घटी काल, मासान्त होने पर तीन दिन, वर्ष के पूर्ण होने पर १५ दिन और ग्रहण के अनन्तर सात दिन तक शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ ८ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ४१ श्लो० पी० टी०।

२. मु० चि० ६ प्र० ४१ श्लो० पी० टी० तथा व० सं० ४२ अ० १६ श्लो०।

सन्धिकाल में कार्य करने का फल

[1]ऋक्षान्ते पुत्रनाशः स्यान्मासान्ते तु धनक्षयः।
वर्षान्ते वर्गनाशः स्याद्ग्रहणात्सर्वनाशनम् ॥ ९ ॥

नक्षत्र के अन्त में शुभ काम करने पर पुत्र नाश, मास के अन्त में धन का नाश, वर्ष सन्धि में, अपने वर्ग का विनाश और ग्रहण की सन्धि में शुभ काम करने पर सर्वनाश होता है ॥ ९ ॥

कश्यपसंहितायाम्—

कश्यप संहिता के आधार पर

[2]वत्सरायनमासर्तुसन्धिर्दैन्यप्रदः शुभे।
तिथिसन्धौ मनस्तापो धिष्ण्यसन्धौ महद्भयम् ॥ १० ॥

कश्यप संहिता में कहा है कि, वर्ष अयन, ऋतु, मास की सन्धि में शुभ काम करने पर दीनता, तिथि सन्धि में मनमें ताप और नक्षत्र सन्धि में शुभ काम करने पर बड़ा भय होता है ॥ १० ॥

ज्योतिःप्रकाशे—

ज्योतिः प्रकाश के आधार पर

वर्षायनर्तुमासानां सन्धिर्वृष्टिरकालजा।

ज्योतिः प्रकाश नामक ग्रन्थ में कहा है कि वर्ष, अयन, ऋतु, मास सन्धि में शुभ काम करने पर असामयिकी वर्षा होती है ॥

संहितासारे—

संहिता सार के आधार पर

पक्षोब्दसन्धिस्त्रिदिनं च माससन्धिस्त्रिनाड्योभयसन्ध्ययोश्च।
[3]नाड्यश्चतस्रस्तिथिऋक्षयोगं सन्धिस्तदर्द्धं करणस्य सन्धिः ॥११॥

अयनसन्धिः—

संहिता सार नामक ग्रन्थ में कहा है कि वर्ष सन्धि के पश्चात् १५ दिन, मास संधि के ३ दिन, दोनों सन्ध्याओं की संधि के तीन घटी और तिथि, नक्षत्र योग सन्धि के ४ घटी और करण सन्धि के २ घटी बाद शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ ११ ॥

विशेष—यह पद्य वसिष्ठ संहिता में यथावत् प्राप्त है ॥ ११ ॥

अब आगे अयन सन्धि किसे कहते हैं इसे बताते हैं ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० ४१ श्लो० पी० टी० तथा व० सं० ४२ अ० १७ श्लो०।
२. व० सं० ३२ अ० १९ श्लो०।
३. व० सं० ३२ अ० १८ श्लो०।

बृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर अयन सन्धि का ज्ञान

मृगकर्क्योर्यदा भानोः प्रवेशसमयस्तदा ।
अयनो नाम पुण्यानामधिपश्चोदितः पुनः ॥ १२ ॥

बृहस्पति जी बताया है कि जब सूर्य मकर व कर्क राशि में प्रवेश करता है तो अयन समय या यों समझिये कि उत्तरायण, दक्षिणायन समय पुण्य में प्रधान (राजा) समय होता है ॥ १२ ॥

पूर्वे तु षडहं वर्ज्यमयनाख्यद्वयस्य तु ।
अन्त्ये द्वौ षडहं पुण्यमुत्तरादक्षिणाख्ययोः ॥ १३ ॥
षडहं षडहं पूर्वपश्चिमायतयोर्द्वयोः ॥ १४ ॥

दोनों अयन सन्धि के पूर्व में ६ दिन तक अशुमता और पीछे दो दिन तक और दोनों में ६ दिन तक पुण्य समय होता है । तथा ६ दिन पूर्व, ६ दिन पीछे दोनों अयनों में पुण्य समय होता है ॥ १३–१४ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के अधार पर

[1]दिनमेकं समा त्याज्यमयने विषुवद्वये ।
सङ्क्रान्तिवत्तदयनं ज्ञातव्यं मङ्गलेषु च ॥ १५ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि दोनों अयनों में, दोनों विषुव संक्रमण के बाद एक दिन का त्याग करना चाहिए । संक्रांति की तरह शुभ कामों में अयन का भी विचार करना चाहिए ॥ १५ ॥

अथ गोलसन्धिः—

अब आगे गोल सन्धि किसे कहते हैं, इसे बताते हैं ।

बृहस्पतिः—

तद्वत्क्रियतुले भानोः संयोगसमयस्ततः ।
पूर्वे परे च नाडीनां वर्ज्या षष्ठी च शोभने ॥ १६ ॥

गुरु बृहस्पति जी ने बताया है कि मेष, तुला में सूर्य के प्रवेश समय को गोल सन्धि कहते हैं । मंगल कामों में इसके पहिले और पश्चात् ६ घटियों का त्याग करना चाहिए ॥ १६ ॥

वसिष्ठ संहिता में कहा है 'विषुवतोऽयनतोऽपि दिनत्रयं हरिपदे षडशीतिमुखेषु च । पूर्वतोऽपि परतोऽपि संक्रमान्नाडिकाश्च खलु षोडश षोडश' (३२ अ० ३७ श्लो०) ॥ १६ ॥

---

१. व० सं० ४२ अ० ६३ श्लो० ।

गर्गः—

गर्ग जी के आधार पर

अयने विषुवेष्वेव परं पूर्वदिनं त्यजेत् ।
अन्यसंक्रमणे पूर्वापराः षोडश नाडिकाः ॥ १७ ॥

श्री गर्गाचार्य जी ने बताया है कि अयन व विषुव (मेष तुला) संक्रमण में ही पूर्वा पर दिनों का त्याग और अन्य संक्रान्तियों में पूर्वा पर १६ सोलह घटी ही त्यागना चाहिये ॥ १७ ॥

अथ संक्रान्तिसन्धिः—

अब आगे संक्रान्ति समय में त्याज्य काल को विविध वाक्यों से बताते हैं ।

स्थिराख्ये चोभयाख्ये च भानोः संवेशनं यदा ।
तदा संक्रान्तिर्नाम स्यात्कालो राशौ विषोपमा ॥ १८ ॥

कहा है स्थिर राशि व द्विस्वभाव राशियों में सूर्य प्रवेश होने पर जो समय होता है, उसे संक्रान्ति कहते हैं । वह काल विषके समान होता है ॥ १८ ॥

पूर्वपश्चिमयोस्तस्य त्रिंशन्नाड्यो विवर्जयेत् ।
शुभान् सर्वान् सयात्रादीन् धर्मान्नात्रारभेन्नृषु ॥ १९ ॥

इस प्रवेश समय से पूर्व व पश्चिम तीस ३ घटी काल तक समस्त शुभ काम नहीं करना चाहिए । तथा यात्रादि व धर्मादि नहीं करना चाहिए ॥ १९ ॥

[1]वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर

पूर्वतः परतश्चैव संक्रान्तेश्च विवर्जयेत् ।
मङ्गलेषु सदा दुष्टनाड्यः षोडश षोडश ॥ २० ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि सूर्य की संक्रान्ति से पहिले व पीछे १६ सोलह घटियों का दूषित होने के नाते शुभ कामों में त्याग करना चाहिए ॥ २० ॥

यदायनप्रवेशः स्यात्तदा तद्राशिसंक्रमः ।
तस्मिन्नपि दिने त्याज्या नाड्यः षोडश षोडश ॥ २१ ॥

जबकि सूर्य का अयन प्रवेश होता है तो उस राशि की संक्रान्ति से उस दिन में भी प्रथम व बाद वाली १६, १६ सोलह घटियों का मांगलिक कार्यों में त्याग करना चाहिए ॥ २१ ॥

नारदोऽपि—

नारद जी के आधार पर भी

मासान्ते दिनमेकं तु तिथ्यन्ते घटिकाद्वयम् ।
ऋक्षान्ते घटिकात्रीणि विवाहादौ विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

---

१. व० सं० ४२ अ० ६२ श्लो० ।

ऋषि नारद जी ने बताया है कि मास के अन्त में एक दिन, तिथ्यंत में २ दो घड़ी, नक्षत्र समाप्ति पर ३ तीन घटी का विवाहादि शुभ कामों में त्याग करना चाहिए ।। २२ ।।

उक्त में कार्य करने पर फल

मासान्ते म्रियते कन्या तिथ्यन्ते च विपुत्रिणो ।
ऋक्षान्तेषु च वैधव्यं मृत्युर्विष्टौ द्वयोर्भवेत् ।। २३ ।।

मासान्त में विवाह करने पर कन्या का मरण, तिथ्यन्त में पुत्र का अभाव, नक्षत्र के अन्त में वैधव्यता और भद्रा में विवाह करने पर दोनों की मृत्यु होती है ।। २३ ।।

माण्डव्यः—

माण्डव्यऋषि के आधार पर

[1]नक्षत्रयोगतिथिसन्धिषु नाडिकैका
तिथ्यर्ष्टविंशतिपलैः सहितोभयत्र ।
कर्कालिमीनतनुसन्धिषु दिक्पलानि
त्याज्यानि शेषविवरेषु च पञ्च पञ्च ।। २४ ।।

माण्डव्यऋषि ने बताया है कि नक्षत्र, तिथि, योग सन्धि में एक घटी और १५, ८, २० पल का पहिले व बाद कर्क, मीन वृश्चिक राशि सन्धि में दस २ पल का त्याग करना चाहिये तथा शेष राशि सन्धियों में पाँच २ पल का त्याग करना चाहिए ।। २४ ।।

श्रीपतिः—

श्रीपति जी के आधार पर

[2]नक्षत्रतिथिलग्नान्तं गण्डान्तं त्रिविधं स्मृतम् ।
नव पञ्च चतुर्थान्ते द्वयेकार्द्धघटिका मता ।। २५ ।।

आचार्य श्रीपति ने बताया है कि नक्षत्र, तिथि, लग्न ये तीन प्रकार गण्डान्त होता है तथा ९।५।४ तिथि में क्रम से पश्चात् की २।१।½ घटी मित गण्डान्त समय होता है। इसका त्याग करना चाहिये ।। २५ ।।

मुहूर्तगणपति में कहा है 'नक्षत्रतिथिराशीनां गण्डान्तं त्रिविधं त्यजेत् । नवपञ्चचतुर्थ्यन्ते द्वयेकार्धघटिकामितम्' (८ प्र० ३३ श्लो०) ।। २५ ।।

[3]सूर्यसिद्धान्ते—

सूर्य सिद्धान्त के आधार पर

व्यतीपातभयं घोरं गण्डान्तत्रितयं तथा ।
एतद्भसन्धित्रितयं सर्वकर्मसु वर्जयेत् ।। २६ ।।

---

१. मु० चिं० ६ प्र० ४१ श्लो० पी० टी० ।
२. मु० चिं० ५ प्र० ५२ श्लो० पी० टी० । ३. ११ अ० २२ श्लो० ।

सूर्य सिद्धान्त में बताया है कि तीनों व्यतीपात, तीनों गण्डान्त और तीनों राशि सन्धियों का शुभ काम में त्याग करना चाहिए ॥ २६ ॥

विशेष—प्रकाशित सूर्य सिद्धान्त में 'व्यतीपातत्रयं' यह उचित पाठ है ॥ २६ ॥

नारदः--

नारद जी के आधार पर

[1]उग्रं च सन्धित्रितयं गण्डान्तं त्रिविधं महत् ।
मृत्युदं जन्मयात्रासु विवाहस्थापनादिषु ॥ २७ ॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि तीनों सन्धि और तीनों गण्डान्त बड़े भयंकर होते हैं । इनमें जन्म, यात्रा, विवाहादि होने पर मरण कारक होते हैं ॥ २७ ॥

तिथिसन्धिः—

अब आगे तिथि सन्धि को बताते हैं।

[2]त्रिविक्रमः--

त्रिविक्रम जी के आधार पर

पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धिनाडीद्वयं तथा ।
गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु ॥ २८ ॥

आचार्य त्रिविक्रम ने बताया है कि पूर्णा और नन्दा तिथियों के बीच की दो घटी तिथि संधि होती है । यह गण्डान्त यात्रा, विवाह, व्रतबन्ध में मृत्यु दाता होता है ॥२८॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'अन्तरे पञ्चमीषष्ठयोः पूर्णिमाद्याह्वयोरपि । दशम्येकादशी-सन्धौ गण्डान्तं घटिकाद्वयम् । (८ प्र० ३५ श्लो०) ॥ २८ ॥

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'पुनः पुनः पञ्चमषष्ठतिथ्योर्यदन्तरालं प्रहरार्द्धकालः । तल्लग्नजातं गुणसञ्चयं यत्क्ष्वेडं यथा हन्ति नरं हि नूनम्' (३२ अ० ६६ श्लो०) ॥२८॥

तथा कश्यप जी ने कहा है 'पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धिर्नाडीचतुष्टयम् । उद्वाह-जन्मयानेषु गण्डान्तं निधनप्रदम्' (मु० चि० ६ प्र० ४१ श्लो० पी० टी०) ॥ २८ ॥

और भी मुहूर्तचिन्तामणि में 'पूर्णान्ते घटिकात्मकं त्वशुभदं नन्दातिथ्योश्चादिमम्' (६ प्र० ४१ श्लो०) ॥ २८ ॥

नक्षत्रसन्धिः—

[3]पौष्णाश्विन्योः सार्पपित्र्यर्क्षयोश्च यच्च ज्येष्ठामूलयोरन्तरालम् ।
तद्गण्डान्तं स्याच्चतुर्नाडिकं हि यात्राजन्मोद्वाहकालेष्वनिष्टम् ॥२९॥

अब आगे नक्षत्र सन्धियों को बताते हैं ।

रेवती-अश्विनी, श्लेषा-मघा, ज्येष्ठा-मूल के मध्य में ४ चार घटी गण्डान्त दोष होता है। यह यात्रा, जन्म, विवाहादि काल में अशुभ कर्ता होता है ॥ २९ ॥

---

१. ज्यो० नि० ७० पृ० तथा ज्यो० सा० ६३ पृ० ।
२. मु० चि० ६ प्र० ४१ श्लो० पी० टी० । ३. ज्यो० नि० ७० पृ० २६ श्लो० ।

मुहूर्तगणपति में कहा है 'ज्येष्ठामूलर्क्षयोः सन्धौ रेवत्यश्विमयोस्तथा। आश्लेषामघयोरन्तराले नाडीचतुष्टयम्' (८ प्र० ३४ श्लो०) ।। २९ ।।

वसिष्ठसंहिता में कहा है 'यदन्तरालं पितृसार्पधिष्ण्ये मूलेन्द्रयोरश्विनपौष्णयोश्च। भसन्धिगण्डान्तमिति द्वयं तन्नाडचः प्रमाणं शुभकर्म हन्ति। अहिवासवपौष्णानामन्त्ययामार्धमृक्षसन्धिः स्यात्। पितृमूलाश्विमानामादौ यामार्धमृक्षगण्डान्तम्' (३२ अ० ६५-६६ श्लो०) ।। २६ ।।

तथा ज्योतिर्निबन्ध में 'सार्पेन्द्रपौष्णभेष्वन्त्यषोडशांशा भसन्धयः। तदग्रभेष्वाद्यपादा भानां गण्डान्तसंज्ञिताः। उग्रं च सन्धित्रितयं गण्डान्तत्रितयं महत्। मृत्युप्रदं जन्मयानविवाहस्थापनादिषु' (७० पृ०) ।। २६ ।।

और भी सूर्यसिद्धान्त में 'सार्पेन्द्रपौष्ण्यधिष्ण्यानामन्त्याः पादा भसन्धयः। तदग्रभेष्वाद्यपादा गण्डान्तं नाम कीर्त्यते' (११ अ० २१ श्लो०) ।। २९ ।।

अन्य भी लल्लाचार्य ने कहा है 'अन्त्यः सार्पेन्द्रपौष्णानामाद्यः पित्र्याश्विमूलजः। जन्मोद्वाहप्रयाणे च मृत्यवेऽमो षडंशकाः' (ज्यो० नि० ७० पृ०) ।। २६ ।।

अपि च राजमार्तण्ड में भी 'यामं यवनाधिपतिस्तदर्धभागं च भागुरिः प्राह। दण्डप्रमितं गण्डं पूर्वं परतोऽङ्गिरामोशः' (ज्यो० नि० ७० प्र०) ।। २६ ।।

अश्विनोमघमूलादौ त्रिवेदनयनाडिका।
रेवतोसार्पशक्रान्ते मासरुद्ररसस्तथा ।। ३० ।।

अश्विनी, मघा, मूल नक्षत्र की आदि की ३, ४, ६ घटियां तथा रेवती, श्लेषा, ज्येष्ठा के अन्त को १२, ११, ६ घटी अशुभ होती हैं ।। ३० ।।

ज्योतिःसागर में 'अश्विनीपौष्णमूलादौ त्रिवेदनवनाडिकाः। रेवती सार्पशक्रान्ते मासशक्रशिवास्त्यजेत्' (ज्यो० नि० ७० पृ०) ।। ३० ।।

नारदः—

नारद जी के आधार पर

कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः।
गण्डान्तरालं स्याद्घट्येकार्द्धं चैव मृतिप्रदम् ।। ३१ ।।

ऋषि नारद जी ने बताया हैं कि कर्क—सिंह, वृश्चिक-धनु, मीन—मेष के बीच में २।१।½ घटी गण्डान्त होता है। यह मरणप्रद होता है ।। ३१ ।।

मुहूर्तगणपति में कहा है 'कर्कसिंहाख्ययोर्मीनमेषयोरन्तरेतयोः। वृश्चिकाख्यधनुस्सन्धौ लग्नस्यैकं घटीमितम्' (८ प्र० ३६ श्लो०) ।। ३१ ।।

कश्यप जी ने कहा है 'सिंहकर्कयोश्चापकीटयोर्मीनमेषयोः। गण्डान्तमन्तरालं स्याद्घटिकार्धं मृतिप्रदम्' (मु. चि. ४१ श्लो० पी. टी.) ।। ३१ ।।

और भी वसिष्ठ संहिता में 'लग्नान्तरालं घटिकार्द्धमेतत् कुलीरमृहस्योरलिचापयोश्च। मीनाजयोः सर्वगुणान्निहन्ति लोभो यथा सर्वगुणान्नरस्य' (३२ अ० ६७ श्लो० ।। ३१ ।।

---

१. मु० चि० ६ प्र० ४१ श्लो० पी० टी०।

अथैषामपवाद:--

अब आगे इनके न होने के योगों को बताते हैं।

[1]तिथ्यादीनां सन्धिदोषं तथा गण्डान्तसंज्ञकम्।
हन्ति लाभगतश्चन्द्रः केन्द्रगा वा शुभग्रहाः॥ ३२॥
आवश्यके तु नक्षत्रयोगतिथिसन्धिष्वित्यादि पूर्वंलिखितमत्र।

तिथि आदि संधि, व गण्डान्त संज्ञावाला दोष यदि लाभ (११) में चन्द्रमा हो या केन्द्र में शुभ ग्रह हों तो नष्ट होता है॥ ३२॥

आवश्यकता होने पर नक्षत्र, योग, तिथि आदि संधि दोषों में पूर्व लिखित यहाँ देखना चाहिये॥

कश्यपः--

कश्यप जी के आधार पर

अब्दायनर्तुमासोत्थाः पक्षतिथ्यृक्षसंभवाः।
ते सर्वे नाशमायान्ति केन्द्रसंस्थे शुभग्रहे॥ ३३॥

ऋषि कश्यप जी ने बताया है कि वर्ष, अयन, ऋतु, मास से उत्पन्न और पक्ष, तिथि, नक्षत्र से उत्पन्न समस्त दोष नष्ट होते हैं जब कि शुभ ग्रह केन्द्र में हों तो॥ ३३॥

[2]शाकल्यसंहितायां--

शाकल्य संहिता के आधार पर

तथैव तिथिगण्डान्तं नास्तीन्दौ बलशालिनि।
तथैव लग्नगण्डान्तं नास्ति जीवे बलान्विते॥ ३४॥

शाकल्य संहिता में कहा है कि बलवान् चन्द्रमा होने पर तिथि गण्डान्त का और गुरु के बलशाली होने पर लग्न गण्डान्त का विनाश होता है॥ ३४॥

पितामह ने कहा है 'नक्षत्रतिथिगण्डान्तं नास्तीन्दौ बलभाजिनि। तथैव लग्नगण्डान्तं नास्ति जीवे बलान्विते' (स्त्रीजा० १६८ पृ०)॥ ३४॥

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने एकोनचत्वारिंशं सन्धिप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरंजन नामक संग्रह ग्रन्थ का उनतालीसवाँ सन्धि प्रकरण समाप्त हुआ॥ ३९॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधर चतुर्वेदकृता एकोनचत्वारिंशत्प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्णा॥ ३९॥

---

1. ज्यो० नि० ७१ पृ०। 2. मु० चिं० ६ प्र० ४१ श्लो० पी० टी०।

अथ चत्वारिंशं जन्ममासादीनां निर्णयप्रकरणं प्रारभ्यते।

अब आगे चालीसवें प्रकरण में जन्म मास आदि के निर्णय को विविध ग्रन्थों के आधार बताते हैं।

अथ जन्ममासादीनां निर्णयः।

हारीतः—

हारीत ऋषि के आधार पर

यो जन्ममासे क्षुरकर्म यात्रां कर्णस्य वेधं कुरुतेऽतिमोहात्।
नूनं स रोगं धनपुत्रनाशं प्राप्नोति मूढो वधबंधनानि ॥ १ ॥

जो पुरुष मोह वश जन्म मास में क्षौर, यात्रा और कर्ण वेध करता है वह मूर्ख निश्चय ही रोगी व धन पुत्र विनाशी तथा मरण व बंधन पाने वाला होता है ॥ १ ॥

जन्मोदये जन्मदिने तिथौ वा मासेऽथवा जन्मनि तारकायाम्।
प्रभूतमातंगतुरंगमोपि नृपः प्रयातारिवशं प्रयाति ॥ २ ॥

जन्म लग्न, जन्म दिन (वार), जन्म तिथि व मास में और जन्म तारा में बहुत से हाथी, घोड़ों से युक्त भी राजा शत्रु से लड़ाई लड़ने पर शत्रु के वशीभूत होता है ॥२॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठ ऋषि के आधार पर

[1]स्वजन्ममासर्क्षतिथिक्षणेषु वैनाशिकाद्यर्क्षगणेषु भेषु।
नोद्वाहमात्माभ्युदयाभिलाषी नैवाद्यगर्भद्वितयं कदाचित् ॥ ३ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि अपनी उन्नति की इच्छा करने वाले को अपने जन्म के मास-नक्षत्र-तिथि-वार और वैनाशिक आदि ताराओं में प्रथम गर्भ से उत्पन्न कन्या या वर का विवाहादि मांगलिक काम नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥

[2]बालान्नभुक्तौ व्रतबंधने च राज्याभिषेके खलु जन्मधिष्ण्यम्।
शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहे सीमंतयात्राखिलमंगलेषु ॥ ४ ॥

बालकों के अन्न प्राशन-जनेऊ-राज्याभिषेक में जन्म नक्षत्र शुभ होता है और विवाह, सीमंत, यात्रा आदि मांगलिक कामों में सदा अनिष्टकारी होता है ॥४॥

---

१. व० सं० ३२ अ० १५ श्लो०।

२. व० सं० २७ अ० ५ श्लो०। 'चौलान्नभुक्तौ' पाठान्तर है।

शार्ङ्गधरः—

शार्ङ्गधर जी के आधार पर

[1]जन्मर्क्षे सति दारिद्र्यं वैरं जन्मतिथावपि।
जन्ममासेऽपि दौर्भाग्यं जन्मलग्नं शुभावहम् ॥ ५ ॥

ऋषि शार्ङ्गधर ने बताया है कि जन्म के नक्षत्र में शुभ काम करने पर दरिद्रता, जन्म तिथि में शत्रुता, जन्म के मास में भाग्य हीनता और जन्म लग्न में शुभता होती है ॥ ५ ॥

श्रीपतिः—

श्रीपति जी के आधार पर

[2]जन्ममासि न च जन्मभे तिथौ नैव जन्मदिवसेऽपि कारयेत्।
आद्यगर्भदुहितुः सुतस्य वा ज्येष्ठमासि नतु जातु मंगलम् ॥ ६ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि जन्म के मास-तिथि-नक्षत्र और जन्म के बार में प्रथम गर्भोत्पन्न कन्या या पुत्र का कदापि मांगलिक कार्य नहीं करना चाहिए ॥ ६ ॥

महेश्वरः—

महेश्वर जी के आधार पर

[3]न जन्ममासे न च जन्मधिष्ण्ये न जन्मकालीयदिने विदध्यात्।
ज्येष्ठस्य मासि प्रथमस्य सूनोस्तथा सुताया अपि मंगलानि ॥ ७ ॥

आचार्य महेश्वर ने बताया है कि जन्म के मास-नक्षत्र-वार और जेठ महीना में प्रथम गर्भोत्पन्न कन्या व लड़के का शुभ कार्य नहीं करना चाहिए ॥ ७ ॥

नारदः—

नारद जी के आधार पर

जन्मभे जन्ममासं च जन्मवारे तिथिर्भवेत्।
विशेषेण क्रियते कार्यमादिगर्भे परित्यजेत् ॥ ८ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि जन्म के नक्षत्र-मास-बार व तिथि का त्याग विशेष कर प्रथम गर्भोत्पन्न बालकों में ही करना चाहिए ॥ ८ ॥

रामः—

रामदैवज्ञ के आधार पर

[4]जन्मर्क्षमासलग्नादौ व्रते विद्याधिको व्रती।
आद्ये गर्भेपि विप्राणां क्षत्रादीनामनादिभे ॥ ९ ॥

---

१. ज्यो० नि० १०० पृ० २ श्लो०।

२. ज्यो० नि० १०० पृ० तथा मु० चि० ५ प्र० ४५ श्लो० पी० टी० 'जन्मभे तथा' पा० है।

३. मु० चि० ५ प्र० ४५ श्लो० पी० टी०।

४. मु० चि० ५ प्र० ४५ श्लो०।

मुहूर्त चिन्तामणि में कहा है कि जन्म के नक्षत्र-मास-लग्नों में विप्र बालक का यज्ञोपवीत करने पर संतान विद्वान् होती है चाहे वह गर्भ की प्रथम संतान क्यों न हो और क्षत्रिय आदि के द्वितीय गर्भ का संस्कार उक्त में करने पर धनी होती है ॥ ९ ॥

शौनक ऋषि ने कहा है 'जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासे तथा जन्मनि जन्मराशौ। व्रतेन विप्रो न बहुश्रुतोऽपि प्रज्ञा विशेषैः प्रथितः पृथिव्याम्' (मु० चि० ५ प्र० ४५ श्लो० पी० टी०) ॥ ६ ॥

और भी 'गर्भाष्टमे गर्गपराशराद्यैः फलं यदुक्तं व्रतबन्धने तु। ततोऽधिकं जन्मसु तारकासु मासे तथा जन्मनि वाडवानाम्' (मु० चि० ५ प्र० ४५ श्लो० पी०टी०) ॥ ९॥

अन्य भी राजमार्तण्ड में 'यज्वा वसन्तसमये बहुवित्तभोगी गर्भाष्टमे विविधशास्त्र-विशारदस्तु। वेदार्थपालनपरः खलु जन्ममासे ऋक्षेऽपि जन्मनि बहुक्रतुभाजनं स्यात्' (मु० चि० ५ प्र० ४५ श्लो० पी० टी०) ॥ ६ ॥

[1]नारदोपि

नारद जी के आधार पर

पट्टबंधनचोलान्नप्राशने चोपनायने।
शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि ॥ १० ॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि पट्टबंधन, चौल, अन्न प्राशन और यज्ञोपवीत में जन्म का नक्षत्र शुभ होता है और अन्य संस्कारों में अशुभ होता है ॥ १० ॥

गर्गः—

गर्ग जी के आधार पर

[2]जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु।
क्षौरभेषजवादाब्धितरणेषु च वर्जयेत् ॥ ११ ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि जन्म नक्षत्र में चन्द्रमा समस्त शुभ कामों में शुभ माना जाता है, किन्तु औषधि सेवन, क्षौर, वाद और समुद्र तरण में अशुभ होता है ॥ ११ ॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में 'जन्ममासेऽथ पुत्राढ्या धनाढ्या जन्मभोदये। जन्मभेवा भवेदूढा वृद्धासन्ततिवर्धिनी' यवन के नाम से उद्धृत है ॥ ११ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'जन्मोदये जन्मनि तारकासु मासे तथा जन्मनि जन्मभेवा। ऊढाऽङ्गना नैकविधानि धत्ते सौख्यानि भोगं खलु बान्धवानाम्' (१०१ पृ०) ॥ ११ ॥

जन्मस्थेन शशांकेन पंच कर्माणि वर्जयेत्।
यात्रां युद्धं गृहारंभं विवाहं क्षौरकर्म च ॥ १२ ॥

---

१. ज्यो० नि० १०१ पृ० ४ श्लो०। २. ज्यो० नि० १०० पृ० १ श्लो०।

कहा है कि जन्म के चन्द्रमा में यात्रा, युद्ध, गृहारम्भ, विवाह और क्षौर कर्म ये पांच काम नहीं करने चाहिए ॥ १२ ॥

ज्योतिषसार में कहा है 'जन्मस्थर्क्षे शशाङ्के च पञ्च कर्माणि वर्जयेत् । यात्रा युद्धं विवाहं च क्षौरं च गृहवेशनम्' (९८ पृ०) ॥ १२ ॥

राजमार्तंडे—

राजमार्तण्ड के आधार पर

जन्मोदयर्क्षमासे क्रियते मांगल्यपौष्टिकं कर्म ।
न शुभं वदन्ति गर्गाः श्रुतिवेधक्षौरयात्रासु ॥ १३ ॥

राजमार्तण्ड में बताया है कि जन्म की लग्न (राशि) नक्षत्र और मास में मांगलिक और पौष्टिक कर्म किये जाते हैं, किन्तु कर्ण वेध, क्षौर और यात्रादि अशुभ होता है ॥ १३ ॥

भुजबलः—

भुज बल के आधार पर

जन्मनि मासि विवाहः शुभदो जन्मर्क्षराशौ च ।
लग्ने जन्मनि शुभदोऽशुभदो जन्मनि तिथौ भवति ॥ १४ ॥

भुजबल में बताया है कि जन्म के मास-नक्षत्र-राशि-लग्न में विवाह शुभ फल देने वाला और जन्म की तिथि में अशुभ होता है ॥ १४ ॥

फल प्रदीप के आधार पर

जन्मर्क्षे जन्ममासे जन्मतारादिने तथा ।
जन्मभे जन्मलग्ने च कल्पकोट्यां पतिव्रता ॥ १५ ॥

जन्म के नक्षत्र-मास-तारा-वार-राशि-लग्न में कन्या कल्प कोटि में पतिव्रता होती है ॥ १५ ॥

फलप्रदीपे—

[1]जन्ममासे च पुत्राढ्या धनाढ्या जन्मभोदये ।
जन्मभे च भवेदूढा कन्याविविधसंततिः ॥ १६ ॥

फल प्रदीप में बताया है कि जन्म मास में विवाह होने पर कन्या पुत्रवती, जन्म नक्षत्र में सम्पत्ति शालिनी, जन्म राशि में विवाह होने पर अधिक कन्या संतति वाली होती है ॥ १६ ॥

---

१. ज्यो० नि० १०० पृ० ।

लल्लः—

लल्लाचार्य जी के आधार पर

[1]विवाहे जन्मभे स्त्रीणां वर्जनीयं प्रयत्नतः।
नैव पुंसामिह प्राहुर्ज्योतिर्मयविदो बुधाः ॥ १७ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि स्त्रियों के विवाह में जन्म के नक्षत्र व चन्द्रमा का प्रयत्न से त्याग करना चाहिए और पुरुषों के लिए उक्त का त्याग नहीं करना चाहिए ॥ १७ ॥

विशेष—ज्योतिर्निबन्ध में यह पद्य ज्योतिष्प्रकाशक नाम से कथित है ॥ १७ ॥
ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'विवाहे स्थूलसूक्ष्माभ्यां जन्मर्क्षंयदि जायते। तत्त्याज्यं यदिचेद्भिन्नं तज्जन्मर्क्षं शुभावहम्' (१०१ पृ०) ॥ १७ ॥

ज्योतिःप्रकाशे—

ज्योतिः प्रकाश के आधार पर

[2]जन्मभं कृषिनृपाभिषेकयोर्भूषणे नगरगेहकर्मणि।
आधिपत्यभुवि मौंजिबंधने पुंविवाह उदितं शुभं बुधैः ॥ १८ ॥

ज्योतिः प्रकाश में कहा है कि विद्वानों ने जन्म का नक्षत्र खेती, राज्याभिषेक, आभूषण बनाना, नगर व घर निर्माण, राजादि अधिकार प्राप्ति, जनेऊ और विवाह में शुभ होता है ॥ १८ ॥

मार्तण्डे नारायणाचार्येण—

मुहूर्त मार्तण्ड के आधार पर

[3]आर्या उद्वहने जनुर्भममलं पट्टस्य बंधे जगु-
र्गेहग्रामनृपाभिषेककृषिमौंज्यन्नाशने भूषणे। इति ॥ १९ ॥

आचार्य नारायण ने बताया है कि विद्वान् जनों ने विवाह, पट्ट बन्धन, घर ग्राम, राज्याभिषेक, खेती, जनेऊ, अन्न प्राशन और अलंकारादि कामों में जन्म का नक्षत्र शुभ कहा है ॥ १६ ॥

च्यवनः—

च्यवन ऋषि के आधार पर

[4]जन्मर्क्षे जन्ममासे वा तारायामथ जन्मनि।
जन्मलग्ने भवेदूढा पुत्राढ्या पतिवल्लभा ॥ २० ॥

च्यवन ऋषि ने बताया है कि जन्म के नक्षत्र-मास-तारा और लग्न में विवाहित कन्या पुत्रों से युक्त एव पति की प्यारी होती है ॥ २० ॥

---

१. ज्यो० नि० १०१ पृ० ३ श्लो०। २. मु० मा० ४ प्र० ५५ श्लो०।
३. ज्यो० नि० १०० पृ०। ४. मु० चिं० १ प्र० ३४ श्लो० पी० टी०।

चण्डेश्वरः—

चण्डेश्वर के आधार पर

[1]जन्ममासेऽथ जन्मर्क्षे जन्मलग्नेऽथ जन्मभें।
उद्वाहेषु च नारीणां प्रतिष्ठा महती भवेत्॥ २१॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि जन्म के मास-नक्षत्र-लग्न-राशि में विवाह होने पर स्त्री अधिक प्रतिष्ठा पाने वाली होती है॥ २१॥

विशेष—ज्यो० नि० में भृगु के नाम से उद्‌धृत है॥ २१॥

नारदः—

नारद जी के आधार पर

[2]न जन्ममासे जन्मर्क्षे न जन्मदिवसेऽपि वा।
आद्यगर्भसुतस्याथ दुहितुर्वा करग्रहः॥ २२॥

ऋषि नारद ने बताया है कि जन्म के मास-नक्षत्र व वार में प्रथम संतान (पुत्र हो या पुत्री) का मंगल काम नहीं करना चाहिए॥ २२॥

शौनकः—

शौनक ऋषि के आधार पर

यात्रायां पथि बंधनं कृषिविधौ सर्वस्वनाशो भवेद्
भैषज्ये मरणं सुनियतं दाहो गृहारंभणे।
क्षौरे रोगसमागमो बहुविधं श्राद्धेर्थनाशस्तथा
वादे बुद्धिविनाशनं युधि भयं प्राप्नोत्यसौ जन्मभे॥ २३॥

ऋषि शौनक जी ने बताया है कि जन्म नक्षत्र में यात्रा करने पर मार्ग में बन्धन, खेती के काम में सर्वस्व नाश, औषधि सेवन में मरण, गृहारम्भ में निश्चय ही अग्निभय, क्षौर में रोग का आगमन श्राद्ध में धन विनाश, वाद-विवाद में बुद्धिनाश, और युद्ध में भय देने वाला होता है॥ २३॥

अथ जन्ममासाद्यपवादः—

अब आगे इन दोषों को नष्ट करने वाले अपवाद वाक्यों को बताते हैं।

[3]गृहकौमुद्याम्—

गृह कौमुदी के आधार पर

जन्ममासि विपरीतपक्षके वासरे दिननिशोर्विपर्यये।
जन्मभे दलविपर्यये नरो मंगलेषु सकलेषु कारयेत्॥ २४॥

---

१. ज्यो० नि० १०१ पृ०। २. मु० चि० १ प्र० ३४ श्लो० पी० टी०।
३. ज्यो० नि० १०० पृ०।

गृहकौमुदी में बताया है कि जन्म मास के दूसरे पक्ष में, व वार में दिन रात के विपर्यय में तथा जन्म नक्षत्र के विपरीत अर्धभाग में मनुष्य को शुभ करना चाहिए ॥ २४ ॥

भोजमार्तण्डे—

भोजमार्तण्ड के आधार पर

[1]जन्ममासे तिथौ भे च विपरीतदले सति।
कार्यं मंगलमित्याहुर्गर्गभार्गवशौनकाः ॥ २५ ॥

भोजमार्तण्ड में कहा है कि जन्म के मास-तिथि-नक्षत्र-के दूसरे भाग में मंगल काम करना चाहिए, ऐसा गर्ग, भार्गव-शुक्र और शौनक का कहना है ॥ २५ ॥

मांडव्यः—

माण्डव्य ऋषि के आधार पर

[2]जन्ममासनिषेधे तु दिनानि दश वर्जयेत्।
आरभ्य जन्मदिवसात् शुभाः स्युस्तिथयो परे ॥ २६ ॥

ऋषि माण्डव्य ने बताया है कि जन्म मास निषेध में केवल आदि के दस दिनों का त्याग करना और आगे के २० दिन शुभ होते हैं ॥ २६ ॥

रेणुकः—

रेणुक जी के आधार पर

जनेर्दिनं दुःखयते वसिष्ठश्चाष्टौ च गर्गश्च तथा दशात्रिः।
स्याज्जन्मपक्षं किल भागुरिश्च शेषाः शुभा स्यात्खलु जन्ममासि ॥ २७ ॥

आचार्य रेणुक ने बताया है कि वसिष्ठ जी ने जन्म का दिन अशुभ और गर्ग ने ८ आठ दिन तक, अत्रि जी ने १० दस दिन तक और भागुरि ऋषि के मत में पक्ष में अशुभता और अवशिष्ट मास के दिनों में शुभता होती है ॥ २७ ॥

नारदः—

नारद जी के आधार पर जन्म मास लक्षण

[3]आरभ्य जन्मदिवसाद्यावत्त्रिंशद्दिनं भवेत्।
जन्ममासः स विज्ञेयः कथितः शौनकादिभिः ॥ २८ ॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि जन्म दिन से आरम्भ करके ३० तीस दिन तक जन्म का मास होता है। ऐसा शौनकादि ऋषियों का मत है ॥ २८ ॥

---

१. ज्यो० नि० १०० पृ० ३ श्लो०। भोजमार्तण्ड के नाम से उद्धृत है।
२. ज्यो० नि० १०० पृ०।
३. मु० चिं० १ प्र० ३४ श्लो० टी०।

आत्रेय:—

आत्रेय जी के आधार पर मास लक्षण

जन्मदिनादारंभो भवति हि मासस्तु खाग्निभिर्दिवसैः ।
विज्ञेयः शुभकार्येषु मुनिभिश्चोक्तो जन्ममासश्च ॥ २९ ॥

आत्रेय ऋषि ने बताया है कि जन्म दिन से प्रारम्भ करके ३० तीस दिन तक शुभ कामों में जन्म मास होता है । ऐसा मुनियों का कहना है ॥ २९ ॥

जगन्मोहने—

जगन्मोहन के आधार पर जन्म मास का त्याग

[1]जातं दिनं दूषयते वसिष्ठः पंचैव गर्गः त्रिदिनं तथात्रिः ।
तज्जन्मपक्षं किलभागुरिश्च व्रते विवाहे गमने सुरे च ॥ ३० ॥

जगन्मोहन ग्रन्थ में कहा है कि जन्म का दिन अशुभ होता है, ऐसा वसिष्ठ जी का कथन है । गर्ग के मत में पांच दिन तक और अत्रि के मत में तीन दिन तक अशुभता होती है एवं भागुरि के मत में पूरा पक्ष व्रतबन्ध, विवाह, गमन और देव काम में दूषित होता है ॥ ३० ॥

व्यवहारसमुच्चये—

व्यवहार समुच्चय के आधार पर जन्म मास में कर्त्तव्य

स्नानं दानं तपो विद्या मांगल्यं हर्षवर्धनम् ।
उद्वाहश्च कुमारीणां जन्ममासे प्रशस्यते ॥ ३१ ॥

व्यवहार समुच्चय में कहा है कि स्नान, दान, तपस्या, विद्या, मांगलिक, प्रसन्नता की वृद्धि, कन्याओं का विवाह जन्ममास में करना चाहिये ॥ ३१ ॥

पूजामांगल्यवस्त्राणि विवाहो वस्तुसंग्रहम् ।
जन्ममासेऽपि कर्तव्यं क्षौराध्वानं तु वर्जयेत् ॥ ३२ ॥

पूजा, मंगल काम, वस्त्र, विवाह, पदार्थ सङ्ग्रह जन्म मास में भी करना चाहिये किन्तु क्षौर और यात्रा नहीं करना चाहिये ॥ ३२ ॥

नारदः—

नारद जी के आधार पर

जन्मराश्युद्गमे नैव जन्मलग्नोदयः शुभः ।
तयोरुपचयस्थानं यदि लग्नगतः शुभः ॥ ३३ ॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि जन्म राशि लग्न में शुभ काम नहीं करना और जन्म लग्न में उपचय भावों में यदि शुभग्रह हों तो शुभता होती है ॥ ३३ ॥

---

१. मु० चि० १ प्र० ३४ श्लो० पी० टी० ।

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने चत्वारिंशं जन्ममासाद्यपवादप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का जन्म मासादि निर्णय प्रकरण चालीसवाँ समाप्त हुआ ।। ४० ।।

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-
मुरलीधरचतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रह ग्रन्थस्य
चत्वारिंशप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका
पूर्तिमगात् ।। ४० ।।

अथैकचत्वारिंशं एकोदरविचारप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अथैकोदरविचारः—

अब आगे इकतालीसवें प्रकरण में एकोदर जातकों के विषय में विचार करते हैं।

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर

'एकोदरीकरतलग्रहणं यदि स्यादेकोदरस्थवरयोः कुलनाशनं च।
एकाब्दके तु विधवा भवतीह कन्या नद्यंतरे च शुभदं पृथु शैलरोधे ॥ १ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि एक पेट से उत्पन्न सगी बहिनों की शादी दो सगे सहोदरों से करने पर कुल का नाश और १ वर्ष के बीच कन्या विधवा होती है। यदि नदियों के अन्तर और पर्वत की ओट में विवाह हो तो शुभ होता है ॥ १ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'एकोदरसमुत्पन्नमेकस्मै कन्यकाद्वयम् । न देयं नैव कुर्याच्च सोदराभ्यां सहोदरे' (१५ प्र० १२० श्लो०) ॥ १ ॥

मनुः—

मनु के आधार पर

एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्मण्डपेऽह्नि ।
एककालेपि भिन्नांशे व्रतं महति संकटे ॥ २ ॥

ऋषि मनु ने बताया है कि यदि एक पेट से पैदा हुए लड़कों का एक मण्डप, एक दिन, एक समय में भिन्न अंश में होने पर भी यज्ञोपवीत में बड़ा संकट होता है ॥ २ ॥

गर्गः—

गर्गजी के आधार पर

एकस्मिन्दिवसे लग्ने मण्डपे वा नवांशके।
न समानक्रियाः कुर्यात्सोदर्याणां कदाचन ॥ ३ ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि एक दिन, एक लग्न व मंडप, एक नवांश में दो सहोदरों की समान क्रिया अर्थात् संस्कार कभी नहीं करना चाहिए ॥ ३ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'एकाहे विप्रः कुर्वीत सरिद्गिरिगृहान्तरे' (१५ प्र० ११८ श्लो०) ॥ ३ ॥

---

१. ज्यो० नि० १६१ पृ० १९ श्लो० ।

नारदः—

नारद जी के आधार पर

[१]नचैकजन्मयोः पुंसोरेकजन्मे तु कन्यके।
नूनं कदाचिदुद्वाहो नैकदा मुण्डनद्वयम् ॥ ४ ॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि दो सहोदर पुत्रों का सहोदर कन्याओं के साथ विवाह निश्चय नहीं करना चाहिये और दो भाइयों का चौल सस्कार भी साथ-साथ नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

[२]समानापि क्रिया मातृभेदे तथैव च।
विवाहे दुहितुः कार्यो न विवाहश्चतुर्दिनम् ॥ ५ ॥

यदि माता विमाता हो तो समान संस्कार भी अर्थात् विवाह करना चाहिये और कन्या के विवाह से चार दिन तक विवाह नहीं करना चाहिये ॥ ५ ॥

[३]एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्वत्सरे यदि।
पाणिग्रहो भनेन्नूनं तत्रैका विधवा भवेत् ॥ ६ ॥

यदि दो सहोदरों का एक वर्ष के भीतर विवाह होता है तो उनमें एक विधवा या विधुर होता है ॥ ६ ॥

शुभत्रय निषेध करने पर फल

[४]एकोदरप्रसूतानां नात्र कार्यत्रयं भवेत्।
भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपोब्रवीत् ॥ ७ ॥

एक पेट से उत्पन्न होने वालों का तीन कार्य एक वर्ष में नहीं करना और उदर की भिन्नता होने पर करना ऐसा शातातप मुनि का कहना है ॥ ७ ॥

अथ प्रत्युद्वाहलक्षणमाह

अब आगे प्रत्युद्वाह किसे कहते हैं और यह उचित होता है या अनुचित इसे अनेक ग्रन्थों के वाक्यों से बताते हैं।

प्रत्युद्वाह लक्षण ज्ञान

स्वकन्या यस्य पुत्राय दत्ता तत्कन्यकायाः स्वपुत्रेण परिणयनं प्रत्युद्वाहः।

अपनी कन्या जिसके पुत्र को दें उसकी कन्या अपने पुत्र के लिए लेना ही प्रत्युद्वाह कहा जाता है।

---

१. मु० चिं० ६ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।
२. मु० चिं० ६ प्र० १६ श्लो० पी० टी० तथा व० सं० ३२ अ० ३४ श्लो०।
३. मु० चिं० ६ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।
४. मु० त्रि० ६ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।

नारदः—

नारद जी के आधार पर

[१]प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मिन्दुहितृद्वयम् ।
नचैककन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके ॥ ८ ॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि प्रत्युद्वाह नहीं करना और एक लड़के को अपनी दो लड़की नहीं देना तथा एक जन्य दो कन्या दो एक जन्य पुरुषों को नहीं देनी चाहिए ॥ ८ ॥

वृद्धमनुः—

वृद्ध मनु जी के आधार पर

[२]एकमातृजयोरकेवत्सरे पुरुषस्त्रियोः ।
न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदेपि कारयेत् ॥ ९ ॥

वृद्ध मनु जी बताया है कि एक माता से उत्पन्न दो पुत्र या कन्याओं की समान क्रिया अर्थात् विवाह एक ही वर्ष में नहीं करना चाहिए और माता का भेद होने पर शुभ काम करना चाहिए ॥ ६ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर

[३]न पुत्रिद्वयमेकस्मै प्रदद्यात्तु कदाचन ॥ १० ॥

वृद्ध मनु ने बताया है कि अपनी दो कन्या एक पुरुष को नहीं देना चाहिए ॥१०॥

स्मृतिरत्नावल्याम्—

स्मृतिरत्नावली के आधार पर

[४]भातृयुग्मे स्वसृयुगे भातृस्वसृयुगे तथा ।
एकस्मिन्मंडपे चैव न कुर्यान्मंडनद्वयम् ॥ ११ ॥

वसिष्ठ जी ने कहा है कि दो सगे भाइयों का, दो सगी बहिनों का और दो सगे बहिन भाईयों का एक मंडप में मंगल काम नहीं करना चाहिए ॥ ११ ॥

सोदरविषयमेतत् ।

यह सहोदरों के लिये कहा है ।

---

१. मु० चिं० ६ प्र० १६ श्लो० पी० टी० ।
२. ज्यो० नि० १६२ पृ० १६ श्लो० तथा मु० चिं० १६ श्लो० पी० टी० ।
३. मु० चिं० ६ प्र० १६ श्लो० पी० टी० तथा व० सं० ३३ अ० ३८ श्लो० ।
४. ज्यो० नि० १६१ पृ० १३ श्लो० ।

यमः—

यम के आधार पर

[1]एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्वासरे पुनः।
विवाहं नैव कुर्वीत मण्डनोपरि मुण्डनम् ॥ १२॥

आचार्य यम ने बताया है कि दो सहोदरों का एक ही बार में विवाह नहीं करना और विवाह के पश्चात् यज्ञोपवीत नहीं करना चाहिए ॥ १२ ॥

गार्ग्यः—

गार्ग्य जी के आधार पर

भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे तथा।
न कुर्यान्मंगलं किंचिदेकस्मिन्मंडपेऽपिच ॥ १३ ॥

गार्ग्य आचार्य ने बताया है कि एक मण्डप व एक वार में दो सहोदर, दो सहोदरी या सहोदर-सहोदरी का मांगलिक काम नहीं करना चाहिए ॥ १३ ॥

[2]एकस्मिन्वासरे प्राप्ते कुर्याद्यमलजातयोः।
क्षौरं चैव विवाहं च मौंजीबंधनमेव च ॥ १४ ॥

यमल संतति का क्षौर, विवाह, जनेऊ आदि मंगल कार्य एक दिन में करने पर शुभ होता है ॥ १४ ॥

ज्योतिर्विवरणे—

ज्योतिर्विवरण के आधार पर

[3]एकोदरयोर्द्वयोरेकदिनोद्वहने भवेन्नाशः।
नद्यंतरे एकदिने केप्याहुः संकटे शुभम् ॥ १५ ॥

ज्योतिर्विवरण में कहा है कि दो सहोदरों का एक दिन में विवाह करने पर नाश होता है कुछ आचार्यों का कथन है कि संकट काल में नदी पार जाकर किया जा सकता है ॥ १५ ॥

भिन्नमातृजयोस्तु एकवासरे विवाहमाह [4]मेधातिथिः—
पृथक् मातृजयोः कार्यो विवाहस्त्वेकवासरे।
एकस्मिन्मंडपे कार्यः पृथक् वेदिकयोस्तथा ॥ १६ ॥

माता की भिन्नता होने पर एक दिन में विवाह शुभ होता है। इसे मेधातिथि के वाक्य से बताते हैं।

ऋषि मेधातिथि ने बताया है कि माता की भिन्नता होने पर दो बहिन भाईयों का एक वार व मंडप में आचार्य की भिन्नता होने पर शुभ होता है ॥ १६ ॥

---

१. ज्यो० नि० १६२ पृ० १५ श्लो०।

२. मु० चिं० ६ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।

३. ज्यो० नि० १६१ पृ० १६ श्लो०। ४. ज्यो० नि० १६२ पृ०।

यमयोस्तु विशेषः।

अब आगे यमल संतान के लिए विशेष बात भट्टकारिका के आधार पर बताते हैं।

भट्टकारिकायाम्—

भट्टकारिका के आधार पर

[1]एकस्मिन्वत्सरे चैकवासरे मण्डपे तथा।
कर्तव्यं मंगलं स्वस्रोर्भात्रोर्यमलजातयोः॥ १७॥

भट्टकारिका में कहा है कि एक वर्ष, एक दिन, एक मण्डप में दो यमल कन्या और पुत्रों का मांगलिक काम करना चाहिए॥ १७॥

स्मृतिसारे—

स्मृतिसार के आधार पर

पुत्रयोः स्वसृयुगयोः कुर्याद्यमलजातयोः।
एकस्मिन्वत्सरे चाह्नि मण्डपेऽपि हि मंगलम्॥ १८॥

स्मृतिसार में बताया है कि दो यमल पुत्रों और कन्याओं का एक वर्ष, एक वार और एक मण्डप में भी मंगल काम करना चाहिए॥ १८॥

नैकसंवत्सरे कुर्याद्भ्रात्रोर्यमलजातयोः।
विवाहं व्रतबंधं च तथा व्रतविसर्जनम्॥ १९॥

एक वर्ष में दो यमल लड़कों का विवाह, यज्ञोपवीत और समावर्तन संस्कार नहीं करना चाहिए॥ १९॥

स्वस्रोर्भ्रात्रोः स्वसृभ्रात्रोः सोदर्योश्च विशेषतः।
विवाहं चैव कुर्वीत नैकाहे नैकमंडपे॥ २०॥

दो बहिनों व दो सगे भाइयों का और सहोदर बहिन-भाइयों का विशेष कर एक दिन व एक मंडप में विवाह नहीं करना चाहिए॥ २०॥

वराहः—

वराह के आधार पर

[2]विवाहस्त्वेकजातानां षण्मासाभ्यंतरे यदि।
असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत्॥ २१॥

वराह मिहिर ने बताया है कि यदि दो सहोदरों का या दो बहिनों का ६ मास के अन्दर विवाह होता है तो निश्चय ही उनमें से एक विधवा या विधुर होता है॥ २१॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० १६ श्लो० तथा ज्यो० नि० १६२ पृ०।
२. मु० चि० ६ प्र० १६ श्लो० पी० टी० नारद के नाम से है।

च्यवनः—

च्यवन जी के आधार पर

[1]आदौ चौलं ततो मौंजी विवाहश्च शुभप्रदः।
मातृभेदे बुधैरुक्तो मातुरैक्ये न कर्हिचित् ॥ २२ ॥

ऋषि च्यवन ने बताया है कि पहिले चौल, फिर जनेऊ तत्पश्चात् विवाह दो लड़की, लड़कों का विमाता होने पर शुभ होता है और एक माता होने पर अशुभ होता है ॥ २२ ॥

वसिष्ठः--

वसिष्ठ जी के आधार पर

ऋतुत्रयस्य मध्ये चेदन्याब्दस्य प्रवेशनम्।
तदा ह्येकोदरस्यापि विवाहस्तु प्रशस्यते ॥ २३ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि यदि ६ मास के भीतर दूसरा नवीन वर्ष आजाय तो दो सहोदरों का भी विवाह शुभप्रद होता है ॥ २३ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मज रामदीनविरचिते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने एकचत्वारिंशं एकोदरविचारप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का एकोदर विचार नाम वाला इकतालीसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज—मुरलीधर चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसंग्रहग्रन्थस्य, एकचत्वारिंशत्प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ ४१ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।

अथ द्विचत्वारिंशं ज्येष्ठमासनिर्णयप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे बयालीसवें प्रकरण में ज्येष्ठ महीने में किसका मंगलकार्य नहीं करना चाहिए, इसे बताते हैं ।

[1]गुरुः—

गुरु के आधार पर

ज्येष्ठे न ज्येष्ठयोः कार्यं नृनार्योःपाणिपीडनम् ।
तयोरकेतरे ज्येष्ठे ज्येष्ठमासेऽपि कारयेत् ॥ १ ॥

गुरु वृहस्पति ने बताया है कि जेठ महीने में दो ज्येष्ठ (बड़े) कन्या पुत्र का विवाह नहीं करना चाहिए और उन दोनों (वर वधू) में एक ही बड़ा हो तो जेठ में भी विवाह करना चाहिए ॥ १ ॥

[2]पराशरः—

पराशर के आधार पर

अज्येष्ठकन्यका यत्र ज्येष्ठपुत्रो वरो यदि ।
व्यत्ययेऽपि तयोस्तत्र ज्येष्ठमासः शुभप्रदः ॥ २ ॥

ऋषि पराशर ने बताया है कि यदि कन्या ज्येष्ठी न हो और पुत्र ज्येष्ठ हो अथवा पुत्र ज्येष्ठ न हो और पुत्री ज्येष्ठ हो तो उन दोनों का विवाह ज्येष्ठ मास में शुभ है ॥ २ ॥

[3]गर्गः—

गर्ग जी के आधार पर

ज्येष्ठायाः कन्यकायाश्च ज्येष्ठपुत्रस्य सर्वदा ।
विवाहो नैव कर्तव्यो यदि स्यान्निधनं ध्रुवम् ॥ ३ ॥

आचार्य गर्ग ने कहा है कि ज्येष्ठ पुत्र व पुत्री का विवाह ज्येष्ठ मास में नहीं करना चाहिये यदि करें तो मरण अवश्य होता है ॥ ३ ॥

मिहिरोऽपि—

मिहिर के आधार पर

ज्येष्ठस्य ज्येष्ठकन्याया विवाहो न प्रशस्यते ।
तयोरन्यतरे ज्येष्ठे ज्येष्ठो मासः प्रशस्यते ॥ ४ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० १५२ श्लो० पी० टी० व ज्यो० नि० में नारद के नाम से है । पृ० १५२ ।

२. मु० चि० ६ प्र० १५ श्लो० पी० टी० ३. मु० चि० ६ प्र० १५ श्लो० पी० टी०

आचार्य मिहिर ने बताया है कि जेठे लड़के व लड़की का विवाह जेठ महीने में नहीं करना और वर-वधू में एक जेठा हो तो जेठ मास में विवाह शुभप्रद होता है ॥४॥

¹वराहः--

वराह के आधार पर

द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकं ज्येष्ठं सुखावहम् ।
ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्वसंमतम् ॥ ५ ॥

आचार्य वराह ने बताया है कि दो जेठ मध्यम और एक जेठ सुखकारी तथा तीन जेठ होने पर विवाह नहीं करना यह सब का मत है ॥ ५ ॥

मुहूर्त गणपति में कहा है 'नेष्टस्त्रिज्येष्ठमुद्वाहे द्विज्येष्ठं मध्यमं स्मृतम् (१५ प्र० ११२ श्लो०) ॥ ५ ॥

मुहूर्त मार्तण्ड में कहा है 'नो ज्येष्ठाल्लघु कालरुद्धत ऋते कात्यायनो मुण्डनं चौलं प्राह न मेखलेत्युभयतः कार्यं विवाहादिकम् । भेदेऽब्दस्य च सङ्कटे वितनुयात् पूर्वोदितं मङ्गलं देदाहान्तरिते दिनव्यवहिते नद्या नगेनापि वा । एकाहेऽपि जनाश्रयान्तर इहेदं तारतम्याद्बुधैर्योज्यं नो यमयोर्निषिद्धमनयोरेकत्र कार्यं जगुः । नैकस्मै दुहितृद्वयं सहजयोर्नैकोद्भवे कन्यके दद्यादुद्वहनं मिथो न तनुयात् कुर्यादसंपद्यदः' (४ प्र० ४९-५० श्लो०) ॥ ५ ॥

चण्डेश्वरः--

चण्डेश्वर के आधार पर

आद्यगर्भसुतस्याद्यादुहितुर्वा करग्रहः ॥ ६ ॥
विद्यारंभं विवाहं च चूडाकरणमेखलः ।
ज्येष्ठे ज्येष्ठमकुर्वीत कर्णवेधव्रतादिकम् ॥ ७ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि प्रथम गर्भ से उत्पन्न पुत्र व कन्या का विद्यारंभ एवं विवाह, चौल, व्रतबन्ध, कर्णवेध संस्कार जेठ मास में नहीं करना चाहिए ॥६-७॥

मुहूर्त गणपति में कहा है 'शुभत्रयं तथा पित्र्यकृत्यं स्वीयकुले न सत् । सहोदरप्रसूतानां भ्रातॄणां च समक्रिया' (२५ प्र० ११६ श्लो०) ॥ ७ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'जन्ममासादिके ज्येष्ठे विवाहो वरकन्ययोः । आद्यगर्भभुवोर्नेष्टो नानाद्यजनुषोस्तयोः' (१५ प्र० १११ श्लो०) ।

ज्येष्ठमासनिषेधोऽत्र ज्येष्ठापत्यपरः स्मृतः ।
अन्यापत्यस्य कुर्वीत वाक्यभेदाट्यं विधिः ॥ ८ ॥

जेठ मास का निषेध तो जेठी संतान के लिये ही है । द्वितीयादि गर्भस्थ का तो मंगल काम जेठ महीने में करना चाहिए ॥ ८ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० १५ श्लो० पी० टी० ।

गर्गः—

गर्ग के आधार पर

मार्गमासे तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम् ।
ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोश्च यत्नेन परिवर्जयेत् ॥ ९ ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि अगहन और जेठ महीने में जेठे लड़का लड़की का क्षौर, विवाह और यज्ञोपवीत यत्न से वर्जित करना चाहिए ॥ ६ ॥

विशेष—पी० धा० टी० में भट्टकारिका के नाम से 'मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयव्रतम् । आद्यपुत्रदुहित्रोश्च यत्नतः परिवर्जयेत्' (मु० चि० १६ श्लो० पी० टी०) ॥ ९ ॥

[1]वात्स्यः—

वात्स्य के आधार पर

मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे विवाहं चौलमेव च ।
ज्येष्ठेपुत्रदुहित्रोश्च न कुर्वीत व्रतं तथा ॥ १० ॥

ऋषि वात्स्य ने बताया है कि अगहन तथा जेठ मास में प्रथम गर्भ के लड़का, लड़की का विवाह, चौल तथा व्रतबन्ध नहीं करना चाहिए ॥ १० ॥

मार्तण्डे—

मार्तण्ड के आधार पर

ज्येष्ठं पूर्वभवस्येति ॥ ११ ॥

प्रथम प्रसूत बालक जेठा होता है ॥ ११ ॥

पुनः वात्स्यः—

फिर वात्स्य के आधार पर

व्रतबंधं विवाहं च चूडा कर्णस्य वेधनम् ।
ज्येष्ठपुत्रदुहित्रोश्च जन्ममासि न कारयेत् ॥ १२ ॥

ऋषि वात्स्य ने बताया है कि जनेऊ, विवाह, चौल और कर्णवेध जेठे लड़के, लड़की का जन्ममास में शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ १२ ॥

अस्यापवादः ।

इसके अपवाद को बताते हैं ।

सारसंग्रहे—

सारसङ्ग्रह के आधार पर

ज्येष्ठमास्याद्यगर्भस्य शुभवर्ज्यं स्त्रिया अपि ।
कृत्तिकास्थं-रविं त्यक्त्वा ज्येष्ठे ज्येष्ठस्य कारयेत् ॥ १३ ॥

---

१. मु० चि० ६ प्र० ३३ श्लो० पी० टी० ।

सारसङ्ग्रह में कहा है कि जेठ महीने में प्रथम गर्भोत्पन्न पुत्र, पुत्री का भी शुभ काम नहीं करना और कृत्तिकास्थ सूर्य को छोड़कर जेठ मास में जेठे का मङ्गल काम करना चाहिए ॥ १३ ॥

भारद्वाजः—

भारद्वाज के आधार पर

[1]ज्येष्ठे ज्येष्ठस्य कुर्वीत भास्करे चानले स्थिते ।
नोत्सवादीनि कार्याणि दिग्दिनानि च वर्जयेत् ॥ १४ ॥
[2]दशाहं चैव गर्गस्तु त्रिदशाहं बृहस्पतिः ॥ १५ ॥

ऋषि भारद्वाज ने बताया है कि जेठ मास में जेठे का कृत्तिकास्थ सूर्य में १० दिन छोड़कर, गर्ग के मत से १० दस दिन और बृहस्पति जी के मत में तेरह दिन छोड़कर शुभ काम करना चाहिए ॥ १४–१५ ॥

अथ लघुज्येष्ठयोर्विचारः ।

अब आगे लघु और जेठा कौन होता है, इसे बताते हैं ।

देवलः—

देवल जी के आधार पर

[3]यस्य जातस्य यमयोः पश्यंति प्रथमं मुखम् ।
संतानयोः पिता चैव तस्मिन् ज्यैष्ठ्यं प्रतिष्ठितम् ॥ १६ ॥

ऋषि देवल ने बताया है कि यमल संतानों में जिसका मुख पहिले माता पिता देखें वह जेठा पुत्र होता है ॥ १६ ॥

[4]मनुः—

मनु जी के आधार पर

जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम् ।
यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता मता ॥ १७ ॥

ऋषि मनु ने बताया है कि सुब्रह्मण्या नामक यज्ञ में भी जन्म से ही ज्येष्ठत्व कहा गया है तथा गर्भ के एक काल में आधान होने पर भी यमल सन्तानों में भी जन्म से ही ज्येष्ठत्व कहा है ॥ १७ ॥

बृहल्लघुमंगलमाह सारसमुच्चये—

अब आगे बृहत्, लघु मंगल क्या होता है, इसे बताते हैं ।

सारसमुच्चय के आधार पर

चूडाकेशांतसीमन्तविवाहोपयनान्बुधः ।
गुरुमंगलमित्याहुस्तदन्यल्लघुमंगलम् ॥ १८ ॥

---

१. मु० चिं० ६ प्र० १५श्लो० पी० टी० । २. मु० चिं० ६ प्र० १५श्लो० पी० टी० । ३. मु० चिं० ६ प्र० १६ श्लो० पी० टी० । ४. मनुस्मृति ६ अ० १२६ श्लो० ।

सार समुच्चय में बताया है कि चूडा, केशान्त, सीमन्त, विवाह और यज्ञोपवीत बड़े मंगल कार्य और इनके अतिरिक्त लघु मंगल काम होते हैं ॥ १८ ॥

कात्यायनः—

कात्यायन के आधार पर

[1]मातृयज्ञक्रियापूर्वं ज्येष्ठं कृत्वा तु मंगलम् ।
ऋतुत्रयं पुनर्यावन्न कुर्याल्लघुमंगलम् ॥ १९ ॥

ऋषि कात्यायन ने बताया है कि मातृ यज्ञ रूपी बड़ा मङ्गल कार्य करके ६ मास तक लघु मङ्गल काम नहीं करना चाहिए ॥ १६ ॥

[2]चौलं मुण्डनमेवोक्तं वर्जयेन्मण्डनात्परम् ।
मौंजी चोभयतः कार्या यतो मौंजी न मुण्डनम् ॥ २० ॥

चौल संस्कार को ही मुण्डन कहते हैं और विवाह के पश्चात् चौल नहीं करना एवं यज्ञोपवीत तो पहिले व बाद में करना चाहिए, क्योंकि मौञ्जीबन्धन चौल नहीं होता है ॥ २० ॥

[3]अभिन्ने वत्सरेऽपि स्यात्तदहस्तत्र भेदयोः ।
अभेदे तु विनाशः स्यान्न कुर्यादेकमण्डपे ॥ २१ ॥

एक वर्ष में भी दिन की भिन्नता होने पर करना चाहिये और एक दिन (वार) में करने पर तथा एक मण्डप में नाश होता है ॥ २१ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर

[4]न पुंविवाहोर्ध्वमृतुत्रयेपि विवाहकार्यं दुहितुः प्रकुर्यात् ।
न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि वाक्यभेदः ॥ २२ ॥

ऋषि वसिष्ठ जी ने बताया है कि पुरुष के विवाह के पश्चात् ६ मास तक स्त्री का विवाह नहीं करना और यदि गोत्र की एकता हो तो विवाह के बाद चौल नहीं करना चाहिए ॥ २२ ॥

अत्रिः—

अत्रि जी के आधार पर

[5]कुले ऋतुत्रयादर्वाक् मण्डनान्न तु मुण्डनम् ।
प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मंगलत्रयम् ॥ २३ ॥

[6]कुर्वन्ति मुनयः केचिदन्यस्मिवत्सरे लघु ।
लघु वा गुरु वा कार्यं प्राप्तं नैमित्तिकं तु यत् ॥ २४ ॥

---

१. ज्यो. नि. १६१ पृ० ७ श्लो० । २. ज्यो. नि. १६१ पृ० १० श्लो० ।
३. ज्यो. नि. १६१ पृ० ११ श्लो० । ४. व० सं० ३२ अ० ३१ श्लो० ।
५. ज्यो. नि. १६१ पृ० ५ श्लो० कात्यायन के नाम से है ।
६. ज्यो. नि. १६१ पृ० ८ श्लो० ।

[1]मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मण्डनम् ॥ २५ ॥

ऋषि अत्रि ने बताया है कि अपने कुल में विवाह होने के बाद ६ मास से पूर्व चौल और प्रवेश से निर्गम तथा ३ तीन मंगल काम नहीं करने चाहिए ॥ २३ ॥

कोई २ ऋषि दूसरा वर्ष होने पर लघु काम करने को कहते हैं। तथा नैमित्तिक होने पर लघु अथवा बड़ा मंगल काम करने चाहिए ॥ २४ ॥

मुंडन को चौल और व्रत व विवाह को मंडन कहते हैं ॥ २५ ॥

ज्योतिर्विवरणे—

ज्योतिर्विवरण के आधार पर

[2]ऊर्ध्वं विवाहाच्छुभदो नरस्य नारीविवाहो न ऋतुत्रये स्यात् ।
नारीविवाहात्तदहेपि शस्तः नरस्य पाणिग्रहमाहुरार्याः ॥ २६ ॥

न मण्डनान्मुण्डनमूर्ध्वमिष्टं न पुत्रयोर्मुण्डनमेकवर्षे ।
न पुंविवाहोर्ध्वंऋतुत्रयेपि विवाहकार्यं दुहितुश्च कुर्यात् ॥ २७ ॥

ज्योतिर्विवरण में कहा है कि पुत्र के विवाह के बाद ६ मास तक पुत्री का विवाह नहीं करना और कन्या के विवाह के दिन या पश्चात् पुत्र का विवाह शुभ होता है ॥ २६ ॥

मण्डन (विवाह) के बाद चौल शुभ नहीं होता और दो पुत्रों का मुण्डन एक वर्ष में नहीं करना एवं पुत्र के विवाह के बाद पुत्री का विवाह नहीं करना चाहिये ॥ २७ ॥

नारदः—

नारद जी के आधार पर

[3]मुण्डनान्मण्डनं कार्यं मण्डनान्नैव मुण्डनम् ।
[4]पुत्रीविवाहात्परतः सदैव शुभप्रदं पुत्रविवाहकर्म ।
पुत्रद्वये नैव ऋतुत्रयेपि पुत्रीद्वये चापि कदाचिदेव ॥ २८ ॥

ऋषि नारद जी का कहना है कि चौल के पश्चात् विवाह करना चाहिए और विवाह के अनन्तर चौल संस्कार नहीं करना तथा पुत्री के विवाह के बाद पुत्र का विवाह शुभप्रद होता है। दो पुत्रों का अथवा दो पुत्रियों का विवाह ६ महीने के बीच नहीं करना चाहिये ॥ २८ ॥

---

१. ज्यो. नि. १६१ पृ० ९ श्लो० ।

२. ज्यो० नि० १६१ पृ० १८ श्लो० शार्ङ्गधर के नाम से है।

३. मु० चिं० ६ प्र० १६ श्लो० पी० टी०। ४. व० सं० ३२ अ० ३३ श्लो०।

वात्स्यः—

वात्स्य के आधार पर

[1]स्त्रीविवाहः कुले निर्गमः कथ्यते पुंविवाहः प्रवेशो वसिष्ठादिभिः।
निर्गमादादितो न प्रवेशो हितस्तत्र संवत्सरांते विधिः कीर्तितः ।।२९।।

ऋषि वात्स्य ने बताया है कि वसिष्ठ आदि ने स्त्री का विवाह कुल में निर्गम कहा है और पुत्र का विवाह प्रवेश कहा है। निर्गम से पहले प्रवेश शुभ नहीं होता तथा वर्ष के अन्त होने पर दूसरे वर्ष में करना चाहिये ।। २६ ।।

कात्यायनोपि—

कात्यायन जी के आधार पर भी

[2]पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः ।। ३० ।।

ऋषि कात्यायन जी ने कहा है कि पुत्र का विवाह प्रवेश और कन्या का विवाह निर्गम होता है ।। ३० ।।

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर

[3]द्विशोभनं त्वेकगृहेपि नेष्टं शुभं तु पश्चान्नवभिर्दिनैस्तु।
आवश्यके शोभनमुत्सुको वा द्वारेऽथवाचार्यविभेदतो वा ।। ३१ ।।

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि एक घर में दो शुभ काम श्रेयस्कर नहीं होते और आवश्यकता होने पर ६ दिन के अनन्तर या दरवाजे की भिन्नता अथवा भिन्न आचार्यता होने पर करना चाहिए ।। ३१ ।।

सारावल्याम्—

सारावली के आधार पर

[4]फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने।
भेदादब्दस्य कुर्वीत नर्तुत्रयविलंघनम् ।। ३२ ।।

सारावली में कहा है कि फाल्गुन मास में विवाह और चैत में यज्ञोपवीत करना चाहिये। इसमें ऋतुत्रय (६ मास) लंघन दोष नहीं करना ।। ३२ ।।

संहिताप्रदीपे—

संहिता प्रदीप के आधार पर

[5]ऊर्ध्वं विवाहात्तनयस्य नैव कार्यो विवाहो दुहितुः समार्द्धम्।
अप्राप्य कन्यां श्वशुरालयं तु वधूप्रवेश्यास्वगृहं न चादौ ।। ३३ ।।

---

१. मु० चिं० १६ श्लो० पी० टी०। २. ज्यो० नि० १६१ पृ० ६२ श्लो०।
३. मु० चिं० ६ प्र० १६ श्लो० पी० टी०।
४. मु० चिं० ६ प्र० १८ श्लो० पीं० पी०।
५. ज्यो० नि० १६१ पृ० ४ श्लो० तथा बृ० रं० में 'लयं च वधूप्रवेशात्स्व' पाठ है।

संहिता प्रदीप में कहा है कि पुत्र के विवाह के पश्चात् ६ मास तक पुत्री का विवाह नहीं करना तथा कन्या के श्वसुरालय में प्राप्त हुए बिना अपने घर में प्रथम वधूका का प्रवेश नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥

कर्पर्दिकासु—

कर्पर्दिका के आधार पर

[1]उद्वाह्य पुत्रीं न पिता विदध्यात्पुत्रांतरस्योद्वहनं कदापि।
यावच्चतुर्थं दिनमत्र पूर्वं समाप्य चान्योद्वहनं विदध्यात् ॥ ३४ ॥

कर्पर्दिका में कहा है कि पिता पुत्री का विवाह करके पुत्रान्तर का विवाह न करे और चतुर्थीकर्म करके पहले कर्म को समाप्त करके तब अन्य का विवाह होता है ॥ ३४ ॥

काश्यपः—

काश्यप जी के आधार पर

मौंजीबंधस्तथोद्वाहः षण्मासाभ्यन्तरेऽपि वा।
पुत्र्युद्वाहं न कुर्वीत विभक्तानां न दोषकृत् ॥ ३५ ॥

काश्यप ऋषि ने बताया है कि मौञ्जीबन्धन और विवाह के बाद पुत्री का विवाह ६ मास के अन्दर नहीं करना चाहिये तथा विभक्तों में दोष नहीं होता है ॥ ३५ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते संग्रहे बृहद्दैवज्ञरंजने द्विचत्वारिंशं ज्येष्ठमासप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का जेठ मास निर्णय नाम वाला बयालीसवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४२ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधरचतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रहग्रन्थस्य द्विचत्वारित् प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ४२ ॥

---

१. ज्यो० नि० १६१ पृ० १२ श्लो०।

अथ त्रिचत्वारिंशं सिंहस्थगुरुप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अथ सिंहस्थगुरुविचारः ।

अब आगे तैंतालीसवें प्रकरण में सिंह के गुरु में अर्थात् सिंह-राशि में गुरु के जाने पर किन-किन कार्यों का त्याग करना चाहिए, इसे विविध वाक्यों से बताते हैं ।

शौनकः—

शौनक जी के आधार पर

कीर्त्यागारविवाहयागगमनं क्षौरं च कर्णव्यधं
विद्यादेवविलोकनोपनयनं दीक्षापरीक्षाव्रतम् ।
स्नानं तीर्थगमं वनं पुरमहीदानं प्रतिष्ठागणं
सिंहस्थे विबुधार्चने न शुभदं कर्तुस्तथा सूर्यगम् ॥ १ ॥

ऋषि शौनक ने बताया है कि सूर्य की राशि सिंह में गुरु के रहने पर कीर्ति सम्बन्धी, घर सम्बन्धो, विवाह, यज्ञ, यात्रा, क्षौर, कर्णवेध, विद्या, देवदर्शन, यज्ञोपवीत. दीक्षा, परीक्षा, व्रत, स्नान, तीर्थयात्रा, वन, नगर, भूमि दान व देव प्रतिष्ठा करने पर कर्ता को शुभ फल नहीं होता है ॥ १ ॥

शौनकः—

पुनः शौनक जी आधार पर

सिंहस्थेऽमरमन्त्रिणि ।
विवाहव्रतयात्रादिपुरहर्म्यगृहादिकम् ।
क्षौरं विद्योपविद्यां च यत्नतः परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

ऋषि शौनक ने बताया हैं कि सिंह के गुरु में विवाह, व्रत, यात्रा, नगर, प्रासाद, घर आदि, मुण्डन, विद्या, उपविद्या सम्बन्धी कामों का त्याग यत्न से करना चाहिए ॥ २ ॥

कृष्णम्भट्टीये स्कान्दवचनम्—

कृष्णभट्टीय में स्कान्द के वाक्य के आधार पर

सिंहस्थिते गुरौ राजन् विवाहं नैव कारयेत् ॥ ३ ॥

कृष्णभट्टीय में स्कान्द के वचन से मालूम होता है कि सिंह के गुरु में विवाह नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥

माण्डव्यः—

माण्डव्य जी के आधार पर

[1]इष्टापूर्तं च चौलादिसंस्कारान् वास्तुकर्म च।
अन्यानि शुभकार्याणि न कुर्यात् सिंहगे गुरौ ॥ ४॥

ऋषि माण्डव्य ने बताया है कि अभीष्ट की सिद्धि के लिये सिंह राशि में गुरु के रहने पर चौलादि संस्कार, वास्तु कार्य और अन्य शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥४॥

गर्गः—

गर्ग के आधार पर

न गुरौ सिंहराशिस्थे सिंहांशकगतेपि वा।
क्षौरमन्नं न कुर्वीत विवाहं गृहकर्म च ॥ ५ ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि सिंह राशि में गुरु के रहने पर तथा सिंह के नवांश में गुरु की स्थिति होने से क्षौर, अन्न प्राशन, विवाह और गृहारम्भ या गृहप्रवेश कार्य नहीं करना चाहिए ॥ ५ ॥

[2]निर्णयामृते—

निर्णयामृत के आधार पर

उद्यानचूडाव्रतबंधदीक्षा विवाहयात्रा च वधूप्रवेशः।
तडागकूपत्रिदशप्रतिष्ठां बृहस्पतौ सिंहगते न कुर्यात् ॥ ६ ॥

निर्णयामृत में बताया है कि बगीचा, चोल, यज्ञोपवीत, दीक्षा, विवाह, यात्रा, वधू प्रवेश, तालाब, कुआं, देव प्रतिष्ठा सम्बन्धी काम सिंह के गुरु में नहीं करना चाहिए ॥ ६ ॥

[3]कालनिर्णये—

काल निर्णय के आधार पर

शांतिकं पौष्टिकं यात्रा प्रतिष्ठोद्वाहपूर्वकम्।
न कुर्यात्सर्वमांगल्यम् सिंहसंस्थे बृहस्पतौ ॥ ७ ॥

कालनिर्णय में कहा है कि शान्तिक, पौष्टिक, यात्रा, प्रतिष्ठा, विवाह और समस्त मांगलिक काम सिंह के गुरु में नहीं करना चाहिए ॥ ७ ॥

राजमार्तण्डे—

राजमार्तण्ड के आधार पर

सिंहे यदा तिष्ठति देवपूज्यः पापं तदा वत्सरमादिशंति।
वैधव्यमाप्नोत्यचिरेण कन्या विवाहिता स्याद्यदि माधवेन ॥ ८ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६२ पृ० ५ श्लो०।

२. मु० चि० १ प्र० ४८ श्लो० पी० टी० में वराह के नाम से उद्धृत है।

३. ज्यो० नि० ६२ पृ० ४ श्लो०।

राजमार्तण्ड में बताया है कि सिंह में जब गुरु विद्यमान होता है तो वह वर्ष अशुभ माना जाता है। यदि वैशाख के अतिरिक्त किसी मास में कन्या का विवाह किया जाय तो शीघ्र ही वह विधवा हो जाती है ॥ ८ ॥

विवाहचूडाव्रतकर्णवेधक्षौरप्रतिष्ठा च गृहप्रवेशः।
सुवर्णशंखाद्युपभोगविद्या सिंहे सुरेज्ये न हि शोभनाः स्युः ॥ ९ ॥

विवाह, चौल, जनेऊ, कर्णवेध, क्षौर, प्रतिष्ठा, गृह प्रवेश, सोना, शंख आदि का उपभोग, विद्या सम्बन्धी काम अशुभ होता है ॥ ९ ॥

मणिमालायाम्—

मणिमाला के आधार पर

यात्रा क्षौरं च दीक्षा च विवाहव्रतबंधनम्।
प्रतिष्ठादि शुभं कार्यं त्यजेत्सिंहगते गुरौ ॥ १० ॥

मणिमाला में कहा है कि यात्रा, क्षौर, दीक्षा, विवाह, यज्ञोपवीत, प्रतिष्ठा और मांगलिक काम सिंह राशि में गुरु के रहने पर नहीं करना चाहिए ॥ १० ॥

लल्लः—

लल्लाचार्य के आधार पर

[1]मृगेन्द्रसंस्थिते जीवे मध्यदेशे करग्रहे।
मृत्युयोगो मृत्युदः स्याद्दंपत्योरिति निश्चयः ॥ ११ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि सिंह राशि में गुरु के रहने पर मध्य देश में विवाह होने पर मृत्युयोग होने से वर-वधू के लिये मरण कारक होता है ॥ ११ ॥

[2]भृगुः—

भृगुजी के आधार पर

सीमन्तजातकादीनि प्राशनान्तानि च क्रमात्।
कर्तव्यानि न दोषोस्ति पंचाननगते गुरौ ॥ १२ ॥

आचार्य भृगु ने बताया है कि सीमंत, जातकर्म से अन्न प्राशन तक के संस्कार सिंह के गुरु में करने पर दोष प्रद नहीं होते हैं ॥ १२ ॥

[3]कल्पतरौ—

कल्पतरु के आधार पर

नेष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ।
कुर्याच्चैत्रे स्वदेव्यर्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः ॥ १३ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६२ पृ० १३ श्लो०। २. ज्यो० नि० ६२ पृ० १४ श्लो०।

३. व० सं० ४२ प्र० २६ श्लो० में 'दम्पत्योर्निधनप्रदः' पाठ है।

कल्पतरु नामक ग्रन्थ में बताया है कि शुक्र और गुरु के नेष्ट होने पर एवं सिंहस्थ गुरु में अपनी वंश परम्परा के आधार पर चैत्र मास में प्रतिवर्ष अपनी कुलदेवी की पूजा करनी चाहिए ।। १३ ।।

[१]कालनिर्णये—

कालनिर्णय के आधार पर

सिंहस्थिते सुरगुरावधिमासके च ज्येष्ठे तथाद्यतनयस्य कुमारिकायाः ।
कुर्वीत नार्कगतनीचगयोर्विलग्नेजन्मेशयोश्च निखिलान्यपि मंगलानि ।। १४ ।।

इति न्यायाद्विशेषवाक्यैः सामान्यवचनस्य बाधकत्वं भवति । कथंचिद्बाधकत्वमिति चेदुक्तम् अंशभेदेनापि वर्ज्यम् ।

कालनिर्णय में बताया है कि सिंह के गुरु, अधिक मास व जेठ में ज्येष्ठ पुत्र या पुत्री का तथा जन्म राशीश व लग्नेश के अस्त और नीचस्थ होने पर मंगल कार्य नहीं करना चाहिये ।। १४ ।।

इस प्रकरण के न्याय से विशेष वाक्यों से सामान्य वचन में बाधकता होती है । कैसे बाधकता होती है इसे पूछते हो तो उत्तर में अंश भेद से भी वर्ज्यता होती है, इसे बताते हैं ।

[२]मुहूर्तचिन्तामणौ—

मुहूर्तचिन्तामणि के आधार पर

सिंहे गुरौ सिंहलवे विवाहो नेष्ट इति ।

मुहूर्तचिन्तामणि में बताया है कि विवाह में सिंह राशि में सिंह के नवांश में गुरु त्याज्य होता है ।।

[३]राजमार्तण्डे—

राजमार्तण्ड के आधार पर

सिंहराशौ तु सिंहांशे यदा भवति वाक्पतिः ।
सर्वदेशेष्वयं त्याज्यो दम्पत्योर्निधनप्रदः ।। १५ ।।

राजमार्तण्ड में बताया है कि सिंह राशि में सिंह के नवांश में गुरु के रहने पर समस्त देशों में विवाह त्याज्य होता है क्योंकि वर-वधू के लिये मरण कारक होता है ।। १५ ।।

सिंहेन्यराशिसिंहांशे यदा भवति वाक्पतिः ।
सर्वदेशे शुभं त्याज्यो दम्पत्योर्निधनप्रदः ।। १६ ।।

सिंह में या अन्य राशि में सिंह के नवांश में समस्त देशों में शुभकाम वर्जित होता है क्योंकि वर वधू का मरण कारक होता है ।। १६ ।।

---

१. ज्यो० नि० ६२ पृ० १२ श्लो० । २. १ प्र० ४९ श्लो० ।
३. मु० चि० १ प्र० ४९ श्लो० पी० टी० ।

देशभेदेनापि वर्ज्यम् ।

अब आगे देश भेद से वर्जनीयता बताते हैं ।

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर

गोदावर्य्युत्तरे भागे भागीरथ्याश्च दक्षिणे।
विवाहादि न कुर्वीत सिंहसंस्थे बृहस्पतौ ॥ १७ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि गोदावरी के उत्तर हिस्से में और गंगा के दक्षिण भाग में सिंह के गुरु में विवाह आदि शुभ कर्म नहीं करना चाहिए ॥ १७ ॥

गर्गः—

गर्ग जी के आधार पर

[1]भागीरथ्युत्तरे तीरे गोदावर्याश्च दक्षिणे।
व्रतोद्वाहादिकर्माणि सिंहगेज्ये न दुष्यति ॥ १८ ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि गंगा के उत्तर तट पर और गोदावरी के दक्षिण में व्रत, विवाह आदि शुभ काम सिंह के गुरु में दोषप्रद नहीं होते हैं ॥ १८ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर

सिंहस्थिते सुरगुरौ यदि नर्मदायास्तद्वर्जयेत्सकलकर्मसु सौम्यभागे।
विंध्यस्य दक्षिणदिशि प्रवदन्ति चार्याः सिंहांशके मृगपतावपि वर्जनीयः ॥१९॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि सिंह राशि में गुरु के होने पर नर्मदा के उत्तर भाग और विन्ध्यपर्वत के दक्षिण भाग में सिंह के नवांश में तथा सिंह राशि में रहने पर भी समस्त मांगलिक काम नहीं करने चाहिए ॥ १९ ॥

नक्षत्रभेदेन सिंहस्थगुरुविचारः ।

अब आगे नक्षत्र भेद से सिंहस्थ गुरु का विचार बताते हैं ।

व्यासः—

व्यास जी के आधार पर

[2]सिंहे सिंहाशके जीवे कलिंगे गौडगुर्जरे।
कालमृत्युरयं योगो दम्पत्योर्निधनप्रदः ॥ २० ॥

श्रीव्यासजी ने बताया है कि सिंह राशि में सिंह के नवांश में गुरु के होने पर कलिङ्ग, गौड, गुजरात देशों में काल मृत्यु योग होता है। यह स्त्री, पुरुष दोनों के लिये मरण प्रद होता है ॥ २० ॥

---

१. मु० चिं० १ प्र० ४९ श्लो० पी० टी० में वसिष्ठ के नाम से उद्धृत है ।
२. मु० चिं० १ प्र० ४९ श्लो० पी० टी० में वसिष्ठ के नाम से उद्धृत है ।

ज्योतिर्निबन्धे—

ज्योतिर्निबन्ध के आधार पर

गोदाया याम्यदिग्भागे भागीरथ्यास्तथोत्तरे।
विवाहादि शुभं कार्यं सिंहस्थेपि बृहस्पतौ ॥ २१ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में बताया है कि गोदावरी नदी के दक्षिण भाग और भागीरथी नदी के उत्तर भाग में सिंह के गुरु में भी विवाह आदि मांगलिक काम करना चाहिए ॥२१॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'गोदाया याम्यदिग्भागे भागीरथ्यास्तथोत्तरे। विवाहाद्यखिलं कार्यं सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ' (१५ प्र० ६१ श्लो०) ॥ २१ ॥

[1]वृद्धगर्गः—

वृद्ध गर्ग के आधार पर

भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तथा।
विवाहो व्रतबन्धो वा सिंहस्थेज्ये न दुष्यति ॥ २२ ॥

वृद्ध गर्ग ने बताया है कि गंगा नदी के उत्तर तट में और गौतमी नदी के दक्षिण किनारे पर विवाह या यज्ञोपवीत संस्कार सिंह के गुरु में दोष प्रद नहीं होता है ॥२२॥

बालभूषायाम्—

बालभूषा के आधार पर

गोदावरी रेविकान्तः सिंहस्थस्य निषिद्धता।
न गंगोत्तरतो गोदारेवयोर्दक्षिणे तथा ॥ २३ ॥

बालभूषा में कहा है कि गोदावरी और रेवा नदी के मध्य में सिंह गुरु का शुभ कामों में त्याग होता है एवं गंगा से उत्तर तथा गोदा रेवा से दक्षिण में शुभकामों का निषेध नहीं होता है ॥ २३ ॥

गणपतिः—

गणपति के आधार पर

[2]सिंहे सिंहांशके जीवे विवाहादि न कारयेत्।
गोदाया उत्तरे भागे भागीरथ्याश्च दक्षिणे ॥ २४ ॥

मुहूर्तगणपति में बताया है कि सिंह राशि में सिंह के नवांश में गुरु के होने पर गोदा से उत्तर दिशा में और भागीरथी से दक्षिण भाग में विवाहादि शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ २४ ॥

टोडरानन्दे—

टोडरा नन्द के आधार पर

सिंहराशौ तु सिंहांशे यदा भवति वाक्पतिः।
नर्मदोत्तरगोले तु न दोषो दक्षिणामुखः ॥ २५ ॥

---

१. मु० चि० १ प्र० ४९ पी० टी० देखें। २. १५ प्र० ६० श्लो०।

टोडरानन्द ग्रन्थ में बताया है कि सिंह राशि में सिंह के नवांश में जब गुरु होता है तो नर्मदा से उत्तर गोल में दोष होता है और दक्षिण में दोष नहीं होता है ॥ २५ ॥

मेषार्के विशेषः।

अब मेष के सूर्य होने पर सिंहस्थ वृहस्पति में विशेष बात बताते हैं।

अगस्त्यः—

अगस्त्य जी के आधार पर

कलिंगवंगेष्वथ मागधे च दोषः प्रपुष्टो न तथान्यदेशे ॥ २६ ॥

ऋषि अगस्त्य ने बताया है कि कलिङ्ग, बंगाल और मगध देश में अधिक दोष होता है, अन्य देशों में उतना नहीं होता है ॥ २६ ॥

ज्योतिर्विदाभरणे--

ज्योतिर्विदाभरण के आधार पर

गोदावरीसौम्यतटप्रदेशाद्भागीरथीयाम्यतटं च यावत्।
सिन्धुप्रपातं सचिवे सलेपे नोद्वाहमाहुः परतो मघायाम् ॥ २७ ॥

ज्योतिर्विदाभरण में बताया है कि गोदावरी नदी के उत्तर तट से गंगा के दक्षिण किनारे और सिंधु नदी के तट तक सिंह राशि में गुरु के रहने पर विवाह नहीं करना अर्थात् मघा में गुरु के होने से निषेध और मघा के आगे वाले नक्षत्रों में स्थित गुरु के होने पर दोष नहीं होता है ॥ २७ ॥

कहा है 'मघां त्यक्त्वा यदा गच्छेत् फाल्गुनीं च वृहस्पतिः। पुत्रिणी धनिनी कन्या सौभाग्यसुखमश्नुते' ॥ २७ ॥

कालनिर्णये--

काल निर्णय के आधार पर

जीवे सिंहगते सितास्तगदितं वर्ज्यं विधेयं तथा
केचित्पत्रभगं त्यजन्ति च गुरुन्नक्रेपि पञ्चाशगम्।

कालनिर्णय में बताया है कि सिंह के गुरु को और शुक्रास्त को वर्जित करना चाहिये, कुछ लोग मघा तथा पूर्वाफाल्गुनी के ही गुरु को वर्जित मानते हैं और कुछ लोग मकर में सिंह के नवांशक को त्याज्य कहते हैं।

आवश्यके कृत्यम्--

गोदाप्राक्तटवासिनां व्रतविवाहक्षौरकार्यादिकं
कार्यं तत्र सदात्र नापरतरं तीर्थं हि गोदाप्लवम् ॥ २८ ॥

आवश्यकता होने पर गोदा के किनारे से पूर्व में रहने वालों को विवाह; क्षौरादि संस्कार करना चाहिए व अन्यत्र निषेध होता है। क्योंकि निश्चय ही गोदावरी का प्लव (बहाव) तीर्थ है ॥ २८ ॥

कल्पद्रुमे--

कल्पद्रुम के आधार पर

अस्तोत्तरं सप्त च सिंहगोपि गुरुश्च भाग्यादिमपादयातः ।
वर्ज्योत्तरे गौतमजह्नुपुत्र्योर्वैशाखमासेतरमासगेपि ।। २९ ।।

कल्पद्रुम ग्रन्थ में बताया है कि गुरु के अस्त होने से सात दिन तक और सिंह में मघा के प्रथम पाद में जाने पर गोतमी व गंगा से उत्तर भाग में वैशाख के अतिरिक्त मासों में गुरु वर्ज्य होता है ।। २९ ।।

[1]वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर

भागीरथ्युत्तरे कूले गोदावर्याश्च दक्षिणे ।
व्रतोद्वाहादिकं कर्म सिंहस्थेज्ये न दुष्यति ।। ३० ।।

ऋषि वसिष्ठ ने कहा है कि गंगा के उत्तर किनारे और गोदावरी के दक्षिण किनारे व विवाहादि मांगलिक कामों में सिंह के गुरु का दोष नहीं होता है ।। ३० ।।

[2]पराशरः--

पराशर के आधार पर

गोदाभागीरथीमध्ये नोद्वाहः सिंहगे गुरौ ।
मघास्थः सर्वदेशेषु तथा मीनगते रवौ ।। ३१ ।।

ऋषि पराशर ने बताया है कि गोदा नदी व गंगा के मध्य में सिंह के गुरु में विवाह नहीं करना और मघा के गुरु में तथा मीन के सूर्य में समस्त देशों में मांगलिक विवाहादि नहीं करना चाहिए ।। ३१ ।।

[3]लल्लः--

लल्लाचार्य जी के आधार पर

गोदावर्य्युत्तरतो यावद्भागीरथीतटम् ।
याम्यं तत्र विवाहो नेष्टः सिंहस्थे देवपतिपूज्ये ।। ३२ ।।

आचार्य लल्ल ने कहा है कि गोदावरी से उत्तर, गंगा के दक्षिण तट तथा सिंह के गुरु में विवाह नहीं करना चाहिए ।। ३२ ।।

भृगुः--

भृगु जी के आधार पर

मघागतो मालवके निषिद्धः पूर्वागते पूर्वदिशि प्रदुष्टः ।
बृहस्पतिश्चोत्तरपादसंस्थो देशेष्वशेषेष्वपि नर्मदः स्यात् ।। ३३ ।।

---

१. इसकी द्विरावृत्ति है । २. वि० प्र० ७६ श्लो० ।
३. मु० चिं० १ प्र० ४९ श्लो० पी० टी० ।

ऋषि भृगु जी ने बताया है कि गुरु मघा में मालव देश में निषिद्ध है। पूर्वा में पूर्व दिशा में दूषित होता है और उत्तराफाल्गुनी के पहिले चरण में समस्त देशों में शुभ कामों में निषिद्ध नहीं होता है ॥ ३३ ॥

बालभूषायाम्--

बालभूषा के आधार पर

निन्द्यो मघास्थः सर्वत्र विशेषाद्गौडगुर्जरे ॥ ३४ ॥

बालभूषा में बताया है कि मघास्थ गुरु सब जगह निन्द्य होता है तथापि गौड व गुजरात में विशेषकर दूषित होता है ॥ ३४ ॥

मालायाम्—

मणिमाला के आधार पर

सिंहस्थमध्ये यदि पितृऋक्षे भवेद्गुरुः स्याच्च तदा विवाहः ।
कृते सु प्राप्नोति धनं च सौख्यं भाग्यं च पुत्रं पशुराजवृद्धिम् ॥३५॥

मणिमाला में बताया है कि सिंह राशि में मघा नक्षत्र में गुरु के संचार में जब विवाह किया जाता है तो करने पर धन, सुख, भाग्य, पुत्र, पशु और राज्य की वृद्धि होती है ॥ ३५ ॥

मुहूर्तमालायाम्—

मुहूर्तमाला के आधार पर

माघमासे पौर्णमासी मघायुक्ता यदा भवेत् ।
सिंहस्थस्य गुरोर्दोषस्तस्मिन्वर्षे न चान्यथा ॥ ३६ ॥

मुहूर्तमाला में कहा है कि माघ मास की पूर्णिमा में मघा नक्षत्र के होने पर सिंह के गुरु का दोष उस वर्ष नहीं होता, इसके विपरीत में होता है ॥ ३६ ॥

बालभूषायाम्—

बालभूषा के आधार पर

गुर्वंगनाक्रान्तमघया युक्ता माघी यदा भवेत् ।
व्रतोद्वाहौ तदा कार्याविति गर्गपराशरौ ॥ ३७ ॥

बालभूषा में कहा है कि गुरु से आक्रान्त रहने पर भी माघी पूर्णिमा मघा नक्षत्र से युक्त हो तो जनेऊ, विवाहादि करना चाहिए, ऐसा गर्ग और पराशर ने कहा है ॥३७॥

लल्लः—

लल्लाचार्य के आधार पर

माघी च मघया युक्ता मघायां च गुरुर्यदा ।
महामाघस्तदा प्रोक्तो व्रतोद्वाहादि वर्जयेत् ॥ ३८ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि माघी पूर्णिमा जब मघा नक्षत्र से युक्त होती है तो महामाघ योग होता है। इसमें विवाहादि नहीं करना चाहिए ॥ ३८ ॥

[1]मणिमालायाम्—

मणिमाला के आधार पर

मघां त्यक्त्वा यदा गच्छेत्फाल्गुनीं च बृहस्पतिः ।
पुत्रिणी धनिनी कन्या सौभाग्यसुखमश्नुते ॥ ३९ ॥

मणिमाला में कहा है कि मघा नक्षत्र का त्याग कर जब गुरु पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में जाता है तो उस समय शादी करने पर कन्या पुत्रवती, धनिनी और सुख भोगने वाली होती है ॥ ३९ ॥

[2]सिंहेपि भगदैवत्ये गुरौ पुत्रवती भवेत् ।
अत्यन्तसुभगा साध्वी धनधान्यसमन्विता ॥ ४० ॥

गुरु सिंह में होने पर भी पूर्वाफाल्गुनी में विवाह करने पर कन्या पुत्रवती, अधिक भाग्यशालिनी, साध्वी और धन धान्य से युक्त होती है ॥ ४० ॥

चूडामणौ—

चूडामणि के आधार पर

गोदावरीसौम्यतटाच्च यावद्भागीरथी याम्यतटं न शस्तम् ।
विवाहकृत्यं च गुरौ हरिस्थे हरे लवस्थे क्रियगेर्कं इष्टम् ॥ ४१ ॥

चूडामणि नामक ग्रन्थ में कहा है कि गोदावरी नदी के उत्तर तट से और गङ्गा जी के दक्षिण तक सिंह राशि में सिंह के नवांश में विवाहादि शुभ काम नहीं करना और मेष के सूर्य में करना चाहिए ॥ ४१ ॥

मणिमालायाम्—

मणिमाला के आधार पर

सिंहे जीवे रवौ मेषे विवाहं तत्र कारयेत् ।
पुत्रपौत्रादिसौभाग्यं लभते सुखसम्पदाम् ॥ ४२ ॥

मणिमाला में बताया है कि सिंह के गुरु में मेष के सूर्य होने पर विवाह करने से पुत्र, पौत्रादि, अच्छा भाग्य और सुख सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ॥ ४२ ॥

ज्योतिर्निबन्धे—

ज्योतिर्निबन्ध के आधार पर

[3]मङ्गलानीह कुर्वीत सिंहस्थो वाक्पतिर्यदा ।
भानौ मेषगते सम्यगित्याहुः शौनकादयः ॥ ४३ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में लिखा है सिंह के बृहस्पति में मेष के सूर्य होने पर विवाहादि काम करना शौनकादि मुनियों ने शुभप्रद बताया है ॥ ४३ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६३ पृ० सप्तर्षि पटल से उद्धृत है ।

२. ज्यो० नि० भृगुजी के नाम से उद्धृत है ।

३. मु० चि० ४९ श्लो० पी० टी० ।

मुहूर्तगणपति में कहा है 'सिंहराशिस्थिते जीवे मेषेऽर्के तु न दूषणम् । आवश्यके विवाहादौ सर्वदेशेष्वपि स्मृतम्' (१५ प्र० ६२ श्लो०) ॥ ४३ ॥

और भी 'सिंहस्थे देवगुरौ मेषस्थे यदि भवेत्सहस्रांशुः । मङ्गलकार्यं कुर्यादिति नारदपराशरौ वदतः' (ज्यो० नि० ९३ पृ०) ॥ ४३ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठ ऋषि के आधार पर

पाणेस्तु ग्रहणं कार्यं सिंहस्थो वाक्पतिर्यदा ।
भानौ मेषगते शस्तमित्याहुः शौनकादयः ॥ ४४ ॥

वसिष्ठ ऋषि ने बताया है कि जब सिंह का गुरु हो तो पाणिग्रहण संस्कार मेष के सूर्य में शौनकादि मत में शुभ माना गया है ॥ ४४ ॥

[1]शौनकः—

शौनक जी के आधार पर

मेषस्थे दिवसकरे सिंहस्थे वज्रपाणिसचिवे च ।
यस्याः परिणयनमसौ साध्वी सुखसम्पदोपेता ॥ ४५ ॥

ऋषि शौनक जी ने बताया है कि सिंह के गुरु में मेषस्थ सूर्य में जिस कन्या की शादी होती है तो वह साध्वी और सुख सम्पत्ति से युक्त होती है ॥ ४५ ॥

[2]सिंहगते सुरमन्त्रिणि कन्या मेषगते तपने परिणीता ।
भूषणरत्नयुता च सुशीला सत्यवती गुणकीर्तिसमेता ॥ ४६ ॥

सिंह के गुरु में मेष का सूर्य होने पर विवाह करने पर कन्या भूषण (अलङ्कार), रत्नों से युक्त, सच बोलने वाली और गुण कीर्ति से युक्त होती है ॥ ४६ ॥

मुहूर्तमालायाम्—

मुहूर्त माला के आधार पर

गङ्गागोदावरीमध्ये वर्ज्यः सिंहगते गुरौ ।
न दोषभाङ्मेषगेऽर्के न चेद्भागाद्यपादगः ॥ ४७ ॥

मुहूर्त माला में कहा है कि गंगा, गोदावरी के बीच में सिंह राशि में गुरु के होने पर विवाहादि शुभ काम का त्याग करना चाहिये, परन्तु मेष के सूर्य में सिंह के नवांश में हो तो भी दोष प्रद नहीं होता है ॥ ४७ ॥

च्यवन के मत से

[3]सिंहे गुरौ सिंहनवांशकोर्द्धं गोदावरीदक्षिणकूलजातैः ।
उद्वाहकालात्ययदोषभीतैः कार्यो विवाहश्च्यवनो ब्रवीति ॥ ४८ ॥

---

१. ज्यो० नि० ६३ पृ० ३ श्लो० । २. म० चि० ६ प्र० ४६ श्लो० पी० टी० ।
३. ज्यो० नि० ६२ पृ० ११ श्लो० ।

ऋषि च्यवन ने कहा है कि सिंह के गुरु का सिंह के नवांश बीत जाने पर गोदावरी नदी के दक्षिण तट विवाह कर लेना चाहिये, यदि विवाहकाल के अतिक्रमण का भय हो तो ॥ ४८ ॥

[1]शौनकीयपटले—

शौनकीय पटल के आधार पर

वरलाभातिकालाभ्यां दुर्भिक्षाद्देशविप्लवात् ।
विवाहः शुभदो नित्यं सिंहस्थेपि बृहस्पतौ ॥ ४९ ॥

शौनकीय पटल में बताया है कि वर लाभ की सम्भावना और काल का अतिक्रमण होने के भय से, दुर्भिक्ष तथा देश में विप्लव की सम्भावना होने पर सिंह के बृहस्पति में भी विवाह शुभप्रद होता है ॥ ४९ ॥

कारिका निबन्ध में कहा है 'अतीव दुष्टे सुरराजपूज्ये सिंहस्थिते वा द्विजपुङ्गवानाम् । व्रतस्य बन्धः खलु मासि चैत्रे कृतश्चिरायुः सुखसंपदे स्यात्' (ज्यो० नि० ९३ पृ०) ॥ ४६ ॥

वसिष्ठ संहिता में 'सिंहे सिंहांशके जीवे कलिङ्गे गौडगुर्जरे । कालमृत्युरयंयोगो दम्पत्योर्निधनप्रदः' (४२ अ० २७ श्लो०) ॥ ४९ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने त्रिचत्वारिंशं सिंहस्थगुरुविचारप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार ज्योतिर्वेत्ता श्रीमान् पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रहग्रन्थ का सिंहस्थगुरु विचार नामवाला तैंतालीसवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिजवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज मुरलीधर चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थस्य श्रीधरी हिन्दी टीका चत्वारिंशत्प्रकरणस्य परिपूर्णा ॥ ४३ ॥

---

१. ज्यो० नि० में उत्तरार्धं 'विवाहोऽदक्षिणे तीरे भागीरथ्याश्चदक्षिणे' इस प्रकार है (६२ पृ०) ।

अथ चतुश्चत्वारिंशं मकरस्थगुरुप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अथ मकरस्थगुरुविचारः—

अब आगे चौवालीसवें प्रकरण में मकर के गुरु में कब क्या नहीं करना चाहिए ।

मकरस्थ गुरु में विवाह का निषेध

वाक्पतौ [1]मकरराशिमुपेते पाणिपीडनविधिर्न विधेयः ।
तत्र दूषणमुशन्ति मुनीन्द्राः केवलं परमनीचनवांशे ।। १ ।।

ग्रन्थान्तर में प्रतिपादित है कि मकर राशि में गुरु के अपने परम नीचांश में रहने तक विवाह नहीं करना चाहिए । क्योंकि श्रेष्ठ मुनियों ने इसे दूषित बताया है ।।१।।

लल्लः—

लल्लाचार्य के आधार पर

अवन्तिदेशे भृगुकच्छगुर्जरे मरुस्थले दक्षिणमध्यदेशे ।
वराडकालिञ्जरपूर्वमालवे नीचस्थितो देवगुरुर्न शोभनः ।। २ ।।
मालवे सिन्धुदेशे च गौडदेशे च कौङ्कणे ।
नीचादिस्थो गुरुर्वर्ज्यो नान्यदेशे कदाचन ।। ३ ।।

आचार्य लल्ल ने कहा है कि उज्जयिनी, भृगु, कच्छ, गुजरात, मरुभूमि, दक्षिण, मध्य वराड, कालिञ्जर, पूर्व मालव, मालव, सिन्धु, गौड और कौंकण देशों में नीचस्थ गुरु अशुभ होता है। इसलिए इन देशों में शुभादि कर्म त्यागना चाहिये और अन्य देशों में कथमपि नहीं छोड़ना चाहिये ।। २–३ ।।

अत्याज्य स्थान

[1]नर्मदापूर्वभागे तु शोणस्योदक् च दक्षिणे ।
गण्डक्याः पश्चिमे भागे मकरस्थो न दोषभाक् ।। ४ ।।

आचार्य लल्ल ने कहा है कि नर्मदा के पूर्व, शोण से उत्तर, दक्षिण और गण्डकी नदी के पश्चिम हिस्से में मकरस्थ गुरु का दोष नहीं होता है ।। ४ ।।

[2]शौनकः—

शौनक जी के आधार पर

रेवापूर्वे गण्डकीपश्चिमे च शोणस्योदग्दक्षिणे नीच इज्यः ।
वर्ज्यो नायं कौङ्कणे मागधे च गौडे सिन्धौ वर्जनीयः शुभेषु ।। ५ ।।

---

१. मु० चि० १ प्र० ५२ श्लो० पी० टी० ।
२. यह मु० चि० १ प्र० का ५२ वाँ है ।

ऋषि शौनक जी ने बताया है कि रेवा के पूर्व में गण्डकी से पश्चिम में और शोण नदी के उत्तर व दक्षिण में नीच का गुरु त्याज्य नहीं होता है तथा कौंकण, मागध, गौड और सिंधु देश में नीचका गुरु मांगलिक कार्य में त्याज्य होता है ॥ ५ ॥

भृगुः—

भृगु जी के आधार पर

[1]मृगराशि गते जीवे दिनषष्टि विवर्जयेत् ।
गर्गादि मुनिवाक्यत्वात्कर्तव्यं शुभमन्यतः ॥ ६ ॥

ऋषि भृगु ने बताया है कि मकर राशि में गुरु होने पर साठ दिन तक शुभ कामों का त्याग करना चाहिये । क्योंकि गर्गादि मुनियों का कथन है ॥ ६ ॥

भीमपराक्रमे—

भीम पराक्रम के आधार पर

वापीकूपतडागादि निषिद्धं सिंहगे गुरौ ।
मकरस्थे तु तत्कार्यं न दोषः काललोपतः ॥ ७ ॥

भीम पराक्रम में बताया है कि सिंह के गुरु में वापी, कुआ और तालाब आदि के कार्य का निषेध होता है और मकरस्थ होने पर दोष प्रद नहीं होता, क्योंकि काल का लोप नहीं होता है ॥ ७ ।

कार्यं मकरगे नीचे विवाहाद्यखिलं बुधैः ।
नतु सिंहगते जीवे कुर्वाणो मृत्युमाप्नुयात् ॥ ८ ॥

पण्डितों का कहना है कि विवाह आदि समस्त मंगल कार्य नीचस्थ मकर राशि में गुरु के रहने पर करना और सिंह के गुरु में करने पर मरण की प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

व्यवहारोच्चये—

व्यवहारोच्चय के आधार पर

नीचस्थोपि गुरुर्वक्री वर्ज्यो वै मागधे जने ।
अन्यदेशे शुभं प्राहुः वसिष्ठात्रिपराशराः ॥ ९ ॥

व्यवहारोच्चय में बताया है कि नीच राशि में भी वक्री गुरु होने मागध देश में त्यागना और वसिष्ठ, अत्रि, पराशर ऋषियों ने अन्य देश में शुभप्रद कहा है ॥ ९ ॥

अन्यानि शुभकार्याणि जीवे नक्रातिचारिणि ।
विवर्ज्यानि विवाहस्तु कार्यं त्वाङ्गलवं विना ॥ १० ॥

जब कि गुरु मकर में या अतिचारी होता है तो अन्य शुभ कामों का त्याग और त्याज्य नवांश को छोड़कर विवाह करना चाहिए ॥ १० ॥

---

१. यह मु० चि० १ प्र० ५२ श्लो० पी० टी० में 'वामनपुराण के नाम से उद्धृत है ।

[1]नीचराशिगतो जीवः प्रशस्तः सर्वकर्मसु।
नीचांशकगतस्त्याज्यो यस्माद्देशेषु नीचता ॥ ११ ॥

नीच राशि में जब गुरु होता है तो समस्त कार्यों में प्रशस्त और नीचांश में त्याज्य होता है। क्योंकि नीचता देशों में होती है ॥ ११ ॥

दैवज्ञमनोहरे—

दैवज्ञमनोहर के आधार पर

[2]मागधे गौडदेशे च सिन्धुदेशे च कोङ्कणे।
व्रतं चूडाविवाहं च वर्जयेन्मकरे गुरौ ॥ १२ ॥

दैवज्ञमनोहर नामक ग्रन्थ में बताया है कि मागध, गौड, सिन्धु और कोंकण देश में मकर राशि में गुरु के होने पर यज्ञोपवीत, चौल तथा विवाह नहीं करना चाहिए ॥ १२ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'मगधे गौडदेशे च सिन्धुदेशे च कोङ्कणे। विवाहादिशुभे त्याज्यो नान्यस्मिन्नक्रगो गुरुः' (१५ प्र० ९३ श्लो०) ॥ १२ ॥

भीमः—

भीम के आधार पर

नक्रे गुरौ समायाते शुभकर्म परित्यजेत्।
तत्रापि षष्टिदिवसान् सर्वकर्मसु वर्जयेत् ॥ १३ ॥

भीम ने बताया है कि मकर में गुरु के रहने पर शुभ कर्म का त्याग करना, मकर में प्रवेश होने पर भी ६० साठ दिन तक समस्त कामों में त्यागना चाहिए ॥ १३ ॥

गर्गः—

गर्ग जी आधार पर

मृगराशौ गुरौ याते सर्वसौम्यं परित्यजेत्।
तथापि षष्टिदिवसा वर्जनीयाः सदा बुधैः ॥ १४ ॥

गर्ग जी ने बताया है कि मकर राशि में गुरु के जाने पर समस्त शुभ कामों का त्याग ६० साठ दिन तो करना ही चाहिए ॥ १४ ॥

देवीपुराणे—

देवी पुराण के आधार पर

मकरस्थो यदा जीवो वर्जयेत्पञ्चमांशकम्।
शेषेष्वपि च भागेषु विवाहः शोभनो मतः ॥ १५ ॥

---

२. यह मु० चि० १ प्र० ५२ श्लो० पी० टी० में 'व्यवहारचण्डेश्वर' के नाम से प्राप्त है।

३. मु० चि० १ प्र० ५२ श्लो० पी० टी०।

देवी पुराण में बताया है कि मकर में गुरु के रहने पर पाँचवें भाग का त्याग करना चाहिये, शेष भागों में विवाह शुभ होता है ॥ १५ ॥

टोडरानन्दे—

टोडरानन्द के आधार पर

अतिचारे सप्तदिनं वक्रे द्वादशमेव च।
नीचस्थितेपि वागीशे मासमेकं विवर्जयेत् ॥ १६ ॥

टोडरानन्द ग्रन्थ में कहा हैं कि गुरु के अतिचारी होने पर सात दिन तक, वक्री होने पर बारह दिन और नीच में गुरु की स्थिति वश एक मास तक शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ १६ ॥

[1]गरुडपुराणे—

गरुडपुराण के आधार पर

यदा सिंहगतो जीवो नैव कल्याणमाचरेत्।
मकरस्थेऽपि कर्तव्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ १७ ॥

गरुडपुराण में कहा है कि जब सिंह में गुरु हो तो शुभ काम नहीं करना चाहिए और मकर में रहने पर विना विचार के निःसंदेह करना चाहिए ॥ १७ ॥

इति श्रीमज्ज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने मकरस्थगुरुविचारप्रकरणं समाप्तम्।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का मकरस्थ गुरुविचार नामक ४४ वां प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्यश्रीमद्भागवताभिनवशुक प० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता चतुश्चत्वारिंशत् प्रकरणस्य बृहद्दैवज्ञरञ्जनग्रन्थस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ४४ ॥

---

१. मु० चि० १ प्र० ५२ श्लो० पी० टी०।

अथ पञ्चचत्वारिंशं गुरुवक्रप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अथ गुरुवक्रदोषविचारः—

अब आगे पैंतालीसवें प्रकरण में गुरु के वक्री होने पर जो दोष होता है, उसे बताते हैं ।

लल्लः —

लल्ल के आधार पर

अतिचारे च वक्रे च वर्जयेत्तदनन्तरम् ।
व्रतोद्वाहादिचूडायामष्टाविंशति वासरान् ॥ १ ॥
अतिचारे त्रिपक्षं च वक्रे पक्षद्वयं तथा ।
व्रतोद्वाहौ न कर्तव्यौ जीवे वक्रातिचारगे ॥ २ ॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि गुरु के अतिचारी तथा वक्री होने पर २८ अट्ठाईस दिनों तक यज्ञोपवीत, विवाह और चौल नहीं करना चाहिए ॥ १ ॥

गुरु के अतिचारी होने पर ४५ दिन, वक्री में ३० दिन यज्ञोपवीत और विवाह नहीं करना चाहिए ॥ २ ॥

मुहूर्तकल्पद्रुमे—

मुहूर्तकल्पद्रुम के आधार पर

वक्रे सुरेज्ये स्वगृहे दिनत्रयं वर्ज्यं मुनीन्द्रैरखिलेषु कर्मसु ।
अन्यत्र राशौ मुनयस्त्यजन्ति अष्टाधिकं विंशति वासराणि ॥ ३ ॥

मुहूर्तकल्पद्रुम में बताया है कि स्वराशि में गुरु के वक्री होने पर तीन ३ दिन समस्त शुभ कामों का त्याग और दूसरी राशि में २८ दिनों का त्याग ऋषियों ने बताया है ॥ ३ ॥

शौनकः —

शौनक जी के आधार पर

राशौ वक्रे राशिचारे यदि स्याद्वाचामीशोऽनिष्टदः सर्वकार्ये ।
अष्टाविंशद्वासराणामधस्तात्तस्मादूर्ध्वं नैव दोषः कदाचित् ॥ ४ ॥

ऋषि शौनक ने बताया है कि राशि में वक्र होकर गुरु अन्य राशि में संचार करें तो २८ दिन पहिले व पश्चात् समस्त कामों में अशुभ तथा दोष प्रद होता है, इसके बाद में नहीं ॥ ४ ॥

अन्यत्रापि—

ग्रन्थान्तर के आधार पर भी

[1]अतिचारगते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम् ।
व्रतोद्वाहादि चूडायामष्टविंशति वासराः ॥ ५ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि गुरु अतिचारी होने पर यज्ञोपवीत, विवाह और चौल संस्कार अठ्ठाईस दिन तक नहीं करना चाहिए ॥ ५ ॥

एतेऽपि तद्देशविशेषा अतस्तु आचार्येणोक्ताः । सिंहराशिस्थदोषो जाह्नवी-गोदावरीमध्यदेशादन्यत्र नास्त्येव । परं यत्र देशे सर्वजनवृद्धव्यवहारेण वर्ज्यते तद्देशे वर्जित एव । एवमन्येषां वक्ष्यमाणानां दोषाणामपि देशकुलाचारतो व्यवस्था ज्ञेया ।

ये दोष भी देश विशेषों में होता है इसलिये आचार्य ने कहा है कि सिंह राशि में गुरु का दोष गंगा, गोदावरी के मध्य देश से दूसरी जगह पर नहीं होता है। जिस देश में समस्त पूर्वजों के व्यवहार से त्याज्य होता हो, वहीं पर त्याग करना चाहिए। इस प्रकार आगे वर्णित दोषों का भी त्याग देश, कुल व आचार व्यवस्था से जानना चाहिए ।

इति श्रीमज्ज्यौतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृतसङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने पञ्चचत्वारिंशं गुरुवक्रप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का गुरु वक्र दोष विचार नामवाला पैंतालीस ४५ वाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४५ ॥

इति श्री मथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-मुरलीधरचतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्य पञ्चचत्वारिंशत् प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ ४५ ॥

---

१. मु० चि० १ प्र० ४८ श्लो० पी० टी० में 'वक्रातिचारणे' यह पाठान्तर है ।

अथ षट्चत्वारिंशं गुर्वादित्यविचारप्रकरणं प्रारभ्यते ।

जगन्मोहने—

अब आगे छियालीसवें प्रकरण में गुर्वादित्य योग के दोष को बताते हैं।

जगन्मोहन के आधार पर

गुर्वर्केण युतः करोति मरणं कालांशके भास्करे
नक्षत्रैकगते वदन्ति यवनाः पादस्थिते देवलः ।
प्राहुर्गर्गपराशरादिमुनयश्चास्तंगते जीवके
तस्मादस्तमिते सुरेन्द्रसचिवे कार्यं न कार्यं बुधैः ॥ १ ॥

जगन्मोहन ग्रन्थ में बताया है कि गुरु सूर्य से युक्त हो, सूर्य के दीप्तांशों के भीतर हो तो शुभ काम में मृत्यु होती है। यवनाचार्य एक नक्षत्र में और देवल एक चरण में एवं गर्ग पराशरादि ऋषि अस्त गुरु में मरण कहते हैं। इसलिये गुरु के अस्त होने पर शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ १ ॥

गुर्वर्कयोगे युवतीवियोगो यद्येक ऋक्षे यवना वदन्ति ।
अस्तङ्गते देवगुरौ भृगुश्च हारीतपूर्वाश्चरणैकसंस्थे ॥ २ ॥

यवनाचार्य कहते हैं जब कि गुरु सूर्य का योग एक नक्षत्र में होता है तो उसमें शादी करने पर स्त्री वियोग होता है तथा भृगु अस्तङ्गत होने पर और हारीत आदि लोग एक चरण में गुरु सूर्य के होने पर स्त्री वियोग बताते हैं ॥ २ ॥

भृगुः—

भृगु के आधार पर

एकर्क्षे गुर्वर्के व्रतबन्धोद्वाहकादयः सर्वे ।
न शुभफलदाश्च गदिता अस्तमितेज्येऽनर्थदः प्रोक्तः ॥ ३ ॥

ऋषि भृगु ने कहा है कि एक नक्षत्र में गुरु सूर्य के होने पर व्रतबन्ध, विवाहादि समस्त काम अच्छा फल देने वाले नहीं होते हैं और अस्तमित गुरु में शुभ काम करने पर अनर्थ होता है ॥ ३ ॥

राजमार्तण्डे—

राजमार्तण्ड के आधार पर या सिंह में रहने पर

यात्रां चूडां विवाहं श्रुतिविवरविधिशंखसद्मप्रवेशं
प्रासादोद्यानहर्म्यं सुरवरभवनारम्भविद्याविधानम् ।
मौंजीबन्धं प्रतिष्ठां मणिरदकनकाधारणं कुर्वते ये
मृत्युस्तेषां च सिंहे गुरुदिनकरयोरेकराशिस्थयोश्च ॥ ४ ॥

राजमार्तण्ड में लिखा है कि यात्रा, चूडा, विवाह, कर्णवेध, शंख, गृहप्रवेश, प्रासाद, बगीचा, घर, देवघर का आरम्भ, विद्याविधान, मौञ्जीबन्ध, प्रतिष्ठा, मणि, दांत, सोनें का धारण, एक राशि में गुरु सूर्य के होने पर जो करते हैं, उनकी मृत्यु होती है ॥ ४ ॥

लल्लः—

लल्ल के आधार पर

गुरुसूर्यौ यदा काले एकराशौ च संस्थितौ ।
विवाहे म्रियते कन्या पतिश्चापि न जीवति ॥ ५ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि गुरु सूर्य जब एक राशि में हों और उसमें वर-वधू का विवाह हो तो कन्या की विवाह में मृत्यु व पति का भी मरण होता है ॥ ५ ॥

ज्योतिःप्रकाशे—

ज्योतिष्प्रकाश के आधार पर

[1]गुर्वर्कयोगसमये शौनकवाल्मीकिगौतमाद्यैश्च ।
उद्वाहव्रतमुख्या न शुभफलाः कीर्तिता मुनिभिः ॥ ६ ॥

ज्योतिःप्रकाश में कहा है कि सूर्य-गुरु के एक राशि में होने पर शौनक, वाल्मीकि व गौतम आदि मुनियों ने विवाह, यज्ञोपवीत आदि मुख्य संस्कार करने पर अच्छा फल देने वाला नहीं बताया है ॥ ६ ॥

कर्णवेधं विवाहं च क्षौरं च व्रतबन्धनम् ।
गुर्वादित्ये न कुर्वीत पुत्रदारधनक्षयः ॥ ७ ॥

कर्णवेध, विवाह क्षौर व्रतबन्ध संस्कार गुर्वादित्य में नहीं करना, करने पर पुत्र स्त्री धन का क्षय होता है ॥ ७ ॥

होराप्रकाशे गुरुः—

होरा प्रकाश में गुरु के वाक्य के आधार पर

[1]रविक्षेत्रगते जीवे जीवक्षेत्रगते रवौ ।
गुर्वादित्यः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु ॥ ८ ॥

होरा प्रकाश नामक ग्रन्थ में गुरु का कहना है कि सूर्य की राशि में गुरु और गुरु की राशि में सूर्य के होने पर गुर्वादित्य योग होता है। यह समस्त शुभ कामों में निन्दनीय कहा गया है ॥ ८ ॥

वराहः—

वराह के आधार पर

एकराशिगतौ स्यातां देवाचार्यदिनेश्वरौ ।
गुर्वादित्यः स विज्ञेयः स तु गुर्वस्तसंज्ञकः ॥ ९ ॥

---

१. ज्यो० नि० ९२ पृ० ६ श्लो० ।

आचार्य वाराह ने बताया है कि जब एक राशि में गुरु सूर्य होते हैं जो गुर्वादित्य दोष होता है, वह गुर्वस्त संज्ञक होता है ॥ ६ ॥

गुर्वादित्ये दशाह्नि स्यादस्ते मासद्वयं तथा ।
वर्जयेद्गुरुशुक्राभ्यामष्टाविंशति वासरान् ॥ १० ॥

गुर्वादित्य दोष में दस दिन तक व अस्त में दो मास तक और गुरु शुक्र योग के पश्चात् २८ अट्ठाईस दिन तक शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ १० ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मज रामदीनविरचिते सङ्ग्रहे वृहद्दैवज्ञरञ्जने षट्चत्वारिंशं गुर्वादित्यप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित वृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का गुर्वादित्य नाम वाला छियालीस ४६ वाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मज मुरलीधर चतुर्वेद कृता वृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रहग्रन्थस्य षट् चत्वारिंशत् प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्णा ॥ ४६ ॥

अथ सप्तचत्वारिंशं गुरुशुक्रयोरस्तादिविचार-प्रकरणं प्रारभ्यते।

अथ गुरुशुक्रयोः समदृष्टिविचारः—

अब आगे सैंतालीसवें प्रकरण में गुरु, शुक्र के अस्तादि दोष का विचार इसमें बताते हैं।

शुक्र गुरु की समान दृष्टि का विचार

[1]समदृष्टौ गुरोः शुक्रस्तन्मासे तु प्रयत्नतः।
विवाहादि न कुर्वीत नर्मदातीर उत्तरे ॥ १ ॥

जिस मास में गुरु शुक्र परस्पर समदृष्टि में होते हैं तो नर्मदा तट से उत्तर भाग में यत्न से विवाहादि शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ १ ॥

गुरुः—

गुरु के आधार पर

[2]यदा जीवसितौ शक्र[3] परस्परनिरीक्षितौ।
सप्तमस्थौ तदा भेदो मूढ़त्वादतिरिच्यते ॥ २ ॥

आचार्य गुरु का कहना है कि हे इन्द्र जब गुरु शुक्र आपस में दृष्ट हों अर्थात् गुरु से सप्तम शुक्र या शुक्र से सातवें गुरु आपस में दृष्टि युक्त हों तो भेद के नाते मूढत्व दोष होने से शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ २ ॥

भारद्वाजः—

भारद्वाज के आधार पर

गुरुशुक्रौ यदा मूढौ यदा वान्योन्यवीक्षितौ।
यदा वापि दिवा दृष्टौ तदा कर्म शुभं त्यजेत् ॥ ३ ॥

ऋषि भारद्वाज ने कहा है कि गुरु शुक्र जब मूढ़ होते हैं अथवा आपस में दृष्ट या दिन में इनका दर्शन होता है तो उस समय शुभ काम नहीं करना चाहिए ॥ ३ ॥

गुरुः—

गुरु के आधार पर

यदा दिनैव दृश्यन्ते जीवशुक्रौ नभस्तले।
तयोरन्यतरे वापि स कालो बहुदोषदः ॥ ४ ॥
ततः प्रभृति सप्ताहात् स कालः शुभनाशनः।
दिनानि दर्शनात्पश्चात्प्रत्येकं सप्त सप्त च ॥ ५ ॥

---

१. मु० चिं० १ प्र० ५३ श्लो० पी० टी०। 'समदृष्टिर्गुरुः शुक्रः' पाठान्तर है।
२. मु० चिं० १ प्र० ५३ श्लो० पी० टी०। ३. 'चक्रे' पाठः।

बृहस्पति जी ने कहा है कि जब दिन में हो गुरु शुक्र दोनों का या एक का दर्शन आकाश में होता है तो वह समय अत्यन्त दोष दायी होता है और उस काल से सात दिन तक का समय शुभ कर्म को नष्ट करने वाला होता है अतः दिन में दर्शन के बाद सात दिन का त्याग करना चाहिए ॥ ४-५ ॥

गुरोःस्थानात्तु शीतांशुः षडंत्यं संस्थितोष्टमम् ।
योगोयं शकटो नाम बधं दद्याच्छुभे पदे ॥ ६ ॥

जबकि गुरु के स्थान से ६ या ८ अन्त्यवाले अंशों में चन्द्रमा होता है तो शकट नाम का योग होता है इसमें शुभ काम करने से मरण होता है ॥ ६ ॥

तत्र शुक्रास्ते पूर्वपश्चिमस्थितिदिनानि ।

शुक्रास्त में पूर्व पश्चिम स्थिति दिन

साद्धाष्टमासे भृगुःपूर्वभागे अस्तङ्गते तिष्ठति पञ्चपक्षम् ।
पश्चोदये मासनवानि भुक्तः शुक्रो दशाहे उदिते च पूर्वे ॥ ७ ॥

साढ़े आठ मास दर्शन देकर शुक्र पूर्व दिशा में अस्त होकर २५ पच्चीस दिन तक रहता है और शुक्र ९ मास दीखकर १० दिन अस्त रहकर पूर्व में उदय होता है ॥ ७ ॥

ज्योतिःसारे—

ज्योतिः सार के आधार पर

यमशराभुजवासरवज्रिणो दिशि द्विसप्त सितास्तमनं तथा ।
गगनबाणयमा दिशि पश्चिमे नव दिनास्तमनं तु भृगोर्बुधैः ॥ ८ ॥

ज्योतिषसार में बताया है कि २५२ वें दिन शुक्र पूर्व दिशा में अस्त व ७२ वें दिन पश्चिम में उदय होता है और २५० वें दिन में पश्चिम दिशा में अस्त और ९ नवें दिन उदय होता है ऐसा पण्डितों ने बताया है ॥ ८ ॥

अन्यत्रापि—

अन्य ग्रन्थ के आधार पर भी

पश्चिमास्तं मासमेकं नान्यथा मुनिरब्रवीत् ।
[1]यथा रवेर्मङ्गलमेति काव्यो विनष्टतेजो गुरुरप्यथैवम् ।
यज्ञस्य दीक्षा व्रततीर्थयात्रायज्ञोत्सवानां च विनाशकृत्स्यात् ॥ ९ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा गया है कि जिस प्रकार सूर्य के पास आकर शुक्र निस्तेज होता है उसी प्रकार गुरु भी सूर्य के सान्निध्य में हत तेज होता है इस अस्तकाल में यज्ञ दीक्षा, जनेऊ, तीर्थ यात्रा आदि उत्सवों का आरम्भ करने पर नाश होता है ॥ ९ ॥

गणपतिः—

गणपति के आधार पर

[2]नेत्रेषुहृग्मितश्चैव दृश्यो भवति भार्गवः ।
वसुशैलमितैस्तत्र यातोऽस्तं नैव दृश्यते ॥ १० ॥

---

१. ज्यो. नि. ८१ पृ० ५ श्लो० । २, मु. ग. १४ प्र० ७६ श्लो० ।

गणपति ग्रन्थ में बताया है कि २५२ दिन तक पूर्व में दीख कर शुक्र ७८ अठत्तर दिन तक अस्त होता है ॥ १० ॥

[1]खबाणाश्विमितान् घस्रान् प्रतीच्यां दृश्यते भृगुः ।
तत्रैवार्ककरग्रस्तो नवाहानि न दृश्यते ॥ ११ ॥

२५० दिन पश्चिम में दीख कर ६ दिन तक सूर्य की किरणों से ग्रसित होकर दृष्टिगोचर नहीं होता है ॥ ११ ॥

गुरोरस्तविचारः—

अब आगे गुरु कितने दिन अस्त व उदित रहता है इसे बताते हैं ।

[2]प्रायो वाचस्पतिर्मासं भवत्यक्ष्णामगोचरः ।
प्राच्यामुदयते मासं याति पश्चानुवत्सरात् ॥ १२ ॥

अधिकतर वृहस्पति एक मास तक दृष्टि गोचर नहीं होता है और एक मास अस्त रह कर पूर्व में उदित होता है । ऐसा प्रायः प्रतिवर्ष होता है ।। १२ ॥

अन्यत्रापि—

ग्रन्थान्तर के आधार पर भी

गुरोरेकादशं मासमुदयं पूर्वदिग् भवेत् ।
पश्चिमास्तं मासमेकं नान्यथा मुनिरब्रवीत् ॥ १३ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि गुरु का ११ ग्यारह मास तक पूर्व दिशा में उदय और १ एक मास तक पश्चिम दिशा में अस्त होता है, इसके विपरीत नहीं होता ऐसा ऋषि ने कहा है ॥ १३ ॥

माण्डव्यः—

माण्डव्य जी के आधार पर

[3]त्यजेद्दशाहं शिशुवृद्धयोश्च सितेज्ययोश्चेति वदन्ति गार्ग्याः ।
कालांशतुल्यानि दिनानि चैके सप्ताहमन्ये त्वपरे त्रिरात्रम् ॥ १४ ॥

ऋषि माण्डव्य ने बताया है कि गार्ग्य के मत से शुक्र व गुरु के बालत्व व वृद्धत्व में १० दिन शुभ कर्मों का त्याग करना चाहिये, कुछ लोग कालांश के समान दिनों का, कुछ सात दिन का तथा कुछ आचार्य केवल ३ दिन का त्याग करना बताते हैं ॥ १४ ॥

---

१. मु. ग. १४ प्र० ८० श्लो० ।

२. मु. ग. १४ प्र० ८१ श्लो० ।

३. ज्यो. नि. ८० पृ० २ श्लो० ।

माहेश्वरः—

माहेश्वर जी के आधार पर

[1]बालः शुक्रो दिवसदशकं पञ्चकं चैव वृद्धः
पश्चादह्नां त्रितयमुदितः पक्षमैंद्र्यां क्रमेण।
जीवो वृद्धः शिशुरपि सदा पक्षमन्यैः शिशू तौ
वृद्धौ प्रोक्तौ दिवसदशकं चापरैः सप्तरात्रम् ॥ १५ ॥

आचार्य माहेश्वर ने कहा है कि शुक्र का पश्चिम दिशा में उदय होने पर १० दस दिन तक बालत्व व पाँच दिन तक वृद्धत्व और पूर्व दिशा उदय होने पर ३ तीन दिन बालत्व एवं १५ दिन तक वृद्धत्व होता है।

किसी के मत से गुरु का सदा १५ दिन वृद्धत्व व शिशुत्व होता है तथा किसी के मत में १०,१० दिन और अन्यों के मत में ७,७ दिन वृद्धत्व व शिशुत्व होता है ॥ १५ ॥

श्रीपतिः—

श्रीपति जी के आधार पर

प्रागुद्गतः शिशुरहस्त्रितयं सितः स्यात्पश्चाद्दशाहमिह पञ्चदिनानि वृद्धः।
प्राक्पक्षमेव कथितोत्र वसिष्ठमुख्यैर्जीवस्तु पक्षमपि वृद्धशिशुर्विवर्ज्यः ॥१६॥

आचार्य श्रीपति जी ने बताया है कि पूर्व दिशा में शुक्र का उदय होने पर ३ तीन दिन तक व पश्चिम में १० दस दिन तक बालत्व, और वृद्धत्व ५ पाँच दिन तक होता है, किन्तु वसिष्ठ आदि प्रधान मुनियों ने गुरु का १५, १५ दिन बालत्व वृद्धत्व बताया है ॥ १६ ॥

राजमार्तण्डे—

राजमार्तण्ड के आधार पर

बालो दशाहाभ्युदितः परेण पूर्वेण बालो दिवसत्रयं स्यात्।
वृद्धस्तु पूर्वेण तु पक्षमेकं पश्चाद्गतः पञ्च दिनानि शुक्रः ॥ १७ ॥

राजमार्तण्ड में बताया है कि शुक्र का पश्चिम दिशा में उदय होने पर १० दस दिन तक और पूर्व में उदय होने पर ३ तीन दिन तक बालत्व और पूर्व दिशा में १५ दिन एवं पश्चिम दिशा ५ पाँच दिन तक वृद्धत्व होता है ॥ १७ ॥

संहिताप्रदीपे—

संहिता प्रदीप के आधार पर

स्यात्सप्तरात्रं गुरुशुक्रयोश्च बालत्वमह्नां दशकं च वार्द्धम्।
वृद्धौ सितेज्यावशुभौ शिशुत्वे शस्ते यतः स्यादुपचीयमानौ ॥ १८ ॥

---

१. मु. चि. ५ प्र० २८ श्लो० टी० तथा ज्यो. नि. ८० पृ०।

संहिता प्रदीप में बताया है कि गुरु शुक्र उदय के पश्चात् सात ७ दिन तक बालक और अस्त से १० दिन पूर्व से वृद्ध होते हैं। वृद्ध गुरु शुक्र अशुभ तथा बालक शुभ होते हैं। क्योंकि बालक बढ़ते हुए दृष्टि पथ पर आते हैं ॥ १८ ॥

पञ्चदिनानि वसिष्ठः शौनक एकदिनत्रयं गर्गः।
यवनाचार्यमते पञ्चमुहूर्तं भृगुस्त्याज्यः ॥ १९ ॥

वसिष्ठ जी के मत से पाँच दिन, शौनक जी के १ एक दिन, गर्ग जी के ३ तीन दिन और यवनाचार्य के मत में ५ पाँच मुहूर्त तक शुक्र का वृद्धत्व में त्याग करना चाहिए ॥ १९ ॥

बहवो दर्शिताः कालाः ये बाल्ये वार्द्धकेऽपि वा।
ग्राह्यास्तत्राधिकाः शेषाः देशभेदादिनापरे ॥ २० ॥

शुक्र गुरु के बालत्व, वृद्धत्व में बहुत प्रकार के समयों को दिखाया गया है उसमें जो अधिक समय हो, उसका ग्रहण करना अवशेष काल देश विशेष के लिये कहे गये हैं ॥ २० ॥

सिद्धान्तगणितासारौ शुक्रेन्दुकलिता गतिः।
वर्जनीया प्रयत्नेन वृद्धे पञ्च शिशौ त्रयम् ॥ २१ ॥

सिद्धान्त यह है कि शुक्र और चन्द्र की गति का आकलन करके वृद्धत्व में पाँच दिन व शिशुत्व में ३ तीन दिन का त्याग करना चाहिए ॥ २१ ॥

गुरौ भृगौ प्राक्च परा च काले विन्ध्ये दशावन्तिकसप्तरात्रान्।
हूणेषु वङ्गेषु च पञ्चषट्कं शेषे च देशे त्रिदिनं विवर्ज्यम् ॥ २२ ॥
कर्नाटदेशे दिनपञ्च वर्ज्या गुरुः कविर्बालकवृद्धशून्या।
सौराष्ट्रदेशे त्रिदिनं विवर्ज्यं शेषेषु देशे शिवनेत्रसंख्या ॥ २३ ॥

गुरु शुक्र को पूर्व, पश्चिम दिशा में उदय होने पर विन्ध्यदेश में १० दस दिन, उज्जयिनी देश में ७ सात दिन, हूण देश में ५ पाँच और बंगाल में ६ दिन कर्नाटक में ५ पांच दिन का त्याग एवं सौराष्ट्र में ३ तीन दिन और अवशिष्ट देशों में ३ तीन दिन का त्याग गुरु शुक्र के बालत्व वृद्धत्व में करना चाहिए ॥ २२–२३ ॥

ब्रह्मपुराणे—

ब्रह्मपुराण के आधार पर

[1]यदा रवेर्मण्डलमेति काव्यो त्रिनष्टतेजा गुरुरप्यथैवम्।
कालस्य दीक्षाव्रततीर्थयात्रायज्ञोत्सवानां च विनाशकृत्स्यात् ॥ २४ ॥

ब्रह्मपुराण में बताया है जब कि सूर्य के मण्डल में शुक्र आता है तो तेज हीन होता है। इसी प्रकार गुरु भी हततेज होता है। उक्त स्थिति में गुरु या शुक्र दीक्षा, व्रतबन्ध, तीर्थ यात्रा यज्ञ उत्सवों के शुभ समय को नष्ट करने वाला होता है ॥ २४ ॥

---

१. ज्यो. नि. ८१ पृ० ३२ श्लो०।

रत्नकोशे--

रत्नकोश के आधार पर

[1]अस्तमिते भृगुतनये नारी म्रियते बृहस्पतौ पुरुषः ।
दम्पत्योः सह मरणं केतोरुदये करग्रहणे ॥ २५ ॥

रत्नकोश नामक ग्रन्थ में बताया है कि अस्त शुक्र में शादी करने पर स्त्री की, गुरु के अस्त होने पर पुरुष की और केतु के उदय में विवाह होने पर दोनों की मृत्यु होती है ॥ २५ ॥

[2]नष्टे चन्द्रे तथा शुक्रे नष्टे चैव बृहस्पतौ ।
मङ्गलानि तथोद्वाहं त्वरितेऽपि न कारयेत् ॥ २६ ॥

चन्द्रमा, शुक्र, गुरु के अस्त होने पर जल्दी हो तो भी विवाहादि मंगल कार्य नहीं करना चाहिए ॥ २६ ॥

लल्लः--

लल्लाचार्य के आधार पर

शुक्रे नष्टे गुरौ सिंहे गुर्वादित्ये मलिम्लुचे ।
गृहकर्म व्रतं यात्रा मनसापि न चिन्तयेत् ॥ २७ ॥

आचार्य लल्ल ने बताया है कि शुक्र के अस्त होने पर सिंह में गुरु की स्थितिवश गुर्वादित्य और मलमास में गृहप्रवेश, गृहारम्भ, यात्रा, व्रतबन्ध का मनसे भी चिन्तन नहीं करना चाहिए ॥ २७ ॥

वसिष्ठः--

वसिष्ठ जी के आधार पर

शुक्रे चास्तं गते जीवे चन्द्रे वास्तमुपागते ।
तेषां वृद्धे च बाल्ये च शुभकर्म भयप्रदम् ॥ २८ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि शुक्र, चन्द्रमा, गुरु के अस्त में, वृद्धत्व व बालत्व में शुभ काम करने से भय मिलता है ॥ २८ ॥

[3]वृद्धत्वमिन्दोस्त्रिदिनं दिनार्द्धं बालत्वमस्तत्वमहर्द्वयं च ।
अस्ते विधौ मृत्युमुपैति कन्या बाल्येऽन्यसक्ता विधवा च वृद्धे ॥ २९ ॥

चन्द्रमा का तीन दिन वृद्धत्व, आधा दिन बालत्व और दो दिन तक अस्तकाल होता है । चन्द्रमा के अस्तत्व में शादी होने पर कन्या की मृत्यु, बालत्व में परपुरुष से प्रेम और चन्द्रमा के वृद्धत्व में वैधव्यता होती है ॥ २६ ॥

---

१. ज्यो. नि. ८१ पृ० ६ श्लो० ।
२. ज्यो. नि. ८१ पृ० ७ श्लो० ।
३. व० सं० ३२ अ० १३ श्लो० ।

वृद्धशुक्रो हरेत्कन्यां बालशुक्रो हरेत्पतिम्।
वृद्धजीवो हरेत्कन्यां बालजीवो हरेत्पतिम् ॥ ३० ॥

शुक्र के वृद्धत्व में कन्या का, बालत्व में पुरुष का और गुरु के वृद्धत्व में कन्या का तथा बालत्व में पुरुष का मरण होता है ॥ ३० ॥

वादरायणः—

बादरायण के आधार पर

[1]गुरोरस्ते पतिं हन्याच्छुक्रास्ते चैव कन्यकाम्।
चन्द्रे नष्टे उभौ हन्यात्तस्मादस्तं विवर्जयेत् ॥ ३१ ॥

ऋषि बादरायण ने बताया है कि गुरु का अस्त दोष पति का विनाशी और शुक्र के अस्त में विवाह करने पर कन्या का मरण एवं चन्द्रमा के अस्तकाल में विवाह होने पर वर-वधू दोनों का नाश होता है ॥ ३१ ॥

[2]बालभावे स्त्रियं हन्याद्वृद्धभावे नरं तथा।
तस्माद्बाल्ये च वृद्धे च विवाहं नैव कारयेत् ॥ ३२ ॥

गुरु शुक्र के बालत्वकाल में स्त्री का और वृद्धत्व में पुरुष का विनाश होता है। इसलिए बालत्व व वृद्धत्व में विवाह नहीं करना चाहिए ॥ ३२ ॥

कालनिर्णये—

कालनिर्णय के आधार पर

[3]वापीकूपतडागयज्ञगमनं देवप्रतिष्ठा व्रतं
विद्यामन्दिरकर्णवेधनमही दुर्गं वनं सेवनम्।
तीर्थस्नानविवाहशान्तिहवनं मन्त्राग्निदेवेक्षणं
दूरेणैव जिजीविषुः परिहरेदस्तं गते भार्गवे ॥ ३३ ॥

कालनिर्णय नामक ग्रन्थ में बताया है कि वापी, कुआ, तालाब, यज्ञ, यात्रा, देवप्रतिष्ठा, व्रत, विद्यारम्भ, मन्दिर, कर्णवेध, भूमि, किला, वन, सेवा, तीर्थ में स्नान, विवाह, शान्ति, हवन, मन्त्र, अग्नि, देवदर्शन, जीने की इच्छा करने वालों को, शुक्र के अस्त होने पर दूर से ही त्यागना चाहिए ॥ ३३ ॥

प्रदीपे—

प्रदीप के आधार पर

अग्न्याधेयं प्रतिष्ठां नरपतिगमनं चौलकर्माभिषेको
दानं गेहं च विद्याव्रतमखरशनाबन्धमोक्षौ विवाहम्।
यावत्केतूदयस्थः सुरगुरुभृगुजे सूर्यलुप्तेऽधिमासे
नो कार्यं पण्डितेन श्रियमभिलषता देवतीर्थाभियानम् ॥ ३४ ॥

---

१. मु० चिं० १ प्र० ४७ श्लो० पी० टी०।
२. मु० चिं० १ प्र० ४७ श्लो० पी० टी०।
३. मु० चिं० १ प्र० ४७ श्लो० पी० टी० तथा ज्यो० नि० ८१ पृ०।

प्रदीप में कहा है कि अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, राजा के समीप जाना, चौल, अभिषेक, दान, घर, विद्या, व्रत, यज्ञ, मौंजी, बन्धन व मोक्ष, विवाह और देव, तीर्थयात्रा सम्बन्धी काम लक्ष्मी की इच्छा करने वाले विद्वान् को केतु के उदय काल में, अधिक मास एवं गुरु शुक्र के अस्त होने पर नहीं करना चाहिए ॥ ३४ ॥

ज्योतिःप्रकाशे—

ज्योतिष्प्रकाश के आधार पर

वक्रे चैवातिचारे त्रिदशपतिगुरौ दैत्यपूज्ये च लुप्ते
गुर्वादित्येऽधिमासे दिनकरहिमगोः सङ्गमे चैत्रपौषे ।
विष्ट्यां केतूद्गमे वा मकरसुरगुरौ सिंहसंस्थे सुरेज्ये
वर्षात्प्राप्नोति वोढा सुनियतमरणं देवकन्याश्च भर्ता ॥ ३५ ॥

ज्योतिष्प्रकाश में बताया है कि गुरु, शुक्र के वक्र, अतिचार व अस्त में, गुर्वादित्य में, अधिक मास में, सूर्य चन्द्र युति मे, चैत्र व पूस महिने में, भद्रा में, केतु के उदय में या मकर, सिंह में गुरु के रहने पर विवाह हो तो यदि देवता की कन्या हो तो भी एक वर्ष के मध्य में निश्चय मरण होता है ॥ ३५ ॥

[1]दैवज्ञवल्लभे—

दैवज्ञ वल्लभ के आधार पर

नीचस्थे वक्रसंस्थेऽप्यतिचरणगते बालवृद्धेऽस्तगे वा
संन्यासो देवयात्रा व्रतविषयविधिः कर्णवेधस्तु दीक्षा ।
मौञ्जीबन्धोऽङ्गनानां परिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा
वर्ज्याः सद्भिः प्रयत्नात्त्रिदशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते च ॥ ३६ ॥

दैवज्ञ वल्लभ नामक ग्रन्थ में कहा है कि गुरु शुक्र के नीच, सिंह, वक्र, अतिचार, बाल, वृद्ध या अस्तकाल में संन्यास, तीर्थयात्रा, व्रत विषयक विधि, कन्या का विवाह, वास्तु, देवप्रतिष्ठा सम्बन्धी काम अच्छे लोगों को नहीं करना चाहिए ॥ ३६ ॥

अस्तं प्रयाते च गुरौ भृगौ वा सूर्ये निरंशे हिमगौ च नष्टे ।
न कूपवाप्योद्वहनादिकर्म शुभं प्रदिष्टं नच वाटिकादेः ॥ ३७ ॥

गुरु या शुक्र के अस्त में, निरंश सूर्य में, चन्द्रमा के अस्त होने पर, कुआ, वापी, विवाह और बगीचा सम्बन्धी कार्य करने पर शुभ नहीं होता है ॥ ३७ ॥

अस्तगे च गुरौ शुक्रे बाल्ये वृद्धे मलिम्लुचे ।
उपनयनमुपाकर्म व्रतानां नैव कारयेत् ॥ ३८ ॥

गुरु शुक्र के अस्त, बाल-वृद्धत्व में तथा अधिक मास में यज्ञोपवीत, उपाकर्म और व्रत सम्बन्धी काम नहीं करना चाहिए ॥ ३८ ॥

अस्तापवादः—

अब आगे किन-किन कार्यों में अस्त दोष नहीं होता है इसे विविध ग्रन्थों के वाक्य से बताते हैं ।

---

१. मु० चिं० १ प्र० ४७ श्लो० पी० टी० लल्ल के नाम से उद्धृत है ।

गर्गः—

गर्गजो के आधार पर

नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके ।
वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ॥ ३९ ॥

ऋषि गर्ग ने बताया है कि दैनिक यात्रा, पुराना मकान बनाना, अन्न प्राशन, वस्त्रधारण, वधू प्रवेश रूपी मांगलिक कामों में गुरु, शुक्र का मौढ्य (अस्त) दोष नहीं होता है ॥ ३९ ॥

गुरुः—

गुरु के आधार पर

कंटके समये याने राजदुर्भिक्षपीडिते ।
समूलतूलयात्रायां शुक्रदोषो न विद्यते ॥ ४० ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है अशान्तिकाल में भागने में, राज्य में दुर्भिक्ष होने पर और समूह के साथ व्यापार सम्बन्धी यात्रा में शुक्र का दोष नहीं होता है ॥ ४० ॥

चतुष्पदां विशेषेण न दोषः शुक्रगोचरः ।
सिते स्वतुङ्गे स्वक्षेत्रे युते दोषो न विद्यते ॥ ४१ ॥

विशेषकर पशु सम्बन्धी कामों में शुक्र का दोष दृष्टि पथ पर नहीं आता है और शुक्र जब अपनी राशि या उच्च में होता है तो दोष का अभाव होता है ॥ ४१ ॥

उत्सवेषु च सर्वेषु सीमन्तऋतुकर्म च ।
सुरासुरेज्ययोश्चैव चातुर्मास्यव्रतेषु च ॥ ४२ ॥

और भी समस्त-उत्सवों में सीमन्त, ऋतु काम (आद्य रज), चातुर्मास्य आदि व्रतों में गुरु शुक्र का मौढय दोष नहीं होता है ॥ ४२ ॥

धर्मप्रदीपे—

धर्मप्रदीप के आधार पर

[1]गोदावर्यां च गंयायां श्रीशैले ग्रहणद्वये ।
अयने विषुवे चैव मौढ्यदोषो न विद्यते ॥ ४३ ॥

धर्मप्रदीप में कहा है कि गोदावरी, गंगा, श्रीपर्वत में, सूर्य, चन्द्रग्रहण, दोनों अयन, विषुव संक्रान्ति में अस्त दोष नहीं होता है ॥ ४३ ॥

संहितासारे—

संहिता सार के आधार पर

यदास्तमायाति गुरुर्भृगुर्वा वार्द्धं च बालत्वमकीर्णजातेः ।
चौलादिकार्याणि शुभानि न स्युः सङ्कीर्णजातेस्तु शुभावहानि ॥४४॥

---

१. ज्यो० नि० ८१ पृ० ४ श्लो० ।

संहिता सार में कहा है कि जब गुरु या शुक्र अस्त हो या वृद्ध, बाल हो तो अकीर्णं जाति के लोगों को शुभ काम नहीं करना और संकार्णं जाति के लिए करने पर शुभ होता है ॥ ४४ ॥

तीर्थादौ निषेधः—

अब आगे तीर्थादि में जाने का निषेध बताते हैं।

कालनिर्णये—

कालनिर्णय के आधार पर

[1]नष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च वृहस्पतौ।
कार्या चैव स्वदेव्यर्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः ॥ ४५ ॥

कालनिर्णय में बताया है कि शुक्र व गुरु के अस्त होने पर और सिंह में वृहस्पति के होने पर भी अपनी कुल देवी की पूजा प्रतिवर्ष वंश की परम्परा के अनुसार करनी चाहिए ॥ ४५ ॥

बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे चास्तमुपागते।
मलमास इवैतानि वर्जयेद्दैवदर्शने ॥ ४६ ॥

शुक्र गुरु के बालत्व या वृद्धत्व या अस्तकाल में तथा मलमास में देवदर्शन नहीं करना चाहिए ॥ ४६ ॥

[2]व्यासः—

व्यासजी के आधार पर

अधिमासे च जन्मर्क्षे नष्टयोर्गुरुशुक्रयोः।
तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना ॥ ४७ ॥

ऋषि व्यास ने बताया है कि अधिक मास, जन्म नक्षत्र, गुरु शुक्र के अस्तकाल में गया तथा गोदावरी तीर्थ को छोड़कर अन्य तीर्थ की यात्रा नहीं करना चाहिए ॥४७॥

[3]प्रेतमञ्जर्याम्

प्रेतमञ्जरी के आधार पर

प्रेतकार्याणि सर्वाणि व्रतस्नानजपादिकम्।
वर्ज्यं शुक्रेज्ययोरस्ते गयां गोदावरीं विना ॥ ४८ ॥

प्रेतमञ्जरी में कहा है कि समस्त प्रेतक्रिया, व्रत, स्नान, जप आदि कर्म गया व गोदावरी को छोड़कर शुक्र-गुरु के अस्त में नहीं करना चाहिये ॥ ४८ ॥

ज्योतिर्विदाभरणे—

ज्योतिर्विदाभरण के आधार पर

न तीर्थकामः सति पाणिजायुधेऽनृजौ शिशौ वृद्धघने च नीचगे।
नरोऽमराच्यें गमनं प्रकारयेद्विनैव कुम्भस्थलगौतमीगया ॥ ४९ ॥

---

१. ज्यो० नि० ८१ पृ० ६ श्लो०। २. ज्यो० नि० ८१ पृ० २ श्लो०।
३. ज्यो० नि० ८२ पृ० ८ श्लो०।

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है कि गुरु के वक्र, शिशुत्व, वृद्धत्व, नीच व अस्त में देवपूजनजन्य यात्रा कुम्भस्थल, गौतमी व गया को छोड़कर नहीं करनी चाहिये ॥ ४९ ॥

[1]तीर्थखण्डे—

तीर्थ खण्ड के आधार पर

गुरुशुक्रास्तादिदोषः प्रोक्तो यस्तीर्थयात्रिणाम् ।
अपूर्वयायिनामेव नत्वसौ पूर्वगामिनाम् ॥ ५० ॥

तीर्थखण्ड में बताया है कि यात्रा करने वालों के लिए जो गुरु-शुक्र का अस्त दोष बतलाया है, वह पहिले-पहिले जाने वालों के लिए ही है दुबारा जाने में दोष नहीं होता है ॥ ५० ॥

आवश्यके शान्तिः—

अब आगे आवश्यकता होने पर शान्ति करनी चाहिये, यह बताते हैं ।

गुरुः—

गुरु के आधार पर

आवश्यकेषु कार्येषु राज्ञां तत्कर्मकारिणाम् ।
विवाहादीनि कुर्वीत मौढ्येऽपि गुरुशुक्रयोः ॥ ५१ ॥

बृहस्पतिजी ने बताया है कि अत्यधिक शुभ काम की आवश्यकता हो तो राजा व उसके सेवकों को गुरु-शुक्र के अस्त में भी शुभ काम करना चाहिये ॥ ५१ ॥

शान्ति कृत्वा तयोस्तद्वच्छुक्रदेवेन्द्रमन्त्रिणः ।
होमैर्दानैर्जपैर्वापि तयोरुक्तैश्च मन्त्रकैः ॥ ५२ ॥

उन दोनों की शान्ति हवन, दान व जप से उनके मन्त्रों से करके शुभ काम करना चाहिये ॥ ५२ ॥

वैदिकमन्त्रैर्यथाविधिगुरुशुक्रयोः शान्ति कृत्वा विवाहादि कुर्यात् ।

अर्थात् वैदिक रीति से गुरु-शुक्र की शान्ति करके शुभ काम करना चाहिये ।

इति श्रीमद्गयादत्तज्योतिर्विदात्मजरामदीनज्योतिर्वित्कृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने सप्तचत्वारिंशं गुरुशुक्रयोरस्तादिविचारप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पण्डित गयादत्तजी के पुत्र पण्डित रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का सैंतालीसवां गुरु-शुक्र अस्तादि का प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४७ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मज मुरलीधर चतुर्वेदकृत बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रहग्रन्थस्य सप्तचत्वारिंशत्प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ४७ ॥

---

१. ज्यो० नि० ८२ पृ० २ श्लो० ।

अथाष्टचत्वारिंशं देशाचारप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अथ शास्त्रार्थशिष्टाचारप्रमाणविचारः—

अब आगे अड़तालीसवें प्रकरण में देशाचार की प्रधानता शास्त्र से बताते हैं ।

[1]शास्त्रार्थाद्बलवान् शिष्टाचारोऽत्र बहुसम्मतम् ।
शिष्टाचारस्य कालेन विलुप्ताः श्रुतयो यथा ।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि शास्त्रीय आदेश से शिष्टाचार बली होता है, इसे प्रायः अधिक लोग मानते हैं । सभी शिष्टाचार श्रुतियों के आधार पर ही चलते हैं किन्तु कालक्रम से श्रुतियों का कुछ भाग लोप हो गया है जिससे उन शिष्टाचारों का मूल नहीं मिलता ।

महाभारते—

महाभारत के आधार पर

[2]तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥ १ ॥

महाभारत में कहा है कि श्रुतियां अलग-अलग हैं । एक मुनि है नहीं, जिसका वाक्य प्रमाण माना जाय और धर्म का तत्त्व गूढ़ है । इसलिए अधिक लोग जिस मत का आदर करें, उसी का समादर करना चाहिये ॥ १ ॥

[3]भगवद्गीतायाम्—

भगवद्गीता के आधार पर

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि अच्छे लोग जो-जो आचरण करते हैं तो अन्य लोग भी वैसा ही करते हैं तथा वह श्रेष्ठ पुरुष जो-जो प्रमाण प्रस्तुत करता है अन्य भी वही प्रमाण मानते हैं ॥ २ ॥

कात्यायनसूत्रे—

कात्यायन सूत्र के आधार पर

विवाहश्मशानयोर्ग्रामं प्रविशता तस्मात्तयोर्ग्रामः प्रमाणमिति श्रुतेः ।

कात्यायन सूत्र में कहा है कि विवाह व श्मशान के लिए गांव में प्रवेश करने वाले को ग्राम प्रमाण है, यह श्रुति (वेद) वचन है ।

---

१. ज्यो० नि० १०५ पृ० १ श्लो० ।
२. ज्यो० नि० १०५ पृ० ७ श्लो० । ३. ३ अ० २१ श्लो० ।

कारिकायाम्--

कारिका के आधार पर

[1]प्रमाणं ग्रामवचनं विवाहादौ तथात्यये।
यतः परम्परायातं धर्मं विन्दन्ति ते खलु ॥ ३ ॥

कारिका में कहा है कि विवाह व मरण में ग्राम में प्रवेशकर्ता को ग्राम प्रमाण होता है, क्योंकि वे दोनों परम्परागत धर्म को जानने वाले हैं।

[2]संहिताप्रदीपे--

शास्त्रोत्थितोऽर्थोपि न च प्रमाणं स्त्रीशूद्रगोपा अपि यं वदन्ति।
यथा हि भाण्डोत्कृषणो न रात्रौ भवेत्पशूनां किल मूर्ध्नि पीडा ॥ ४ ॥

शास्त्रोक्त अर्थ ही सर्वत्र प्रमाण नहीं होता सभी स्त्री, शूद्र, ग्वाले आदि अपढ़ व्यक्तियों द्वारा मानी गई परम्परा भी प्रमाण होती है जैसे रात में तवा मांजने से पशुओं में रोग होता है ॥ ४ ॥

[3]स्मृत्यन्तरे--

स्मृत्यन्तर के आधार पर

सोऽनुष्ठोयो भवेद्धर्मो यो लोकश्रुतिसम्मतः।
शास्त्रशिष्टविरुद्धस्तु धर्मस्त्याज्यो बुधैः सदा ॥ ५ ॥

स्मृत्यन्तर में कहा है कि उसी धर्म का आचरण करना चाहिये, जो कि शास्त्र व परम्परा से सम्मत होता है और शास्त्र व लोक के विपरीत हो, उसका सब समय त्याग करना चाहिये ॥ ५ ॥

[4]कुलस्य देशस्य च चित्तवृत्तिर्न खण्डनीया विदुषा कदाचित्।
यो लोकशास्त्रानुमतः स्वधर्मो लोको बलीयाननयोर्विरोधे ॥ ६ ॥

कुल तथा देश की चित्तवृत्ति का खण्डन विद्वान् पुरुष को कभी नहीं करना चाहिये तथा लोक (परम्परा) व शास्त्र सम्मत ही अपना धर्म स्वीकार करना एवं दोनों में विरोध हो तो वंश परम्परा के अनुसार अपना धर्म मानना चाहिये ॥ ६ ॥

बृहज्ज्योतिषार्णवे--

ज्योतिषार्णव के आधार पर

देशाचारः कुलाचारो जात्याचारो विशेषतः।
कर्तव्यो विदुषा तत्र सारासारं विचार्य च ॥ ७ ॥

ज्योतिषार्णव ग्रन्थ में बताया है कि देश का, कुल का और जातीय आचरण विशेष तथा विद्वान् जन को सार व असार का विचार करके करना चाहिये ॥ ७ ॥

---

१. ज्यो० नि० १०५ पृ० ३ श्लो०। २. ज्यो० नि० १०५ पृ० श्लो०।
३. ज्यो० नि० १०५ पृ० ५ श्लो०। ४. ज्यो० नि० १०५ पृ० ६ श्लो०।

[1]बृहत्संहितायां वाराहः—

वराह मिहिर के आधार पर

देशाचारस्तावदादौ विचिन्त्यो देशे देशे या स्थितिः सैव कार्या।
लोके दुष्टं पण्डिता वर्जयन्ति दैवज्ञोऽतो लोकमार्गेण यायात् ॥ ८ ॥

बृहत्संहिता नामक अपने ग्रन्थ में वराह ने बताया है कि प्रथम देशाचार का विचार करके देश-देश में जैसी-जैसी स्थिति हो, वैसा-वैसा वहाँ करना, क्योंकि लोक के विपरीत पण्डित समुदाय उसका त्याग करके लोकमार्ग का ही अनुसरण करते हैं। इसलिए ज्योतिषी को भी लोकशास्त्र का अनुसरण करना चाहिये ॥ ८ ॥

अन्यः—

अन्य के आधार पर

लोकविद्विष्टमस्वर्ग्यं धर्म्यमप्याचरेन्न तु।
शिष्टाचारविरुद्धत्वादातिथ्ये गोवधो यथा ॥ ९ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि लोक से विरुद्ध व स्वर्ग को न देने वाले धर्म का कभी आचरण नहीं करना चाहिये। जैसे अतिथि सत्कार के लिए किये हुए गाय के वध में पाप नहीं माना जाता॥ ९ ॥

देशान्तरलक्षणमाह—

अब आगे देशान्तर के लक्षणों को बताते हैं।

देशान्तर का लक्षण

भाषाभेदविभेदाभ्यां यत्र स्यान्मध्यमो गिरिः।
महापगा यत्र गा च स वै देशान्तरं विदुः ॥ १० ॥

जहाँ भाषा का भेद-विभेद हो मध्य में जहाँ पर्वत और गंगा नदी हो, वही भूमि देशान्तर कहना चाहिये ॥ १० ॥

श्रीपतिः—

श्रीपतिजी के आधार पर

शास्त्रस्वरूपं बहवोऽप्यबुध्वा वदन्ति यच्चानुमितं हितं नः।
देशं गतोऽप्येकविलोचनानां निमील्य नेत्रं निविशेन्मनीषी ॥ ११ ॥

अधिक लोग शास्त्रादेश की अपेक्षा शिष्टाचार को ही प्रमाण मानते हैं, अतः बुद्धिमान् को उसी प्रकार आचरण करना चाहिये। जैसे काने (एक आँख वाले) लोगों के प्रदेश में जाने पर दो आँख वाले को भी अपनी एक आँख बन्द कर लेनी चाहिये अन्यथा वे दुश्मन हो जायेंगे ॥ ११ ॥

बृहस्पतौ गोचरशोभनस्थे विवाहमिच्छन्ति हि दाक्षिणात्याः।
रवौ शुभस्थे प्रवदन्ति गौडा नागोचरो मालवके प्रमाणम् ॥ १२ ॥

---

१. ज्यो० नि० १०६ पृ० ८ श्लो०।

दाक्षिणात्य लोग गुरु जब गोचर में शुभ स्थान में होता है तो विवाह श्रेष्ठ मानते हैं और गौड लोग शुभस्थ सूर्य में, एवं मालवा देश में गोचर की प्रमाणता नहीं मानते हैं ॥ १२ ॥

गौडाः सूर्यं गोचरेण प्रशस्तं वाञ्छत्यार्यं दाक्षिणात्या विवाहे।
लाटाः प्रायः स्थानवीर्याश्रिताः स्युरावन्त्यानां गोचरेण प्रमाणम् ॥ १३ ॥

गौडजन विवाह में गोचर से सूर्य की और दाक्षिणात्य लोग गुरु की, लाटदेशीय स्थान बल की और अवन्ति देशवासी गोचर की प्रधानता मानते हैं ॥ १३ ॥

चण्डेश्वरः—

चण्डेश्वर के आधार पर

भौमप्रशस्ते यमुनातटोद्भवा हिमालयस्थाः शशिजे शुभर्क्षगे।
कैलासदेशप्रभवाः शनैश्चरे भृगोः सुते सागरसन्निवेशाः ॥ १४ ॥
गौडेऽमरेज्यार्कशशाङ्कशुद्धौ बुधस्य चैकस्य च कामरूपे।
कर्नाटलाटाङ्गकलिङ्गदेशे जीवस्य चात्युन्नतिदो विवाहः ॥ १५ ॥

आचार्य चण्डेश्वर ने बताया है कि श्री यमुनाजी के किनारे पैदा होने वाले मंगल की शुभता, हिमालय प्रदेशीय शुभ राशि में बुध की, कैलासवासी शनैचर की, समुद्रतटीय लोग शुक्र की, गौडदेशीय गुरु. सूर्य, चन्द्रमा की, कामरूप वाले केवल बुध की, कर्नाटक, लाट, अंग, कलिङ्ग देशीय गुरु की शुद्धि से विवाह शुभ मानते हैं ॥ १४-१५ ॥

ज्योतिर्विदाभरणे कालिदासः—

ज्योतिर्विदाभरण के आधार पर

कुमारिकामण्डलवासि माथुरा नयन्ति पाणिग्रहमुत्तमं नराः।
मध्यं जनस्थानमुखान्ध्रमालवाः परेऽधमं दुष्टकलौ निसर्गतः ॥ १६ ॥

ज्योतिर्विदाभरण में कहा है कि कुमारिका क्षेत्र व माथुर मण्डल में उत्तम विवाह की, गोदावरी के तट पर महाराष्ट्र, द्रविड, आन्ध्र व मालवा में मध्यम की और इनसे भिन्न देशवासियों में अधम विवाह की प्रथा इस दुष्ट कलियुग में स्वभाव से ही है ॥ १६ ॥

अदन्ति गौडाः पललं च पञ्चमान् पञ्चालकन्या कुरुते धवानपि।
कर्नाटके गोगमनं च धर्षणी सिन्धौवशा वाडवहाद्रिखण्डवित् ॥ १७ ॥

गौडदेशीय मांस खाते हैं, पांचाल देश की कन्या पाँच पति करती हैं. कर्नाटक में गाय के ऊपर बैठकर गमन करते हैं, सिन्धुदेश में स्त्री असती होती है और झारखण्ड के लोग ब्राह्मण का वध करने वाले होते हैं ॥ १७ ॥

मृतासुपा देवरचारिणी मरौ सौराज्यके च प्रमदा रजोवती।
अदोषमान्या मरुमत्स्यमानवैः कन्यार्थभुग्गुर्जरदेशगो जनः ॥ १८ ॥

मरु देश में पति के मरने पर स्त्री देवर से शादी करती है। सौराष्ट्र में तथा मरु कच्छ में मासिकधर्म से युक्त स्त्री दोष युक्त नहीं होती और गुजरातवासी बेटी के धन को खाने वाले होते हैं ॥ १८ ॥

एकागमे दक्षिणवासिनो जना विवाहमिच्छन्ति कुरौ च शस्त्रिणः ।
सद्राविणान्ध्रा श्रुतिधर्मचारिणः स्वनामपुत्राद्गतमङ्गला क्वचित् ॥ १९ ॥

दक्षिण देशवासी एक गोत्र में विवाह की इच्छा करते हैं, कुरु देश में शस्त्र के साथ विवाह हो जाता है वेदानुकूल आचरण करनेवाले भी द्राविण व आंध्रवासी अपनी बहिन के पुत्र के साथ विवाह करते हैं ॥ १९ ॥

पुराणवेदस्मृतिधर्मतो वहिर्धर्मोऽयमत्र प्रतिपादनीयः ।
शास्त्रप्रमाणादपि लोकधर्मप्रमाणमेतद्वलवत्तदादरात् ॥ २० ॥

पुराण, वेद, स्मृति धर्म से यह अलग तद्देशीय धर्म बताया है। इसका संसार में उपयोग करना चाहिये। शास्त्रीय धर्म से देशीय धर्म बड़ा होता है क्योंकि उन देशों में उक्त धर्मों का समादर होता है ॥ २० ॥

स्याद्देशकालः प्रबलस्तु शास्त्रादतः स कार्यः खलु सज्जनानाम् ।
तद्देशदोषान्परिवर्जयन्ति मनीषिणो दैवविदः प्रयोगात् ॥ २१ ॥

देशीय आचार शास्त्रीय आचरण से बली होता है इसलिये सज्जनों को उसका आचरण करना चाहिये एवं विद्वान् ज्योतिषी उक्त देशीय दोषों का प्रयोग से त्याग करते हैं ॥ २१ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृतसंग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने
अष्टचत्वारिंशं देशाचरणप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्त जी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नामक संग्रह ग्रन्थ का देशाचरण नाम वाला अड़तालीसवां ४८ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेव चतुर्वेदात्मक मुरलीधर चतुर्वेद विहिता बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थस्याष्टचत्वारिंशत्प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका पूर्तिमगात् ॥ ४८ ॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमं संस्कारप्रकरणं प्रारभ्यते ।

स च संस्क्रियते अनेनेति व्युत्पत्त्या आत्मनः शुद्धिविशेषयोग्यतासम्पादक इति लभ्यते । अथ सर्वक्रियाकर्माधिकारिता संस्कारस्य तज्जाते अर्थादेव सर्वाधिकारसिद्धिर्निष्पन्ना भवतीति तदारभ्यते । ते च गर्भाधानादि उत्तरक्रिया-पर्यन्तं षोडश सन्ति ।

अब आगे उनचासवें प्रकरण में संस्कार किसे कहते हैं और ये कितने होते हैं अर्थात् विप्रादि वर्णों में कितने किये जाते हैं इत्यादि बताते हैं ।

जिस कार्य से मनुष्य को संस्कृत (शुद्ध) किया जाय वह अर्थात् आत्मा की शुद्धि के लिये जो विशेष क्रिया की जाय वह संस्कार नाम से पुकारा जाता है ।

इससे ही समस्त क्रियाओं का संपादन करने की शक्ति व अधिकार मिलता है । सारांश यह है कि असंस्कारी के किसी काम में सफलता नहीं होती है । वे संस्कार गर्भाधान से लेकर उत्तर क्रिया पर्यन्त सोलह होते हैं ।

(अर्थात् श्रुति व स्मृति में प्रतिपादित जिन कर्मों से मानव को संस्कृत किया जाता है वे कर्म संस्कार नाम से कहे जाते हैं)

षोडशसंस्काराणां नामानि व्यासः—

व्यास जी के आधार पर सोलह संस्कारों के नाम

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च ।
नामक्रिया निष्क्रमणोऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥ १ ॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः ।
केशान्तःस्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः ॥ २ ॥
त्रेताग्निसङ्ग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः ॥ ३ ॥

व्यासजी ने बताया है कि १ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमन्त, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ निष्क्रमण, ७ अन्नप्राशन, ८ मुण्डन, ९ कर्णवेध, १० व्रतादेश, ११ वेदारम्भ, १२ केशान्त, १३ स्नान (विद्यास्नान, व्रतस्नान) १४ विवाह १५ अग्निपरिग्रह और त्रेताग्निपरिग्रह १६ ये सोलह संस्कार हाते हैं ॥ १–३ ॥

संस्कार भास्कर में कहा है 'गर्भाधानमतश्च पुंसवनकं सीमन्तजाताभिधे, नामाख्यं सह निष्क्रमेण च तथाऽन्नप्राशनं कर्म च । चूडाख्यं व्रतबन्धकोऽप्यथ चतुर्वेदव्रतानां पुरः केशान्तः सविसर्गकः परिणयः स्यात् षोडशी कर्मणाम्' (मु० पा० ७१ पृ०) ॥१–३॥

विशेष--मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूष धारा टीका से स्पष्ट मालूम होता है कि संस्कार ४८ होते हैं। उनमें भी विशेष संस्कार आचरणीय होते हैं। इस युग में इन सोलहों में भी कुछ मुख्य दिखाई पड़ रहे हैं ॥ १-३ ॥

शूद्रस्य द्वादश संस्कारा उक्ताः।

शूद्र लोगों में १२ बारह ही संस्कार होते हैं। इसे बताते हैं।

वेदव्रतोपनयनं महानाम्नी महाव्रतम्।
विना द्वादश शूद्राणां संस्कारान्तममन्त्रतः ॥ ४ ॥

व्यास जी ने बयाया है कि शूद्र जन के १ वेद व्रत, २ उपनयन, ३ महानाम्नी और ४ महाव्रत इन चारों को छोड़कर १२ बारह संस्कार विना मन्त्र के होते हैं ॥ ४ ॥

कारिकायाम्--

कारिका के आधार पर

जातकर्मादिकाः स्त्रीणां चूडाकर्मान्तिकाः क्रियाः।
तूष्णीं होमे तु मन्त्रः स्यादिति गोभिलभाषितम् ॥ ५ ॥

कारिका में बताया है कि स्त्रियों के जातकर्म से लेकर चूडाकर्म तक संस्कार विना मन्त्र के होते हैं केवल होम समंत्रक होता है। ऐसा गोभिल ऋषि का कहना है ॥ ५ ॥

तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः।
नवैताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्ज्यक्रियाः स्त्रियः ॥ ६ ॥

उक्त संस्कारों की क्रिया चुप रह कर और मन्त्र के विना गर्भाधान से कर्णवेध तक करना। तथा विवाह स्त्रियों का मन्त्र के साथ करना चाहिए ॥ ६ ॥

विवाहो मंत्रतस्तस्याः शूद्रस्यामंत्रतो दश ॥ ७ ॥

स्त्री का विवाह समन्त्रक और शूद्रों का मन्त्र रहित १० दस संस्कार करना चाहिए ॥ ७ ॥

शार्ङ्गधरस्तु--

शारंगधर के आधार पर

द्विजानां षोडशैव स्युः शूद्राणां द्वादशैव हि।
पञ्चैव मिश्रजातीनां संस्काराः कुलधर्मतः ॥ ८ ॥

ऋषि शारंगधर ने बताया है कि द्विज जाति के १६ सोलह, शूद्र के १२ बारह और मिश्रित जाति के लोगों में वंश परम्परा के वश ५ पांच ही संस्कार होते हैं ॥८॥

तत्रादौ गर्भाधानम् तच्च स्त्रीणां यौवनाविर्भाव एव भवति।

अब आगे प्रथम गर्भाधान संस्कार जो कि स्त्रियों की यौवनावस्था प्रारंभ होते ही होता है, इसे बताते हैं।

तदुक्तं विधानपारिजाते—

पहिले विधान पारिजात के आधार पर

नाभिमूले स्थितं पुष्पं चतुर्दलसमन्वितम्।
तस्मिन्सर्वाश्च दधते गर्भसम्भवकारणम् ॥ ९ ॥
अधोमुखं स्थितं स्त्रीणां बाल्ये तु मुकुलीकृतम्।
बाल्यात्परं वयःप्राप्तौ मुकुलं विकसद्भवेत् ॥ १० ॥

विधान पारिजात में कहा है कि चार दलों से युक्त नाभि के मूल में पुष्प रहता है। उसी में समस्त स्त्रियाँ गर्भ के संभव के कारण को धारण करती हैं। और यह बाल्य काल में चतुर्दल गर्भाशय नीचे मुख करके बन्द रहता है तथा बाल्य काल के पश्चात् युवा अवस्था आने पर विकसित (खुल) हो जाता है ॥ ९-१० ॥

उत्फुल्ले कुसुमे स्त्रीणां स्वभावेन भवेद्रजः।
तदाप्रभृति सर्वासां मासि मासि ऋतुर्भवेत् ॥ ११ ॥

जब स्त्रियों का यह पुष्प खिल जाता है तो उससे स्वभावतः रजः स्राव होता है और तब से यह ऋतुधर्म प्रत्येक मास में होता रहता है ॥ ११ ॥

वसिष्ठेन द्वादशाब्दे रजोदर्शनं सोपपत्तिकं निरूप्यते।

ऋषि वसिष्ठ ने बारह वर्ष होने पर कन्या के यह होता है ऐसा बताया है।

ऋषि वसिष्ठ के आधार पर

[1]सोमात्मिकाः [2]स्त्रियः सर्वाः पुरुषा भास्करात्मकाः।
तस्माच्चन्द्रवशात्तासां तेषां सर्वं हि सूर्यतः ॥ १२ ॥

ऋषिवसिष्ठ ने बताया है कि स्त्रियाँ चन्द्रात्मक और पुरुष सूर्यात्मक होता है। इसलिये चन्द्र के वश से स्त्रियों में रज और पुरुषों को सूर्यात्मक होने से वीर्य होता है ॥ १२ ॥

[3]अर्कान्मुक्तः शशी यद्वद्द्वादशांशादुदेष्यति।
रजोदर्शनमप्यासां द्वादशाब्दे स्वजन्मतः ॥ १३ ॥

जिस प्रकार सूर्य से १२ बारह अंश आगे होने पर चन्द्रमा का उदय होता है। उसी प्रकार बारहवें वर्ष में जन्म से स्त्रियों में रजोदर्शन देखा जाता है ॥ १३ ॥

विशेष—प्रकाशित वसिष्ठ संहिता में 'अर्कान्मुक्तः, द्वादशांशैश्च जन्मतः' यह पाठ है ॥ १३ ॥

बृहस्पतिनापि—

बृहस्पति जी के भी आधार पर

असृग्यद्योनिसम्भूतं तदार्तवमिति स्मृतम्।
ततस्त्वृतुमती नारी नाम्ना यापि भवेत्स्वयम् ॥ १४ ॥

---

१. व० स० २४ अ० १ श्लो०। २. क्रिया मा० में है।
३. व० स० २४ अ० २ श्लो०।

ऋषि बृहस्पति जी ने बताया है कि स्त्रियों के गर्भाशय से जो रुधिर निकलता है, उसे ऋतु कहते हैं। और प्रथम ऋतु काल से यह प्रतिमास होने पर स्त्री ऋतुमती नाम से कही जाती है ।। १४ ।।

अन्यदपि—

ग्रन्थान्तर से भी

प्राप्ते च द्वादशे वर्षे याता कन्या रजस्वला।
[1]वर्षाद्द्वादशकादूर्ध्वं यदि पुष्पं बहिर्न हि ।। १५ ।।
अन्तः पुष्पं भवत्येव पनसोदुम्बरादिवत् ।। १६ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि कन्या बारह वर्ष की होने पर रजस्वला होती है। यदि बारहवें वर्ष के बाद रज बाहर नहीं निकलता है तो अन्तः अर्थात् कटहल व गूलर के फल की भाँति भीतर ही समझना चाहिए ।। १५-१६ ।।

अथ प्रथमार्तवे मासफलम्—

अब आगे प्रथम रजोदर्शन जिस मास में होता है बताते हैं।

प्रथम ऋतु काल में मासों का फल

[2]चैत्रे स्यात्प्रथमर्तौ तु नारी वैधव्यभागिनी।
वैशाखे धनपुत्राढ्या ज्येष्ठे रोगान्विता भवेत् ।। १७ ।।
आषाढे च मृतापत्या श्रावणे च धनान्विता।
भाद्रपदे दुर्भगा च आश्विने च तपस्विनी ।। १८ ।।
ऊर्जे चाल्पायुषी नारी मार्गशीर्षे बहुप्रजा।
पौषे तु पुंश्चली नारी माघे पुत्रान्विता भवेत् ।। १९ ।।
फाल्गुने श्रीमती नारी क्रमान्मासफलं स्मृतम् ।। २० ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि यदि कन्या चैत मास में प्रथम मासिक धर्म से युक्त होती है तो विधवा, बैशाख में धन पुत्र से युक्त, जेठ में रोगिणी, आषाढ में मृत संतान वाली, सावन में धन से युक्त, भादों में भाग्य से हीन दुःखी, आश्विन में तपस्विनी, कार्तिक में अल्प आयु वाली, अगहन में अधिक संतान वाली, पूस में वेश्या, माघ में पुत्रवती और फागुन मास में पहिले पहिले रजस्वला होने पर कन्या धनवती होती है। यह क्रम से १२ बारह मासों में ऋतुमती होने का फल होता है ।। १७-२० ।।

विशेष—मुहूर्तचिन्तामणि ५ प्रकरण के १ श्लो० की पी० टी० में प्रथम श्लोक तो यथावत् स्मृति चन्द्रिका के नाम से उद्धृत है और अन्यों में पाठान्तर इस प्रकार से है 'शुचौ मृतप्रजा प्रोक्ता श्रावणेधनधान्यदा। नभस्ये दुर्भगा क्लिष्टा ऊर्जेचायुष्मती नारी माघे पुत्रसुखान्विता। फाल्गुने श्रीमती साध्वी....' यह पाठान्तर है ।। १७-२० ।।

---

१. मु० चि० ५ प्र० १ श्लो० पी० टी० में 'कश्यप संहिता' के नाम से है।
२. मु० चि० ५ प्र० १ श्लो० पी० टी० १७-२१ तक 'स्मृति चन्द्रिका' के नामसे है।

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'प्रथमतौ मघौ नारी विधवा भवति ध्रुवम्। माद्रे तु दुर्भगा नारी, पुष्ये तु पुंश्चली, माघे पुत्रसुतान्विता । यह पाठान्तर के साथ है ॥ १७-२० ॥

अथ पक्षफलम्--

पक्ष में होने का फल

[1]शुक्लपक्षे सुशीला स्यात्कृष्णे तु कुलटा भवेत् ।
कृष्णस्य दशमी यावन्मध्यमं फलमादिशेत् ॥ २१ ॥

यदि शुक्ल पक्ष में प्रथम ऋतुमती होती है तो सुशीला और कृष्ण पक्ष में वेश्या तथा कृष्ण पक्ष की दशमी तक होने पर मध्यम फल होता है ॥ २१ ॥

एवं मु. चि. में 'आद्यं रजः शुभं माघमार्गराधेफाल्गुने । ज्येष्ठश्रावणयोः शुक्ले-सद्वारे' (५ प्र० १ श्लो०) ॥ १७-२१ ॥

मुहूर्तगणपति में कहा है 'वैशाखे फाल्गुने माघे मार्गाख्यश्रवणाश्विने । पक्षे शुक्ले शुभाहे च' (१४ प्र० १ श्लो०) ॥ १७-२१ ॥

और भी ज्योतिष सार में कहा है 'आर्तवं प्रथमं चैत्रे वैधव्यं जायते ध्रुवम् । वैशाखे धनवृद्धिः स्याज्ज्येष्ठे रोगान्विता भवेत् । आषाढे मृतवत्सा च श्रावणे धनसंयुता । नभस्ये दुर्भगा नारी आश्विने धनधान्यभाक् ॥ कार्तिके निर्धना प्रोक्ता मार्गशीर्षे बहुप्रजा । पौषे च पुंश्चली नारी माघे पुत्रवती भवेत् । फाल्गुने पुत्रसंपन्ना ज्ञेयं मासफलं बुधैः (४८ पृ०) ॥ १७-२१ ॥

अथ तिथिफलम्--

तिथियों में प्रथम ऋतुमती होने का फल

सुभगा धनपुत्राढ्या सुतयुक्ता च दुर्भगा ।
पतिप्रिया क्लेशयुता धनाढ्या कलहप्रिया ॥ २२ ॥
विधवा बहुभाग्या च पुत्रिणी कुलटामतिः ।
धनाढ्या पुंश्चली दर्शे विधवा भवति वत्सरे ॥ २३ ॥
पौर्णिमायां भवेन्नारी पुत्रपौत्रसमन्विता ।
तिथिक्षये निषिद्धं स्यात्तिथीनां फलमीरितम् ॥ २४ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि यदि स्त्री पहिले २ ऋतुमती प्रतिपदा में हो तो भाग्यशालिनी, द्वितीया में धन पुत्र से युक्त, तृतीया में पुत्रवती, चौथ में दुःखी, पञ्चमी में पति की प्यारी, छट में कलह से युक्त सप्तमी में धनवती, अष्टमी में लड़ाई करने वाली, नवमी में विधवा, दशमी में अधिक भाग्यशालिनी, एकादशी में पुत्रवती, द्वादशी में वेश्या बुद्धि वाली, तेरस में धनवाली, चौदस में वेश्या, अमावास्या में विधवा

---

१. मु० चि० ५ प्र० १ श्लो० पी० टी० ।

और पूर्णिमा तिथि में पहिले मासिकधर्म होने पर कन्या पुत्र पौत्र से युक्त तथा तिथि क्षय में होने पर निषिद्ध होता है। यह क्रम से समस्त तिथियों में होने का फल होता है ॥ २२–२४ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में कहा है—'आद्यर्तौ सुभगा नारी प्रतिपत्सु रजस्वला। द्वितीया भाग्यजननी तृतीयायां सुतान्विता। चतुर्थ्यां विधवा नारी पञ्चम्यां धनदायिनी। षष्ठ्यांच क्लेशभाक् चैव सप्तम्यां धनवर्धिनी। अष्टम्यां राक्षसी नारी नवम्यां पापवर्धिनी। दशम्यां प्रीतिकरी स्यादेकादश्यां सुतान्विता। द्वादश्यां दुर्भगा नारी त्रयोदश्यां हिरण्यदा। चतुर्दश्यां पुंश्चली स्यात् पौर्णमास्यां सुपुत्रिका' (१०६ पृ० ३–६ श्लो०) ॥ २२–२४ ॥

ज्योतिषसार में कहा है 'शुचिर्नारी प्रतिपदि द्वितीयायां तु दुःखिनी। तृतीयायां पुत्रवती चतुर्थ्यां विधवा भवेत्। पञ्चम्यां चैव सौभाग्यं षष्ठ्यां कार्यविनाशिनी। सप्तम्यां सुप्रजा नारी चाष्टम्यां राक्षसी तथा। नवम्यां विधवा नारी दशम्यां सौख्यभोगिनी। एकादश्यां शुचिर्नारी द्वादश्यां मरणं ध्रुवम्। त्रयोदश्यां शुभा प्रोक्ता चतुर्दश्यां परान्विता। पौर्णमास्याममायां च शुभं चाशुभमेव च' (४८ पृ०) ॥ २२–२४ ॥

अथ वारफलम्—

अब आगे सातों वारों में होने के फल को बताते हैं।

विधवा कन्यकाढ्या च मृतिप्राप्ता च दुःखिनी।
पुत्रिणी भोगसम्पूर्णा वन्ध्या सूर्यादि वारतः ॥ २५ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि सूर्यवार में यदि कन्या प्रथम ऋतुमती होती है तो विधवा, सोमवार में कन्या सन्तान वाली, मंगलवार में मरण पाने वाली, बुध में दुःखी, गुरु में पुत्रवती, शुक्र में भोग से युक्त और शनिवार में प्रथम रजस्वला होने पर कन्या वन्ध्या होती है ॥ २५ ॥

ज्योतिषसार में कहा है 'मङ्गले आत्मघाती स्याद्‌बुधे कन्याप्रसूः स्मृताः। गुरुवारे सुतप्राप्तिः कन्या पुत्रयुताभृगौ। मन्दे च पुंश्चली नारी ज्ञेयं वारफलं शुभम्' (४८ पृ०) ॥ २५ ॥

कश्यपजी ने कहा है 'रोगिणी रविवारे तु सोमवारे पतिव्रता। दुःखिता भौमवारे च बुधे सौभाग्यसंयुता। श्रीसंयुता गुरोर्वारे पतिभक्ता भृगोर्दिने। मलिना मन्द वारे तु रात्रावपि तथैव च' (मु० चिं० ५ पृ० १ श्लो० पी० टी०) ॥

तथा वसिष्ठ संहिता में भी 'सदा गतार्ता सुपतिव्रता सा वन्ध्या प्रजावत्यतुलार्थयुक्ता। आनन्दकर्त्री स्वसती च पुष्पवती क्रमाद् भास्करवासरेषु' (२४ प्र० ३३ श्लो०) ॥ २५ ॥

और भी ज्योतिर्निबन्ध में 'आदित्ये विधवा नारी सोमे चैव मृतप्रजा। अङ्गारे चात्महानिश्च बुधे कन्यां प्रसूयते। पुत्रिणी गुरुवारे च कन्यां शुक्रे प्रसूयते। शनौ तु पुंश्चली नारी प्रथमर्तौ विदुर्बुधाः' (१०६ पृ० ७-८ श्लो०) ॥ २५ ॥

अथ नक्षत्रफलम्--

अब आगे २७ सत्ताईस नक्षत्रों में प्रथम ऋतुधर्म होने के फल को बताते हैं।

नक्षत्रों में होने का फल

अश्विन्यादिषु बोद्धव्यं फलं च प्रथमार्तवे।
पुत्राढ्या दुर्भगा साध्वी धनाढ्या सुतशालिनी ॥ २६ ॥
समशीला सुपुत्राढ्या पुत्रिणी निधनाधना।
सुभगा चार्थिनी विज्ञा श्रीयुता पतिवल्लभा ॥ २७ ॥

अश्विनी आदि नक्षत्रों में प्रथम ऋतुमती होने पर अश्विनी में यदि कन्या पहिली बार ऋतुधर्म से युक्त होती है तो पुत्रवती, भरणी में दुःखी, कृत्तिका में साध्वी, रोहिणी में धनवती, मृगशिरा में पुत्र से युक्त, आर्द्रा में समान स्वभाव की, पुनर्वसु में सुन्दर पुत्रवाली, पुष्य में पुत्रिणी, श्लेषा में मरण पाने वाली, मघा में धन से रहित, पूर्वाफाल्गुनी में सुभगा, उत्तराफाल्गुनी में धनवती, हस्त में विदुषी, चित्रा में धन से युक्त और स्वाती नक्षत्र में पहिले रज से संयुक्त हो तो पति की प्यारी होती है। ॥ २६-२७ ॥

विशेष – वसिष्ठ संहिता में नक्षत्रों में रजो दर्शन का फल विस्तृत मिलता है यथा 'बहुसुतधनसंपच्छीलसौभाग्य युक्ता, विगतनिखिलदोषा दस्रभे पुष्पिणी या॥ सुरगुरुरतिभक्ता मानिनी गीतनृत्या प्रवरकुसुमवस्त्रैर्भूषणैर्भूषिता स्यात् ॥ ५ ॥ परपुरुषपरा स्याद् दुर्भगा याम्यधिष्ठे विविधचपलभाषाभूषणासृक्स्रवार्ता। नियतमनतवाक्यात्रस्तविद्वेषणी सा कुलजनगुणहीना छन्नपापा खला स्यात्। वैश्वानरर्क्षे बहुमित्रपुत्रधनान्विता सत्यपरागुणाढ्या। विकीर्णकामा प्रियवादिनी च नारी सहोत्यप्रवरा कलाज्ञा। पितामहर्क्षे सुगुणा सुवृत्ता पतिप्रिया सत्यवती धनाढ्या। बन्धुप्रिया मानरता सुरूपा प्रकृष्टचित्ता प्रविकीर्णकामा। सदा मृगे भाग्यवती सुवृत्ता कलानुरक्ता विपुलार्थयुक्ता। पतिप्रिया मानवती बहुज्ञा प्रजावती बन्धुजनैः सुमान्या। महेशभे पुष्पवती विशाला मृगानुरक्ता परकार्यसक्ता। पत्युज्झिता प्रेष्यवती विनिःस्वा परप्रिया दुःखवती विपुत्रा। मायाविनी कार्पटिका विशालाऽदित्याख्यधिष्ण्ये कुचरित्र युक्ता॥ वन्ध्या पुनर्भूः परसद्मसक्ता दुश्चेष्टिता पुष्पवती कलाढ्या। सुगन्धपुष्पाम्बर-भूषणेषु सदा कलागीतनिबद्धचित्ता। पुष्ये त्वगम्यागमना गदार्ता प्रजावती दुःप्रतिभान्विता सा। खला पुनर्भूर्बहुदोषसक्ता भौजङ्गमे पुष्पवती विशोज्ञा। मायापटुर्लम्पटिकार्थहीना स्वच्छन्दगा व्याधिकटी कलाज्ञा॥ पतिप्रिया पुष्पवती मघायां

प्रजावती सा कुलटा तथापि। सिंहीव योषिद्वरवृन्दमध्ये प्रभाति खद्योतवदम्बरेऽपि। भाग्ये भाग्यवती बहुव्ययपरा पानप्रसक्ता वृता स स्वीर्ष्या कुलटा कलासु निपुणा नीरुक् च भग्नव्रता ॥ दुः पुत्रा कुलपांसिनी खलरजा भग्नोद्यमा पांशुला, दुःखा पापरता विषमं निरता षण्ढप्रिया संततम्। कुलद्वयानन्दकरी विभक्तकार्या कलाढ्या विनिगृह्यचित्ता। विकीर्णकामा रुचिरा सुवृत्ता श्लक्ष्णार्यमर्क्षे विगताऽरिवैरा ॥ सम्भोगशीला परकार्यकारिणी बन्धर्चिता श्रेष्ठगुणानुरक्ता। गताभ्यसूया विगतारिवर्गा हस्तेऽङ्गना पुष्पवती विलोला। त्वाष्ट्रे प्रियालुः सुरतप्रियोद्यद्वैरा निगृह्यात्महिते नियुक्ता ॥ निवृत्तवैरामय पीडिताङ्गी संगीतविद्या निपुणा कलासु ॥ दृढव्रता सत्यपरा सुवृत्ता निवृत्तरागा पररन्ध्रगोप्त्री। गजाभिगामिन्यनिलाह्वयर्क्षे प्रमोदिनी मंगलकार्यवृन्दे (२४ अ० ५-१९ श्लो०) ॥ २६-२७ ॥

और भी ज्योतिर्निबन्ध में 'सहिता धनपुत्राभ्यामश्विन्यां चेद्रजस्वला। दोषयुक्ता भरण्यां तु कृत्तिकायां सुपुत्रिणी। रोहिण्यां धनसंयुक्ता मृगे स्यात्सुतशालिनी। आर्द्रायां भर्तृनिरता निर्वैरा च भवेत्सती। पतिव्रता पुनर्वसौ पुष्ये च व्यालमद्वये। पूर्वाद्वये च युवती भारिका च करद्वये, स्वातीद्वये धनवती' (१०६ पृ० १-३ श्लो०) ॥ २६-२७ ॥

गर्ग ने भी कहा है 'सुभगा चैव दुःशीला वन्ध्यापुत्र समन्विता। धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसंतानमोदिनी। सुपुत्रा चैव दुष्पुत्रा पितृवेश्मरता सदा। दीना प्रज्ञावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी। साध्वी' (मु० चि० ५ प्र० १ श्लो० पी० टी०) ॥ २६-२७ ॥

विशाखा से रेवती नक्षत्र तक होने का फल

धनिनी निर्धना भाग्या दुःशीला क्लेशकारिणी।
सुभगा श्रीयुतार्थाढ्या निर्धना कलहप्रिया ॥ २८ ॥
सुशीला धनपुत्राढ्या क्रमेणैवमुदाहृतम्।

जब कि कन्या प्रथम विशाखा नक्षत्र में पुष्पवती होती है तो धनिनी, अनुराधा में निर्धन, ज्येष्ठा में भाग्यशालिनी, मूल में दुःशील (धृष्ट), पू० षा० में कलह करने वाली, उ० षा० में सुभगा, श्रवण में धनवती, धनिष्ठा में धन वाली, शतभिषा में धन से हीन, पू० भा० में लड़ाई की इच्छा वाली, उ० भा० में सुशीला और रेवती नक्षत्र में प्रथम रजोवती होने पर कन्या धन व पुत्र से युक्त होती है ॥ २८-२८½ ॥

वसिष्ठ संहिता में कहा है 'द्विदैवभे पुष्पवती प्रवृत्ता विचित्रभोगायमवैरिसंघा। विवाहशीला, विपुलप्रतापा संभोगमाप्नोति शुनीव शश्वत्। मैत्रेविमित्रा सगदांगहीना विवाहशीला विगुणा सवैरा। प्रवृत्तरागा प्रविकीर्णकामा स्वगर्भसंस्रावपरा विरक्ता। पौरन्दरे पुष्पवती विमर्षा विनिन्दिताऽतिव्यसनी सुगूढा। परतया प्रव्रजतेरतात्मा परप्रजासूयवती सपापा। मूले प्रकामाऽधिकसत्त्वहीना व्यसुर्बुभुक्षोद्धत दोषचित्ता। निरन्तरं दूषितकर्मवृत्ता प्रजावती गोगजगामिनी च। पानीयभे पुष्पवती विवाहशीला कलाकर्मणि

दुष्टचित्ता । परानुरक्ता वनशैलसक्ता प्रच्छन्नपापाऽद्भुतकर्मरक्ता । वैश्वे सती पुष्पवती सुवृत्ता महागुणैरुन्नतिमातनोति । चित्तानुरक्ता स्वपतेरुदारा युक्ता विवैरा विनिवृत्त-दोषा । बहुसुतधनधान्यप्रोल्लसद्भूषणाढ्या प्रचुरगुणगणाद्यैर्भर्तुरानन्ददा स्यात् । युवतिजनमता सा विष्णुधिष्ण्ये विचित्रा, प्रवरनटनगीतातोद्यवाद्ये ह्यभिज्ञा । अतिवसु-धनभाक्स्यान्मानिनी सच्चरित्रा विगतभयकुवृत्ता सन्नताङ्गी गुणाढ्या । पतिहितनिरता स्याद् बन्धुवर्गैः प्रपूज्या, प्रियहितकरकर्मण्युत्सुका प्रोष्ठपद्याम् ॥ निखिलवरकलाढ्या नृत्यगीतानुरक्ता, विविधगुणगणाढ्या मानिनी भाग्ययुक्ता । विविधपरिचरौघैः संवियुक्ता शतर्क्षे पतिकुलजनमान्या पुष्पवत्यगना सा ॥ शुभगुणगणहीना कर्कशा भाग्यहीनात्व-नृतपरुषमन्त्रैर्दुर्जनान्तर्जयन्ती । विचरति गुणमध्ये दुर्भगा वाजपादे, जनकसदनवासा नष्टकामाऽद्यरूपा ॥ गुणसुतसुखसंपद् भूषिताङ्गी त्वभिज्ञा अभिभवति सपत्नान् सज्जनान् मानयन्ती । मृदुमधुरसुवाचा गीतनृत्योद्गता सा प्रवरबहुकलाज्ञाचोत्तराभाद्रपादे ॥ पौष्णे विशीला बहुदुःखशोका विवाहशीला पितृवेश्मसंस्था । पराभितप्ता पतिपुत्रदूरा नीचैरता कापटिका च कन्या' (२४ अ० २०-३१ श्लो०) ॥ २८-२८½ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में भी 'विधवास्यात् परद्वये । मूलद्वये नित्ययुक्ता सुभगास्यात्परद्वये । धनिष्ठायां स्वैरिणी च सती शतभिषद्द्वये । अहिर्बुध्न्यद्वये नारी सुभगा भर्तृतत्परा' (१०६ पृ० ४-५ श्लो०) ॥ २८-२८½ ॥

और भी गर्ग ने बताया है 'पतिव्रता नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी स्वकर्मनिरता हिंस्रा पुत्रपौत्रादिसंयुता नित्यं धनकथासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता । मूर्खार्थाढ्या गुणवती दस्रक्षीदेक्रमात् फलम् ॥' (मु० चि० ५ प्र० १ श्लो० पी० टी०) ॥ २८-२८½ ॥

> कृत्तिकादित्यरौद्रेऽपि मघा ज्येष्ठा रजस्वला ॥ २९ ॥
> आदिपादे शुभं प्रोक्तं सा कन्या मङ्गलप्रदा ।
> द्विपादे चेद्द्विजो दृष्टं पञ्चविंशति भोजनम् ॥ ३० ॥
> त्रिपादे च चतुष्पादे शान्तिं कुर्याद्यथाविधि ॥ ३१ ॥

यदि कृत्तिका, हस्त, आर्द्रा, मघा या ज्येष्ठा नक्षत्र के प्रथम चरण में पहिले पुष्पवती होती है तो शुभ व मंगलप्रद होती है तथा उक्त नक्षत्रों के दूसरे चरण में होने पर २५ ब्राह्मणों को भोजन कराना और तीसरे या चौथे चरण में होने पर विधिविधान से शान्ति करनी चाहिए ॥ २८½-३१ ॥

अथ योगफलम्—

अब आगे योगों के आधार पर फल को बताते है ।

> विरुद्धयोगेष्वशुभं शुभयोगे शुभं भवेत् ॥ ३२ ॥

ग्रन्थान्तर में कहा है कि विरुद्ध योगों में पहिले २ पुष्पवती होने पर अशुभ और शुभ योग में होने पर शुभ फल होता है ॥ ३२ ॥

विशेष—यहाँ पर योगों में होने का फल सूक्ष्म रीति में है। पाठकों की सुविधा के लिये ज्योतिर्निबन्ध में जो विशेष फल योग व करणों का है उसे लिख रहा हूँ 'आद्यतौ दुर्भगा नारी विष्कम्भे चेद्रजस्वला। वन्ध्या चैवातिगण्डे च शूले शूलवती भवेत्। गण्डे तु पुंश्चली नारी व्याघाते चाऽत्मघातिनी। वज्रे च स्वैरिणी प्रोक्ता पाते च पतिघातिनी। परिघे मृतवन्ध्या च वैधृतौ पतिमारिणी। शेषाः शुभावहा योगा यथा नाम फल प्रदा (१०७ पृ० ८-१० श्लोक)।

तथा करणों में होने का 'बवे पुष्पवती नारी वन्ध्या वा विधवा भवेत्। बालवे पुत्रिणी नारी कौलवे प्रमदा भवेत्।। तैतिले संमतवती गरे नारी विनश्यति।। नष्ट-प्रजा वणिक्संज्ञे विष्ठयां वन्ध्या धनोज्झिता। शकुनीच चतुष्पादे नारी वैधव्यमाप्नुयात्। नागे न रमते नारी किंस्तुघ्ने विधवाभवेत्' (१०७ पृ० १३-१५ श्लो०)॥ ३२॥

ज्योतिषसार में भी योगों का फल 'आद्यातौ विधवा नारी विष्कम्भेच रजस्वला। स्नेहः प्रीतौ तु दम्पत्योरायुष्मांस्तु धनप्रदः। सौभाग्ये पुत्रयुक्ता तु शोभने मङ्गलान्विता। आतंगण्डे तु विधवा सुकर्मणि तु शोभना। धृतौ संपत्तियुक्ता च शूले रोगयुता भवेत्। गण्डे दुःखान्विता नारी वृद्धौ पुत्रान्विता भवेत्। ध्रुवे तु शोभना नारी व्याघाते भर्तृ-घातकी। हर्षणे हर्षयुक्ता तु वज्रे चैवानपत्यता। सिद्धौ पुत्रान्विता नारी व्यतीपाते विभर्तृका। मृतवत्सा च वर्षाणे परिघे चाल्पजीविता। शिवे पुत्रवती नारी सिद्धौ शीघ्र-फलान्विता। साध्ये धर्मपरा नारी शुभे शुभगुणान्विता। शुक्ले शुभकरा नारी ब्राह्मणि स्वपतौ रता। ऐन्द्रे देवररक्ता च वैधव्यं वैधृतौ स्मृतम्' (५० पृ०)॥ ३२॥

तथा करणों में होने का फल 'बवे प्रोक्ता तु वन्ध्या स्त्री बालवे पुत्रसपदा। कौलवे पुंश्चली नारी तैतिले चारुभाषिणी। गरे च गुणसंपन्ना वणिजे पुत्रिणी स्मृता। विष्टयां च मृतवत्सा च शकुनौ कामपीडिता। चतुष्पदे शुभा नारी नागे पुत्रवती भवेत्। किंस्तुघ्ने तु परासक्ता कारणानां शुभाशुभम्' (५० पृ०)॥ ३२॥

अथ लग्नफलम्—

अब आगे बारह राशियों की लग्न में होने के फल को बताते हैं।

बारह लग्नों में प्रथम रजस्वला होने का फल

आत्मघ्नी भ्रूणहा मेषे वृषे पुत्रवती भवेत्।
द्वन्द्वे कन्याप्रसूर्नारी मृतापत्या च कर्किणि॥ ३३॥
सिंहे वैधव्यमाप्नोति कन्यायां स्त्रीप्रसूर्भवेत्।
तुलायां बहुपुत्राढ्या दृढकर्मरतालिनि॥ ३४॥
चापे पुत्रधनाढ्या स्यान्मकरे सुखिनी भवेत्।
सकृत्प्रजावती कुम्भे मीने चाल्पप्रजा भवेत्॥ ३५॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि मेष लग्न में पहिले २ पुष्पवती होने पर हिंसा करने वाली व आत्मा का हनन करने वाली, वृष में पुत्रवती, मिथुन में कन्या संतान

वाली, कर्क में नष्ट संतानवाली सिंह में वैधव्यता पाने वाली, कन्या में कन्या संतान वाली, तुला में अधिक पुत्रवाली, वृश्चिक में स्थिर कार्य में आसक्त, धनु में पुत्र व धन से युक्त, मकर में सुखिनी, कुम्भ में एक सन्तानवाली और मीन लग्न में प्रथम रजस्वला होने पर कन्या अल्प संतानवाली होती है ।। ३३–३५ ।।

नारद जी ने कहा है 'कुलीरवृषचापान्त्यनृयुक्कन्यातुलाधराः । राशयः शुभदाज्ञेया नारीणां प्रथमार्तवे' (मु. चि. ५ प्र० १२ लो० पी. टी.) ।। ३३–३५ ।।

दैवज्ञमनोहर में भी बताया है 'मेषे सव्यभिचारा स्याद् वृषभे परभोगिनी । मिथुने धनभोगाढ्या कर्कटे व्यभिचारिणी । पुत्राढ्या सिंहराशौ तु कन्यायां श्रीमती भवेत् । विचक्षणा तुलायां च वृश्चिके तु पतिव्रता ।। दुःचारिणी धनुः पूर्वे अपरे च पतिव्रता । मकरे मानहीना च कुम्भे निर्धन बन्धुता । मीने विचक्षणा लग्ने ग्रह संस्था विवाहवत्' (मु. चि. ५ प्र० १ श्लो० पी. टी. ।। ३३–३५ ।।

ज्योतिषसार में कहा है 'मेषलग्ने दरिद्रा च वृषभे धनसंयुता । कामिनी मिथुने लग्ने कर्कटे पतिनाशिका ।। सिंहे पुत्रप्रसूतिश्च पतियुक्तास्त्रिलग्नके तुले चैवान्धता दायी वृश्चिके दद्रुदुःखिनी । धनुर्लग्ने धनैश्वर्यं मकरे कर्कशा भवेत् (कुम्भे वंशद्वयघ्नी च मीने सर्वगुणान्विता' (५१ पृ०) ।। ३३–३५ ।।

अथ वर्गफलम्—

अब आगे लग्नस्थ शुभ वा पाप वर्ग होने पर जो फल होता है, इसे बताते हैं ।

शुभ वा पाप वर्ग का फल

[1]'आरोग्यसौभाग्यवती च सौम्यवर्गे शुभा पुष्पवती च कन्या ।
दुःखाभयानर्थविवादशीला वर्गेषु(ष्व !) सौम्येषु च दुर्मतिः स्यात् ।।३६।।

ऋषिवसिष्ठ ने बताया है कि यदि लग्न में शुभग्रहों के वर्ग होने पर प्रथम रजोवती कन्या होती है तो नीरोग (रोगरहित) और भाग्यशालिनी होती है ।

यदि लग्न में पापग्रहों के वर्ग रहने पर स्त्री पहिले २ पुष्पवती होती है तो दुःखी रोगिणी, अनर्थ करने वाली और विवाद करने वाली एवं दुष्ट बुद्धिकी होती है ।।३६।।

अथ वेलाफलम्—

बेला में होने का फल

पूर्वाह्णे पुत्रसंयुक्ता मध्याह्ने सुखभागिनी ।
स्वैरिणी चापराह्णे स्यान्निशायां विधवा भवेत् ।। ३७ ।।
सन्ध्ययोरुभयोर्वेश्या प्रथमर्तौ फलं स्मृतम् ।
शेषं विवाहवत्सर्वं पुष्पे लग्नादि चिन्तयेत् ।। ३८ ।।

यदि प्रथम वार कन्या पूर्वाह्ण में रजस्वला होती है तो पुत्र से युक्त, मध्याह्न में होने पर सुख भोगने वाली, अपराह्ण में वेश्या, रात्रि में विधवा तथा दोनों सन्ध्याओं

---

१. व. सं. २४ अ. ३४ श्लो. ।

में पहिले मासिकधर्म होने पर कन्या वेश्या होती है। और अवशिष्ट लग्न फल विवाह लग्न की तरह पुष्पवती होने पर भी शुभाशुभ समझना चाहिए ॥ ३७-३८ ॥

स्मृत्यन्तर में कहा है 'प्रातःकाले तु सधना सायाह्ने सर्वभोगिनी। मध्याह्ने च भवेद्वेश्या निशीथे विधवा भवेत्' (मु. चि. ५ प्र० १ श्लो० पी. टी.) ॥३७-३८॥

तथा ज्योतिर्निबन्ध में कहा है 'पुत्रवती शुभं प्राप्ता पूर्वाह्ने तु रजस्वला। मध्याह्ने तु शुभप्राप्तिः स्वैरिणी चापराह्णके ॥ सन्ध्ययोरुभयोर्वेश्या निशायां विधवा तथा। पूर्वरात्रौ च वन्ध्या स्याद् दुर्भगा सर्वसन्धिषु' (१०७ पृ० ११-१२ श्लो०) ॥३७-३८॥

ज्योतिषसार में कहा है 'पूर्वाह्ने सुभगा प्रोक्ता मध्याह्ने चैव निर्धना। अपराह्ने शुभा चैव सायाह्ने सर्वभोगिनी। सन्ध्ययारुभयोर्वेश्या निशीथे विधवा भवेत्। पूर्वरात्रे तथा वन्ध्या दुर्भगा सर्वसन्धिषु' (५२ पृ०) ॥ ३७-३८ ॥

अथ वस्त्रफलम्—

वस्त्र के आधार पर फल

[1]सुभगा श्वेतवस्त्रा च रोगिणो रक्तवाससा।
नीलाम्बरधरा नारी विधवा प्रथमार्तवा ॥ ३९ ॥
भोगिनी पीतवस्त्रा च दृढवस्त्रा पतिव्रता।
दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्यात्सुभगा चारुवस्त्रिणी ॥ ४० ॥

यदि कन्या पहिले-पहिले सफेद वस्त्र पहिनकर पुष्पवती होती है तो भाग्यवती, लाल वस्त्र धारण किये हो तो रोगिणी, नीला वस्त्र हो तो विधवा, पीला हो तो भोगिनी, मजबूत वस्त्र हो तो पतिव्रता, फटा हो तो भाग्यहीना और सुन्दर वस्त्र हो तो सुभगा होती है ॥ ३९-४० ॥

वसिष्ठजी ने कहा है 'सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद् दृढवस्त्रा पतिव्रता। क्षौमवस्त्रा क्षताशा स्यान्नवदस्त्रा सुखान्विता ॥ दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद् रोगिणी रक्तवाससा। नीलाम्बरधरा नारी विधवा पुष्पिता यदि ॥ मलिनाम्बरतो नारी दरिद्रा स्याद्रजस्वला' (मु० चि० ५ प्र० २ श्लो० पी० टी०) ॥ ३९-४० ॥

[2]प्रथमर्तौ फलं स्त्रीणामुच्यते रजसा तु तत् ॥ ४१ ॥

अब आगे स्त्रियों के प्रथम मासिक धर्म में रक्त के रंग से फल को बताते हैं ॥४१॥

---

१. ज्यो नि. १०७ पृ. २२-२३ श्लो.।
२. ज्यो. नि. १०७ पृ. २५-२८ श्लो.।

अथ रक्तफलम्—

रज का फल

[1]सुभगा पुत्रसंयुक्ता शुक्लवर्णे यदार्तवे।
शशशोणितसङ्काशे यद्वालक्तकसन्निभे ॥ ४२ ॥
पुत्रकन्याप्रसूतिः स्यान्नीले तु स्यान्मृतप्र ा।
कर्बुरे म्रियते सा च पिङ्गले च मृतप्रजा ॥ ४३ ॥
कृष्णे तु विधवा नारी रजस्येवं फलं वदेत्।
शोणिते विन्दुमात्रेण स्वैरिणी चाल्पशोणिता ॥ ४४ ॥

यदि प्रथम रज सफेद वर्ण का हो तो स्त्री पुत्र से युक्त व भाग्यशालिनी होती है, खरगोश के रुधिर की सी आभा का हो या महावर (आलता) कान्ति के तुल्य हो तो पुत्र-कन्या सन्तान से युक्त, नीले रंग का हो तो मृत सन्तति, कर्बुर रंग का होने पर स्वयं की मृत्यु. पिङ्गल रंग में नष्ट सन्तान, काला रंग हो तो कन्या विधवा होती है एव मासिक धर्म एक विन्दु या अल्प हो तो कन्या व्यभिचारिणी होती है ॥ ४२ ४४ ॥

ज्योतिषसार में कहा है 'रक्ते-रक्ते भवेत्पुत्रः कृष्णे चैव मृतप्रजा। पिच्छिले च भवेद्वन्ध्या काकवन्ध्या च पाण्डरे। पीते दुश्चारिणी ज्ञेया सुभगा गुञ्जसन्निभे। सिन्दूर-वर्णे रक्ते तु कन्या सन्ततिरेव च' (५१ पृ०) ॥ ४२-४४ ॥

अथ स्थानफलम्—

स्थानवश फल

[2]ग्रामाद्बहिः परग्रामे नारी स्याद्व्यभिचारिणी।
पतिव्रता शुभस्थाने सुभगा गृहमध्यतः ॥ ४५ ॥
ग्राममध्ये तु वृद्धिश्च विधवा च दिगम्बरा।
उपरागे तु दुःशीला आयुष्यं जलसन्निधौ।
धनमध्ये तु कन्या या धनधान्यसमन्विता ॥ ४६ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि गांव के बाहर दूसरे गांव में यदि कन्या प्रथम पुष्पवती होती है तो व्यभिचारिणी शुभ स्थान में होने पर पतिव्रता, घर के भीतर होने पर भाग्यशालिनी, गांव के मध्य में वृद्धिवाली, वस्त्रहीन होने पर विधवा, ग्रहण में दुःशीला, जल समीप में दीर्घायु वाली और धन के बीच में प्रथम मासिक धर्म से युक्त होने पर कन्या धनधान्य से युक्त होती है ॥ ४५–४६ ॥

---

१. मु चि. ५ प्र. ३ श्लो, पी. टी.।
२. ज्यो. नि. १०७ पृ. २५-२८ श्लो.।

देवराजः—

देवराजजी के आधार पर

[1]संमार्जनीकाष्ठतृणाग्निशूर्पान् हस्ते
दधाना कुलटा तदा स्यात् ।
तल्पोपभोगे सपदि स्थिताश्चेद्
दृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात् ॥ ४७ ॥

आचार्य देवराजजी ने बताया है कि कन्या झाड़ू, काठ, तिनका, अग्नि या शूप को धारण किये हुए प्रथम मासिक धर्म से युक्त होती है तो वेश्या और शय्या पर उपभोग के समय जब प्रथम रजोवती होती है तो भाग्यवती होती है ॥ ४७ ॥

अथ स्थानविशेषे अपवादः—

अब स्थान विशेष में रजोवती का फल नहीं होता है, इसे ज्योतिर्निबन्ध वाक्य से बताते हैं ।

[2]देवस्थाने पितृस्थाने निन्द्यस्थानेऽन्यवेश्मनि ।
पुष्पवत्याः फलं न स्यान्मार्गे चाण्डालवेश्मनि ॥ ४८ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में बताया है कि देवता के स्थान में, पिता के घर में, निन्द्यस्थान में, दूसरे के घर में, मार्ग में और श्वपच के मकान में प्रथम ऋतुमती का फल नहीं होता है ॥ ४८ ॥

[3]पुष्पं दृष्ट्वा(ष्टं) निन्दिते भे यदि स्याच्छान्तिं कुर्यादङ्गनायां च पूर्वम् ।
तत्संयोगं वल्लभा वर्जयेयुर्यावद्भूयः शस्तभे नैव दृष्टम् ॥४९॥

दूषित नक्षत्र में मासिकधर्म को देखकर पहिले शान्ति करना और पुनः शुभ में देखकर पति-संभोग में कन्या की प्रवृत्ति करानी चाहिए ॥ ४९ ॥

[4]नारदः—

नारद जी के आधार पर

निन्द्यर्क्षतिथिवारेषु यत्र पुष्पं प्रदृश्यते ।
तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत घृतदूर्वातिलाक्षतैः ॥ ५० ॥
प्रत्येकमष्टशतं मन्त्रैर्गायत्र्या जुहुयात्ततः ।
स्वर्णगोभूतिलान् दद्यात्सर्वदोषापनुत्तये ॥ ५१ ॥
यावच्छान्तिं प्रकुर्वीत तावत्तां नावलोकयेत् ।
भर्ता तत्राभिगमनं वर्जयेच्छुभवाञ्छया ॥ ५२ ॥

---

१. मु चिं ५ प्र. २ श्लो. पी. टी. । २. ज्यो. नि. १०७ पृ. २४ श्लो. ।
३. ज्यो. नि १०८ पृ. २३ श्लो. ।
४. ज्यो नि. १०९ पृ. १३-१४ श्लो. ।

ऋषि नारद ने बताया है कि दूषित नक्षत्र, तिथि और वार में यदि कन्या पुष्पवती होती है तो उसकी शान्ति करनी चाहिए। घी, दूर्वा, तिल, अक्षतों से प्रत्येक की १०८ आहुति गायत्री मन्त्रों से देनी चाहिए। इसके पश्चात् सोना, गाय, भूमि तिल का दान समस्त दोषों की शान्ति के लिए करना चाहिए। जब तक शान्ति न करे तब तक उसका दर्शन नहीं करना और पति को शुभता के लिए उसके साथ भोग भी नहीं करना चाहिए ॥ ५०-५२ ॥

अथ रजस्वलाधर्मः—

अब आगे रजस्वला के धर्मों को या यों समझिये उसके आचरण को ज्योतिषसार के वाक्य से बताते हैं।

ज्योतिषसारे—

ज्योतिषसार के आधार पर रजस्वला का धर्म

[1]आर्तवाभिष्टुता नारी चैकवेश्मनि संश्रयेत्।
न चान्यजातिसंस्पर्शं कुर्यात्स्पर्शं न च क्वचित् ॥ ५३ ॥
त्रिरात्रं स्वमुखं नैव दर्शयेद्यस्य कस्यचित्।
स्ववाक्यं श्रावयेन्नैव न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥ ५४ ॥
न कुर्यादार्तवे नारी ग्रहाणामीक्षणं तथा।
अञ्जनाभ्यञ्जनं स्नानं प्रवासं वर्जयेत्तथा ॥ ५५ ॥
नखादिकृन्तनं रज्जुतालपत्रादि बन्धनम्।
नवे शरावे भुञ्जीत तोयं चाञ्जलिना पिबेत् ॥ ५६ ॥

ज्योतिषसार नामक ग्रन्थ मे कहा है कि ऋतुमती स्त्री का मकान में एक ही स्थान पर रहना, अन्य जाति के व्यक्ति व वस्तु का स्पर्श नहीं करना, तीन दिन तक जिस किसी को अपना मुख नहीं दिखाना, अपनी वाणी नहीं सुनाना, दन्त मजन, नक्षत्रों का दर्शन, काजल, तेल, स्नान, रास्ता चलना, नख काटना और रस्सी या ताल-पत्र का बन्धन व ये सब काम नहीं करना और मिट्टी के नये पात्र में भोजन करना तथा पानी अंजुली से पीना चाहिए ॥ ५३-५६ ॥

रजस्वला शुद्धि दिन

[2]प्रथमेऽहनि चाण्डालो द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्धयति ॥ ५७ ॥

पुष्पवती कन्या पहिले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन धोबिन के समान होती है और चौथे दिन शुद्ध होती है ॥ ५७ ॥

---

१. २२ पृ. १–४ श्लो.।
२. ज्यो. सा. ५४ पृ. व मु. चि. ५ प्र. ६ श्लो. मट्टा.।

वसिष्ठ संहिता में कहा है 'चाण्डालो पतिता समाथ रजकी शूद्रादिनादिक्रमात्, शुद्धा पुष्पवतो च पंचमदिने हव्येषु कव्येषु च' (२४ अ० ३७ श्लो० ॥ ५७ ॥

विशेष अन्यमत 'चतुर्थेऽह्नि चास्पृश्या रजोदर्शनतः स्त्रियः । पचमेऽहनि शुद्धा सा दैवकर्मणि पैतृके' (ज्यो० सा० ५४ पृ०) ॥ ५७ ॥

धर्मशास्त्र के आधार पर

[1]भर्तुः स्पृश्या चतुर्थेह्नि स्नाने च स्त्री रजस्वला ।
पञ्चमेऽहनि योग्या सा दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ ५८ ॥

धर्मशास्त्र में कहा है कि स्त्री मासिकधर्म होने पर चौथे दिन स्नान के बाद पति के स्पर्श करने योग्य होती है । और पांचवें दिन वह दैव व पितृ काम के उपयुक्त होती हैं ॥ ५८ ॥

पुनः रजस्वला शुद्धि दिन ज्ञान

[2]रजोदर्शनतोऽस्पृश्या नार्यो दिनचतुष्टयम् ।
ततः शुद्धाः क्रियास्वेताः सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥ ५९ ॥

ज्योतिर्निबन्ध में नारद जी के वाक्य से ज्ञात होता है कि रजस्वला हाने के दिन से ४ दिन तक स्त्रो अस्पृश्य होती है । और पांचवें दिन समस्त कामों में उपयुक्त होती हैं । यह सब वर्णों की विधि है ॥ ५९ ॥

अथ प्रतिमासे ऋतुयोगः—

अब आगे प्रतिमास में जो स्त्रियों को मासिकधर्म होता है, उस योग को बृहस्पति जी के वाक्य से बताते हैं ।

बृहस्पतिः—

बृहस्पति जी के आधार पर ऋतुयोग

अङ्गनाजन्मनक्षत्रात्पीडा तारागते विधौ ।
भौमे चास्यां तथा योगे मासि मास्यृतुधारणम् । ६० ॥

ऋषि बृहस्पति जी ने बताया है कि स्त्री के जन्म नक्षत्र से पीडित नक्षत्र में विधु अर्थात् चन्द्र हो और उसी में भौम का योग जब मास में होता है तो मासिकधर्म होता है ॥ ६० ॥

बादरायणः—

बादरायण जी के आधार पर

[3]स्त्रीणां गतोनुपचयर्क्षमनुष्णरश्मिः संदृश्यते यदि धरातनयेन तासाम् ।
गर्भग्रहार्तवमुशान्त तदा सुवन्ध्या वृद्धातुराल्पवयसामपि नतदिष्टम् ॥ ६१ ॥

---

१. मु० चिं० ५ प्र० ६ श्लो० मट्टा० । २. ज्यो० नि० १०९ पृ० ।
३. बृ० जा० ४ अ० १ श्लो० मट्टा० ।

ऋषि बादरायण जी ने बताया है कि स्त्री के जन्म राशि से अनुपचय स्थान में चन्द्रमा हो और मंगल से दृष्ट हो तो गर्भधारण योग्य ऋतुकाल होता है। उक्तयोग वृद्धा, वन्ध्या, रोगिणी और छोटी अवस्था वाली स्त्री के लिये नहीं होता है ।। ६१ ।।

बृ० जा० में कहा है 'कुजेन्दुहेतुप्रतिमासमार्तवं गते तु पीडर्क्षमनुष्णदीधितौ' (४ अ० १ श्लो०) ।। ६१ ।।

लक्षणान्तरम्--

रजोदर्शन का अन्य कारण

[1]इन्दुर्जलं कुजोऽग्निर्जलमिश्रं त्वग्निरेव पित्तं स्यात् ।
एवं रक्ते क्षुभिते पित्तेन रजः प्रवर्तते स्त्रीषु ।। ६२ ।।

सारावली ग्रन्थ में बताया है कि स्त्रियों को प्रतिमास में योनि से तीन दिन तक रुधिर बहता है। उसी को रजोदर्शन कहते हैं। उस रजोदर्शन का कारण चन्द्रमा और मंगल है। क्योंकि चन्द्रमा जलमय और मंगल अग्निमय है। इसलिये जल से रुधिर और अग्नि से पित्त उत्पन्न होता है। जब पित्त के द्वारा खून में हलचल होती है तो स्त्रियों को मासिकधर्म होता है ।। ६२ ।।

गर्भाधान में अक्षय रजदर्शन

[2]एवं यद्भवति रजो गर्भस्य निमित्तमेव कथितं तत् ।
उपचयसंस्थे विफलं प्रतिमासदर्शनं तस्य ।। ६३ ।।

सारावली में यह भी कहा है कि इसप्रकार जो प्रत्येक मास स्त्रियों को मासिकधर्म होता है वही गर्भ का कारण है। यदि स्त्री की राशि से ३।६।१०।११ वें चन्द्रमा हो तो वह मासिकधर्म निष्फल होता है, अर्थात् उस रज में गर्भधारण की क्षमता नहीं होती है ।। ६३ ।।

अन्यत्र बालवृद्धातुरवन्ध्याभ्यः एवं गर्भग्रहणयोग्यमार्तवं प्रदर्श्य स्त्रीपुरुषसंयोगसम्भवासम्भवौ चाह ।

दूसरे स्थान पर बाल, वृद्ध, रोगिणी, वन्ध्या के लिए इस प्रकार गर्भग्रहण योग्य ऋतुकाल का प्रदर्शन करके स्त्री-पुरुष संयोग से गर्भ संभव (होना) व असंभव (न होना) योग को बादरायण के वचन से बताते हैं।

बादरायणः—

बादरायण के आधार पर गर्भ संभव, असंभव का ज्ञान

[3]पुरुषोपचयगृहस्थो गुरुणा यदि दृश्यते हिममयूखः ।
स्त्रीपुरुषसंयोगं तदा वदेदन्यथा नैव ।। ६४ ।।

---

१. सारा० ८ अ० ३ श्लो० । २. सारा० ८ अ० ४ श्लो० ।
३. बृ० जा० ४ अ० १ श्लो० भट्टो टी० ।

ऋषि बादरायण ने बताया है कि पुरुष की राशि से उपचय (३।६।१०।११) स्थान में चन्द्रमा जब गुरु से दृष्ट हो तो उस समय स्त्री पुरुष का संयोग हो तो गर्भ की संभावना होती है ।। ६४ ।।

नन्वत्र स्त्रिया उपचयस्थ: कथं नोक्ता, अयुक्तमेतत्, प्राधान्यात् पुरुषस्यैव कस्मिन्कालेऽयं विचार: उच्यते ।

यहाँ जिज्ञासा होती है कि स्त्री के उपचय स्थान में चन्द्रमा का वर्णन क्यों नहीं किया । उत्तर । यह कहना युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि गर्भाधान में पुरुष के ही ग्रहों की प्रधानता होती है अत: किस काल में आधान करना चाहिये, यह बताते हैं ।

ऋतौ गर्भयोग:--

अब आगे ऋतुकाल में गर्भ होने के योग को बताते हैं ।

चतुर्थदिने स्नातायामिति अथान्यदाह ग्रन्थान्तरे--

ग्रन्थान्तर के आधार पर

बलान्वितावर्कसितौ स्वभांशे पुंसां यदा चोपचये भवेताम् ।
तथाङ्गनानां शशिभूमिजौ वा तदा भवेद्‌गर्भसमुद्भवश्च ।। ६५ ।।

ग्रन्थान्तर मे बताया है कि पुरुष राशि उपचय स्थान में जब सूर्य शुक्र अपनी राशि के नवांश में हों अथवा स्त्री राशि से चन्द्रमा मंगल हों और स्त्री पुरुष का संयोग हो तो गर्भ की सत्ता होती है ।। ६५ ।।

स्त्रीणां विधौ चोपचये कुजेन दृष्टेपि गर्भग्रहणेपि योग्या ।
पुंसां तथा गीष्पतिना प्रदिष्टे स्त्रीपुंसयोर्योगमतोऽन्यथा न ।। ६६ ।।

स्त्रियों की राशि से चन्द्रमा उपचय स्थान में भौम से दृष्ट होने पर भी स्त्री गर्भ-धारण करने के योग्य होती है । पुरुष राशि से उपचय में चन्द्र गुरु से दृष्ट होने पर दोनों का संयोग हो तो गर्भ अवश्य होता है ।। ६६ ।।

सारावली मे कहा है 'उपचयभवने शशभृद् दृष्टो गुरुणा शुद्धादिमरथवासौ । पुंसां करोति योगं विशेषत: शुक्रसंदृष्ट:' (८ अ० ५ श्लो०) ।। ६६ ।।

तथा मणित्थ ने भी कहा है 'ऋतुविरमे स्नातायां यद्युपचयसंस्थित: शशी भवति । बलिना गुरुणा दृष्टो भर्त्रा सह संगमश्च तदा' (४ अ० १ श्लो० भट्टो०) ।। ६६ ।।

पराशर:--

पराशर के आधार पर

रोगेण यद्रज: स्त्रीणामन्वहं तु प्रवर्तते ।
नाशुचि: स्यात्ततस्तेन तत्स्याद्वैकारिकं मलम् ।। ६७ ।।
अष्टादश दिनादर्वाक् स्नानमेव रजस्वला ।
अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यादुशना मुनिरब्रवीत् ।। ६८ ।।

ऋषि पराशर ने बताया है कि रोग के कारण जब स्त्रियों को प्रतिदिन रुधिर होता है तो वे अशुद्ध नहीं होती है, क्योंकि वह विकार युक्त मल होता है। अठारह दिन से पूर्व यदि मासिकधर्म हो तो रजस्वला स्त्री स्नान से शुद्ध होती है और इसके ऊपर अर्थात् आगे वाले दिनों में हो तो तीन दिन तक स्त्री अपवित्र होती है, यह उशना मुनि ने कहा है ।। ६७-६८ ।।

स्मर्यते—
स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला ।
पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ।। ६९ ।।

ग्रन्थान्तर में बताया है कि यदि नैमित्तिक स्नान के समय स्त्री पुष्पवती हो तो उसे पात्रान्तरित जल से स्नान करके व्रत करना चाहिए ।। ६९ ।।

सिक्तमात्रा भवेदद्भिः साङ्गोपाङ्गा कथञ्चन ।
न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासांश्च धारयेत् ।। ७० ।।

पात्रान्तरित जलों से स्नान करने में सम्पूर्णशरीर भीग भी जाय तो भी वस्त्र को नहीं निचोड़ना तथा दूसरे वस्त्र को नहीं धारण करना चाहिए ।। ७० ।।

अथ रजस्वलायाः प्रथमदिननिर्णय : पारिजाते चतुर्विंशन्मते—

अब आगे रजस्वला के प्रथम दिन का निर्णय परिजात चतुर्विंश मत से बताते हैं।

पुष्पवती के प्रथम दिन का ज्ञान

पूर्वांशयोस्तु रात्रौ चेज्जननं मरणं रजः ।
दृष्टे पूर्वं दिनादित्वं तृतीये त्वितरेऽहनि ।। ७१ ।।
केचिद्दिवोदिते चैव जननं मरणं तथा ।
रजो वा दृश्यते स्त्रीणां यस्याहस्तस्य शर्वरी ।। ७२ ।।

पारिजात चतुर्विंश मत में कहा है कि रात्रि के पूर्वार्ध में जब जन्म या मृत्यु या मासिकधर्म होता है तो पहिला दिन और रात्रि के उत्तरार्ध में अर्थात् तृतीय प्रहर से आगे वाला दिन प्रथम दिन होता है ।। ७१ ।।

किसी का कहना है कि दिन के उदय होने पर ही जब जन्म, मृत्यु या स्त्रियों का रज दिखाई दे तो जिसका दिन उसी की रात्रि होती है। सारांश यह है कि उदय से दूसरे दिन के उदय पूर्व तक वही दिन प्रथम दिन होता है ।। ७२ ।।

अवरे त्वर्द्धरात्रात्प्राक् मृतौ रजसि सूतके ।
पूर्वमेव दिनं प्राहुरूर्द्धं चेदुत्तरेऽहनि ।। ७३ ।।

अन्य लोगों का मत है कि आधी रात से पहिले जन्म, मरण व रज निकलने पर पूर्व और अर्धरात्रि के पश्चात् होने पर आगे वाला दिन प्रथम दिनहोता है ।। ७३ ।।

ज्वरितारजस्वलाशुद्धिः संग्रहे—

संग्रह ग्रन्थ में बताया है कि जब रोगिणी स्त्री रजस्वला हो तो उसकी शुद्धि कैसे होती है।

बुखार से युक्त पुष्पवती की शुद्धि का ज्ञान

आतुरा चेदृतुमती तस्याः स्नानं कथं भवेत्।
स्पृष्ट्वा तु तां परा स्नायाद्दश कृत्वा ह्यनातुरा ॥ ७४ ॥
वासोभिर्दशभिश्चैव परिधार्यं यथाक्रमम्।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु पुण्याहेन विशुद्धयति ॥ ७५ ॥

उत्तर—उस पुष्पवती स्त्री को कोई दूसरी स्वस्थ स्त्री स्पर्श करके स्वयं दस बार स्नान करे और दस बार वस्त्रों का परिवर्तन यथा क्रम करके पुण्याहवाचन के साथ ब्राह्मणों को भोजन कराने से रजस्वला की शुद्धि होती है ॥ ७५ ॥

अथ रजस्वलास्नानमुहूर्तः—

अब आगे प्रथम रजस्वला के स्नान मुहूर्त को बताते हैं।

अत्रिः—

अत्रि के आधार पर

[1]ब्राह्मानुराधाश्विभसौम्यभेषु हस्तानिलाखण्डलवासवेषु।
विश्वार्यमर्क्षोत्तरभाद्रभेषु वराङ्गनास्नानविधिः प्रदिष्टः ॥ ७६ ॥

ऋषि अत्रि ने बताया है कि रोहिणी, अनुराधा, अश्विनी, मृगशिरा, हस्त, स्वाती, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, उत्तराषाढा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में प्रथम पुष्पवती को स्नान कराना चाहिए ॥ ७६ ॥

अन्यदपि—

अन्य के आधार पर

अश्विनी रोहिणी चित्रा स्वाती पौष्णं तथोत्तरा।
ऋतुस्नानायनं मैत्रं हस्तपुष्यौ मृगो वसु ॥ ७७ ॥

अन्य स्थान पर भी बताया है कि अश्विनी, रोहिणी, चित्रा, स्वाती, रेवती, तीनों उत्तरा, अनुराधा, हस्त, पुष्य, मृगशिरा और धनिष्ठा नक्षत्र में प्रथम रजोवती को स्नान कराना चाहिए ॥ ७७ ॥

मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है 'हस्तानिलाश्विमृगमैत्रवसुध्रुवाख्यः' (५ प्र० ४ श्लो० ॥ ७७ ॥

विशेष—७६ वाँ पद्य मु० चि० की पी० टी० में दैवज्ञवल्लभ के नाम से उद्धृत है ॥ ७७ ॥

वारों में स्नान का फल

सोमे क्लेशं भयं शुक्रे नाशं च शनिसौम्ययोः।
गुरुसूर्यकुजानां तु वाराः सर्वार्थसिद्धिदाः ॥ ७८ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० ४ श्लो० पी० टी०।

सोमवार में प्रथम पुष्पवती का स्नान करने पर क्लेश, शुक्र में भय, शनि, बुध में नाश, गुरु, सूर्य, मंगलवार में होने पर समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥ ७८ ॥

कब और कैसे करने का ज्ञान

निशावसाने दिवसे चतुर्थे शुभे दिने वाथ तिथौ च ऋक्षे ।
एलाघनौशीरजलैः सचन्दनैः स्नायाच्च नारी ऋतुसंप्रयोगे ॥ ७९ ॥

रात्रि की समाप्ति में चौथे दिन, शुभ वार, तिथि, नक्षत्र में जल में इलाइची व कपूर खश और चन्दन छोड़ कर स्त्री को प्रथम पुष्प में स्नान करना चाहिए ॥ ७९ ॥

अथ रजस्वलाशुद्धिमन्त्रः—

रजस्वला की शुद्धि का मन्त्र

आदिर्भवान् गुप्तमनुं तन्मध्ये रजस्वलां देवि वयं नमामः ।
उपोषिता त्रीणि दिना भवन्तो भुक्तैरेतद्वासुदेवं नमामः ॥ ८० ॥

अथ गर्भाधानमुहूर्ताः—

अब आगे गर्भाधान के मुहूर्त व विधि को दैवज्ञ के आधार पर बताते हैं ।

तद्विधिश्च दैवज्ञः—

[1]अलङ्कृतामार्तवसंयुतां च गेहे शुभे दीपयुते निवेशयेत् ।
तिलागुडापूपयुतं च पूगं स्त्रीभ्यश्च दद्याद्द्विजमन्त्रपूजयेत् ॥ ८१ ॥

दैवज्ञ का कहना है कि जब स्त्री पुष्पवती हो तो उसे आभूषण पहिना कर अच्छे घर में दीपक जला कर बैठाना चाहिए और तिल, गुड, मालपुआ, सुपाड़ी स्त्रियों को देना एवं ब्राह्मणों का मन्त्र से पूजन करना चाहिए ॥ ८१ ॥

[2]आरोपयेदिमां तत्र पट्टके शोभने ततः ।
पुण्याहं वाचयित्वा तु ब्राह्मणान् भाजयेत्सुधीः ॥ ८२ ॥

शुद्ध होने पर स्त्री को अच्छे पीढ़े पर बैठा कर पुण्याह वाचन कराना तथा ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ॥ ८२ ॥

[3]त्रिरात्रं च सकृद्भुक्त्वा स्मृतिप्रोक्तैः व्रतैर्युता ।
चतुर्थे सङ्गमेऽतीत स्नात्वा धर्मं समारभेत् ॥ ८३ ॥

रजस्वला को तीन दिन एक बार भोजन करके स्मृति प्रतिपादित व्रत से युक्त होकर चौथे दिन सम्भोग व्यतीत होने पर स्नान करके धर्म का आचरण करना चाहिए ॥ ८३ ॥

---

१. ज्यो० नि० १०८ पृ० ३५ श्लो० । २. ज्यो० नि० १०८ पृ० ३६ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० १०८ पृ० ३७ श्लो० ।

नारदः—

नारद जी के आधार पर सम्भोग के दिन व उनका फल

[1]षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशेत् ।
युग्मासु जायन्ते पुत्रास्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥ ८४ ॥

ऋषि नारद जी ने बताया है कि मासिक धर्म के दिन से सोलह दिन तक स्त्रियों को गर्भ धारण की क्षमता होती है। उन सोलह दिनों में समदिनों में ४।६।८ आदि में सम्भोग करने पर पुत्र और विषम ५।७।९ आदि में करने पर पुत्री होती है'। ८४ ॥

ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा है 'षोडशर्तु.......(मु० चि० ५ प्र० ६ श्लो० पी० टी०) ॥ ८४ ॥

तथा वसिष्ठ संहिता में भी 'दिनेषु युग्मेषु च वक्ष्यमाणयोगैः सुनार्थी स्वसतीमुपेयात् । दिनेष्वयुग्मेषु च कन्यकार्थी....(२४ अ० ४२ श्लो०) ऋतुरपि दशषड्वासराणि प्रथमनिशात्रितयं न तत्र गम्यम् (२४ अ० ४८ श्लो०) ॥ ८४ ॥

और भी ज्योतिष सार में 'ऋतुः स्वामाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः। तासामाद्यश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या। त्रयोदशी च शेषाः स्युः प्रशस्ता दश वासराः। तस्मात् त्रिरात्रं चाण्डालीं पुष्पितां परिवर्जयेत्' (५५ भृ० १-२ श्लो०) । ८४॥

एवं जातक पारिजात में भी 'विभावरो षोडश भामिनीनामृतूद्गमाद्या ऋतु कालमाहुः । नाद्याश्चतस्राऽत्र निषेकयोग्याः पराश्च युग्माः सुतदाः प्रशस्ताः' (३ अ० १७ श्लो०) ॥ ८४ ॥

सोलह दिनों में गर्भ सम्भव से सन्तान

तुर्ये पुत्रभवे क्लेशं पञ्चमे समता फलम् ।
षष्ठेऽल्पायुः सुतः प्रोक्तः सप्तमे कन्यका तथा ॥ ८५ ॥
अष्टमे पुत्र उत्कृष्टो नवमे कन्यका शुभा ।
दीर्घायुर्दशमे पुत्रः कन्यकैकादशे वरा ॥ ८६ ॥
द्वादशे धर्मकृत्पुत्रो सती कन्या त्रयोदशे ।
चतुर्दशदिने पुत्रः लक्ष्मीवान्सात्विकः शुभः ॥ ८७ ॥
पञ्चदशदिने कन्या लक्ष्मोसौभाग्यसंयुता ।
दिने षोडशके पुत्रो दीर्घायुर्नृपतिर्भवेत् ॥ ८८ ॥

प्रथम बता चुके हैं कि तीन दिन तक सम्भोग वर्जित होता है और चौथे दिन सम्भोग से गर्भ होने पर पुत्र होता है तथा उससे क्लेश, पाचवें दिन में समता, छठे दिन में अल्पायु पुत्र, सातवें दिन में कन्या, आठवें दिन उत्कृष्ट पुत्र, नवें दिन में अच्छी

---

१. मु० चि० ५ प्र० ५–६ श्लो० पी० टी० ।

कन्या, दसवें दिन में दीर्घायु पुत्र, ग्यारहवें दिन में सुन्दर कन्या, बारहवें दिन धर्मात्मा पुत्र, तेरहवें दिन सती कन्या चौदहवें दिन में शुभ, सात्विक, धनी पुत्र, पन्द्रहवें दिन लक्ष्मी व सौभाग्य से युक्त कन्या और सोलहवें दिन के सम्भोग से गर्भाधान होने पर पुत्र दीर्घायु, राजा होता है ॥ ८५-८८ ॥

ज्योतिष सार में कहा है 'रात्रौ चतुर्थ्यां पुत्रः स्यादल्पायुर्धनवर्जितः। पञ्चम्यां पुत्रिणी नारी षष्ठ्यां पुत्रस्तु मध्यमः। सप्तम्यामप्रजायोषिदष्टम्यामीश्वरः पुमान्। नवम्यां सुभगा नारी दशम्यां प्रवरः सुतः। एकादश्यामधर्मा स्त्री द्वादश्यां पुरुषोत्तमः। त्रयोदश्यां सुता पापा वर्णसङ्करकारिणी। धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च आत्मवेदी दृढव्रतः। प्रजापते चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां पतिव्रता। आश्रयः सर्वभूतानां षोडश्यां जायते पुमान्' (५५ पृ० १-५ श्लो०) ॥ ८५-८८ ॥

तथा जातक पारिजात में भी 'पुत्रोऽल्पायुर्दारिका वंशकर्तावन्ध्या पुत्रः सुन्दरीशो विरूपा। श्रीमान् पापा धर्मशीलस्तथा श्रीः सर्वज्ञः स्यात् तुर्यरात्रात् क्रमेण' (३ अ० १८ श्लो०) ॥ ८५-८८ ॥

वृहस्पतिः--

बृहस्पति जी के आधार पर

निशाषोडशकं नारी संज्ञा चर्तुमतीति सा।
तावन्योन्यं प्रजास्थाने नैवाद्या हि चतुष्टयम् ॥ ८९ ॥

बृहस्पति जी ने बताया है कि स्त्रियों को उक्त सोलह रात ऋतुमती कहा जाता है। इसमें प्रथम चार रात्रियों को छोड़कर सन्तान की इच्छा से पतिपत्नी को संभोग करना चाहिए ॥ ८९ ॥

शेषेष्वोजे स्त्रियो जन्म युग्मे पुंसः प्रकीर्तितम्।
इति कृत्वा निषेकं तु प्रजा भवति केवलम् ॥ ९० ॥

शेष जो १२ बारह रात्रियाँ उनमें विषम रात्रि में संभोग से गर्भ होने पर कन्या और समरात्रियों में पुत्र का जन्म होता है। केवल इन १२ रात्रियों में निषेक करके प्रजा (सन्तान) होता है ॥ ९० ॥

बृहस्पतिः--

बृहस्पति जी के आधार पर निषेक में उत्तमादि नक्षत्र

[1]हरिहस्तानुराधाश्च स्वाती बारुणवासवम्।
त्रीण्युत्तराणि मूलं च रोहिणी चोत्तमाः स्मृताः ॥ ९१ ॥
चित्रादैत्येन्द्रवातिष्य तुरङ्गं चातिमध्यमा।
शेषभान्यधमान्याहुर्वर्जनीया निषेकके ॥ ९२ ॥

१. मु० चि० ५ प्र० ५-६ श्लो० पी० टी०।

बृहस्पति जी ने बताया है कि संभोग में श्रवण, हस्त, अनुराधा, स्वाती, शतभिषा, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, मूल और रोहिणी नक्षत्र उत्तम, चित्रा, मूल, पुष्य, अश्विनी ये मध्यम और अवशिष्ट नक्षत्र अधम होते हैं ॥ ६१-९२ ॥

ज्योतिष सार में कहा है 'विष्णुप्रजेशरविमित्रसमीरपौष्णमूलोत्तरावरुणमानि निषेककार्ये। पूज्यानि पुष्यवसुशीतकराश्विचित्रादित्याश्च मध्यमफला विफलास्त्वन्ये' (५६ पृ०) ॥ ६१-९२ ॥

शुभ वारों का ज्ञान

सोमज्ञगुरुशुक्राणां वारा वर्गादयः शुभाः।
तेषां दृष्ट्यादयश्चैव न तेषां सर्वदा गुणान् ॥ ९३ ॥
शुक्रेऽधिके दलैर्युक्ते पुमान्वायौ च दक्षिणे।
रक्ताधिके बलैर्युक्ते नारी वायौ च वामगे ॥ ९४ ॥

कहा है कि चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्रवार व इनके वर्ग या दृष्टि निषेककाल में शुभावह होती है अन्य ग्रहों के वार वर्गादि निषेक में अशुभ होते हैं ॥ ९३ ॥

ज्योतिष सार में कहा है 'निषेके वाराः शशाङ्कार्यसितेन्दुजाश्च' (५६ पृ०) ॥९३॥

वीर्य या रुधिर की अधिकता से पुत्र स्त्री संतान

आधान के समय पुष्ट शुक्र की अधिकता हो और दाहिना स्वर चलता हो तो पुत्र और रुधिर का बाहुल्य हो और बायाँ स्वर चलता हो तो कन्या का जन्म होता है ॥ ६४ ।

माहेश्वरः—

माहेश्वर जी के आधार पर

लब्ध्वा चन्द्रबलं ऋतौ स्वयुवतीं गच्छेत्सुतार्थी पुमां-
स्त्यक्त्वा रात्रिचतुष्टयं प्रथमकं मूलं मघां रेवतीम्।
पक्षार्द्धं च चतुर्दशीं प्रमुदितः पक्षान्तदर्शौ निशां
श्राद्धस्याद्यदिनं दिनं दिननिशोः सन्धिं च पर्वण्यपि ॥ ९५ ॥

माहेश्वरजी का कहना है कि पुत्र की इच्छा करने वाले पुरुष को ऋतु समय में चन्द्र बल को जानकर पहिले ४ चार रात्रियों को छोड़कर तथा मूल, मघा, रेवती, अष्टमी, चौदस, पूर्णिमा, अमावस्या, श्राद्ध और श्राद्ध का पहिला दिन और दोनों सन्ध्या व पर्वों का त्याग करके अपनी पत्नी से रात में संभोग करना चाहिए ॥ ६५ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठजी के आधार पर

[1]पौष्णद्वये पैत्रभयाम्यसार्पविष्णुद्वये नैधनजन्मभेषु।
उत्पातपापग्रहदूषितेषु न कार्यमाधानमनिष्टलग्ने ॥ ९६ ॥
[2]उपप्लवे वैधृतिपातयोश्च विष्टयां दिवापारिघपूर्वभागे।
सन्ध्यासु सर्वास्वपि मातृपित्रोर्मृतेऽह्नि पत्नीगमने विवर्ज्यम् ॥ ९७ ॥

---

१. व० स० २४ अ० ४० श्लो०।　२. व० सं० २४ अ० ४१ श्लो०।

ऋषि वसिष्ठ जी ने बताया है कि रेवती, अश्विनी, मघा श्लेषा, श्रवण, धनिष्ठा, अष्टम व जन्म राशि, उत्पात और पापग्रह से दूषित नक्षत्र तथा अनिष्ट लग्न में गर्भाधान नहीं करना चाहिए ॥ ९६ ॥

उपद्रव, वैधृति, व्यतीपात, भद्रा, दिन में, परिघ का पूर्वभाग, सब सन्ध्याओं में और माता-पिता के श्राद्ध दिनों में पत्नी से संभोग नहीं करना चाहिए ॥ ९६-९७ ॥

मुहूर्तमार्तण्ड में कहा है 'स्वस्त्रीं प्राङ्गिनट् चतुष्कासमदिनविवरश्राद्धन्त्प्राग्दिनानि, त्यक्त्वा मूल मघान्ते वसुकलिजनिमाहानि पर्वाणि चर्तौ। याहीज्यार्केन्दुरुग्नैर्विषममल-वगैरुद्बलैर्भोः सुनार्थिन्, व्यस्तैरेतैरिहैवायुगहनिमुदितः कन्यकेच्छो सुचन्द्रे' (३ प्र० ३ श्लो०) ॥ ९६-९७ ॥

अन्य भी मुहूर्तचिन्तामणि में 'गण्डान्तं त्रिविधं त्यजेन्निधनजन्मर्क्षे च मूलान्तकं, दास्रं पौष्णमथोपरागदिवसं पातं तथा वैधृतिम्। पित्रोः श्राद्धादिनं दिवा च परिघाद्यर्धं-स्वपत्नीगमे, मान्युत्पातहतानि मृत्युभवनं जन्मर्क्षतः पापभम्' (५ प्र० ५ श्लो०) ॥ ९६-९७ ॥

अथ लग्नशुद्धिः—

शुक्रजातके—

शुक्रजातक के वशलग्नशुद्धिज्ञान

सूर्यशुक्रौ स्वांशस्थौ पुरुषोपचयर्क्षगौ स्त्रीणाम्।
कुजेन्दू वीर्याढ्यौ स्वांशोपचयसंस्थितौ ॥ ९८ ॥
गर्भप्रदौ पञ्चमे च निर्बले क्रूरसंयुते।
सुतेशेऽस्तङ्गते नीचे न गर्भः क्रूरसंयुते ॥ ९९ ॥

शुक्रजातक में बताया है कि पुरुष की राशि से उपचय राशियों में अपने नवांश में सूर्य, शुक्र बली हों तथा स्त्री राशि से अपने नवांश मे उपचय में मंगल चन्द्र हों तथा पंचम में निर्बल पाप हो तो गर्भ देने वाले होते हैं।

पञ्चमेश के अस्त या नीच में या पांचवें भाव में बलहीन पाप ग्रह होने पर गर्भ की सम्भावना नहीं होती है ॥ ९८–९९ ।

गर्गः —

गर्गजी के आधार पर

लग्नस्थो वा सुतस्थो वा धर्मस्था वा बली ग्रहः।
प्रोक्तर्क्षे शुभवारे च धारयेद्गर्भमुत्तमम् ॥ १०० ॥

आचार्य गर्ग ने बताया है कि लग्न या नवम या पञ्चम में बली ग्रह उक्त नक्षत्र व शुभ वार में होता है तो उत्तम गर्भ को स्त्री धारण करती है ॥ १०० ॥

गुरुः—

गुरु के आधार पर

स्वांशके वा स्वराशौ वा शुक्रार्कोपचये पुमान् ।
त्रिकोणे बलवज्जीवे योगत्रितयमुच्यते ।। १०१ ।।

गुरु ने बताया है कि अपने नवांश वा राशि वा उपचय स्थान में पुरुष राशि सूर्य शुक्र में हों या त्रिकोण में बली ग्रह हो तो इन तीनों योगों में उत्तम सन्तान नहीं होती है ।। १०१ ।।

४ अन्य योग

गुर्वर्कावोजराशिस्थावोजांशेषु विलग्नतः ।
जावेन्दू वा विलग्नस्थौ स्थानादिबलसंयुतौ ।। १०२ ।।
एवं योगैश्चतुर्भिस्तु पुत्राह्वर्तौ निषेकतः ।
विबीजानामिमे न स्युः उलूकस्यार्करश्मिवत् ।। १०३ ।।

जब कि आधान लग्न से गुरु-सूर्य विषम राशि या नवांश में या गुरु या चन्द्र लग्न में स्थानादि बल से सम्पन्न हों तो इन चारों योगों में निषेक करने पर पुत्र होता है । ये योग नपुंसक के लिए विफल होते हैं । जैसे उल्लू को सूर्य दर्शन नहीं होता है ।। १०२–१०३ ।।

वसिष्ठ संहिता में कहा है—'आधानलग्ने विषमांशराशौ जावेन्दुजाभ्यां युतवीक्षिते वा । नान्यैः सुपुत्रस्त्वथ पापखेटैः पापी च मिश्रैर्लिर्मिविमिश्रः । युग्मांशलग्ने बलयुक्त शुक्रनिशाकराभ्यां युतवीक्षिते वा । नान्यैः सुकन्या त्वथ पापरूपा पापैस्त्वशेषं तु विचिन्त्य वाच्यम् ।। ओजक्षांशे लग्नगे वीर्ययुक्त जावेन्द्वर्कैरोजराश्यशकस्थैः । पुञ्जन्म स्याद् व्यत्यये कन्यका स्यान्मिश्रे षण्ढो द्व्यंगगैर्द्वित्रिजन्म ।। ओजांशकर्क्षो विषमर्क्ष-संस्थः पुंजन्म कारी रविसूनुरेकः । विचार्य वीर्यं पुरुषग्रहाणां वाच्योऽथ पुत्रस्त्वथ पुत्रिका वा । चन्द्रार्कपुत्रक्षितिजैः स्ववर्गे बृहस्पतौ धर्मविलग्नपुत्रतो । यागेष्वपत्यं भवतीह निश्चयादमी च योगा विफला विबीजिनाम्' (२४ अ० ४२–४७ श्लो०) ।। १०२–१०३ ।।

बृहज्जातक में भी 'रवीन्दुशुक्रा वनिजैः स्वभागगैर्गुरौ त्रिकाणोदयसस्थितेऽपि वा । भवत्यपत्यं हि विबीजिनामिमे कराहिमांशोर्विदशामवाफला' (४ अ० ३ श्लो०) ।।

अब आगे निषेक के स्थिर होने पर जो लग्न या जन्म लग्न या प्रश्न लग्न से पुत्र पुत्री के ज्ञान वराह मिहिर की उक्ति से बताते हैं ।

[1]वाराहः—

वराहजी के आधार पर पुंस्त्री विभाग ज्ञान

ओजर्क्षे विषमांशकेषु बलिभिर्लग्नार्कगुर्विन्दुभिः
पुंजन्म प्रवदेत्समांशकगतैर्युग्मेषु तैर्योषितः ।

१. बृ० जा० ४ अ० ११ श्लो० ।

गुर्वर्कौ विषमे नरं शशिसुतौ वक्रश्च युग्मे स्त्रियं
द्व्यङ्गस्था बुधवीक्षणाच्च यमलौ कुर्वन्ति पक्षे स्वके ॥ १०४ ॥

आचार्य वराह ने बताया है कि यदि लग्न (निषेक, जन्म, प्रश्न) सूर्य गुरु और चन्द्रमा ये बली होकर विषम राशि में विषम नवांश में हों तो पुरुष का जन्म होता है। यदि लग्न, सूर्य, गुरु व चन्द्रमा सम राशि, सम के नवांश में हों तो स्त्री का जन्म होता है। यदि गुरु और सूर्य विषम राशि में हों तो पुत्र तथा चन्द्रमा, शुक्र व मंगल सम राशि में हों तो स्त्री का जन्म होता है।

यदि चन्द्र, शुक्र, मंगल द्विस्वभाव राशि में हों और बुध से दृष्ट हों तो अपने पक्ष में यमल अर्थात् दो सन्तान होती है। यहाँ विशेष यह है कि ४ राशियां द्विस्वभाव संज्ञा वाली होती हैं। उनमें विषमों में पुत्र और सम दोनों में कन्या सन्तान होती है ॥ १०४ ॥

लघुजातक में कहा है 'बलिनौ विषमेऽर्कगुरू नरं स्त्रियं समगृहे कुजेन्दुसिताः। यमलौ द्विशरीरांशेष्विन्दुज्ञदृष्टचा स्वपक्षसमौ' ॥ १०४ ॥

तथा सारावली में भी 'विषमे विषमांशगता होराशशिजीवभास्करा बलिनः। कुर्वन्ति जन्म पुंसां समे समांशे तु युवतीनाम् ॥ ओजर्क्षे गुरुसूर्यौ बलिनौ पुंसः समे सितेन्दुकुजाः। कन्यानां जन्मकरा गर्भाधाने स्थिता बलिनः ॥ मिथुने चापेऽर्कगुरू बुधदृष्टौ दारकद्वयं कुरुतः। स्त्रीयुग्मं कन्यायां सितशशिभौमाशये च बुधदृष्टाः' (८ अ० १४-१६ श्लो०) ॥ १०४ ॥

पराशरः—

पराशरजी के आधार पर

'ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः ॥ १०५ ॥

ऋषि पराशर ने बताया है कि स्त्री के ऋतु स्नान करने के पश्चात् यदि पुरुष उससे सम्भोग नहीं करता तो घनघोर भ्रूणहत्या का फल निश्चय ही भोगता है ॥१०५॥

अस्यापवादः मदनरत्ने व्यासः—

अब आगे किस अवस्था में सम्भोग न करने पर पाप नहीं होता है। इसे मदनरत्न में व्यास के वाक्य से बताते हैं।

व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु।
ऋतुकालेपि नारीणां भ्रूणहत्या प्रमुच्यते ॥ १०६ ॥

व्यासजी ने बताया है कि रोगी या जेल में वा प्रवास में या पर्वों में स्त्री के ऋतुकाल में भी सम्भोग न करने पर जो भ्रूण हत्या होती, उससे मुक्त होता है। सारांश यह है कि उक्त स्थिति होने पर दोष नहीं होता है ॥ १०६ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० ७ श्लो० पी० टी० में शातातपोक्ति से है।

अथ प्रतिमासे गर्भस्यावयवोत्पत्तिमासाधिपाः—

अब आगे गर्भ होने पर प्रति मास में किस शरीरावयव की उत्पत्ति होती है, इसे बताते हैं।

यवनः—

यवनाचार्य के वाक्य से शरीरावयव उत्पत्ति ज्ञान

[1]आद्ये तु मासे कललं द्वितीये शिरस्तृतीयेऽपि भवन्ति शाखाः।
अस्थीन्यथ स्नायुशिराश्चतुर्थे मज्जा च चर्माण्यपि पञ्चमे च ॥ १०७ ॥
षष्ठे त्वसृक्रोमनखाः सकृच्च चेतस्थिता सप्तममासि चेष्टा।
तृष्णाशनास्वादनमष्टमे स्यात्पूर्वापरार्द्धा नवमे रतिश्च ॥ १०८ ॥
स्रोतोभिरुद्घाटितपूर्णदेहो गर्भोऽर्कमासे दशमे प्रसूतेः ॥ १०९ ॥

आचार्य यवन ने बताया है कि प्रथम मास में कलल (शुक्र शोणित संमिश्रण), दूसरे में सिर, तीसरे में हस्तादि अवयव व हड्डी, चौथे में स्नायु शिरा, पांचवें में मज्जा व चमड़ा, छठे में रुधिर, रोम, नख और एकवार चेतना, सातवें में चेष्टा (हिलना-डुलना), आठवें में तृष्णा, भोजन आस्वादन, नवें में इच्छा और दसवें मास में समस्त स्रोतों से अर्थात् अवयवों से युक्त पूर्ण देह गर्भ से बाहर होता है यह गिनती सौरमास से होती है ॥ १०७–१०६ ॥

सारावली में कहा है 'मासेष्वाधानादिषु गर्भस्य यथा क्रमेण जायन्ते। सप्तसु कलिलाण्डकशाखास्थित्वग्रोमचेतनताः ॥ मासेऽष्टमे च तृष्णा क्षुधा च नवमे तथोद्वेगः। दशमे त्वथ सम्पूर्णः पक्वमिव फलं पतति गर्भः' (८ अ० २६–३०) ॥ १०७–१०९ ॥

तथा वृ० जा० में 'कललघनाङ्कुरास्थिचर्माङ्गजचेतनताः' (४ अ० १६ श्लो०) ॥ १०७–१०६ ॥

और भी यवनेश्वर ने कहा है 'आद्ये तु मासे कललं द्वितीये पेशिस्तृतीयेऽपि भवन्ति शाखाः। अस्थीन्यथ स्नायुशिराचतुर्थे मज्जान्त्रचर्माण्यपि पञ्चमे तु। षष्ठे त्वसृग्रोमनखैर्यकृच्च चेतस्विता सप्तममासि चिन्त्या। तृष्णाशनास्वादनमष्टमे स्यात् स्पर्शोपरोधो ·वमे रतिश्च। स्रोतो···' (वृ. जा ४ अ. १६ पी. टी.) ॥१०७१०९॥

तथा ज्योतिषार में भी 'कललं च घनं शाखास्थित्वग्रोमोद्गमः स्मृतिः। भुक्तिरुद्वेग-संभूतिर्मासेष्वाधानतः क्रमात्' (५६ पृ० १ श्लो०) ॥ १०७–१०६ ॥

अथ मासेश्वराः —

दस मासों के स्वामियों का ज्ञान

कुजास्फुजिज्जीवरवीन्दुसौरशशाङ्कलग्नेन्दुदिवाकराणाम्।
मासाधिपत्यप्रभवो न चैषां जयोपघातैर्ग्रहवद्भवन्ति ॥ ११० ॥

---

१. मु० चिं० ५ प्र० १६ श्लो० पी० टी० में 'द्वितीयेपेशि' 'चतुर्थेमज्जान्त्र' इत्यादि पा० है तथा पृ० ७–११० तक श्लो० है।

गर्भ के प्रथम मास का मंगल, दूसरे का शुक्र, तीसरे का गुरु, चौथे का सूर्य, पांचवें का चन्द्र, छठे का शनि, सातवें का चन्द्रमा, आठवें का लग्नेश, नवें का चन्द्र और दशवें मास का स्वामी सूर्य होता है। इनके उक्त मासों में जयो या शुभ बली होने पर गर्भ सुखी और पीड़ित होने पर गर्भ दुःखी होता है ॥ ११० ॥

[1]तथाच सूक्ष्मजातके—

और भी लघुजातक में

कलुषैः पीडापतनं निपीडितैर्निर्मलैः पुष्टिरिति ॥ १११ ॥

उक्त मासेश्वर पाप से पीड़ित होने पर उस मास में गर्भ का पतन और शुभयुक्त मासेश्वर के होने पर गर्भ की पुष्टि होती है ॥ १११ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने संस्कारोक्तं एकोनपञ्चाशत्तमं गर्भाधानप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पं० गयादत्तजी के पुत्र ज्योतिषी पं० रामदीनजी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन नाम के संग्रह ग्रन्थ का गर्भाधान नामवाला उनचासवां प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ४९ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधर-चतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्यैकोनपञ्चाशद्गर्भाधानप्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ४९ ॥

---

1. ल० जा० ५ अ० ६ श्लो० ।

अथ पञ्चाशत्तमं पुंसवनप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे पचासवें प्रकरण में पुंसवन किसे कहते हैं तथा यह कब किया जाता है, इसे बताते हैं ।

पुंसवन का लक्षण

उत्पत्स्यमानस्य वैजिकगार्भिकदोषपरिहारपुरुषताज्ञानोदयप्रतिरोधिपरिहारं पुंसवनम् ।

पैदा होने वाले जीव का बीज व गर्भजनित दोष के परिहार पुरस्सर पुरुषत्व के ज्ञान के उदय के प्रतिरोधी का परिहार करने को पुंसवन कहते हैं ।

वृहस्पतिः—

बृहस्पतिजी के आधार पर

गर्भे सुस्थापिते चास्य वक्ष्ये पुंसवनस्य च ।
काले यस्मिन्कृतो गर्भः पुमान्भवति निश्चितम् ।। १ ।।

स्त्रीणां सर्वक्रियारम्भे भर्तुर्गोचरतः फलम् ।
यात्रापुंसवनोद्वाहे विशुद्धिर्योषितः सदा ।। २ ।।

वृहस्पतिजी ने बताया है कि गर्भ की अच्छी प्रकार स्थिति होने पर उसके पुंसवन संस्कार को मैं बताता हूँ, जिसके करने पर निश्चय से पुरुष ही उत्पन्न होता है ।। १ ।।

प्रायः स्त्रियों के समस्त कार्यों में उसके पति की राशि के आधार पर गोचरीय शुभाशुभता का विचार किया जाता है, किन्तु यात्रा, पुंसवन, विवाह में सदा स्त्री राशि से गोचर ग्रहों का शुभाशुभ जानना चाहिये ।। २ ।।

व्यवहारचण्डेश्वरः—

विवाहकार्यं कुसुमप्रतिष्ठा गर्भप्रतिष्ठा वनिताविशुद्धौ ।
अन्यानि कार्याणि धवस्य शुद्धौ पत्यौ निवृत्ते पुनरात्मशुद्धया ।। ३ ।।

व्यवहार चण्डेश्वर में कहा है कि विवाह, गर्भाधान, गर्भ प्रतिष्ठा (पुंसवन सीमन्त) संस्कार स्त्री के गोचर में ग्रह शुद्धि होने पर करना और अन्य कार्य पति की राशि से विचारना तथा पति के निवृत्त होने पर अपनी राशि से ही शुभाशुभ गोचरीय समझकर करना चाहिये ।। ३ ।।

संहिताप्रदीपे—

संहिता प्रदीप के आधार पर

उद्वाहकर्मसु शशाङ्कबलं यथावल्लग्ने प्रदानसमये वरकन्ययोस्तु।
ग्राह्यं विवाहसमयादथ भर्तुरेव सीमन्तपुंसवनयोः पुनरङ्गनायाः ॥ ४॥

संहिता प्रदीप में बताया है कि कन्यादान के लग्न में विवाह कार्य में वर-कन्या इन दोनों के चन्द्रबल का ग्रहण करना और विवाह के बाद पति का चन्द्रबल तथा पुंसवन एवं सीमन्त में स्त्री के चन्द्रबल का ग्रहण करना चाहिये ॥ ४॥

स्त्री के चन्द्रबल का ग्रहण

आधाने सम्प्रदाने च विवाहे गर्भशोधने।
स्त्रीणां चन्द्रबलं योज्यं पुंसां नैव कदाचन ॥ ५॥
स्त्रीणां सर्वक्रिया कार्या विशुद्धया स्वामिनः सदा।
स्वशुद्धया पतिशुद्धया वा गर्भाधानादिकं पुनः ॥ ६॥

बताया गया है कि गर्भाधान, कन्यादान, विवाह, गर्भशोधन में स्त्री का चन्द्रबल ग्रहण करना और पुरुष का कभी नहीं करना चाहिये ॥ ५॥

स्त्रियों की समस्त क्रिया पति की गोचरीय शुद्धि से करना, गर्भाधानादि कर्म अपनी व पति शुद्धि से करना चाहिये ॥ ६॥

नारदः—

नारदजी के आधार पर

[1]प्रसिद्धविषये गर्भे तृतीये वाथ मासि च।
कुर्यात् पुंसवनं कर्म सीमन्तं च यथातथा ॥ ७॥
तृतीये वा द्वितीये वा मासि पुंसवनं भवेत्।
व्यक्ते गर्भे भवेत्कार्यं सीमन्तेन सहाथवा ॥ ८॥

ऋषि नारदजी ने बताया है कि गर्भ की स्थिति का निश्चय होने पर अथवा तीसरे महीने में जैसे सीमन्त संस्कार किया जाता है, वैसे ही पूर्वोक्त नक्षत्रादि मे तीसरे मास में पुसवन संस्कार भी करना चाहिये ॥

अथवा गर्भस्थिति ज्ञान होने पर दूसरे मास या तीसरे मास में अथवा सीमन्त संस्कार के साथ ही पुंसवन करना चाहिये ॥ ७-८॥

गर्गः—

गर्गजी के आधार पर

अथ पुंसवनं कुर्यात्तृतीये मासि पुंस्त्विदम्।
शुक्लपक्षे च पूर्वाह्णे चन्द्रताराबलान्विते ॥ ९॥

---

१. ज्यो० नि० १०६ पृ०।

आचार्य गर्गजी ने कहा है कि तीसरे मास में (गर्भस्थ जीव का) शुक्ल पक्ष व पूर्वाह्न में चन्द्र व तारा के बली होने पर पुंसवन करना चाहिये ॥ ९ ॥

स्मृतिकारिकायाम्—

स्मृति कारिका के आधार पर

तृतीये गर्भसंस्कारो मासे पुंसवनं भवेत् ।
आद्यगर्भो न विज्ञातस्तृतीये मासि वै यदि ॥ १० ॥
चतुर्थे मासि कर्तव्यमादिगर्भे स्मृतो विधिः ।
केऽपि सन्तो वदन्त्येवं प्रतिगर्भे तु पुंस्त्विदम् ॥ ११ ॥

स्मृति कारिका में कहा है कि आद्यगर्भ होने पर गर्भस्थ जीव का तीसरे मास में पुंसवन संस्कार करना चाहिये । यदि तीसरे मास तक प्रथम गर्भ का ज्ञान न हो तो चौथे मास में करना चाहिये ।

किन्हीं आचार्यों का मत है कि प्रति गर्भ में इस संस्कार को करना चाहिये ॥ १०–११ ॥

शौनकजी ने कहा है 'व्यक्ते गर्भे तृतीये तु मासे पुंसवनं भवेत् । गर्भेऽव्यक्ते तृतीयेचेच्चतुर्थे मासि वा भवेत्' (मु० चि० ५ प्र० १० श्लो० पी० टी०) ॥१ ०–११ ॥

भृगुजी ने कहा है 'प्राप्ते तृतीयमासे स्फुरद्विन्दुकलापपक्षे च । पुंसवनं पुत्रे गर्भेप्सु गर्भे प्रकुर्वीत' (मु० चि० ५ प्र० ८ श्लो० पी० टी०) ॥ १०–११ ॥

और भी मुहूर्तगणपति में 'द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुसवनं स्मृतम्' (१४ प्र० १५ श्लो०) ॥ १०–११ ॥

पुंसवने गुरुमौढ्यादि—
अथ मासप्राधान्येन विहितत्वाद्
गुरु शुक्रमौढ्येऽपि मलमासेऽपि कर्तव्यम् ॥

अब आगे पुंसवन संस्कार में गुरु-शुक्र का मौढ्य दोष होता है या नहीं, इसे बताते हैं। पुंसवन संस्कार मास की प्रधानता से होता है, यह पूर्व में वर्णित है । इसलिए गुरु-शुक्र के मौढ्य में और मलमास में भी करना चाहिये। ऐसा बृहस्पतिजी ने कहा है ।

तदाह बृहस्पतिः—

बृहस्पतिजी के आधार पर पुंसवन में मौढ्य दोष का अभाव

[1]मासप्रयुक्तकार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः ।
न दोषकृत्तदा मासलक्षणो बलवानिति ॥ १२ ॥

---

१. ज्यो. नि. १०६ पृ० ।

बृहस्पतिजी ने बताया है कि मास में विहित कर्मों में गुरु-शुक्र का मूढत्व दोषप्रद नहीं होता है, क्योंकि मास बलवान् होता है अर्थात् उक्त मास के अतिरिक्त अन्य मासों में वह नहीं किया जा सकता है ॥ १२ ॥

यमः—

यम के आधार पर

[१]गर्भवार्द्धुषिते भृत्ये श्राद्धकर्मणि मासिके।
सपिंडीकरणे नित्ये नाधिमासं विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

आचार्य यम ने बताया है कि गर्भशुद्धि, सूद नौकरी, मासिक श्राद्ध, सपिण्डीकरण और नित्य कार्य में अधिक मास का त्याग नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥

निवन्धचूडामणौ—

निबन्ध चूडामणि के आधार पर

[२]कुर्यात्पुंसवनं प्रसिद्धविषये गर्भे तृतीयेऽपि वा
मासस्फीततनौ तुषारकिरणे पुष्येऽथवा वैष्णवे।
हित्वा कर्कटकं नृयुग्ममबलामन्येष्वरिक्ते तिथौ
शुद्धे नैधनधाम्नि शुक्रशशभृज्ज्ञेसौरिणां वासरे ॥ १४ ॥

निबन्ध चूडामणि में कहा है कि गर्भ की जानकारी होने पर सीमन्तोक्त नक्षत्र मासादि में या तीसरे मास में भी उक्त मास की बली लग्न में, पुष्य या श्रवण में चन्द्रमा के रहने पर कर्क, मिथुन, कन्या लग्न को छोड़कर रिक्ता रहित तिथियों में लग्न से अष्टम में ग्रहों के न रहने पर शुक्र, चन्द्र, बुध और शनिवार में पुंसवन संस्कार करना चाहिये ॥ १४ ॥

विशेष—यह पद्य वसिष्ठ संहिता में पच्चीसवें अध्याय में प्रथम श्लोक में उद्धृत है, किन्तु 'शशभृद्विन्मत्रिणां वासरे' यह पाठान्तर है। मेरी समझ में यही पाठ उचित प्रतीत होता है। ग्रन्थकार ने निबन्ध चूडामणि के नाम से दिया है ॥ १४ ॥

लल्लः—

लल्ल के आधार पर

मूलादित्यशशाङ्कपुष्यहरिभे हस्ते च पुंवासरे
लग्ने कुंभनृयुग्मसिंहगुरुभे नन्दे सभद्रे तिथौ।
मासे युग्मतृतीयकेऽथ धवले पक्षे शुभे रात्रिपे
कुर्यात्पुंसवनं च वृद्धिसुखदं केन्द्रत्रिकोणे शुभे ॥ १५ ॥

आचार्य लल्ल ने कहा है कि मूल, आदित्य, मृगशिरा, पुष्य, श्रवण, हस्त नक्षत्र, पुरुष (मंगल रवि और गुरु) वार, कुम्भ, मिथुन, धनु, मीन लग्न, नन्दा, भद्रा तिथियों

१. ज्यो. नि. १०९ पृ० ४२ श्लो०।
२. व. सं. २५ अ० १ श्लो०।

में, दूसरे या तीसरे मास में, शुक्ल पक्ष, शुभ चन्द्र और केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रहों के रहने पर पुंसवन करना चाहिये। ऐसा करने से वृद्धि और सुख मिलता है ॥ १५ ॥

वारों के आधार पर पुंसवन का फल

काकीव वन्ध्या भवतीति शुक्रे स्वल्पप्रजाः पुंसवने बुधे तु।
सौरेण मृत्युः पयहानिरिंदौ भौमार्कजीवैर्बहुपुत्रलाभः ॥ १६ ॥

शुक्रवार में करने से काक वन्ध्या, बुध में अल्प सन्तान, शनि में मृत्यु, सोम में दूध की हानि और भौम, सूर्य, गुरुवार में पुंसवन करने पर अधिक पुत्रों की प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥

गर्गाचार्य ने कहा है 'सौम्ये मृतप्रजा मन्दे मृत्युर्वन्ध्या च भार्गवे। सोमे दुग्धविहीना स्याच्छेषाः सर्वार्थसिद्धिदाः' (मु० चि० ५ प्र० १० श्लो० पी० टी०) ॥ १६ ॥

बृहस्पतिजी ने भी कहा है 'कुलीरं मिथुनं कन्यां हित्वा शेषाः शुभावहाः। अयुक्तमपि राशौ तु शुभं स्याच्छुभवीक्षिते' (ज्यो० नि० ११० पृ० ८ श्लो०) ॥१६॥

मुहूर्तार्णवे—

मुहूर्तार्णव के आधार पर

पुष्यार्कचन्द्रशिवमूलपुनर्वसुश्चाप्याषाढयुग्महरिभाद्रपदद्वयं च।
एतानि पुंसि कथितानि शुभानि भानि अन्येषु गर्भपतनादिभयानि भेषु ॥ १७ ॥

मुहूर्तार्णव में बताया है कि पुष्य, हस्त, मृगशिरा, आर्द्रा, मूल, पुनर्वसु, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद ये नक्षत्र पुंसवन में शुभ होते हैं और अन्य नक्षत्रों में करने पर गर्भ पतन का भय होता है ॥ १७ ॥

श्रीपतिः—

श्रीपतिजी के आधार पर

[1]श्रवणः सकरः पुनर्वसुर्निऋतिभं च सपुष्यगो मृगः।
रविभूसुतजीववासराः कथिताः पुंसवनादिकर्मसु ॥ १८ ॥

आचार्य श्रीपतिजी ने बताया है कि श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, मूल, पुष्य, मृगशिरा नक्षत्र, सूर्य, भौम, गुरुवासर में पुंसवनादि संस्कार करना चाहिये ॥ १८ ॥

मणिमालायाम्—

मणिमाला के आधार पर

नन्दाभद्रार्कजीवे कुजशशिपवने मैत्रमूले मृगेश्वे
पौष्ण्यादित्या तु पुष्ये श्रुतित्रयपितरे तारकाचन्द्रशुद्धे।
लग्ने कन्यालिकर्के हरिझषसहिते क्रूरगा त्र्यायषष्ठे
सौम्याः केन्द्रत्रिकोणे शुभदिनसहिते कारयेत्पुंसकर्म ॥ १९ ॥
नन्दाभद्रा भवेत्पुंसि स्त्री च पूर्णा जया स्मृता।
रिक्ता नपुंसके ज्ञेया तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ २० ॥

---

१. मु. चि. ५ प्र० ८ श्लो० पी. टी.।

मणिमाला में बताया है कि नन्दा, भद्रा तिथि, कुज, शशि, सूर्य, गुरुवार, अनुराधा, मूल, मृगशिरा, अश्विनी, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा नक्षत्र, चन्द्रशुद्धि, कन्या, वृश्चिक, कर्क, सिंह, मीन लग्न, तीसरे, छठे, ग्यारहवें पाप. केन्द्र व त्रिकोण में शुभ ग्रह व शुभ दिन होने पर पुंसवन संस्कार करना चाहिये ॥ १९ ॥

नन्दा व भद्रा पुरुष संज्ञक, पूर्णा, जया स्त्री संज्ञा वाली और रिक्ता तिथियां नपुंसक होती हैं, अतः उसका त्याग करना चाहिये ॥ २० ॥

नृसिंहः--

नृसिंह जी के आधार पर

[1]गुरुशुक्रबुधेन्दूनां द्रेष्काणा दिवसांशकाः ।
तेषामुदयहोरायां पुंसवेति शुभावहाः ॥ २१ ॥

नृसिंह जी ने कहा है कि गुरु, शुक्र, बुध, चन्द्रमा के द्रेष्काण दिवसांशक होते हैं। इनके उदित लग्नों में अर्थात् लग्न में इन्हीं के द्रेष्काण होने पर पुंसवन संस्कार करने से शुभ फल होता है ॥ २१ ॥

बृहस्पतिः--

बृहस्पति के आधार पर

[2]रिक्तां च पर्वनवमीं त्यक्त्वा पुंसवने शुभाः ॥ २२ ॥

बृहस्पति जी ने बताया है कि रिक्ता और पर्व नवमी को छोड़कर पुंसवन शुभ होता है ॥ २२ ॥

नृसिंह ने कहा है 'सीमन्तोन्नयनस्योक्ततिथिवासरराशिषु । पुसवं कारयेद्विद्वान् सहैवैकदिनेऽथवा' (मु० चि० ५ प्र० १० श्लो०) पी० टी० ।

अथ गर्भे मासाधिपाः--

अब आगे गर्भस्थ बालक के एक मास से दस मास पर्यन्त तक के मासों के स्वामी ग्रहों को बताते हैं।

दस मासों के अधिपति

[3]सितावनेयामरपूज्यसूर्यचन्द्रार्किसौम्योदयचन्द्रसूर्याः ।
मासाधिपाःस्युः क्रमशो दशैते निपीडितो नाशयति स्वमासि ॥ २३ ॥

वसिष्ठ संहिता में बताया है कि १ शुक्र, २ भौम, ३ गुरु, ४ सूर्य, ५ चन्द्र, ६ शनि, ७ बुध, ८ लग्नेश, ९ चन्द्रमा और १० सूर्य क्रम से एक से १० मास तक मासों के स्वामी होते हैं। अर्थात् पहिले का शुक्र दूसरे का मंगल, तीसरे का गुरु इत्यादि

---

१. ज्यो. नि. ११० पृ० १२ श्लो० । २. ज्यो. नि. ११० पृ० ।
३. व. सं. २५ अ. १० श्लो० ।

प्रभु ग्रह समझना चाहिए। यदि मासीय ग्रह अपने मास में पीडित होता है तो उस मास में गर्भस्राव करता है ॥ २३ ॥

विशेष——यह श्लोक वसिष्ठ संहिता में प्राप्त होता है। वहाँ 'चन्द्रार्किसूर्योदयपेन्दुसूर्याः' पाठान्तर उपलब्ध होने से सातवें मास के स्वामी में भी अन्तर मिलता है ॥२३॥

बृहज्जातक में कहा है 'सितकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किबुधाः परतः। उदयपचन्द्रसूर्यनाथाः क्रमशो गदिताः' (४ अ० १६ श्लो०) ॥ २३ ॥

इससे कुछ भिन्न यवनेश्वर का मत 'कुजास्फुजिज्जीवरवीन्दुसौरशशाङ्कलग्नेन्दुदिवाकराणाम्' (बृ० जा० ४ अ० १६ श्लो० भट्टो० टी०) ॥ २३ ॥

अन्य भी मुहूर्त चिन्तामणि में 'मासेश्वराः सितकुजेज्यरवीन्दुसौरिचन्द्रात्मजास्तनुपचन्द्रदिवाकराः स्युः' (५ प्र० ९ श्लो०) ॥ २३ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदनीकृते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने संस्कारोन पञ्चाशत्तमं पुंसवनप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता पण्डित गयादत्त जी के पुत्र पं० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जननामक संग्रह ग्रन्थ का पुंसवन संस्कार नाम वाला पचासवाँ प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ५० ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक प० केशवदेवचतुर्वेदात्मजमुरलीधरचतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्य पुंसवननामकपञ्चाशत्प्रकरणस्य श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ५० ॥

अथ एकपञ्चाशत्तमं सीमन्तप्रकरणं प्रारभ्यते ।

अब आगे इक्यावनवें प्रकरण में सीमन्त किसे कहते हैं और यह संस्कार कब किस तिथि नक्षत्रादि में करना चाहिये, इसे बताते हैं।

सीमन्त का लक्षण

अथ[1]भार्यायां गर्भाभिवृद्धिपरिपन्थिपिशितरुधिरप्रियालक्ष्मीभूतराक्षसीगण-दूरनिरसनक्षमसौभाग्यनिदानसंभूतं सीमन्तम् ।

भार्या के गर्भ की वृद्धि की शत्रु, मांस व खून से प्रेम करने वाली, अलक्ष्मीस्वरूप राक्षसी समुदाय के उपद्रवों को दूर करने में सक्षम और सौभाग्य का कारण भूत सीमन्त संस्कार होता है।

बृहस्पतिः--

बृहस्पति जी के आधार पर

अथातः संप्रवक्ष्यामि कालं सीमन्तकर्मणि ।
प्राप्तिः शुद्धिरिति प्रोक्तं सीमन्तं कर्म ब्रह्मणा ॥ १ ॥
सौरेणैव चतुर्थे स्यान्मासि षष्ठेऽष्टमेऽपि वा ।
मासप्रोक्ता क्रिया ये स्युस्ते सर्वे सौरमासतः ॥ २ ॥
एषु मासेषु सर्वेषु प्राप्ते वा जीवशुक्रयोः ।
मूढभावे न दोषः स्यादधिमासदिनानि च ॥ ३ ॥

बृहस्पति जी का कहना है कि अब मैं सीमन्त संस्कार के समय को बताता हूँ। इसकी प्राप्ति को शुद्धि कहते हैं ऐसा ब्रह्मा जी ने बताया है।

सूर्य मास से ही चौथे या छठें या आठवें मास में सीमन्त कार्य करना चाहिए। मासों में विहित कर्म जितने होते हैं, उन सबको सूर्य मास के आधार पर ही करना चाहिए ॥ २ ॥

इन सब मासों में गुरु या शुक्र के मूढ़ होने व अधिक मास होने से भी दोष नहीं होता है ॥ ३ ॥

नारदः--

नारद जी के आधार पर

[2]चतुर्थे मासि षष्ठे वाप्यष्टमे वा तदीश्वरे ।
बालोपपन्नो दंपत्योश्चन्द्रताराबलान्विते ॥ ४ ॥

---

१. धर्मसि. १४१ पृ० ।

२. मु. चि. ५ प्र० ८ श्लो० पी. टी. तथा ज्यो. नि. ११० पृ० ।

ऋषि नारदजी ने बताया है कि चौथे या छठे या आठवें मास में मासेश्वर के बली होने पर और स्त्री पुरुष के चन्द्र व तारा के अनुकूल होने पर सीमन्त संस्कार करना चाहिए ॥ ४ ॥

काष्र्णाजिनि:--

काष्र्णाजिनि के आधार पर

[1]गर्भालंभनमालभ्य यावता प्रसवस्तदा ।
सीमन्तोन्नयनं कुर्याच्छंखस्य वचनं यथा ॥ ५ ॥

ऋषि काष्र्णाजिनि ने बताया है कि गर्भ के ज्ञान होने से प्रसव से पूर्व तक कभी भी सीमन्त संस्कार करना चाहिए, ऐसा शंख आचार्य का वचन है ॥ ५ ॥

मनु:--

मनुजी के आधार पर

[2]चतुर्थे गर्भमासे स्यात्सीमन्तोन्नयनक्रिया ।
षष्ठेऽष्टमे वा कुर्वीत सूत्रांतरविधानत: ॥ ६ ॥
स्वीकृता यदि सीमंतं प्रसूयेत कथंचन ।
पुत्रं गृहीत्वा विधिवत्पुन: संस्कारमर्हति ॥ ७ ॥

मनु ने बताया है कि गर्भ के चौथे मास में सीमन्तोन्नयन संस्कार करना तथा ग्रन्थान्तरों में प्रतिपादित होने से छठे या आठवें मास में करना चाहिए ॥ ६ ॥

जो स्त्री सीमन्त संस्कार को स्वीकार करके बिना संस्कार के पुत्रवती होती है तो शुद्ध होने पर पुत्र को लेकर शुभ दिन में उसका सीमन्त कराना चाहिए ॥ ७ ॥

कालविधाने--

कालविधान के आधार पर

[3]चतुर्थषष्ठाष्टममासि भाजि सौरेण गर्भे प्रथमे विधेया: ।
सीमन्तकर्म द्विजभामिनीनां मासेऽष्टमे विष्णुवलिं च कुर्यात् ॥ ८ ॥
आधानादष्टमे मासि सीमन्तोन्नयनं शुभम् ।
नवमे मासि वा कुर्याद्यावद्गर्भविमोचनम् ॥ ९ ॥

काल विधान नामक ग्रन्थ में बताया है कि चौथे, छटे या आठवें सौर मास में सीमन्त करना और ब्राह्मण स्त्रियों को आठवें मास में विष्णु वलि करना चाहिए ॥८॥

गर्भाधान से आठवें या नवें या प्रसूति से पूर्व सीमन्तोन्नयन संस्कार शुभ होता है ॥ ९ ॥

---

१. ज्यो. नि. ११० पृ० ।

२. मु. चि. ५ प्र० ८ श्लो० पी. टी. में शौनक के नाम से है ।

३. ज्यो. नि. ११० पृ० ३ श्लो० ।

वसिष्ठः—

वसिष्ठजी के आधार पर

[1]चतुर्थे सावने मासि षष्ठे वाप्यष्टमेऽपि वा ।
अरिक्तपर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे ॥ १० ॥
शुक्लपक्षे च पूर्वाह्णे सीमन्ताख्यो विधिः स्मृतः ॥ ११ ॥

ऋषि वसिष्ठ ने बताया है कि चौथे या छटे या आठवें सावन मास, रिक्ता व पर्व तिथि को छोड़कर, मंगल, गुरु, सूर्यवार, शुक्लपक्ष, पूर्वाह्ण में सीमन्त संस्कार करना चाहिए ॥ १०-११ ॥

नारदः—

नारद जी के आधार पर

विप्रक्षत्रिययोः कुर्याद्दिवा सीमन्तकर्म तत् ।
वैश्यशूद्रकयोरेतद्दिवानिश्यपि केचन ॥ १२ ॥

ऋषि नारद जी ने कहा है कि ब्राह्मण व क्षत्रियों का सीमन्त कर्म दिन में करना और वैश्य शूद्र का दिन एवं रात में भी करना चाहिए, ऐसा किसी-किसी का मत है ॥ १२ ॥

हारीतः—

हारीत जी के आधार पर

सीमन्तं प्राशनं चैव कृष्णपक्षे तु कारयेत् ।
वपनं शुक्लपक्षे च शेषं कर्म द्विपक्षयोः ॥ १३ ॥

ऋषि हारीत जी ने बताया है कि सीमन्त व अन्न प्राशन संस्कार कृष्ण पक्ष में और मुंडन शुक्ल पक्ष में तथा अन्य संस्कार कृष्ण व शुक्ल दोनों पक्षों में करना चाहिए ॥ १३ ॥

शुक्लकृष्णभेदस्तु पक्षप्रकरणे लिखितमस्ति ।

शुक्ल कृष्ण पक्ष का भेद तो पक्ष प्रकरण में लिख दिया है ।

रामः—

रामदैवज्ञ के आधार पर कार्यभेद से स्त्री, पुरुष चन्द्रबल ज्ञान

[2]स्त्रीणां विधोर्बलमुशन्ति विवाहगर्भसंस्कारयोरितरकर्मसु भर्तुरेव ॥१४॥
चन्द्रताराबले कार्यं दंपत्योश्च प्रयत्नतः ॥ १५ ॥

श्रीरामदैवज्ञ ने अपने ग्रन्थ में कहा है कि विवाह, गर्भाधान, सीमन्त, पुंसवन संस्कार में स्त्री का भी अर्थात् पुरुष, स्त्री दोनों के और अन्य संस्कारों (कार्यों) में पति के ही चन्द्रबल का विचार करना चाहिए ॥ १४ ॥

यत्न से स्त्री पुरुष के चन्द्र व तारा दोनों के बली होने पर शुभ काम करना चाहिए ॥ १५ ॥

---

१. ज्यो. नि. ११० पृ० ४ श्लो० । २. मु. चि. ५ प्र० १० श्लो० ।

चूडामणौ—

चूड़ामणि के आधार पर

षष्ठे वाप्यथवाष्टमे शुभतिथौ कन्यालिसिंहे झषे
लग्ने कर्कटके नरग्रहदिने पुंभे अषाढाद्वये।
रौद्रे भाद्रयुते शुभे च करणे केन्द्रत्रिकोणे गुरौ
षट्त्र्यायारिगते खले शुभतिथौ सीमन्तकर्म स्मृतम् ॥ १६ ॥

चूड़ामणि नामक ग्रन्थ में बताया है कि छठे या आठवें मास, शुभ तिथि, कन्या, वृश्चिक, सिंह, मीन या कर्क लग्न, पुरुष ग्रहवार, पुरुष नक्षत्र दोनों आषाढ़ा, आर्द्रा, दोनों भाद्रपदा, शुभ करण, लग्न से केन्द्र या त्रिकोणस्थ गुरु और ३।६।११ में पापग्रह होने पर सीमन्त कार्य करना चाहिये ॥ १६ ॥

मुक्तावल्याम्—

मुक्तावली के आधार पर

मासे षष्ठाष्टमे वा मृगकरहरिभे मूलपुष्यादितिश्च नन्दा
भद्रा च पूर्णा जयतिथि च शुभा भूसुतेऽर्केज्यवारे।
त्यक्त्वा गण्डांतभद्रागरकरणतथा वज्रविष्कंभयोश्च
कुर्यात्सीमन्तकर्म शशिनि बलशुभे सिंहकुंभालिलग्ने ॥ १७ ॥

मुक्तावली में कहा है कि छठे या आठवें मास, मृगशिरा, हस्त, श्रवण, मूल, पुष्य, पुनर्वसु नक्षत्र, नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णातिथि, मंगल, सूर्य, गुरुवार में शुभ सीमन्त गण्डान्त, भद्रा, गर करण, वज्र, विष्कम्भ योगों को छोड़कर बली चन्द्रमा होने पर सिंह या वृश्चिक या कुम्भ लग्न में सीमन्त शुभ होता है ॥ १७ ॥

चूडामणौ—

चूडामणि के आधार पर

[१]पुन्नाम श्रवणं तिष्य स्वाती हस्त पुनर्वसु।
मूलं प्रोष्ठपदं चानुराधामृगशिरोऽश्विनी ॥ १८ ॥
[२]रोहिण्यामैन्दवादित्या पुष्यहस्तोत्तरा त्रिषु।
पौष्णवैष्णवयोश्चैव शुभं सीमन्तकर्मणि ॥ १९ ॥

चूडामणि में बताया है कि श्रवण, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, मूल, रेवती, अनुराधा, मृगशिरा नक्षत्र पुरुष नक्षत्र होते हैं ॥ १८ ॥

रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, तीनों उत्तरा, रेवती और श्रवण नक्षत्र में सीमन्त शुभ होता है ॥ १९ ॥

---

१. व. स. २५ अ० २ श्लो०।

२. मु. चि. ५ प्र० ८ श्लो० पी. टी.।

वाराहः—

वराह जी के आधार पर

शस्ते तिथौ जीवकुजार्कवारे हस्तेन्दुतिष्यादितिविष्णुभेषु ।
विधातृपौष्णोत्तरभेषु नूनं सीमन्तकार्यं शुभदं वदन्ति ॥ २० ॥
[1]केन्द्रत्रिकोणत्रिधनाय सौम्यैर्दुश्चिक्यलाभारिगतैश्च पापैः ।
षडष्टलग्नांत्यविवर्जितेंदौ सीमन्तकार्यं शुभदं शुभांशैः ॥ २१ ॥

आचार्यवराह ने बताया है कि शुभ तिथि, गुरु, मंगल, सूर्यवार, हस्त, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, श्रवण, रोहिणी, रेवती और तीनों उत्तरा नक्षत्रों में सीमन्त संस्कार करने पर निश्चय ही शुभप्रद होता है ॥ २० ॥

लग्न से केन्द्र त्रिकोण, तीसरे व दूसरे स्थान में शुभ होने पर तथा ३।६।११ में पाप ग्रह व छठे, आठवें, लग्न व बारहवें में चन्द्रमा के न होने पर शुभ ग्रह के नवांश में सीमन्त शुभ फल देने वाला होता है ॥ २१ ॥

नारदः—

नारद जी के आधार पर

सीमंतलग्नादेकोपि क्रूरो व्ययसुताष्टसु ।
हंति सीमंतिनीं नारीं तद्गर्भं वा न संशयः ॥ २२ ॥

ऋषि नारद ने बताया है कि सीमन्त संस्कार की लग्न से एक भी पाप ग्रह बारहवें, पाँचवें, आठवें स्थान में हो तो स्त्री का या गर्भ का निःसन्देह विनाश होता है ॥ २२ ॥

वसिष्ठः—

वसिष्ठ जी के आधार पर

[2]मासे मासे मासपादिग्रहाणां शान्तिं कुर्याच्छान्तिवाक्यैर्जपैश्च ।
होमैर्दानैः सज्जनानां च वाक्यैः गर्भं सम्यक्रक्षयेत्पुत्रकामी ॥ २३ ॥

ऋषि वसिष्ठ जी ने बताया है कि प्रत्येक मास में मासेश्वर ग्रह की शान्ति, शान्ति सूक्त, जप, होम, दान और सत्पुरुषों के वाक्य से करनी चाहिए। क्योंकि पुत्र की इच्छा वाले को गर्भ की रक्षा करनी चाहिए ॥ २३ ॥

गुरुः—

गुरु के आधार पर

रोहिणो मित्रभेऽदित्ये पुष्ये हस्तोत्तरात्रिषु ।
पौष्णवैष्णवयोरेव सीमंते शुभदस्तदा ॥ २४ ॥
शोभनांशे शुभे लग्ने लेयकौर्प्यौं विना शुभाः ।
पक्षछिद्राश्च रिक्ताश्च विना पञ्चदशीं शुभाः ॥ २५ ॥

---

१. व. सं. २५ अ० ८ श्लो० ।   २. व. सं. २५ अ० ५ श्लो० ।

असम्भवे यथोक्तस्य कालस्योक्तस्य मासि च।
दोषापवादे दृष्टे वा योगे दोषहरेऽपि वा ॥ २६ ॥
अनेन सार्द्धं पुंकर्म अयं पुंसवनेन वा।
अमन्त्रकं च पुंकर्म तत्सीमन्तं शुभार्थिनाम् ॥ २७ ॥

आचार्य गुरु ने बताया है कि रोहिणी, अनुराधा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, तीनों उत्तरा, रेवती और श्रवण नक्षत्र सीमन्त संस्कार में शुभ फल देने वाला होता है ॥२४॥

शुभ नवांशस्थ शुभ लग्न में सिंह, वृश्चिक को तथा पक्ष छिद्रा और रिक्ता तिथियों का व पूर्णिमा का त्याग करके अन्य तिथियों सीमन्त काम शुभ होता है ॥ २५ ॥

यदि उक्त काल प्राप्ति की असम्भावना हो तो उक्त मास में या अपवाद प्राप्त होने पर या दोष हर्ता योग के मिलने पर भी सीमन्त के साथ पुंसवन या पुंसवन के साथ सीमन्त संस्कार शुभेच्छुओं को करना चाहिए ॥ २६–२७ ॥

दीपिकायाम्—

दीपिका के आधार पर

[1]चतुर्थाद्यष्टपर्यन्तं मासि पुन्नामभे सकृत्।
सीमन्तोन्नयनं स्त्रीणां गर्भस्य प्रतिगर्भकम् ॥ २८ ॥

दीपिका में बताया है कि चौथे मास से आठवें मास तक पुरुष नक्षत्रों में स्त्रियों के गर्भ का एक बार या प्रति गर्भ में सीमन्तोन्नयन संस्कार करना चाहिए ॥ २८ ॥

[2]हारीतः—

हारीत के आधार पर

सकृत्सकृत्संस्काराः सीमन्तेन द्विजैस्त्रियः।
यं यं गर्भं प्रसूयेत स सर्वः संस्कृतो भवेत् ॥ २९ ॥

ऋषि हारीत जी ने बताया है कि ब्राह्मणों की स्त्रियों का बार-बार सीमन्त संस्कार करने पर जो भी गर्भ वह उत्पन्न करती है, वह उक्त संस्कार से संस्कृत होता है ॥ २६ ॥

सीमन्तानन्तरवर्ज्यम्—

अब आगे सीमन्त संस्कार होने पर क्या-क्या नहीं करना चाहिए, इसे बताते हैं।

दहनं वपनं चैव न कुर्याद्गुर्विणीपतिः ॥ ३० ॥
आमिषस्याशनं यत्नात्प्रमदा परिवर्जयेत्।
देवारामनदीयानं प्रयोगं पुरुषस्य च ॥ ३१ ॥

---

१. ज्या० नि० १११ पृ० १४ श्लो०।

२. मु० चि० ८ श्लो० पी० टी० में 'सकृच्च कृतसंस्काराः सी' यह उचित पाठ है।

ऋषि हारीत ने बताया है कि गर्भिणी स्त्री के पति को शवदाह और क्षौर नहीं करना चाहिये और गर्भिणी को मांस भक्षण, देव स्थान बगीचा और नदी पर नहीं जाना तथा पुरुष संसर्ग छोड़ना चाहिए ॥ ३०–३१ ॥

स्मृतिसारे—

स्मृति सार के आधार पर

[1]उदन्वतोऽम्भसि स्नानं नखकेशनिकृन्तनम् ।
नान्तर्वत्न्या पतिः कुर्यादःप्रजो भवति ध्रुवम् ॥ ३२ ॥
[2]सिन्धुस्नानं द्रुमच्छेदं वपनं प्रेतवाहनम् ।
विदेशगमनं चैव न कुर्याद्गर्भिणीपतिः ॥ ३३ ॥
[3]राजा योगी पुरन्ध्री च मातापित्रोस्तु जीवतोः ।
मुण्डनं सर्वतीर्थेषु न कुर्याद्गर्भिणीपतिः ॥ ३४ ॥
[4]अन्तर्वत्न्यां तु जायायां तीर्थे क्षौरं न कारयेत् ।
प्रेतवाहादिकं चैव सीमन्तोन्नयनादनु ॥ ३५ ॥
[5]क्षौरं नैमित्तिकं कुर्यान्निषेधे सत्यपि ध्रुवम् ।
पित्रोः प्रेतविधानं च न दोषस्तत्र विद्यते ॥ ३६ ॥
[6]गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।
आधाने सोमपाने च षड्भिः क्षौरं विधीयते ॥ ३७ ॥

स्मृति सार में बताया है कि गर्भिणी के पति को समुद्र के जल में स्नान, नाखून व बालों को नहीं कटवाना चाहिए, क्योंकि उक्त कार्य करने पर मनुष्य सन्तानहीन होता है ॥ ३२ ॥

गर्भिणी के पति को समुद्र में स्नान, वृक्ष काटना, क्षौर, शव का ढोना या यात्रा और परदेश में गमन नहीं करना चाहिए ॥ ३३ ॥

राजा, योगी, पति पुत्रवाली स्त्री व गर्भिणी के पति को माता, पिता के जीवित रहने पर समस्त तीर्थों में मुण्डन नहीं कराना चाहिये ॥ ३४ ॥

स्त्री के गर्भिणी होने पर सीमन्त संस्कार के पश्चात् तीर्थ में क्षौर व शव ढोना आदि कार्य नहीं करना चाहिए ॥ ३५ ॥

नैमित्तिक क्षौर और माता, पिता की शव क्रिया में क्षौर अवश्य करना चाहिए। क्योंकि इन कामों में दोष नहीं होता है ॥ ३६ ॥

गङ्गातट पर कुरुक्षेत्र, माता-पिता के मरण दिन, आधान और सोमरस पीने में अर्थात् उक्त ६ कामों में क्षौर करना चाहिए ॥ ३७ ॥

---

१. ज्यो० नि० ११९ पृ० १ श्लो० । २. ज्यो० नि० ११६ पृ० २ श्लो० ।
३. ज्यो० नि० १२० पृ० ७ श्लो० । ४. ज्यो० नि० १२० पृ० ८ श्लो० ।
५. ज्यो० नि० ११६ पृ० ३ श्लो० । ६. ज्यो० नि० ११९ पृ० ४ श्लो० ।

ज्योतिषसारे—

ज्योतिषसार के आधार पर गर्भिणी के अकर्तव्य

[1]भूम्यां चैवोच्चनीचायामारोहणावरोहणे।
नदीप्रतरणं चैव शकटारोहणं तथा ॥ ३८ ॥
[2]उग्रौषधं तथा क्षारं मैथुनं भारवाहनम्।
कृते पुंसवने चैव गर्भिणी परिवर्जयेत् ॥ ३९ ॥

ज्योतिषसार में बताया है कि पुंसवन संस्कार होने के पश्चात् गर्भिणी स्त्री को ऊँची-नीची भूमि पर चढ़ना, उतरना, नदी में तैरना, गाड़ी में बैठना, तीक्ष्ण औषधि का सेवन, क्षार पदार्थ का भोजन, मैथुन और वजनी वस्तु को उठाना नहीं चाहिए ॥ ३८-३९ ॥

विशेष—प्रकाशित ज्योतिषसार में 'भासेहश्चावरोहणम्' पाठ है ॥ ३८-३९ ॥

कारिकायाम्—

कारिका के आधार पर

अङ्गारभस्मास्थिकपालचूल्लीशूर्पादिकेषूपविशेन्न नारी।
सोलूखलाद्ये दृषदादिके वा यन्त्रे तुषाद्ये न तथोपविष्टा ॥ ४० ॥
नो मार्जनी गोमयपिण्डकादौ मूत्रं पुरीषं शयनं च कुर्यात्।
नो मुक्तकेशी विवशाथ वास्याद्भुक्ते न सन्ध्यावसरे न शेते ॥ ४१ ॥
नामङ्गलं वाक्यमुदीरयेत्सा शून्यालयं वृक्षतलं न यायात् ॥ ४२ ॥

कारिका में बताया है कि अंगार, भस्म, अस्थि, कपाल, चूल्हा और सूप आदि पर तथा ऊखलादि या पत्थर की ढेकी पर गर्भिणी को नहीं बैठना चाहिए ॥ ४० ॥

गर्भिणी को झाड़ू नहीं लगाना, गोबर या गुहरी (ऊपरा) पर टट्टी-पेशाब व शयन नहीं करना, बालों को खोलना और सन्ध्याकाल में भोजन व शयन नहीं करना चाहिए ॥ ४१ ॥

गर्भिणी स्त्री को अमांगलिक शब्द बोलना तथा खाली घर और वृक्ष के नीचे नहीं जाना चाहिये ॥ ४२ ॥

प्रयोगपारिजाते—

प्रयोग पारिजात के आधार पर

[3]गर्भिणीकुञ्जराश्वादिशैलहर्म्यादिरोहणम्।
व्यायामं शीघ्रगमनं शकटारोहणं त्यजेत् ॥ ४३ ॥
शोकरक्तविमोक्षं च साध्वसं कुक्कुटासनम्।
व्यवसायं दिवास्वापं रात्रौ जागरणं त्यजेत् ॥ ४४ ॥

---

१. पृ० ५८। २. ज्यो० सा० ५८ पृ०।
३. धर्म सि० ३ प०।

प्रयोग पारिजात में कहा है कि गर्भिणी स्त्री को हाथी, घोड़ा आदि, पर्वत, ऊँचे मकान पर चढ़ना, व्यायाम करना, जल्दी चलना और गाड़ी पर बैठना छोड़ना चाहिए ॥ ४३ ॥

गर्भिणी को शोक, रक्तस्राव, भय, कुक्कुटासन से बैठना, घरेलू धन्धा, दिन में शयन और रात में जागना नहीं चाहिए ॥ ४४ ॥

याज्ञवल्क्यः—

याज्ञवल्क्य जी के आधार पर

दौहृदस्याप्रदाने गर्भो दोषमवाप्नुयात् ।
वैरूप्यं मरणं वापि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियः ॥ ४५ ॥

ऋषि याज्ञवल्क्य जी ने बताया है कि गर्भिणी के इच्छित पदार्थ की अप्राप्ति में गर्भ दूषित होकर कुरूप या मरण को प्राप्त करता है । इसलिये उसको इच्छित वस्तु देनी चाहिए ॥ ४५ ॥

दौहृदं गर्भिणीप्रियम्—

मदनरत्ने—

मदनरत्न के आधार पर

हरिद्रां कुंकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा ।
कूर्पासकं च ताम्बूलमाङ्गल्याभरणं शुभम् ॥ ४६ ॥
केशसंस्कारकबरीकरकर्णविभूषणम् ।
भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती धारयेद्गर्भिणो नहि ॥ ४७ ॥
आहाराचारचेष्टाभिः यादृशीभिः समन्विता ।
स्त्रीपुरुषौ समोपेतां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ॥ ४८ ॥

मदनरत्न में कहा है कि हल्दी, कुंकुम, सिन्दूर, काजल लगाना, चोली पहनना, पान खाना, मांगलिक आभूषण धारण करना शुभ होता है ॥ ४६ ॥

गर्भिणी को बाल धोना या सजाना, हाथ, कान में गहना पहिनना पति की आयु वृद्धि के लिए नहीं करना चाहिये ॥ ४७ ॥

स्त्री पुरुष का भोजन, आचार और इच्छा जिस प्रकार की दोनों की होती है तो उसी प्रकार की सन्तान भी होती है ॥ ४८ ॥

सीमन्तानन्तरं विष्णुपूजां कुर्यात् ।

अब आगे सीमन्त संस्कार के पश्चात् गर्भ की रक्षा के लिए विष्णु पूजा करनी चाहिये, इसे प्रथम रामदैवज्ञ के वाक्य से बताते हैं ।

अथ विष्णुपूजा—

[1]मासेऽष्टमे विष्णुविधातृजीवैर्लग्नं शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे ॥ ४९ ॥

---

१. मु० चि० ५ प्र० १० श्लो० ।

रामदैवज्ञ ने बताया है कि गर्भ रक्षा के लिए आठवें महीने में श्रवण, रोहिणी, पुष्य नक्षत्रों में शुभ लग्न में लग्न से अष्टम में ग्रहाभाव होने पर विष्णु पूजा करनी चाहिये ॥ ४९ ॥

अन्यः—

ग्रन्थान्तर के आधार पर

[1]रोहिण्यब्जे वैष्णवे पूर्वपक्षे द्वादश्यां वा सप्तमी वा तिथौ हि ।
मध्याह्ने वा पूर्वभागेऽनुकूले विष्णोः पूजां कारयेद्गर्भपुष्ट्यै ॥ ५० ॥
[2]विष्णोः कृत्वा च पूजां हि गर्भसंरक्षणाय च ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्या प्रतिमा वस्त्रसंयुता ॥ ५१ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि रोहिणी या श्रवण में चन्द्रमा के रहने पर पहिले पक्ष में द्वादशी या सप्तमी तिथि में, पूर्वाह्न के अनुकूल होने पर या मध्याह्न में गर्भ की पुष्टि के लिए व रक्षार्थ विष्णु भगवान् की पूजा करके वस्त्र के साथ विष्णु की प्रतिमा को ब्राह्मण के लिए देना चाहिये ॥ ५०–५१ ॥

विशेष—वसिष्ठ संहिता में 'रोहिण्यां वा वैष्णवे····सप्तमे वा तिथौ वा' पाठान्तर है । २५ अ० ११ श्लो० ॥ ५०–५१ ॥

अन्योऽपि—

पुनः ग्रन्थान्तर के आधार पर

रोहिण्यां श्रवणे पुष्ये लग्ने सौम्ये शुभे युते ।
दृष्टे वाप्यष्टमे शुद्धे विष्णुपूजाष्टमे विधिः ॥ ५२ ॥
विष्णोर्मूर्तिं सुवर्णस्य कारयेद्वित्तमानतः ।
वस्त्रोपेतां यथोक्तेन पूजां कुर्याद्विधानतः ॥ ५३ ॥
ततो वेदविदां दद्याद्गर्भसंरक्षणाय च ॥ ५४ ॥

ग्रन्थान्तर में बताया है कि रोहिणी, श्रवण, पुष्य नक्षत्र में, शुभ ग्रह से युत शुभ लग्न में या शुभ से दृष्ट होने पर और लग्न से अष्टम में ग्रह के न रहने पर विष्णु पूजा करनी चाहिए ।

विष्णु भगवान् की प्रतिमा अपने धन के हिसाब से बनवा कर विधि विधान से पूजा करके वेदवेत्ता विद्वान् को वस्त्रों के साथ गर्भ की रक्षा के लिये देनी चाहिए ॥ ५२–५४ ॥

---

१. वृ० सं० २५ अ० ११ श्लो० 'रोहिण्यां वा' पाठ है ।
२. मु० चिं० ५ प्र० १० श्लो० पी० टी० ।

प्रयोग पारिजात में वसिष्ठ जी ने कहा है 'मास्यष्टमे च गर्भस्य कुर्याद् विष्णुबलिक्रियाम् । श्रवणे चैव रोहिण्यां पुष्ये चैव प्रशस्यते । द्वितीया सप्तमी चैव द्वादशी च शुभा तिथिः । शुभग्रहोदयाः शस्तास्तेषां च दिवसा अपि' (मु० चिं० ५ प्र० १० श्लो० पी० टी० ॥ ५२–५४ ॥

इति श्रीज्योतिर्विद्गयादत्तात्मजरामदीनविरचिते सङ्ग्रहे बृहद्दैवज्ञरञ्जने संस्कारोक्तं एकपञ्चाशत्तमं सीमन्तविष्णुपूजाप्रकरणं समाप्तम् ।

इस प्रकार श्रीमान् ज्योतिर्वेत्ता प० गया.दत्त जी के पुत्र ज्योतिषी प० रामदीन जी द्वारा रचित बृहद्दैवज्ञरञ्जन संग्रह ग्रन्थ का इक्यावनवां सीमन्त विष्णु पूजा नामक प्रकरण समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥

इति श्रीमथुरावास्तव्य श्रीमद्भागवताभिनवशुक प० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-
मुरलीधरचतुर्वेदकृता बृहद्दैवज्ञरञ्जनसङ्ग्रहग्रन्थस्य, एकपञ्चाशत्प्रकरणस्य
श्रीधरी हिन्दी टीका परिपूर्णा ॥ ५१ ॥
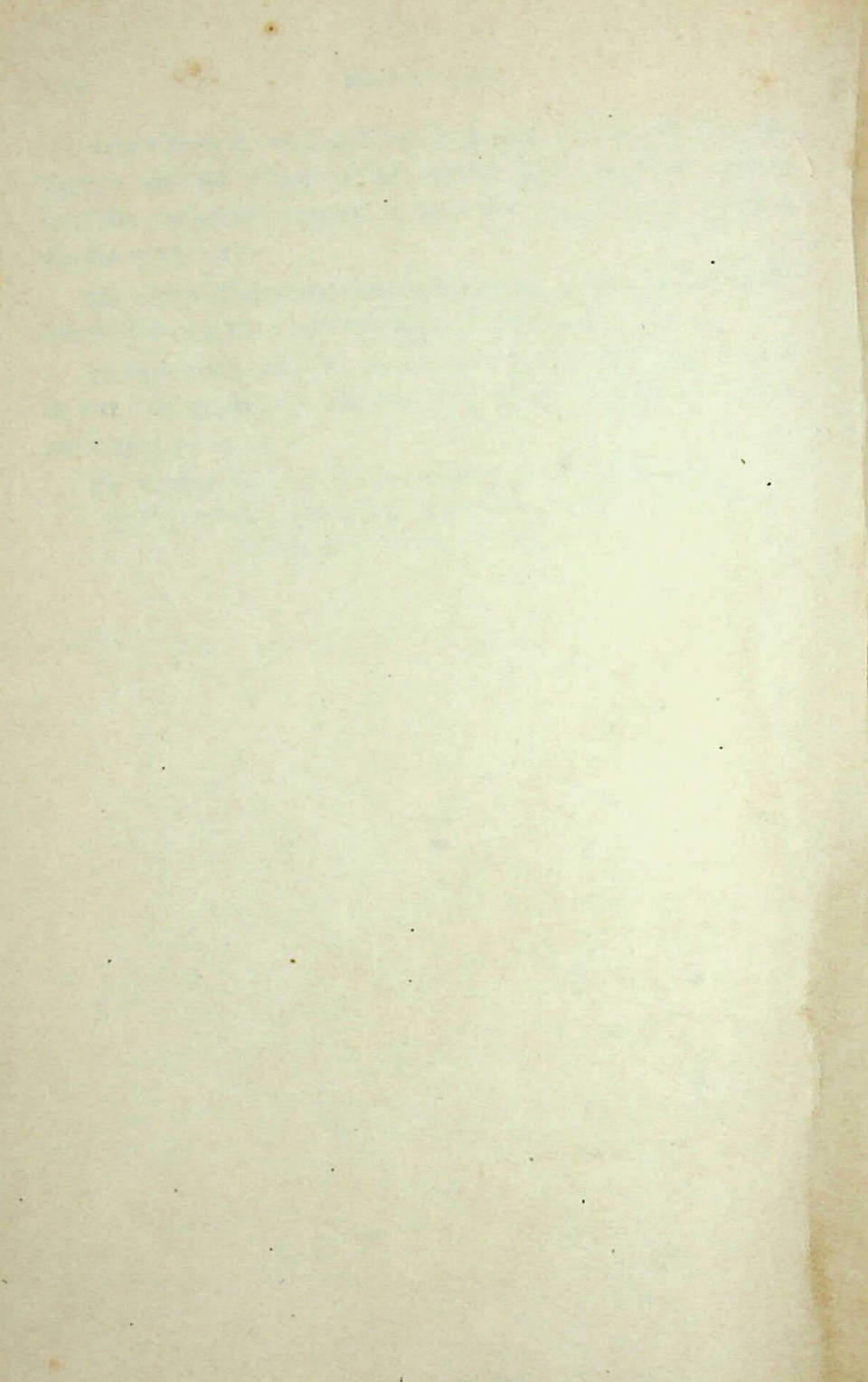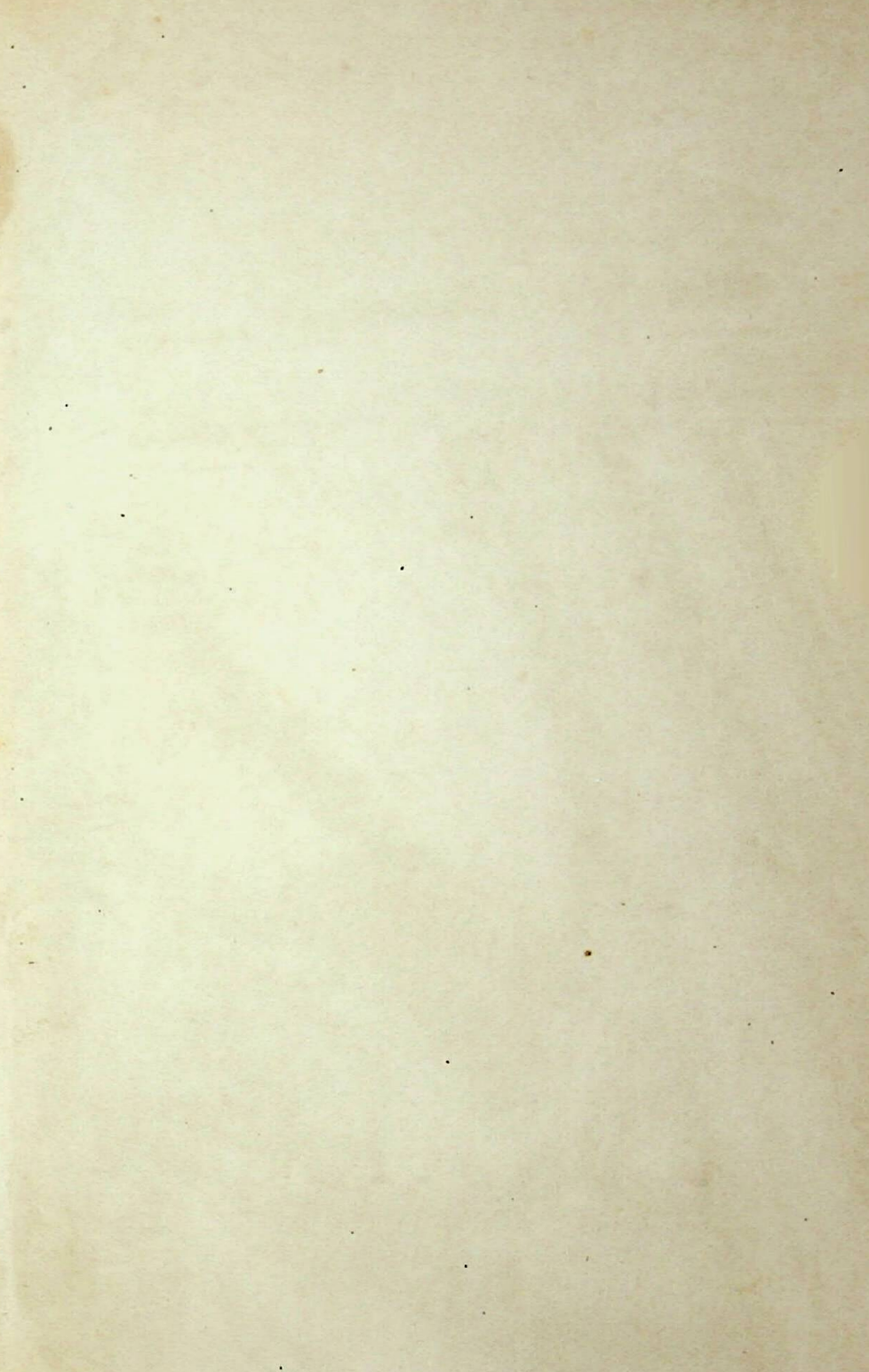
बृहद्दैवज्ञरञ्जनम्

डॉ० मुरलीधर चतुर्वेदी

प्रस्तुत कृति श्री रामदीन दैवज्ञ कृत बृहद्दैवज्ञरञ्जन का प्रथम भाग है जो कि एकावन प्रकरणों में समाप्त हुआ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में ८८ प्रकरण हैं। पाठकों की सुविधा के लिये हमने इसे दो भागों में बाँट दिया है। प्रस्तुत प्रथम भाग पर ज्योतिषाचार्य डा० मुरलीधर चतुर्वेदी ने श्रीधरी नाम की हिन्दी व्याख्या लिखी है।

वास्तव में यह संग्रह ग्रन्थ है। संग्रहकर्ता श्री रामदीन दैवज्ञ काशीनरेश के सभापण्डित थे। ज्योतिषशास्त्र के महत्त्वपूर्ण विषयों पर इन्होंने ग्रन्थान्तरों से उद्धरण देकर इस ग्रन्थ को सज्जित किया है। उद्धृत प्रमाणों के स्रोतों को टिप्पणी में देकर इस ग्रन्थ की शोभा बढ़ा दी है।

मुहूर्त विचार की दृष्टि से यह सर्वोत्तम ग्रन्थ है। मुहूर्त विषय सम्बन्धी समस्त ज्ञान परिहारों सहित इसमें सन्निहित है। ज्योतिषशास्त्र के महत्त्वपूर्ण विषयों में कालादिमान, निर्घात, भूकम्प, दिग्दाह, उल्का आदि लक्षणों के साथ-साथ चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, लग्नज्ञान, जन्ममासादि निर्णय, संक्रान्तिकाल, लुप्त संवत् निर्णय, अकालवृष्टि, अपशकुन फल, वर्ज्य योग, विविध अपवाद, एकोदरविचार, ज्येष्ठमास निर्णय, सिंहस्थ गुरु, मकरस्थ गुरु, गुरुवक्र, गुर्वादित्यविचार, गुरुशुक्रास्तविचार, देशाचारविचार तथा संस्कारकाल पर ग्रन्थ ग्रन्थान्तरों के प्रमाणों से स्वीकृत मत की पुष्टि की गई है। प्रामाणिक ग्रन्थों के उद्धरणों से समर्थित यह संहिताग्रन्थ ज्योतिर्विदों के लिये अतीव उपयोगी सिद्ध होगा।

मूल्य : रु० १३० (सजिल्द)
रु० १०० (अजिल्द)